

अक्षय मुकुल



गीता प्रेस

और हिन्दू भारत
का निर्माण

अक्षय मुकुल एक स्वतंत्र शोधार्थी हैं। दो दशक से ज्यादा समय से पत्रकार रहे अक्षय ने प्रेम पोद्दार और डेविड जॉनसन के संपादकत्व में एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित 'ए हिस्टोरिकल कम्पैनिन टू पोस्टकॉलोनियल लिटरेचर इन इंग्लिश' (2005) में योगदान दिया। अभी वे अंग्रेज़ी में लिखी जा रही अज्ञेय की पहली जीवनी पर काम कर रहे हैं। अक्षय गुरुग्राम में अपनी पत्नी ज्योति, बेटी जाह्नवी और डालमेशियन बेला के साथ रहते हैं।

प्रीति तिवारी हिन्दी की विविध पत्रिकाओं और वेबसाइटों के लिए लेखन और अनुवाद करती रही हैं। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय के जीसस एन्ड मेरी कॉलेज से 'हिन्दी भाषा और साहित्य' में स्नातक और हिन्दू कॉलेज से स्नातकोत्तर की डिग्री ली है। इसी विश्वविद्यालय से आपने अनुवाद का डिप्लोमा लिया, अंबेडकर विश्वविद्यालय से अपनी एम.फिल् की उपाधि ली और भारतीय विद्या भवन से जनसंचार का डिप्लोमा पूरा किया।

eka

कई कहानियाँ कई भाषाएँ

‘एका’ शब्द एकता का पर्याय है। इसका तात्पर्य है ‘कई’ को ‘एक’ के रूप में समेकित करना। विभिन्न भारतीय भाषाओं की बेहतरीन रचनाओं को संग्रहित करने तथा विभिन्न भाषाओं में पुस्तकों के पठन को बढ़ावा देने के लिए, देश के विचारशील व्यक्तियों की रचनाओं को प्रकाशित करने के उद्देश्य से वेस्टलैंड के इस नवीन भाषाई प्रकाशन-चिह्न को बनाया गया है। एका विभिन्न भाषाओं में अनुवाद तथा अलग-अलग संस्कृतियों एवं पृष्ठभूमि के लेखकों और पाठकों को संबद्ध करते हुए साहित्य को अन्य विविधतापूर्ण व जीवंत भाषाई बाजारों तक पहुँचाने के लिए भी प्रयासरत है। 23 आधिकारिक भाषाओं और 700 से अधिक बोलियों वाले इस देश में अनुवाद केवल ज़रूरत की पूर्ति का साधन नहीं है—बल्कि यह एक तात्कालिक आवश्यकता है।

एका द्वारा दस भारतीय भाषाओं की मूल रचनाओं का प्रकाशन किया जाएगा : जिसमें हिन्दी, उर्दू, बंगाली, गुजराती, मराठी, ओडिया, कन्नड़, तेलुगु, तमिल और मलयालम शामिल हैं। यह इन भाषाओं में परस्पर अनुवाद तथा इनके अंग्रेजी में अनुवाद की विविधतापूर्ण किताबों का भी प्रकाशन करेगा। वर्ष २०२० के लिए प्रस्तावित पुस्तकों के प्रमुख लेखकों में मनोरंजन ब्यापारी (बंगाली), सिरशो बंदोपाध्याय (बंगाली), पेरुमल मुरुगन (तमिल), कैफ़ी आज़मी और जां निसार अख्तर (उर्दू), वोल्गा (तेलुगु), उन्नी आर. (मलयालम), वीजे जेम्स (मलयालम), जॉनी मिरांडा (मलयालम), विश्वास पाटील (मराठी), रणजीत देसाई (मराठी), शिवाजी सावंत (मराठी), पवन के. वर्मा, संजीव सान्याल, अमीश, अश्विन सांघी, चेतन भगत (अंग्रेज़ी), एम. मुकुंदन (मलयालम), अमीश (हिन्दी), विजय त्रिवेदी (हिन्दी), संजीव पालीवाल (हिन्दी), नारायण (मलयालम), मनु पिल्लई (अंग्रेज़ी), अमिताव घोष (अंग्रेज़ी), काका विधाते (मराठी), लीज़ा गाज़ी (बंगाली), भैरप्पा (कन्नड़) शामिल हैं।

बीते वर्षों में अनुवादित रचनाओं के क्षेत्र में वेस्टलैंड को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। एका अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों के प्रकाशन के महत्वाकांक्षी कार्यक्रम का भी संचालन कर रहा है, जिसके अंतर्गत नोबेल पुरस्कार विजेता उपन्यासकार, काज़ुओ इशिगुरो की पुस्तक *व्हेन वी वेयर ऑफ़ेन्स* और *द रिमेंस ऑफ़ द डे*, बड़े पैमाने पर लोकप्रिय स्वीडिश लेखक स्टीएग लार्सन की *मिलेनियम*

ट्रिलॉजी , जापानी लेखक केइगो हिगाशिनो की *द डिवोशन ऑफ सस्पेक्ट एक्स* तथा जेफ़री आर्चर की *केन एंड एबेल* शामिल हैं।

हम आपको वेस्टलैंड के इस बिल्कुल नए व रोमांचक सफ़र, अर्थात एका के साथ जुड़ने के लिए आमंत्रित करते हैं।

पुस्तक के बारे में...

‘अक्षय मुकुल हमारे लिए अमूल्य निधि खोज लाए हैं। उन्होंने गोरखपुर स्थित गीता प्रेस के अभिलेखों तक अपनी पहुँच बनाई। इसमें जन विस्तार वाली पत्रिका कल्याण के पुराने अंक थे। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कई दशकों तक कल्याण के संपादक और विचारक रहे हनुमानप्रसाद पोद्दार के निजी कागज़ात तक पहुँचना था। इन कागज़ात के जरिये मुकुल हमें हिन्दुत्व परियोजना के बीजारोपण से लेकर जनमानस में उसे मजबूत किए जाने के पूरे वाक्ये से रूबरू करवाते हैं। इससे भी आगे वे इसकी जड़ में मौजूद जटिलता तक पहुँचते हैं जहाँ रुढ़िग्रस्त ब्राह्मणवादी हिन्दुओं और मारवाड़ी, अग्रवाल और बनिया समुदाय के अग्रणी पंडित मदनमोहन मालवीय, गाँधी, बिड़ला बंधुओं और गीता प्रेस के बीच की सहयोगी, अंतरंगता, किन्तु कभी मधुर कभी तिक्त संबंध बिखरे दिखाई देते हैं। यह किताब हमारी जानकारी को बहुत समृद्ध करेगी और आज जिन सूरत-ए-हालों में भारत उलझा है उसे समझने में मददगार साबित होगी।’

—अरुंधती रॉय

कई दशकों तक, कम चर्चित रहे गोरखपुर के प्रेस ने करोड़ों हिन्दुओं की विश्व दृष्टि को गढ़ने का काम चुपचाप किन्तु निर्णयात्मक ढंग से किया। अक्षय मुकुल का धार्मिक-सांस्कृतिक लोकलुभावनवाद के अध्ययन को यह महत्वपूर्ण और प्रासंगिक योगदान है कि वे आत्महीनता के भय और अपमिश्रण तथा पवित्रता और सत्ता की उस असाधारण फंतासी को उद्धाटित कर पाए हैं जो आज भारत के सबसे बड़े राजनैतिक और सांस्कृतिक माहौल की संचालक शक्ति बन गया है।

—पंकज मिश्रा

एक सुस्पष्ट और गहरी खोज के बाद लिखी गई यह पुस्तक एक साथ ही एक विलक्षण व्यक्तित्व की जीवनी और एक असाधारण संस्थान का इतिहास है। थोड़े स्वपनदर्शी और थोड़े धंधेबाज़ हनुमानप्रसाद पोद्दार ने गीता प्रेस की स्थापना की। यहाँ से पुस्तकें, पर्चे और पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई जिन्होंने आधुनिक हिन्दू चेतना और आधुनिक हिन्दुवाद के क्रमिक विकास को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पूर्ववर्ती विद्वानों की दृष्टि से अनदेखे रह गए एक असाधारण समृद्ध अभिलेख से गुज़र कर अक्षय मुकुल हिन्दुत्व के एक “गहरे इतिहास” तक ले जाते हैं जो बीसवीं सदी के भारत

की राजनीति और धर्म, राष्ट्रवाद और समाज सुधार की हमारी बनी हुई समझ को पुनः गढ़ता है। ऐतिहासिक विद्वता का यह एक प्रभावशाली और मौलिक काम है।

—रामचंद्र गुहा

यह गोरखपुर स्थित गीता प्रेस के निजी अभिलेखों के गहन अध्ययन से प्राप्त बीसवीं सदी की बहुसंख्यकवादी विश्व दृष्टि को समझने का एक दुर्लभ नजरिया है। मुकुल “मुद्रित हिन्दुवाद” का वृहद नक्शा उतारते हैं जहाँ वे प्रभावशाली किन्तु संकुचित “हिन्दू भारत” के स्वरूप विस्तार और हिन्दी धार्मिक कृतियों की सस्ती उपलब्धता व प्रसार के बीच के संबंधों को रेखांकित करते हैं।

—शाहिद अमीन

यह शानदार किताब मुकुल द्वारा पोद्दार के कागज़ात की एक लाजवाब खोज और धीरे-धीरे उन कागज़ों के हवाले से की गई छानबीन का परिणाम है। लेकिन फिर भी यह अभिलेखीय सामग्रियों के बोझ से मुक्त रह कर करिश्माई ढंग से पठनीय है।

—फ्रांसेस्का ओर्सिनी, इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली में प्रकाशित
आलोचना

हम यह महसूस करते हैं कि हमारे बचपन की दुनिया निर्दोष नहीं थी, वहाँ एक विचारधारात्मक गढ़ था जिससे गुजरने और उसकी संपूर्ण जटिलता के साथ उसके संयोजन की ज़रूरत थी। अक्षय मुकुल की *गीता प्रेस एंड द मेकिंग ऑफ़ हिन्दू इंडिया* में विशेष रूप से इसी बिंदु को बेहतरीन ढंग से निभाते हुए देखना सुखद आश्चर्य है... अक्षय मुकुल का यह संवेदनशील अध्ययन जितना प्रासंगिक है उतना ही ऐतिहासिक।

—वसुधा डालमिया, thewire.in

अक्षय मुकुल तीव्र विचारधारात्मक संघर्ष की जटिल बुनावट की कहानी कहते हैं... यह किताब शानदार ढंग से दूरगामी पहुँच वाली सामाजिक व राजनैतिक धाराओं की विभाजक बिंदु पर प्रेस की स्थिति को देखने का काम करती है, और तत्कालीन उत्तरी भारत के महत्वपूर्ण सामाजिक बदलावों को समझने के लिए नजरिया देती है।

—प्रताप भानु मेहता, इंडियन एक्सप्रेस

यह किताब विद्वता का श्रेष्ठ उदाहरण है और यह लम्बे समय तक इस तरह के विषय पर गिने चुने मानक अध्ययनों में से एक रहेगी... यह किताब चिंतनशील व्यक्ति के हिन्दुत्व के बारे में है। यह पूरी तरह भारतीय रूढ़िवाद की कहानी है।

—आकार पटेल, इंडिया टुडे

अक्षय मुकुल की नई किताब *गीता प्रेस एंड द मेकिंग ऑफ हिन्दू इंडिया* की कई उपलब्धियों में से एक है हिन्दुत्व के मुखौटे के पीछे की पैनी पड़ताल । इसके तहत उन्होंने हिन्दुत्व के वाहन के इंजन से लेकर उसके ईंधन और उसे नियंत्रित करने वाले कारकों की जांच की है । मुकुल पूरी तटस्थता से इस एकमात्र धार्मिक प्रेस के ऐतिहासिक लेखेजोखे को हिन्दुत्व की राजनीति में सक्रीय सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और मानवीय ताक़त के प्रमाणिक विवरण में रूपांतरित होते हुए दिखाते हैं ।
—**जी सम्पत , द हिन्दू**

मुकुल का शोध अपने विस्तार में असाधारण है... उनके काम के फलस्वरूप एक ऐसी किताब सामने आई है जो कालजयी है । हिन्दू पुनरुत्थान आंदोलन की समझ के लिए यह एक ज़रूरी किताब है ।

—**भूपेश भंडारी, बिजिनेस स्टैंडर्ड**

अक्षय अपने पाठकों के सामने बड़े पैमाने पर भुला दिए गए नए राजनैतिक सितारों और नए हिन्दू भारत के ‘उदय’ के चारों तरफ पैरोकारों द्वारा बनाये गए मिथक के पीछे के इतिहास के एक छोटे हिस्से पर प्रकाश डालते हैं ।

—**उल्लेख एन पी, ओपन मैगज़ीन**

गीता प्रेस

और हिन्दू भारत का निर्माण

अक्षय मुकुल

अनुवाद
प्रीति तिवारी

eka



First published in English as *Gita Press and the Making of Hindu India* in 2015 by HarperCollins Publishers India Ltd.

First published in Hindi as *Gita Press aur Hindu Bharat ka Nirman* in 2019 by Eka, an imprint of Westland Publications Private Limited.

1st Floor, A Block, East Wing, Plot No. 40, SP Infocity, Dr MGR Salai, Perungudi, Kandanchavadi, Chennai 600096

Westland, the Westland logo, Eka and the Eka logo are the trademarks of Westland Publications Private Limited, or its affiliates.

Copyright © Akshaya Mukul, 2015

ISBN: 9789388689847

The views and opinions expressed in this work are the author's own and the facts are as reported by him, and the publisher is in no way liable for the same.

All rights reserved

No part of this book may be reproduced, or stored in a retrieval system, or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording, or otherwise, without express written permission of the publisher.

मेरे माता-पिता
मनोरमा और मधुसुदन
को समर्पित

विषय-सूची

परिचय

अध्याय 1 बीसवीं सदी के हिन्दू मिशनरी और उनके पथ-प्रदर्शक

अध्याय 2 गीता प्रेस का संसार

अध्याय 3 लेखक : स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय

अध्याय 4 संघ परिवार के स्वयंसेवक

अध्याय 5 राजनीति के रूप में धर्म और धर्म की राजनीति

अध्याय 6 गीता प्रेस का नैतिक संसार

उपसंहार

आभार

टिप्पणियाँ

परिचय

जयदयाल गोयन्दका बंगाल के बाँकुड़ा जिले के घुमंतू मारवाड़ी व्यापारी थे, जिनका रूई, मिट्टी के तेल, कपड़ों और बर्तनों का कारोबार था । अपने कारोबार के चलते वे चक्रधरपुर (अब झारखंड में) और सीतामढ़ी (बिहार) जैसे छोटे शहरों से लेकर कभी-कभी खड़गपुर और कलकत्ता तक गए । व्यापार में 'सही भाव' और 'सही तौल' की ईमानदारी ने गोयन्दका को प्रसिद्धि दी । कारोबार से समय मिलने पर उन्होंने 'गीता' पर ध्यान केन्द्रित करना शुरू किया । इसमें गीता पढ़ना और उस पर परिचर्चा दोनों ही शामिल थे । कई सालों के सफ़र के दौरान उन्होंने इन शहरों में ऐसे मित्रों के समूह तैयार कर लिए जो उनके साथ सत्संगों में हिस्सा लेते थे । इनमें से अधिकतर व्यापारी ही थे । समय के साथ ये समूह विस्तार लेते गए । इनमें से सबसे बड़ा समूह कलकत्ता में था, जहाँ सभाएँ पहले तो गोयन्दका के मित्रों के घर होती थीं और फिर ईडन गार्डन के पास एक क़िले के पीछे सुदीर्घ खुले मैदान में होने लगीं । बहुत जल्द ही समूह और बड़ा हुआ तो यह बड़ी जगह भी छोटी पड़ने लगी । तब इस समूह ने बाँसतल्ला गली में एक किराए की जगह ली और उसका नाम 'गोबिंद भवन' रखा । ये सन् 1922 की बात है ।

1

कलकत्ता में यही गोबिंद भवन गोयन्दका का नया घर बन गया । व्यापार में उनकी रुचि दिन-प्रतिदिन घट रही थी, वहीं उनका रुझान गीता पर चर्चा करने वाले समूहों के नेटवर्क को विकसित करने पर केन्द्रित होता गया । गोयन्दका ने एक ऐसे विशेषज्ञ की छवि हासिल कर ली जिनकी व्याख्याओं को कलकत्ता में सराहा जाने लगा था । इस दौरान उन्होंने और उनके साथ के सत्संगियों ने गीता के सटीक अनुवाद की कमी महसूस की, जिसके साथ विश्वसनीय टीकाएँ भी संलग्न हों । गोबिंद भवन ने कलकत्ता के वणिज्य प्रेस से गीता की 11,000 प्रतियों के दो संस्करण छपवाने का प्रबन्ध किया, लेकिन इसका नतीजा गुणवत्ता और लागत दोनों ही स्तरों पर संतोषजनक नहीं निकला ।

बहुत सोच-विचार कर इस समूह ने तय किया कि उन्हें खुद के प्रकाशन समूह की ज़रूरत है । अपनी प्रिय धार्मिक पुस्तक का सटीक अनूदित संस्करण निकालने की गोयन्दका की इस इच्छा ने एक विशेष प्रकार के धार्मिक उद्यम को जन्म दिया । गोरखपुर के एक व्यापारी घनश्यामदास जालान गोयन्दका के दूर के रिश्तेदार और

दोस्त थे । उन्होंने प्रेस को अपने शहर गोरखपुर में लगाने का सुझाव दिया और इसे अपने व्यापारिक सहयोगी महावीरप्रसाद पोद्दार के साथ मिलकर चलाने का प्रस्ताव रखा । जालान ने एक छोटा घर किराए पर ले लिया और सभापति मिश्र को इसका एकमात्र कर्मचारी नियुक्त किया, जिनका काम आस-पास के गाँवों और बच्चों के बीच गीता की निःशुल्क प्रतियाँ बाँटना था । पुस्तक की पांडुलिपियाँ कलकत्ता से क्रिस्तों में भेजी जा रही थीं । अप्रैल 1923 आते-आते गीता प्रेस 600 रुपए में खरीदी गई हैंड प्रेस से टीका सहित गीता का पहला अनुवाद छापने के लिए तैयार हो चुका था ।

लेकिन बीसवीं सदी की शुरुआत में तेजी से पैर पसार रहे हिन्दी प्रकाशन जगत के मज़बूत दावेदार के रूप में गीता प्रेस सही मायनों में सन् 1926 में अस्तित्व में आया । धार्मिक ढंग के प्रकाशन समूह के तौर पर इसकी सफलता का बीज गोयन्दका और उनके सहयोगियों की एक धार्मिक पुस्तक के प्रति सदिच्छा ने नहीं बल्कि व्यापक हिन्दू जगत में सुधारकों और रूढ़िवादियों के बीच चली एक तीखी बहस ने बोया था ।

यह मार्च-अप्रैल 1926 में दिल्ली की उमस भरी गर्मी के बीच शुरू हुए मारवाड़ी समुदाय के सर्वाधिक प्रभावशाली संगठन अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के आठवें वार्षिक सम्मलेन का मौक़ा था । इस सम्मलेन में शीर्ष उद्योगपति घनश्यामदास बिड़ला ने आत्माराम खेमका के उन विचारों का पुरजोर खंडन किया जिसमें उन्होंने सनातन हिन्दू धर्म (यह मान्यता रही है कि हिन्दू धर्म का शाश्वत रूप पुरातन काल से अस्तित्व में है) के गुणों का बखान करते हुए उसे भारत की मुक्ति का केन्द्र माना । महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित बिड़ला ने उस सभा में यह कहा कि बेहतर होगा यदि ऐसे विचार सामुदायिक सभाओं में कहने के बजाय ऐसी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँ जो कि इस तरह के विषयों को समर्पित हो । बिड़ला द्वारा की गई इस आकस्मिक टिप्पणी ने धार्मिक प्रकाशन के क्षेत्र में एक नए युग की नींव डाल दी, जिसने आगे चल कर हिन्दूवाद और भारतीय राष्ट्रवाद के तत्कालीन आरम्भिक सम्मिश्रण को मज़बूती दी ।

मारवाड़ी अग्रवाल महासभा की अध्यक्षता बिड़ला के सह-उद्योगपति जमनालाल बजाज ने की, जिसकी स्वागत समिति के सचिव खेमका थे । खेमका का यह भाषण बजाज के अति-प्रगतिशील अध्यक्षीय भाषण का प्रतिवाद था जिसमें उन्होंने मारवाड़ी समुदाय को अपने अन्दर झाँकने और समय के साथ बदलने के लिए कहा । ²बिड़ला की तरह ही गांधीवादी मूल्यों से प्रभावित बजाज ने ऐसे सामाजिक मुद्दों को उठाया जो उनके समुदाय के बाक़ी सदस्यों को असहज करते थे । इसमें अन्तर्जातीय विवाह, शादी-ब्याह में होने वाले बेहिसाब खर्च, बाल विवाह, वित्तीय अटकलबाजी और मारवाड़ी महिलाओं से उनके पारम्परिक कपड़े व गहने छोड़ने के लिए दबाव बनाना आदि मुद्दे शामिल थे । अपने भाषण में उन्होंने मारवाड़ियों के व्यापारिक तौर-तरीकों और व्यापक समाज के लिए उनके ग़ैर-ज़िम्मेदाराना रवैये पर सवाल उठाए ।

खेमका की प्रतिक्रिया ने शाश्वत 'भारतीय' संस्कृति के निर्माण में पारम्परिक हिन्दू मूल्यों की प्रासंगिकता पर ज़ोर दिया। बहुत जल्द यह बात सामने आई कि खेमका का यह भाषण बिड़ला के युवा दिनों के दोस्त और रोड्डा आर्म्स षड्यंत्र के सहभागी हनुमानप्रसाद पोद्दार ने लिखा था। बॉम्बे के मारवाड़ी जगत में तेजी से उभर रहे पोद्दार उस समय सन् 1915 में हिन्दू हितों की रक्षा के लिए हरिद्वार कुंभ मेले में स्थापित की गई हिन्दू महासभा और गांधी, दोनों के साथ समान रूप से सहज थे। लगातार मिलने वाली व्यापारिक असफलताओं ने भी उनकी छवि खराब नहीं की जबकि वे एक ऐसे समुदाय से आते थे जहाँ व्यापार ही सबकुछ था।

पोद्दार ने *गीता*, *रामायण* व अन्य धर्म ग्रन्थों पर सत्संग के माध्यम से एक धार्मिक व्यक्ति की छवि गढ़ ली। पहले कलकत्ता और फिर बॉम्बे में जयदयाल गोयन्दका (जो उनके दूर के रिश्ते के भाई थे) से मिलने के बाद पोद्दार ने उन्हें अपना मार्गदर्शक मानना शुरू किया और उनकी सलाह मानते हुए धार्मिक कर्मकाण्ड और हिन्दू धर्म ग्रन्थों को पूरी तरह अपनी दुनिया बनाकर पूर्णकालिक कथावाचक बन गए। इस दौरान वे अपनी मातृसंस्था हिन्दू महासभा से जुड़े रहे जिसने उन्हें कट्टर हिन्दू राष्ट्रवादी बनाया था।

पोद्दार की मान्यताओं ने *कल्याण* पत्रिका की विषयवस्तु और उसके स्वरूप को प्रभावित किया। इसको गोयन्दका और मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के वरिष्ठ सदस्यों ने बिड़ला की चुनौती को सच करने के अवसर के रूप में लिया। इस तरह तीन साल के अंतराल पर ही दो बड़ी संस्थाएँ अस्तित्व में आ गईं। सन् 1923 में *गीता* प्रेस नाम का प्रकाशन समूह और सन् 1926 में *कल्याण* नामक मासिक पत्रिका, दोनों ही कलकत्ता स्थित और गोयन्दका द्वारा चलाए जा रहे गोबिंद भवन कार्यालय के पूर्ण नियन्त्रण में थीं।

गीता प्रेस/ *कल्याण* की स्थापना और सफलता को तीन विशिष्ट किन्तु परस्पर जुड़े हुए कारकों के माध्यम से समझा जा सकता है। पहला, उन्नीसवीं सदी के अन्त व बीसवीं सदी की शुरुआत में हिन्दुओं की भाषा के रूप में हिन्दी की मज़बूत स्थिति तथा इसके जनक्षेत्र का तेज़ विस्तार, जिसमें पत्रिकाओं, अखबारों, प्रकाशन समूहों व सार्वजनिक हस्तियों ने अहम भूमिका अदा की। इसके साथ-साथ औपनिवेशिक राज्य की भी भूमिका थी जो गुप्तचरों की विस्तृत मशीनरी और सख्त क़ानूनों के माध्यम से पैनी निगाह रख रहा था।³ दूसरा, *गीता* प्रेस/ *कल्याण* एक मारवाड़ी उद्यम था जो बाक़ी उद्यमों से थोड़ा अलग था जहाँ मुनाफ़ा ही सबकुछ नहीं था। यहाँ सनातन हिन्दू धर्म की रक्षा का धार्मिक सेवाभाव सर्वोपरि था, हालाँकि इसकी अवधारणा अस्पष्ट थी। अपनी महत्वाकांक्षा के मामले में यह एक ऐसा विशाल उद्यम था जैसा हिन्दी साहित्यिक जगत ने अब तक न देखा था और न भविष्य में देखने की कोई उम्मीद थी।

तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण कारण यह कि 1920 का दशक हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच राजनीतिक साम्प्रदायिकता की होड़ का समय था। राष्ट्रवाद की पूरी बहस धार्मिक फूट और गो-रक्षा के नाम पर संयुक्त प्रान्त और बिहार में

सिलसिलेवार हुए साम्प्रदायिक दंगों की वजह से दूषित हो चुकी थी। पंडित मदनमोहन मालवीय (हिन्दू महासभा के संस्थापक), पुरुषोत्तमदास टंडन, के एम मुँशी, सेठ गोविन्ददास आदि कांग्रेस के नेता कांग्रेस की राजनीति से उत्साहित नहीं थे और उन्होंने गीता प्रेस/ *कल्याण* उद्यम को समर्थन प्रदान किया। बनारस में सन् 1923 में आर्य समाज और सनातन धर्म के मालवीय जैसे नेताओं ने एकजुट होने का निर्णय लिया। इसके अलावा इन दोनों ने हिन्दू धर्म में शुद्धिकरण और गो-रक्षा जैसे मुद्दों पर साझे हित निर्धारित किए। इस साझेदारी ने गीता प्रेस/ *कल्याण* जैसे पुरातनपन्थी हिन्दू समूहों को बल प्रदान किया।⁴

मालवीय और पोद्दार के सम्बन्ध *कल्याण* के अस्तित्व में आने के पहले से बने हुए थे। मदनमोहन मालवीय द्वारा सन् 1916 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। कलकत्ता के युवा व्यापारी पोद्दार ने कई ऐसी सभाओं का आयोजन किया जहाँ मालवीय ने आकर भाषण दिए और विश्वविद्यालय के लिए चंदा इकट्ठा किया। आगामी वर्षों में गीता प्रेस पर मालवीय का बहुत प्रभाव पड़ा। साम्प्रदायिकता भरे सन् 1940 से 1947 के समय में मालवीय ने गीता प्रेस को काफ़ी सामग्री उपलब्ध कराई। नागपुर में सन् 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना ने रही-सही कमी भी पूरी कर दी। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ गीता प्रेस बाद में करीबी रूप से जुड़ गया और इस गठबंधन से वह समग्र परिदृश्य पूरा हुआ जिसमें *कल्याण* ने अपने पाँव मज़बूती से जमा लिए। इस तरह 1920 के दशक की किसी भी अन्य पत्रिका की तुलना में यह पत्रिका अधिक सफल रही।

हिन्दी का उदय

उन्नीसवीं सदी के मध्य से ही मुख्यतः साम्प्रदायिक आधार पर छिड़ी तीखी लड़ाइयों के बाद बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में हिन्दी को उर्दू, हिन्दुस्तानी और फ़ारसी भाषा पर बढ़त हासिल हो गई। बनारस के भारतेन्दु हरिश्चंद्र (लेखक, कवि, प्रकाशक, आलोचक और भाषा सुधारक) हिन्दी के लिए चल रहे भाषा सुधार आंदोलन के अग्रदूत बने। आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक कहे जाने वाले भारतेन्दु ने अपने लेखन की शुरुआत उर्दू लेखक के रूप में की थी और सन् 1871 तक उर्दू में लिखते रहे और उसे अग्रवाल घराने की अपनी पश्चिमी शाखा की भाषा ही मानते रहे।⁵ लेकिन जैसे ही भाषा का मुद्दा धार्मिक विवादों में उलझकर गहराया, उन्होंने अपनी पक्षधरता बदल दी। सन् 1877 में हिन्दी वर्धिनी सभा, इलाहाबाद की उद्घाटन बैठक में भारतेन्दु के 98 छंदों वाले भाषण '*हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान*' ने हिन्दी भाषा आंदोलन के अग्रदूत के रूप में उनकी पक्षधरता को स्थापित कर दिया। भारतेन्दु के पीछे-पीछे और भी बहुत से विवाद उर्दू के खिलाफ़ चल निकले लेकिन तब तक अपनी कोशिशों का नतीजा देखने के लिए वे जीवित नहीं थे। उनकी मृत्यु सन् 1885 में 35 वर्ष की अवस्था में ही हो गई। सन् 1893 में बनारस में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि की वकालत करने वाली

सबसे प्रभावी संस्था नागरी प्रचारिणी सभा स्थापित हुई और सन् 1910 में इलाहाबाद में कमोबेश ऐसे ही उद्देश्य के साथ हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना भी हुई ।

नागरी प्रचारिणी सभा ने नागरी लिपि को जन-जन तक पहुँचाने के लिए *नागरी प्रचारिणी पत्रिका* और सन् 1900 में स्थापित साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' का सहारा लिया । सन् 1897 में मदनमोहन मालवीय ने उत्तर-पश्चिम प्रांतों और अवध के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एंटनी मैकडोनेल के समक्ष नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से 60,000 हस्ताक्षर वाली एक याचिका प्रस्तुत की, जिसमें *कचहरी की भाषा और उत्तर-पश्चिम प्रांतों और अवध में प्राथमिक शिक्षा में हिन्दी के प्रयोग* का प्रस्ताव था । तब इस याचिका के जवाब में कोई निर्णय नहीं लिया गया था । ⁶ऐसे में सन् 1900 में मैकडोनेल द्वारा नागरी लिपि को कचहरी की भाषा के रूप में इस्तेमाल करने का फैसला चौंकाने वाला था । इस पूरी लड़ाई में हिन्दी को बहुत आसान जीत हासिल हुई । इस शिकस्त से उर्दू कभी उबर नहीं पाई । हिन्दी हिन्दुओं के लिए और उर्दू मुसलमानों के लिए ⁷जैसा बंटवारा लगभग सफल हो गया और भारतेन्दु की प्रसिद्ध पंक्ति 'निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल' चरितार्थ हो गई । ⁸

सन् 1900 के इस 'मैकडोनेल निर्णय' ⁹ने दो विशिष्ट भाषाओं को 'हिन्दी' और 'उर्दू' के रूप में आधिकारिक मान्यता दे दी जिसने हिन्दी के लिए नई सम्भावनाएँ खोल दीं । ¹⁰कचहरी की भाषा के तौर पर फ़ारसी के साथ नागरी लिपि को इस्तेमाल करने के फैसले ने भाषाई विवाद को निर्णायक मोड़ दे दिया । बीसवीं सदी के दूसरे दशक तक आते-आते हिन्दी की स्थिति मज़बूत हो गई और उसने सामान्यतः हिन्दीभाषी क्षेत्र कहे जाने वाले मौजूदा उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में अपने पांव जमा लिए । हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता का केन्द्र कलकत्ता से खिसक कर उत्तर प्रांत (मौजूदा उत्तर प्रदेश) हो गया । विशेष तौर पर, सन् 1905 का बंगाल विभाजन भी इसका कारण रहा ।

हिन्दी जिसके बारे में ऐसा दावा रहा कि उसका अपना अतीत भारत में मुस्लिम शासन के समय से भी प्राचीन था, उसके लिए 1870 के दशक से 1920 के दशक का समय गहरे मंथन का दौर था । फिर चाहे वह व्याकरण की बात हो, वाक्य-विन्यास या फिर किसी बोली को चुनने की । इस दौर में खड़ी बोली प्रमुख बोली के रूप में उभरी जिसका बड़े पैमाने पर लेखकों, कवियों और टिप्पणीकारों ने प्रयोग किया । इसके साथ ही वह संपूर्ण हिन्दीभाषी क्षेत्र के साथ-साथ विशेष तौर पर बनारस और इलाहाबाद की पत्रिकाओं में खूब प्रयुक्त हुई । ये जगहें अध्ययन का केन्द्र थीं । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने लेखकों, कवियों, पत्रकारों और राजनेताओं की एक पूरी पीढ़ी को तैयार किया ।

सन् 1902 में *सरस्वती* पत्रिका का कार्यभार इंडियन प्रेस के चिंतामणि घोष ने संभाल लिया जो कलकत्ता में रवीन्द्रनाथ टैगोर के प्रकाशक थे । पत्रिका के निर्वर्तमान

संपादक बाबू श्यामसुन्दर दास ने सुझाव दिया कि महावीरप्रसाद द्विवेदी उनकी जगह लेंगे। द्विवेदी एक समय रेलवे के क्लर्क, सिग्नल देने वाले कर्मचारी और बाद में यातायात विभाग के क्लर्क भी हुए। उन्होंने ज्यादातर पठन-पाठन खुद ही किया था। महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा *सरस्वती* पत्रिका को बतौर संपादक दिए गए 17 वर्षों को 'द्विवेदी युग' कहा गया जिस दौरान सफलतापूर्वक हिन्दी भाषा के व्याकरण को निखारा और परिष्कृत किया गया। ¹¹ हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने के पक्षधर द्विवेदी चाहते थे कि स्थानीय भाषाएँ स्थानीय स्तर पर बढ़ें और इन भाषाओं से साहित्यिक रचनाओं को हिन्दी में अनूदित किया जाता रहे। ¹²

सामाजिक सुधार, वैज्ञानिक प्रयोग, इतिहास, नैतिक शिक्षा, महिलाओं की भूमिका, साहित्यिक आलोचना और अनुवाद के माध्यम से 'बड़े पैमाने पर हिन्दी पत्रकारिता को व्यापक रूप देने' की कोशिश में केवल *सरस्वती* ही नहीं थी ¹³ बल्कि लखनऊ के शीर्ष प्रकाशन समूह नवल किशोर प्रेस द्वारा सन् 1921 से निकाली जा रही *माधुरी* जैसी अन्य पत्रिकाएँ भी सार्थक प्रयास कर रही थीं। *माधुरी* अपने प्रसार, उद्देश्य और डिज़ाइन में *सरस्वती* जैसी ही थी। रूपनारायण पाण्डेय और दुलारेलाल भार्गव के संपादन में निकलने वाली इस पत्रिका ने भी *सरस्वती* जैसा ही साहित्यिक आधार बनाया।

1920 के दशक के बाद का समय हिन्दी जनदायरे में फ़ारसी और उर्दू के दबाव से मुक्त हिन्दी की मांग करने वाली पत्रिकाओं की बहुतायत का था। तत्कालीन सभी ने अपने अपरिपक्व उत्साह में राष्ट्रवाद की अपनी परिभाषा प्रस्तुत की जो नितांत अगंभीर और हिन्दू राष्ट्रवाद से गहरे प्रभावित थी। इसमें अक्सर हिन्दू राष्ट्रवाद घुला-मिला रहता था। हिन्दी ने स्वतन्त्रता पूर्व व पश्चात के समय में राष्ट्रीय पहचान बना ली। ¹⁴ यह भाषा, पहचान व राष्ट्रीयता के गहन घालमेल का दौर था।

इनमें से कुछ पत्रिकाओं को बड़े प्रकाशन समूहों का समर्थन प्राप्त था, जिसकी वजह से इनके लम्बे समय तक टिकने के आसार थे। वहीं बाक़ी पत्रिकाएँ अपने जुनूनी उत्साह के बल पर टिकी हुई थीं, जिसमें हिन्दी के प्रति प्रेम और प्रिंट की शक्ति दोनों शामिल थे। आने वाले समय में उनमें से तीन— *चाँद* (1922), *मतवाला* (1923) और *हिन्दू पंच* (1925) का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से *कल्याण* पर प्रभाव पड़ा।

रामरख सहगल के संपादन में निकलने वाली महिलाओं को समर्पित *चाँद* पत्रिका ने अपने प्रसार में वृद्धि के लिए एक नायाब तरीक़ा निकाला जिसके तहत उन्होंने *फ़ांसी अंक*, *वेश्या अंक*, *मारवाड़ी अंक*, *कायस्थ अंक*, *अछूत अंक* और *साहित्य अंक* नाम से छह विशेषांक निकाले। इनमें से अधिकतर अंक 15,000 प्रतियों की बिक्री दर के साथ व्यावसायिक स्तर पर सफल हुए। यह पत्रिका अश्लील कहानियों और उथले एवं निजी क्रिस्म के हमलों का सहारा ले रही थी और इसमें छपने वाली सामग्री ने *साहित्य अंक* के अतिथि संपादक प्रेमचंद और *विशाल भारत* के संपादक व हिन्दी साहित्यिक जगत के स्वघोषित चेतना रक्षक बनारसीदास चतुर्वेदी के कान खड़े कर दिए। इस तरह के

साहित्य के संदर्भ में अगर यह भी कह दिया जाये कि यह सब सामाजिक सच्चाई को सामने रखने के लिए किया जा रहा था तो भी हिन्दी का प्रबुद्ध वर्ग इस तरह के सार्वजनिक प्रदर्शन का पक्षधर नहीं था। प्रेमचंद को विशेषकर सन् 1927 के चाँद के मारवाड़ी अंक ने क्रोधित किया, जिसमें मारवाड़ी महिलाओं को असंयमी और कामातुर चित्रित किया गया था। इसमें पुरुषों का भी तक्ररीबन ऐसा ही चित्रण हुआ था। मारवाड़ी समुदाय ने तत्काल सहगल के खिलाफ अभियोग चलाया, लेकिन तब तक नुकसान हो चुका था। मारवाड़ी अंक में वर्तमान में कलकत्ता स्थित गोबिंद भवन के भीतर के कुख्यात सेक्स स्कैंडल को भी उछाला गया था जिसकी वजह से कल्याण ने मारवाड़ी अंक की सहमी-सी आलोचना की।

हिन्दू पंच की रणनीति कुछ अलग थी। इसका मूल स्वर उत्तेजक था और भाषा तथा विषयवस्तु के मामले में इसमें रूखापन था। यह पत्रिका विवादों को खुलकर लेकिन बेहद चालाकी के साथ न्योता देती थी। एक ऐसी साप्ताहिक पत्रिका के बारे में और क्या कहा जा सकता है जिसने आरम्भ में ही मुखपृष्ठ पर अपने पांच लक्ष्य ज़ाहिर कर दिए थे, जिनमें हिन्दू संगठन, शुद्धि संस्कार, अछूतोद्धार, समाज सुधार और हिन्दी प्रचार शामिल थे। यही नहीं जिसके मुखपृष्ठ पर ही उसका हिन्दुओं के सम्मान को पुनः हासिल करने का लक्ष्य खुल कर लिखा गया था, 'लज्जा रखने को हिन्दू की, हिन्दू नाम बचाने को, आया हिन्दू पंच हिन्द में, हिन्दू जाति जगाने को।'।

हिन्दू पंच का यह दावा था कि वह हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए कार्यरत है। ¹⁵ लेकिन अगर सावरकर भाइयों में सबसे बड़े गणेश दामोदर सावरकर द्वारा समय-समय पर लिखे गए सनातन हिन्दू धर्म के गुणों का बखान करने वाले कुछ लेखों को छोड़ दिया जाये तो हिन्दू धर्म रक्षा का उनका यह तर्क बहुत सटीक नहीं बैठता है। ¹⁶ जबकि इस कार्य को गीता प्रेस और कल्याण ने बेहतर ढंग से अंजाम दिया। हिन्दू पंच मुख्यतः मुसलमानों के आक्रमण और हिन्दू कन्याओं, विधवाओं पर उनके जुल्मों की दास्तान से भरा रहता था। इसके अलावा उसमें 'चोटी बनाम दाढ़ी' जैसे अत्यन्त आपत्तिजनक स्तंभों की भरमार रहती थी। इसमें मुसलमानों पर कटाक्ष का स्वर अधिक होता था और तथाकथित तौर पर उनके द्वारा हिन्दुओं, खासकर हिन्दू महिलाओं के साथ किए गए कृत्यों को जगह दी जाती थी। जहाँ एक तरफ हिन्दू पंच ने भगवान कृष्ण (6 सितंबर 1928), भगवान राम (29 मार्च 1928), विजयादशमी (28 दिसंबर 1926) और हिन्दू महासभा (12 अप्रैल 1928) जैसे विषयों पर विशेषांक निकाले, वहीं उसने कांग्रेस (30 दिसंबर 1926) के नाम पर भी विशेषांक निकाला, जो स्वयं को संतुलित दिखाने का एक चालाकी भरा क़दम था। दो साल बाद हिन्दू पंच ने सितंबर, 1928 के संपादकीय में कार्यालय का दौरा करने के लिए जवाहरलाल नेहरू के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया और उन्हें 'आदर्शवीर' कह कर सम्बोधित किया। इस तरह नेहरू को यह याद दिलाया गया, 'सम्प्रदाय से बड़ा राष्ट्र का दायरा है और राष्ट्र से बड़ा विश्व मानवता का दायरा है...आप उसी विश्व मानवता के दायरे में रहने वाले हैं।' ¹⁷

मारवाड़ी उदारता

मारवाड़ियों के सभी प्रकार के इतिहास में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के बाद निबंधकार, पत्रकार और एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार बालमुकुन्द गुप्त का नाम गौरव के साथ लिया जाता है। भारतेन्दु की तरह ही गुप्त की भी मृत्यु युवावस्था में हो गई थी। मृत्यु के समय वे 42 वर्ष के थे। जोशीले और तेज़-तर्रार स्वभाव वाले गुप्त ने अपने समुदाय तक को नहीं बरखशा। जब उन्हें यह पता चला कि कलकत्ता के मारवाड़ियों ने अपने लड़कों को अंग्रेज़ी, हिन्दी और संस्कृत में शिक्षा देने के लिए एक स्कूल खोला है तो उन्होंने अपने संपादन में कलकत्ता से निकलने वाली पत्रिका *भारतमित्र* में शिवशम्भू शर्मा के छद्म नाम से अपने समुदाय पर प्रहार करते हुए उन्हें 'शिक्षा के नज़दीक' न आने को चेताया। उन्होंने कहा, इससे ज़्यादा अच्छा होता अगर वे उस ऊंट की पूजा करते जो उन्हें कलकत्ता तक लेकर आया था। उससे भी अच्छा होता अगर वे एक ऊंट यहाँ के चिड़ियाघर के लिए ले आते क्योंकि यहाँ एक भी नहीं है। उन्होंने लिखा, 'तुममें से कितनों ही के पास जो धन है वह तुमने अपने परिश्रम या बुद्धि के जोड़-तोड़ से कमाया है, विद्या के बाप का उसमें भी कुछ सहारा नहीं लगा। जो लोग तुम्हारे धन-वैभव को देख नहीं सकते वही तुम्हारे कान में आकर विद्या-विद्या पुकारते हैं। विद्या किस काम की चीज़ है? वह न ओढ़ने की है, न बिछाने की और न खाने की। यदि तुम्हारे पास रुपया होगा तो सैकड़ों विद्वान तुम्हारे पास आकर टक्करें मारेंगे। तुम्हारे गंड मूर्ख होने पर भी तुम्हें झुक कर सात-सात सलाम करेंगे। तुम्हारी भद्दी मुहरमी शक्ल को भी अच्छा बतावेंगे... बिना विद्या ही तुम राजा हो गए, रायबहादुर हो गए, और न जाने अभी तुम्हारे भाग्य में क्या-क्या होना लिखा है।' ¹⁸

गुप्त का यह बयान उस समय आया जब उप-जातियों और राजस्थान तक जाने वाले गाँवों के विस्तृत किन्तु जटिल नेटवर्क के ज़रिए काम करने वाले मारवाड़ी भारत में व्यापारिक समुदाय के रूप में शीर्ष स्थान हासिल कर चुके थे। और अब वे व्यापक सामाजिक स्वीकार्यता और व्यापार में अपनी बढ़ती पैठ के साथ क़दम बढ़ाने की चाह रख रहे थे। इस वैश्य या व्यापारी समुदाय के लिए शिक्षा व सामाजिक प्रतिष्ठा की खोज एक बड़ी छलांग थी।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में भारतीय पूंजीवाद की वृद्धि में मारवाड़ी प्रभुत्व के फलस्वरूप दो महत्वपूर्ण किन्तु परस्पर विरोधी घटनाएँ हुईं। ¹⁹ एक तो यह कि बड़े पैमाने पर यह समुदाय जलन व ईर्ष्या के केन्द्र में आ गया और आत्मप्रशंसा की प्रवृत्ति ने इन्हें यूरोप के यहूदियों की तरह उपहास और आलोचना का पात्र बना दिया। दूसरे, यह कि मारवाड़ी स्वयं अजीब तरह से पहचान के संकट में उलझ गए। यह ऐसा समुदाय था जो आर्थिक रूप से सशक्त था लेकिन उनका सामाजिक स्तर इस आर्थिक स्तर के अनुरूप नहीं था। उनका सामान्य रहन-सहन यूँ भी उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने में मददगार साबित नहीं हुआ। हालाँकि पूरे

उत्तर भारत में भू-स्वामियों के पतन और बीसवीं सदी की शुरुआत की समग्र आर्थिक स्थिति ने मारवाड़ियों को सामाजिक रूप से अहम स्थान पर ला खड़ा किया। इस प्रक्रिया को लुटगेनडोर्फ़ ने 'उर्ध्वगामी गतिशीलता' का नाम दिया है जिसके चलते वैश्य नए क्षत्रिय बन गए। गाँवों पर उनका स्वामित्व हो गया और उन्होंने राजा जैसे क्षत्रिय सम्बोधनों वाले नाम भी रख लिए। उदाहरण के तौर पर, टिंबर्ग रेखांकित करते हैं कि कहा जाता है, जबलपुर के सेवाराम खुशलचंद के यहाँ बैंकिंग फर्म सम्भालने वाले राजा गोकुलदास ने 158 गाँवों को खरीद लिया था: 'इनमें से अधिकांश ज़मीन कर चुकता न कर पाने के बदले में जबरन बेची गई थी।' ²⁰ प्रायः अति संपन्न मारवाड़ी लोग इस तरह अधिग्रहित भूमि को धार्मिक व सामाजिक कार्यों के लिए दान दे दिया करते थे।

मारवाड़ियों की उदारता ने उनके सामाजिक रुतबे को बढ़ाने में योगदान तो दिया लेकिन इसके साथ तनाव के कुछ अंश भी जुड़े थे। बहुत ही साधारण जीवन शैली वाले मारवाड़ियों के इर्द-गिर्द उनका सार्वजनिक व्यक्तित्व गढ़ा जाने लगा जो पूरी तरह से सामाजिक और धार्मिक क्रिस्म की उदार परोपकारिता पर निर्भर था। जैसा कि लुटगेनडोर्फ़ कहते हैं, 'व्यापारियों ने पहचान के ऐसे संकट का सामना किया जिसमें हिन्दू समाज के उर्ध्वगामी सामाजिक महत्वाकांक्षाओं और उनके निम्नस्तरीय सामाजिक स्तर के परस्पर तनाव की झलक दिखाई देती थी। और इस काल की विशेष परिस्थितियों में, नई पहचान की दावेदारियों के लिए इन ताकतों की अन्योन्यक्रिया राष्ट्रवादी और धार्मिक पुनरुत्थान, दोनों को ही सुलगाने में मददगार बनी।' ²¹

सामाजिक अस्मिता की खोज में केवल मारवाड़ी ही नहीं लगे थे बल्कि अहीर-यादव और कुर्मियों जैसी मध्यवर्ती जातियों ने भी आर्य समाज और रामानंदियों के प्रभाव में आकर स्वयं को क्षत्रिय दर्जा देने की मांग की। उन्होंने जनेऊ पहनना शुरू कर दिया और जाति आधारित संस्थाओं की स्थापना शुरू की जैसे हरियाणा स्थित अहीर-यादव क्षत्रिय महासभा (1910) और बिहार स्थित गोप जातीय महासभा (1912)। रामानंदियों की सहायता से अपनी पहचान राम और कृष्ण की वंशावली में तलाश रहे कुर्मियों ने कुर्मी सभा और अखिल भारतीय कुर्मी क्षत्रिय महासभा (1910) की स्थापना की। ²²

उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के आरम्भ में परंपरागत रूप से गो-पूजक यादवों ने गो-रक्षक आंदोलन और गो-रक्षिणी सभाओं के गठन में सक्रिय भूमिका निभाई। हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक कलहों के कारण 'गाय' रोजमर्रा की राजनैतिक बहस का हिस्सा बन चुकी थी। बहुत-सी सनातन हिन्दू धर्म सभाएँ गो-हत्या पर पूर्ण प्रतिबंध की मांग रख चुकी थीं। सन् 1870 से बीसवीं सदी की शुरुआत तक तथाकथित तौर पर मुसलमानों द्वारा गो-मांस खाने के मुद्दों के कारण लगातार कई साम्प्रदायिक दंगे हो चुके थे, जिन्होंने इन दोनों समुदायों के ध्रुवीकरण को और मज़बूत किया।

आर्थिक रूप से सशक्त मारवाड़ी गो-रक्षिणी सभाओं को आर्थिक सहायता देने में सबसे आगे थे, तो वहीं यादवों ने दंगों के समय पर मैदान संभाला। गो-रक्षा गीता प्रेस का एक स्पष्ट और महत्वपूर्ण लक्ष्य था जिसके लिए उसने *कल्याण* के दो अंक निकाले — *गो अंक* और *गो सेवा अंक*। इसके अलावा भी अन्य अंकों में गाय सम्बन्धित अनगिनत लेख होते थे। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी और करपात्री महाराज के साथ पोद्दार भी उन लोगों में शामिल थे जिन्होंने सन् 1947 के बाद कसाईबाड़े बंद करवाने का काम किया था। पोद्दार 7 नवंबर 1966 को संसद के बाहर होने वाले धरने में शामिल थे जिसे जनसंघ, आरएसएस, हिन्दू महासभा, अन्य सनातन धर्म के संगठनों और साधु-संन्यासियों ने मिलकर बड़े पैमाने पर आयोजित किया था।

सामाजिक रूप से स्वयं को स्थापित करने के लिए मारवाड़ियों ने सनातन हिन्दू धर्म के मुख्य पक्ष गो-रक्षा आंदोलनों का ही सहारा नहीं लिया बल्कि उन्होंने मंदिर बनवाने, अस्पताल खोलने के अलावा *रामचरितमानस* के पाठ आयोजित करने का काम भी किया। ‘*अग्रवाल जाति का इतिहास*’ ²³ में धनी मारवाड़ियों द्वारा किए गए सैकड़ों उपकारों की सूची दी गई है। लेखकों के अनुसार तेरह पृष्ठ लंबी यह सूची मात्र उदाहरण भर है और उपकारों की पूरी सूची दे पाना असंभव है। इस पुस्तक में प्रिंट तकनीक के उपयोग के माध्यम से सनातन धर्म को आगे बढ़ाने और समाज की कुरीतियों को उजागर करने में मारवाड़ियों की परोपकारी भूमिका का भी उल्लेख है। इसके लेखकों की दृष्टि में हिन्दू धर्म को बचाने का एकमात्र उपाय था, सनातन धर्म के उन मूल्यों और सिद्धांतों का पालन करना जो स्वर्णिम अतीत में मौजूद रहे हैं, किन्तु वे आज के इस ‘अंधकार युग’ में खत्म हो गए हैं। बाक़ी मारवाड़ी इतिहासों ²⁴ की तरह ही इस पुस्तक में भी गीता प्रेस के संस्थापक जयदयाल गोयन्दका और हनुमानप्रसाद पोद्दार का भरपूर ज़िक्र है।

सनातन धर्म की डूबती हुई नैया को बचाने और फिर मज़बूती देने की दृष्टि से प्रिंट उद्यम के तौर पर *कल्याण* और गीता प्रेस सबसे ज़्यादा सफल प्रिंट माध्यम रहे थे, किन्तु इस किस्म की पहल और इससे जुड़े लक्ष्य दोनों ही नए नहीं थे। बॉम्बे में रहने वाले दो भाई गंगाविष्णु बजाज और खेमराज कृष्णदास बजाज (जो मूलतः चूरू से थे) मुद्रण को व्यवसाय के रूप में चुनने और हिन्दू धार्मिक पुस्तकों का प्रकाशन करने वाले शुरुआती मारवाड़ियों में से थे। सन् 1871 में इन दोनों भाइयों ने बॉम्बे के मोती बाज़ार क्षेत्र में श्री वेंकटेश्वर प्रेस शुरू किया। एक कमरे में शुरू किए इस प्रेस को वे सन् 1880 तक आते-आते खेतवाड़ी जैसी बड़ी जगह तक ले गए और तब इन्होंने औपचारिक रूप से श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस ²⁵ की शुरुआत की। *हनुमान चालीसा* और *विष्णु सहस्रनाम* इस प्रेस से सबसे पहले छप कर आए। और अगले कुछ ही सालों में इसने तक्ररीबन सभी बड़े महत्वपूर्ण धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विषयों से जुड़ी 2800 पुस्तकें प्रकाशित कीं। सन् 1896 में इन बंधुओं ने *वेंकटेश्वर समाचार* की शुरुआत की। यह एक ऐसा साप्ताहिक था जो बीसवीं सदी की पहली

तिमाही में व्याप्त राष्ट्रीय आंदोलन के तीव्र दौर में भी गैर-राजनैतिक बना रहा और किसी भी तरह के विवादों से परे होकर स्वतंत्र चलता रहा। ²⁶ जैसा कि हम आगे देखेंगे, वेंकटेश्वर प्रेस ने ही गीता प्रेस के *कल्याण* के शुरुआती तेरह अंक प्रकाशित किए।

सन् 1889 में अजमेर से साप्ताहिक पत्रिका *राजस्थान समाचार* की शुरुआत हुई जिसका वित्त प्रबंधन मारवाड़ी व्यापारी समर्थनदास ने किया। इसका प्रत्यक्ष लक्ष्य आर्य समाज का मुखपत्र बनना और स्वामी दयानंद सरस्वती की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार करना था। सन् 1912 तक आते-आते यह साप्ताहिक से दैनिक हो गया और सनातन हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार करने के लिए इसने आर्य समाज की शिक्षाओं से भी किनारा कर लिया। *भारतमित्र* के संपादक बालमुकुंद गुप्त ने अखबार की दृष्टि में आए इस बदलाव की कई बार कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा कि *राजस्थान समाचार* में सामाजिक सुधारवादियों तक के आलेख छपने बंद हो गए हैं। गुप्त ने इस बड़े बदलाव के लिए सनातन धर्म के बड़े पैरोकार भारत धर्म महामंडल को दोषी ठहराया। ²⁷

इसके अलावा *मारवाड़ी गैजेट* (1890) जैसे कलकत्ता आधारित पाक्षिक भी अस्तित्व में थे जिसने सामान्य तौर पर राजस्थान और विशेषकर मारवाड़ी जगत की समस्याओं को उजागर किया। इसका पूरा ध्यान मारवाड़ियों की शिक्षा, सामाजिक व धार्मिक एकजुटता और समुदाय के भीतर पनप रहे व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति पर सामाजिक नियन्त्रण लगाना था। हिन्दुओं में प्रचलित विदेश यात्रा के प्रति झिझक के विपरीत *मारवाड़ी गैजेट* ने सन् 1897 में खेतड़ी के राजा की विदेश यात्रा के प्रारंभिक प्रयास को उत्सव की तरह मनाया, 'राजा की विदेश यात्रा एक ऐसा साहसिक कार्य है जो विकास के नए द्वार खोलेगा।' ²⁸

अभी तक अधिकांश प्रकाशन समूह या तो लोकहित को ध्यान में रख कर चलाए जा रहे थे या फिर धनी मारवाड़ियों के व्यावसायिक प्रयत्नों के फलस्वरूप अस्तित्व में आए थे। ये ठीक उस दौर से पहले की बात है जब इस समुदाय ने सहज मारवाड़ी जीवन शैली से विचलित हो रही नई पीढ़ी में सुधार करने का लक्ष्य रखते हुए पत्रिकाएँ निकालनी शुरू कीं। इस अपेक्षित सुधार को वे सनातन धर्म के आदर्शों के प्रचार से ही प्राप्त कर सकते थे। इस तरह की पहल से मारवाड़ियों ने आभिजात्य व धनाढ्य वर्ग को धार्मिक सुरक्षा प्रदान करने वाले वर्ग के स्थान से पदस्थापित कर दिया और 'क्षत्रिय-ब्राह्मण के हिन्दू ताने-बाने' को बदल कर रख दिया। यह 'क्षत्रिय-ब्राह्मण' समीकरण बदल कर 'वैश्य-ब्राह्मण' हो गया जिसने आगे चल कर 'हिन्दुओं के मारवाड़ीकरण' का रूप ले लिया। ²⁹

इस तरह की एक पहल बिहार के आरा में *मारवाड़ी सुधार* नाम से हुई। नवरंग लाल तुलसियान, हरिद्वार प्रसाद जालान, दुर्गा प्रसाद पोद्दार के प्रयासों से सन् 1921 में इसकी शुरुआत हुई। *मारवाड़ी सुधार* के संपादक एक गैर-मारवाड़ी, शिवपूजन सहाय थे, जो उस समय के हिन्दी जगत के सबसे कद्दावर लेखकों में से एक थे। यह सहाय

का संपादन ही था जिसने एक मारवाड़ी केन्द्रित पत्रिका को हिन्दी पत्रकारिता की गंभीर आवाज़ बना दिया। कलकत्ता के बालकृष्ण प्रेस से छपने वाली इस पत्रिका ने हिन्दी जगत के अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामचरित उपाध्याय, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', रामनरेश त्रिपाठी, भगवतीचरण वर्मा और वियोगी हरि जैसे बड़े और प्रसिद्ध नामों को अपनी ओर आकर्षित किया। पत्रिका के अस्तित्व में आने के बाद लगभग दो साल से भी ज़्यादा समय तक सहाय ने संपादकीय आज़ादी को बचाए रखा। इस दौरान कई बार मारवाड़ियों की ओर से अधिकचरे लेख भी प्रकाशन हेतु आते रहे क्योंकि वे यह मान लेते थे कि उनके समुदाय की पत्रिका होने के कारण यह उनका अधिकार है। बिना किसी तकरार के सहाय इन योगदानों को लेने से इनकार कर दिया करते थे। बतौर संपादक उनकी स्वायत्तता पहले अंक से ही बरकरार थी जहाँ संपादकीय टिप्पणी में उन्होंने लिखा था, 'क्योंकि मारवाड़ियों को विद्या से बहुत कम अनुराग है, यदि उसका (व्यवसाय का) कुछ हिस्सा भी विद्योपार्जन और शिक्षा प्रेम में खर्च होता तो वे आज भारत की डगमगाती नैया के कुशल कर्णधार हो सकते थे।' ³⁰

शिवपूजन सहाय की इस स्पष्टवादिता ने उन्हें हिन्दी के बैजनाथ प्रसाद देवरा और श्यामलाल देवरा जैसे प्रमुख मारवाड़ी लेखकों के निशाने पर ला खड़ा किया। पहले ही अंक में मारवाड़ी लेखकों पर की गई आलोचनात्मक टिप्पणियों के लिए उन्होंने सहाय से माफ़ी मांगने को कहा। सहाय ने यह स्पष्ट किया कि वे मारवाड़ियों के शुभचिंतक हैं, लेकिन वे कुछ पथभ्रष्ट युवाओं और लेखकों के सामने झुकने को तैयार नहीं हैं। सन् 1923 में अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा की ओर से मारवाड़ी समुदाय के मुखपत्र के रूप में एक अन्य पत्रिका *मारवाड़ी अग्रवाल* के प्रस्ताव के बाद इस शानदार पत्रिका (*मारवाड़ी सुधार*) का प्रकाशन बंद हो गया। हेमचन्द्र जोशी के संपादन में निकलने वाली इस नई पत्रिका के तीन लक्ष्य थे—मारवाड़ियों में फैली बुराइयों का उन्मूलन करना, अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा के संदेशों को प्रसारित करना और मारवाड़ी समुदाय में फिर से प्राण फूँकना।

अपने समुदाय में सुधार लाने के प्राथमिक उद्देश्य से शुरू हुई *मारवाड़ी सुधार* और *मारवाड़ी अग्रवाल* जैसी पत्रिकाओं ने एक ऐसे जीवन की वकालत तो की जिसमें व्यापार, मुनाफ़े व आध्यात्म के बीच सही संतुलन हो, किन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विशिष्ट राह दिखाने में चूक गई। कुछ ही सालों में मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के कुछ मुख्य सदस्यों ने अपने लिए स्वयं ही कुछ करने का फैसला लिया। इस तरह *कल्याण* का जन्म हुआ। यह अपनी तरह की पहली ऐसी मासिक पत्रिका थी जिसका सीधा और एकमात्र सधा हुआ लक्ष्य सनातन धर्म की रक्षा कर उसका प्रचार-प्रसार करना था। इसका संबंध केवल मारवाड़ियों से नहीं बल्कि हिन्दुओं से था।

राजनैतिक संदर्भ

उन्नीसवीं सदी का अंतिम और बीसवीं सदी का आरम्भिक दशक हिन्दू-मुसलमान के बीच बढ़ते धार्मिक मनमुटाव का था। लगातार हो रहे दंगे और बढ़ती साम्प्रदायिकता इसकी गवाह थी। भाषा के स्तर पर हिन्दी-उर्दू के वर्चस्व के अलावा गो-हत्या और मस्जिदों के बाहर संगीत जैसी घटनाओं ने दोनों समुदायों के बीच उत्तेजना को बढ़ावा दिया। आजमगढ़ में हुआ सन् 1893 का बड़ा दंगा, बकरीद के दौरान गो-हत्या के मुद्दे पर मऊ और निकटवर्ती इलाकों में हुए दंगों से लेकर सन् 1917 में बिहार के शाहाबाद, गया और पटना में हुई बड़ी हिंसा भी इसमें शामिल है।³¹ यहाँ उद्देश्य इन सभी मसलों पर हुए अध्ययनों को दोहराना नहीं है, न ही इस तनाव के अन्य बिन्दुओं पर नज़र डालने की कोशिश है। इसके बजाय इन घटनाओं को गीता प्रेस के उदय के सन्दर्भ में स्थापित करना और यह दिखाना है कि कैसे *कल्याण* धार्मिक अभिव्यक्ति और साम्प्रदायिक मुद्दों का एक सफल संवाहक बन कर उभरा, और वह प्रवृत्ति अभी तक बरकरार है।

बीसवीं सदी के आरम्भिक दो दशकों में धर्म और राजनीति में विभेद इस क्रूर धुंधला गया कि राष्ट्रीय आंदोलन की अगुआ बनी कांग्रेस भी खुद को गो-रक्षा के मसले से दूर नहीं रख सकी। सन् 1891 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में गो-रक्षिणी सभा की बैठक हुई थी।³² रोचक बात ये रही कि इस धार्मिक मसले ने आज़ादी के बाद तक राजनीति को प्रभावित करना जारी रखा। 1920 के दशक से पोद्दार गो-रक्षा के अग्रणी हो गए, जिसमें उन्हें प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जैसे साधुओं, हिन्दू महासभा, सनातन धर्म, आरएसएस जैसे संगठनों, सेठ गोविन्द दास जैसे कांग्रेसी नेताओं, पूर्व महासभापति जगतनारायण लाल (जो कि आगे चल कर बिहार में कांग्रेस सरकार में मंत्री हुए) के अलावा भी भिन्न-भिन्न समूह के लोगों से भारी समर्थन प्राप्त हुआ।

सन् 1923 में बनारस में हिन्दू महासभा और आर्य समाज एकजुट हुए और उन्होंने गो-वध निषेध और पुनर्धर्मांतरण को अपना समान लक्ष्य बनाया। यहाँ तक कि अपेक्षाकृत युवा कांग्रेस भी धार्मिक मुद्दों से दूरी का दावा करने के बावजूद तटस्थ नहीं रह सकी। तब तक पार्टी में गहरी साख बना चुके पंडित मदनमोहन मालवीय, राजेन्द्र प्रसाद और अन्य रूढ़िवादी नेताओं ने कांग्रेस को धार्मिक रूप से संवेदनशील मुद्दों पर भी विचार करने पर मजबूर कर दिया। सन् 1922 के बाद होने वाली हिन्दू महासभा की बैठकें कांग्रेस के वार्षिक सत्र के साथ ही होने लगीं। ये सिलसिला सन् 1937 में हिन्दू महासभा और कांग्रेस के औपचारिक विच्छेद होने तक लगातार चलता रहा।

जैसे-जैसे ये सभी गो-रक्षिणी सभाएँ शक्तिशाली होती गईं और गो-वध विरोध का स्वर मज़बूत हुआ, साम्प्रदायिक दंगे आम हो गए क्योंकि गो-रक्षिणी सभाओं ने अब गो-माता के सम्मान की रक्षा का स्वर अपना लिया। सन् 1923 से 1927 के बीच संयुक्त प्रान्त में 91 दंगों की वजह सिर्फ़ 'गाय' थी।³³ केवल गो-रक्षा ही नहीं बल्कि हिन्दू और मुसलमान के बीच संगीत, नमाज़ और प्रभात फेरी (प्रातः काल के जुलूस में गाए जाने वाले भजन आदि) भी दंगों की वजह बने।

हिन्दू महासभा और अन्य सामुदायिक संगठन अपने लक्ष्य के साथ आगे बढ़ते गए और इसकी वजह से धीरे-धीरे कांग्रेस के भीतरी अंतर्विरोध उभर कर सामने आने लगे, जिससे हिन्दू-मुसलमान विभाजन और गहराता गया। ये अंतर्विरोध सबसे प्रमुख ढंग से इलाहाबाद में दिखाई दिए जब सन् 1927 के नगर निकाय चुनाव के दौरान मोतीलाल नेहरू की समावेशी राजनीति और मदनमोहन मालवीय की गैर-समावेशी व हिन्दू परस्त राजनीति में मुकाबला हुआ। कांग्रेस प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़ रहे मालवीय समूह ने सन् 1925 में मस्जिदों के सामने से संगीत के साथ गुज़रने वाले हिन्दू धार्मिक जुलूसों के मुद्दे पर किसी भी सौहार्दपूर्ण समझौते के प्रयासों को अवरुद्ध कर दिया था। सन् 1926 में दोनों गुटों में पुनः मैत्री करवाने की नेहरू की कोशिश भी नाकाम रही। मालवीय और बिशन नारायण दार ने मिलकर 'राष्ट्रवाद और हिन्दू ध्येय' का उपयुक्त घालमेल प्रस्तुत किया। ³⁴ यह घालमेल आने वाले सालों में ज़्यादा प्रभावी हो गया और इसने साम्प्रदायिक विभाजन को और गति प्रदान की। ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा लगातार बढ़ावा दिए जाने से दार और मालवीय संयुक्त प्रान्त में धार्मिक अधिकारों की प्रबल आवाज़ बन गए। सन् 1919 में कांग्रेस के अध्यक्ष रहे मालवीय वायसराय काउंसिल के सदस्य थे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक थे, *अभ्युदय* पत्रिका का नियन्त्रण उनके हाथ में था, भारत के विविध और विशेष रूप से इलाहाबाद व बनारस के धार्मिक संगठनों से वे जुड़े हुए थे। इन सभी बातों ने उनके दक्षिणपन्थी व्यक्तित्व को और भी ज़्यादा प्रभावशाली बनाया।

कानपुर में भी राष्ट्रवाद और धार्मिक पुनरुत्थानवाद के बीच धुंधले पड़ते विभाजन ने मुसलमानों की कांग्रेस के प्रति आस्था को कम किया। सन् 1913 के कानपुर मस्जिद प्रकरण तक मुस्लिम कट्टरपंथ आकार ले चुका था। जब एक सड़क बनाने के लिए छोटी मस्जिद के स्थानांतरण का फैसला लिया गया। यह फैसला सामुदायिक नेताओं की सहमति से लिया गया था किन्तु स्थानीय मुसलमानों ने इसके विरोध में प्रदर्शन किए। इस विरोध ने ब्रिटिश प्रांतीय सरकार को मध्यस्थों के ज़रिए फैसले की रणनीति पर पुनर्विचार करने को बाध्य किया। 1920 के दशक की शुरुआत तक प्रभात फेरी, शुद्धि (हिन्दू धर्म में पुनर्धर्मांतरण) और संगठन संयुक्त प्रान्त में अपनी ज़मीन तैयार कर चुके थे। भारी मात्रा में प्रवासी जनसंख्या होने के बावजूद शहरी इलाक़े भी इस प्रभाव से अछूते नहीं थे। सन् 1913 के मस्जिद प्रकरण के बाद मुसलमान सरकार को संदेह की दृष्टि से देखने लगे, लेकिन मुसलमानों की बेचैनी तब ज़्यादा बढ़ गई जब कांग्रेस ने शहर में म्यूनिसिपल बोर्ड के पैसों से प्रभात फेरी और हिन्दू अखाड़े प्रायोजित करने शुरू कर दिए। ³⁵

इन साम्प्रदायिक ताक़तों को कांग्रेस का खुलेआम संरक्षण मिलने का नतीजा उत्पीड़न और हिंसा के रूप में सामने आया। सन् 1931 में भगत सिंह की फाँसी के विरोध में पार्टी कार्यकर्ताओं द्वारा घोषित बंद आयोजन अंततः कानपुर में एक बड़े दंगे में तब्दील हो गया। दोनों समुदायों के बीच खिलाफ़त आंदोलन और असहयोग

आंदोलन के समय में देखी गई एकता की भावना अब जा चुकी थी। सन् 1931 के दंगों के समय 42 मस्जिद और 18 मंदिर तोड़ दिए गए। इस दौरान न जाने कितनी ही जाने गईं! इनमें दैनिक *प्रताप* के संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी भी शामिल थे। गांधी ने *यंग इंडिया* में लिखा, ‘गणेश शंकर विद्यार्थी की इस शहादत से हम सबको ईर्ष्या होनी चाहिए। उनका लहू ही अंततः दोनों समुदायों के बीच समन्वय का सेतु बनेगा। इसके अलावा और कुछ हमारे हृदयों को बांध नहीं सकता। गणेश शंकर विद्यार्थी की बहादुरी ही वह ताकत है जो एक दिन पत्थर हृदय को भी पिघला देगी और एक सूत्र में बाँध देगी। लेकिन ज़हर इतना अन्दर तक फैल चुका था कि इतने महान, आत्म बलिदानी और हिम्मती इंसान का खून भी हमें झकझोर नहीं पा रहा है। इसे एक ऐसा उदाहरण बनाना होगा जो हमें प्रेरणा दे।’ ³⁶

कल्याण के संपादक की हैसियत से हनुमानप्रसाद पोद्दार ने भी महसूस किया कि विद्यार्थी की हत्या पर टिप्पणी अनिवार्य है। उन्होंने इस घटना को भारतीय मानवता के विकृत होने की प्रतिच्छाया माना। उन्होंने टिप्पणी करते हुए इस ओर इशारा किया कि ‘इस पैशाचिक उत्तेजना का शिकार एक ऐसा व्यक्ति हुआ है जो दोनों ओर की नफ़रत की आग को बुझाने निकला था।’ ³⁷ बमुश्किल पांच साल पूरे कर रही *कल्याण* की यह टिप्पणी धर्म और राजनीति के मिश्रण का आरम्भिक प्रयास थी।

प्रतिस्पर्धी साम्प्रदायिकता के दौर में कांग्रेस का आश्रय प्राप्त हिन्दू महासभा की शुद्धि, संगठन, प्रभात फेरी मुसलमानी अभ्यासों जैसे ‘तब्लिग़’ (प्रोपगैंडा) और ‘तंज़ीम’ (संगठन) से मिलते-जुलते थे। जहाँ ‘तंज़ीम’ अपने आप में संगठन और प्रभात फेरी का सीधा प्रत्युत्तर था ³⁸ वहीं ‘तब्लिग़’ ‘शुद्धि’ का। आगे चलकर सन् 1924 में मुस्लिम लीग ने कांग्रेस से पृथक होकर मांगें ‘रखनी शुरू कीं’। मुहम्मद अली जिन्ना ने उन इलाकों में स्वायत्तता की मांग की जहाँ मुसलमान संख्या में हिन्दुओं से ज़्यादा थे। इस प्रकार 1920 और 1930 के दशक में धार्मिक विच्छेद ने राष्ट्रवाद की राजनीति को पुनः परिभाषित किया और यही आगे चल कर विभाजन और उसके बाद हुए खून-खराबे की जड़ बना।

हिन्दी/हिन्दू पत्रकारिता, मारवाड़ी उदारता और धर्म व राजनीति के बीच धुंधली पड़ती सीमा रेखा (विशेषकर संयुक्त प्रान्त में) के त्रिकोण में ही गीता प्रेस की कहानी मौजूद है। स्वीकृत धर्मनिरपेक्ष विमर्शों में इसी धार्मिक अलगाववाद को ‘साम्प्रदायिकता’ कहा गया, जो कि एक प्रतिक्रियात्मक विचारधारा थी। इस तरह देखने से इसे हिन्दू और मुसलमान धार्मिक पुनरुत्थानवादी आंदोलनों का एक-दूसरे पर प्रतिक्रिया का परिणाम माना गया। गीता प्रेस/ *कल्याण* के उद्भव पर आधारित यह अध्ययन उजागर करेगा कि किस तरह हिन्दू पुनरुत्थानवाद ने आधुनिकता और पाश्चात्य शिक्षा, अन्य धर्मों से पैदा होने वाली चुनौतियों (विशेषकर इस्लाम), से हिन्दू धर्म के आंतरिक बदलावों के संदर्भ में प्रतिक्रियाएँ गढ़ ली थीं। ³⁹

गीता प्रेस और कल्याण का महत्त्व

सन् 1893 में प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी पत्रिका *ब्राह्मण* के पाठकों को हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान के लक्ष्य को लेकर अगंभीर होने पर रोष व्यक्त किया। यह ताना उन दिनों बहुत असरदार था। उन बहुत-सी पत्रिकाओं ने इस ताने को गंभीरता से लिया जिनकी राजनीति राष्ट्रीय संदर्भों में अभी पूरी तरह परिभाषित नहीं हो पाई थी। विशेष शब्दों में कहा जाये तो सदी की शुरुआत में हिन्दी-उर्दू के विमर्श का साम्प्रदायीकरण होने के बावजूद भी इसका प्रसार इतना नहीं हुआ था कि यह दोनों समुदायों के बिखरते जा रहे लेकिन उस समय के मौजूदा शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व को कमजोर कर सके। आर्य समाज की पत्रिकाओं के अलावा और भी पत्रिकाएँ आई थीं, जैसे स्त्री विषयक आधारित (*चाँद, ज्योति, गृहलक्ष्मी*), बाल पत्रिका (*बालक*), शिक्षा आधारित (*शिक्षा अमृत, शिक्षा सेवक*)। ये लगातार विस्तृत हो रहे शिक्षित वर्ग की इच्छाओं की अभिव्यक्ति की वाहक हो गई थीं।

धार्मिक पत्रिकाएँ इस तरह की अभिव्यक्ति के प्रति आलोचनात्मक हो गईं। जन दायरों में धर्म अब विमर्श का मुद्दा बन कर अपनी ज़मीन तैयार कर रहा था और यह बनती हुई ज़मीन ही धीरे-धीरे अन्य प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं में भी कुछ पृष्ठों में जगह बनाती हुई दिखी। यहाँ तक कि *मतवाला* जैसी गैर-धार्मिक पत्रिका ने भी धर्म का विरोध ज़रूर किया, लेकिन उसकी उपेक्षा नहीं कर पाई। अब मामला हिन्दी का नहीं, हिन्दू धार्मिकता का हो चला था।

धीमी गति से होता हुआ राजनीति का साम्प्रदायीकरण इस बहस में कुछ-न-कुछ जोड़ता जा रहा था। यह समझना बेहद ज़रूरी है कि कैसे गीता प्रेस, उसकी पत्रिका *कल्याण* ने जनता के बीच धर्म से जुड़ी बहसों की जगह को घेरना शुरू किया। ऐसा भी नहीं था कि इस दौरान मोटे तौर पर हिन्दू धर्म और खासकर सनातन धर्म से जुड़ी कोई अन्य पत्रिका अस्तित्व में थी ही नहीं। *सनातन धर्म पताका* नाम की मासिक पत्रिका सन् 1900 में मुरादाबाद से निकलनी शुरू हुई थी और 1920 के दशक के अंत तक चली थी। नई प्रिंटिंग तकनीक को न अपना पाने और लेखन में पाठक की रुचि के साथ खुद न बदल पाने ने उसके वितरण व प्रभाव को सीमित कर दिया। इन कारणों से यह पत्रिका मात्र स्थानीय पहल बन कर रह गई। ⁴⁰ 1920 के दशक में जब गैर-धार्मिक *मतवाला* ने लगातार सनातन धर्म पर अपना हमला जारी रखा तब साप्ताहिक *धर्म रक्षक* इसके जवाब में आया लेकिन यह भी किसी तरह का प्रभाव जमाने में असफल ही रहा।

गीता प्रेस/ *कल्याण* के पक्ष में जो सबसे बड़ी बात कही गई वह यह कि इसके प्रचारक और संपादक औपनिवेशिक समय में घट रहे बड़े राजनैतिक बदलावों से अनभिज्ञ नहीं रहे। सनातन धर्म के प्रचार-प्रसार का एजेंडा और पाठों पर ज़ोर, संस्कार, रिवाज, सामाजिक व्यवहार आदि सब राष्ट्रवाद के आदर्शों के रंग में मिलाकर परोसे जाते थे। वसुधा डालमिया ने सनातनियों को परम्परावादी कहना सही समझा

और उनके तथा समाज सुधारकों जैसे आर्य समाजियों, ब्रह्म समाजियों के बीच एक अंतर करते हुए महीन रेखा खींची। उन्होंने तर्क किया कि परम्परावादियों और सुधारकों के बीच 'अनवरत परिवर्तन और परस्पर विनिमय' चल रहा था।⁴¹

पॉल हैकर की नव-हिन्दुवाद की व्याख्या के आधार पर मोनिका हॉर्ट्समैन का तर्क है कि *कल्याण* द्वारा प्रस्तुत हिन्दुवाद भी इसी वर्ग का है: 'इसकी जड़ें राष्ट्रवादी हैं; यह सार्वभौमिकता पर सार्वलौकिक दावा करता है, यह भारत की सीमाओं के भीतर धार्मिक वर्चस्ववाद का दावा करता है और इसे इन सीमाओं से परे देश से बाहर बसे हिन्दुओं तक पहुँचाने का प्रयास करता है, यह इन अर्थों में मिशनरी है कि यह भारत में हिन्दुओं को संगठित करने और उदासीन निर्वासित हिन्दुओं को एक सनातन धर्म की छत्रछाया में लाने का भरसक प्रयास करता है।' ⁴²

गीता प्रेस और *कल्याण* की कहानी बेनडिक्ट एंडरसन की प्रिंट पूंजीवाद की धारणा और 'राष्ट्रीय अस्मिता' को जन्म देने वाली 'एक भाषा-भाषी जनसमूह' (मोनोग्लोट मासेस) के निर्माण में इसकी भूमिका से न केवल भिन्न है, बल्कि कुछ हद तक एंडरसन की धारणाओं को तोड़ती भी है। ⁴³ एंडरसन की स्थापना का बुनियादी आधार यह था कि प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं को सिर्फ अपने मुनाफ़े से मतलब था और उसके लिए प्रकाशक 'पूंजीवाद की क्रांतिकारी देशजता की भूख' को भुना रहे थे। इसने ईसाईयत-पूर्व-युग में साहित्य को जनता तक पहुँचाने वाले तौर-तरीकों को प्रभावित किया। गीता प्रेस इस लिहाज़ से अलग था कि उसका उद्देश्य मुनाफ़ा कमाना नहीं था। इसके प्रचारक प्रख्यात व्यापारी वर्ग से संबंध रखने वाले मारवाड़ी थे, जो बीसवीं सदी की शुरुआत में औद्योगिक पूंजी की ओर बढ़ रहे थे। उन्हें निस्संदेह मुनाफ़े से कोई परहेज़ नहीं था लेकिन 'धर्मांतरण के देशी प्रारूप' वाले गीता प्रेस जैसे संस्थान से मुनाफ़ा कमाना उनका उद्देश्य बिल्कुल नहीं था, जिसका लक्ष्य ही हिन्दू धर्म की रक्षा करना था। ⁴⁴ गोयन्दका ने बाद में यह माना कि हिन्दी में गीता और अन्य धार्मिक विषयों का प्रचार करना ईसाई मिशनरियों के प्रयासों को जवाब देने के लिए बेहद ज़रूरी था। ⁴⁵

ठीक इसी दौरान गीता प्रेस ने प्रिंट द्वारा उपलब्ध करवाए गए उस उपयुक्त अवसर को पहचान लिया जब हिन्दी अपने उभार पर थी और *कल्याण* के अलावा रामायण, महाभारत, पुराण और अन्य हिन्दू धर्म ग्रन्थों के सस्ते किन्तु उच्च गुणवत्ता वाले संस्करण बड़ी संख्या में प्रकाशित कर इनका इस्तेमाल देश के भीतर सनातन धर्म के प्रचार के लिए करना आरम्भ किया। पॉल अर्ने ने गीता प्रेस को बीसवीं सदी के प्रिंट हिन्दुवाद का शीर्ष वाहक कहा। ⁴⁶

यही नहीं धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशन ने गीता प्रेस को मज़बूती से स्थापित करने में बड़ी सहायता की। गीता प्रेस ने जितनी अधिकाधिक बिकने वाली धार्मिक पुस्तकें छापीं— *रामचरितमानस* उनमें सर्वोपरि था। *रामचरितमानस* के मुद्रित संस्करण ने इसके पठन-पाठन की व्यापकता को बढ़ा दिया। अब इसका पठन-पाठन केवल

पुजारी वर्ग तक ही सीमित नहीं रह गया था । अब इसकी हाथ से नक़ल करने की भी ज़रूरत नहीं थी, जिसने एक दौर में इसकी उपलब्धता को सीमित किया था । सन् 1983 तक आते-आते गीता प्रेस से *रामचरितमानस* की लगभग 57 लाख प्रतियाँ बिक चुकी थीं । ठीक इसी साल दो बार एक-एक लाख प्रतियाँ छपी थीं । ⁴⁷

यह उल्लेखनीय है कि गीता, रामायण, महाभारत, पुराण और उपनिषदों को छापने वाली गीता प्रेस ने वेदों की उपेक्षा की । *कल्याण* के बहुत से लेखों में इन प्राचीन ग्रन्थों का ज़िक्र मिलता रहा लेकिन गीता प्रेस ने कभी वेदों का कोई अनुवाद नहीं छापा और न ही वेदों के मूल रूप को प्रकाशित किया । पोद्दार ने अपने एक जीवनीकार से इस बारे में बात करते हुए कहा है कि वे वेदों पर साधिकार बोलने वालों की कमी के कारण इस तरह का कोई काम हाथ में नहीं लेना चाहते थे । ‘उनका मानना था कि वेदों के मौजूदा अनुवाद अपनी गुणवत्ता में मूल पाठ के स्तर के नहीं हैं । इसी वजह से ज़रूरत महसूस होने के बाद भी भारतीय संस्कृति के इस स्रोत को सामान्य जनता के बीच उपलब्ध करवाने में वे सफल नहीं हो पाए ।’ ⁴⁸

गीता प्रेस से छापी गई *रामचरितमानस* और कुछ अन्य पाठों की लोकप्रियता बढ़ने के साथ-साथ इन धार्मिक पाठों के व्यावसायिक कथावाचकों की संख्या में भी बढ़ोतरी हुई । राधेश्याम कथावाचक (1890-1963) और नारायण प्रसाद बेताब (1872-1945) इन दोनों ने *रामचरितमानस*, पुराणों और *महाभारत* को नए अर्थ देते हुए उनकी कथाओं को केन्द्र में रख कर उन्हें नाटकों और गीतों में ढाला । *रामचरितमानस* को लोकप्रिय धुन/छंद/पद्य में आम जन तक पहुँचाना इन कथावाचकों का सबसे बड़ा योगदान रहा, जो रामलीला के प्रदर्शन का आधार भी बना । ⁴⁹ गीता प्रेस अपने कथावाचक कृपाशंकर रामायणी पर आश्रित रहा, जिन्होंने न केवल *कल्याण* के लिए लेखन किया बल्कि वे समय-समय पर प्रकाशन समूह द्वारा आयोजित विमर्श में भाग लिया करते थे । रामायणी द्वारा प्रतिपादित रामायण को उनके अनुयायियों ने वेब पोर्टल के ज़रिए समय बीतने पर भी जीवित रखा है ।

मौखिक परम्परा की शक्ति को पहचानते हुए गीता प्रेस ने अगले कुछ सालों में पूरे भारत में नियमित रूप से *गीता* और *रामायण* के पाठ व सभाएँ आयोजित करनी शुरू कर दीं । इसने ‘विशेष तौर पर चैत्र नवरात्र में सभी भारतीयों द्वारा पढ़े जाने के लिए पॉकेट साइज़ की *रामायण* भी छापी (1939 में) और महीनों *कल्याण* में इसका प्रचार किया ।’ ⁵⁰ लुट्गेनडोर्फ़ ने तर्क दिया है कि, ‘गीता प्रेस का नवरात्र के दिनों में *रामचरितमानस* के सामूहिक पाठ पर बल देना उत्तर भारत में संश्लेषित तत्व के रूप में एक महाकाव्य की भूमिका को दर्शाता है । खासकर, वैष्णव भक्तिवाद और शैव पूजक परंपराओं के बीच एक मध्यस्थ के रूप में ।’ उनके अनुसार, ‘*मानस* रोज़ाना के लोकप्रिय धार्मिक आचरणों के बीच की रिक्ति को भरने का साधन बन गया ।’ ⁵¹ मुद्रित और मौखिक माध्यमों के मिश्रण ने सनातन धर्म की सर्वोच्चता को पुनः स्थापित करने के गीता प्रेस के लक्ष्य के लिए सटीक रणनीति की तरह काम किया । समाज पर इसका

स्पष्ट प्रभाव था। कम साक्षरता दर वाले संयुक्त प्रान्त में यह सर्वाधिक असरदार रहा। ⁵²लेकिन, मुद्रित संस्करणों के ज़रिए समाज के हर वर्ग तक पहुँची *रामचरितमानस* की लोकप्रियता ने गाँवों व शहरों की सामाजिक व्यवस्था में नहीं के बराबर बदलाव किया।

सन् 1789 में कलकत्ता में डेनियल स्टुअर्ट और जोसेफ कूपर के क्रोनिकल प्रेस द्वारा नागरी फॉण्ट तैयार करने के बाद से पुस्तक प्रकाशन के भारतीय प्रयास असफल ही रहे। 1820 के दशक में लिथोग्राफी के आने ने भारत में मुद्रण और प्रकाशन को आसान और सस्ता बना दिया, लेकिन तब भी सफलता राज्य प्रायोजित प्रयासों को ही मिली। चाहे वो फोर्ट विलियम कॉलेज के द्वारा छापी गई सामग्री हो या मिशनरी प्रकाशक हो या फिर बाद में व्यावसायिक रूप ले लेने वाली सन् 1858 में लखनऊ में स्थापित नवल किशोर प्रेस जैसा कोई उद्यम हो। जैसा कि फ्रांस में जन्मे कलकत्ता के हाजी मुस्तफ़ा ने कहा, 'इस देश में प्रेस चलाने के लिए एक जवान और अमीर आदमी की ज़रूरत है। मैं इनमें से कुछ नहीं हूँ।' ⁵³गीता प्रेस एक ऐसा ही उद्यम था जिसकी कमान जवान तो नहीं लेकिन धनी मारवाड़ियों ने संभाल रखी थी। बीच-बीच में कभी-कभी इसके बंद होने के गंभीर संकट भले ही सामने आए लेकिन इसकी यात्रा नहीं रुकी।

गीता प्रेस से पहले धार्मिक ग्रन्थों के प्रकाशन का ज़िम्मा नवल किशोर प्रेस जैसे प्रकाशन समूहों ने संभाल रखा था। उलरिक स्टार्क इस पर चर्चा करती हैं कि किस तरह उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में ही धार्मिक ग्रन्थों जैसे रामायण, महाभारत और पुराणों का छपना शुरू हो गया था और यहाँ तक कि मुसलमान प्रकाशक भी इस काम में शामिल थे। ⁵⁴यहाँ यह तर्क आसानी से दिया जा सकता है कि नवल किशोर प्रेस जैसे स्थापित प्रकाशन समूह द्वारा धार्मिक ग्रन्थों के छापे जाने ने उत्तर भारत में किसी अन्य धार्मिक प्रकाशक के लिए कोई जगह ही नहीं छोड़ी थी।

इस संदर्भ में देखा जाये तो गीता प्रेस का अस्तित्व में आना और उसकी सफलता का सबसे बड़ा कारण उसकी मासिक पत्रिका *कल्याण* भी हो सकती है जो कि हिन्दू धर्म को पूरी तरह समर्पित पहली धार्मिक पत्रिका थी। अन्य समकालीन पत्रिकाओं (राजनैतिक, साहित्यिक, स्त्री विषयक, बाल) ने धर्म को समर्पित कुछ पृष्ठ निकालने आरम्भ किए जो पाठकों के बीच पहचान को लेकर बढ़ रही चिंता का परिणाम था। 1920 के दशक में भारतीय राजनीति में तेजी से बढ़ी साम्प्रदायिकता ने अस्मिता के इस संकट को बुरी तरह बढ़ा दिया। गीता प्रेस ने ठीक इसी समय *कल्याण* में यह घोषणा की कि समाज में आ रहा चौतरफ़ा पतन हिन्दुओं के अपने धर्म से विचलित होने का नतीजा है। उसकी यह घोषणा यह साबित करने के लिए पर्याप्त थी कि इस पत्रिका का उद्देश्य धर्म की रक्षा के लिए खड़ा होना था। गीता प्रेस के अनुसार 'मौजूदा सामाजिक संकट' से लेकर समाज को 'अंधकार युग' में ले जाकर 'उसके ताने-बाने को खतरे में डालने वाली प्रवृत्तियों का एकमात्र समाधान' धर्म की रक्षा करने में ही था। ⁵⁵

इसी तरह, गीता प्रेस के प्रचारकों ने यह भी माना कि *कल्याण* को उस संकट को भी संबोधित करना चाहिए जिसका सामना आंतरिक और बाह्य तौर पर मारवाड़ी समुदाय कर रहा था। गीता प्रेस के संस्थापक जयदयाल गोयन्दका मारवाड़ी समुदाय की व्यापारिक गतिविधियों की वजह से पैदा हुए गहरे रोष और अविश्वास की स्थिति से अवगत थे। *कल्याण* के दूसरे साल में उन्होंने मारवाड़ी समुदाय के भीतर व्याप्त समस्याओं को संबोधित किया। इन सारे हालात का ठीकरा उन्होंने औपनिवेशिक सरकार पर नहीं फोड़ा (जैसा कि उस समय चलन में था)। गोयन्दका ने व्यापारियों को उनके नैतिक और भावात्मक पतन के लिए स्वयं ही ज़िम्मेदार ठहराया क्योंकि उनके व्यापारिक लेन-देन में झूठ, धोखा, फ़रेब की भरमार थी। उन्होंने इस तरह की गतिविधियों का कारण 'लोभ' को माना, जिसके चलते उनके समुदाय का पतन हुआ। लालच की यह प्रवृत्ति अटकलबाजी, खाद्य पदार्थों में भारी मात्रा में की जाने वाली मिलावटखोरी और अन्य ग़ैर-क्रानूनी गतिविधियों में भी दिखाई पड़ती थी। उन्होंने इस बात के लिए भी सचेत किया कि अनैतिक व्यापारिक गतिविधियाँ उनके आध्यात्मिक जीवन में और परिणामस्वरूप ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में भी बाधा हैं। ⁵⁶ कुछ समय बाद *कल्याण* ने नैतिकता की शिक्षा देने और बुरे कामों में लिप्त होने से रोकने के लिए इसी भय को अपने पाठकों के मन में बैठाना शुरू कर दिया। इस तरह भक्ति और श्रद्धा का एक 'बनिया मॉडल' बना जिसने भरोसा दिया कि यदि उनके बताए गए सनातन धर्म के मार्ग का ठीक से पालन किया जाये तो मोक्ष प्राप्ति अवश्य होगी।

मोनिका फ़ेयर के शब्दों में, 'गीता प्रेस की एक बड़ी विशेषता यह थी कि वह ब्रह्म समाज, आर्य समाज जैसे सुधारवादी संगठनों और सनातन धर्म की मान्यताओं पर आधारित परंपरागत संगठनों जैसे हिन्दू महासभा और भारत धर्म महामंडल के द्वारा प्रचारित किए जाने वाले व्यापक हिन्दू राष्ट्रवाद से पैदा हुए आपसी मतभेदों को सुलझाने की क्षमता रखता था।' फ़ेयर आगे कहती हैं, 'इसे हासिल करने के लिए गीता प्रेस के संस्थापकों ने जानबूझ कर अपने लेखन को धार्मिक और राजनैतिक रूप से निष्पक्ष बनाया। हिन्दू धर्म की अन्य सम्प्रदायों से वैचारिक भिन्नता पर केन्द्रित करने की जगह उन्होंने भावात्मक उत्कर्ष का एक ऐसा नमूना पेश किया जो व्यापक हिन्दू समुदाय के लिए अस्मिता और आदर्श का एक प्रस्थान बिंदु हो सकता था।' बहरहाल, गीता प्रेस ने आंशिक रूप से फ़ेयर की इस बात को ही अपनाया, 'नया राजनैतिक दर्शन मौजूदा जाति, पंथ, और धार्मिक सम्प्रदायों के विभाजन के विलोप की मांग कर रहा था।' ⁵⁷ गीता प्रेस ने अन्य सम्प्रदायों और आर्य समाज जैसे सुधारवादी संगठनों पर हमले नहीं किए लेकिन जाति प्रथा की वैधता के प्रति उसका जड़ रवैया टस-से-मस नहीं हुआ।

गीता प्रेस को अब भीमराव अम्बेडकर जैसे बड़े व्यक्तित्व से भिड़ने की कोई खास ज़रूरत नहीं रही जिन पर इसने लगातार हमले किए थे, और हिन्दू कोड बिल पर टिप्पणी करते हुए यहाँ तक कहा, 'अब स्वतंत्र की धारा सभा में वर्तमान विधानमंत्री डॉ. अम्बेडकर महोदय ने, जो स्वयं वृद्धावस्था में हीन वर्ण होते हुए भी हाल ही में एक

ब्राह्मणी से विवाह कर चुके हैं, इस कोड को फिर उपस्थित किया है ।’ ⁵⁸लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं है कि गीता प्रेस ने अपने इस विचार को कमज़ोर पड़ने दिया कि ‘हमारा जन्म पूर्व जन्मों के कर्मों से निश्चित होता है । जो अच्छे कर्म करते हैं वो ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्णों में उत्पन्न होते हैं और जो बुरे कर्म करते हैं वो चाण्डालादि योनियों को प्राप्त होते हैं ।’ ⁵⁹पहले की तरह ही गीता प्रेस के लिए सनातन धर्म के दरवाज़े इतनी मुस्तैदी से बंद हैं कि वहाँ न तो जाति को लेकर गांधी की दुविधा और न ही अम्बेडकर द्वारा किए गए कड़े आलोचनात्मक विमर्श की कोई हवा भी प्रवेश कर सकी । उसके पास केवल शीर्षस्थ तीन वर्णों के लिए ही जगह रही । इन तीन वर्णों को अपने पदक्रम के अनुसार वही सदियों से अपनाए हुए ढंग पर जन्म से निर्धारित होने वाले लाभ भी मिलते रहे । इस तरह उनका सभी हिन्दुओं की वकालत करने का लक्ष्य महज़ एक वायदा भर बन कर रहा, जिसे कभी सच नहीं होना था । प्रकाशन ने लैंगिक भेदभाव को भी बढ़ाने का काम जारी रखा जिसके तहत महिलाएँ घरेलू कामकाज के लिए बनी हैं और पुरुष बाहरी दुनिया पर प्रभुत्व हासिल करने के लिए ।

लेकिन गीता प्रेस और *कल्याण* के जिस पहलू ने आज के समय पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है, वह है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद (विहिप) और ऐसे ही अन्य साम्प्रदायिक संगठनों को एक मंच पर बांधे रखना । अर्ने यह उल्लेखित करते हैं, ‘गीता प्रेस मास प्रिंटिंग तकनीक का फ़ायदा उठाने में सक्षम साबित हुआ और उसने सफलतापूर्वक एक ऐसे एकांगी, लोकप्रिय और भक्ति-उन्मुख ब्राह्मणवादी हिन्दुवाद को प्रोत्साहित किया जिससे बहुत-सी आध्यात्मवादी और साम्प्रदायिक ताकतें स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस कर सकती थीं ।’ ⁶⁰वे विहिप प्रकाशन के विशेषांक *हिन्दू चेतना* का उल्लेख करते हैं जो सन् 1992 में पोद्दार के सम्मान में प्रकाशित की गई थी । इस अंक में सन् 1964 में लिया गया पोद्दार का एक साक्षात्कार भी शामिल था जिसे शिवराम शंकर आपटे ने लिया था । आपटे पहले आरएसएस से जुड़े थे लेकिन बाद में विहिप के सदस्य बन गए । पोद्दार जो विहिप के संस्थापक सदस्यों में से एक थे, ने आपटे से कहा कि यह गीता प्रेस ही था जिसने ‘उदात्त आदर्शों के बीज बोये जिसकी परिणति आज विश्व हिन्दू परिषद जैसे सुगन्धित पौधे के रूप में हुई है ।’ ⁶¹

औपनिवेशिक भारत से लेकर वर्तमान भारत तक गीता प्रेस और उसका सर्वोत्कृष्ट प्रकाशन *कल्याण* ही एकमात्र ऐसा प्रकाशन उद्यम हैं जो अब तक बना हुआ है और समृद्ध हो रहा है । उस ज़माने की अन्य हिन्दी पत्रिकाएँ चाहे वे धार्मिक हों, साहित्यिक हों या राजनैतिक हों, अब केवल अभिलेखों के ज़रिए ही सांस ले रही हैं । जिन्हें हिन्दी और हिन्दू राष्ट्रवाद को समझने वाले शोधार्थी ही देख पा रहे हैं ।

आज *कल्याण* का प्रसार दो लाख प्रतियों से ऊपर है जबकि अंग्रेज़ी में *कल्याण - कल्पतरु* एक लाख से ऊपर बिकती है । गीता प्रेस को गीता, रामायण, महाभारत के सस्ते और अच्छी गुणवत्ता के संस्करण निकालने के अपने बुनियादी लक्ष्य में अपार सफलता मिली, जो पूरे प्रकाशन जगत में कहीं और नहीं देखी-सुनी गई । उदाहरण के

तौर पर, अप्रैल 1955 में जब राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद ने गीता प्रेस का दौरा किया तब एक पर्चा प्रकाशित किया गया जिसमें कहा गया कि गीता प्रेस ने अपनी 30 साल तक की यात्रा में 61 लाख 57 हजार गीता की प्रतियाँ छापीं और बेची हैं, वहीं 20 लाख 80 हजार रामायण की प्रतियाँ छापीं और बेचीं। इस संख्या में *कल्याण/कल्याण-कल्पतरु* की 2 करोड़ 78 लाख प्रतियों का बाज़ार में बिकना शामिल नहीं किया गया है। ⁶² फ़रवरी 2014 तक 7 करोड़ 19 लाख गीता की प्रतियाँ बिकीं। वहीं रामचरितमानस और गोस्वामी तुलसीदास की अन्य कृतियों की बिक्री के मामले में यह आंकड़ा 7 करोड़ था। इसके अलावा पुराणों, उपनिषदों और प्राचीन ग्रन्थों की 1 करोड़ 90 लाख प्रतियाँ बिकीं, जबकि आदर्श हिन्दू महिलाओं और बच्चों के कर्तव्यों का बोध कराने के लिए निकलने वाली पुस्तिकाएँ और मोनोग्राफ़्स की 9 करोड़ 48 लाख प्रतियाँ बिकीं। वहीं 6 करोड़ 50 लाख से ज़्यादा प्रतियाँ भारतीय मिथकीय कहानियों, संतों की जीवनियों और भक्ति भजनों की भी खरीदी गईं। ⁶³ हालाँकि इनमें से अधिकांश रचनाएँ हिन्दी और संस्कृत (दोनों भाषाओं में मिलाकर 739) में थीं, लेकिन गुजराती रचनाओं की संख्या भी 152 थी जो सम्मिलित रूप से हिन्दी और संस्कृत के बाद सबसे ज़्यादा थी। गीता प्रेस ने तेलुगू, ओड़िया, अंग्रेज़ी, बांग्ला, मराठी, तमिल, कन्नड़, असमिया, मलयालम, नेपाली और पंजाबी में भी सामग्री प्रकाशित की। सन् 1990 में उर्दू प्रकाशनों की भी शुरुआत हुई लेकिन उससे अभी तक केवल दो ही रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

गीता प्रेस पर लेखन

गीता प्रेस और *कल्याण* के महत्व के बावजूद समकालीन आलोचकों द्वारा इसकी आलोचनात्मक समीक्षा का प्रयास सिरे से नदारद रहा है। अपने जीवनकाल में पोद्दार ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन को बढ़ावा देते हुए हिन्दी की राजनीति में ऊपरी तौर पर दिलचस्पी तो ली, लेकिन उसी हिन्दी जगत ने पोद्दार और गीता प्रेस को लगभग पूरी तरह अनदेखा कर दिया। गीता प्रेस के आलोचनात्मक मूल्यांकन का कार्य भगवती प्रसाद सिंह और श्यामसुन्दर दुजारी जैसे अंदरूनी व्यक्तियों के संचरित्र विवरणों पर छोड़ दिया गया। इन विवरणों में पोद्दार को महान क्षमता वाले हिन्दी साहित्यकार और गीता प्रेस को साहित्यिक जागरूकता फैलाने वाले एक प्रकाशन के रूप में सराहा गया है। हिन्दी साहित्य के आधिकारिक विवरणों में गीता प्रेस को या तो पूरी तरह छोड़ दिया गया है या उस पर सिर्फ़ सरसरी निगाह डाली गई है। बहुत संभव है कि हिन्दी भाषा के प्रारंभिक इतिहासकार हिन्दी भाषा और साहित्य की दुनिया में ही इस क़दर उलझे रहे कि वे एक धार्मिक प्रकाशन के हिन्दी जगत पर पड़ने वाले प्रभावों पर ध्यान ही नहीं दे पाए।

बहरहाल, गीता प्रेस को लेकर यह चुप्पी पूरी बीसवीं सदी तक चलती रही। शायद इसकी वजह यह रही होगी कि हिन्दी जनक्षेत्र के निर्माण पर अध्ययन भी हाल में ही शुरू हुए हैं। कई मायनों में सन् 1997 में आया वसुधा डालमिया का शोध हिन्दी

साहित्यिक जगत और जनक्षेत्र की प्रक्रिया को समझने में मदद करता है। इसके बाद कई ऐसे उच्चस्तरीय शोध हुए जिन्होंने हिन्दी जगत के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद की। आलोक राय की *हिन्दी नेशनलिज़्म* (2001) हिन्दी भाषा के उद्भव को समझने का प्रयास करते हुए यह बताती है कि किस प्रकार ऊँची जातियों के वर्चस्व ने हिन्दी को संस्कृत पर आवश्यकता से अधिक निर्भर बनाकर हिन्दी भाषा के उर्दू-फ़ारसी से सहज संवाद और उसकी जीवंतता को छीन लिया। चारू गुप्ता की *सेक्सुअलिटी, ओब्सिनिटी, कम्युनिटी: वुमेन, मुस्लिम एंड द हिन्दू पब्लिक इन कॉलोनियल इंडिया* (2001) और उसके बाद आई फ़्रांसेस्का ओर्सिनी की पुस्तक *द हिन्दी पब्लिक स्फ़ियर: लैंग्वेज एंड लिटरेचर इन द ऐज ऑफ़ नेशनलिज़्म* (2002) भी मील का पत्थर साबित हुईं। इन शोध कार्यों के बावजूद केवल प्रकाशन समूहों, पत्रिकाओं, पर्चों आदि पर केन्द्रित कार्य दुर्लभ रहे, जिनमें उलरिक स्टार्क की *एन एम्पायर ऑफ़ बुक्स: द नवल किशोर प्रेस एंड द डिफ़्यूजन ऑफ़ द प्रिंटेड वर्ड इन कॉलोनियल इंडिया* (2007) उत्तर प्रदेश के एक बड़े प्रकाशन समूह के जीवन और कार्यशैली पर आधारित पहला बड़ा और विस्तृत काम है। हाल ही में प्रकाशित हुई शोभना निझावन की *वुमेन एंड गर्ल्स इन द हिन्दी पब्लिक स्फ़ियर: पीरियोडिकल लिटरेचर इन कॉलोनियल नॉर्थ इंडिया* (2012) ने स्त्री दर्पण, गृहलक्ष्मी, आर्य महिला जैसी स्त्री विषयक पत्रिकाओं और कुमारी दर्पण, कन्या मनोरंजन जैसी अन्य किशोरियों वाली पत्रिकाओं को केन्द्र में रख कर हिन्दी जन दायरों का नए ढंग से पुनर्मूल्यांकन किया है।

इन सब शोध कार्यों में गीता प्रेस को महज़ एक अनुच्छेद, परिशिष्ट या फुटनोट तक ही सीमित कर दिया गया है। यह धार्मिक प्रकाशन समूह किसी विस्तृत शोध का विषय नहीं बन पाया। गोरखपुर विश्वविद्यालय, इलाहाबाद और बनारस के विश्वविद्यालयों में गीता प्रेस और पोद्दार पर कुछ अध्ययन पीएचडी शोध कार्य के रूप में मौजूद हैं लेकिन वे अपनी प्रकृति में स्तुतिपरक हैं। इनमें से किसी भी कार्य में धार्मिक प्रकाशन समूहों और उत्तर प्रदेश में मौजूद पत्रिकाओं की बड़ी दुनिया का आलोचनात्मक मूल्यांकन नहीं किया गया है। दिल्ली विश्वविद्यालय में एम फिल का एक महत्वपूर्ण शोध कार्य और मोनिका होर्ट्समैन, मोनिका फ़ेयर और पॉल अर्ने जैसे विदेशी विद्वानों के कुछ मोनोग्राफ़्स और लेख गीता प्रेस पर उत्तेजक ढंग से निगाह तो डालते हैं लेकिन बीसवीं सदी के एक बड़े और सर्वाधिक सफल प्रकाशन समूह के बारे में कोई बड़ा और विस्तृत नज़रिया देने के लिहाज़ से नाकाफ़ी ही हैं।

पॉल अर्ने ने ‘गीता प्रेस को अनदेखा’ करने के कई कारण माने हैं। ⁶⁴पहला, गीता प्रेस का ‘सम्प्रदाय, आश्रम, प्रकाशक और फैक्टरी जैसी अवधारणाओं के साथ विलक्षण संबंधों वाली उसकी दुनिया’ का होना है। उन्होंने कहा है कि गीता प्रेस का ‘वैचारिक वजहों से प्रचार से किनारा करने’ और लोगों की व्यक्तिगत पूजा से दूरी रखने के सिद्धांत ने विद्वानों को इसके प्रकाशन समूह या संपादक के आलोचनात्मक

मूल्यांकन से दूर ही रखा। अर्ने यह भी मानते हैं कि हिन्दी में होने के कारण भी अंग्रेज़ी विद्वानों ने गीता प्रेस के समृद्ध कार्य पर उत्साहजनक ढंग से ध्यान नहीं दिया।

पोद्दार के कागज़ात (पोद्दार पेपर्स)

जब मैंने गीता प्रेस के इतिहास पर काम करना शुरू किया तब मेरे पास इतिहासकार वेंडी डोनिगर की शुभकामनाओं के सिवा कुछ नहीं था। अपने विश्वविद्यालय के दिनों में मैंने राष्ट्रीय संग्रहालय और नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय में महीनों बिताए लेकिन इन संस्थानों या संस्थान चलाने वाले लोगों से इससे जुड़ी सामग्री बहुत कम ही मिल पाई। हालाँकि संस्थान के बहुत से प्रशंसकों ने गीता प्रेस की सफलता और हिन्दी जन दायरे को बढ़ाने में इसके योगदान पर बात की। सबके पास गीता प्रेस या पोद्दार से जुड़े एक से बढ़कर एक भावुक और उनके प्रति भक्तिभावना से भरे हुए किस्से थे। गोयन्दका का शायद ही कहीं कोई ज़िक्र मिला और इन किस्सों में तथ्य तो न के बराबर थे।

गोरखपुर में गीता प्रेस के अधिकारियों ने अत्यंत महत्वपूर्ण अकादमिक सवालों पर भी सामूहिक रूप से चुप्पी साधे रखी। इसके विशाल पुस्तकालय और किताबघर में सबकुछ था लेकिन प्रेस की कहानी और पोद्दार या गोयन्दका के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। प्रकाशन समूह आज भी 'व्यक्तिगत पूजा' से असहमति रखता है इसलिए पोद्दार और गोयन्दका के लेखन ने तो उनकी मृत्यु के बाद भी गीता प्रेस पर दबदबा बनाए रखा जबकि स्वयं इन दोनों संस्थापकों पर कुछ भी लिखा हुआ मौजूद नहीं था। आशा से निराशा की ओर बढ़ने के दौरान ही एक पुराने परिचित ने मुझे गोरखपुर के दूसरे छोर पर मौजूद गीता वाटिका जाने की सलाह दी। पोद्दार ने अपनी ज़िन्दगी का बेहतर समय वहीं जिया था और अंतिम सांसें भी वहीं ली थीं। उनका परिवार और कुछ करीबी सहयोगी अब भी वहीं अलग-अलग घरों में रहते हैं। गीता वाटिका, जहाँ की आबो-हवा में ही धार्मिकता थी, मैं मैं हरिकृष्ण दुजारी से मिला। उनके पिता और बड़े भाई दोनों ने ही पोद्दार और गीता प्रेस के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया था। लगभग सत्तर वर्ष की उम्र और विनम्र स्वभाव वाले दुजारी गुज़रे ज़माने को समझने का एकमात्र माध्यम थे। वे मिलनसार और मितभाषी व्यक्ति हैं। हमारे शुरुआती कुछ घंटे पोद्दार के बारे में ही बात करते हुए बीते। वे पोद्दार को 'भाई जी' और गोयन्दका को 'सेठजी' कह कर संबोधित कर रहे थे।

दुजारी ने कल्याण के पुराने अंक उपलब्ध करवा देने की सहमति दे दी लेकिन साथ ही यह भी साफ़ कर दिया कि मुझे उन अंकों की फोटोकॉपी करवानी होगी, जो कि एक ऐसे शहर में बेहद कठिन काम था जहाँ बिजली की कटौती रोज़ ही होती थी। अगले कुछ दिनों तक जब उन्होंने मुझे गीता वाटिका और फोटोकॉपी की दुकान के बीच भागा-दौड़ी करते हुए देखा तब शायद वे इस प्रोजेक्ट के प्रति मेरी गंभीरता और ज़रूरत को समझ पाए। इसका पहला नतीजा यह निकला कि उन्होंने मुझे गीता

वाटिका में ही रह कर काम करने के लिए एक कमरे का प्रस्ताव दिया जिससे मैं गोरखपुर शहर के बीचों-बीच स्थित अपने होटल से यहाँ आने-जाने में लगने वाले समय को बचा सकूँ। और फिर, अपनी ओर से मदद करने वाली शैली में (जिसे मैं दुजारीपन कहता हूँ) उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास भाई जी के लिखे हुए और उनके नाम से प्राप्त हुए कुछ पत्र हैं। यह भली-भांति जानते हुए कि केवल *कल्याण* के अंकों से गुज़रना इस काम के लिए काफ़ी नहीं होगा, मैंने उनसे आग्रह किया कि उनके पास जो भी है वह मुझसे साझा ज़रूर करें।

महज़ कुछ पत्रों से शुरू हुआ यह सिलसिला अंत तक जाते-जाते पोद्दार और गीता प्रेस से भरी सूचनाओं और जानकारीयों के अंबार में बदल गया। मैंने अभी तक गीता वाटिका में जाकर रहना शुरू नहीं किया था लेकिन उन कागज़ात के लिए एकदम सुबह भी मुझे अपना होटल छोड़ने में कोई तकलीफ़ नहीं थी। दुजारी मुझे एक के बाद एक पोद्दार के पत्राचार की फ़ाइलें, पर्चे, सरकारी रिकॉर्ड और पोद्दार पर लिखे गए संचरित्र की पांडुलिपियाँ आदि देते गए। गोरखपुर की तपती गर्मी में कई बार दुजारी मुझे उसी कमरे में कागज़ात देखने के लिए छोड़ देते थे जहाँ पोद्दार का निधन हुआ था। मैं एक सार्वजनिक व्यक्तित्व के निजी दस्तावेजों को उन्हीं की स्मृतियों से भरे उनके कमरे में ही पढ़ रहा था, यह एक अति-यथार्थवादी अनुभव था। कमरे में रोशनी हल्की थी लेकिन उन कागज़ात से गुज़रते हुए मेरा प्रोजेक्ट सम्भावनाओं की चमक से भर गया। मैंने महसूस किया कि गीता प्रेस की कहानी को अलग ढंग से बयान करने की ज़रूरत है। मैंने यह भी महसूस किया कि हनुमानप्रसाद पोद्दार के बारे में बहुत कुछ कहा-सुना जाना बाक़ी था, जो अब तक प्रकाश में नहीं आया था। पोद्दार के कागज़ात सिर्फ़ गीता प्रेस से जुड़े किस्सों के बयान भर नहीं थे, बल्कि वे औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक काल में हिन्दू राष्ट्रवाद के इतिहास की महत्वपूर्ण रिक्तता को भी भरते थे। ये कागज़ात बता रहे थे कि किस प्रकार गीता प्रेस के निर्माताओं जैसे को बनाने वाले समर्पित कार्यकर्ताओं ने ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, हिन्दू महासभा और जनसंघ के लिए सफलता की बुनियाद तैयार की। दुजारी ने फ़ाइलों की फोटोकॉपी करवाने की स्वीकृति दी और इधर मैंने एक नई फोटोकॉपी की दुकान से जल्दी खुलने और देर से बंद होने का क़रार ले लिया। मेरे दिन दुकान में बैठकर उन दस्तावेज़ों की प्रतियाँ बनवाने में बीतने लगे जिन पर कई दशकों से रोशनी नहीं पड़ी थी।

गोरखपुर में अपने लगातार चल रहे दौरों के बीच ही मैं गीता वाटिका के गेस्ट हाउस का निवासी हो गया और वहाँ के नियम-क़ानून मानकर वहीं के छोटे से भोजनालय में महाराज (ब्राह्मण रसोइया) के हाथों बनने वाला सात्विक भोजन खाने लगा। दुजारी रोज़ाना कुछ फ़ाइलें मुझे देते जिनसे गुज़रने में मैंने अपनी रातें लगा दीं। हर दिन वे मुझसे कहते कि बस, अब और कुछ नहीं बचा है! लेकिन मैं हर दिन उनसे वही आग्रह करता कि एक बार फिर देख लीजिए कहीं कुछ और बचा तो नहीं है, और हर दूसरे दिन मैं पाता कि वे मेरे सामने और फ़ाइलों के साथ उपस्थित हैं। दुजारी के लिए पोद्दार एक संत थे। उनके लिए यह समझना कठिन था कि पोद्दार और गीता प्रेस

से जुड़ी जानकारी हासिल करने में किसी अंग्रेज़ी जगत के व्यक्ति को दिलचस्पी क्योंकर है! अंततः फ़रवरी 2012 में एक दिन उन्होंने अपने हाथ खड़े कर दिए और एक कमरे में लेकर गए जहाँ सिर्फ़ पोद्दार के कागज़ात के बक्से और बुकशेल्फ़ थे। वे सही कह रहे थे। मैंने वाक़ई उनका एक-एक हिस्सा देख लिया था और अब उनके पास साझा करने को कुछ नया नहीं था। मैंने अपने अति उत्साह में सब कुछ फोटोकॉपी करवा लिया था, सिवाय एक बक्से के; जिसके खुलने के बाद मेरी आँखों में आंसू आ गए। पीढ़ियों से इतिहास से ही अपनी खुराक हासिल करने वाले कीट-पतंगों ने हमें पोद्दार के जीवन के आखिरी वर्षों के महत्वपूर्ण कागज़ात से वंचित कर दिया था। गीता वाटिका में जो भी बचा था वह अवसान के कगार पर था जिस पर गंभीरता से ध्यान देने की ज़रूरत है। यहाँ तक कि मैंने जो अतिरिक्त प्रतियाँ दुजारी के लिए फोटोकॉपी करवाई थीं, वे भी जल्द ही गर्मी और नमी का शिकार हो जाएँगी।

गोरखपुर के प्रत्येक दौरे से दिल्ली वापसी के बाद मैंने अपने दिन नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय में जमनालाल बजाज, जी डी बिड़ला, सेठ गोविन्द दास, मदनमोहन मालवीय और अन्य लोगों से जुड़े कागज़ात खंगालने में बिताए। सभी पक्षों को बिंदुवार जोड़ने पर बीसवीं सदी के हिन्दू मिशनरियों और विशालकाय प्रकाशन समूह की एक ऐसी तस्वीर मेरे सामने उभरकर आई जिसकी दिलचस्पी, नीरव और प्रायः चिंतित करने वाली इस कहानी का सम्बन्ध केवल छपने-छपाने जैसे मुख्य कार्य तक ही सीमित नहीं था। यह हिन्दू राष्ट्रवाद के भारी पहिए का एक अहम अंग था जिसका गठबंधन भिक्षुकों, उदारवादियों, नेताओं, उपकारियों, शोधार्थियों और साम्प्रदायिक संगठनों जैसे आरएसएस, हिन्दू महासभा, जनसंघ तथा विहिप के अलावा कांग्रेस में शामिल रूढ़िवादी तत्वों तक सभी से था।

आने वाले पृष्ठों में गीता प्रेस की कहानी परत-दर-परत सामने आएगी। इस क्रम में हम सबसे पहले हनुमानप्रसाद पोद्दार और जयदयाल गोयन्दका के जीवन पर नज़र डालेंगे। फिर 'राष्ट्रवाद के व्यापक प्रतिमान' ⁶⁵ में रखकर इनका विवेचन करेंगे।

आने वाले विषयगत अध्यायों में *कल्याण* की स्थापना, इसके आरम्भिक वर्षों और उन तौर-तरीकों का वर्णन है जिसके माध्यम से पोद्दार ने पत्रिका और सन् 1934 में स्थापित इसके अंग्रेज़ी प्रतिरूप *कल्याण-कल्पतरु* के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय योगदानकर्ताओं (मुख्यतः लेखक) का पूरा संजाल तैयार किया। गीता प्रेस के बनने और उसकी यात्रा से जुड़ी महत्वपूर्ण घटनाओं की पड़ताल करते हुए ये पुस्तक यह रेखांकित करने का प्रयास करती है कि कैसे उत्तर प्रदेश के छोटे से क़स्बे में एक धार्मिक प्रकाशन समूह के उद्देश्य सन् 1926 के बाद के निर्णायक ऐतिहासिक मौकों पर राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक हिन्दू संगठनों के लक्ष्यों से जाकर मिल गए। ⁶⁶ यह पुस्तक इन वर्षों से लेकर विभाजन तक की अवधि में गीता प्रेस की भूमिका का इतिवृत्तात्मक खाका पेश करती है, जो अब तक उपलब्ध नहीं है। *कल्याण* के पृष्ठ यह स्पष्ट करते हैं

कि इस पत्रिका ने न केवल हिन्दू-मुस्लिम विभाजन को बल्कि निजी और सार्वजनिक तौर पर गांधी की आलोचना करते हुए साम्प्रदायिक नफ़रत को भी हवा दी ।

आज़ादी के बाद के वर्षों में गीता प्रेस फिर से हिन्दू कोड बिल के खिलाफ़ उपजे गुस्से के दौरान और गो-रक्षा आंदोलन में हिन्दू संगठनों का संवाहक बना । राजनैतिक रूप से भी प्रेस पहले के मुक़ाबले ज़्यादा मुखर हो गया था । उसने खुलेआम रामराज्य परिषद, हिन्दू महासभा जैसे पुरातनपन्थी संगठनों के लिए वोट मांगे और वहीं साम्यवाद के प्रसार के खिलाफ़ भी अपने विचार मज़बूती से रखे । पोद्दार के कागज़ात हिन्दू राष्ट्रवादी विमर्श में गीता प्रेस की अब तक नामालूम रही केंद्रीय भूमिका से जुड़ी महत्वपूर्ण बातों को उद्घाटित करते हैं ।

पोद्दार ने भी सतर्कतापूर्वक हिन्दी लेखकों, बुद्धिजीवियों, कलाकारों, राजनैतिक नेताओं और अन्य संगठनों के साथ अपने पत्राचार को संभाल कर रखा था । यह गीता प्रेस के हिन्दी साहित्यिक जगत के साथ संबंध को समझने में मदद करता है । साथ ही यह समझने में भी मदद करता है कि किस तरह हिन्दू धर्म का दृश्यशास्त्र गढ़ा गया जिसमें बाद में प्रगतिशील नाम अर्जित करने वाले कलाकार भी सहयोगी भूमिका में रहे । पोद्दार के कागज़ात गांधी के साथ उनके बनते-बिगड़ते संबंधों पर भी प्रकाश डालते हैं जिस पर अभी तक हिन्दू राष्ट्रवाद के शोधार्थियों की निगाह नहीं पड़ी है ।

गीता प्रेस और *कल्याण* द्वारा प्रकाशित अधिकांशतः निर्देशात्मक क्रिस्म के पर्वों के रूप में मौजूद प्राथमिक और द्वितीयक सामग्री के विस्तृत विश्लेषण के ज़रिए हम गीता प्रेस की उस महत्वपूर्ण भूमिका का मूल्यांकन कर सकते हैं जिसकी वजह से गीता प्रेस ने हिन्दुवाद को एक संगठित स्वरूप प्रदान किया । गीता प्रेस ने यह कार्य सनातन हिन्दू धर्म के जातीय विभाजन और स्त्री धर्म (जिसके तहत एक स्त्री को अपनी पुत्र संतान में हिन्दू नैतिक संस्कारों का चिरंतन समावेश करना होता है) जैसे पारंपरिक सिद्धांतों के प्रति अपने रुख में कोई फेर-बदल किए बग़ैर पूरा किया । इस परिप्रेक्ष्य का अभिन्न हिस्सा था—‘मुसलमान पुरुषों का कामुक, अय्याश और यौनाचार में लिप्त पराए समुदाय’ ⁶⁷ के रूप में चित्रण, जिनसे हिन्दू महिलाओं की रक्षा हर हाल में की जानी चाहिए ।

समग्रता से विश्लेषित करने पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दू अस्मिता की प्रभुता को प्रोत्साहित करने वाली गीता प्रेस की यह परियोजना गोयन्दका और पोद्दार की अनुपस्थिति में आज भी अपने लक्ष्य पर अडिग है । इन दोनों ही दिग्गजों का प्रभाव गीता प्रेस के अन्य प्रकाशनों और *कल्याण* के पृष्ठों पर यथावत है । पहले से अधिक विभाजित कर देने वाली आज की राजनीति के बीच भी गीता प्रेस का मंदिर ज्यों-का-त्यों टिका हुआ है । इसका राजनैतिक लक्ष्य अभी तक क्षीण नहीं हुआ और न ही इसकी यह धारणा कमज़ोर हुई है कि भारत एक दिन हिन्दू राष्ट्र ज़रूर बनेगा ।

अध्याय 1

बीसवीं सदी के हिन्दू मिशनरी और उनके पथ-प्रदर्शक

हनुमानप्रसाद पोद्दार *कल्याण* के संस्थापक संपादक थे। उन्होंने अपनी तरह की इस पहली धार्मिक पत्रिका को सन् 1926 से 1971 तक मृत्युपर्यन्त लगभग 45 वर्ष लगातार चलाया। प्रत्येक मानक पर यह एक विशिष्ट उपलब्धि थी और पोद्दार कोई साधारण संपादक नहीं थे। उनसे जुड़े किस्से और करिश्मे गोरखपुर के छह किलोमीटर के दायरे में फैले हुए हैं। इसके एक छोर पर विराट सुन्दर गेट वाले गीता प्रेस का कार्यालय है और दूसरे छोर पर शाहपुर में बनारस जाने वाली सड़क पर गीता वाटिका है, जो पिछले चार दशकों से पोद्दार का घर है। यहाँ लोग उस व्यक्ति की पवित्र मौजूदगी को महसूस करते हैं, जो ईश्वर से संवाद करने का दावा करता था।

गीता प्रेस के आस-पास घंटाघर, बसंतपुर, रेती और मिर्जापुर में मुस्लिम बहुल मुहल्ले हैं। जिनकी गलियाँ चक्करदार आड़ी-तिरछी हैं और ये मुहल्ले भीड़-भाड़ और शोरगुल वाले हैं। इसके ठीक विपरीत, सड़क किनारे बसा शाहपुर का इलाका अपेक्षाकृत सुनसान और बदहाल है, जहाँ खुले नाले, सड़क किनारे चाय के खोमचे और गोरखपुर के मशहूर मच्छरों की भारी भनभनाहट गूंजती है।

प्रेस के अन्दर और उसके बाहर पुस्तक की बड़ी दुकान में पोद्दार द्वारा रचित सौ से अधिक पुस्तकें प्रमुख रूप से प्रदर्शित हैं। लेकिन बड़ी संख्या में आने वाले आगंतुकों के लिए पोद्दार एक विलक्षण लेखक-संपादक मात्र ही रहे। पोद्दार केन्द्रित एक भी पुस्तक की अनुपलब्धता गीता प्रेस के उस व्यापक दार्शनिक लक्ष्य को पुष्ट करती है जिसके तहत धर्म का काम समाज की रक्षा करना था, न कि व्यक्ति विशेष का निजी प्रचार करना।

पोद्दार के पौत्र रसायेंदु फोगला एक सफल कारोबारी हैं जो सपरिवार गीता वाटिका में रहते हैं और पोद्दार की स्मृति में बनाए गए न्यास को चलाते हैं। गीता वाटिका से पोद्दार पर ढेरों पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं। साथ ही, गीता वाटिका पोद्दार का वह लेखन भी प्रकाशित करती है, जिसे गीता प्रेस ने कभी नहीं छापा। 'राधा माधव सेवा संस्थान' नाम से पहले ही स्थापित किया गया एक अन्य ट्रस्ट भी गीता वाटिका का हिस्सा है। यह भी पोद्दार के जीवन पर आधारित पुस्तकें प्रकाशित कर

चुका है। गीता प्रेस और गीता वाटिका दोनों ने ही पोद्दार को कभी अतीत में संबोधित नहीं किया। उनके लिए 'नित्यलीलालीन' शब्द प्रयोग में लाया गया। यह एक व्यक्ति को ईश्वरीय रूप देने का ही प्रयास है।

यहाँ हनुमानप्रसाद पोद्दार की कहानी व्यवसायी से आध्यात्मवादी बने जयदयाल गोयन्दका से पहले बताई जा रही है, जबकि जयदयाल गोयन्दका ही पोद्दार के आध्यात्मिक गुरु रहे और गीता प्रेस के पीछे उनकी ही दूरदृष्टि थी। राष्ट्रीय आंदोलन और गांधी से जुड़ कर काम करने की प्रबल इच्छा के बावजूद उन्होंने कभी भी पोद्दार को *कल्याण* से हट कर कुछ और नहीं करने दिया। 'सन् 1910 या 1911 में हुई उनकी पहली भेंट उनकी दृष्टि और क्रिया के परस्पर तीव्र सहमेल का परिणाम भी जान पड़ती है। और जैसा कि पोद्दार ने स्वीकार किया है कि यह गोयन्दका ही थे जिन्होंने उन्हें अपने धार्मिक उद्यम से जोड़ा।' ¹

गोयन्दका ने गीता प्रेस पर एक दैवीय आवरण बनाए रखा। वे इसके रोजमर्रा के भागदौड़ वाले कामों से कभी नहीं जुड़े। पोद्दार को एक संपादक की सारी स्वतन्त्रताएं देते हुए भी उन्होंने इसकी कार्यप्रणाली और प्रकाशन पर पैनी निगाह बनाए रखी। अपने दायित्वों से मुक्त होने की पोद्दार की हर कोशिश को गोयन्दका ने यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि गीता प्रेस और *कल्याण* पोद्दार के बिना कुछ नहीं हैं। और *कल्याण* का अनवरत प्रकाशन ही हिन्दू धर्म की रक्षा हेतु सर्वोच्च धर्म है।

इस तरह गीता प्रेस पोद्दार का पर्याय हो गया और पोद्दार गोयन्दका द्वारा बनाई गई एक छवि में कैद होते गए। पोद्दार कभी-कभी बीच में खीझ कर गोरखपुर छोड़ लम्बे समय के लिए अपने गाँव रतनगढ़ चले जाते थे लेकिन कभी गीता प्रेस, *कल्याण* का काम और गोयन्दका का नैतिक दबाव, तो कभी उनका दृढ़ विश्वास उन्हें वापस खींच ही लाता था। मारवाड़ी समाज के रहस्यमयी व्यक्ति ²गोयन्दका एक गृहस्थ-साधु थे। जब वे उपदेश नहीं दे रहे होते थे, उस समय आध्यात्म शान्ति की खोज में लगे एक अविраम यात्री होते थे। कभी-कभी वे मारवाड़ी परिवारों के व्यवसाय व संपत्ति के विवादों को सुलझाने वाले अंतिम निर्णायक की भूमिका में होते थे। गोयन्दका गीता प्रेस के पीछे की संचालक शक्ति थे जबकि पोद्दार इसका सार्वजनिक चेहरा।

हनुमानप्रसाद पोद्दार : जन्म और बचपन

'पोद्दार' शब्द फ़ारसी के 'पोत-दार' से निकला है, जिसका अर्थ है 'पोत' यानी 'दौलत' और 'दार' यानी 'रखवाला।' यह एक मुगलकालीन ओहदा था, जिनका दायित्व शासकों के संसाधनों जैसे भोजन और धन की रखवाली करना था। सन् 1950 में जमींदारी के खत्म होने तक अवध की रियासतों में यह ओहदा चलन में था। तहसील से लेकर राज्य व केंद्र सरकारों तक राजस्व वसूली और हस्तांतरण से जुड़े अधिकारियों को 'पोद्दार' कहा जाता था। ³

हनुमानप्रसाद मारवाड़ियों के बंसल गोत्र से थे और उनका परिवार बुनियादी रूप से बीकानेर के रतनगढ़ से था। उनके दादा ताराचंद शहर के जाने-माने व्यापारी थे। अपने समाज के अधिकांश लोगों के विपरीत उन्होंने रतनगढ़ से बाहर जाकर व्यवसाय के बेहतर विकल्पों की खोज नहीं की और रतनगढ़ में ही रहे। परिवार की परंपरा के अनुरूप उन्होंने दो विवाह किए और दोनों ही पत्नियों से उन्हें एक-एक पुत्र था। बाद के वर्षों में ताराचंद ने विदेश न जाने के अपने नियम को तोड़ा (विदेश—बीकानेर और रतनगढ़ की सीमा के बाहर की भूमि के लिए उन दिनों सामान्य रूप से प्रयुक्त एक शब्द) और अपने बड़े बेटे कनिराम को बाहर जाने की अनुमति दे दी। हालाँकि मारवाड़ियों के प्रामाणिक इतिहास 'देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान' में यह उद्धृत है कि पोद्दार कुल से लोग पहले भी कलकत्ता के बड़ा बाज़ार में कपड़ा व्यापारी के रूप में जाया करते थे।⁴

तीन दिन की ऊंट यात्रा करके कनिराम रतनगढ़ से कुचामन रेलवे स्टेशन पहुँचे जहाँ किसी घुमावदार रास्ते ने उन्हें कलकत्ता से शिलाँग पहुँचा दिया। मारवाड़ियों के विस्तृत नेटवर्क के माध्यम से कनिराम इस छावनी नगर में मौजूद व्यावसायिक अवसरों से परिचित थे। चुरू (राजस्थान) के नवरंगराम अग्रवाल जैसे मारवाड़ी उन्नीसवीं सदी के मध्य तक असम में ब्रिटिश मिलिट्री राशन के आपूर्तिकर्ता और व्यापारियों के रूप में पहले ही प्रसिद्धि कमा चुके थे।⁵

व्यापार के फलने-फूलने पर जल्द ही रतनगढ़ के अन्य पोद्दार भी शिलाँग आकर कनिराम से जुड़े। लेकिन कनिराम के जीवन में एक सूनापन था, उन्हें और उनकी पत्नी रामकौर देवी के कोई संतान नहीं थी। रामकौर एक धार्मिक व आध्यात्मिक महिला थीं, उन्होंने संतान प्राप्ति के लिए कर्मकांडों का सहारा तक लिया लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। इतने बड़े व्यापार का कोई उत्तराधिकारी न होने ने इस दंपति को डरा दिया और उन्होंने आधिकारिक रूप से अपने ही सौतेले छोटे भाई भीमराज को गोद ले लिया। कनिराम और रामकौर ने पूरा व्यवसाय और संपत्ति अपने छोटे भाई को सौंप दी, जो कलकत्ता के छोर से संपूर्ण पूर्वी भारत में तेज़ी से बढ़ रहे कनिराम के व्यापार को संभाले हुए था। इस गोद लेने को मारवाड़ी समुदाय के गणमान्य सदस्यों, निकट संबंधियों सहित उनके पिता ताराचंद पोद्दार का आशीर्वाद प्राप्त था।

रामकौर की संतानहीनता की जानकारी उनके पारिवारिक गुरु मेहरदास को थी, जो कि एक वैष्णव संत थे। इसके साथ-साथ इस बात का पता नाथपंथ के कई धर्मगुरुओं को भी था (विगत 600 वर्षों से रतनगढ़ नाथपंथियों और विभिन्न हिन्दू धार्मिक सम्प्रदायों लिए 'पीठ' रहा है)। भगवान विष्णु का आह्वान करते हुए लगातार कई यज्ञ करवाए गए और उसके बाद गरीबों व ब्राह्मणों को भोजन करवाया गया। तब गुरु मेहरदास ने भविष्यवाणी की, उनकी देवरानी से बहू बनी भीमराज की पत्नी रिखिबाई को पुत्र-धन की प्राप्ति होगी। इसी भविष्यवाणी के फलस्वरूप ईश्वर रूपी पोद्दार का जन्म होना था, जिसकी घोषणा एक अन्य धर्म गुरु मोतीनाथ महाराज

(टांटिया महाराज) ने भी की थी, जिनका बीकानेर के राजसी घराने पर गहरा प्रभाव था ।

मोतीनाथ ने कहा कि रिखिबाई का बेटा तीन विशिष्ट चिह्नों के साथ जन्म लेगा । ‘श्री’ का पवित्र निशान ललाट पर, कन्धों पर बाल और दाहिनी जांघ पर तिल । इसके अलावा उसके मुंह में एक तार जैसा पदार्थ होगा और इसके निकाले जाने के बाद ही वह रोएगा । पोद्दार के जन्म से जुड़े प्रकाशित, लिखित-अलिखित, सभी विवरण यह बताते हैं कि कैसे पोद्दार ठीक इन्हीं तीन चिह्नों के साथ पैदा हुए थे, जो उनके आगे आने वाले विलक्षण जीवन का संकेत था । उनकी चाची से दादी बनी हनुमान की परम भक्त रामकौर ने बालक का नाम हनुमान बक्ष रख दिया । कई सालों बाद कलकत्ता प्रवास के युवा दिनों में वही नाम हनुमानप्रसाद (पोद्दार) कहलाया । अपनी मृत्यु तक रामकौर लगातार हनुमान को यह याद दिलाती रहीं कि किस तरह वे ईश्वर का वरदान हैं, जिनका जन्म बड़े कामों को करने के लिए हुआ है!

इस तरह 17 सितंबर 1892 में भीमराज और रिखिबाई की संतान के रूप में जन्म लेने से पहले ही हनुमानप्रसाद पोद्दार को ईश्वर का अंश मान लेने की धारणा बनने लगी थी । लम्बे समय बाद परिवार में पहला लड़का होने से पोद्दार कुल में खुशी की लहर दौड़ गई थी । ब्रिटिश आर्मी की पूर्वी कमान में राशन आपूर्ति के पारिवारिक व्यवसाय ने पोद्दारों को धन और महत्व के स्तर पर पर्याप्त समृद्ध कर दिया था लेकिन उत्तराधिकारी की कमी चिंता का एक विषय बन गई थी । पोद्दार के जन्म से जुड़ी यह खुशी ज़्यादा दिन नहीं टिकी क्योंकि सन् 1894 में बीमारी की वजह से रिखिबाई चल बसीं । रिखिबाई अपने पीछे दो साल के हनुमान बक्ष को दादी रामकौर की देख-रेख में छोड़ गई ।

सन् 1896 के एक तेज भूकंप ने असम को भारी क्षति पहुँचाई । हनुमानप्रसाद के दो चचेरे भाई उस भूकंप में मारे गए और हनुमानप्रसाद जैसे-तैसे बचे । स्पष्ट था कि रामकौर ने हनुमानप्रसाद के बच जाने का संबंध ईश्वरीय कृपा और बच्चे के चमत्कारी होने से जोड़ा । इस भूकंप ने पोद्दार परिवार के व्यवसाय को काफ़ी नुकसान पहुँचाया । कनिराम जो बहुत चिंतन-मनन कर कलकत्ता पहुँचे थे, सन् 1899 में चल बसे । तब उनका गोद लिया बेटा भीमराज अपनी नई पत्नी और परिवार के साथ जाकर कलकत्ता बस गया । शिलाँग में हनुमानप्रसाद अपनी दादी के साथ अकेले रह गए । उसके बाद परिवार में घटी सिलसिलेवार त्रासदियों ने सात वर्षीय पोद्दार को अपनी दादी सहित वापस रतनगढ़ लौट कर बसने पर मजबूर कर दिया ।

रतनगढ़ के जोरावरमल के स्कूल से उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा हासिल की । इस स्कूल ने बच्चे को महाजनी बही-व्यवस्था और राजस्थान के विभिन्न हिस्सों में इसके व्यवहृत रूप से परिचित करवाया । लेकिन औपचारिक शिक्षा से वे वंचित ही रहे । रामकौर उन्हें अपने पैतृक शहर अमृतसर के उर्दू माध्यम स्कूल में दाखिल कराना चाहती थीं, जिसका उन्होंने विरोध किया । महज़ सात साल की अवस्था में भी उनका मानना था कि उर्दू शिक्षा उनके परिवार व समुदाय की हिन्दू संस्कृति और संस्कार के

विरुद्ध थी। उनका रतनगढ़ का जीवन उन्हें ऐसे अनेक साधु-संतों के सम्पर्क में ले आया, जिनसे उनकी दादी ने उनके जन्म से पहले आशीर्वाद प्राप्त किए थे। यहीं उन्होंने पहली बार गीता पढ़ी। आठ साल की अवस्था में गीता के श्लोक याद कर लेने के एवज़ में उन्हें स्वामी बखनाथ की ओर से फल भेंट में मिले थे। बाद में स्वामी बखनाथ के अनुयायियों में से एक ने उन्हें विधिवत संस्कार के बाद अपना शिष्य बना लिया। यही वह समय था जब हनुमान ब्राह्मणवादी रीतियों से गहरे परिचित हो रहे थे, जैसे जनेऊ धारण करना या उपनयन संस्कार। जिसे उन्नीसवीं सदी के अंत तक मारवाड़ियों (मूल रूप से वैश्य जाति के) ने जाति के अर्थों में, क्षत्रिय से ब्राह्मण की ओर पुनः उन्मुख होने के क्रम में अपना लिया था। ⁶ इसमें शाकाहार और यज्ञोपवित धारण करने का चलन शामिल था।

सन् 1904 में बारह वर्ष की अवस्था वाले हनुमानप्रसाद का विवाह रतनगढ़ के गुरुमुखराज ढांढरिया की बेटी महादेवी से हुआ। आगे के वर्षों में पोद्दार ने अपने परिवार की भलाई के लिए बहुत कुछ किया, विशेषकर अपनी दादी के लिए। इसी के चलते उन्होंने महादेवी से विवाह को भी स्वीकार किया जबकि महादेवी के चेहरे पर चेचक के निशान थे। विवाह के बाद हनुमानप्रसाद अपनी पत्नी और दादी रामकौर के साथ पिता का वस्त्र व्यापार संभालने कलकत्ता चले गए। इस फ़ैसले ने युवा पोद्दार की ज़िन्दगी का रुख ही बदल दिया। भारत की राजधानी कलकत्ता राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक हर दृष्टि से ब्रिटिश साम्राज्य का केंद्र थी। ⁷ इसके बाद के वर्षों में पोद्दार एक व्यवसायी, ईश्वर की ललक रखने वाले भक्त, साहित्यिक आकांक्षाएं रखने वाले एक व्यक्ति और एक क्रांतिकारी बन कर उभरे।

कलकत्ता: राजनीति और राजद्रोह

पहले धार्मिक, सांस्कृतिक और फिर कलकत्ता के राजनैतिक जीवन में हनुमानप्रसाद का आगमन सनातन धर्म पुष्टकरणी सभा के माध्यम से हुआ जिसकी स्थापना उनके पिता ने मदनगोपाल कोठारी, शिवनारायण व्यास और शिवप्रसाद आचार्य के साथ मिल कर की थी। हालाँकि सभा छोटे पैमाने पर संचालित होती थी, लेकिन यह उन विस्तृत पुनरुत्थानवादी आंदोलनों की प्रवृत्ति का ही हिस्सा थी जो ऐसी संस्थाओं के माध्यम से रूढ़िवादी हिन्दूवाद को गढ़ने पर ज़ोर देती थी। ⁸ ऐसी सभाएँ उन्नीसवीं सदी के अंत तक दिखाई देने लगी थीं।

भीमराज की पुष्टकरणी सभा साधु-संतों को सत्संग और भाषण के लिए आमंत्रित किया करती थी, और इन्हीं मुलाकातों ने हनुमानप्रसाद के भीतर हिन्दू धर्म के रीति-रिवाजों के प्रति उनकी आस्था को मज़बूत किया, जिसमें मानव जीवन के अंतिम न्यायकर्ता के रूप में गीता और गो-रक्षा जैसे मुद्दे शामिल थे। गीता प्रेस में उनके लक्ष्यों

को आसपास के इसी माहौल ने गढ़ा। यही वह समय भी था जब उनकी मुलाकात जयदयाल गोयन्दका से हुई।

जहाँ गोयन्दका और पुष्टकरणी सभा ने हनुमानप्रसाद के भीतर सनातन धर्म की सर्वोच्चता के विश्वास को गहरे बैठाया, वहीं हिन्दू महासभा की सदस्यता ने उन्हें यह सिखाया कि धर्मांतरण व गो-रक्षा जैसे लक्ष्यों की प्राप्ति साम्प्रदायिक-राजनैतिक लामबंदी के ज़रिए ही की जा सकती है। इसके साथ ही सन् 1907 के कलकत्ता कांग्रेस में बतौर युवा प्रतिनिधि दौरा करने के बाद वे 'गरमदल' के बिपिनचन्द्र पाल के प्रभाव में भी आए। इस तरह महात्मा गांधी के सम्पर्क में आने से पहले ही उनकी अपनी एक राजनैतिक समझ आकार ले चुकी थी। सन् 1915 में जब गांधी दक्षिण अफ्रीका से वापस लौटते वक़्त रंगून से होते हुए कलकत्ता पहुँचे तब महासभा के सदस्य के रूप में पोद्दार ने अल्फ्रेड थिएटर में स्मृति चिह्न भेंट कर उनका स्वागत किया था। बाद के वर्षों में दोनों के बीच जीवन भर का एक खास, उतार-चढ़ाव भरा रिश्ता बन गया।

कलकत्ता ने भी हनुमानप्रसाद को पत्रकारों और हिन्दी जगत के शीर्ष के लोगों से परिचित होने का अवसर दिया। यह वह समय था जब हिन्दी-हिन्दुस्तानी की उग्र बहस अपने उफान पर थी। इनमें से बहुत से संबंधों को गीता वाटिका में निजी रूप से रखे गए समृद्ध पुरालेखों में दस्तावेज़ीकृत किया गया है। इन दस्तावेज़ों में *भारतमित्र* के संपादक और *कल्याण* में नियमित योगदान देने वाले लक्ष्मण नारायण गर्दे ⁹, और बैंक क्लर्क से पत्रकार बने पोद्दार के मित्र व *कल्याण* के लिए लिखने वाले अंबिकाप्रसाद वाजपेयी के साथ उनके संबंध का विशेष रूप से ज़िक्र मिलता है। अंबिकाप्रसाद वाजपेयी *नरसिंह* और बाद में राजनैतिक अखबार *स्वतंत्र* के संपादक भी रहे। ¹⁰ तिलक के होमरूल लीग में पोद्दार की रुचि के पीछे वाजपेयी का बड़ा हाथ था। उसके बाद रूढ़िवादी मारवाड़ी अखबार *कलकत्ता समाचार* के संपादक झावरमल शर्मा थे, और क्रद में इन सबसे बड़े *सरस्वती* के संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी भी थे, जिन्होंने सेवानिवृत्ति के बाद *कल्याण* के लिए लेखन कार्य किया और पोद्दार से विस्तार में पत्राचार भी करते रहे। *कलकत्ता समाचार* बाद में *हिन्दू संसार* बन गया। यह एक ऐसा दैनिक था जिसके लिए सनातन धर्म ही सबकुछ था। ¹¹

पोद्दार के विस्तृत साक्षात्कारों के प्रकाशित-अप्रकाशित विवरणों पर आधारित जीवनियों में बांग्ला अखबारों के संपादकों से उनकी नज़दीकियों के प्रमाण मिलते हैं। उनकी शुरुआती पहचान *संध्या* के संपादक ब्रह्मबांधव उपाध्याय से हुई जो अपने जीवन के विभिन्न पड़ावों पर कभी ब्रह्म और कभी कैथोलिक रहे। वे सन् 1905 में स्थापित 'प्रिंट्स एंड कंपोजिटर्स' लीग के सचिव भी थे। यह वह वर्ष था, जब स्वदेशी आंदोलन अपने उफान पर था। *संध्या* द्वारा प्रयुक्त 'सड़कछाप, जंगली और अधिकांशतः अपशब्दों भरी भाषा', और खुलेआम अपने से 'एक हिन्दू, एक बंगाली' बने रहने के आह्वान की छाया विभाजन और आज़ादी के आरंभिक वर्षों में पोद्दार द्वारा *कल्याण* में किए जा रहे लेखन में साफ़ दिखाई देने लगी। ¹²

उसके बाद *बन्देमातरम्* से जुड़े अरविंद घोष, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, सुबोध चन्द्र मलिक और *युगांतर* के संपादक भूपेन्द्रनाथ दत्त ने भी बंगाल विभाजन के दौरान ब्रिटिश निर्णयों से निपटने के लिए हिंसा की खुलेआम वकालत की।

सभी कांग्रेस नेताओं में से मदनमोहन मालवीय के साथ पोद्दार के वैचारिक और निजी दोनों स्तरों पर सबसे स्थायी संबंध थे। उन्होंने मालवीय के दूसरे बेटे रमाकांत के साथ भी अच्छे संबंध बना लिए थे जिसके बतौर कमीशन एजेंट ग़लत फ़ैसले ने उसे बड़ी आर्थिक क्षति पहुंचाई थी। जिसकी भरपाई उसने अपने पिता द्वारा बिड़ला से कांग्रेस के लिए इकट्ठे किए गए पैसों से करने की कोशिश की। परिणामस्वरूप, पिता-पुत्र के आपसी संबंध तनावपूर्ण हो गए थे और वे दोनों आपस में पोद्दार के ज़रिए ही बात किया करते थे। ¹³ मालवीय और पोद्दार ने हिन्दुओं के अधिकारों से जुड़े कई मुद्दों पर साथ में काम किया। बरहज (देवरिया जिला, संयुक्त प्रांत) में गोशाला खुलवाने के लिए धन प्रबंधन जितने छोटे-से-छोटे मसले पर भी मालवीय पोद्दार और बाबा राघवदास से परामर्श लेते थे। ¹⁴

पोद्दार ने स्वभाव से खिलंदड़ पंचकौरी बनर्जी को भी अपने मित्रों में गिना है। *बन्देमातरम्*, *संध्या* और *युगांतर* के बंद हो जाने पर बनर्जी ने तीव्र ब्रिटिश विरोधी स्वर को अपने दैनिक *नायक* में कायम रखा। ¹⁵

इस दौरान पोद्दार का निजी जीवन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से भरा रहा। सन् 1909 में बच्चे को जन्म देने के दौरान महादेवी की मृत्यु हो गई और उसके बाद नवजात भी चल बसा। सन् 1911 में पोद्दार ने सेठ मंगतूराम सरावगी की बेटी सुबतिबाई से विवाह किया। सन् 1916 में प्रसूति के समय वे भी चल बसीं। इसी वर्ष पोद्दार ने असम के बड़े व्यापारी सीताराम संगनेरिया की बेटी रामदेई बाई से तीसरा विवाह किया। स्वदेशी आंदोलन से जुड़कर पहले ही खादी पहनना शुरू कर चुके हनुमानप्रसाद ने अपनी पत्नी को उसके विदेशी कपड़े त्यागने के लिए प्रभावित करने की पूरी कोशिश की। ¹⁶

बंगाल की प्रचंड राजनीति में हिंसा ने निर्णायक भूमिका निभाई थी। इससे अपने व्यापार, सामुदायिक मामलों और लोकोपकार में तल्लीन रहने वाला बड़ा बाज़ार का मारवाड़ी मोहल्ला भी अछूता नहीं रहा। 21 जुलाई 1916 को देर रात उस समय आस-पड़ोस के लोग चौंककर उठ गए जब एक ब्रिटिश सार्जेंट ने एक हिन्दुस्तानी इंस्पेक्टर और सात-आठ पुलिस वालों के साथ मिलकर उस ज़कारिया स्ट्रीट पर छापा मारा, जहाँ शीर्ष मारवाड़ी व्यापारी घनश्यामदास बिड़ला रहते थे। छापेमारी के दौरान बिड़ला तो पकड़ में नहीं आए, लेकिन अगले कुछ ही घंटों में सुतापट्टी में मारे गए छापे में ओंकारमल सराफ़ को गिरफ़्तार कर लिया गया। दोपहर तक क्लाइव स्ट्रीट में भी छापा पड़ा और नतीजतन हनुमानप्रसाद पोद्दार और ज्वालाप्रसाद कनोडिया भी गिरफ़्तार कर लिए गए।

अगले दिन *कलकत्ता समाचार* ने इस छापे की खबर तो प्रकाशित की किन्तु सहमे स्वर में। उस खबर में गिरफ़्तारी की वजहों को नज़रअंदाज़ किया गया। संपादकीय

स्वर वाली इस खबर में रिपोर्ट किया गया, 'इस घटना ने बड़ा बाज़ार के मारवाड़ियों में उथल-पुथल मचा दी है... यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि किस अपराध में इन युवा लड़कों को पुलिस द्वारा हिरासत में लिया गया है। जो भी हो, यह मारवाड़ी जगत के लिए नई घटना है। हम नहीं समझ पा रहे हैं कि इन युवा लड़कों ने ऐसा क्या किया है! पूरा मारवाड़ी जगत इस घटना से चौंक गया है। हम उम्मीद करते हैं कि सरकार इस पर सही निर्णय लेगी।' अखबार ने सम्मानजनक ढंग से आगे लिखा, 'हम एक पल के लिए सरकार के न्याय पर संदेह नहीं कर रहे हैं लेकिन इन निरपराध लोगों के बारे में हम अपनी पक्की राय को भी नहीं बदल सकते। हम उम्मीद करते हैं कि बंगाल की सरकार, जितनी जल्दी हो सके, गिरफ्तार किए हुए इन युवा मारवाड़ियों के मामले की सुनवाई करे और उनके साथ न्याय करे।' ¹⁷

इधर दो दिन बाद भी *कलकत्ता समाचार* ने या तो गिरफ्तारी की वजहों से अंजान होने या अपने पाठकों से इसे छिपाने की कोशिश में अपनी विलापपूर्ण रिपोर्टिंग जारी रखते हुए लिखा, 'कौन हैरान नहीं होगा कि जिस ज़मीन पर कभी कोई फसल पैदा नहीं हुई, वहाँ ज्वार होने की बात कही जा रही है। राजपूतों की धरती के सच्चे वारिस मारवाड़ियों की ओर से राजद्रोह का कोई एक भी मामला नहीं है।' ¹⁸

कलकत्ता समाचार अकेला नहीं था। कई अन्य अखबार भी इन गिरफ्तारियों पर यही रुख अपनाए हुए थे और गिरफ्तारी की वजहों पर बस अनुमान लगा रहे थे। इन अनुमानों में उप पुलिस निरीक्षक बसंत कुमार चटर्जी (*दि इंग्लिशमैन*) की हत्या से लेकर कलकत्ता तथा मैमन सिंह (*संजीवनी*) में पुलिस अधिकारियों की हत्या जैसे अलग-अलग तरह के अनुमान शामिल थे। *हितवादी* ने लिखा कि गिरफ्तारी से सामान्य जनता बुरी तरह चकित है, वहीं *कलकत्ता समाचार* की तरह *मारवाड़ी* भी मारवाड़ियों के अराजनैतिक स्वभाव पर पर जोर डालते हुए यह लिख रहा था कि कैसे मारवाड़ी समुदाय हमेशा सरकार का वफ़ादार रहा है। उसके अनुसार, राजनैतिक अपराध की बात तो दूर, मारवाड़ी समुदाय किसी भी क्रिस्म के अपराध में संलिप्त नहीं रहा है।

बड़ा बाज़ार अफ़वाहों से गर्म था। ¹⁹ पहली अफ़वाह थी कि ये गिरफ्तारी मारवाड़ियों से पैसे ऐंठने के लिए की गई है। कहा जा रहा था कि एक धनी मारवाड़ी के दामाद को उठाया गया है और सरकार उसे 30 लाख रुपए लेकर ही छोड़ेगी और यह पैसा युद्ध के फण्ड में जाएगा।

21 जुलाई के छापे में इक्तीस पिस्टल बरामद हुईं और बहुत जल्द ही पता चला कि गिरफ्तारी की वजह सन् 1914 का रोड्डा आर्म्स रॉबरी केस था। सन् 1918 में जस्टिस रोलेट के नेतृत्व में बनी राजद्रोह समिति ने इसे 'बंगाल में क्रांतिकारी अपराध बढ़ोतरी में सबसे अहम घटना बताया।' ²⁰

कलकत्ता स्थित आर. बी. रोड्डा एंड कंपनी बंदूकों और गोला-बारूद आयात करने वाली सबसे बड़ी फर्मों में से एक थी। 26 अगस्त 1914 को कंपनी क्लर्क सिरिष चन्द्र मित्र ने कस्टम क्लीयेरेंस ऑफिस से 202 पेटियों का कंसाइटमेंट प्राप्त किया। वे

कंपनी के गोदाम में केवल 192 पेटियों के साथ पहुँचे और यह कह कर चले गए कि बाक़ी की पेटियां वे बाद में लौटा देंगे, लेकिन उन्होंने कभी नहीं लौटाईं। इन दस गायब पेटियों में 0.300 बोर की पचास माउज़र पिस्टल और 46,000 कारतूस थे। हर पिस्टल पर नंबर लिखा हुआ था और ये नंबर रोड्डा एंड कंपनी के रिकॉर्ड में दर्ज थे। राजद्रोह समिति की रिपोर्ट ने दावा किया कि इनमें से 44 पिस्टल तुरंत ही नौ क्रांतिकारी समूहों में बाँट दी गई थीं और 54 का डकैती के मामलों में इस्तेमाल हुआ था। 'अगस्त 1914 के बाद शायद ही ऐसी कोई क्रांतिकारी घटना रही हो जिनमें रोड्डा कंपनी की पिस्टल का इस्तेमाल न हुआ हो।' रिपोर्ट के अनुसार, 'बड़ी कठिनाइयों के बाद पुलिस ने इकत्तीस पिस्टल बरामद कीं।' ²¹

पोद्दार के कागज़ात में बड़ी मात्रा में इस मामले से जुड़े दस्तावेज़ हैं। इसके अलावा इसमें बंगाल सरकार के राजनीतिक विभाग और सन् 1955 में अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन को दिए पोद्दार के विस्तृत साक्षात्कार शामिल थे। यह सम्मेलन भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता संघर्ष पर निकाली जा रही विस्तृत पुस्तक परियोजना के लिए इस्तेमाल किया जाना था। इस साक्षात्कार में पोद्दार ने रोड्डा षड्यंत्र में जी डी बिड़ला के सम्मिलित होने से यह कहते हुए इंकार किया है कि उन्हें (पोद्दार) यह ठीक से याद नहीं कि छापे के दिन जी डी बिड़ला कहाँ थे! शायद वे उस दौरान बॉम्बे या उटकमंड (आजकल का ऊटी) में थे। बिड़ला के जीवन से जुड़े आधिकारिक विवरण भी उनके निर्दोष होने के दावों की पुष्टि करते हैं, लेकिन इन विवरणों में साथ-साथ यह भी लिखा है कि उनके परिवार ने उन्हें राजस्थान के शेखावटी क्षेत्र में मुकुंदगढ़ भेज दिया था। ²²

अपने साक्षात्कारों और अपने प्रकाशित विवरणों में पोद्दार ने मारवाड़ी युवाओं की अंदरूनी दुनिया का खुलासा किया कि किस तरह उनके अनेक सामाजिक और साहित्यिक संगठन विध्वंसक गतिविधियों में शामिल थे। ये संगठन स्वदेशी आंदोलन के दौरान सक्रिय क्रांतिकारी नेताओं और समूहों से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। जी डी बिड़ला इन्हीं समूहों का अभिन्न अंग थे। यह उल्लेखित करते हुए कि उनकी स्मृति उनका साथ नहीं दे रही है, उन्होंने इन विवरणों में स्वयं को स्वदेश बांधव समिति का सदस्य बताया है। इस बात की पुष्टि कहीं और नहीं होती। बस मेधा कुदेसिया ने पोद्दार को अनुशीलन समिति का सदस्य बताते हुए कहा है कि वे इसकी बैठकों में नियमित रूप से शामिल हुआ करते थे और फण्ड भी दिया करते थे। ²³ पोद्दार के अपने साक्षात्कार और पत्राचार से पता चलता है कि भारतीय अर्थशास्त्र की बेस्ट सेलर देशेर कथा के लेखक सखाराम गणेश देउस्कर से उनके नज़दीकी रिश्ते थे। सखाराम गणेश देउस्कर बांग्ला भाषा में प्रवीण एक मराठी विद्वान थे। ²⁴

मारवाड़ी युवाओं की सबसे अग्रणी सोसाइटी मारवाड़ी सहायक समिति थी, जिसके तहत चार उपसमितियाँ गुप्त रूप से काम करती थीं। ये राष्ट्रीय मुद्दों, सामाजिक सुधारों और क्रांतिकारी गतिविधियों पर अलग-अलग तरह से काम करती

थीं । मारवाड़ी समिति का ढांचा अनुशीलन समिति जैसा ही था जिसमें सदस्य यह शपथ लेते थे कि वे खुद से पहले देश को स्थान देंगे और हर क्रीमत पर गोपनीयता को बनाए रखेंगे । बिड़ला गार्डन से लेकर फूलचंद चौधरी के घर या नागरमल मोदी के आवास तक इसकी बैठकों के ठिकाने नियमित रूप से बदलते रहते थे । इसके अधिकांश सदस्य मारवाड़ी थे जिनमें से कुछ ने औपनिवेशिक से लेकर उत्तर-औपनिवेशिक भारत तक भारतीय व्यवसाय में अपना दबदबा कायम रखा । हनुमानप्रसाद पोद्दार, बनारसीदास झुनझुनवाला, ज्वालाप्रसाद कनोडिया, रामेश्वरप्रसाद मोरारका और घनश्यामदास बिड़ला आदि इसके कुछ प्रमुख सदस्य थे । संपूर्ण सदस्यों की सूची इनमें से किसी के पास भी उपलब्ध नहीं थी । पोद्दार ने खुद स्वीकार किया है कि ‘सार्वजनिक कार्यों और समाज के गुप्त आयामों में बड़ा फ़र्क था’ । ²⁵

हनुमानप्रसाद पोद्दार जीवनभर इस बात को मानते रहे कि उनका गीता से साहचर्य क्रांतिकारिता के दिनों से था । घनश्यामदास बिड़ला के बड़े भाई जुगल किशोर बिड़ला के संरक्षण में मारवाड़ी युवाओं द्वारा चलाई जा रही एक अन्य गुप्त समिति ‘साहित्य संबंधिनी समिति’ ने बाबूराव विष्णु पराड़कर द्वारा किए गए गीता के शुरुआती हिन्दी अनुवाद को *टीकावाली गीता* प्रकाशित किया । पोद्दार को इस पुस्तक के आवरण ने आकर्षित किया जिसमें भारत माता थीं, जिनके एक हाथ में गीता थी और दूसरे हाथ में तलवार सुशोभित थी । यह पुस्तक हज़ारों की तादात में बिकी और इसने धार्मिक पुनरुत्थान के क्रांतिकारियों पर बढ़ते हुए प्रभाव को और मज़बूती प्रदान की । सन् 1938 में *कल्याण* के लिए अपने एक लेख में पराड़कर ने लिखा कि किस तरह क्रांतिकारियों को प्रभावित करने वाली *टीकावाली गीता* को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया और साहित्य संबंधिनी समिति पर नज़र रखने का काम शुरू हो गया । ²⁶

गुप्त सभाओं की इतनी विस्तृत व्यवस्थाओं और इससे जुड़े गंभीर संकल्पों पर काम करने के लिए सभी युवा मारवाड़ियों को बस एक मौक़े की तलाश थी, जिससे वे अपना पराक्रम दिखा सकें । इस लिहाज़ से रोड्डा षड्यंत्र उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़ी एकमात्र घटना साबित हुआ । इन गिरफ़्तारियों पर कलकत्ता के वरिष्ठ मारवाड़ियों ने अफ़सोस जताया और इसे व्यापार और ब्रिटिश शासन के प्रति निष्ठा से विचलन कह कर संबोधित किया ।

रोड्डा षड्यंत्र में मारवाड़ियों द्वारा दिए गए विवरणों में कुछ फ़र्क भी था । जैसे ही मामले में संलिप्त अनेक लोगों, जिनमें हनुमानप्रसाद पोद्दार और प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका प्रमुख थे, ने स्वयं को निर्दोष या मामले में अपनी भूमिका कम साबित करने के लिए बाहर आकर क्रांतिकारी गतिविधियों के प्रति अपनी अनिच्छा ज़ाहिर की, वैसे ही षड्यंत्र में संलिप्त नए लोगों के नाम सामने आने लगे ।

दस पेटियों के साथ-साथ सिरिष चन्द्र मित्र के गायब हो जाने के बाद अगली समस्या हथियारों और गोला बारूद को छिपाने के लिए सही जगह की तलाश करनी थी

। हनुमानप्रसाद के कागज़ात बताते हैं कि उनके घर काम करने वाला नौकर सुखलाल इस काम में मददगार सिद्ध हुआ, वहीं बाबूराव विष्णु पराड़कर ने भी अहम भूमिका अदा की। ²⁷पेटियों को बड़ा बाज़ार के आस-पास की जगहों पर फैला दिया गया। हरिसन रोड, नई टोला, कन्नूलाल लेन, चितपुर रोड पर बनारसीप्रसाद झुनझुनवाला की गद्दी (कारोबारी प्रतिष्ठान) और दो बक्से सुतापट्टी वाले ओंकारमल सर्राफ़ के घर जो अंततः घूमकर पोद्दार के क्लाइव स्ट्रीट गद्दी में पहुंचाए गए। कुछ सामान चंद्रनागौर भेजा गया। उस समय क़ानून की पढ़ाई पढ़ रहे और क्रांतिकारियों के साथ सक्रिय रूप से जुड़े हिम्मतसिंहका ने दो बक्से सर्राफ़ से पोद्दार के कारोबारी प्रतिष्ठान तक पहुँचाने में मदद की। गोला-बारूद का एक गुप्त हिस्सा कुछ दिनों के लिए जी डी बिड़ला के घर पर भी छिपाया गया था।

पोद्दार ने अपने एक साक्षात्कार में कहा कि घटना के तुरंत बाद उनकी दुकान पर छापा पड़ा था लेकिन उनके ससुर की पुलिस में जान पहचान होने के कारण उन पर कोई कार्रवाई नहीं की गई। उनकी दुकान से बरामद हुई कुछ बंदूकों वाली बात को भी उन्होंने तोड़-मरोड़ दिया। उन्होंने कहा, 'सारी बंदूकें बंगालियों/क्रांतिकारियों को दे दी गई थीं।' दो ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या के मामले में कथित आरोपी होने के कारण पहले ही निगरानी में रखे गए सिरिष चन्द्र मित्र के घर भी तलाशी ली गई लेकिन कुछ भी हाथ न लगा। यहाँ तक कि रोड्डा केस में भी उनकी भूमिका साबित नहीं हो पाई। वे भूमिगत हो गए।

रोड्डा आर्म्स षड्यंत्र के पीछे के लोगों को पकड़ने के लिए पुलिस ने जाल बिछाया। एक सीआईडी अफ़सर ने फूलचंद चौधरी से यह कहते हुए सम्पर्क साधा कि एक बंगाली क्रांतिकारी ने उनके, हिम्मतसिंहका, बिड़ला, पोद्दार, कनोडिया और सर्राफ़ को अपना सरगना कहकर उनके नाम पर मुहर लगाई है। ऐसा कहा गया कि इंस्पेक्टर ने उनसे मामले को रफ़ा-दफ़ा करने के लिए 10,000 रुपए की रिश्वत मांगी है। पूरे समूह ने इंस्पेक्टर के प्रस्ताव के बारे में आपस में बातचीत की और तय किया कि वे उसकी शिकायत आला अफ़सरों से करेंगे। एक सरकारी कर्मचारी चौधरी ने अपने बॉस, एक अंग्रेज़ और कलकत्ता पुलिस कमिश्नर चार्ल्स टेगार्ट के जीजा को पूरा मामला समझाया। कमिश्नर ने तुरंत कार्रवाई करते हुए भ्रष्ट इंस्पेक्टर को बर्खास्त कर दिया। काफ़ी समझाने-बुझाने के बाद टेगार्ट को मामले में चौधरी व उनके साथियों की सहभागिता पर सहमत कर लिया गया और सभी के खिलाफ़ भारतीय दंड संहिता की धारा 120 के तहत गिरफ़्तारी का वारंट जारी कर दिया गया। हिम्मतसिंहका की गिरफ़्तारी सबसे पहले हुई और इंडिया एक्ट के तहत सख्त कार्रवाई करते हुए उन्हें मार्च 1916 में बंगाल को दो साल के लिए छोड़ने की सज़ा सुनाई गई। बिड़ला को छोड़कर बाक़ी सभी को कुछ महीने बाद पकड़ लिया गया।

पोद्दार और उनके साथियों को दुलांडा हाउस के पुराने पागलखाने में पंद्रह दिनों तक रखा गया। ²⁸पहले उन्होंने जेल का सड़ा-गला खाना खाने से इंकार कर दिया।

कलकत्ता समाचार के संपादक झावरमल शर्मा ने मारवाड़ी क्रांतिकारियों के लिए घर के बने खाने का इंतज़ाम करने का ज़िम्मा लिया। 3 अगस्त 1916 को सबूतों की कमी के कारण छूटने वालों में पहले सर्राफ़ थे।

पुलिस छापेमारी के दिन बिड़ला की ग़ैर-मौजूदगी और बाद में पुलिस की फाइलों से उनके नाम के गायब होने के कई अर्थ लगाए गए। कलकत्ता में उनके विस्तृत व्यापार ने उनके परिवार के लिए बड़ी पहुँच के साथ काम आसान कर दिया था। पोद्दार के कागज़ यह दावा करते हैं कि मारवाड़ी सहायक समिति के अहम सदस्य बैजनाथ केडिया के मामले में हुई प्रगति से बिड़ला को वाकिफ़ करवाने के लिए बॉम्बे भेजा गया था। वहीं, हिन्दू महासभा के नेता आशुतोष लाहिड़ी की मानें तो बिड़ला के परिवार ने पुलिस के जाल से बचने के लिए एक लाख रुपए खर्च किए थे। ²⁹ एक बात यह कही जा रही थी कि परिवार ने कैलाश चन्द्र बोस से सम्पर्क किया जो कलकत्ता की ब्रिटिश सरकार के क़रीबी थे और मारवाड़ियों के मित्र थे। यह बात पक्के तौर पर कही जा सकती है कि बोस ने लाल बाज़ार पुलिस के साथ जी डी बिड़ला की जमानत ली थी। इसके साथ-साथ टेगार्ट ने भी अपनी ओर से अच्छी-खासी मदद की थी, जिसके चलते उनके बिड़ला से रिश्ते दीर्घकालिक रूप से प्रगाढ़ हुए और सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने बिड़ला के लंदन व्यवसाय को संभाला। ³⁰

दुलांडा हाउस में पंद्रह दिन बिताने के बाद पोद्दार, चौधरी और कनोडिया को अलीपुर जेल भेज दिया गया। पोद्दार ने कहा कि उन्हें वहाँ प्रताड़ित तो नहीं किया गया, लेकिन चौधरी को उसके गाँव पंजाब भेज दिया गया जहाँ उन्हें स्थानीय पुलिस की प्रताड़ना का सामना करना पड़ा। उन्हें ब्रिटिश सरकार के डिफेंस ऑफ़ इंडिया एक्ट के तहत पकड़ा गया था जिसमें अभियोग चलाए बिना भी गिरफ़्तार किए गए व्यक्तियों को जेल में रखने का प्रावधान था। 21 अगस्त 1916 को आए आदेश द्वारा पोद्दार को बाँकुड़ा शहर से अड़तीस किलोमीटर दूर एक गुमनाम गाँव सिमलापाल में नज़रबंद कर दिया गया।

बंगाल सरकार के सचिव द्वारा जारी नज़रबंदी के आदेश में लिखा था ‘...बंगाल सरकार के मतानुसार, यह मानने के लिए पर्याप्त वजहें हैं कि हनुमानप्रसाद पोद्दार ने जो किया है, जो कर रहे हैं और जो कर सकते हैं, वह सार्वजनिक सुरक्षा के लिए नुक़सानदेह है।’ इसके बाद पोद्दार को बाँकुड़ा के पुलिस अधीक्षक के पास उपस्थित होने को कहा गया। एसपी ने उन्हें आधारचन्द्र राय के घर में रहने के लिए कहा जहाँ पुलिस को किसी भी वक़्त आने-जाने की इजाज़त थी। उनकी गतिविधियाँ एक कमरे के इर्द-गिर्द तक सीमित हो गईं और उन्हें उस इलाक़े के हर ऐसे व्यक्ति से मिलने से प्रतिबंधित कर दिया गया जो वहाँ का स्थायी निवासी नहीं था। स्पष्ट तौर पर उन्हें स्कूली बच्चों, छात्रों या अध्यापकों से बातचीत की मनाही थी। ³¹

सन् 1917 की जनवरी में ख़बर मिली कि रामकौर गंभीर रूप से बीमार हैं और 12 जनवरी को पोद्दार को उनसे मिलने के लिए पैरोल पर रिहा किया गया। दिसंबर

1917 में उनकी मौत हो गई। तब पोद्दार को दो हफ्ते की पैरोल पर छोड़ा गया ताकि वे अपने पारिवारिक काम निपटा सकें। इसके बाद सरकार ने उनकी अप्रैल 1918 में की गई तीसरी पैरोल की मांग को ठुकरा दिया और मई 1918 में यह आदेश आया कि वे 'बंगाल प्रांत की सीमा में न तो प्रवेश कर सकते हैं और न ही वहाँ रह या रुक सकते हैं।' ³² पन्द्रह महीनों की नज़रबंदी के बाद उनकी पत्नी रामदेई को उनके साथ रहने का मौका मिला।

सिमलापाल के एकांतवास के दिनों में पोद्दार के जीवन ने अलग मोड़ ले लिया। जैसा कि उन्होंने बाद में स्वीकार किया कि इस समय ने उन्हें ईश्वर के करीब ला दिया। यह भी कि वे कभी नहीं भूल पाएंगे कि किस तरह कलकत्ता के मारवाड़ियों ने उनके परिवार से कच्ची काट ली। उनके दूर के चचेरे भाई जयदयाल गोयन्दका (उनका वही प्रतिरूप जो आगे चल कर वे खुद बन गए), बनारसीदास झुनझुनवाला (मारवाड़ी सहायक समिति और रोड्डा षड्यंत्र में पोद्दार के सहयोगी लेकिन अभियुक्त नहीं) और दोस्त झावरमल शर्मा, रामकुमार गोयनका ही उन चंद लोगों में थे जो जाकर उनके परिवार से मिले और मदद की। इनके अतिरिक्त बड़ा बाज़ार के मारवाड़ी वहाँ के बुजुर्गों के नेतृत्व में क्रांतिकारी छवि को ढांपने में लगे थे।

गिरफ्तारी के एक महीने के अन्दर-अन्दर ही मारवाड़ी समुदाय ने ब्रिटिश सरकार के साथ अपनी रस्मो-राह को पुनः हासिल करने के लिए सर कैलाश चन्द्र बोस से मदद मांगी। बोस को मारवाड़ी एसोसिएशन की बैठक में बतौर विशेष अतिथि आमंत्रित किया गया। निवर्तमान अध्यक्ष राय बिसेसर लाल हलवासिया बहादुर ने गिरफ्तारी के मामले पर बात करते हुए बातचीत का रुख तय किया, 'मारवाड़ी समुदाय सरकार से गहराई से जुड़ा हुआ है और हम उम्मीद करते हैं कि गिरफ्तार हुए नौजवान अपने आप को पूरी तरह सही साबित करने में सफल होंगे।' इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण था कि उन्होंने मारवाड़ी नौजवानों से 'खतरनाक क्रिस्म के ख्यालों और दूषित राजनैतिक विचारों से दूर रहने का आह्वान किया।' बोस ने अपने भाषण को मारवाड़ी समुदाय की निष्ठा पर केन्द्रित रखा। उन्होंने कहा कि मारवाड़ियों की निष्ठा एक ऐसी चीज रही है जिसकी सराहना अन्य समुदायों ने भी की है। उन्होंने 'कुछ मारवाड़ी युवाओं की ताज़ा गिरफ्तारी के लिए अफ़सोस ज़ाहिर किया और उम्मीद जताई कि यह घटना अपनी तरह की आखिरी घटना होगी।' ³³

इस तरह मारवाड़ियों के एक क्रांतिकारी क़दम को दूसरे प्रबल रूढ़िवादी तत्वों द्वारा पूरे उत्साह से दबा देना किसी भी लिहाज़ से कम क्रांतिकारी क़दम नहीं था। रोड्डा षड्यंत्र के सभी नेता अपनी आगे की ज़िन्दगी में राजनीति से दूरी बनाए रखने के हिमायती थे। जी डी बिड़ला जल्द कलकत्ता लौट आए और व्यवसाय और मारवाड़ी रिलीफ़ सोसाइटी के माध्यम से सामुदायिक गतिविधियों में सक्रिय हो गए। वे गांधी के करीबी सहयोगी और अहिंसा के समर्थक हो गए। उस समय क़ानून के विद्यार्थी रहे

हिम्मतसिंहका एक नामी वकील हो चुके थे जबकि पोद्दार देश में धार्मिक प्रकाशन की आक्रामक लहर साबित हुए ।

बॉम्बे : एक नई दिशा

राजनीति से दूर रहने के आदेश, एक युवा पत्नी, और एक सौतेली बहन की ज़िम्मेदारी के साथ हनुमानप्रसाद पोद्दार के सामने नई समस्या काम की तलाश से जुड़ी थी । कलकत्ता के मारवाड़ी पहले ही उनसे दूरी बना चुके थे । इसलिए परिवार ने अपने गाँव रतनगढ़ का रुख किया, लेकिन काम तब भी नहीं मिला ।

एक दिन जमनालाल बजाज का एक पत्र आया जिसमें उनके लिए बॉम्बे का बुलावा भेजा गया था । बजाज ने इस व्यावसायिक केंद्र में पोद्दार को काम दिलवा देने का भरोसा दिलाया । सन् 1919 में बॉम्बे में बुद्धिजीवियों, राजनेताओं और उपदेशकों का एक बड़ा नेटवर्क पोद्दार का इंतज़ार कर रहा था । इसके अलावा ऐसा मारवाड़ी जगत भी उनके इंतज़ार में था, जिसकी दुनिया कलकत्ता के मारवाड़ियों की तरह सिमटी हुई नहीं थी । यह वर्ग उद्योगों और बाहरी दुनिया के सम्पर्क से कमाए गए नए धन का मालिक था । पोद्दार के बॉम्बे के सालों का यह विवरण उनके करीबी सहयोगी गंभीरचंद दुजारी को दिए गए उनके साक्षात्कारों पर आधारित है और यही भगवती प्रसाद सिंह द्वारा लिखित पोद्दार की जीवनी का भी आधार है ।

गांधी के करीबी कुछ चुनिंदा उद्योगपतियों में गिने जाने वाले और बॉम्बे के व्यापार में शीर्ष पर स्थित जमनालाल बजाज पोद्दार से किए अपने वायदे पर खरे उतरे, हालाँकि पोद्दार के पास कारोबार का बहुत थोड़ा ही अनुभव था । यहाँ तक कि पोद्दार पर मौजूद अधिकांश विवरणों में उनके कलकत्ता के स्वतंत्र कारोबार के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है । यह बात और है कि उन्होंने खुद ही गंभीरचंद दुजारी के सामने इस बात का ज़िक्र किया कि उनका ढाका में नौरंगराय रामचंद्र के साथ साझेदारी में जूट का कारोबार था । यहीं पर सन् 1912 में एक कारोबारी यात्रा के दौरान वे माँ आनंदमयी से मिले थे ।

बॉम्बे में बजाज ने पोद्दार को विभिन्न प्रकार के उद्यम शुरू करने में सहायता प्रदान की जिसमें गुलाबराय नेमाणी की साझेदारी में कपास व्यापार से जुड़ी दलाली फर्म, श्रीनिवास दास, बालकृष्ण लाल दास और फर्म के मालिक ताराचंद घनश्यामदास के साथ दलाली साझा करना और अंत में बजाज के बहनोई और मुख्य लेखाधिकारी चिरंजीलाल जजोदिया के साथ अलसी दलाली फर्म जैसे उद्यम शामिल थे ।

बॉम्बे में व्यवसाय ने पोद्दार को समृद्धि तो प्रदान नहीं की, लेकिन यह एक मामले में खासा मददगार साबित हुआ । उनके इस नए रूप के कारण उनका बंगाल प्रवेश पर लगा प्रतिबन्ध हटा लिया गया । बहरहाल, कलकत्ता फिर से उनका घर कभी नहीं बन सका ।

पोद्दार ने सत्संग व भजन की आध्यात्मिक दुनिया और सन् 1919 में बॉम्बे के मारवाड़ियों द्वारा गठित ऑल इंडिया मारवाड़ी महासभा का सन् 1920 में क्षेत्रीय सचिव बन कर उसी शहर में दोस्तों, प्रशंसकों और परिचितों का एक बड़ा सामाजिक संजाल बना लिया था ।

गोयन्दका ने सन् 1922 में धार्मिक विमर्श के लक्ष्य से अपने समूहों के साथ बॉम्बे का दौरा किया, यह पोद्दार के जीवन का निर्णायक क्षण था । धीरे-धीरे वे गीता से जुड़ी बहसों में भाग लेने लगे । कभी-कभार सत्संग मारवाड़ी स्कूल में रखा जाता, जहाँ राममनोहर लोहिया गीता की कक्षा नियमित रूप से लेने आया करते थे । गोयन्दका का सत्संग भवन नामी मारवाड़ी व्यवसायी और मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के बेहद सक्रिय सदस्य शिवनारायण नेमाणी के वाड़ी (भू-सम्पत्ति) में आ गया । यहाँ से आध्यात्मिक जगत के साथ पोद्दार का ऐसा रिश्ता बना कि फिर वही उनका जीवन बन गया । जो नेटवर्क उन्होंने साधु-संन्यासियों के साथ बनाया, वही आगे जाकर *कल्याण* के लेखक बने ।

बॉम्बे में धार्मिक बहसों के दौरान हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत और ग्वालियर घराने के वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित सदस्य विष्णु दिगंबर पलुस्कर के साथ उन्होंने दिलचस्प दोस्ताना रिश्ता बनाया । जब पोद्दार पलुस्कर से मिले तब तक वे सिद्धहस्त गायक के रूप में ख्याति अर्जित कर चुके थे और लोकप्रिय गंधर्व महाविद्यालय चला रहे थे । सबसे पहले इसकी स्थापना सन् 1901 में लाहौर में हुई थी, जहाँ से संगीत पर पुस्तकें भी छपती थीं । महाराष्ट्र के कुरुंडवाड़ में पलुस्कर एक कीर्तनकार (कीर्तन या धार्मिक गाना गाने वाले) परिवार के घर पैदा हुए । पलुस्कर और पोद्दार की भेंट एक धार्मिक चर्चा में हुई जिसमें कीर्तन की अहम भूमिका होती थी । पलुस्कर गाया करते थे और साथ में रामायण पर बातचीत किया करते थे । पोद्दार ने पलुस्कर को सन् 1921 में अहमदाबाद कांग्रेस में हज़ारों लोगों को अपनी प्रतिभा से सम्मोहित करते हुए देखा था । कांग्रेस सत्रों में ऐसी सभाएँ नियमित होती थीं, जिसकी शुरुआत पलुस्कर '*रघुपति राघव राजा राम*' गाकर करते थे और उनकी यह शैली गांधी को भी प्रिय थी ।

पलुस्कर ने रोज़ाना संगीत की कक्षाएं लेकर पोद्दार को अपनी छत्रछाया में ले लिया । यह बात अलग है कि कई अनगिनत मुद्दों में उलझे पोद्दार के पास संगीत की शिक्षा को पूरा कर पाने का समय नहीं था । पोद्दार के निजी कागज़ात यह दावा करते हैं कि उन्होंने एक भजन '*मेरे तो राम नाम आधार*' लिखा था जो पलुस्कर का प्रिय हो गया और वे अपनी बहसों की शुरुआत इस भजन को गाकर ही करने लगे थे । पलुस्कर ने नासिक में एक आश्रम बनाया और उसका नाम '*राम नाम आधार*' रखा । इन दोनों के बीच संबंध लंबे समय तक चले । पोद्दार ने अपने विस्तृत मारवाड़ी संपर्कों के ज़रिए पलुस्कर को अपने लेनदारों की गंभीर धमकियों से उबारने में मदद की, साथ-साथ सन् 1930 के कुंभ मेले में आयोजित उनके कार्यक्रम और धार्मिक चर्चाओं में भी मौजूद रहे, जहाँ मदनमोहन मालवीय और जवाहरलाल नेहरू की माँ स्वरूप रानी भी नियमित रूप से आती थीं ।

पलुस्कर का निधन सन् 1931 में हुआ, और सन् 1956 में गीता प्रेस ने *संगीत रामचरितमानस* प्रकाशित किया जिसमें पलुस्कर द्वारा तैयार किए *रामचरितमानस* आधारित 89 गीत थे। इनमें ख्याल, ठुमरी और ध्रुपद शामिल थे। ³⁴ कहा जाता है कि घनश्यामदास बिड़ला के छोटे बेटे बसंत कुमार बिड़ला ने उस प्रकाशन की आर्थिक ज़िम्मेदारी वहन की। सन् 1955 तक घनश्यामदास बिड़ला लगातार पत्राचार के माध्यम से पोद्दार को इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का आग्रह करते रहे। शुरुआत में बिड़ला ने चाहा कि पुस्तक को कलकत्ता से प्रकाशित किया जाये और इसके वितरण का दारोमदार गीता प्रेस पर छोड़ दिया जाये क्योंकि 'गीता प्रेस इस प्रकार की धर्म और भक्ति रस की पुस्तकों को सर्वसाधारण तक सुलभ कराने में सदा विख्यात रहा है।' ³⁵ उन्होंने पोद्दार से आग्रह किया कि पुस्तक को न्यूनतम दाम पर बेचा जाये। लेकिन बाद में प्रकाशन व वितरण की पूरी ज़िम्मेदारी गीता प्रेस के हाथों में सौंप दी गई। बिड़ला के निवेदन पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने इस काम का संगीतीय अंकन पहले ही तैयार कर दिया था।

लेकिन इसी दौरान दुर्भाग्य पोद्दार के निजी जीवन पर लगातार मंडराता रहा। सन् 1920 में रामदेई से उत्पन्न उनका पहला लड़का महज़ 18 महीने की आयु में गुज़र गया। उन्होंने अपनी दोनों बहनों का क्रमशः अन्नपूर्णा का सन् 1919 में और चंदा का सन् 1920 में विवाह तय किया। विवाह के कुछ समय बाद ही बॉम्बे स्थित अपने ससुराल में चंदा ने कुएं में कूद कर आत्महत्या कर ली। पोद्दार के कागज़ात में यह दर्ज है कि चंदा के ससुराल वाले किसी वजह से उससे नाखुश थे लेकिन चंदा की मौत की वजहों पर कोई टिप्पणी मौजूद नहीं है। पोद्दार ने तय किया कि वे अपनी बहन की असमय मृत्यु के मामले को आगे नहीं बढ़ाएंगे और उन्होंने पुलिस को बयान दिया कि उनकी बहन ग़लती से फिसलकर कुएं में गिर गई थी।

निजी जीवन की छोटी-बड़ी त्रासदियां पोद्दार की सार्वजनिक भूमिका में बाधा नहीं बनीं। चाहे वह बतौर मज़बूत शख्सियत मारवाड़ी दुनिया में उनकी उपस्थिति हो, मारवाड़ियों के कारोबारी, सामाजिक या निजी दायरे हों अथवा राष्ट्रीय स्तर के गो-हत्या और हिन्दू कोड बिल जैसे विविधता भरे मुद्दे हों। बॉम्बे में उन्होंने बतौर आध्यात्मिक पुरुष अच्छा सम्मान हासिल कर लिया था। पोद्दार के कागज़ात में समाजशास्त्री जी एस घुर्ये और उनके सहायक आर वी आथेड़ (स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स एंड सोशियोलॉजी, बॉम्बे यूनिवर्सिटी) द्वारा तैयार की हुई एक रोचक प्रश्नावली मिली है। इस प्रश्नावली का उद्देश्य कुछ धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर शहर के शिक्षितों के नज़रिए को सुनिश्चित करना था। ³⁶ प्रश्नावली में व्यक्ति की ईश्वर पर आस्था, ईश्वर और ब्रह्माण्ड के बीच संबंध, असीम ज्ञान से पुनः साक्षात्कार, अच्छाई और शारीरिक, सामाजिक, नैतिक बुराईयाँ और कण-कण में ईश्वर की सर्वशक्तिशाली मौजूदगी, जन्म-मृत्यु का संबंध, धर्म और विज्ञान का संबंध जैसे विभिन्न प्रश्न शामिल थे।

इस प्रश्नावली का उन्होंने क्या उत्तर दिया, ये मालूम नहीं, लेकिन यह प्रश्नावली पोद्दार को मिली भारी प्रसिद्धि की ओर इशारा करती है। इस तरह बॉम्बे पोद्दार के सामाजिक व धार्मिक उद्यम की नई पहचान भूमि बनी जहाँ से उन्होंने सन् 1926 में नव प्रकाशित *कल्याण* का संपादन हाथ में लिया। इस शहर से पोद्दार का आठ साल का बंधन सन् 1927 में टूटा।

गांधी के साथ संबंध

जमनालाल बजाज के सानिध्य में रहते हुए पोद्दार को तिलक और गांधी से मिलने का अवसर भी मिला जिनसे वे कलकत्ता में रहते हुए मिल चुके थे और आगे भी बातचीत करना चाहते थे। तिलक से परिचय बॉम्बे में हुआ और पोद्दार ने अपने एक साक्षात्कार में (जीवनी के लिए) माना है कि उन्होंने सन् 1919 में तिलक समर्थक की हैसियत से अमृतसर सत्र में भाग लिया था। इसमें उन्होंने मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार पर कांग्रेस द्वारा लाए गए संकल्प पत्र पर चल रही बहस में खुले तौर पर तिलक का साथ दिया था। पोद्दार ने यह भी दावा किया कि अगस्त 1920 में जब तिलक अपनी अंतिम सांसें ले रहे थे तब भी वे उनके साथ थे। इस दावे का सत्यापन मौजूद नहीं है लेकिन धनंजय कीर द्वारा लिखित खुशामद भरी तिलक की जीवनी में इसका एक संदर्भ ज़रूर मिलता है। कीर ने लिखा है, 'तिलक की मृत्यु से दो दिन पहले इस मराठा नेता को देखने आए हज़ारों लोगों में एक मारवाड़ी भी था जिसने हज़ार रुपए गरीब लोगों में बांटे थे। ³⁷ पोद्दार का दूसरा दावा था कि तिलक ने अपनी सन् 1903 की पुस्तक *आर्कटिक होम इन द वेदाज़* में प्रकट किए अपने विचार बदल दिए थे। पोद्दार के अनुसार तिलक अब इस बात से सहमत नहीं थे कि वेदों की रचना आर्कटिक में की गई थी। तिलक के अनुसार आर्कटिक ही उनका उद्गम स्थल था। अगर पोद्दार की बात मानी जाये तो तिलक ने एक नई पांडुलिपि तैयार की थी जिसमें उन्होंने मरने से पहले अपनी पांडुलिपि में बदलाव किए थे। लेकिन वह पांडुलिपि कहीं गायब हो गई।

पोद्दार के सबसे महत्वपूर्ण संबंधों में बजाज के सानिध्य में गांधी से बनाया हुआ रिश्ता था जो सबसे लम्बा चला। कलकत्ता में उनकी पहली मुलाक़ात के बाद पोद्दार ने राजनैतिक दीक्षा ली। क्रांतिकारियों से जुड़े, जेल गए कांग्रेस के सत्रों में भाग लिया और कांग्रेस के गरम दल के नेताओं से नज़दीकी बढ़ाई। इस वक़्त तक गांधी ऊँचा क़द पा चुके थे, वे अब महात्मा थे। बॉम्बे में पोद्दार और गांधी के संबंध पूरी तरह से निजी स्तरों पर बने जहाँ वे गीता, हिन्दूवाद, कांग्रेस की राजनीति और अल्पसंख्यकों व जाति से जुड़े सवालों पर विविधता भरे विचारों के आमने-सामने होते थे लेकिन बातचीत की बुनियादी गरिमा उनके दरम्यान हमेशा बना रहती। 1940 का दशक आते-आते पोद्दार का गांधी और कांग्रेस से मोहभंग हुआ और इसकी छाया *कल्याण* के पृष्ठों में साफ़-साफ़ दिखने लगी।

व्यक्तिगत रूप से गांधी पोद्दार को बहुत मानते थे । सन् 1935 में वर्धा से लिखे एक खत में गांधी ने पोद्दार के विचारों के प्रति अपनी 'खुशी और संतुष्टि' ज़ाहिर की थी । 'कभी-कभी ऐसा दिल भी करता है कि तुम जैसा आदमी मेरे साथ रहता । भाई जमनालाल (बजाज) भी ऐसा ही चाहते हैं पर जहाँ भी तुम रहो मन साध्य है तो साथ ही हो । तुम कल्याण और गीता प्रेस पे जो काम कर रहे हो वह ईश्वर की बड़ी सेवा है । तुम्हारी सेवा में भी अपना हिस्सा मानता हूँ क्योंकि तुम मुझको अपना समझते हो । वैसा ही मैं भी समझता हूँ ।' ³⁸

सन् 1932 में दूसरे सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय इनके संबंधों में घनिष्ठता आई जब गांधी को उनके करीबी सहयोगी सरदार वल्लभभाई पटेल और नारायण देसाई के साथ यरवदा जेल में बंद कर दिया गया । उन्हें अपने छोटे बेटे देवदास से बहुत उम्मीदें थीं । ³⁹ देवदास ने गांधी से सी राजगोपालाचारी की बेटी लक्ष्मी से विवाह करने की अनुमति मांगी । उसके ठीक बाद देवदास को गिरफ़्तार करके गोरखपुर जेल में डाल दिया गया, जहाँ टायफ़ायड की वजह से उनका स्वास्थ्य बुरी तरह बिगड़ गया । देवदास के बिगड़ते हुए स्वास्थ्य ने गांधी को गहरी चिंता और परेशानी में डाल दिया । इससे भी ज़्यादा परेशानी इस बात की थी कि उनके लिखे खतों को निगरानी में रखा जा रहा था और खतों को देवदास तक पहुँचने में बहुत देरी हो रही थी । ⁴⁰ सन् 1927 में गोरखपुर पहुँचे पोद्दार ने गांधी और उनकी फ़रियाद को याद रखा । गांधी ने 16 जून को पोद्दार को व्यग्र होकर टेलीग्राम भेजा, 'देवदास के बुखार का तापमान भेजो । क्या तुम रोज़ उससे मिलते हो? उसे कितना कष्ट है?' ⁴¹

होने वाली दुल्हन लक्ष्मी को विवाह के लिए लम्बा इंतज़ार करना पड़ा । वे भी देवदास का हाल जानने के लिए पोद्दार को शुद्ध हिन्दी में लिखा करती थीं । कोयम्बटूर से भेजे जाने वाले पोस्टकार्ड में वे अक्सर संकोच के कारण पत्र के अंत में ही देवदास का हाल समाचार पूछा करती थीं । पोद्दार से देवदास के स्वास्थ्य का हाल पूछने वालों में जी डी बिड़ला, नारायणदास गांधी (मंगनलाल गांधी के भाई) ⁴², जमनालाल बजाज (उस समय लंदन में मौजूद), बृजकृष्ण (दिल्ली के गांधी के सहयोगी), मदनमोहन मालवीय आदि शामिल थे ।

पोद्दार जो कर सकते थे, उन्होंने किया । नैनीताल के रहने वाले जेल के इंस्पेक्टर जनरल से देवदास से 'रोज़ाना मुलाकात' की दरख्वास्त की गई । ⁴³ पोद्दार की अर्जी में लिखा था कि महात्मा गांधी के पुत्र देवदास 'पिछले 12 दिनों से बुखार से पीड़ित हैं । मैं परिवार से बहुत आत्मीयता से जुड़ा हूँ और मेरा उनके स्वास्थ्य को लेकर व्याकुल होना स्वाभाविक है । मैं यहीं गोरखपुर में हूँ और श्री देवदास की कुछ सेवा कर सकता हूँ और साथ ही बीमारी से जुड़े इलाज में जेल प्रशासन की भी मदद कर सकता हूँ ।' पोद्दार इस बात से परिचित थे कि उनका अपना राजनैतिक इतिहास देवदास से मिलने के बीच अड़चन पैदा करेगा । उन्होंने जेल के आईजी को आश्वस्त करते हुए लिखा, 'अधिकारी ये जानते हैं कि मैं अब राजनीति से दूर हो चुका हूँ । लेकिन उनकी अर्ज़ी

महज़ चार शब्दों के जवाब में खारिज कर दी गई: 'प्रतिदिन मिलना संभव नहीं।' अंततः पोद्दार ने देवदास से दो ही बार मिलना मंजूर किया और मालवीय के द लीडर, आज दैनिक व अन्य समाचार पत्रों को प्रेस विज्ञप्ति भेजी। ⁴⁴ पोद्दार के अनुसार देवदास की हालत 'संतोषप्रद' थी। टायफायड की सम्भवना कम थी, लेकिन सोलह दिन के बुखार ने छह किलो से अधिक वज़न गिरा दिया था। द लीडर ने पोद्दार के कथन को उद्धृत करते हुए लगातार ख़बर प्रकाशित की।

देवदास की देख-रेख करने के लिए गांधी ने बारम्बार पोद्दार का शुक्रिया अदा किया। 'मुझे देवदास के लिए बहुत चिंतित होने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए, क्योंकि आप वहाँ हैं। इससे भी अधिक, देवदास ने मुझे लिखा आपने बहुत ही प्यार से उसका ख़याल रखा है। डॉक्टर भी सज्जन व्यक्ति हैं। मैं आपके पत्रों की समय-समय पर प्रतीक्षा करता रहूँगा।' ⁴⁵ देवदास के रिहा होने पर गांधी ने पुनः पोद्दार को अनुराग व्यक्त करते हुए पत्र लिखा, 'देवदास की चिंता तुम्हारे सिर से उतरी। मुझे सब ख़त मिले हैं। मैं अनुग्रह क्या मानूँ, ऐसी सेवा मूक रह कर लेना ही मुझे तो सभ्यता प्रतीत होती है।' ⁴⁶ इसके बाद नारायणदास गांधी की ओर से भी आभार व्यक्त करता हुआ एक पत्र पोद्दार को प्राप्त हुआ, 'आपने जो दिलचस्पी हमारे कौटुम्बिक मामले में ली और जिस तत्परता का परिचय दिया है वह स्तुत्य है। आखिर आपकी व्यग्रता निष्फल न गई। चिरंजीवी देवदास छूट गए, वे आपसे मिले होंगे।' ⁴⁷

सन् 1932 का समय गांधी-पोद्दार संबंधों के लिहाज़ से ऐतिहासिक साबित हुआ। 2 अगस्त 1932 को गांधी ने यरवदा जेल से पोद्दार को पत्र लिखा। भीमराव अम्बेडकर द्वारा गोलमेज़ सम्मेलन में प्रस्तावित अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग को ब्रिटिश सरकार द्वारा मान लिए जाने की आशंका जताई। ब्रिटिश प्राइम मिनिस्टर रामसे मैकडोनाल्ड द्वारा अछूतों के लिए स्वतंत्र निर्वाचन के प्रस्ताव को मंजूरी मिलने के समय भी गांधी यरवदा जेल में ही थे। अपनी जान देकर भी इस प्रस्ताव का प्रतिरोध करने की बात ठानकर गांधी ने अनशन करने का निर्णय लिया। ⁴⁸ अनशन पर बैठने के निर्णय ने तत्काल प्रभाव दिखाया। एक तरफ़ कांग्रेस के अन्दर के पुरातनपन्थी जैसे मालवीय, राजगोपालाचारी और हिन्दू महासभा के बी एस मुंजे समझौते के लिए अछूतों के नेताओं बी आर अम्बेडकर, एम सी राजा और पी एन राजभोज के सामने उपस्थित हुए। सन् 1932 का पूना पैक्ट इसी का नतीजा था। और दूसरी तरफ़ गांधी के अनशन की ख़बर से पूरे देश में नैतिक लहर बह चली। रूढ़िवादी इलाहाबाद से लेकर वैश्विकता से भरे बॉम्बे तक ने अपने मंदिरों के दरवाजे अस्पृश्यों के लिए खोल दिए। एक अभूतपूर्व क़दम उठाते हुए बॉम्बे के छह मंदिरों ने अपने दरवाजे पर मतदान के लिए मतदान पेटी रख दी और उन्हें अस्पृश्यों को मंदिर में जाने की इजाज़त के पक्ष में ज़ोरदार ढंग से वोट मिले। 24,979 लोगों ने बहुमत से सहमति दी जबकि अस्वीकार करने वालों की ओर से मात्र 445 वोट थे। पद्मजा नायडू ने इसे हिन्दुवाद का

‘शुद्धिकरण’ कहा, वहीं गांधी के आमरण अनशन की खबर सुनकर मिलने के लिए दौड़े आए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसे ‘चमत्कार’ ⁴⁹ माना ।

अपने गाँव रतनगढ़ में रह रहे पोद्दार को गांधी के अनशन और पूना पैक्ट की सूचना जी डी बिड़ला ने दी । वर्णाश्रम को सबसे आगे रख कर और हिन्दुवाद के रीति-रिवाजों को बढ़ावा देकर ही पुष्पित-पल्लवित हो रहे प्रकाशन समूह की सफलता के चरम बिंदु पर इस घटना ने पोद्दार को झकझोर कर रख दिया । यह बदलाव बड़े पैमाने पर हुआ और मौजूदा सामाजिक संरचना के लिए बड़ा खतरा था । उन्होंने तुरंत गांधी को पत्र लिखा । पत्र की शुरुआत में गांधी को इस बात के लिए फटकारा कि गोरखपुर जेल में देवदास का ख्याल रखने के बदले उन्हें शुक्रिया कहने की ज़रूरत नहीं थी । ‘मुझे नहीं पता कि क्यों आपको ये शब्द लिखने पड़े । शायद मैं एक ऐसा इंसान हूँ जिसे अपने किए पर बहुत गर्व है और आपको आभारी महसूस करवा रहा हूँ । सच यह है कि मैं देवदास के लिए बहुत नहीं कर पाया । जो भी मैं कर पाया वह उनके प्रति प्रेम और स्नेह से अधिक कुछ नहीं था ।’ ⁵⁰

पोद्दार ने गांधी को बॉम्बे की एक घटना याद दिलाई । कई साल पहले जुहू में रहने के समय महात्मा की तबियत खराब थी और *नवजीवन* ने घोषणा की थी कि उन्हें मिलने के लिए कोई नहीं आए । *नवजीवन* की घोषणा से अनभिज्ञ पोद्दार मिलने चले गए थे । तब गांधी ने कहा था कि वह घोषणा परिवार के सदस्यों के लिए नहीं थी । ‘मुझे आज भी वे स्नेहमय शब्द याद हैं... उस दिन से मैंने स्वयं को आपके परिवार का सदस्य माना । इस तरह जितना मैंने देवदास के लिए किया वह न तो विशिष्ट है और न ही बात करने योग्य...’

इस विवरण के बाद पोद्दार ने असल मुद्दे पर बात करनी शुरू की जो उन्हें परेशान किए हुए था । पत्र लेखन में वे सावधान थे, उन्होंने स्पष्ट किया कि बालसुलभ उत्सुकता से और बहुत विलंब के बाद उन्होंने गांधी से बात करने का फ़ैसला लिया है, उन्होंने निवेदन किया कि गांधी पत्र को पढ़ें और उनकी बातों का संज्ञान लें ।

इसके बाद पोद्दार सीधे अपनी बात पर पहुंचे, ‘इन दिनों दलितों द्वारा एक बड़ा आंदोलन चल रहा है जिसे आपके अनशन ने तीव्र कर दिया । बहुत सी जगहों पर लोग दलितों के साथ भोजन कर रहे हैं और उन्हें मंदिरों में जाने की अनुमति मिल गई है । इसका परिणाम ईश्वर ही जानता है । जैसे लोग भगवान और शास्त्रों को मानने वालों को अंधविश्वासी कहते हैं वैसे ही मेरा मानना है कि यह आंदोलन भी अंधविश्वास का मारा है और विवेकशून्य है । यहाँ तक कि दलितों के साथ भोजन करने वाले भी यह मान रहे हैं कि (जबकि मैं दलितों के साथ भोजन करने को समानता का प्रतिमान नहीं मानता हूँ) जब तक वे नहाना, साफ़ कपड़े पहनना, मांस-मदिरा सेवन, मृत ढोर-ढांगर खाने आदि में नेम-नाम नहीं बरतते, तब तक वे शुद्ध नहीं माने जाएँगे । सिर्फ़ तभी सह-भोजन के मायने बनते हैं । लेकिन आपका सह-भोजन और मंदिर प्रवेश आंदोलन इस बात की पुष्टि नहीं कर रहा है कि वे ये नियम मान रहे हैं । केवल साथ में भोजन किया

जा रहा है, मंदिर में प्रवेश दिया जा रहा है और उन्हें रीति-रिवाज बरतने की अनुमति दी जा रही है। सभी अस्पृश्यता को दरकिनार कर रहे हैं, लेकिन कोई दलितों को ऊपर उठाने की बात नहीं कर रहा। क्या यह सुधार में कमी नहीं है? क्या यही शुद्धता का समृद्धिकरण है या उसकी बर्बादी? क्या आपने हमारे शरीर और हमारी आत्मा पर इस अनियंत्रित असम्मान के चलते पड़ने वाले प्रभावों के बारे में सोचा?’

‘पूरे सम्मान के साथ मैं दोहराना चाहता हूँ कि साथ बैठ कर भोजन करने और हर क्षेत्र में समान अधिकारों की बात दलितों के प्रति प्रेम पैदा नहीं कर पाएंगी। वह केवल साफ़ मन और अच्छे व्यवहार द्वारा ही संभव है। पांडव और कौरव भी साथ बैठ कर भोजन किया करते थे लेकिन यही महाभारत की वजह बनी।’

यह कहा नहीं जा सकता कि पोद्दार के इन तर्कों से गांधी कितने सहमत हुए, लेकिन पोद्दार ने गांधी को आईना दिखाने के लिए अपनी अंतिम चाल चली। उन्होंने गांधी को याद दिलाया कि उनका यह सुधारवादी उत्साह स्वयं उनके द्वारा अतीत में व्यक्त विचारों से मेल नहीं खाता है। उन्होंने गांधी द्वारा 1920 के दशक के शुरुआती दौर में *नवजीवन* में जाति और अस्पृश्यता पर लेखन के उद्धरणों की सूची बना कर उसे पत्र के साथ ही नत्थी कर दिया। इन लेखों में गांधी ने कहा था कि अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए अन्त्यजनों के साथ भोजन करना ज़रूरी नहीं है और न ही उन्हें विवाह हेतु बेटी देना आवश्यक है, ‘मैं यह नहीं कहता कि आप बिना धोये उनके लोटे से पानी पियें।’ ⁵¹ ‘अगर साथ बैठ कर भोजन करने का परिणाम मैत्री है, तो यूरोप ने वह भीषण युद्ध न झेला होता’ ⁵² और ‘अछूत सभी मंदिरों में प्रवेश कैसे पा सकते हैं?’ ⁵³ इन उद्धरणों से न केवल जाति के मसले पर गांधी के परस्पर विरोधी विचार उजागर हुए बल्कि पूना पैक्ट पर भी उनका दुलमुल रवैया स्पष्ट हुआ।

पोद्दार का पत्र बहुत निर्मम था, वे उसमें गांधी को, कांग्रेस के उदारवादियों को और बुद्धिजीवियों की जमात को लगभग झिड़क रहे थे। ‘आपका सम्मान करने वाला कोई अगर आज आपकी और आपके विचारों की आलोचना और आपकी मान्यताओं की दुर्बलताओं को चिह्नित करे तो उस पर हमला किया जा रहा है और उससे अभद्रता की जा रही है। उसे दकियानूसी, सनातन धर्मी, गद्दार और न जाने क्या-क्या कहा जा रहा है। हाल में ही काशी में एक बैठक के बीच पत्थरबाजी की घटना हुई। इन हालातों में कई लोगों को स्वराज्य की अवस्था संदिग्ध ही लगती है।’

इसके आगे पोद्दार ने गांधी के सामने सवालों की झड़ी लगा दी। ‘मैं जानता हूँ कि आप किसी की मान्यता या विचारों को बलपूर्वक बदलने में विश्वास नहीं रखते। आपने कई बार कहा है कि व्यक्ति के पास अपना धर्म मानने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। लेकिन क्या हो रहा है? सभी तरह के लोगों को किसी एक तरह की धार्मिक मान्यता वाले समूह के पूजा स्थल के भीतर तक उनकी इच्छा के विरुद्ध प्रवेश करने की इजाज़त उस संस्थान को चला रहे समूह विशेष की धार्मिक स्वतंत्रता का हनन है या नहीं? यह हमारी मंदिर व्यवस्था को नष्ट कर देगा। जिन्हें हम अन्दर जाने के लिए कह

रहे हैं क्या हमने उनसे पूछा कि वो अन्दर जाना चाहते भी हैं या नहीं? अगर वे जाना ही चाहते हैं तो उनके लिए अलग मंदिर क्यों न बना दिए जाये? आखिरकार, राम शबरी की कुटिया में गए थे, लेकिन यहाँ सारा मामला ही अधिकारों का हो गया है।’ ⁵⁴ *कल्याण* में पहले ही भारी आलोचना झेल रहे बी आर अम्बेडकर का हवाला देते हुए पोद्दार ने गांधी से कहा कि दलित नेता पहले ही यह स्पष्ट कर चुके हैं कि उनका आंदोलन भगवान के लिए नहीं है बल्कि यह सामाजिक समानता और सरकारी नौकरियों में मज़बूत पैठ की लड़ाई है। अंत में पोद्दार ने दोहराया कि वे गांधी के भक्त नहीं हैं, ‘मैं आपका अनुयायी नहीं हूँ बल्कि आपके परिवार का सदस्य हूँ। अपने अनुयायियों से आग्रह कीजिए कि वे इस अमर्यादित व्यवहार को यहीं रोक दें। मैंने आपको, जो हो रहा है, उसकी बस एक झलक भर दी है। वास्तव में इससे बहुत कुछ ज़्यादा हो रहा है। यह दरअसल एक व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता पर हमला है।’

गांधी ने शीघ्र प्रतिक्रिया दी। वे पोद्दार द्वारा उद्धृत *नवजीवन* के अपने एक-एक शब्द पर कायम रहे। ‘मैं क्या कहता हूँ, ये समझने के लिए मेरे आचरण को समझना आवश्यक है। मैं ऐसी कोई बात नहीं कहता जो मेरे आचरण के विपरीत है। मैं ऐसा कोई काम नहीं करता जो मेरी कही हुई बातों के विपरीत हो। जब भी मेरा आचरण मेरी कही हुई बातों के अनुरूप नहीं होता तो मैं अपनी कमज़ोरी को स्वीकार करता हूँ।’ ⁵⁵

पोद्दार के आरोपों के जवाब देते हुए गांधी ने कहा, ‘मैं अपने कर्म, वचन और आचरण के बीच कोई असंगति नहीं देखता।’ उन्होंने अपने आप को उन लोगों से अलग बताया जो ‘सनातनियों’ को ताना देते हैं, गांधी ने कहा कि ‘हिंसा’ अस्पृश्यता के विनाश में बाधक होगी। और ‘स्वच्छता और कुछ नियमों पर चलना हमेशा ही जरूरी होता है।’ उन्होंने आगे कहा, ‘...इस मामले में दबाव बनाना या जो लोग साथ-साथ खाना खाने से मना कर रहे हैं, उनको घृणा की नज़र से देखना पाप है।’ गांधी का यह स्पष्ट मानना था कि इस तरह के सुधार देखने से पहले वे मरना पसंद करेंगे। क्योंकि ‘मेरा विश्वास है कि जबरन न तो अस्पृश्यता को खत्म किया जा सकता है और न ही हिन्दू धर्म को बचाया जा सकता है।’

इसी पत्र में गांधी ने सनातन धर्म के अनुयायियों को अस्पृश्यता व दलितों को मंदिर में प्रवेश न करने देने जैसी सामाजिक कुरीतियों के लिए दोषी ठहराया। हिन्दुओं ने जाति से बाहर एक जाति गढ़ते हुए अब तक दलितों के साथ निर्दयी और धर्मविरुद्ध व्यवहार करना जारी रखा है। देर-सवेर हिन्दुओं को इसका प्रायश्चित्त करना होगा। गांधी ने पोद्दार को बताया कि ‘इसमें मेरा निजी स्वार्थ भी है क्योंकि मैं खुद को ‘संतुष्ट’ करना चाहता था। इसके लिए मैं आपसे भी सहयोग की अपेक्षा रखता हूँ।’

अस्पृश्यता पर पोद्दार की धारणा को बदलने में गांधी के बेहतरीन प्रयत्न भी नाकाम हुए। *कल्याण* के पृष्ठों के माध्यम से गांधी पर पोद्दार के आक्षेपों का सिलसिला सन् 1948 तक चलता रहा। इस तरह पोद्दार की ओर से गांधी की भक्ति के रूप में

शुरू हुए संबंध 1930 के दशक में राष्ट्रीय आंदोलन के तीव्र दौर में अचानक तेज़ी से बदल गए जब गांधी सामाजिक मुद्दों पर अपनी राय को नए सिरे से गढ़ रहे थे। यही वह समय भी था जब मुसलमान, दलित और सशक्त हिन्दू कांग्रेस में अपनी जगह मज़बूत करके ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ एकजुट हो रहे थे। सन् 1956 के अंत तक भी पोद्दार अपनी मान्यता का समर्थन अलग-अलग तर्कों से करते रहे। उन्होंने कहा कि, 'अस्पृश्यता का मतलब किसी से घृणा करना नहीं है, वह तो एक वैज्ञानिक तत्त्व है और शास्त्र सम्मत है।' ⁵⁶

सन् 1932 से पहले ही पोद्दार में गांधी के प्रति घटते आदर भाव के संकेत मिलने लगे थे। अपने मित्र प्रभाशंकर गुप्त को सन् 1932 में लिखे एक पत्र में पोद्दार ने कहा, 'महात्मा गांधी जी को मैं अवश्य ही भारतीय भेष में पाश्चात्य संत मानता हूँ। महात्मा जी के बहुत से विचार मेरी समझ में नहीं जंचते, कुछ तो अनुचित भी जंचते हैं। मैं उन्हें नहीं मानता।' ⁵⁷ वह आदमी जिसकी सादगी, सेवाभाव, आध्यात्मिकता और स्वदेशी के लिए प्रेम ने पोद्दार को तेज़ी से प्रभावित किया था वही आदमी अब धीरे-धीरे उनका आदर्श नहीं रह गया। वही अब (उनकी नज़रों में) हिन्दू धर्म की मान्यता के लिए सबसे बड़ी बाधा और चुनौती बन गया था।

तब भी पोद्दार और गांधी के संबंधों में यथासमय मधुरता बनी रही। सन् 1937 में पोद्दार ने गांधी को अपने सुबह-सुबह देखे गए सपने के बारे में लिखा जिसमें किसी ने कहा कि 'गांधी का शरीर अब बहुत दिन नहीं रहेगा, उनसे कहो बाक़ी जीवन केवल भगवान के भजन में ही बिताएं।' ⁵⁸ पोद्दार ने कहा उन्हें इस तरह के सपने नहीं आया करते लेकिन वो कामना करेंगे कि यह सपना झूठा निकले। 'तीन दिन तक इसी असमंजस में रहा कि आपको लिखूं या नहीं। आखिर लिख देना ही उचित समझा। अवश्य यह मेरा लड़कपन ही है, चरणों में निवेदन है इस ढिठाई के लिए क्षमा करें। इस पर्चे को पढ़ कर कृपया फाड़ डालें जिससे मेरी यह ढिठाई किन्हीं भी महानुभाव के उद्वेग का कारण न हो' गांधी ने पोद्दार के सपने को 'प्रेम का संकेत' माना। ⁵⁹ मृत्यु के बारे में उन्होंने कहा कि वह तो जन्म की साथी है और सबसे वफ़ादार है। वो कभी चूकती नहीं है। और ईश्वर की आराधना मौत के नज़दीक होने पर ही क्यों की जाये? मेरे लिए तो आराधना हर पल होने वाली क्रिया है। गांधी ने यह भी पूछा कि पोद्दार क्यों चाहते हैं कि उनका सपना झूठा निकले। अगर मैं सौ साल भी जियूंगा तब भी वो मेरे मित्रों के लिए कम होगा। तो आज हो या कल...क्या फ़र्क़ पड़ता है...!'

सन् 1940 में जब गांधी ने गो-सेवा संघ की स्थापना की तब जमनालाल बजाज ने पोद्दार से पत्र लिखकर इस नए संघ के संविधान के बारे में उनके विचार जानने चाहे। बजाज ने पोद्दार से आग्रह किया कि वे इस संघ के सदस्य बनें और कुछ ज़िम्मेदारियां अपने कंधों पर लें। ⁶⁰ भले ही पोद्दार ने *कल्याण* में गांधी का विरोध किया लेकिन निजी स्तर पर वे उनका सम्मान करते थे। गोरखपुर से उन्होंने बजाज को लिखा, 'यद्यपि महात्मा गांधी जी के बहुत से विचार और कार्य समझ में नहीं आते बल्कि बहुत

जगह तो प्रत्यक्ष ही मन का प्रबल विरोध दिखाई पड़ता है । इससे विचारों में बड़ा व्यवधान हो गया है । तदापि बापू तो सदा बापू ही हैं । महात्मा गांधी के विचारों से बापू की भक्ति का क्या संबंध ।’ ⁶¹

पोद्दार ने अहमदाबाद कांग्रेस की सन् 1921 की बैठक के बाद सोच-समझकर कांग्रेस पार्टी से दूरी बना ली थी और अब वे खुलेआम हिन्दू महासभा के साथ मिलकर काम कर रहे थे । वे सन् 1946 की गोरखपुर में हुई हिन्दू महासभा के वार्षिक सम्मेलन के मुख्य आयोजकों में से एक थे । ⁶² कल्याण और हिन्दू महासभा ने मिलकर गांधी पर तीखे प्रहार किए । पोद्दार को इसका खामियाजा आज़ादी के पांच महीने बाद तक भुगतना पड़ा । दिल्ली के बिड़ला हाउस में नाथूराम गोडसे और हिन्दू महासभा से जुड़े लोगों के द्वारा 30 जनवरी 1948 को गांधी की हत्या के परिणामस्वरूप पूरे देश में 25,000 से ज़्यादा लोगों के गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी हुए जिनमें पोद्दार और उनके गुरु जयदयाल गोयन्दका का भी नाम था । जी डी बिड़ला ने इन दोनों की सहायता से इंकार कर दिया और सर बद्रीनाथ गोयनका द्वारा इनकी पैरवी का भी इन्होंने (बिड़ला ने) विरोध किया । बिड़ला के अनुसार, ‘ये दोनों सनातन धर्म के नहीं, शैतान धर्म के प्रचारक थे ।’ ⁶³

हैरानी की बात है कि निजी कागज़ात से समृद्ध गोरखपुर की लाइब्रेरी में गांधी की हत्या से जुड़े संदर्भ नहीं मिले । यहाँ तक कि पोद्दार केन्द्रित प्रबंधों और भक्तिभाव से भरी जीवनियों में भी कहीं इसका ज़िक्र नहीं मिलता । गांधी की हत्या से जुड़ा एक ज़िक्र पोद्दार की अप्रकाशित जीवनी की पाण्डुलिपि में मिला है । इसके अनुसार, हत्या के दिन 30 जनवरी 1948 को पोद्दार दिल्ली में थे । पाण्डुलिपि हनुमानप्रसाद पोद्दार और जयदयाल गोयन्दका के करीबी सहयोगी व गीता प्रेस के पूर्व प्रबंधक महावीरप्रसाद पोद्दार को गांधी की हत्या में इन दोनों के शामिल होने की अफ़वाह फैलाने के लिए दोषी मानती है । ‘महावीरप्रसाद कई कारणों से भाई जी (हनुमानप्रसाद पोद्दार) के विरोध में अफ़वाह फैला रहे हैं, (कि) गीता प्रेस और कल्याण गांधी की हत्या के लिए ज़िम्मेदार है । पिछले कई महीनों से वे कांग्रेस के नेताओं से पत्राचार के माध्यम से सम्पर्क में हैं ।’ ⁶⁴ इस पाण्डुलिपि की मानें तो हनुमानप्रसाद पोद्दार को महीनों परेशान किया गया लेकिन वे निडर होकर लखनऊ, इलाहाबाद, कलकत्ता, दिल्ली, रतनगढ़ और अन्य जगहों पर घूमते-फिरते रहे । गोरखपुर के जिला कलेक्टर ने पोद्दार को सूचित कर दिया था कि शहर न लौटें क्योंकि उनके खिलाफ़ गिरफ्तारी का वारंट कभी भी निकाला जा सकता है । इस पाण्डुलिपि ने दबी जुबान में ही इसे ‘दुर्भाग्यपूर्ण घटना’ कहकर संबोधित किया । चूंकि गंभीरचंद दुजारी जो हनुमानप्रसाद पोद्दार के जीवनी लेखक थे, सन् 1948 में गोरखपुर में नहीं थे और उनकी लिखी जीवनी में किसी खास बात का ज़िक्र नहीं किया गया है ।

महात्मा की हत्या पर गीता प्रेस ने बहुत सोची-समझी चुप्पी बरतना जारी रखा । जिस व्यक्ति का आशीर्वाद और लेखन कभी कल्याण के लिए अति महत्वपूर्ण हुआ

करता था, उसी व्यक्ति के लिए *कल्याण* के पृष्ठों में कोई जगह नहीं थी। हत्या के बाद *कल्याण* में गांधी का पहला ज़िक्र अप्रैल 1948 में आया, जब पोद्दार ने गांधी के साथ अपनी कई मुलाकातों के बारे में लिखा। उनके उद्धरण अब पत्रिका के पृष्ठों में धीरे-धीरे लौटने लगे थे, लेकिन असली सवाल का जवाब अभी तक नहीं मिला था। सन् 1948 के फरवरी और मार्च के *कल्याण* के अंकों में गांधी का कोई ज़िक्र क्यों नहीं था?

सीआईडी के अभिलेख कुछ हद तक इस सवाल का जवाब देते हैं। मामले में लिप्त आरएसएस को बचाने में पोद्दार ने पूरा ज़ोर लगा दिया था। गांधी की हत्या में कथित भूमिका होने के कारण 4 फरवरी 1948 को आरएसएस को प्रतिबंधित कर दिया गया था। 15 जुलाई 1949 में नेहरू सरकार द्वारा आरएसएस से प्रतिबंध हटाने के चार दिन बाद पोद्दार ने आरएसएस के साप्ताहिक *पाञ्चजन्य* के संपादक अटल बिहारी वाजपेयी के साथ गोरखपुर में एक सार्वजनिक बैठक में भाग लिया। वाजपेयी ने प्रतिबंध की आलोचना करते हुए कहा, 'आरएसएस को प्रतिबंधित करना सरकार और कांग्रेसियों की ओर से भारी भूल है, यही एकमात्र संगठन है जो हिन्दुओं के लिए कुछ कर सकता है।' ⁶⁵ उन्होंने कहा, 'इस प्रतिबंध को हटाने के लिए मैं सरकार का शुक्रगुज़ार नहीं हूँ, अपनी ग़लती को सुधारने में इन्होंने डेढ़ साल लगा दिए।' सीआईडी की रिपोर्ट के अनुसार पोद्दार ने भी 'इसी ढब का एक छोटा-सा भाषण दिया था।'।

पोद्दार का आरएसएस से जुड़ाव वाजपेयी के साथ केवल बैठक में शामिल होने तक ही सीमित नहीं था। सन् 1949 में गोलवलकर ने जेल से रिहा होने के बाद संयुक्त प्रांत के कुछ महत्वपूर्ण शहरों का दौरा किया, पोद्दार ने उनमें से एक कार्यक्रम के अध्यक्ष के नाते बनारस में गोलवलकर का स्वागत किया। उन्होंने धाराप्रवाह हिन्दी में भाषण दिया। सीआईडी के अनुसार टाउन हॉल में आरएसएस प्रमुख को सुनने के लिए 30,000 से ज़्यादा लोगों की भीड़ उमड़ी थी। इसमें गोलवलकर ने हिन्दू संस्कृति के पुनरुत्थान, भारत के एकीकरण और राज्य की भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग पर ज़ोर दिया। 'समाजवादियों और कम्युनिस्टों के द्वारा समर्थन प्राप्त कार्यकर्ताओं के 'गोलवलकर लौट जाओ', 'बापू का हत्यारा संघ' जैसे नारों के बाद भी गोलवलकर का भाषण जारी रहा। गोलवलकर को काले झंडे दिखाए गए और सैकड़ों प्रदर्शनकारी गिरफ़्तार किए गए। ⁶⁶

धनी और शक्तिशालियों का सलाहकार

गोरखपुर लौटने के बाद भी पोद्दार मारवाड़ी अग्रवाल महासभा की राजनीति से जुड़े रहे, हालाँकि उन्होंने इस राजनीति में कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं निभाई। सन् 1928 में पोद्दार को महासभा की दसवीं वार्षिक बैठक की अध्यक्षता के लिए बॉम्बे आमंत्रित किया गया। सन् 1926 के महासभा सत्र के दौरान देखी गई पुनरुत्थानवादियों और सुधारवादियों की तकरार अब ज़्यादा तीव्र और बदरंग हो गई थी। पोद्दार अध्यक्षता के लिए इस शर्त पर माने कि दोनों ही धड़ों के बीच थोड़ी-बहुत सहमति बने। बहरहाल

पोद्दार के बॉम्बे पहुँचने से पहले ही दोनों के बीच फिर झगड़ा हो चुका था । अंततः उन्होंने अध्यक्षता से इंकार कर दिया और ज़िम्मेदारी मित्र रंगलाल जजोडिया को सौंप दी । इससे जुड़ी अटकलों को शांत करने के लिए पोद्दार ने अध्यक्षता से इंकार करने की अपनी वजहें बताते हुए सफ़ाईपत्र जारी किया, जिसे *अग्रवाल समाचार* और अन्य समाचार पत्रों ने छापा । [67](#)

हालाँकि पोद्दार ने सभा को संबोधित किया । अपने विस्तृत भाषण में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि वे स्वयं पुनरुत्थानवादियों या सनातनियों की तरफ़ हैं । यह गीता प्रेस की कल्पना वाले नैतिक दुनिया को बनाने में सहायक हिन्दू समाज के प्रति सनातनियों के दृष्टिकोण को समझाने वाला विचार योग्य भाषण था । पोद्दार ने अपने भाषण में संस्कृति, समाज, पाश्चत्य प्रभाव और शिक्षा, महिला और घरेलू दायरे, रीति-रिवाज और कपड़े पहनने का संस्कार लगभग सभी विषयों पर बोला, कोई विषय अछूता न रहा । [68](#)

पोद्दार का अपने समय के अग्रणी मारवाड़ी परिवारों से क़रीबी रिश्ता था, लेकिन इन सभी रिश्तों में उनके डालमिया से संबंध अलग स्तर के थे । मूल रूप से रोहतक के रहने वाले डालमिया, जो मारवाड़ियों के तत्कालीन कारोबारी जगत के बागी थे, बीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों के सबसे बड़े व्यापारियों में से एक थे । व्यापारी के रूप में अपनी शुरुआत करने वाले डालमिया को पहला बड़ा मुनाफ़ा सट्टा व्यवसाय से हुआ, जिसका निवेश उन्होंने बाद में चीनी और सीमेंट में दिलचस्पी रखने वाली औद्योगिक कंपनी में कर दिया । पोद्दार और डालमिया कलकत्ता में मिले । डालमिया पोद्दार से उम्र में सात साल छोटे थे । बॉम्बे में उनकी मित्रता गहरी हुई और वे उम्रभर के लिए घनिष्ठ मित्र हो गए । पोद्दार यह कहा करते थे कि डालमिया से उनका पूर्वजन्म का रिश्ता है । डालमिया ने उन्हें अपने छोटे भाई जयदयाल से भी मिलवाया । ये तीनों बॉम्बे में साथ रहते थे । जब भी रात में कभी जयदयाल की आंख खुलती वे पोद्दार को किसी न किसी धार्मिक पुस्तक में मगन पाते । [69](#) जैसा कि रामकृष्ण डालमिया ने बाद में लिखा है कि पोद्दार उनके तीसरे भाई की तरह थे और पोद्दार ने उन्हें गुप्त रूप से यह बात भी बताई थी कि रोड्डा षड्यंत्र की सज़ा में मिले एकांतवास के दिनों में एक शिक्षित बंगाली कन्या उनसे प्रेम करने लगी थी । आर के डालमिया के अनुसार उस लड़की ने पोद्दार के विवाहित होने के बावजूद भी सालों तक उनका इंतज़ार किया था लेकिन वह बाद में नहीं मिले । [70](#) जहाँ पोद्दार के कागज़ात और पोद्दार पर आधारित लेखन में सिर्फ़ पोद्दार के ही परोपकारी और दयालु होने की बात लिखी थी वहीं डालमिया द्वारा लिखे गए विवरण बता रहे थे डालमिया ने पोद्दार की कई बार मदद की थी । जब गोरखपुर स्थित *कल्याण* के संपादन के लिए उन्होंने बॉम्बे छोड़ा तब डालमिया ने 10,000 की संग्रह राशि वाला ट्रस्ट खोला जो पोद्दार और उनके परिवार के खर्चों को वहन कर सके । बाद में अवसर आने पर पोद्दार ने डालमिया बंधुओं को बॉम्बे और कलकत्ता में अपना कर्ज़ निपटाने के लिए कहा । [71](#)

जयदयाल डालमिया के अनुसार पोद्दार डालमिया परिवार के अभिभावक की तरह थे जिनकी कही हुई बात का परिवार में बहुत महत्व था। चाहे वह रामकृष्ण डालमिया की अतृप्य यौन इच्छाएं हों, या बड़ी बेटी रमा की शिक्षा या फिर निजी सचिव की नियुक्ति, पोद्दार की सलाह परिवार के हरेक मामले में ली जाती थी। ⁷²

रमा को आधुनिक शिक्षा दी जा रही थी। उसे हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेज़ी का अच्छा ज्ञान था। उस दौर में जब धनी परिवारों की लड़कियों ने भी बिना किसी संरक्षण के घर के बाहर क़दम नहीं रखे थे तब रमा साइकिल चलाना, तैराकी करना, कार चलाना और घुड़सवारी जानती थी। इन खूबियों ने सन् 1930 के वक़्त में उपयुक्त वर तलाशने निकले डालमिया के लिए मुसीबत खड़ी कर दी। पोद्दार ने इस मसले की भी जानकारी लेते हुए लिखा, ‘रमा का संबंध अभी नहीं हुआ। फ़िरोजपुर वालों का क्या हुआ? मेरी समझ से लड़की को अब अविवाहित रखना उचित नहीं है। कुछ नीचे उतर जावो तो संबंध हो ही सकता है।’ ⁷³ अख़बार में एक विज्ञापन दिया गया, जिसमें विवाह के लिए प्रस्ताव एक पोस्ट बॉक्स नंबर पर भेजने के लिए कहा गया था। बहुत से प्रस्ताव आए लेकिन कोई प्रस्ताव अच्छे मारवाड़ी घर से नहीं आया था। अंततः तत्कालीन संयुक्त प्रांत में नजीबाबाद के शान्तिप्रसाद जैन के प्रस्ताव को मंजूर कर लिया गया। ⁷⁴ आगे के सालों में यही जैन परिवार *द टाइम्स ऑफ़ इंडिया* का मालिक बना। संयोग से यह उन शुरुआती समाचार पत्रों में से था जिन्होंने वैवाहिक विज्ञापनों की क्षमता को देखते हुए उसे आय के बड़े ज़रिए की तरह पहचाना।

पोद्दार डालमिया के इतने क़रीबी थे कि जब एक आदमी कलकत्ता में एक वरिष्ठ ब्रिटिश पुलिस अधिकारी की हत्या के बाद मदद मांगने दानापुर फैक्टरी (पटना के पास) आया तो उसे तुरंत पोद्दार के पास गोरखपुर भेजा गया। उस आदमी को छिपा कर गीता प्रेस और गीता वाटिका में शरण दी गई। ⁷⁵

सन् 1939 में, डालमिया सीमेंट जो कि आर के डालमिया के रोहतास औद्योगिक समूह की एक इकाई थी, यह एक अन्य एकल प्रोडक्ट कंपनी एसोशियेटेड सीमेंट कंपनीज (एसीसी) के साथ प्राइस वार की एक तीखी लड़ाई में फंस गई। ⁷⁶ डालमिया सीमेंट अपना उत्पाद कुल उत्पादन लागत से भी कम दामों पर बेच रहा था। इस कारोबारी पैतरे का एसीसी मुकाबला नहीं कर पा रही थी। पोद्दार, जो उस समय अपना अधिकांश वक़्त डालमिया की दादरी (वर्तमान में हरियाणा) यूनिट में बिता रहे थे। एसीसी के साथ समझौता करने के पक्षधर थे, क्योंकि ऐसा नहीं होने की स्थिति में मजबूरन सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ता। यह जानते हुए कि इस काम के लिए डालमिया इतनी आसानी से तैयार नहीं होंगे, उन्होंने जमनालाल बजाज से हस्तक्षेप करने का आग्रह यह कहते हुए किया कि अगर ‘दोनों कंपनियां एक हो जाएँ तो यह दोनों के हित में होगा।’ ⁷⁷ एक महीने से भी कम समय के भीतर पोद्दार ने एक बार फिर बजाज से हस्तक्षेप करने को कहा। उन्होंने फिर दोनों को फ़ायदा होने के अपने तर्क को दोहराया, साथ ही डालमिया सीमेंट के ‘मारवाड़ी उपक्रम’ होने की बात पर

ज़ोर देते हुए कहा कि उन्हें 'इस मामले को इस परिप्रेक्ष्य से भी देखना चाहिए ताकि यह मारवाड़ी उपक्रम अच्छे से फले-फूले।' ⁷⁸ अपेक्षानुसार, बजाज ने पोद्दार का यह आग्रह मानने से इंकार कर दिया और सन् 1941 में सरकार के हस्तक्षेप के बाद डालमिया सीमेंट और एसीसी को इस समझौते पर हस्ताक्षर करने पड़े कि वे सीमेंट को सीमेंट मार्केटिंग कंपनी ऑफ़ इंडिया के माध्यम से 'निश्चित मूल्य और निश्चित कोटे पर बेचेंगे।' ⁷⁹

रामकृष्ण डालमिया का जीवन घटनाप्रधान था। उन्होंने छह विवाह किए और अठारह बच्चों के पिता बने। उनकी पांच पत्नियाँ लगभग एक ही समय में गर्भवती थीं। बॉम्बे में पोद्दार की आध्यात्मिक बहसों के दौरान डालमिया ने एक बार लगभग सब कुछ त्याग कर भिक्षुक बनने का ठान लिया था लेकिन उनकी वासना ने उन्हें रोक लिया। सन् 1947 के बाद डूबते हुए व्यापार (जिसके लिए उन्होंने नेहरू को दोषी ठहराया ⁸⁰) और बढ़ते हुए पारिवारिक दायित्वों के बीच यह बड़ा व्यापारी सांत्वना और मार्गदर्शन के लिए पोद्दार की ओर ही झुका। बदले में पोद्दार ने कहा कि दुर्भाग्य से डालमिया वही आचरण बरत रहे थे जिसे *कल्याण* में पथभ्रष्ट जीवन शैली और सनातन हिन्दू धर्म के नियमों से हेय माना गया है। उनके जीवन से जुड़े लेख कहीं-कहीं ज़ाहिर करते हैं कि उन्होंने डालमिया की वासनापूर्ण जीवन शैली के प्रति अफ़सोस ज़ाहिर किया वहीं इसे ईश्वर की इच्छा भी माना। पोद्दार ने गंभीरचंद दुजारी को अपनी जीवनी लिखने के समय बताया कि 'यह ईश्वर की इच्छा ही है कि उनकी छुपी हुई वासना अब जगज़ाहिर है। यह सब जल्द ठीक होगा और वे पुनः ईश्वर के चरणों में लौट आएंगे। उनमें अभी भी वे गुण हैं जिनसे कोई भी व्यक्ति मोहित हो सकता है।' पोद्दार डालमिया को सही राह पर लाने के लिए हार मानना नहीं चाहते थे क्योंकि अतीत में डालमिया ने हर उस व्यक्ति को आर्थिक मदद मुहैया कराई थी, जिसके लिए पोद्दार ने उनसे कहा था। उनके छोटे भाई जयदयाल डालमिया भी गीता प्रेस से पूरी तरह से जुड़े थे।

पत्नियों की आपसी जलन और साजिशों की तनातनी में फंसे डालमिया ने पोद्दार को बताया कि किस तरह आर्थिक संकट के चरम पर उनकी सबसे छोटी पत्नी दिनेशनंदिनी ने उन्हें दुश्मन से भी ज़्यादा परेशान किया हुआ है। डालमिया की मानें तो दिनेशनंदिनी ने उनके आठ से दस हज़ार रुपए चुरा लिए और लौटाने से इंकार कर दिया। इतना तंग करती है... 'पर मैं शान्तिपूर्वक सहन कर लेता हूँ और करता रहूँगा क्योंकि अपने पापों का ही प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।' ⁸¹ कुछ महीनों बाद भी उन्होंने दिनेशनंदिनी पर वही आरोप लगाया, 'अगर दूसरों के सामने निंदा करती है तो आप ही पाप अपने ऊपर लेती है।' ⁸² ये प्रतिष्ठित उदार नारीवादी कवयित्री दिनेशनंदिनी चोरादिया थीं जिनकी कविताएँ प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका *चाँद* में छपा करती थीं। उनकी रचना *शबनम* आलोचक-कवि रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित भूमिका के साथ छापी गई थी। उनकी इस रचना पर कई दुर्लभ समीक्षाएँ की गई थीं और इसे सन् 1937 में प्रतिष्ठित सेकसरिया सम्मान भी मिला था। लेकिन डालमिया परिवार में दाखिल होने के बाद

साहित्यिक गतिविधियों से उनका नाता टूट गया और इसकी जगह आपसी संदेह और साज़िशों का बोलबाला हो गया ।

कई बार बहुत मामूली से निजी मुद्दे भी पोद्दार के समक्ष रखे जाते थे । पारिवारिक व्यवसाय के साथ-साथ गीता प्रेस को संभाल रहे जयदयाल डालमिया ने एक बार पोद्दार से कहा कि वे उनके बेटे विष्णु हरि को समझाएँ कि वह डालमिया कंपनी के दफ्तरों में महिला स्टेनो-सेक्रेटरी की नियुक्तियां न करें । विष्णु हरि आगे जाकर विश्व हिन्दू परिषद के अध्यक्ष बने और सन् 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस को अंजाम देने वाले अयोध्या आंदोलन के अग्रणी नेता बने । [83](#)

सन् 1963 में कमीशन ऑफ़ इन्क्वायरी की रिपोर्ट (डालमिया-जैन कंपनियों के प्रशासन की पड़ताल) के आने के बाद यह बात खुल कर सामने आ गई कि पोद्दार डालमिया परिवार के ‘अभिभावक’ क्यों कहे गए! 11 दिसंबर 1956 में यह कमीशन गठित किया गया । इसे विवियन बोस की अध्यक्षता में गठित किया गया था और इसका उद्देश्य ‘नौ कम्पनियों की छानबीन और उनके प्रशासन की तहकीकात’ [84](#), इन कंपनियों या फर्मों पर परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष स्वामित्व की सीमा और प्रकृति या रामकृष्ण डालमिया, जयदयाल डालमिया, शान्तिप्रसाद जैन, श्रीयांस प्रसाद जैन और उनके परिजन, कर्मचारी और उनसे किसी रूप में जुड़े हुए लोगों की फर्मों और कंपनियों की जांच करना था । [85](#) रिपोर्ट को अंतिम रूप देने में देरी की वजह डालमिया-जैन समूह द्वारा दाखिल किए गए कोर्ट केस थे । [86](#)

कमीशन ने यह पाया कि ‘बैंकों, इंश्योरेंस कंपनियों और पब्लिक लिमिटेड कंपनियों का पैसा ग़लत ढंग से अन्य कंपनियों के शेयर ख़रीदने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है ।’ व्यापक संचित संसाधनों और तरल संसाधनों के माध्यम से अन्य कंपनियों पर स्वामित्व हासिल करने की कोशिश भी की जा रही है । कमीशन ने यह भी पाया कि हर बार नुकसान पब्लिक कम्पनियों और उनमें पैसा निवेश करने वाली जनता को ही उठाना पड़ रहा था । जिन कम्पनियों के शेयर जनता ने ख़रीद रखे थे उन्हीं कम्पनियों को बिना गारंटी और कम ब्याज़ दर के साथ उस समूह या रामकृष्ण डालमिया को कर्जा देने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था जिनमें डालमिया के हित थे ।

पोद्दार बोस कमीशन की रिपोर्ट के निर्णायक मोड़ पर प्रकट होते हैं । पूरी जांच के दौरान शान्तिप्रसाद जैन और जयदयाल डालमिया इस बात पर कायम रहे कि डालमिया-जैन बिजनेस 31 मई 1948 तक एक ग्रुप की तरह अस्तित्व में था । लेकिन कमीशन के पास 15 जुलाई 1946 को मसूरी में तैयार किया हुआ हिन्दी में एक दस्तावेज़ भी था । शान्तिप्रसाद जैन ने कमीशन को बताया कि परिवार के करीबी दोस्त हनुमानप्रसाद ताऊजी जिन पर हम भरोसा (और आश्रित रहते थे) करते थे, उन्होंने यह दस्तावेज़ बनाया था । [87](#)

इस दस्तावेज़ के अनुवाद के बाद, कमीशन इस नतीजे पर पहुंचा कि दस्तावेज़ बनवाए जाने की तारीख पर ये तीनों मूलधन के स्वामी हैं जो कि नक़द और शेयर के रूप में कहीं भी मौजूद हो सकते थे। ⁸⁸कमीशन ने कहा कि पोद्दार द्वारा तैयार किए गए दस्तावेज़ में संपत्ति का भौतिक रूप से बंटवारा नहीं किया गया था, लेकिन प्रत्येक के शेयर को परिभाषित और पुनः आवंटित कर दिया गया था। ⁸⁹दस्तावेज़ में इस बात की भी स्पष्ट रूपरेखा दी गई थी कि तीनों के पास कितना ब्याज होगा और इस ब्याज का बंटवारा और वितरण कैसे किया जाएगा। इस बात का भी विशेष रूप से उल्लेख था कि शेयरों के लाभांश का बंटवारा विभिन्न चैरिटेबल ट्रस्टों और तीनों प्रोप्राइटर्स द्वारा तय किए गए अनुपात में होगा। इस दस्तावेज़ में रामकृष्ण डालमिया, जयदयाल डालमिया और शान्तिप्रसाद जैन को मालिक कहा गया था।

जब कमीशन ने पोद्दार द्वारा बनाए हुए ये दस्तावेज़ सामने रखे तो शान्तिप्रसाद जैन ने यह कहते हुए इसे खारिज किया कि दस्तावेज़ में ऊट-पटांग और हास्यास्पद बातें पुराने जमाने के एक पारिवारिक मित्र द्वारा जोड़ी गई थी जिसे उस कानूनी प्रक्रिया का ज्ञान नहीं था जिसके ज़रिए संपत्तियों का प्रबंधन किया जाता है। जैन ने कहा कि उन्होंने इस दस्तावेज़ पर इसलिए हस्ताक्षर किए क्योंकि डालमिया बंधुओं ने भी इस पर हस्ताक्षर कर दिए थे। उनके वकील ने तर्क दिया कि यह दस्तावेज़ महज़ एक कृत्रिम दस्तावेज़ भर था जिसको सिर्फ़ कोरी सांत्वना जताने के लिए तैयार किया गया था। ⁹⁰ वकील ने यह भी कहा कि इस दस्तावेज़ पर कभी क्रियान्वयन नहीं हुआ। लेकिन कमीशन इस तर्क से संतुष्ट नहीं हुआ। कमीशन ने माना कि पोद्दार का बनाया समझौता महत्वपूर्ण था और इस पर तीनों प्रोप्राइटर भरोसा करते थे।

इस दस्तावेज़ के साथ एक और दस्तावेज़ पोद्दार ने तैयार किया था जिसमें उन कंपनियों की सूची थी जिनको अप्रैल 1948 में बांटा गया था। बोस और कमीशन के अन्य सदस्यों को यह बात कुछ अजीब लगी कि बंटवारे के सामान्य सिद्धांतों वाले मामले को निपटाने के लिए परिवार के पुराने दोस्त पोद्दार को बुलाया गया। ⁹¹हालाँकि शान्तिप्रसाद जैन ने कमीशन को बताया कि ये नियम खुद ही बने थे, लेकिन उनके बड़े भाई श्रीयांस प्रसाद जैन ने कमीशन की जिरह के दौरान बताया कि ये लोग पोद्दार को अपने बड़े भाई जैसा मानते थे। हालाँकि वे उनके सगे-संबंधी नहीं थे, लेकिन कई मायनों में वे सगे-संबंधियों से भी बढ़कर थे। उन्होंने माना कि पोद्दार ने बंटवारे के बुनियादी सिद्धांत तय करने में मदद की थी।

हालाँकि इस कमीशन की नियुक्ति नेहरू सरकार ने की थी, लेकिन कमीशन की ज़ोर-आजमाइश शास्त्री सरकार के समय तक चलती रही। सन् 1964 में आर के डालमिया के जेल से छूटने पर उनके दामाद शान्तिप्रसाद जैन और बेटी रमा जैन ने उन्हें *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* का नियंत्रण देने से मना कर दिया। ⁹²पोद्दार, जिनके शास्त्री के साथ अच्छे संबंध थे, ने शास्त्री से अनुरोध किया कि, 'श्री रामकृष्ण डालमिया और श्री शान्तिप्रसाद जैन बहुत कष्ट भोग चुके हैं। उन पर दया की जाये।' ⁹³

पोद्दार को अपने कारोबारी मामलों में शामिल करने वाले डालमिया बंधु अकेले नहीं थे। सेठ गोविंद दास जो स्वयं अपना पारिवारिक कारोबार छोड़ चुके थे, वे पोद्दार से अपनी कंपनी की सालाना बैठक में पुरुषोत्तमदास टंडन को शेयरहोल्डर बनाने के लिए राजी करने के लिए कह रहे थे। दास ने पोद्दार से पडरौना के राजा को अपनी कंपनी के शेयर खरीदने के लिए राजी करने का भी आग्रह किया था। ⁹⁴

पोद्दार से लगभग सभी लोग आग्रह करते थे। उनसे आग्रह करने वाले लोगों में वे गांधीवादी भी होते थे जिनके लिए पोद्दार जनवरी, 1948 के बाद अभिशाप बन गए थे। विनोवा भावे के भू-दान आंदोलन में शामिल रहे सर्व सेवा संघ के वरिष्ठ सदस्यों दादा धर्माधिकारी और विमला ठक्कर को जब अगस्त 1958 में डालमिया-जैन ट्रस्ट से प्रति माह मिलने वाली 250 रुपए की सहायता अचानक बंद हो गई तो उन्होंने पोद्दार से मदद माँगी। ठक्कर ने जनवरी 1959 में यह सहायता फिर से बहाल होने का धन्यवाद देते हुए पोद्दार को पत्र लिखा था। ⁹⁵

सीतामऊ के राजा रामसिंह पोद्दार और गोयन्दका दोनों के प्रशंसक थे और 1930 के दशक के बाद से ही लगातार उनकी सलाह ले रहे थे। प्रगतिशील शासक ⁹⁶समझे जाने वाले रामसिंह ने अपने निजी सचिव शिवराम कृष्ण गोडबोले को पोद्दार से मिलने के लिए गोरखपुर तक भेजा। ⁹⁷सन् 1935 में जब सिंह ने मौन के लिए एक छोटी कुटिया बनाई तो उस स्थान को रंगने के लिए उपयुक्त रंग के बारे में उन्होंने अपने सचिव को पोद्दार से परामर्श लेने के लिया कहा। ⁹⁸सिंह कभी सीधे खुद या कभी गोडबोले के ज़रिए पोद्दार के साथ नियमित संपर्क में रहे और उन्हें सीतामऊ आकर सत्संग करने के लिए कहते रहे। अपनी मानसिक स्थिति और उसके आध्यात्मिक हल के लिए वे लगातार चिंतित रहे। यह संभव है कि सिंह की चिंता का कारण उनके बेटे गोविंद सिंह द्वारा सन् 1936 में क्रिश्चियन धर्म अपनाना रहा हो। पोद्दार तक यह खबर पहुँची थी और उन्होंने गोडबोले से इसकी पुष्टि भी की थी। ⁹⁹उसे बताया कि गोविंद सिंह तो पहले ही धर्मांतरण करना चाहता था, लेकिन धार्मिक विद्वानों द्वारा मिलकर हिन्दुवाद का बुनियादी दर्शन समझे बिना वह ऐसा कोई क़दम न उठाने के प्रति सहमत हो गया था। हालाँकि उसने कोई भी औचक क़दम न उठाने का वायदा किया था, लेकिन उसने किया ठीक इसके उलट। वह अकेले ही इंदौर गया और परिवार को तब सूचित किया जब धर्मान्तरण से जुड़ी औपचारिकताएं पूरी हो गई थीं। गोडबोले ने पोद्दार को बताया कि हालाँकि रामसिंह इस झटके से उबर चुके हैं लेकिन उन्हें फिर भी मानसिक शान्ति की ज़रूरत है जो केवल सत्संग ही दे सकता है। उसने पोद्दार से सीतामऊ आने को कहा, हालाँकि बाद में रामसिंह स्वयं ही पोद्दार या गोयन्दका की धार्मिक परिचर्चाओं को सुनने के लिए गोरखपुर और ऋषिकेश गए। गोयन्दका और पोद्दार भी सीतामऊ गए।

बिहार के जगत नारायण लाल हिन्दू महासभा के वरिष्ठ नेताओं में से एक थे जो आज़ादी के बाद कांग्रेस में शामिल हो गए थे और बहुत बार क़ानून, सहकारिता और पशुपालन मंत्री बने। लेकिन उन्होंने डालमिया और पोद्दार जैसे रूढ़िवादी तत्वों के साथ

अपना संपर्क बनाए रखा। संयोगवश, उन्होंने सन् 1935 के केंद्रीय विधानमंडल चुनावों में हिन्दू महासभा के प्रत्याशी के तौर पर कांग्रेस के अनुराग नारायण सिंह और निर्दलीय डालमिया के खिलाफ़ चुनाव लड़ा था। (लाल की जमानत ज़ब्त हो गई थी और डालमिया किसी तरह अपनी जमानत बचा सके थे) ¹⁰⁰

आरएसएस के माधव सदाशिव गोलवलकर पोद्दार से पहली बार मिलने गोरखपुर आए थे, लेकिन इस मुलाकात के वर्ष की कोई जानकारी नहीं है। उन्होंने गीता प्रेस और उसके धार्मिक प्रकाशनों के बारे में सुना था। पोद्दार से मिलने के बाद उन्होंने एक लेख में लिखा, 'यह प्रतिष्ठान, जहाँ से नाममात्र मूल्य पर श्रेष्ठतम ग्रन्थ उपलब्ध किए जा रहे हैं, कैसा है, उसे कौन चलाता है, इन बातों का कौतूहल हृदय में बहुत समय से रहा।' गोलवलकर ने पोद्दार के साथ अपनी मुलाकात पर एक लेख लिखा। ¹⁰¹ उन्होंने अपनी इस मुलाकात को हंसमुख, नफ़ासत और मधुर भाषा बोलने वाले व्यक्ति के साथ हुई बातचीत के तौर पर याद किया है। गोलवलकर ने लिखा, 'किसी भी प्रतिष्ठान की सफलता मात्र उसके उत्तम उद्देश्य से नहीं होती, केवल धन की प्रचुरता से भी नहीं होती। उस ध्येयनिष्ठ उद्देश्य की पूर्ति हेतु उस पवित्र धन का सदुपयोग करने वाला दीर्घदर्शी योजनाकुशल ध्येय निष्ठ संचालक होना चाहिए। गीता प्रेस में इन तीनों का एक समन्वय जयदयाल गोयन्दका और हनुमानप्रसाद पोद्दार में है।'

हिन्दू पुनरुत्थानवादियों मदनमोहन मालवीय, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और संपूर्णानंद के नेतृत्व में कांग्रेस का रूढ़िवादी धड़ा हमेशा से ही पोद्दार के नज़दीक था। सन् 1946 में हुई मालवीय की मृत्यु और सन् 1948 में हुई महात्मा गांधी की हत्या ने कम-से-कम इस धड़े के साथ पोद्दार के समीकरणों को नहीं बदला।

पोद्दार द्वारा लिखित एक पत्र, जो 1950 के दशक का माना जाता है (और जिस पर कोई तारीख़ नहीं लिखी है), में पोद्दार को तत्कालीन गृह मंत्री गोविंद वल्लभ पंत द्वारा भारत रत्न देने के प्रस्ताव का ज़िक्र है, जिसे पोद्दार ने पहले ही ठुकरा दिया था। ¹⁰² इस सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार को लेने से मना करने पर पंत की प्रतिक्रिया अक्षरशः दी गई है: 'आप इतने महान हैं, इतने ऊँचे महामानव हैं कि भारत वर्ष को क्या, सारी मानवी दुनिया को इसके लिए गर्व होना चाहिए। मैं आपके स्वरूप के महत्व को न समझ कर ही आपको भारत रत्न की उपाधि देकर सम्मानित करना चाहता था। आप इस उपाधि से बहुत बहुत ऊँचे स्तर पर हैं।' आश्चर्यजनक रूप से, पोद्दार ने पंत को बताया कि जिस पत्र में उन्होंने यह प्रस्ताव पोद्दार को दिया है, वह पत्र पोद्दार ने 'जला दिया है।' उन्होंने पंत से यह भी आग्रह किया कि उनके भेजे गए पत्र को गुप्त रखा जाये। पोद्दार नियमित रूप से अपने पत्रों और बाक़ी बातचीत को नष्ट करते रहते थे। यहाँ तक कि उनकी साक्षात्कारों पर आधारित और आंशिक रूप से प्रकाशित जीवनी में भी उनका यह कथन दर्ज है कि तिलक और बाक़ी अन्य लोगों द्वारा लिखे गए पत्रों को उन्होंने नष्ट कर दिया है। उनके बहुत से पत्रों में पढ़ने वाले के नाम से ये निर्देश हैं कि पत्रों को पढ़ने के बाद नष्ट कर दिया जाये।

पोद्दार ने अपने जीवनी लेखक गंभीरचंद दुजारी को भी बताया कि औपनिवेशिक काल के दौरान सबसे पहले गोरखपुर के कलेक्टर आध्या प्रसाद ने उन्हें राय बहादुर की पदवी और बाद में संयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर हैरी ग्राहम हैग ने नाइटहुड की पदवी देने का प्रस्ताव किया था। जब मैंने नाइटहुड की पदवी लेने से मना किया तो हैग बहुत खुश हुए और उन्होंने मुझे बताया कि ऐसे सम्मान किसी कुत्ते के गले में पट्टा डालने जैसे होते हैं।

राजनीतिज्ञों के नज़दीक होने के चलते पोद्दार कई बार राजनीतिक दांव-पेचों में भी शामिल होते थे और कठिन राजनीतिक मतभेदों के दौरान अपना पक्ष भी रखते थे। कई बार ऐसा करते हुए वे *कल्याण* में बहुत उत्साहजनक ढंग से प्रचारित किए जाने वाले ऊंचे आदर्शों से समझौता भी करते थे। सन् 1955 में जब संपूर्णानंद उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री और जी बी पंत केंद्रीय गृह मंत्री बने तो कांग्रेस की बहुचर्चित अंदरूनी धड़ेबाजी जल्द ही सबके सामने आ गई। बरसों तक पोद्दार के दोस्त रहे संपूर्णानंद, जो कायस्थ थे, के अपने राजस्व मंत्री चरणसिंह के साथ कुछ मतभेद थे जिन्होंने सन् 1959 में संपूर्णानंद के मंत्रिमंडल से इस्तीफ़ा दे दिया था। सिंह के लिए इस बात का बदला लेने का वक़्त तब आया जब राज्य के गृह मंत्री कमलापति त्रिपाठी के बेटे लोकपति त्रिपाठी के खिलाफ़ भ्रष्टाचार का आरोप लगा। आरोप यह था कि सींचाई विभाग ने बग़ैर टेंडर के एक कांट्रैक्ट दिया है और जिस कंपनी को यह कांट्रैक्ट दिया गया था उसने यह काम कथित तौर पर लोकपति त्रिपाठी के स्वामित्व वाली कंपनी हिन्दुस्तान कॉमर्शियल कॉरपोरेशन को आउटसोर्स कर दिया है।

पोद्दार ने त्रिपाठी का बचाव करते हुए और सींचाई विभाग के डिप्टी चीफ़ इंजीनियर प्रयाग नारायण के विरुद्ध संपूर्णानंद को पत्र लिखा। पोद्दार ने पत्र में लिखा कि इसके पीछे चरणसिंह की मिली-भगत है। ¹⁰³ पोद्दार ने यह भी कहा कि शारदा सागर बांध घोटाले कहे जाने वाले इस मामले पर सवाल मोतीमहल, लखनऊ में रहने वाले सोशलिस्ट पार्टी के विधायक राजनारायण ने उठाए हैं और उन्हें यह सूचना प्रयाग नारायण ने दी है। उन्होंने प्रयाग नारायण को सख़्त-से-सख़्त सज़ा देने की बात लिखी और ऐसा न होने की स्थिति में सत्ताधारी पार्टी और देश को बहुत बड़ा नुक़सान होने की बात कही। उत्तर प्रदेश के याचिका विभाग ने पोद्दार के पत्र को स्वीकार किया।

यह मामला जल्द ही पकड़ से बाहर हो गया और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को हस्तक्षेप करना पड़ा। पॉल आर ब्रास ने इस घोटाले के बारे में विस्तार से बताते हुए लिखा है कि इस मामले में चरणसिंह का इस्तेमाल संपूर्णानंद सरकार को ख़तरे में डालने के लिए किया गया। ¹⁰⁴ नेहरू का हस्तक्षेप भी चरणसिंह की कोई मदद नहीं कर पाया और बाद के वर्षों में वे कांग्रेस के खिलाफ़ उठने वाली सबसे मुखर आवाज़ों में से एक बने।

कमलापति त्रिपाठी के साथ पोद्दार का रिश्ता जारी रहा और सन् 1970 में त्रिपाठी ने पोद्दार को तुलसी के *रामचरितमानस* के 400 वर्षों के उपलक्ष्य में होने वाले आयोजन

की राष्ट्रीय समिति का सदस्य बना दिया। संपूर्णानंद भी, जिन्होंने सन् 1960 में हुए सींचाई विभाग वाले कमलापति त्रिपाठी प्रकरण के बाद मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया था, पोद्दार के करीबी बने रहे। सन् 1967 में सेवानिवृत्त का जीवन जीते हुए, उन्होंने आज के पूर्व संपादक विद्या भास्कर को रामनाथ गोयनका द्वारा शुरू किए जा रहे नए हिन्दी दैनिक में नौकरी दिलवाने के उद्देश्य से पोद्दार की मदद माँगी थी। भास्कर की, रामनाथ के बेटे बी डी गोयनका से पहले ही मुलाकात हो चुकी थी लेकिन संपूर्णानंद पोद्दार की सिफारिश भी चाहते थे। ¹⁰⁵ पोद्दार, जो स्वयं रामनाथ गोयनका के बहुत अच्छे दोस्त थे, संपूर्णानंद के इस आग्रह से अनुग्रहित तो हुए लेकिन *जनसत्ता* नाम का यह नया हिन्दी दैनिक कई सालों बाद सन् 1983 में जाकर ही शुरू हो पाया।

इससे पहले पोद्दार ने न्यूजप्रिंट और प्रिंटिंग प्रेस के सिलसिले में गोयनका की मदद माँगी थी। 1960 के दशक के मध्य में जब कांग्रेस-विरोधी और इंदिरा-विरोधी लहर अपने उफान पर थी, जिसको मुख्य रूप से गोयनका के *इंडियन एक्सप्रेस* समूह ने ही हवा दी थी, तो गोयनका ने चुनावी मैदान में उतरने का निर्णय लिया। वे सन् 1971 में विदिशा से जनसंघ प्रत्याशी के तौर पर लोकसभा चुनाव लड़े। बीमारी से जूझ रहे पोद्दार के लिए यह समय प्रत्यक्ष राजनीति से खुद को दूर रखने के अपने एक और सिद्धांत से समझौता करने जैसा था। हालाँकि दो साल पहले ही पोद्दार ने गोयनका को यह सलाह दी थी कि वे धीरे-धीरे अपने कारोबार को समेट लें और ईश्वर भक्ति में डूब जाएँ, ताकि उन्हें ज़्यादा चिंता न सताए, ¹⁰⁶ लेकिन तब तक उन्होंने गोयनका को समर्थन देने की सार्वजनिक सूचना जारी कर दी। पोद्दार ने रेखांकित किया कि उनका लक्ष्य यह था कि ‘भारत में धर्म का हास न हो क्योंकि धर्म ही *कल्याण* का मूल है।’ ¹⁰⁷

उन्होंने कहा कि, ‘श्री रामनाथ जी प्रसिद्ध उद्योगपति, सार्वजनिक क्षेत्र के पुराने कार्यकर्ता विविध समाचार पत्रों के द्वारा सद्भावों का प्रचार प्रसार करने वाले सुस्पष्ट तथा स्वस्थ भावों के बड़े विचारशील तथा उदार पुरुष तो हैं ही, साथ ही इनकी धर्म में विशेष रुचि है। मैं बचपन से इनको जानता हूँ और इनके अनेक आदर्श गुणों पर मुग्ध हूँ। मैं चाहता हूँ, इनके क्षेत्र की जनता इनके गुणों का समुचित आदर करे और अधिक से अधिक वोट देकर इन्हें लोकसभा में भेजे। लोग उनके सेवाभाव से बहुत कुछ सीखेंगे।’

गोयनका का सन् 1951-52 में कांग्रेस टिकट पर तिंदीवानम से चुनाव लड़ने का पहला प्रयास बुरी तरह असफल रहा था। इस चुनाव में महज़ 15.5 प्रतिशत वोटों के साथ दूसरे स्थान पर रहे थे। इस बार विदिशा से वह 52.04 प्रतिशत मतों के साथ भारी अंतर से विजयी हुए। कांग्रेस के मनीभाई जे मेहता 41 प्रतिशत मतों के साथ दूसरे नंबर पर रहे थे।

महिलाओं का समर्पण

1920 का दशक आते-आते कुछ परेशानियों और नाकामियों के बाद पोद्दार के निजी जीवन में उथल-पुथल मच गई थी। तीन असफल प्रयासों के बाद उनकी पत्नी रामदेई ने सन् 1929 में एक पुत्री को जन्म दिया। नवजात का नाम सावित्री रखा गया और यही उनकी एकमात्र संतान थी। *कल्याण* में विवाह और स्त्री-पुरुष संबंधों पर उनके द्वारा लगातार की जा रही वकालत और उनके निजी जीवन में चल रहे हालत में ज़मीन-आसमान का अंतर था।

अपनी मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व स्त्रियों के साथ अपने संबंधों पर एक सवाल का जवाब देते हुए पोद्दार ने एक परिचित का नाम लिए बिना बताया कि उन्हें ईश्वर की ओर से हर तरह की बात प्रकाश में लाने की अनुमति नहीं है। स्वयं को ईश्वरीय गुणों से सम्पन्न व्यक्ति मानते हुए उन्होंने अपने सम्पर्क में आई स्त्रियों को अपना भक्त माना, 'हाँ, इन प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर संकेतानुसार दे सकता हूँ। स्त्री साधकों में तीन के प्रति मेरा विशेष आकर्षण है। इस जीवन में मेरी अर्द्धांगिनी रामदेई, दक्षिण की चिन्मयी देवी और सावित्री सेकसरिया। और भी बहुत-सी स्त्रियाँ और पुरुष हैं जो अपेक्षाकृत इनसे नीची स्थिति में होने पर भी बहुत से अच्छे हैं। एक व्यक्ति जिसे साधक नहीं माना जाता, जो स्वयं भी नहीं मानता पर संत हृदय है, वह है जयदयाल (डालमिया)। मेरे स्नेह पात्रों में सबसे ऊँचा स्थान उसी का है।' ¹⁰⁸

बॉम्बे के एक समृद्ध परिवार से संबंध रखने वाली सावित्री सेकसरिया के बारे में कम ही जानकारी उपलब्ध है। हरिकृष्ण दुजारी जो उनसे भली-भाँति परिचित थे, उन्होंने मुझे बताया कि 'वो पोद्दार को पूर्णतः समर्पित थीं और साल भर में कुछ महीने यहीं गोरखपुर में बिताती थीं।' एक संदर्भ को छोड़कर और कहीं सावित्री का नाम पोद्दार के निजी कागज़ात में नहीं मिलता जबकि चिन्मयी देवी का नाम (श्रद्धालु सूची में) बेजवाडा (अब विजयवाड़ा) की श्रद्धालु के रूप में मिलता है। सन् 1956 में अपनी एक तीर्थयात्रा के समय जब वे एक परिचित के यहाँ ठहरे हुए थे तब उनकी मुलाकात उनके पड़ोस में रह रही चिन्मयी देवी से हुई। पोद्दार ने देखा कि चिन्मयी एक फ्रेम में लगी तस्वीर की पूजा कर रही हैं। उन्होंने पहचान लिया कि यह उनके बॉम्बे के दिनों की तस्वीर है। उन्होंने पूछा कि क्या आप जानती हैं, यह व्यक्ति कौन है? चिन्मयी ने जवाब दिया कि उन्होंने इनके बारे में समाचार पत्र में बहुत पहले पढ़ा था, वे उन्हें कभी मिली नहीं लेकिन फिर भी खुद को समर्पित कर चुकी हैं। यह जानने पर कि यह तस्वीर वाला व्यक्ति ही उनके सामने खड़ा था, उन्होंने उनके माथे में तिलक लगा कर और चरणों में चन्दन लेप लगा कर उनकी वंदना की। पोद्दार की और जानने की इच्छा के बावजूद चिन्मयी देवी ने उन्हें जाने के लिए कहा और अपने बारे में ज़्यादा कुछ ज़ाहिर नहीं किया। यह एक आध्यात्मिक मुलाकात थी जिसका वर्णन पोद्दार ने दस साल बाद अपने को ईश्वरीय गुण सम्पन्न बताने के उद्देश्य से किया। ¹⁰⁹

तीन अन्य महिलाओं ने पोद्दार के जीवन पर प्रभाव डाला—सरोजिनी देवी, रेहाना तैयबजी और आइरिन वॉलफिंगटन। ये जीवन के अलग-अलग पड़ावों पर पोद्दार को

मिलीं । सरोजिनी उन्हें पन्द्रह की उम्र में मिलीं और पहले से ही विवाहित थीं । रेहाना उन्हें अधेड़ावस्था के आसपास मिलीं । संयुक्त राज्य अमेरिका से आध्यात्मिक खोज में निकली आइरिन पोद्दार के जीवन के अंतिम दशकों में उनसे मिलीं और पोद्दार के बसे-बसाए आध्यात्मिक जगत में पर्याप्त हलचल पैदा कर गईं ।

सरोजिनी की कहानी कई उतार-चढ़ावों से भरी हुई है जिसमें हमेशा की तरह पोद्दार एक स्त्री द्वारा पूर्ण समर्पण के बावजूद नैतिक रूप से विजयी नज़र आते हैं । वो पूरे दृश्य में एक ऋषि की तरह होते हैं जिसे किसी भी तरह के प्रलोभन से पथ से नहीं डिगाया जा सकता है । पोद्दार से सरोजिनी की पहली मुलाक़ात सन् 1907 में हुई और अगर इनके मिलने को यदि संबंध कहा जाये तो वह सन् 1911 में समाप्त हुआ जब पोद्दार उनके पवित्र प्रेम को उसी तरह स्वीकारने को तैयार हो गए जैसे कृष्ण के लिए राधा का प्रेम था । सरोजिनी ने उन्हें एक सोने की अंगूठी दी और उसके बाद दोनों कभी नहीं मिले । कई सालों बाद सरोजिनी ने पोद्दार को पत्र लिख कर बताया कि उन्होंने अपने जीवन को समाप्त करने का निर्णय ले लिया है क्योंकि इस संबंध-विच्छेद को उनका शरीर अब सहन करने में असमर्थ हो रहा है । उन्होंने लिखा, 'हिन्दू स्त्री केवल एक ही पुरुष को स्वीकार करती है ।' पोद्दार द्वारा उनकी तलाश की सारी कोशिशें बेकार हुईं । सरोजिनी ने सोलोमन के शब्दों को चरितार्थ करते हुए प्रयाग में गंगा में कूदकर आत्महत्या कर ली: 'मृत्यु सबकी होनी है, लेकिन प्रेम के लिए मरना परमआनंद की अनुभूति और मधुर प्राणोत्सर्ग की तरह है ।' [110](#)

विदाई के समय सरोजिनी द्वारा दी गई अंगूठी को पोद्दार ने जालन्धर कन्या विद्यालय की किसी प्रतिभाशाली छात्रा को भेंट में दे दिया । अपने सक्रिय वर्षों में पोद्दार ने सरोजिनी के बारे में चुप्पी साधे रखी, लेकिन अपने अंतिम दिनों में अपनी दो जीवनियों (गंभीरचंद दुजारी और भगवतीप्रसाद सिंह) में सरोजिनी और आत्मोत्सर्ग करने वाली राधा को एक-दूसरे के समानांतर रखते हुए कुछ क्रिस्से साझा किए ।

अपनी भक्ति और जुनून के मामले में आइरिन पोद्दार के जीवन में आई अन्य महिलाओं से सर्वथा भिन्न थीं । भारत में सन् 1963 से रह रही और डिवाइन लाइफ़ सोसाइटी व मानव सेवा संस्थान के साथ वे जुड़ी रहीं । सन् 1965 आते-आते आइरिन ने मान लिया कि अब उनका अमेरिका से कोई लेना-देना नहीं है । [111](#) पाश्चात्य उदार शिक्षा हिन्दू आध्यात्म के प्रति अपनी भूख और पोद्दार तथा उस समय गीता वाटिका में रह रहे स्वामी चक्रधर पर अपनी भावात्मक निर्भरता के उन्होंने ढेरों साक्ष्य अपने पीछे छोड़े ।

स्वामी चक्रधर की पृष्ठभूमि भी रहस्यमयी ही है । बिहार के गया जिले में जन्म लेने वाले स्वामी चक्रधर, जयदयाल गोयन्दका के परिचित थे और सन् 1936 में गोरखपुर पहुँचे थे । उन्होंने अपना नामकरण राधा बाबा नाम से किया और आने वाले कुछ ही सालों में एक कद्दावर हस्ती बन गए । पोद्दार और राधा बाबा में मित्रता घनिष्ठ हुई और

उन्होंने मिल कर राधा माधव सेवा संस्थान की स्थापना की । गीता वाटिका इस ट्रस्ट के साथ-साथ राधा बाबा का स्मारक भी है ।

सन् 1941 में पोद्दार ने घनश्यामदास बिड़ला को राधा बाबा के खिलाफ़ चले किसी अभियोग के बारे में लिखकर सूचित किया और मदद मांगी । इसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं है, लेकिन बिड़ला के जवाब ने यह स्पष्ट कर दिया कि इस मामले का लेना-देना पैसों से था । ‘मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि बाबा के खिलाफ़ कोई मामला क्यों दर्ज होगा! उन्हें पैसे मिलते हैं और वे उन्हें खर्च करते हैं । चाहे वो हिसाब रखें या नहीं, लेकिन इसका लेना-देना केवल उन्हीं लोगों तक होना चाहिए जो उन्हें दान में पैसे या रुपए देते हैं ।’ ¹¹² बिड़ला ने मामले से जुड़ी और जानकारी मांगी लेकिन उनके पत्र की भाषा से ऐसा लग नहीं रहा था कि वे इस मामले में ज़्यादा रुचि ले रहे हैं । हालाँकि उन्होंने यह ज़रूर कहा कि इस बारे में गांधी को सूचित किया जाना चाहिए । पोद्दार ने इसके जवाब में एक पत्र और लिखा जो अब उपलब्ध नहीं है । बिड़ला ने जवाब में पोद्दार को कहा कि उनका भेजा पत्र उन्होंने गांधी के पास भेज दिया है । साथ में यह भी कहा कि ज़्यादा उम्मीद न रखें । ¹¹³

आइरिन की उपस्थिति का ज़िक्र जितनी शिद्दत से पोद्दार के कागज़ात में है उतनी शिद्दत से पोद्दार पर प्रकाशित आधिकारिक कामों में नहीं है । आइरिन के पोद्दार और स्वामी चक्रधर के साथ संबंधों की झलक पोद्दार के द्वारा तत्कालीन गृह मंत्री गुलजारीलाल नंदा को लिखे पत्र में दिखती है जहाँ वे आइरिन के वीज़ा की सीमा आगे बढ़ाने में उनके हस्तक्षेप की मांग कर रहे थे । अनपेक्षित रूप से ‘आइरिन स्वामी जी और मेरे प्रति एक आकर्षण महसूस कर रही हैं और पिछले दो हफ़्ते से चाह रही हैं कि मैं उन्हें अपने साथ रख लूँ और आध्यात्म के मार्ग पर ले जाऊँ ।’ ¹¹⁴ सरोजिनी की तरह ही पोद्दार ने आइरिन से भी दूरी बनाकर रखी । उन्होंने नंदा को लिखा, ‘आप जानते हैं कि मैंने खुद को इस तरह की चीज़ों से दूर रखा है । न ही मेरे पास कोई आश्रम है और न ही साधना का कोई नायाब तरीका, लेकिन मैं महसूस कर पा रहा हूँ कि यह महिला ईश्वर से प्रेरित है । जब से ये मुझसे मिली हैं तभी से आँसू भरी आँखों से मेरे साथ ही रहने की विनती कर रही हैं ।’

वास्तव में, आइरिन की इच्छाओं का पोद्दार ने अलग मतलब निकाल लिया था । दरअसल आइरिन को स्वामी चक्रधर के प्रति बेहद आकर्षण था । आइरिन वृन्दावन में स्वामी जी से मिली थीं और उन्होंने मान लिया था कि स्वामी जी ही वे गुरु हैं जिनकी तलाश में वे निकली थीं । लेकिन उनकी उपासना का रास्ता बाधाओं से भरा हुआ था । मार्च 1965 में वीज़ा की सीमा बढ़ने में हो रही देरी के दौरान भी वे स्वामी जी से नहीं मिल पाने के कारण ज़्यादा बेचैन हो रही थीं । उन्होंने स्वामी जी को लिखा, ‘मेरी स्थिति उस बंद बोतल में रखे जूस की तरह है जो बोतल से बाहर निकलने को बेताब हो रहा है । यह कब खुलेगा, सिर्फ़ भगवान ही समझ सकता है ।’ ¹¹⁵

स्वामी चक्रधर जितना किनारा करते गए आइरिन की उनके लिए चाह और जिद उतनी ही बढ़ती गई। तब उन्होंने पोद्दार से मदद ली। पोद्दार ने आगे बढ़कर आइरिन के वीजा की तारीख आगे बढ़वाने का ज़िम्मा अपने सर ले लिया। जून 1965 में उन्होंने कुछ नियम तय करते हुए आइरिन को लिखा, 'मेरे निवेदन पर श्री नंदा ने तुम्हारे भारत में रह पाने की अवधि को अगले एक साल के लिए बढ़ा दिया है। 9 जून 1966 तक। यहाँ-वहाँ घूमने-फिरने की बजाय अब अपने लिए कुछ नियम-क़ानून बना लो और उनका पालन करो। कुछ घंटे जप, ध्यान, स्वास्थ्यप्रद साहित्य पढ़ो और मौन साधना करो।' आइरिन के लिए निर्देश था कि वे कुछ तय घंटों में अन्य सभी श्रद्धालुओं के साथ ही स्वामी जी से मिल सकती हैं और अकेले में पन्द्रह मिनट के लिए। पोद्दार ने आगे यह भी जोड़ा कि यह पत्र वे बाबा की अनुमति के बाद ही लिख रहे हैं। ¹¹⁶

आइरिन ने पोद्दार की आदेशनुमा बातों पर आपत्ति जताई। बाबा की अनुमति से लिखे जाने वाली बात पर शक़ करने के अलावा आइरिन ने पोद्दार द्वारा स्वामी चक्रधर से नज़दीकियाँ बढ़ा रही महिलाओं के विरुद्ध लिखे 'हम परंपरागत लोग हैं'; वाले तर्क के लिए भी पोद्दार को निशाने पर लिया। उन्हें इस बात की नाराज़गी थी कि उन्होंने (पोद्दार ने) इस 'रिश्ते' के बारे में ललिता डालमिया को बता दिया था और ललिता डालमिया विष्णु हरि डालमिया की पत्नी थी। ¹¹⁷

आइरिन का वीजा दिसंबर 1965 तक नहीं बढ़ा और अंततः उन्होंने गीता वाटिका छोड़ दी और पहले वृन्दावन और फिर ऋषिकेश गईं, उन्होंने खुद को बदल कर मंजूश्री और माता आइरिन बना लिया। कभी-कभार वे पोद्दार को पत्र लिखा करती थीं और कुछ पत्र बाबा के नाम भी इस आग्रह के साथ लिखकर भेजती थीं कि पोद्दार उन पत्रों को बाबा के सम्मुख पढ़कर सुना दें।

रेहाना तैयबजी की ज़िन्दगी आइरिन के ठीक उलट थी। दोनों ही ग़ैर-हिन्दू थीं जो राधा परंपरा में शामिल हो गई थीं। रेहाना ने गांधी और पोद्दार दोनों के दिल में अपनी जगह बनाई थी। रेहाना एक सुलेमानी बोहरा मुसलमान थीं जिनका जन्म सन् 1900 में बड़ौदा में हुआ। वे अब्बास और अमीना तैयबजी की संतान थीं। सन् 1887 में भारतीय नेशनल कांग्रेस के अध्यक्ष रहे बदरुद्दीन तैयबजी की बेटी अमीना, अब्बास की दूसरी पत्नी थीं। लंदन से शिक्षा हासिल किए अब्बास बड़ौदा उच्च न्यायालय से सेवानिवृत्त जज थे। वो और उनकी पत्नी बड़ौदा के शासक सैयाजी राव तृतीय के करीबी लोगों में से थे। सेवानिवृत्ति के बाद वे कांग्रेस के सक्रिय नेता हो गए। उन्होंने खादी व अन्य गांधी की जीवनशैली को अपना लिया था। वे सन् 1919 के जलियांवाला बाग़ हत्याकांड की फैक्ट फाइंडिंग कमिटी के अध्यक्ष थे। अब्बास ने नमक सत्याग्रह में भी अहम भूमिका निभाई और सम्मान स्वरूप गांधी ने उन्हें 'गुजरात का महान वृद्ध व्यक्ति' कहा। रेहाना की बहन सोहेला प्रसिद्ध इतिहासकार इरफ़ान हबीब की माँ थीं।

रेहाना की गांधी से पहली मुलाक़ात बॉम्बे में सन् 1915 में हुई और इनमें प्रगाढ़ संबंधों के प्रमाण *क्लेक्टेड वर्क ऑफ़ महात्मा गांधी* में उनकी चिट्ठियों में देखे जा सकते

हैं। पोद्दार के कागज़ात और उनके ऊपर लिखी गई सामग्री में पोद्दार और रेहाना के मिलने की घटना पर कुछ लिखा हुआ नहीं है। ¹¹⁸

रेहाना के गांधी और पोद्दार के साथ संबंध बहुस्तरीय, विरोधाभासी और उलझे हुए थे। (हैरानी की बात है कि गांधी ने रेहाना के लिखे खतों को नष्ट कर दिया था।) उन्हें गांधी को उर्दू सिखाने और गांधी की प्रार्थना सभाओं में कुर'आन की कुछ आयतों को शामिल करवाने का श्रेय दिया जाता है। ¹¹⁹ रेहाना बहुत अच्छा भजन गाया करती थीं। वे गांधी के आश्रम और कांग्रेस के वार्षिक सत्रों में भजन गाती थीं। गांधी ने उनकी आवाज़ की प्रशंसा की है, 'लेकिन अगर आपकी आवाज़ इतनी मधुर नहीं होती तब भी मुझे यहाँ आपकी उपस्थिति की सराहना करनी चाहिए।' ¹²⁰ वे रेहाना को 'मैड रेहाना', 'बावली रेहाना' और कभी-कभी 'प्यारी बिटिया' जैसे विभिन्न नामों से पुकारते थे। ¹²¹ वे अक्सर रेहाना को सेवाग्राम आश्रम बुलाया करते थे, यह जानने के बावजूद भी कि उन्हें कताई या बुनाई जैसे काम नहीं आते थे। ¹²² रेहाना गांधी के ब्रह्मचर्य वाले अनुभव से मतभेद रखती थीं। लेकिन वे बापू की ब्रह्मचारियों की सेना की एक सिपाही बन गईं और उसके बाद उन्होंने आजीवन अविवाहित रहने का निर्णय लिया। यह निर्णय उन्होंने या तो अपने चचेरे भाई के साथ संभावित रिश्ते के टूटने की वजह से या ल्यूकोडर्मा से पीड़ित होने की वजह से लिया था। ¹²³ गांधी रेहाना के साथ निजी और सार्वजनिक सभी स्तरों पर जुड़े थे।

रेहाना के पोद्दार के सम्पर्क में आने तक उनकी रचना *द हार्ट ऑफ़ ए गोपी*, जिसे उन्होंने सन् 1924 में मात्र तीन दिनों में कुछ पृष्ठों और एक कलम की सहायता से पूरा किया, प्रकाशित होने से पहले ही चर्चा में आ चुकी थी। हालाँकि यह प्रकाशित सन् 1936 में जाकर ही हो पाई। ¹²⁴ *द हार्ट ऑफ़ ए गोपी* की अपार सफलता कबीर, बुल्लेशाह और रक्षण की परंपरा के अनुरूप ही थी जिसमें आस्था समूहों और विशिष्ट हिन्दू-मुस्लिम परिप्रेक्ष्यों के बीच एक ज़मीन तलाशने की कोशिश की गई थी। ¹²⁵

गांधी के साथ रेहाना के संबंधों के अनेक चेहरे थे लेकिन पोद्दार रेहाना के कृष्ण थे और रेहाना उनकी गोपी या मीरा थीं। पोद्दार को समर्पित वे अकेली महिला नहीं थीं, उनके अलावा जज डी डी नानावती की पुत्री सरोज नानावती, जिनकी रेहाना से भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट में उनके शोध कार्य के दौरान मित्रता हुई थी, भी पोद्दार पर समान रूप से आकर्षित थीं, हालाँकि उनकी भावनाओं में उतनी मुखरता नहीं थी। सरोज और रेहाना गांधीवादी काका कालेलकर के वर्धा स्थित आश्रम में कुछ साल उनके साथ रही थीं और बाद में तीनों दिल्ली के गांधी आश्रम में आ गए। ¹²⁶

रेहाना और सरोज को पोद्दार ने खुद अपने द्वारा लिखे गए खतों को नष्ट कर देने के लिए कहा। लेकिन पोद्दार के कागज़ात में ऐसे भरपूर उदाहरण हैं जो बताते हैं कि पोद्दार और उनकी दो 'गोपियाँ' रेहाना और सरोज, इस 'पवित्र बंधन' को बनाए रखना चाहती थीं। रेहाना और सरोज दोनों को ही पोद्दार का स्नेह मिला, लेकिन यह ज़्यादा नखरेबाज़, असामान्य रूप से नाटकीय और बहुत साफ़दिल रेहाना ही थीं, जिन्होंने

पोद्दार के दिल पर राज किया। दुनिया के लिए पोद्दार उनके बड़े भाई थे और वे उनकी बहनें लेकिन उनके संबंधों में कुछ अप्रकट ज़रूर था।

कल्याण में लिखे गए एक लेख में कृष्ण के प्रति दिखाई निष्ठा के लिए पोद्दार ने रेहाना की सराहना की। 'मैं जानता हूँ आप सच्ची मुसलमान हैं। मुझे कभी यह इच्छा नहीं होती आप सच्ची मुसलमान न रहें। मेरा कृष्ण हिन्दू का नहीं है, जहाँ भी गोपी हृदय की छाया है जहाँ उसका कुछ आदर्श है वहाँ वह अपना सर्वस्व सौंपने को तैयार है।' [127](#)

इस लम्बे पत्र से यह भी बात सामने आई कि रेहाना चाहती थीं कि गीता प्रेस द हार्ट ऑफ़ ए गोपी को प्रकाशित करे। इसे प्रकाशित नहीं कर पाने के पीछे पोद्दार ने घुमा-फिराकर तर्क दिया। काका साहब ने भी मुझे बताया। अगर गीता प्रेस में उसके छपने से आप पर हिन्दू होने का जरा भी इल्जाम लगाया जाने की सम्भावना हो वैसी हालत में आपके चाहने पर भी मैं छापना पसंद नहीं करता... आप सच्ची मुसलमान हैं। मैं कभी नहीं चाहता 'गोपी हृदय' को लेकर कोई भी आप पर जरा भी शक़ करे।' पोद्दार ने यह भी कहा कि काका साहब इसे साहित्यिक काम मानते हैं और बहुत-से अन्य लोग इसे केवल भावात्मक उड़ान कहते हैं, जिसका देश से कोई संबंध नहीं है। जबकि खुद पोद्दार पुस्तक को साहित्य और भावों से परे मानते थे।

रेहाना का जवाब यह बताने के लिए पर्याप्त था कि वे कृष्ण में पूरी तरह रमी हुई थीं और वे पोद्दार को उन्हीं का अवतार मान रही थीं और इन दोनों के बीच भेद करने का उनका कोई मन नहीं था। रेहाना ने कहा कि पोद्दार का पत्र प्राप्त करने के बाद उन्होंने रोना बंद कर दिया, उनके लिए कृष्ण की चाह और उनकी नज़दीकी ही मायने रखती थी, वास्तविकता और रूपक, दोनों में ही रेहाना पोद्दार को कृष्ण मान रही थीं और उनके शब्दों को ईश्वर के शब्द। पोद्दार को समर्पित रेहाना उन्हें सबसे ऊपर रखती थीं, लेकिन एक जगह पर उन्होंने पोद्दार की बात की अवज्ञा की। पोद्दार ने उनसे पत्रों को नष्ट कर देने के लिए कहा था लेकिन रेहाना ने जवाब दिया, 'भाई साहब। माफ़ कीजिए। आपका खत मैं फाड़ डालूँ? हाय, उसके पहले इस सीने को न फाड़ डालूँ। यह तो उनकी आवाज़ सुनाई दे रही है और जिस कंठ से वह प्यारी आवाज़ निकल रही है उसे मैं घोंट दूँ। यह आपने कैसी ज़ालिम आज्ञा की। मगर ज़रा भी डरिये नहीं कि यह कृष्ण प्रेरित शब्द किसी अयोग्य या असमझ नज़र से गुजरेंगे। भाई साहब, यह कृष्ण की भेंट है।' [128](#)

रेहाना की इस श्रद्धा ने पोद्दार पर प्रभाव छोड़ा। इसके आगे के पत्रों में पोद्दार ने रेहाना को लिखा कि वे कृष्ण की महिमा पर आश्रित हैं और नहीं जानते कि उनके भाग्य में आगे और क्या है! 'मैं वर्णाश्रमी हिन्दू हूँ परन्तु मैं वस्तुतः कुछ भी नहीं हूँ। मैं तो मेरे श्री कृष्ण का हूँ। यदि श्री कृष्ण मुझे अपना बनाए रखें तो यह कुछ भी हो, कैसी भी हालत हो मुझे मंज़ूर है।' पिछले पत्रों की तुलना में विस्तृत इस पत्र में उन्होंने कृष्ण के स्वरूपों की व्याख्या की, उनकी विनोदप्रियता और उनके व्यक्तिगत और

आध्यात्मिक उन्नति के बारे में लिखा । पोद्दार ने रेहाना को कहा कि वे भी उसी आकर्षण और जादू से मोहित हैं जो रेहाना पर छाया हुआ है । उन्होंने रेहाना और सरोज जैसी बहनों से मिलवाने के लिए भाग्य का शुक्रिया किया और भरोसा दिलवाया कि यह संबंध सच्चे और शुद्ध रहेंगे । [129](#)

रेहाना का जवाब पहले की तुलना में इस बार अधिक भावपूर्ण था । उन्होंने पोद्दार को बताया कि उनके खत से बड़ी राहत हुई, ‘आपका खत रोज़ एक बार पढ़े बग़ैर रह नहीं सकती । हर दफ़े किसी नई बात पे दिल पुकार उठता है, तड़प उठता है ।’ [130](#)

दादरी स्थित डालमिया की फैक्टरी से ही पोद्दार ने रेहाना को कृष्ण से जुड़े अपने बहुत से अनुभव लिखे जिसमें उनके देखे गए स्वप्न, विचार और कल्पनाएं थीं । रेहाना के पत्रों में उनकी मुखरता और निडर स्वभाव ने पोद्दार को आश्चर्य से भर दिया था । पोद्दार ने स्वीकार किया कि उनके परिचितों और दोस्तों में उन्होंने इस तरह का मुक्त व्यक्ति नहीं देखा । ‘मैं एक बात आपके सामने नहीं छिपा सकता वह यह कि मैं जो कुछ लिखता हूँ यह हकीकत है, न कल्पना है, न कला । न ख़्वाब है, न ख़याल । आपके सामने कैसे ये बातें इस रूप में आ करूँ... पता नहीं! श्री कृष्ण ही जानें! इसी से आप पर इतनी मुहब्बत बढ़ रही है कि मैं क्या बताऊँ! मेरा कृष्ण आपका बन्धु है! यह कितना आनंद है और कैसा आनंद का संबंध है यह! मुसलमान-हिन्दू का सवाल बहुत ही बाहरी है, उसका इससे क्या सरोकार है! मैं आपके बेलग़ाम बर्ताव से घबराता नहीं, मुझे तो उसमें बड़ा आनंद आता है ।’ [131](#)

आज़ादी के बाद रेहाना और सरोज के साथ पोद्दार के रिश्तों पर कोई दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं हैं । दिल्ली स्थित गांधी के आश्रम से रेहाना ने ‘मानसिक परेशानियों से जूझ रहे लोगों को राहत देने के लिए आध्यात्मिक मार्गदर्शन करने का काम किया’ [132](#) और अमेरिकी प्रबंधन सलाहकार मेरी कुशिंग नाइल्स से पत्राचार पर बात के बाद उनकी मित्र हो गई । उनकी बातचीत में अक्सर नाइल्स अपने कामकाजी जीवन की समस्याएँ, उनके विवाह और बेटियों से जुड़ी चिंताएँ रखती थीं । उनके पत्राचार से यह भी पता चलता है कि नाइल्स अपने पूर्व जन्म को कैसे देखती थीं और तैयबजी का उन्हें देखने का नज़रिया क्या था! [133](#)

18 मई 1975 को रेहाना का निधन हो गया । उनके निधन की ख़बर ज़्यादा चर्चा नहीं हुई । उनके निधन की ख़बर को *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* अख़बार ने संक्षेप में छापा जिसमें उन्हें एक सूफ़ी और हिन्दू-मुस्लिम एकता और स्त्री मुक्ति के लिए काम करने वाली महिला कहा गया था । [134](#)

ईश्वर के साथ संवाद

सनातन हिन्दू धर्म के पूर्व निर्धारित पथ का अविचलित ढंग से प्रचार करने वाले एक भविष्यद्रष्टा के रूप में पोद्दार की छवि का निर्माण स्वयं उन्होंने और गोयन्दका के नेतृत्व

में उनके आस-पास के लोगों ने यह दिखाने के लिए किया था कि पोद्दार ईश्वर के अवतार हैं। यह मिथक उनके जन्म के समय से ही चला आ रहा था लेकिन इस बात को मज़बूत करने वाले स्वयं पोद्दार थे जिन्होंने बार-बार इस बात का दावा किया कि वे ईश्वर के साथ संवाद करते हैं।

कांग्रेस और विशेषकर गांधी से लगातार करीब होते जी डी बिड़ला धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों पर विश्वास रखते थे और उन्होंने इस तरह के दावों के प्रति खुली नाराज़गी व्यक्त की। पोद्दार को होने वाले ईश्वर के आभासों के बारे में गोयन्दका ने बिड़ला को (पत्र) लिखा लेकिन बिड़ला इससे प्रभावित नहीं हुए। गोयन्दका के पत्र के जवाब में बिड़ला ने कहा, 'मुझे लगता है कि इस तरह की बातों को बढ़ावा देना और फैलाना ग़लत है।' गोयन्दका ने बिड़ला की इस बात का सन्दर्भ लेते हुए जवाबी पत्र में कहा, '...न किसी की स्थिति का दूसरे को अच्छी तरह से ज्ञान ही हो सकता है, इस विषय में आपका मानना न मानना आपके स्वास्थ्य पर निर्भर है।' ¹³⁵ गोयन्दका को विश्वास था कि 'हनुमानप्रसाद झूठ बोलने वाला ज्ञात नहीं होता।' गोयन्दका ने खुद भी ईश्वर के आभासों के दावे किए थे, लेकिन गीता प्रेस के शीर्षस्थ इन दोनों व्यक्तित्वों में शिष्य (पोद्दार) गुरु के क्रोध पर भारी पड़ा।

गंभीरचंद दुजारी द्वारा लिखी गई पोद्दार की जीवनी (2000) और भगवती प्रसाद सिंह द्वारा लिखी गई शुरुआती जीवनी, दोनों में ही पोद्दार को होने वाले इन आभासों का ज़िक्र मौजूद है जो सिर्फ़ पोद्दार के लिए बल्कि जनता के लिए भी फायदेमंद थे। पोद्दार को ईश्वर के संदेशवाहक की तरह देखा जाता था। उन्होंने कई बार ईश्वर के साथ हुए अपने संवादों को लोगों को सुनाया भी था। इनमें ईश्वर क्या महसूस करते हैं, अपने भक्तों से क्या चाहते हैं और धार्मिक मुद्दों से किस तरह निपटना चाहिए, जैसी बातें हुआ करती थीं। इस तरह के आभासों का वर्णन पोद्दार के असाधारण व्यक्तित्व के स्तुति मात्र नहीं थे बल्कि चमत्कार भरी घटनाओं की एक लंबी श्रृंखला थी जो पोद्दार के जीवन में ईश्वर की उपस्थिति सिद्ध करती थी। ¹³⁶

दुजारी की जीवनी में सन् 1925 में बॉम्बे की एक घटना का ज़िक्र करते हुए लिखा है, पोद्दार को चौपाटी बीच पर एक पारसी सज्जन मिले। इन्होंने खुद को प्रेतात्मा बताया। पोद्दार ने विस्तार में लिखा कि किस तरह इस पारसी सज्जन ने मदद की गुहार लगाई और पिंडदान करने के लिए कहा। ¹³⁷ यहाँ एक ज़रूरी सवाल उठा कि एक पारसी हिन्दू के रिवाज क्यों करना चाहेगा और वह भी मृत्यु-पश्चात? पोद्दार ने कहा कि मेरे यह पूछने पर पारसी ने जवाब दिया कि वह अपने जीवन में गीता का पाठ करता रहा है और उसके बाद पोद्दार ने अपने पुजारी हरिराम को गया भेजा ताकि पारसी का पिंडदान पूरा हो सके।

पोद्दार ने अपने जीवन की तीन और असाधारण घटनाओं का उल्लेख किया है। चाहे यह विधि का विधान रहा हो या ईश्वर की कृपादृष्टि, जिसके चलते रामकृष्ण डालमिया को अपने व्यापार में हुए आर्थिक नुकसान की क्षतिपूर्ति करने में मदद मिली

और वहीं बाक्री दो घटनाओं में खुद पोद्दार की जान ट्रेन यात्रा के दौरान पत्थर से हुए हमलों में बाल-बाल बची। दोनों ही घटनाओं में पत्थर उनकी सीट बदलने के ठीक बाद कम्पार्टमेंट में गिरा था।

पोद्दार के कागज़ात में डालमिया को होने वाले भारी नुकसान का उल्लेख है लेकिन उसमें साल दर्ज नहीं है। माना गया कि पोद्दार द्वारा धार्मिक आयोजन किए जाने के बाद डालमिया की स्थिति सुधर गई थी, लेकिन आयोजन के दौरान डालमिया अपने संकल्प को पूरा नहीं पाए जबकि पोद्दार ने डालमिया को पहले ही चेताया था कि इसका नतीजा दूसरी बड़ी हानि के रूप में निकल सकता है। पोद्दार के कागज़ात में यह दावा है कि डालमिया को एक और बड़ा नुकसान झेलना पड़ा था। तथ्यात्मक रूप से इस हानि के प्रमाण मौजूद नहीं हैं।

अन्य लोगों की उपस्थिति में पहली बार पोद्दार को ईश्वर का 'आभास' 16 सितंबर, 1927 को जसीडीह (झारखंड) में हुआ। जसीडीह ट्रेडिंग बिज़नेस पर नियंत्रण रखने वाली बड़ी मारवाड़ी आबादी वाला खनन क्षेत्र है। जयदयाल गोयन्दका वहाँ अपने अनुयायियों के साथ धार्मिक परिचर्चा के लिए गए थे जहाँ पोद्दार ने गोयन्दका और बाक्री सबको भगवान राम और भगवान विष्णु के आभास के बारे में बताया जो उन्हें रोड्डा षड्यंत्र में सिमलापाल में एकांतवास की सज़ा के दौरान हुआ था। उन्होंने कहा कि उनका भगवान विष्णु से हुआ आभास बेहद शुरुआती अवस्था में था। उसी दिन बाद में जब मारवाड़ी आरोग्य भवन पर गोयन्दका और उनके अनुयायी धार्मिक परिचर्चा के लिए गए हुए थे, तब पोद्दार अचानक शांत हो गए। अगले ही क्षण उन्होंने कहा कि भगवान उनके सामने प्रकट हुए। किसी ने पूछा कि भगवान खड़े या बैठे हैं तो पोद्दार ने जवाब दिया कि वह कमल पर विराजमान हैं। सभा में चुप्पी छा गई तब पोद्दार ने चिंताजनक स्वर में कहा कि जब भगवान जा रहे थे तो वे उनके चरण नहीं छू पाए। थोड़े विलंब के बाद उन्होंने कहा कि भगवान उनके समक्ष पुनः उपस्थित हैं और उन्होंने बाकियों को भी भगवान को देखने के लिए कहा। उन्होंने भगवान के चरण छुए और फिर चेतनाशून्य हो गए। दरअसल, ये गोयन्दका के पैर थे जिन्हें वे छू रहे थे। [138](#)

यह अनुभव बार-बार दोहराया गया और इस तरह यह भगवान से एक के बाद एक होने वाले उनके आभासों का सिलसिला-सा बन गया। उनके सभी ईश्वरीय आभासों में गोरखपुर में सन् 1927 में हुआ आभास सबसे सजीव अनुभव था और यह घटना जसीडीह के कुछ ही दिन बाद हुई थी। पोद्दार ने अपने 'आभास' के आधार पर कहा कि भगवान ने उन्हें 12 तरह की सलाह दीं।

1. मेरे बारे में हुए आभास के अनुभवों को गुप्त रखना ही लाभदायक होगा।
2. धर्म के नाम पर लड़ने वाले लोग मेरे प्रभाव को नहीं जानते।
3. पूर्ण गो सुरक्षा को कायम होने में अभी समय लगेगा।
4. मेरा अवतार होने में अभी देरी है।

5. अगर तुम समाज के लिए कुछ अच्छा करना चाहते हो तो मेरा नाम लो । इस समय में मेरा नाम लेना ही उचित है ।
6. मेरे नाम पर पापियों को संरक्षण देने वालों को यमराज भी नहीं बचा सकता ।
7. यह सोचना ग़लत है कि मेरा नाम पाप धोने में मदद करेगा और सांसारिक लाभ पहुंचाएगा ।
8. मेरा नाम आपको अपने प्रेमी से भी अधिक प्रिय होना चाहिए । इसका इस्तेमाल सिर्फ़ प्रेम के लिए होना चाहिए ।
9. घमंड बढ़ रहा है और यह मेरी प्राप्ति के मार्ग में बाधक है । घमंडी लोगों को सचेत करो कि यह उन्हें ख़त्म कर देगा । घमंड वासनाओं और क्रोध से ज़्यादा बुरा है ।
10. किसी को यह आश्वासन मत दो कि उसे मेरा आभास होगा ।
11. जसीडीह के अलावा किसी भी अन्य अनुभव के बारे में लोगों को नहीं बताना ।
12. मैं इस तरह फिर नहीं आऊंगा । तुम्हारे बिना बुलाए मैं दो बार आया और मुझे यह सब तुम्हें बताना ही था । मुझे याद रखना और फिर मैं तुम्हारे समक्ष प्रकट हो जाऊंगा, लेकिन कोई ग़लती मत करना ।

पोद्दार को आने वाले वर्षों में ईश्वर के और भी 'आभास' हुए । उन्होंने दावा किया कि गीता वाटिका में सन् 1936 में वे नारद ऋषि और अंगीरा ऋषि (वह योगी जिसे अथर्व वेद प्राप्त हुआ था) से मिले । पोद्दार ने दावा किया कि ऋषियों ने उन्हें वे सिद्धांत भी समझाए जिनका वर्णन शास्त्रों में नहीं है ।

पोद्दार की असाधारण शक्तियों की खबर मारवाड़ी समुदाय के बीच जंगल की आग की तरह फैली और कुछ ने उन्हें दैवीय भी कहा । जब पोद्दार के पुराने सहयोगी और ताराचंद घनश्यामदास फर्म के बालकृष्ण लाल पोद्दार ने ईश्वर के 'आभासों' से जुड़े कुछ सवाल पोद्दार से पूछे तब भी पोद्दार का जवाब अनुमानित ही था । उन्होंने कहा कि ऐसे बहुत-से लोग हैं जिन्होंने संदेह और शंका की, ग़लत तर्क दिए और विवाद पैदा किया, लेकिन अगर यह सब मेरे प्रिय आराध्य के प्रति अपमानजनक है, तब भी मुझे इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता । अपनी ज़िंदगी में एक ठर्रे पर चलते पोद्दार ने बालकृष्ण से पत्रों को वापस करने, गुप्त रखने या नष्ट करने के लिए कहा; अच्छा यही होगा कि और लोग इसे न पढ़ें । [139](#)

शुरुआत में पोद्दार लोगों के बीच ईश्वरीय 'आभासों' के बारे में बताते समय सचेत रहा करते थे, लेकिन 1950 के दशक तक आते-आते वे 'आभास' के बारे में सार्वजनिक जगहों में, ईश्वर पर आस्था रखने वालों के बीच बहुत सहजता से अपनी उपलब्धि के तौर पर बताते थे ।

आत्मसंशय

आध्यात्मिकता को पूर्णतया समर्पित जीवन और दैवीय शक्तियों से स्वघोषित साक्षात्कार के दावे के बावजूद पोद्दार साधारण व्यक्तियों वाली भावनाओं और महत्वाकांक्षाओं से मुक्त नहीं रह पाते थे। अपने इर्द-गिर्द लगभग प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की सर्वोच्चता, आध्यात्मिकता और सही मार्ग समझा पाने में असमर्थ महसूस करते हुए कभी-कभी वे आत्मसंशय के घेरों में फंस जाया करते थे। 'स्वयं मेरे घर में, मेरे प्रति सम्मान रखने वाले लोग और घर के लोग भी मेरी मान्यताओं को जानते हुए भी विरोधी आचरण करते हैं। सिनेमा जाते हैं, डबल रोटी खाते हैं जो पता नहीं मुसलमान, अछूत किसके हाथ की बनी होती है, कांच के बर्तनों का व्यवहार करते हैं, आपस में जूठन खाते हैं, समय पर संध्या वंदन नहीं करते। रोज़ माता-पिता, बड़ों को प्रणाम नहीं करते और मैं देखते हुए भी न इन्हें रोक पाता हूँ, न अलग ही हट पाता हूँ।' ¹⁴⁰ पोद्दार के जीवन और गीता प्रेस के साथ काम करने में उनकी निराशा का दौर 1960 के दशक तक चला।

गीता प्रेस से जुड़ने से पहले भी पोद्दार गंगा के किनारे जीवन जीना चाहते थे। यहाँ तक कि गोयन्दका ने यह वादा किया था कि *कल्याण* के स्थापित हो जाने पर वे पोद्दार को मुक्त कर देंगे, लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ। गीता प्रेस छोड़ देने की धमकियों और विरोध के बावजूद वे जीवनपर्यन्त गीता प्रेस से जुड़े रहे। कई बार उन्होंने खुलेआम भी गीता प्रेस की सड़ांध के बारे में बात की और अपने दोस्तों से भी कहा कि इसे जल्द बंद हो जाना चाहिए। हर बार गोयन्दका पोद्दार को याद दिलाते रहे कि प्रेस समाज हित के लिए कार्यरत है। सन् 1930 में गोरखपुर के समीप पडरौना में गांधी के नमक सत्याग्रह से जुड़ने की अनुमति मांगने पर गोयन्दका ने उन्हें अपना जवाब प्रेषित किया कि राजनीति से जुड़ना भक्ति के मार्ग में बाधक हो सकता है। ¹⁴¹

सन् 1934 में पोद्दार ने गोयन्दका से गीता प्रेस और *कल्याण* के लिए लिखने, बात करने और अपना नाम देने से निवृत्ति मांगी। उन्होंने गोयन्दका को कहा, 'मैं यहाँ रहता हूँ परन्तु काम में दिल नहीं है।' ¹⁴²

आधी मारवाड़ी और आधी हिन्दी में दिया हुआ गोयन्दका का जवाब पोद्दार को धराशायी करने वाला अचूक वार साबित हुआ। ¹⁴³ काम में मन न लगने वाली पोद्दार की बात में उलझे बिना गोयन्दका ने कहा कि उन्हें इसे ईश्वर की मर्ज़ी के तौर पर लेना चाहिए जिसकी मर्ज़ी के बिना वह या कोई भी कुछ नहीं कर सकता। पोद्दार की न लिखने की इच्छा के बावजूद गोयन्दका ने उन्हें नैतिक बंधनों में उलझा दिया, 'बिना तुम्हारे लेख के *कल्याण* ठीको मालूम देवे छे। आगे जायकर *कल्याण* के ग्राहक ही स्याक कमती हुए जावे तो कोई बड़ी बात नहीं। *शक्ति अंक* में अभी तक तुम्हारो लेख आयो नहीं। इससे विशेषांक सुन्दर मालूम देवे नहीं। तुम्हारा लेख नहीं देवे तो संसार माए साहित्यिक दृष्टि से लोगों के लेखों के विशेष प्रचार की भी विशेष आवश्यकता

मालूम देवे नहीं । कोई कोई लेख तो ऐसो भी निकल जावे शायद बहुत भावों उलटो प्रभाव परने सके छे । इसीलिए तुम्हारे जचे तो लेख यथाशक्ति तुम्हारा ही जास्ती रेवे तो भौत ठीक रेवे । इसीलिए कोशिश पूरी करनी चाये । पीछे जो हुवे उसमें भगवन की मर्जी समझनी चाये ।’ इसके आगे गोयन्दका ने लिखा कि ‘तुम्हारे नाम के बिना *कल्याण* छप नहीं सकता और तुम्हारे नाम का झूठा इस्तेमाल करना भी ग़लत होगा ।’

एकांत और शान्ति में रहने की चाह प्रकट करने पर गोयन्दका ने पोद्दार को सुखदेव के बाग में एक घर बनवा देने का प्रस्ताव दिया जहाँ वे बहुत सारे लोगों की रोक-टोक के बिना अपना काम कर पाएंगे । अपने पत्र में पोद्दार ने पशु सदृश्य व्यवहार करने के लिए गोयन्दका से क्षमा याचना की लेकिन गोयन्दका ने कहा कि ‘तुम्हारा व्यवहार निश्छल है । मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि तुम ऐसा क्यों मानते हो कि इस संसार का प्रत्येक व्यक्ति तुमसे श्रेष्ठ है ।’ अंततः गोयन्दका ने यह स्पष्ट किया कि *कल्याण* और गीता प्रेस से न जुड़ने का फ़ैसला अब वह पोद्दार पर ही छोड़ते हैं ।

अवसाद से भरकर पोद्दार ने सन् 1939 में गोरखपुर और गीता प्रेस का काम छोड़कर दादरी स्थित अपने दोस्त रामकृष्ण डालमिया की सीमेंट फैक्टरी में रहना शुरू किया । पोद्दार ने गोयन्दका से तीन महीने का अवकाश ले लिया था, लेकिन वे लौटने के इच्छुक नहीं थे । किसी मदनलाल को लिखकर पोद्दार ने कहा कि उन्होंने गोरखपुर न लौटने की शपथ नहीं ली है, लेकिन वे नहीं जानते कि वे कहाँ जाएंगे । ¹⁴⁴कुछ महीने बाद किसी पीतांबर प्रसाद अग्रवाल ने पोद्दार से मदद मांगी लेकिन उन्होंने जवाब दिया कि अब वे गीता प्रेस से जुड़े काम नहीं देखते और अब वे एक नियमित जीवन जी रहे हैं । ¹⁴⁵अंततः गोयन्दका ने उन्हें वापस लौटने के लिए मना ही लिया ।

सन् 1962 में उन्होंने *कल्याण* और गीता प्रेस से जुड़े कामों को ठीक-ठीक चलाने में असहाय महसूस किया और यह बात एक बैठक के दौरान कही । उन्होंने गोयन्दका से निवेदन किया कि उन्हें गीता प्रेस और *कल्याण* से जुड़ी प्रत्येक ज़िम्मेदारी से मुक्त कर दिया जाये, इस हद तक कि इन दोनों के लिए ही ‘मेरे नाम, हस्ताक्षर और मेरी सलाह की ज़रूरत न पड़े’ और ‘मुझे मरा हुआ मान लिया जाये ।’ ¹⁴⁶

अपने एक परिचित को लिखते हुए पोद्दार ने कहा कि मैं वह नहीं हूँ जो लोगों ने मुझे बना दिया है और न ही गीता प्रेस आध्यात्म प्राप्ति की आदर्श जगह है । ‘कुछ वर्षों पहले यहाँ की स्थिति आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से अच्छी थी... परन्तु इस समय तो यहाँ का वातावरण आध्यात्मिकता विरोधी भले ही हो, पोषक नहीं है । आत्मश्लाघा, अभिमान, कलह, रागद्वेष, भोग-परायणता, आदि आसुरी सम्पत्ति के प्रत्यक्ष लक्षण यहाँ पर विद्यमान हैं । मेरी नीचता और अपराधों की कोई सीमा नहीं है, न मैं स्वयं अच्छा बन सका, न अपने साथियों को बना सका ।’ ¹⁴⁷ उन्होंने अन्य संस्थानों के उदाहरण भी दिए, अरविंद आश्रम व्यवसाय और शिक्षा का केंद्र बन गया है, रमणाश्रम क्रानूनी दाव-पेंचों में उलझा है और रामकृष्ण मिशन अस्पताल चलाने जैसे काम में संलग्न है, ये सारी गतिविधियाँ ईश्वर से भटकी हुई हैं ।

पुनः सन् 1967 में पोद्दार गीता प्रेस छोड़कर दादरी में रह रहे थे, जब एक साधु ने उनसे *कल्याण* में काम की इच्छा रखते हुए पत्र लिखा। पोद्दार ने उन्हें लिख कर सूचित किया कि वे गीता प्रेस का काम पूरी तरह छोड़ चुके हैं और अब साधना व अन्य आध्यात्मिक गतिविधियों में मग्न हैं। ¹⁴⁸

पोद्दार की इस लम्बी गैर-हाज़िरी को गीता प्रेस परिवार के बाहर भी महसूस किया गया और इस पर चर्चा हुई। सन् 1939 में जब पोद्दार गोरखपुर से बाहर थे और उनकी जगह पर चिम्मनलाल गोस्वामी थे, तब लेखक नन्ददुलारे वाजपेयी ने गीता प्रेस पर व्यावसायिक उपक्रम बनते जाने का आरोप लगाया और गोस्वामी को सही विकल्प नहीं माना, भले ही वे छोटे समय के लिए रखे गए थे। पोद्दार तब बाँकुड़ा में थे जब वाजपेयी की आलोचना के संदर्भ में गोस्वामी का पत्र पाया। पोद्दार ने गीता प्रेस के व्यावसायिक हो जाने की बात को खारिज किया लेकिन यह माना कि उन्होंने पूरी तरह स्वार्थी होते हुए गोस्वामी पर पूर्ण ज़िम्मेदारी लाद दी। 'मैं जानता हूँ कि प्रेस विभाग और संस्थान को चलाने में तुम्हें समान स्थान नहीं मिलेगा। लेकिन फिर भी मैंने जानबूझ कर स्वार्थ में काम तुम पर छोड़ दिया। यह तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचाएगा। मैं तुम्हारे उपकार के लिए आभारी रहूँगा।' ¹⁴⁹

बढ़ता क्रद

समय के साथ जैसे-जैसे पोद्दार का क्रद बढ़ता गया, वैसे-वैसे ही गीता प्रेस से उनका मोहभंग होता गया। उन्होंने खुद को उस गीता प्रेस से न केवल दूर कर लिया जिसकी वे कभी धुरी रहे थे, बल्कि वे अन्य संस्थाओं के ज़्यादा करीब होते गए। गो-रक्षा आंदोलन, हिन्दू कोड बिल का विरोध और राम और कृष्ण के जन्मस्थान का पुनर्निर्माण जैसे कार्यों से नज़दीकी तौर पर जुड़ने के अलावा उन्हें भारतीय सांस्कृतिक अकादमी (आईसीए) द्वारा मार्च 1951 में आयोजित ऑल इंडिया कल्चरल कांफ्रेंस की बागडोर थामने का भी ज़िम्मा दिया गया। राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता और कांग्रेस के आधिकारिक इतिहासकार पट्टाभि सीतारमैया के सभापतित्व वाले आईसीए के इस आयोजन में वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं जैसे ज़ाकिर हुसैन, रामेश्वरी नेहरू और एम अनंतसयनम् अयंगर की भरमार थी।

लालकिले के दीवान-ए-खास में आयोजित इस सम्मेलन में भारतीय संस्कृति की नींव को मज़बूत करने के उद्देश्य से लेखकों, कलाकारों, संगीतकारों, नर्तकों और दार्शनिकों के बीच परिचर्चाएँ हुई थीं। भारतीय संस्कृति को दिए गए योगदान के लिए पोद्दार भी आमंत्रित थे। ¹⁵⁰ गांधी की हत्या के तीन सालों के भीतर ही कद्दावर कांग्रेस नेताओं द्वारा पोद्दार को भेजा गया आमंत्रण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त था कि विभाजन से पहले के वर्षों में गांधी की तीखी और कठोर शब्दों में आलोचना और भारत

को खुले तौर पर हिन्दू राष्ट्र बनाने की घोषणा करने वाले पोद्दार को कांग्रेस नेतृत्व ने कहीं-न-कहीं स्वीकृति प्रदान कर दी थी ।

पोद्दार को 1960 के दशक के आरम्भ में भारतीय चतुर्धर्म वेदभवन न्यास की स्थापना के समय भी ऐसी ही स्वीकृति मिली । इस न्यास का शुरुआती लक्ष्य चारों धर्मों में चार वेद भवनों की स्थापना करना था: बद्रीनाथ, जगन्नाथ पुरी, रामेश्वरम, और द्वारका । न्यास ने वैदिक संस्कृति को बढ़ावा देने का प्रस्ताव रखा, वेदों पर शोध का प्रस्ताव रखा, वैदिक साहित्य को प्रकाशित किया, वेद मंत्र पाठ के आयोजन किए, वेदों और उससे संबद्ध साहित्य की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार का इंतज़ाम किया, प्रिंटिंग प्रेस की शुरुआत की, अखबार निकाले, पत्र, पत्रिकाओं, पुस्तकों, लेखों का प्रकाशन आदि और 'वह सब किया जो इसके उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक था' और 'जो लोगों के कल्याण और खुशियों के लिए ज़रूरी है ।' [151](#)

भारतीय चतुर्धर्म वेदभवन न्यास कांग्रेस और हिन्दू महासभा के नेताओं, उद्योगपतियों और धार्मिक नेताओं को करीब ले आया । इसके न्यासियों की सूची तत्कालीन कांग्रेस में भी रूढ़िवादी खेमे की मज़बूत पैठ की याद दिलाती थी । ये लोग न केवल अपने राजनीतिक और चुनावी विरोधियों के साथ जुड़ने को तत्पर थे, बल्कि इन्हें संवैधानिक पदों पर होते हुए किसी धार्मिक संगठन का हिस्सा होने से भी कोई गुरेज़ नहीं था और न ही वे इसे ग़लत या असंवैधानिक मानते थे । उत्तर प्रदेश के गवर्नर बिस्वनाथ दास, बिहार के गवर्नर एम अनंतसयनम, राजस्थान के गवर्नर संपूर्णानंद, बनारस सेवाश्रम के श्री प्रकाश, भारतीय विद्या भवन के एम मुंशी (बॉम्बे), गोरखनाथ मंदिर के दिग्विजयनाथ, व्यावसायी सर सुरेन्द्र सिंह मजीठिया, जी डी बिड़ला के बड़े भाई जुगल किशोर बिड़ला, उद्योगपति और इन्डियन एक्सप्रेस प्रकाशन के मालिक रामनाथ गोयनका, उद्योगपति मंगतराम जयपुरिया, *कल्याण* के संपादक हनुमानप्रसाद पोद्दार जैसे कई बड़े नाम इस न्यास से जुड़े थे । [152](#)

पोद्दार के लिए केवल संस्कृति और धर्म से जुड़ा होना ही पर्याप्त नहीं था । सिलीगुड़ी परगना के बंगाई जोत गाँव में हुई चर्चित नक्सलबाड़ी घटना के कुछ महीनों बाद, जिसमें अपनी फसल का सही दाम मांग कर रहे लोगों में से नौ लोगों की जानें पुलिस की गोलीबारी से गई थीं, के बाद पश्चिम बंगाल ने राज्य व्यापक वामहिंसा की घटनाएँ देखीं । यह नक्सलबाड़ी आंदोलन की शुरुआत थी । इसने व्यापारी जगत और भारतीय संस्कृति के पक्षधरों को उभरते साम्यवाद के खतरे के प्रति चिंतित कर दिया । पुरुषोत्तमदास हलवासिया द्वारा चलाए जा रहे संगठन भारतीय संस्कृति संरक्षा काउंसिल (इंडियन कल्चरल डिफेन्स काउंसिल) की डोर पोद्दार के हाथों सौंप दी गई । यह समझते हुए कि कम्युनिस्ट अपनी विचारधारा को सस्ते साहित्य के ज़रिए फैला रहे थे, हलवासिया ने पोद्दार से कहा कि इसके समकक्ष आरएसएस से करीब से जुड़े जनसंघ, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, स्वास्तिक प्रकाशन आदि के सामूहिक प्रयास से अपनी रणनीति तैयार की जाये ।

पोद्दार ने साम्यवाद को पाश्चात्य विचारों, शिक्षा तथा कामुक साहित्य के कारण फैल रही शैतानी विचारधारा बताते हुए इंडियन कल्चर डिफेंस काउंसिल के पर्चे के लिए लिखा 'आज पश्चिम बंगाल में जो हो रहा है वह बड़ा ही भयानक है। सारा सामाजिक स्तर ही अस्त व्यस्त हो रहा है... इस तरह की अराजकता, अनुशासनहीनता, हिंसाचक्र और प्रति हिंसा पहले कभी नहीं देखी गई। यह सिर्फ राजनीति तक सीमित नहीं है बल्कि शिक्षा, उद्योग, व्यापार और स्त्रियां तक इसकी चपेट में आ गई हैं। सभी डरे हुए हैं। गरीब लोगों के नाम पर गरीबों को ही क्षति पहुँचाई जा रही है। इसे फैलने से रोकना होगा। एकजुट होकर आगे आने की ज़रूरत है, सुरक्षा समितियाँ बनाने की ज़रूरत है, आर्थिक मदद प्रदान करने या फिर समय पर जान देने की ज़रूरत है। [153](#)

आभार और समस्याएं

1960 के दशक में पोद्दार गीता प्रेस से पूरी तरह संबंध-विच्छेद और हिचकिचाहट भरी भागीदारी के ऊहापोह के बीच फंसे थे और वहीं उसी समय उनके मित्र व प्रशंसक उनकी हीरक जयंती पर बड़े आयोजन की तैयारी कर रहे थे। हीरक जयंती व्यक्ति की साठवीं जन्मतिथि पर मनाई जाती है और पोद्दार सन् 1952 में ही साठ वर्ष के हो चुके थे। कारण ये था कि इसके पहले भी उनके अभिनंदन के असफल प्रयास हो चुके थे।

सन् 1953 में दिग्गज हिन्दी लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के इंडोलोजी कॉलेज के प्रिंसिपल राजबली पाण्डेय, साहित्यकार सीताराम चतुर्वेदी और कई अन्य नामचीन लोगों वाली एक समिति ने पोद्दार के सम्मान में एक संस्मारक पुस्तक निकालना तय किया। इस पुस्तक में शंकराचार्य (रूढ़िवादी हिन्दूवाद के संरक्षक) से लेकर राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद तक 101 शीर्ष लेखकों, राजनेताओं और बुद्धिजीवियों के लेख सम्मिलित होने थे। आश्चर्यजनक रूप से सनातन हिन्दू धर्म को चुनौती देने वाली महादेवी वर्मा ने भी लेखकीय योगदान के लिए सहमति दे दी थी। [154](#)

लेकिन पोद्दार ने इस विशाल आयोजन पर पानी फेर दिया। जब अभिनंदन समिति के संजोयक नागेश्वर दीक्षित ने पोद्दार से संस्मारक पुस्तक के लिए एक संदेश लिख कर देने के लिए कहा तो पोद्दार ने सिरे से इंकार कर दिया। 'मैं जिन सिद्धांतों को मानता हूँ और जिनकी वकालत करता हूँ, वे ऐसे किसी कार्य की अनुमति नहीं देते जिसका लक्ष्य आत्मप्रशंसा हो। ईश्वर मुझे शक्ति दें कि मैं अपनी अंतिम साँस तक इसे निभा सकूँ। और मैं जानता हूँ कि ऐसा करते हुए मैं आपकी भावनाओं को ठेस पहुँचा रहा हूँ। लेकिन फिर भी मैं इस तरह की कोशिशों को बढ़ावा नहीं दे सकता।' [155](#)

समिति भौचक्की रह गई। एक अन्य संजोयक विश्वनाथ कुमार वर्मा ने पोद्दार को मनाने की पूरी कोशिश की। उन्होंने कहा कि पुस्तक के लिए सामग्री एकत्रित करने का काम लगभग हो चुका है, लेखकों से लेख लिए जा चुके हैं और 'शिक्षा और अधिगम,

धर्म और दर्शन, राजनीति और संस्कृति से जुड़ी बड़ी हस्तियों के नाम पत्र खाना हो चुके हैं । [156](#)

पोद्दार पर इस गुहार का कोई असर नहीं हुआ । उन्होंने वर्मा से कहा कि इस आयोजन को छोड़ दिया जाये । पोद्दार ने कहा उन्हें सम्मानित करने का कोई भी प्रयत्न उनके सिद्धांतों के ह्रास का सूचक होगा । ‘आपके इस कार्य का समर्थन नहीं कर सकता, न सहयोग कर सकता हूँ और न दूसरे किसी को भी सहयोग देने की प्रेरणा दे सकता हूँ ।’ आयोजन का रुकना सुनिश्चित करने के लिए पोद्दार ने एक चेतावनी जारी की ‘...यदि आप मेरी इस प्रार्थना को नहीं सुनेंगे तो मुझे इसका खुला विरोध करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा ।’ [157](#)

सन् 1967 की अंतिम तिमाही में जब पोद्दार 75 वर्ष के हुए, तब उनके मित्र व प्रशंसक डायमंड जुबली संस्मारक के लिए फिर एकजुट हुए । इस समूह में हिन्दू राष्ट्रवादियों के एक हिस्से के साथ कांग्रेस के मोरारजी देसाई के करीबी फ़िल्म निर्माता एस एन मंगल, ओंकारमल सराफ़ जैसे पुराने मित्रों, जयदयाल डालमिया और रामनिवास ढांडरिया शामिल थे । मंगल ने सोच-विचार कर तय किया कि संस्मारक पुस्तक का आकार 300 से 350 पृष्ठ तक होना चाहिए । जयदयाल डालमिया को लिखते हुए मंगल ने कहा इससे पहले की योजना हजार पृष्ठों की थी फिर तय हुआ कि ऐसी पुस्तक केवल अलमारी की शोभा ही बढ़ा सकेगी । [158](#) मंगल ने देसाई से बात की और इस विशाल परियोजना के लिए उनका समर्थन प्राप्त किया ।

मंगल ने पोद्दार के जीवन को ‘स्वयं में एक सभ्यता’ कह कर संबोधित किया और इस नाम पर एक भवन बनाने का प्रस्ताव रखा । वे पोद्दार के सम्मान में देशभर में साहित्यिक और धार्मिक पखवाड़ा मनाए जाने के भी इच्छुक थे । बहरहाल, सारी तैयारी एक बार फिर चौपट हो गई । कृष्णचन्द्र ने पोद्दार से इस संदर्भ में परामर्श लिया और एक बार फिर उन्होंने किसी भी तरह की छुट्टी मनाए जाने, या उत्सव रखने या पुस्तक के छपने का विरोध किया । मंगल ने डालमिया से समर्थन माँगा । उन्होंने तर्क दिया कि कार्यक्रम के पीछे का उद्देश्य पोद्दार के योगदान को युवाओं तक पहुंचा कर उन्हें प्रेरित करना है । ‘यदि श्रद्धेय पोद्दार जी के उपरांत इसे करना है तो यह महत्वपूर्ण नहीं होगा । क्योंकि श्रद्धेय ओंकार बाबू की तरह दबंग व्यक्तित्व का भी अभाव होगा ।’ [159](#)

इन सबके बीच आयोजन समिति के भीतर की दरारें उभर कर सामने आने लगीं । इसी बीच कृष्णचन्द्र ने आयोजन को लेकर पोद्दार की असहमति को ईमानदारी से सबके समक्ष रख दिया ।

संस्मारक पुस्तक पर अनिश्चितता की तलवार लटक रही थी । मंगल और डालमिया अब पोद्दार के जीवन पर डॉक्यूमेंट्री की संभावनाओं पर विचार करने लगे जिसे सूचना और प्रसारण मंत्रालय के फ़िल्म डिविज़न द्वारा वितरित किया जा सके । [160](#) मंगल चाहते थे कि डॉक्यूमेंट्री के प्रस्ताव को स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश से अनुमोदन मिल

जाये (गोबिंद भवन द्वारा संचालित) जहाँ अप्रैल 1968 के अंत में गोबिंद भवन के संरक्षकों की बड़ी बैठक होनी थी। इसी बीच शान्तिप्रसाद जैन, रामनाथ गोयनका और ओंकारमल सराफ़ ने पोद्दार द्वारा दिए गए योगदान का उत्सव मनाने के लिए सहयोग की याचना सार्वजनिक रूप से कर दी। ¹⁶¹पोद्दार ने उनके निवेदन को नज़रअंदाज़ करते हुए उन्हें पुस्तक प्रकाशन जैसे विचार को आगे न बढ़ाने के लिए लिखा। अंततः ऋषिकेश वाली बैठक हुई, सराफ़ स्वास्थ्य संबंधी कारणों से इसमें शामिल नहीं हो पाए। ¹⁶²डालमिया भी पारिवारिक कारणों से इसमें शामिल नहीं हो पाए। ¹⁶³बैठक में यह तय हुआ कि पोद्दार के योगदान की जगह पुस्तक गीता प्रेस के योगदान पर निकाली जाये। ¹⁶⁴इस तरह व्यक्ति के स्थान पर संस्थान का उत्सव मनाने का विचार बन गया और पोद्दार के विरोध से भी मुक्ति मिली। बैठक में यह भी तय हुआ कि गीता प्रेस पर पुस्तक के छप जाने के बाद पोद्दार के जीवन पर एक डॉक्यूमेंट्री बनाई जाएगी। और उसके बाद पोद्दार पर एक पुस्तक की योजना बनाई जा सकती है। डालमिया ने लिख कर कहा कि जो भी ऋषिकेश की बैठक में तय होगा, वह उन्हें स्वीकृत होगा। ¹⁶⁵इस तरह एक बार फिर, पोद्दार ने अपनी महत्ता साबित की।

1968 से 1970 के दौरान पोद्दार ने कृष्ण जन्मस्थान न्यास, मथुरा और स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश जैसे कई न्यासों से त्यागपत्र दे दिया। स्वर्गाश्रम को दिए अपने त्यागपत्र में उन्होंने गीता भवन के सदस्यों के आपसी अविश्वास और निर्माण के मुद्दे पर अन्य धार्मिक न्यासों के साथ बेवजह बढ़ती क्रानूनी कार्रवाइयों को वजह बताया।

सन् 1970 तक पोद्दार का स्वास्थ्य तेज़ी से गिरा। मधुमेह के बावजूद उन्होंने इंसुलिन लेने से इसलिए इंकार कर दिया क्योंकि उसके कुछ तत्व पशु शरीर से लिए जाते हैं। इसके साथ ही हृदय संबंधी रोगों और पेट के कैंसर ने उन्हें बिस्तर पकड़ा दिया। पोद्दार के प्रशंसकों द्वारा पोद्दार की हीरक जयंती मनाने की योजना भले ही सफल नहीं हुई लेकिन वे समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और क़रीबी दोस्तों द्वारा नहीं भुलाए गए थे।

लॉस एंजेलिस से स्वामी प्रभुपाद ने उन्हें स्वास्थ्य लाभ की कामना भेजी। ¹⁶⁶हिन्दी लेखक हरिवंश राय बच्चन की पत्नी तेजी बच्चन रामायण के कुछ अंश उद्धृत करते हुए उन्हें टेलीग्राम भेजती थीं। ¹⁶⁷तेजी बच्चन ने पोद्दार को ज्ञान का स्रोत कहा, उनकी अमरता और ईश्वर के श्रीचरणों में उनके जीवन की शुभकामनाएं दीं। पोद्दार तेजी बच्चन के राखीबंद भाई थे। वे पोद्दार को केवल भाई नहीं बल्कि ईश्वर का अवतार भी मानती थीं।

उम्र के इस पड़ाव पर भी विवादों ने पोद्दार का साथ नहीं छोड़ा। गो-रक्षा आंदोलन के दौरान पोद्दार के साथी रहे प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने सन् 1970 में प्राचीन मूर्तियों की चोरी और उन्हें अवैध रूप से विदेश भेजने के मामले में पोद्दार की कथित भूमिका के सिलसिले में चल रही आसन्न जांच के विषय में आगाह किया। पटना के एक पुलिस अधिकारी से प्राप्त गुप्त सूचना के आधार पर ब्रह्मचारी ने पोद्दार को चेताया। गोबिंद

भवन के दिन-प्रतिदिन हो रहे पतन से परिचित ब्रह्मचारी ने पोद्दार को लिखा कि यह भवन से करीब से जुड़े किसी व्यापारी की हरकत है। पोद्दार ने ब्रह्मचारी को इस जानकारी के लिए धन्यवाद दिया और कहा कि, 'मिथ्या आरोप हैं।' उन्होंने आरोपों को बेबुनियाद और मनगढ़ंत बताते हुए सीआईडी अफसर को कोर्ट में जाने को कहा। [168](#) उन्होंने यह भी कहा कि यह मुद्दा गोबिंद भवन के अधिकारियों की जानकारी में ला दिया गया है, जिन्होंने पोद्दार पर लगे आरोपों को पूरी तरह खारिज किया है।

मूर्ति चोरी के आरोप निराधार ही रहे, हालाँकि यह बात सच थी कि पोद्दार, जयदयाल डालमिया और बाद में उनसे जुड़े हितशरण शर्मा को इस्कॉन की तरफ से गोरखपुर और वृन्दावन से ब्रिटेन और अमेरिका कृष्ण की मूर्तियाँ भेजने के लिए लगातार गुहार लगाई जा रही थी। सन् 1968 में जब शर्मा ने स्वामी प्रभुपाद की पुस्तक छापने और इसके लिए कागज़ तैयार करने के बदले इस्कॉन से मिले दो हज़ार रुपये लौटाने से मना कर दिया तब मामले के निपटान के लिए उन्होंने अपने दो शिष्यों अच्युतानंद और जय गोविंद से रामकृष्ण डालमिया और पोद्दार के प्रभाव का इस्तेमाल कर पैसे वसूलने और इन पैसे से मूर्तियाँ खरीदने का रास्ता सुझाया। उन्होंने कहा कि इस्कॉन को विभिन्न आकार की सैकड़ों जोड़ी मूर्तियाँ चाहिए। [169](#)

प्रभुपाद ने पोद्दार से आग्रह किया कि 'वे अपने वैष्णव मित्रों से भी कुछ मूर्तियाँ दान करने के लिए कहें' [170](#), डालमिया-जैन ट्रस्ट और बिड़ला ट्रस्ट ने राधा कृष्ण की पाँच जोड़ी मूर्तियाँ इस्कॉन के अलग-अलग केन्द्रों पर प्राण-प्रतिष्ठान के लिए दान में दीं। मूर्तियों को भिजवाने का दायित्व हितशरण शर्मा को दिया गया जबकि सिंधिया स्टीम नेविगेशन कंपनी के सुमति मोरारजी उन्हें भेजने के लिए राज़ी हुए।

पोद्दार की विरासत

22 मार्च 1971 को अपने परिवार के सदस्यों और खराब स्वास्थ्य की खबर सुन कर मिलने आए प्रशंसकों से भरी गीता वाटिका में हनुमानप्रसाद पोद्दार ने अपनी अंतिम साँसें लीं।

उन्होंने जनवरी 1970 में अपनी वसीयत को अंतिम रूप दिया। यह अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों, से जुड़े उनके विचारों संबंधी स्वीकारोक्तियों से भरी हुई थी। यह स्वीकार करते हुए कि वे लम्बे समय से मुसलमानों के खिलाफ़ रहे हैं, उन्होंने कहा, 'यह व्यक्तिगत रूप से किसी के विरोध में नहीं था।' उन्होंने इलाहाबाद के मोहम्मद सैयद हाफ़िज़ जैसे मुसलमान और सीएफ़ एंड्रयूज़ व आर्थर मेसी जैसे ईसाईयों को अपना मित्र कहा था। उन्होंने युवावस्था में चरमपन्थी राजनीति में अपनी सहभागिता और कुछ ब्रिटिश अधिकारियों के प्रति नफ़रत को भी इंगित किया। यह भी कि, 'यह भावना गांधी जी के सम्पर्क में आने पर धीरे-धीरे जाती रही।' लेकिन पोद्दार

ने गहरी आस्था से लेकर गहरी घृणा के बीच विविध रंग से गुज़रते गांधी के साथ अपने संबंधों पर कोई चर्चा नहीं की।

पोद्दार की वसीयत से कहीं ज़्यादा असरदार गीता वाटिका के मासिक प्रकाशन सत्संग सुधा के लिए उनका एक साल पहले लिखा गया लेख था। 'मेरी स्थिति का स्पष्टीकरण' शीर्षक से लिखे गए इस आलेख में उन्होंने अपनी उपलब्धियों और अपने से जुड़े मिथकों को कम करके दिखाया। 'मैं न तो सिद्ध पुरुष हूँ, न योगी, न महामानव, और न महात्मा ही। न मुझमें कोई भी विशेष दैवी शक्ति है, न कोई चमत्कार है, न मुझे भविष्य का ही ज्ञान है। जिन लोगों को मुझमें कोई विशेष दैवी शक्ति या सिद्धि दिखती है या तो उनका भ्रम है अथवा उनके अपने विश्वास का परिणाम है। मैं न किसी नवीन मत का प्रवर्तक हूँ, न मेरा कोई अपना नवीन सिद्धांत या मत ही है।' ऐसा लिखते हुए पोद्दार ने अपनी हर उस विशेषता से इंकार कर दिया जिसका वर्णन करते हुए उनके भक्त नहीं थकते थे, लेकिन राधा माधव सेवा संस्थान और उसकी गतिविधियों पर बात करते हुए वे उदार थे। उन्होंने यह ज़रूर स्पष्ट किया कि वे इस संगठन से सीधे तौर पर नहीं जुड़े हैं। [171](#)

उनकी मृत्यु के कुछ समय बाद ही उनके परिवार और गोबिंद भवन कार्यालय के सदस्यों के मध्य उपजे सत्ता संघर्ष के बीच उनकी विरासत को कुछ ही महीनों में भुला दिया गया। सारा विवाद गीता वाटिका परिसर के फैलाव से जुड़ा था जिसे पोद्दार ने अपना घर बना लिया था। गोबिंद भवन कार्यालय यह स्पष्ट कर देना चाहता था कि संपत्ति का अधिकार पोद्दार के परिवार के हिस्से में नहीं आता है। पोद्दार की मृत्यु के दो महीने से भी कम समय में 13 मई को गोबिंद भवन के न्यासी से मिले और उन्होंने कुछ प्रस्ताव पास किए जिनमें से अहम यह था कि गीता वाटिका में पोद्दार के मृत्यु स्थान पर किसी भी तरह का कोई स्मारक स्थापित नहीं किया जाएगा। गोबिंद भवन के न्यासी ईश्वरीप्रसाद गोयनका ने इस विषय पर परमेश्वर प्रसाद फोगला को लिखा, जिनका विवाह सन् 1941 में पोद्दार की पुत्री सावित्री से हुआ था। [172](#)

फोगला को यह सूचित किया गया कि सदस्यों को ऐसा लगता है कि गीता वाटिका में पोद्दार का अंतिम संस्कार ग़लत था और जयदयाल गोयन्दका के तय सिद्धांतों के विपरीत था। न्यास के दो सदस्यों बिहारीलाल और रामदास जालान को अंतिम संस्कार की अनुमति देने के लिए दोषी ठहराया गया। यह तय हुआ कि पोद्दार के संस्कार के स्थान पर कुछ भी नहीं रखा जाएगा। गोयनका ने फोगला को लिखा 'आदरणीय सेठजी (गोयन्दका) और भाई जी (पोद्दार) दोनों ही स्मारक बनाने जैसे विचार के विरोधी थे। इसलिए वहाँ कुछ नहीं बनवाया जाएगा।' गोयनका ने कहा गीता वाटिका से बहुत सारी ऐसी अफ़वाहें फैल रही हैं जिनका गोयन्दका और पोद्दार विरोध किया करते थे। 'गीता वाटिका के अधिकारियों को चेतावनी दे दी जाये कि वे माहौल को दूषित न करें।'।

फोगला को यह सुनिश्चित करने के लिए कहा गया कि गीता वाटिका में किसी प्रकार का कोई निर्माण कार्य न हो, न ही कोई स्थायी रूप से आवासीय फेर-बदल करे। न्यास की ओर से यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि संपत्ति के अधिकार पोद्दार की पुत्री सावित्री समेत किसी के पास नहीं हैं। गोबिंद भवन कार्यालय ट्रस्ट ने पोद्दार के परिवार को उस 100 रुपए प्रति माह किराए से छूट दे दी जिस पर पोद्दार वहाँ रहा करते थे।

कुछ ही दिनों में यह अफ़वाह बुरी तरह फैली कि पोद्दार के परिवारजनों को गीता वाटिका का परिसर खाली करने के लिए कह दिया गया है। ईश्वरीप्रसाद गोयनका को पोद्दार के परिवार के इस डर को दूर करने के लिए कहा गया। 'बगीचा खाली करने के लिए ट्रस्टियों की तरफ़ से कोई भी क़दम नहीं उठाया गया है। भाई जी के परिवार को हम उसी सम्मान की दृष्टि से देखते हैं जिस सम्मान की दृष्टि से भाई जी को देखते थे। वह तो आप स्वयं जांच-पड़ताल करेंगे, तभी मालूम होगा।' ¹⁷³

पोद्दार के निधन को एक साल भी नहीं हुआ था कि पोद्दार के करीबी माने-जाने वाले जयदयाल डालमिया ने राधा बाबा, पोद्दार की पुत्री सावित्री और पोद्दार द्वारा बेटे की तरह बड़े किए गए राधेश्याम पलरीवाल पर गंभीर आरोपों की झड़ी लगा दी। इन आरोपों में डालमिया ने सावित्री और पलरीवाल के बीच संबंधों का भी इशारा किया और नैतिक भ्रष्टता की बुनियाद पर पलरीवाल को गीता वाटिका और पोद्दार परिवार से हटाए जाने की मांग की। डालमिया ने पोद्दार की पहली पुण्यतिथि से भी दूरी बना ली थी और यह भी आरोप लगाया कि इस अवसर पर संस्मारक पुस्तक निकालने का विचार श्रद्धा से अधिक व्यावसायिक लाभ से प्रेरित था। डालमिया ने गीता वाटिका में फैले व्यभिचार के आरोपों को सार्वजनिक कर दिया और राधा बाबा के द्वारा पलरीवाल को न निकाले जाने पर अनशन करने की धमकी भी दी।

राधा बाबा, सावित्री और पलरीवाल की प्रतिरक्षा में पोद्दार के ही एक-दूसरे अनुचर या सहायक चिम्मनलाल गोस्वामी सामने आए जो मदनमोहन मालवीय के पूर्व निजी सहायक थे। गोस्वामी एक संस्कृत विद्वान थे जो बीकानेर स्टेट की आधिकारिक वरिष्ठ नौकरी को छोड़कर गीता प्रेस से जुड़े और इसकी अंग्रेज़ी भाषा के *कल्याण-कल्पतरु* के पहले संपादक बने। पोद्दार के निधन के बाद इन्होंने ही *कल्याण* का संपादन कार्य संभाला। पोद्दार की राष्ट्रव्यापी स्मृति उत्सव आयोजित करने और उनकी पहली पुण्यतिथि पर एक विशाल ग्रन्थ प्रकाशित करने में भूमिका महत्वपूर्ण थी।

एक बड़ी सार्वजनिक सूचना में गोस्वामी ने सभी आरोपों को खारिज़ किया और डालमिया को याद दिलाया कि वो पोद्दार के कितने प्रिय थे। गोस्वामी ने यह स्पष्ट किया कि पलरीवाल को परिवार से निकालने का निर्णय केवल परिवार का मुखिया ले सकता था, राधा बाबा नहीं। गोस्वामी ने कहा कि डालमिया के पलरीवाल पर लगाए इन आरोपों के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं कि पलरीवाल पोद्दार को उनकी मौत के बाद बदनाम करना चाहते हैं। और अगर डालमिया को पलरीवाल के चरित्र पर संदेह था तो उन्हें घर के भीतर ही सुधरने के लिए प्रेरित करना था ताकि इस तरह खुलेआम

पोद्दार के परिवार को बदनाम ना किया जाये । गोस्वामी ने अन्य आरोपों को भी मानने से इंकार किया, जैसे कि सावित्री द्वारा अपनी वसीयत पलरीवाल के नाम कर देना, यह भी कि बाबा ने कभी सावित्री को आत्महत्या करने से रोका था क्योंकि तथाकथित तौर पर सावित्री के पलरीवाल के साथ अवैध संबंध थे । [174](#)

गोस्वामी द्वारा भावात्मक बचाव और डालमिया पर कुशाग्रता से किए हमले ने गीता वाटिका और पोद्दार परिवार के बीच कायम मसले को सुलझा देने का एक मौक़ा दिया, लेकिन तब तक सार्वजनिक रूप से नुक़सान हो चुका था । हालाँकि गीता प्रेस ने खुद को इन सबसे दूर रखा और पोद्दार द्वारा किए गए *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* के लेखन को पुनः प्रकाशित करने पर ध्यान केन्द्रित किया । यह चलन आज तक चल रहा है, लेकिन गोस्वामी तब तक प्रकाशन संस्थान में आई बदलाव की बयार को महसूस करने लगे थे । पोद्दार की मृत्यु के दो वर्ष से ज़्यादा बीत जाने पर जब सेठ गोविंद दास ने *कल्याण* द्वारा धारावाहिक रूप में छापे गए अपने एक नाटक को गीता प्रेस से ही छापने का अनुरोध किया तो राधेश्याम बंका ने गोस्वामी की ओर से जवाब देते हुए कहा कि ‘बाबू जी के निधन के बाद हालात बहुत बदल गए हैं, आज की स्थितियों में पुस्तक छाप पाना नामुमकिन है और हम कोशिश करेंगे लेकिन स्थितियां पक्ष में नहीं हैं ।’ [175](#) इन सबके बावजूद पोद्दार की विरासत अब भी कायम है, वे गीता प्रेस के अपने संत हैं और ‘नित्यलीलालीन’ हैं ।

जयदयाल गोयन्दका: एक रहस्यमयी उपस्थिति

गोयन्दका के जीवन पर आधारित कोई लिखित, यहाँ तक कि कोई सतही आत्मकथात्मक विवरण भी नहीं मिलता है । औपनिवेशिक दौर के सबसे सफल धार्मिक उपक्रम के संस्थापक जयदयाल गोयन्दका को उतना श्रेय नहीं मिला जिसके वे हक़दार थे । जबकि यह उपक्रम अब भी अक्षुण्ण बना हुआ है । गीता वाटिका द्वारा छापे गए प्रचुर साहित्य में भी गोयन्दका से ज़्यादा पोद्दार को प्राथमिकता देने की सचेत कोशिश दिखाई पड़ती है । गोयन्दका के जीवन से जुड़े विवरण बहुत संक्षिप्त हैं जिनका पोद्दार पर लिखे गए विस्तृत विवरणों के साथ ज़िक्र भर कर दिया गया है । [176](#) ये ज़िक्र भी गोयन्दका के विवरणों के नहीं होने से पैदा होने वाले संदेह को दूर करने के लिए किया गया है । दुर्भाग्य की बात यह है कि स्रोतों के अभाव के चलते यह अध्याय भी गीता प्रेस के दो महान संस्थापकों के जीवन से जुड़े विवरणों के मामले में वही भेदभाव करने को विवश है, जो गीता वाटिका के साहित्य में किया गया है ।

गोयन्दका के जन्म से जुड़े क्रिस्से पोद्दार जितने आध्यात्मोन्मुख नहीं हैं । जयदयाल गोयन्दका का जन्म सन् 1885 में राजस्थान के चुरू में हुआ था । इनके पिता खूबचंद गोयन्दका ने कम उम्र में ही अपने माता-पिता को खो दिया था । खूबचंद और उनके भाई लालचंद और बहन लक्ष्मी की ज़िम्मेदारी उनके दादा शालग्राम गोयन्दका पर

आ गई। पूरा परिवार भगवान से डरता था लेकिन इसका संबंध धार्मिक ग्रंथों की जानकारी से नहीं था। मारवाड़ियों के रिवाज के अनुसार, इन्हें कम उम्र से ही व्यवसाय से जुड़े दांव-पेंच सीखने के लिए छोड़ दिया गया लेकिन उनके पहले ही निर्णय ने उन्हें भारी नुकसान पहुँचाया। युवा खूबचंद अपने हिस्से के व्यापारिक घाटे की भरपाई शायद ही कर पाए। उसके बाद उन्होंने दलाली की और कमीशन एजेंट बन गए। छोटे भाई लालचंद को कलकत्ता भेज दिया गया ताकि वे वहाँ से हाथ के बने हुए कपड़े कम मुनाफ़े पर चुरू में बेच सकें।

गोयन्दका के जीवन से जुड़े प्रारंभिक दिनों और चुरू में हुई उनकी प्रारंभिक शिक्षा से जुड़े विवरणों से कुछ स्पष्ट पता नहीं चलता। लेकिन ऐसे किस्से बहुत थे जिनमें गोयन्दका को अपने पिता से निःस्वार्थ प्रेम और घर के बड़ों का सम्मान करने वाला व्यक्ति बताया गया था। इनका विवाह 12 साल की अवस्था में हुआ और कहा जाता है कि विवाह के कई वर्षों बाद भी इन्होंने शारीरिक संबंध नहीं बनाए थे। इसके अलावा, खूबचंद की आज्ञा से हनुमानप्रसाद गोयनका नाम के एक मित्र ने जयदयाल गोयन्दका को एक इत्र की शीशी उपहार में दी थी, जिसे उन्होंने कभी नहीं खोला। यह इस बात का प्रमाण था कि वे सांसारिक वस्तुओं से लगाव नहीं रखते थे। 60 साल की उम्र में जयदयाल हँसते हुए यह कहा करते थे कि चुरू में इत्र की वह शीशी अब भी वैसे ही रखी हुई है।

जयदयाल की कहानी को मिथकीय आयाम तब ही मिलने शुरू हो गए थे जब वह केवल पंद्रह वर्ष के थे। यह माना जाता था कि पंद्रह वर्ष की आयु में ही वे भगवान हनुमान के भक्त थे और उन्हें भगवान ने दर्शन भी दिए थे। उसके बाद गोयन्दका ने सूर्य, शिव और राम तीनों की उपासना की और यह कहा कि उन्हें तीनों भगवानों के 'आभास' होते हैं। पोद्दार की तरह गोयन्दका का भी दावा था कि देवी-देवताओं का 'आभास' करते-करते वे ईश्वर से बातचीत भी करते थे।

सन् 1899 में चुरू के नाथ सम्प्रदाय के मंगलनाथ महाराज के साथ हुई मुलाकात ने गोयन्दका की आध्यात्मिक खोज की दिशा बदल दी। गोयन्दका ने मंगलनाथ में एक आदर्श देखा। गोयन्दका के अनुसार, उन्हें ईश्वर (विष्णु) का पहला 'आभास' सन् 1907 में हुआ जहाँ विष्णु ने उन्हें जादुई शक्तियों से परिचित कराया। उसी साल गोयन्दका के बचपन के मित्र व आध्यात्म के मार्ग पर उनके सहयात्री हनुमानप्रसाद गोयनका सिफलिस नामक यौन रोग के शिकार हुए। गोयन्दका से जुड़े संकलन बताते हैं कि उन्होंने अपने मित्र की बीमारी को ठीक करते हुए उसके दर्द को बाँट लिया था। मित्र की उस बीमारी पर कोई नैतिक टिप्पणी नहीं की जो अमीरों के लिए आम थी, लेकिन आध्यात्मिक लोगों के लिए नहीं।

1910 के दशक की शुरुआत में गोयन्दका ने व्यापार शुरू किया लेकिन फिर भी सत्संग और आध्यात्मिक चर्चाओं के लिए उन्होंने काफ़ी समय बचा लिया। बाँकुड़ा में अपने मामा जी के व्यवसाय से अनुभव प्राप्त करने के बाद उन्होंने चक्रधरपुर में अपना व्यवसाय करना शुरू किया। इसी समय उनकी ख्याति धर्मगुरु के रूप में फैलनी शुरू

हुई। हर दिन वे काम के बाद खड़गपुर जाया करते थे जहाँ उनके दोस्तों और परिचितों का ऐसा समूह था जो धार्मिक चर्चाएं करने के लिए उत्सुक रहता था। कलकत्ता में धार्मिक सभा 174 हैरिसन रोड पर हुआ करती थी और इसके बाद गोयन्दका अपनी रात आत्माराम खेमका के घर बिताया करते थे। जैसे-जैसे गोयन्दका की धार्मिक चर्चाओं ने अन्य लोगों को आकर्षित करना शुरू किया गोबिंद भवन की शुरुआत वहीं से हुई। उस समय खेमका के साथ काम कर रहे उनके दोस्त हनुमानप्रसाद गोयनका कलकत्ता की चर्चाओं के दौरान गोयन्दका के साथ दिखाई देते थे। यही वह जगह थी जहाँ गोयन्दका हीरालाल गोयनका और उनके पिता सूरजमल गोयनका के संपर्क में आए। बाद में गोबिंद भवन में कथावाचक बने हीरालाल मारवाड़ी महिलाओं के साथ सेक्स स्कैंडल में लिप्त पाए गए जिसने गीता प्रेस की नींव और गोयन्दका की रहस्यमयी, धार्मिक आरोग्यसाधक और गृहस्थ साधु की छवि को हिलाकर रख दिया।

सन् 1923 में गीता प्रेस को सोसाइटीज़ ऑफ़ रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1860 (जिसे अब पश्चिम बंगाल सोसाइटीज़ एक्ट, 1860 कहा जाता है) के तहत कलकत्ता स्थित गोबिंद भवन कार्यालय की उप-शाखा की तरह पंजीकृत करवाया गया। गीता प्रेस सबसे पहले उर्दू बाज़ार में एक किराए की जगह पर स्थापित किया गया जहाँ सितंबर 1923 में एक हैंड प्रेस लगाया गया। बहुत खराब गुणवत्ता के कारण इस प्रेस के बदले 2000 रुपए देकर दूसरी पेडल मशीन ली गई लेकिन गुणवत्ता के लिहाज़ से यह भी असफल रही। इसके कुछ दिनों बाद एक पेन फ्लैट बेड सिलिंड्रिकल मशीन 7000 रुपए में खरीद ली गई जो उन दिनों काफ़ी बड़ी रक़म होती थी। जैसे ही गीता का प्रकाशन ज़्यादा बढ़ा तो यह जगह भी छोटी पड़ने लगी। इसके बाद जुलाई 1926 में ज़मीन का एक टुकड़ा 10,000 रुपए में खरीद लिया गया। अगले कुछ वर्षों में काम बढ़ा और *कल्याण* को गोरखपुर पहुँचाया दिया गया और वहाँ साथ-साथ कुछ और ज़मीनें भी खरीद ली गईं। किसी भी नई पत्रिका की बढ़ती ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए गीता प्रेस ने तकनीकी बदलावों के साथ भी तालमेल बनाए रखा।

जैसे-जैसे गीता प्रेस के पाँव जमे और इसके वित्तीय प्रबंधनों का हल निकला, अनवरत यात्राओं पर रहने वाले गोयन्दका ने आध्यात्मिक जगत की गतिविधियों में स्वयं को पुनः व्यस्त कर लिया। बहुत बार मारवाड़ियों ने उन्हें अपनी संपत्ति और व्यापार के बंटवारे के लिए पंच के रूप में आमंत्रित किया जिसमें अक्सर उन्हीं की राय अंतिम होती थी। मारवाड़ी समुदाय में उनके आदेशों की नैतिक वैधता इस क़दर थी कि शायद ही कोई उनके आदेशों का उल्लंघन करने की हिम्मत करता था। ¹⁷⁷ अपने ही समुदाय से पंच के रूप में गोयन्दका का होना मारवाड़ियों के लिए आर्थिक दृष्टि से भी कोई नुक़सानदेह नहीं था। इससे उनके क़ानूनी दांव-पेंचों पर लगने वाले लाखों रुपए और व्यापार का कीमती समय बच जाता था।

गोयन्दका की सेवाएँ सनातन हिन्दू धर्म के दायरों में चलने वाले सामाजिक मतभेदों को दूर करने के लिए भी माँगी जाती थीं। गीता वाटिका के विवरणों ¹⁷⁸ से

पता चलता है कि अछूतों को दीक्षा की अनुमति देने के मुद्दे पर, जिस पर तब तक ब्राह्मण और कुछ अन्य जातियों का आधिपत्य था, गोयन्दका ने कांग्रेस और हिन्दू महासभा के नेता मदनमोहन मालवीय तथा बनारस के 'सबसे प्रभावशाली संन्यासी और बाद में जाकर रामराज्य परिषद्' ¹⁷⁹ के संस्थापक बने स्वामी करपात्री महाराज के बीच मध्यस्थ का काम किया था ।

जयदयाल गोयन्दका के तीन भाई और तीन बहनें थीं । उनके छोटे भाई हरिकृष्ण दास ने बहुत से संस्कृत अभिलेखों का अनुवाद हिन्दी में किया, जिसे बाद में गीता प्रेस ने प्रकाशित भी किया था । जयदयाल के जीवन का अच्छा-खासा हिस्सा धार्मिक कार्यों में बीता था जिससे उनके पास व्यापार के लिए समय नहीं बचता था । गोयन्दका के सबसे छोटे भाई मोहनलाल को उन्होंने गोद लिया था । रतनगढ़ के ऋषिकुल आश्रम से स्नातक मोहनलाल की पत्नी का निधन जल्दी हो गया था और गांधी के कहने पर उन्होंने पुनर्विवाह किया था । दुजारी के विवरणों के अनुसार, मोहनलाल कम उम्र से ही गांधी से बहुत प्रभावित थे और उनसे कई बार मिल चुके थे । हालाँकि पुनर्विवाह से उन्हें कोई बहुत मदद नहीं मिली और उन्होंने जल्द ही अपना घर और अपना खादी का कारोबार छोड़ दिया । बाद में, गांधी के कहने पर वे लौट आए और उन्होंने बाँकुड़ा में अपने चाचा के चने का पैतृक व्यवसाय संभाल लिया । सन् 1930 तक मोहनलाल और हरिकृष्ण ने अपने पैरों पर खड़े होकर व्यवसाय फैला लिया और सन् 1932 में जयदयाल हरिकृष्ण नाम से कपास-व्यापार की एक फर्म पंजीकृत कराई । कुछ सालों के भीतर ही, कंपनी ने विस्तार लिया और इसने पहले एक रंगाई यूनिट और बाद में गंजी (बनियान) की फैक्टरी खोली । 1930 के दशक के अंतिम वर्षों में एक के बाद एक हुई पारिवारिक त्रासदियों के चलते उनका व्यापार गोयन्दका न्यास चलाने लगा । उनके कारोबारी मुनाफ़े का बड़ा हिस्सा स्कूलों और भवनों को चलाने के लिए गिरवी रखा जाने लगा ।

जयदयाल गोयन्दका की अपने परिवार से दूरियाँ बढ़ने लगीं और वे मौन, सत्संग और आध्यात्मिक लेखन जैसे कामों में रम गए । उनके द्वारा की गई गीता की व्याख्या से प्रभावित होकर गीता के प्रख्यात व्याख्याता रामसुख दास और स्वामी चक्रधर ने गोयन्दका को गीता पर एक विस्तृत टीका लिखने को कहा । श्रमसाध्य ढंग से विभिन्न विद्वानों और गीता की विभिन्न व्याख्याओं पर स्वामी जी के साथ हुए गहन वाद-विवाद के बाद गोयन्दका ने सन् 1936 में गोरखपुर में इस टीका पर काम करना शुरू किया और बाँकुड़ा में सन् 1939 में इसे पूरा कर लिया । इसका पहला संस्करण सन् 1940 में *कल्याण* के वार्षिकांक में और बाद में *गीता तत्त्व विवेचनी* पुस्तक के रूप में गीता प्रेस से आया । यह गीता प्रेस की तरफ़ से सबसे ज़्यादा बिकने वाली पुस्तक थी ।

गोयन्दका के जीवन का बड़ा हिस्सा ऋषिकेश के स्वर्गाश्रम में बीता । उन्होंने 1920 के दशक के शुरुआती वर्षों में ही इस शहर में आना-जाना शुरू कर दिया था । जब भी वे यात्रा नहीं करते थे, तो उनका अधिकांश समय यहीं बीतता था । पोद्दार के

साथ विभिन्न मुद्दों पर अपने बढ़ते हुए मतभेदों के चलते वे गोरखपुर बहुत कम जा पाते थे। स्वर्गाश्रम उनका दूसरा घर बना गया था और यहीं उन्होंने अंतिम साँसें भी लीं।

पोद्दार ने माना कि गोयन्दका के साथ उनके संबंध बहुस्तरीय किस्म के थे, लेकिन वह इन्हें जगजाहिर करना नहीं चाहते थे। उन्होंने गंभीरचंद दुजारी को बताया था: 'मेरा उनसे आध्यात्मिक विषय को लेकर कोई पत्र व्यवहार है या और कुछ भाई-बहन का संबंध है, आदि चर्चा किसी के भी सामने भूल कर भी नहीं करनी चाहिए। न उनकी कोई कविता आदि *कल्याण* में छपती है आदि बातें किसी से कहनी चाहिए। (चिम्मनलाल) गोस्वामी जी तथा आपको दोनों को इस बारे में मेरी प्रार्थना का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए।' [180](#)

गीता प्रेस द्वारा चलाया जाने वाला स्वर्गाश्रम आज भी ऋषिकेश के सबसे बड़े आश्रमों में से है जिसमें आगंतुकों के लिए लगभग 100 कमरे हैं और जहाँ साल भर धार्मिक समारोह चलते रहते हैं। कलकत्ता के बांसतल्ला गली में किराए के मकान से शुरू हुए पैतृक संस्थान गोबिंद भवन ने सन् 1949 में महात्मा गांधी रोड (जिसे पहले हैरिसन रोड कहते थे) पर अपनी ज़मीन ले ली।

जब गोयन्दका *गीता तत्व विवेचिनी* के लिए माथापच्ची करने में व्यस्त थे तब उनके दत्तक पुत्र मोहनलाल के सबसे छोटे बेटे का निधन हो गया। इस घटना से गोयन्दका को सदमा लगा। अपना स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं होने के बावजूद वे विभिन्न धार्मिक और लोकोपकारी गतिविधियों से जुड़े रहे। वे अपने आपको पारिवारिक मसलों से भी दूर नहीं रख सके। उनकी पत्नी सन् 1960 में बाँकुड़ा में गुज़र गई थीं और उसके बाद उन्हें सन् 1964 में कलकत्ता में मोहनलाल की गिरफ्तारी की खबर मिली। उस समय गोयन्दका के लिए इससे ज़्यादा बुरा समाचार नहीं हो सकता था। पोद्दार द्वारा मोहनलाल को रिहा करने का आग्रह करते हुए प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री को लिखा गया पत्र इस बात का संकेत था कि मोहनलाल को डिफेंस ऑफ़ इंडिया एक्ट के तहत गिरफ्तार किया गया था। पोद्दार ने शास्त्री को बताया कि मोहनलाल गांधी के पुराने सहयोगी रहे थे। उन्होंने बाँकुड़ा के लोगों की निःस्वार्थ भाव से सेवा की थी और जीवनपर्यंत खादी को लोकप्रिय बनाने के लिए काम किया था। पोद्दार ने इस बात पर ध्यान नहीं देने के लिए पश्चिम बंगाल सरकार पर दोष मढ़ा, 'कृपया, अपने प्रभाव का इस्तेमाल करते हुए एक निर्दोष को रिहा करवाएं।' पोद्दार ने शास्त्री से पैरवी करते हुए कहा कि मोहनलाल को अपने पिता का ध्यान रखने से वंचित कर दिया है जिनकी देखभाल करने के लिए मोहनलाल के अलावा कोई भी नहीं है।

[181](#)

हालाँकि मोहनलाल अब भी जेल में थे, लेकिन गोयन्दका ने पोद्दार और बाक़ी लोगों से खुद को ऋषिकेश भेजने का आग्रह किया। उनके इस आग्रह को मान लिया गया। मार्च, 1965 के अंत में पोद्दार गोरखपुर से ऋषिकेश आए और मोहनलाल को अपने पिता से मिलने के लिए पैरोल पर छोड़ दिया गया। अपनी बीमारी की वजह से

बिस्तर पर जकड़े हुए गोयन्दका ने किसी भी तरह की अंग्रेज़ी दवाई लेने से मना कर दिया । अगले कुछ दिनों में, ऋषिकेश में उन्हें देखने आने वाले अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी । मृत्यु की दहलीज़ पर खड़े होकर भी गोयन्दका पत्र लिखवा रहे थे और पोद्दार से अपने प्रिय धार्मिक श्लोक सुनाने को कह रहे थे । 17 अप्रैल को गोयन्दका का शरीर उनके अनुयायियों द्वारा अंतिम दर्शन करने के लिए बाहर रख दिया गया और इसी दिन 4 बजते ही वह इस दुनिया से विदा हो गए । उनके अनुयायियों ने यह मानने से इंकार कर दिया कि उनकी मृत्यु किसी साधारण मनुष्य की तरह हुई है । अनुयायियों का मानना था कि गोयन्दका की आत्मा ब्रह्म में मिल गई है और इस तरह वे ब्रह्मलीन जयदयाल गोयन्दका बन गए हैं ।

आने वाले महीनों में *कल्याण* ने अपने संस्थापक को कई श्रद्धांजलियाँ दीं । गोबिंद भवन के न्यासियों ने गोयन्दका के शिष्यों को शोक न करने और उनकी दैवीय शिक्षाओं का अनुसरण करते हुए अपने चरित्र को उसके अनुसार ढालने की अपील की । पोद्दार ने लिखा कि हालाँकि दुनिया अब उनके भौतिक स्वरूप, उपदेशों और अनुकरणीय चरित्र से वंचित हो गई है, परंतु गोयन्दका सभी के दिलो-दिमाग में हमेशा जीवित रहेंगे । [182](#)

गीता प्रेस की चिंता करने के लिए अब मात्र पोद्दार थे, जो इस ज़िम्मेदारी से मुक्त होने की अनेक कोशिशों के बावजूद भी इसे निभा रहे थे । पोद्दार और गोयन्दका, दोनों का गीता प्रेस पर इस क़दर प्रभाव रहा है कि ये दोनों नाम आज भी *कल्याण* के पृष्ठों की शोभा बढ़ा रहे हैं ।

अध्याय 2

गीता प्रेस का संसार

सनातन हिन्दू धर्म से जुड़े सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार की रूपरेखा आधे घंटे की ट्रेन यात्रा में बनी। सन् 1926 में अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा की बैठक के बाद दिल्ली से बॉम्बे लौटते हुए हनुमानप्रसाद पोद्दार हरियाणा के रेवाड़ी से होते हुए धार्मिक प्रवचन हेतु भिवानी गए और जयदयाल गोयन्दका से मिले। अगले दिन पोद्दार और गोयन्दका ट्रेन से रेवाड़ी लौटे। उसके आगे पोद्दार को बॉम्बे और गोयन्दका को बंगाल के बाँकुड़ा के लिए निकलना था। उसी ट्रेन में पिलानी के एक बड़े व्यवसायी और मारवाड़ी समुदाय के प्रभावशाली व्यक्ति लक्ष्मी नारायण मुरोड़िया भी यात्रा कर रहे थे। आधे घंटे की इस यात्रा में उन्होंने जी डी बिड़ला की कही बात पर विचार करते हुए उसे सही माना कि मारवाड़ी अग्रवाल महासभा को सामुदायिक मुद्दों से पृथक हिन्दू धर्म केंद्रित एक स्वतंत्र पत्रिका निकालनी चाहिए। मुरोड़िया ने पोद्दार से इस प्रस्तावित पत्रिका के संपादकत्व की विनती की। हालाँकि पोद्दार ने दबी आवाज़ में असहमति जताई, लेकिन मुरोड़िया की उम्र और मारवाड़ी समुदाय में उनके स्थान का लिहाज़ करते हुए पोद्दार चुपचाप सहमत हो गए।

पत्रिका के नामकरण के प्रश्न पर पोद्दार ने *कल्याण* नाम सुझाया (जिसका अर्थ उपकार, भलाई और सौभाग्य से जुड़ा है)। दोनों लोगों ने इस नाम को सहर्ष स्वीकार किया। और यह तय किया कि *कल्याण* का पहला अंक हिन्दू संवत् में शुभ माने गए अक्षय तृतीया के दिन निकाला जाएगा। गोरखपुर में स्थापित किन्तु ठंडे पड़े गोयन्दका के गीता प्रेस से इस पत्रिका को प्रकाशित करने की बात भी तय हुई। आगामी वर्षों में *कल्याण* ने गीता प्रेस की कायापलट कर उसे नई ऊँचाइयों पर पहुँचाया और इस पूरी परियोजना को अभूतपूर्व सफलता प्रदान की। ¹

प्रथम वर्ष

बॉम्बे वापसी के बाद पोद्दार के दिमाग से *कल्याण* की बात निकल गई। संयोगवश तभी वे श्री वेंकटेश्वर प्रेस के मालिक खेमराज कृष्णदास से मिले। उन्होंने पत्रिका को

पंजीकृत करने और प्रकाशन संबंधी सहायता का प्रस्ताव रखा । प्रकाशन व्यवसाय की दुनिया के प्रभावी नाम खेमराज से मिलने का लाभ यह हुआ कि *कल्याण* उन छोटी-मोटी दिक्कतों में उलझने से बच गई जिनका सामना समकालीन पत्रिकाओं को करना पड़ रहा था । इसके अलावा, सनातन हिन्दू धर्म के प्राचीन गौरव की पुनर्स्थापना के घोषित लक्ष्य ने इसे औपनिवेशिक सरकार की कड़ी राजनैतिक निगरानी से बाहर रखा ।

पत्रिका से जुड़ी अधिकांश व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के बाद पोद्दार के लिए पत्रिका हेतु लेख संग्रह करने की संपादकीय ज़िम्मेदारी बची । और इसके तहत उनका काम अपने संपर्कों का प्रयोग करते हुए आध्यात्मिक व्यक्तियों, राजनीतिज्ञों और उन लेखकों से *कल्याण* के लिए लिखवाना था जिनसे वे क्रांतिकारी, व्यवसायी और जयदयाल गोयन्दका के सहायक जैसी विभिन्न भूमिकाएँ निभाने के दौरान मिले थे । *कल्याण* का पहला अंक अगस्त, सन् 1926 में श्री वेंकटेश्वर प्रेस से छपा । इस प्रेस को गोयन्दका के बॉम्बे स्थित सत्संग भवन का संरक्षण प्राप्त था । भारत में तीन रुपए और विदेशों में चार रुपए की वार्षिक सदस्यता की पेशकश करने वाली इस पत्रिका ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और धर्म का प्रतिनिधित्व करने का दावा किया ।

प्रवेशांक का आवरण सादा लेकिन सुरुचिपूर्ण ढंग से तैयार किया गया था । आवरण के बीच में बांसुरी के साथ भगवान कृष्ण का एक रंगीन चित्र लगा था जिसके चारों ओर गीता के श्लोक लिखे हुए थे । पत्रिका ने अपने नौ नियम भी स्पष्ट लिखे थे । इनमें मुख्य थे, पत्रिका हर महीने के पहले पक्ष में पड़ने वाली कृष्ण एकादशी को प्रकाशित की जाएगी, किसी भी प्रकार का विज्ञापन नहीं स्वीकार किया जाएगा और पत्रिका की सामग्री केवल भक्ति, दैवीय शक्ति व भगवान की कथाओं तक सीमित रहेगी ।

34 पृष्ठों वाले *कल्याण* के प्रवेशांक में गोयन्दका के दो लेख शामिल थे । पहला जीवन में *कल्याण-प्राप्ति* के मार्गों पर लिखा गया था और दूसरे में उन्होंने अपने भक्तों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दिए थे । उन्होंने मारवाड़ी में उत्तर दिए थे जिन्हें अत्यंत संस्कृतनिष्ठ हिन्दी में अनूदित करके छापा गया था । गोयन्दका और पोद्दार दोनों ही आम पाठक वर्ग के धार्मिक/सामाजिक समस्याओं से जुड़े सुझाव केंद्रित स्तंभ आजीवन लिखते रहे । प्रवेशांक में *नवजीवन* में प्रकाशित सहज या प्राकृतिक के अर्थ पर केंद्रित मोहनदास करमचंद गांधी के लेख का एक चुना हुआ अंश भी प्रकाशित किया गया । रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा भौतिक व स्थूल इच्छाओं के मायाजाल पर लिखे गए एक हिस्से को 'पूरक' की तरह प्रकाशित किया गया । प्रथम वर्ष के आगामी अंकों से ही गांधी का प्रभाव और ज़्यादा स्पष्ट होने वाला था ।

संपादकीय स्तंभ का चुनाव करते हुए पोद्दार ने *कल्याण* की पद्धति और उद्देश्य को समझाते हुए दो स्वतंत्र टिप्पणियाँ लिखीं । पहली संपादकीय टिप्पणी '*कल्याण की आवश्यकता*' थी और इसमें *कल्याण* के विभिन्न आयामों पर ध्यान केंद्रित किया गया था: 'अलग-अलग लोगों के लिए इसके अलग-अलग मायने हैं । कोई स्त्री, पुत्र, धन,

मान और बड़ाई की प्राप्ति को शुभ मानते हैं... तो कोई इन सब को त्याग कर निर्जन प्रदेश में निवास करना ही शुभ समझते हैं, कोई पर-धन-अपहरण में ही अपना मंगल मानते हैं । कोई परार्थ अर्थ के उत्सर्ग को मंगल समझते हैं । इस प्रकार अपनी-अपनी रुचि के अनुसार लोग कल्याण का भिन्न-भिन्न अर्थ किया करते हैं ।’ आगे, ‘जिसको इस कल्याण के संपादन का भार दिया गया है वह इस बात को भली-भांति जानता है कि उसमें कल्याण के संपादन की योग्यता और सामर्थ्य नहीं, वह अभी कल्याण से दूर है परन्तु वह कल्याणकामी अवश्य है, इस कल्याण की किंचित सेवा से उसकी कल्याण कामना में बहुत कुछ सहायता प्राप्त हो सकती है । विज्ञ पाठक और पाठिकाएँ अनुग्रहपूर्वक अपने प्रेम का यह बल दें कि जिससे इस कल्याण का यह तुच्छ संपादक भी प्रभु की प्रत्येक क्रिया को कल्याणमय समझने के योग्य बन सके ।’ ² स्वयं के प्रति तुच्छ-भाव की यह शैली ही पोद्दार के लेखन की कसौटी बन गई ।

लेकिन कल्याण का वास्तविक उद्देश्य अंतिम पृष्ठों पर दी गई संपादकीय टिप्पणी में अभिव्यक्त था । अंतर्राष्ट्रीय मामलों का अवलोकन करते हुए पोद्दार ने इस बात पर अफ़सोस जताया कि लगातार हो रही मौतों और तबाही के साथ यूरोप ग़लत राह पर जा रहा है । उनके अनुसार, संयुक्त राज्य अमेरिका भी इस स्थिति से अछूता नहीं था । उन्होंने न्यूजर्सी के डोवर में हथियार डिपो में लगी आग के कारण हुई कई लोगों की मौत का विशेष रूप से उल्लेख किया । ‘परस्पर वैर विरोध से तो प्रायः सभी दुखी हैं । कहीं विद्रोह है, कहीं राजहत्या के लिए आयोजन है, कहीं गरीबों पर अमानुषिक अत्याचार है तो कहीं धनियों को लूट कर सबको बराबर कर डालने का विफल प्रयास है । सारांश यह है कि प्रायः समस्त यूरोप और अमेरिका के जीवों पर संकट छाया हुआ है । आध्यात्मिक, आदिदैविक और आदिभौतिक तीनों प्रकार के ताप क्रमशः बढ़ते चले जा रहे हैं ।’ ³ एशिया की ओर रुख करते हुए पोद्दार ने सत्ताधारी कुओमिनतांग या चीनी राष्ट्रवादी पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी के बीच हुए गृह युद्ध की हिंसा को चिह्नित किया । उन्होंने ईरान की अनिश्चितता का ज़िक्र किया, जहाँ पहलवी राजवंश ने सन् 1926 में सत्ता पर कब्ज़ा कर लिया था । इसके अलावा जापान की राजनैतिक अस्थिरता का उदाहरण भी पोद्दार ने दिया । पोद्दार का यह पहला संपादकीय ही उनके व्यक्तित्व का स्पष्ट परिचय था । रूढ़ ऐतिहासिक आख्यान के हवाले से हिन्दू समाज के रक्षण में उनकी भूमिका साफ़ देखी जा सकती है । समाजवाद और साम्यवाद के उभार से चिंतित पोद्दार ने यह घोषित किया कि अमीरों को लूट कर गरीबों में संसाधन वितरित करने का विचार विफलता के निकट है । वे भले ही असफल कारोबारी रहे हों, लेकिन अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन में उन्होंने हमेशा मुक्त बाज़ार और राज्य के अहस्तक्षेप वाली उद्योग व व्यापार-नीति का समर्थन किया ।

भारत की बात करते हुए पोद्दार ने लिखा कि हम कुपोषण और बेरोज़गारी जैसी सदा से मौजूद रही समस्याओं से जूझ रहे हैं । लेकिन इसके साथ-साथ देश एक दूसरे बड़े संकट का सामना कर रहा है, वह है: ‘दो बड़े समुदाय एक-दूसरे को खत्म करने के

लिए निकल पड़े हैं। स्थान-स्थान पर मार-काट मची हुई है, अवसर पाते ही अपना वैर निकालने के लिए दोनों ओर से तैयारियाँ हो रही हैं।' मोटे तौर पर, उन्होंने धर्म के नाम पर हो रही हत्याओं और मंदिरों तथा मस्जिदों के तोड़े जाने का जिक्र किया। हालाँकि उनके विचारों में कोई झूठी निष्पक्षता नहीं दिखाई दे रही थी, लेकिन कुछ विशेष अन्यायपूर्ण कृत्यों के आरोप उन्होंने हमेशा मुसलमानों पर मढ़े। पोद्दार ने उल्लेख किया कि कैसे गरीबों, अबला, पवित्र हृदय स्त्रियों पर हो रहे हमलों को कपटपूर्ण तरीके से धर्म के उद्देश्य को मज़बूत करने के रूप में देखा जा रहा है। इसी क्रम में उन्होंने गाय का प्रत्यक्ष जिक्र किए बिना उपकारी पशु की हत्या का प्रश्न उठाया जिसने देश की धरती को रक्तस्रावित कर दिया है। पोद्दार ने मूल्यों के क्षय का कारण भौतिकवाद और सर्वशक्तिमान ईश्वर के अस्तित्व में अनास्था को माना। 'हम पापों की सेवा से ही सुख की प्राप्ति का स्वप्न देख रहे हैं। सारांश कि हम पतन की ओर जा रहे हैं। यदि जगत के मनुष्य इस भयानक पतनोन्मुखी प्रवाह से शीघ्र ही अपना छुटकारा न करवा लेंगे तो संभव है कि परिणाम और भी भयंकर हो।'।

अपना नज़रिया तय कर लेने के बाद पोद्दार ने दोनों समुदायों के बीच के गहरे अविश्वास और अहिंसा से भरे बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों के साम्प्रदायिक माहौल की व्याख्या की। 'हिन्दू-मुसलमान की समस्याएं' उपशीर्षक के साथ उन्होंने लिखा कि, 'न इससे (हिंसा से) हिन्दू धर्म का प्रचार होता है न इस्लाम की ही तरक्की होती है।'। पुनः उनकी निष्पक्ष दृष्टि की झलक पल भर के लिए दिखाई दी और अंत तक आते-आते उन्होंने अपने सह-धर्मियों से 'सत्ता और शक्ति संचय' का आह्वान किया। साथ ही इसे गरीबों व असहायों और यहाँ तक कि दूसरे धर्म के खिलाफ़ उपयोग करने के बजाय स्वधर्म की रक्षा और अत्याचारियों से अपनी स्त्रियों की शुचिता की रक्षा में प्रयोग करने को कहा। उनके अनुसार 'आत्मरक्षा' के ये उपाय 'ईश्वर सम्मत' होंगे। पोद्दार की राय थी कि पूजास्थलों और स्त्रियों पर हो रहे हमले हमारी लापरवाही का परिणाम हैं। ऐसी हिंसा को अंजाम देने वाले अपराधियों से बातचीत कर उन्हें सन्मति देनी चाहिए, लेकिन इसके असफल होने पर शारीरिक प्रताड़ना का विकल्प भी रखना चाहिए। उन्होंने कहा कि, 'शारीरिक बल बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन इसके लिए संघबल ज़रूरी है। इसके साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अहिंसा कायरता नहीं है। अहिंसा और क्षमा निडर और बहादुरों के गुण होते हैं, कायरों के नहीं और न ही कमज़ोर हृदय वालों के जो अपने घरों में छिपे रहते हैं।'। गीता प्रेस की ध्वजवाहक पत्रिका के रूप में *कल्याण* ने अपने लक्ष्य को स्पष्ट किया और हिन्दुओं को आत्मरक्षा के गुर सिखाए।

कल्याण का दूसरा अंक प्रधानतः जयदयाल गोयन्दका के भाषणों और उनके अनुयायियों को दिए गए उत्तरों पर केंद्रित था। इसके अलावा इसमें गांधी का एक संक्षिप्त लेख भी शामिल था। यह स्पष्ट नहीं है कि वह लेख कहीं से उद्धृत था या विशेष तौर पर इस नई पत्रिका के लिए ही लिखा गया था। 'नाम महात्म्य' शीर्षक वाले इस लेख में राम नाम के जाप पर ज़ोर देते हुए उसकी महत्ता बताई गई थी। रामायण का संदर्भ लेते हुए इसमें लिखा गया कि किस तरह राम नाम के जाप से रावण की लंका

तक पहुँचने के लिए एक सेतु बनाया गया । गांधी ने आगे कहा कि राम ने उन्हें निजी जीवन में व्यभिचारी होने से बचा लिया । उन्होंने कहा कि 'यदि मेरे पास राम नाम न होता तो तीन स्त्रियों को मैं बहन कहने के लायक न रहा होता ।' ⁴

गांधी के व्यक्तिगत जीवन में शुचिता पर ज़ोर देने के बरक्स गोयन्दका सार्वजनिक दायरे की चिंता कर रहे थे जिसमें उनके अनुसार हिन्दूवाद गंभीर संकट से जूझ रहा था । एक अनुयायी द्वारा आत्ममुक्ति के मार्गों से जुड़े प्रश्न पर गोयन्दका ने पहले हिन्दूवाद के लिए आत्ममुक्ति को प्राथमिकता दी और इसके अतिरिक्त क्रमशः चार मार्ग बताए: धार्मिक शिक्षा को बढ़ावा देना, संतों एवं विद्वानों के साथ सत्संग करना, कम दाम पर धार्मिक पुस्तकें छपवा कर वितरित करना और धार्मिक पहचान के साथ अनाथ बच्चों के लिए अनाथालय खोलना ।

इसके साथ-साथ बॉम्बे में *कल्याण* का प्रकाशक सत्संग भवन सस्ते दाम पर गोरखपुर की गीता प्रेस से छपने वाली धार्मिक पुस्तकों के वितरण का पहला संभावित कदम उठा रहा था । बॉम्बे, गोरखपुर, बीकानेर और दिल्ली के सीमित विक्रय केंद्रों के अलावा सत्संग भवन ने पुस्तकों की बिक्री के अनुसार 'उचित कमीशन' देने का वायदा करते हुए एजेंट आमंत्रित किए । अब तक तेरह अंक प्रकाशित हो चुके थे, जिनमें से पाँच ध्यान देने योग्य थे । पहले में गीता के विभिन्न अध्यायों का सार था, दूसरे में *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी* छपी थी, तीसरे में इच्छाओं को नियंत्रित करने के तरीके बताए गए और चौथा भक्ति भजनों का संग्रह था । इसकी दो प्रतियाँ एक पैसे की थीं । पाँचवीं, सबसे महत्वपूर्ण और महंगी पुस्तक गीता थी जो एक रुपए की थी । हालाँकि यह महज़ शुरुआत थी, सन् 1927 में *कल्याण* के संपादकीय सदस्यों के गोरखपुर पहुँचने पर प्रकाशित धार्मिक पुस्तकों की संख्या में वृद्धि हुई ।

अभी इसके नियमित लेखकों की सूची बन ही रही थी कि *कल्याण* के तीसरे अंक ने जयदयाल गोयन्दका की टिप्पणी प्रकाशित की । यह टिप्पणी जी डी बिड़ला द्वारा एक वर्ष पूर्व पूछे गए एक आध्यात्मिक प्रश्न से जुड़ी थी । गोयन्दका के ज्ञान के जिज्ञासुओं में एक जी डी बिड़ला ही थे, जिनका नाम उजागर किया गया । उनका प्रश्न मोक्ष प्राप्ति से जुड़ा था जिसे वे कैलास पर्वत लांघने से ज़्यादा कठिन समझते थे । बिड़ला जानना चाहते थे कि गांधी और उनके सत्यदर्शन और अहिंसा की सेवा के बावजूद क्या उनकी (बिड़ला की) समृद्धि उनके मोक्ष मार्ग में बाधक होगी? गोयन्दका ने जवाब दिया कि धन रुकावट पैदा करता है, लेकिन इसका सदुपयोग भी किया जा सकता है । गांधी के प्रति उनके समर्पण की प्रशंसा करते हुए गोयन्दका ने जोड़ा कि अहिंसा और सत्य का अनुसरण ही सही मार्ग है । बिड़ला को भगवान का नाम लेने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि कण-कण में भगवान की उपस्थिति देखनी चाहिए । भगवान हमेशा साक्षी हैं, ऐसा सोच कर पाप मार्ग पर चलने से खुद को रोकना चाहिए । प्रकाशित जवाब इस ओर इशारा करता है कि बिड़ला ने गोयन्दका को अपना आध्यात्मिक गुरु मानने से इंकार कर दिया । इस इंकार पर गोयन्दका ने शीर्ष

उद्योगपति बिड़ला को यह पहचानने के लिए धन्यवाद दिया कि वे उनके गुरु बनने योग्य गुणों से रहित हैं ।

चौथे अंक तक आते-आते *कल्याण* और गीता प्रेस की पुस्तकों का वितरण संजाल नए एजेंटों के माध्यम से धीरे-धीरे बढ़ता हुआ बेतिया (बिहार), बीकानेर, रतलाम (मध्य प्रांत), दिल्ली और तिनसुकिया (असम) तक पहुँच गया । सभी वितरक मारवाड़ी व्यवसायी थे । दूसरा साल शुरू होने तक गीता प्रेस *कल्याण* और अपने अन्य प्रकाशनों के लिए हज़ारों नए एजेंटों की नियुक्ति के लिए तैयार था । भारत में आज बीस शहरों में गीता प्रेस की दुकान, चार शहरों में खुदरा विक्रय केंद्र और पैंतीस रेलवे स्टेशनों पर स्टॉल के साथ इसका विस्तृत वितरण संजाल मौजूद है । हाल के वर्षों में गीता प्रेस प्रकाशन ऑनलाइन उपलब्ध हो चुका है ।

गुज़रते समय के साथ *कल्याण* हिन्दू धर्म और उन खतरों पर ज़्यादा केंद्रित हुआ जिनकी तुलना पोद्दार सहित अन्य लोगों ने ‘अंधकार युग’ से की थी । पत्रिका ने धीरे-धीरे कई बड़े नामों को आकर्षित किया जिन्होंने विशेषरूप से इन विषयों पर लिखा । भूपेंद्रनाथ सान्याल ⁵ने शुरूआती चार अंकों के लिए छोटे लेख लिखे थे । ‘हमारा परम लक्ष्य’ शीर्षक से एक लम्बा लेख लिखते हुए उन्होंने हिन्दुओं में धार्मिकता के खत्म होने का राग अलापा और बताया कि कैसे वर्तमान संकटों से मुक्ति का एकमात्र उपाय धर्म है! गीता वाटिका की सूची के अनुसार *कल्याण* के लिए आगामी वर्षों में पैंतालीस लेख लिखने वाले सान्याल का यह लेख सनातन हिन्दू धर्म के सिद्धांतों के पक्ष में लिखा गया आरंभिक और मज़बूत लेख था । इसने गीता प्रेस के व्यापक लक्ष्य को गढ़ा । सान्याल, जिन्होंने थोड़े समय के लिए शान्ति निकेतन ⁶में पढ़ाया था, ने कहा कि एक देश के अस्तित्व को परिभाषित और अर्थ देने वाली आत्मा ही उसकी विशिष्ट पहचान है । सान्याल की व्याख्या ‘राष्ट्रीय इतिहास के एकरेखीय रूप’ पर आधारित थी, वह व्याख्या उन्हें ‘भारतीय परंपरा के एकल स्रोत यानी प्राचीन हिन्दू सभ्यता’ की ओर ले गई । ⁷सान्याल कहते हैं, उनके लिए भारत केवल हिन्दुओं का देश है, जो अपनी धार्मिकता के लिए जाना गया और यह हिन्दुओं के व्यक्तिगत व्यवहार, उनके व्यक्तिगत आचार-विचार, राजनीति और प्रशासन से झलकती है । ‘धर्म ही भारत के चरित्र और अनुष्ठान में भरा हुआ है । भारत के लिए धर्म एक काल्पनिक युक्ति नहीं है परन्तु वह सुस्पष्ट, मूर्तिमान और जीवित पदार्थ है । इस धर्म की उपेक्षा करके हम जो कुछ भी करेंगे उससे *कल्याण* कभी नहीं होगा ।’ एक स्थान पर सान्याल ने कार्ल मार्क्स के कथन ‘धर्म जनता के लिए अफीम है’ का प्रतिवाद करते हुए कहा कि ‘भारत के लिए धर्म ही औषध है ।’ सान्याल ने कहा कि ‘विरोधी सभ्यता’ (इस्लाम या ईसाई धर्म के साथ-साथ तमाम विरोधी या विदेशी सभ्यताओं और धर्मों की ओर इशारा करते हुए) के हमले ने सनातन हिन्दू धर्म के सिद्धांतों को भ्रष्ट किया । इसके फलस्वरूप हिन्दू विजातीय संस्कृति और इसके भौतिक आयामों की ओर प्रशंसा और आकांक्षा भाव से देख रहे हैं । ‘हमारे सनातन मार्ग से चलने पर यूरोप का ऐश्वर्य, यूरोप का विलास और

यूरोप के भोग चाहे हमें न मिलें परन्तु भारत की शान्ति, भारत का प्रेम और आनंद तो प्राप्त होगा ही ।’ ⁸

सान्याल द्वारा भारत में सदियों तक रहे मुसलमान व ब्रिटिश शासन और उसके प्रभाव का जिक्र किए बिना भारतीय इतिहास की हिन्दू इतिहास के रूप में निर्मिति हिन्दू राष्ट्रवाद को भारतीय राष्ट्रवाद बताने वाली दृष्टि के अनुकूल थी । इस दृष्टि के अनुसार, मुसलमान और ब्रिटिश दोनों विदेशी और सनातन धर्म को दूषित करने वाले समझे गए, जिसका परिणाम उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के आरंभ में ‘अंधकार युग’ के रूप में देखने को मिला । पार्था चटर्जी कहते हैं कि इस ‘हिन्दू-पन की धारणा’ को मात्र धार्मिक संरचना के रूप में ही नहीं देखना चाहिए क्योंकि ‘इस “हिन्दू” की अपनी विशेष मान्यताएँ और रिवाज नहीं हुआ करते थे और इस अवधारणा के लिए हिन्दुओं के बीच के बहुत से सैद्धांतिक और साम्प्रदायिक मतांतर अप्रासंगिक हैं ।’ ⁹ सान्याल की ऐतिहासिक दृष्टि ने केवल एक तथ्य के वैशिष्ट्य को स्पष्ट किया कि भारत में क्या हुआ और कौन यहाँ बाहर से आया? चटर्जी के अनुसार ऐसा करने की प्रक्रिया में भारतीय इतिहास में ब्राह्मणवादी हिन्दुवाद के मुखर विरोधी रहे बौद्ध और जैन धर्म शामिल कर लिए गए, लेकिन ईसाई और इस्लाम धर्म को छोड़ दिया गया ।

सनातन हिन्दू धर्म के उत्थान का बीड़ा उठाने वाली इस धार्मिक पत्रिका में नयापन यह था कि इसने बहुत से पाठकों को आध्यत्मिक सांत्वना और ईश्वर से साक्षात संवाद के लिए *कल्याण* पर आश्रित कर दिया । पोद्दार ने गुजरात के एक ऐसे पाठक की पहचान गुप्त रखी जो यह जानना चाहता था कि क्या भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन संभव हैं! ¹⁰ आगामी कुछ सालों में कई बार भगवान के दर्शन व उनसे संवाद का दावा करने वाले और इस तरह के किस्सों की भरमार से सतर्कतापूर्वक गढ़ी गई किंवदंती का अंग बन चुके पोद्दार जैसे व्यक्ति के लिए इस तरह के प्रश्न में कुछ भी अटपटा या चौंकाने वाला नहीं था । इस प्रश्न का उन्होंने लंबा जवाब लिखा जिसका निचोड़ था कि, हाँ! भगवान के दर्शन संभव हैं, बशर्ते भक्त में उसी तरह उनके लिए सर्वोच्च लालसा हो, जिस तरह एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए लालायित रहता है ।

गीता प्रेस को उसके नए वाहक *कल्याण* ने बहुत लाभ पहुँचाया । इसकी गतिविधियाँ अब मात्र प्रकाशन तक सीमित नहीं थीं । लोगों द्वारा भगवान को भुला दिए जाने के कारण ‘अंधकार युग’ में पहुँचे भारत की दशा पर अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए गीता प्रेस ने *कल्याण* के माध्यम से हिन्दुओं से आग्रह किया कि वे *हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे, हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे* मंत्र का जाप शुरू करें जिसमें भगवान का नाम सोलह बार आता है । सन् 1925 में भी सत्संग भवन द्वारा किए गए ऐसे ही एक प्रयास को अपेक्षित सफलता नहीं मिली, लेकिन एक साल बाद *कल्याण* की शक्ति का असर दिखने लगा । ¹¹

कल्याण ने अपने पाठकों से प्रत्येक हिन्दू महीने में इस मंत्र का साढ़े तीन करोड़ (35,000,000) बार जाप करने को कहा । जिसका अर्थ हुआ भगवान का नाम कुल

56 करोड़ बार लेना । पाठकों से कहा गया कि वे इस संदेश को देश के कोने-कोने तक पहुँचाएँ । इस अभ्यास में शामिल प्रतिभागियों से कहा गया कि वे बिना अपना नाम लिए बताएँ कि उन्होंने कितनी बार नाम जाप किया है । सत्संग भवन में नाम जाप विभाग नाम से एक नया विभाग गठित किया गया जिसका काम जाप से जुड़े रिकॉर्ड रखना था । यह विभाग गोरखपुर के गीता प्रेस में अभी भी कार्यरत है ।

इस पहल की महत्ता इसके व्यापक चरित्र में थी जिसने गीता प्रेस के रीति-रिवाजों, वर्णाश्रम धर्म (जीवन की चार अवस्थाएं) और लैंगिक मुद्दों पर उसकी वैचारिक दृढ़ता को पीछे छोड़ दिया । पहला, इसने यह स्पष्ट किया कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 108 बार नाम जाप करना है और बीच में जाप बाधित होने से कोई हानि नहीं होगी । आगे, यही अपील हिन्दुओं की सभी जातियों, पुरुषों, महिलाओं और बच्चों से की गई । यह पहल गीता प्रेस के सर्वाधिक प्रमुख लक्ष्य, चातुर्वर्ण्य प्रथा और महिलाओं के लिए कठोर रीति-रिवाज, नियम-धर्म स्थापित करने के ही विरुद्ध चली गई । यह पहल विशेषकर, गीता प्रेस द्वारा महिलाओं से मासिक धर्म की 'अपवित्र' स्थिति में भगवान और अपने पतियों से दूरी बनाने की धारणा के विरुद्ध गई ।

गीता प्रेस ने पहले साल *कल्याण* का उपयोग कुछ मुद्दों की स्वीकार्यता परखने के लिए किया, जिन्हें वह बाद में सुव्यवस्थित ढंग से लगातार उठाता रहा । गो-रक्षा का मुद्दा इसमें सबसे प्रमुख था । गो-रक्षा की अग्रणी आवाज़ गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ने गो-हत्या की प्रथा पर खेद व्यक्त किया और ऐसे साहित्य के प्रचार-प्रसार का समर्थन किया जिसके अनुसार गाय जैसा शुभ प्रतीक सौभाग्य लेकर आता है ।

कल्याण के संपादक को मिले आरंभिक पत्रों में से एक पत्र सन् 1915 में प्रकाशित *आदर्श हिन्दू* के लेखक लज्जाराम मेहता का था । मेहता प्रेमचंद पूर्व युग के महत्वपूर्ण लेखक थे और उनके लेखन में तत्कालीन भारत के 'सामाजिक रूपांतरण के प्रतिरोध' को देखा जा सकता है । *आदर्श हिन्दू* में मेहता ने 'हिन्दू धर्म की महत्ता बताते हुए हिन्दू समाज की बुराइयों के समूल नाश की बात कही और सनातन धर्म की मान्यताओं पर आधारित स्वस्थ व आदर्श समाज को बनाने पर ज़ोर दिया ।' ¹²

कल्याण को लिखे पत्र में मेहता ने पत्रिका की पहल की सराहना करते हुए भी चिंता ज़ाहिर की और लिखा, 'किन्तु जिस समय चारों ओर से देशोन्नति और स्वराज की मृगतृष्णा में सनातन धर्म की छीछालेदर उड़ा कर 'मनमानी घर जानी' की जा रही है,' ¹³ आगे उन्होंने कहा, 'एक ऐसे पत्र (या पत्रिका) की आवश्यकता है जो छुआछूत, विधवा विवाह, जैसे विषयों में शास्त्रों के सच्चे आशय समझा कर और वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करते हुए 'हमें अपने मित्रों से बचाव' इस लोकोक्ति के अनुसार वर्ण संकरी प्रजा बढ़ने से रक्षा करे ।' ऐसे राजनेताओं के प्रति मेहता के रोष को यहाँ देखा जा सकता है, 'संस्कृत के द्वारा शास्त्रों का ज्ञान न होने और अंग्रेज़ी तर्जुमे से बाल की खाल निकालने वाला नेता सनातन धर्म का न नेता ही है न ऐसे धर्म भ्रष्ट हिन्दू नामधारियों को काउन्सिल में अथवा बाहर रायजनी करने का अधिकार है ।'

कल्याण में इस पत्र को खासा महत्व दिया गया और अपनी संपादकीय प्रतिक्रिया में पोद्दार ने मेहता से पूरी सहमति व्यक्त की। पोद्दार ने अस्पृश्यता को जायज़ ठहराया लेकिन साथ ही ऊंची जातियों से आग्रह किया कि 'वे बिना उनके (अछूतों) संपर्क में आए उनके प्रति अपना स्नेह और दया भाव बनाए रख सकते हैं, वैसे ही जैसे हम मासिक धर्म की अवधि में अपनी वंदनीय माता और प्रिय पत्नी के नज़दीक नहीं जाते।'।

आगे उन्होंने विधवा पुनर्विवाह को पाप बताया। उनके अनुसार विधवा को पुनर्विवाह का प्रलोभन देने वाले उम्रभर उससे पति को याद करते हुए जीने का संबल छीन लेते हैं। इसी क्रम में उन्होंने यह बात रखी कि, 'विधवाओं में एक डर बैठाया जा रहा है कि अपनी शारीरिक इच्छाओं को दबाना कष्टदायी होगा। विधवाओं में इच्छाओं को प्रबल करना हिन्दुवाद की पवित्रता और स्त्री पवित्रता की गौरवमयी परम्परा के लिए बड़ा खतरा है।'।

सामान्य रूप से गीता प्रेस और खासकर कल्याण का यह दावा था कि वह हिन्दू रीति-रिवाजों का वर्णन शास्त्रों के अनुरूप करता है। हालाँकि पत्रिका ने उत्तर भारत के लोकप्रिय त्योहार होली, जिसमें कम-से-कम उस दिन लैंगिक और जातिगत अवरोध नगण्य हो जाते हैं, में भी लैंगिक अलगाव की बात की। कल्याण के अनुसार, पुरुष का 'परस्त्री' के साथ होली खेलना यौन मिलन का ही एक रूप है और यहाँ तक कि 'अपनी स्त्री' के साथ होली खेलने में भी पुरुषत्व की हानि होती है। इसकी जगह उन्होंने इस बात पर बल दिया कि होली का उपयोग प्रह्लाद की कहानियों के प्रचार-प्रसार और भक्ति गायन के लिए होना चाहिए।¹⁴

कल्याण के शुरुआती अंक निर्णायक रहे। कई दशकों तक घुमा-फिराकर वही सब सामग्री छपती रही। हालाँकि इस बीच कुछ नए स्तंभ जोड़े गए, कुछ अनियमित हो गए लेकिन इसका शुरुआती ढांचा ज्यों-का-त्यों रहा। कुछ सालों में विशेष स्तंभ कल्याण में दिखने लगे।

'कल्याण' नाम का स्तंभ शिव के नाम से खुद पोद्दार लिखते थे। पोद्दार की मृत्यु के बाद भी स्तंभ जारी रखा गया, जिसमें उनके भाषणों और लेखों को पुनः प्रकाशित किया गया। उनकी मृत्यु के कुछ समय बाद थोड़े बदलाव के साथ इसे 'कल्याण-वाणी' कर दिया गया लेकिन फिर इसे पुनः 'कल्याण' ही कर दिया गया। 'पढ़ो, समझो और करो' नाम का स्तंभ सन् 1958 में पहली बार प्रकाशित हुआ। इसका लक्ष्य उच्च नैतिक मूल्यों का समाज में उदाहरणों के माध्यम से समावेश करना था। इसके अंतर्गत ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए लोगों द्वारा महसूस की गई सच्ची घटनाओं को प्रकाशित करना आरंभ किया गया। 'परमहंस विवेकमाला' नाम के एक अन्य आरंभिक स्तंभ में स्वामी भोले बाबा के प्रवचन प्रश्नोत्तरी शैली में प्रकाशित होने लगे। 'विवेक वाटिका' स्तंभ संतों के सद्बचनों और धार्मिक ग्रंथों से उद्धरण लेकर प्रकाशित किया जाता था। 'परमार्थ पत्रावली' स्तंभ के माध्यम से पोद्दार और

गोयन्दका पाठकों द्वारा पूछी गई आध्यात्मिक जिज्ञासाओं के उत्तर देते थे । वहीं 'परमार्थ की पगडंडियां' स्तंभ में भक्ति से जुड़े नोट्स और परामर्श होते थे । 'साधकों के प्रति' स्वामी रामसुख दास का स्तंभ था । रामसुख पोद्दार के मित्र थे और आध्यात्म व धार्मिक संशयों पर सामान्य जन के प्रश्नों के उत्तर दिया करते थे । सन् 2005 में स्वामी के निधन के बाद भी यह स्तंभ जारी है । अब यह उनके प्रवचनों को विचार रूप में प्रकाशित करता है । 'सत्संग वाटिका के बिखरे सुमन' नामक स्तंभ अब बंद कर दिया गया है जिसमें प्रार्थना, योग और ईश्वर भक्ति से जुड़े लोगों के लिए सुझाव-परामर्श हुआ करते थे । 'काम के पत्र' स्तंभ में पोद्दार भक्ति, नैतिक, व्यावहारिक, सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत सभी प्रकार के प्रश्नों के उत्तर दिया करते थे । यह कल्याण का सबसे लोकप्रिय स्तंभ था । 'भक्त गाथा' स्तंभ पूरी तरह से नियमित नहीं रहा, लेकिन यह सन् 1926 से ही प्रकाशित किया जा रहा है । त्योहार मनाने वाले, व्रत व उपासना करने वालों के बीच 'व्रतोत्सव' स्तंभ खासा प्रसिद्ध था । 'साधनोपयोगी पत्र' स्तंभ कुछ-कुछ 'काम के पत्र' जैसा ही था । [15](#)

कल्याण के महत्वपूर्ण सहयोगी जयदयाल गोयन्दका पेट से जुड़ी बीमारियों से पीड़ित रहते थे और सन् 1926 के अंत तक उन्हें उनके गृहनगर बाँकुड़ा से बनारस इलाज के लिए शहर के एक बड़े वैद्य त्र्यम्बक शास्त्री के पास ले जाया गया । यह पत्रिका नियमित रूप से उनके स्वास्थ्य की सूचना प्रकाशित किया करती थी और पाठकों के लिए उनके द्वारा भिजवाए गए संदेश भी प्रकाशित किया करती थी, इनमें से कई उनके पहले के सत्संगों और भाषणों के अंश होते थे ।

पहले साल के अंत तक कल्याण का प्रदर्शन बेहतरीन रहा । हर महीने में उसकी 3,000 प्रतियां बिकीं । किसी विषय विशेष पर आधारित पत्रिका के हिसाब से यह अविश्वसनीय प्रदर्शन था । जैसा कि भारत में अनिवार्यतः होता है, इसकी अधिकांश प्रतियों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित किया गया और इस तरह इसे एक से अधिक लोगों ने पढ़ा । इस प्रकार, सही मायनों में पढ़ने वालों की संख्या पाँच से छह गुना ज़्यादा रही होगी । अमीर मारवाड़ियों द्वारा एकमुस्त कल्याण की प्रतियाँ खरीदने के भी कई उदाहरण मौजूद हैं । कस्तूरचंद गोराडिया ने अपने फर्म शालिग्राम कस्तूरचंद के लिए पचास प्रतियों की सदस्यता ली थी । इसके अलावा किसी पाठक द्वारा दस प्रतियाँ ली गईं तो किसी ने प्रकाशक द्वारा पृष्ठों की संख्या बढ़ाने पर दोगुनी कीमत अदा करने का वायदा किया । मिल रही प्रतिक्रिया से उत्साहित प्रकाशक ने पहले साल के सातवें अंक में एक नोट छपा कि कल्याण के ढांचे और पृष्ठ संख्या में बदलाव किया जाएगा ।

सत्संग भवन के सस्ते किन्तु उच्च गुणवत्ता वाले धार्मिक ग्रंथ व उनसे जुड़ी टीकाओं के प्रकाशन का कार्य एक ही वर्ष में बढ़ कर 18 पुस्तकों के प्रकाशन तक पहुँच गया, जिसमें से अधिकांश गीता आधारित थीं । इसके अलावा कुछ पुस्तकें ऐसी थीं जिनका उद्देश्य केवल गीता प्रेस के लक्ष्य सनातन धर्म में बढ़ रहे अंधकार से हिन्दू

समाज को बाहर लाना था । स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी जैसी पुस्तकें महिलाओं के आचरण को केंद्र में रख कर तैयार की गई थीं और सर्व तंत्र सिद्धांत पदार्थ संग्रह संस्कृत के ग्रंथों से गौरीशंकर द्वारा चुने गए हिस्सों का संग्रह था । गौरीशंकर स्कूली बच्चों को शिक्षित करने वाले एक संन्यासी थे ।

बॉम्बे से गोरखपुर

सत्संग भवन और श्री वेंकटेश्वर प्रेस के बीच चार से पाँच महीने की छोटी अवधि के लिए की गई मुद्रण संधि तकरीबन एक साल से अधिक समय तक चली । बॉम्बे से 6,000 प्रतियों के साथ अपने पहले विशेषांक *भगवान नाम अंक* निकालने के बाद ही *कल्याण* सन् 1927 में गोरखपुर स्थानान्तरित हुआ । इस अंक में धर्म के विशिष्ट आयामों पर ध्यान दिया गया था । विशेषांक के तौर पर इसने अपार सफलता पाई और इसकी सफलता ने ऐसी परंपरा स्थापित की, जो अब तक कायम है । *भगवान नाम अंक* की समीक्षा में लोकप्रिय साप्ताहिक *हिन्दू पंच* ने पूरे सद्भाव से *कल्याण* की सफलता की कामना की । ¹⁶

एक महीने के भीतर ही *भगवान नाम अंक* की गोरखपुर से 2,000 प्रतियाँ पुनर्मुद्रित हुई । ‘बॉम्बे के रहने वाले किसी गुजराती सज्जन’ ने एक हजार प्रतियाँ खरीदीं और बनारस के किसी अन्य पाठक ने 500 प्रतियाँ निःशुल्क वितरित करने के लिए खरीदीं । ¹⁷ अब गीता प्रेस और *कल्याण* सफलता की ओर देख नहीं रहे थे, उन्होंने वह मक़ाम पा लिया था जहाँ तक उनकी समकालीन पत्रिकाएँ नहीं पहुँची थीं ।

इसके बाद *कल्याण* के विविध विशेषांक क्रमशः *नारी* (1948), *हिन्दू संस्कृति* (1950), *बालक* (1953), *शिक्षा* (1988) निकले जिन्हें अभी तक भारी मांग के तहत पुनर्मुद्रित किया जा रहा है । सन् 1927 के विशेषांक में पृष्ठों की संख्या 110 थी, जबकि इसके बाद के अंकों में सनातन हिन्दू धर्म के विविध पक्षों को समेटते हुए यह संख्या 700-800 पृष्ठ होने लगी ।

सन् 1927 में जब *कल्याण* गोरखपुर स्थानान्तरित हुआ, तब संयुक्त प्रांत का यह जिला गन्ने की खेती और चीनी मिलों, और जिला मुख्यालयों को जोड़ने वाले रेलवे स्टेशन के लिए प्रसिद्ध था । 5 फ़रवरी 1922 में असहयोग आंदोलन के चरम पर आंदोलनकारियों द्वारा गोरखपुर के चौरी-चौरा गांव में पुलिसकर्मियों को जलाए जाने की हिंसा के बाद गांधी ने इस आंदोलन को स्थगित कर दिया ।

इस दुखद घटना की वजह से चौरी-चौरा और गोरखपुर के नाम को राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचाना जाने लगा । बहरहाल, गोरखपुर में और भी कई आंदोलन हुए । नागरी आंदोलन से सन् 1900 में हिन्दी भाषा भी पहले से प्रयोग में लाई जा रही फ़ारसी के साथ कचहरी की भाषा बन गई । ¹⁸ सन् 1913 में गोरखपुर की नागरी प्रचारिणी सभा ने न्यायिक प्रपत्र हिन्दी में छपवाने में सफलता हासिल की । अगले ही

साल 'हिन्दी और हिन्दू धर्म प्रचार को समर्पित पत्रिका' ज्ञान शक्ति अस्तित्व में आई । इसका प्रकाशन सरकार के प्रति झुकाव रखने वाले एक संस्कृत विद्वान ने किया जिसमें वित्तीय सहायता पडरौना, तमकुही और मझरौली के राजाओं से ली गई और साथ-साथ कुछ आर्थिक सहयोग गोरखपुर के रौसा से प्राप्त हुआ । सन् 1915 में गौरीशंकर मिश्र, जो बाद में जाकर यूपी किसान सभा के मुख्य नेता बने, ने 'हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान की सेवा के उद्देश्य' से प्रभाकर निकाली । ¹⁹ प्रभाकर इसी साल बंद हो गई और ज्ञान शक्ति को भी सन् 1916-1917 के बीच एक साल की अवधि के लिए स्थगित कर दिया गया । साप्ताहिक पत्रिका संदेश और मासिक कवि ने गांधी के संदेशों को गोरखपुर में प्रचारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

गो-रक्षा जैसे आंदोलन के लिए अन्य प्रांतों की तरह गोरखपुर में भी एक गो-रक्षिणी सभा की स्थापना की गई । गो-रक्षिणी सभा द्वारा बड़ा हस्तक्षेप सन् 1893 में हुआ जब एक बैठक द्वारा 'षोडश नियम' लागू करने की बात हुई । जिसमें स्पष्ट संदेश था कि 'चमार व अन्य गायों को खरीदते हैं और फिर कसाइयों को बेच देते हैं । यह भी कि गो-हत्या के मुख्य कारण मुसलमान आदि ही हैं । गायों को किसी भी ऐसे व्यक्ति को नहीं बेचा जाएगा । और अगर किसी भी तरह की कोई गाय मरती है तो उसका मालिक उसकी खाल को सही व्यक्ति को बेचे और उससे मिलने वाले पैसों का इस्तेमाल गो-रक्षा के लिए ही करे ।' ²⁰

विशुद्ध धार्मिक रूप में, जैसा कि पटना, गया, शाहाबाद और गोरखपुर की अपनी यात्रा के बारे में फ्रांसिस बुकानन ने लिखा कि 'शाहाबाद और खास कर गोरखपुर जिले के सर्वाधिक ब्राह्मण गुरु धार्मिक दृष्टि से वैष्णव थे ।' बुकानन के अनुसार, उन्नीसवीं सदी में वैष्णवों के बढ़ते प्रभुत्व की पुष्टि नाडिया बंगाल के कॉलेज के प्रधानाचार्य जोगेंद्र नाथ भट्टाचार्य द्वारा की गई टिप्पणी से होती है । उन्होंने कहा, 'वैष्णव अपनी जगहों पर प्रभाव को बहुत तेज़ी से बढ़ाते जा रहे हैं और बहुत से तांत्रिक भी वैष्णव उन निम्न वर्ग की सूची में शामिल हुए जो ब्रिटिश शासन में अमीर हुए ।' ²¹

कल्याण जब स्थानान्तरित होकर गन्ना उत्पादक शहर गोरखपुर में स्थित गीता प्रेस पहुँचा, उस समय वहाँ का राजनैतिक और धार्मिक समीकरण यही था । 29 अप्रैल 1923 से अस्तित्व में आ चुकी और गोयन्दका की दिमागी उपज गीता प्रेस उनके मित्र घनश्यामदास जालान की ज़िद पर लगाई गई थी । ²² प्रेस के शुरू होने से पहले ही वितरण के उद्देश्य से गीता की प्रतियों की कलकत्ता स्थित गोबिंद भवन से छपाई शुरू हो गई थी । इसे गांवों और स्कूलों तक पहुँचाने के लिए सभापति मिश्र को नियुक्त किया गया । गीता के अध्याय को पढ़ने में सक्षम बच्चों को पुरस्कृत करने का चलन शुरू हुआ । व्यापार में जालान के साझेदार महावीरप्रसाद पोद्दार को प्रकाशन का थोड़ा-बहुत अनुभव था । वे इस काम से जुड़ गए और इसकी देख-रेख शुरू की । हनुमानप्रसाद के आगमन से गोयन्दका के आरंभिक सहयोगियों में से एक महावीरप्रसाद पोद्दार से धीरे-

धीरे गीता प्रेस से जुड़ी लगभग सभी ज़िम्मेदारियां वापस लेते हुए उन्हें हाशिए पर डाल दिया गया ।

कल्याण के गोरखपुर स्थानान्तरित होने के बाद गीता प्रेस ने सबसे पहला बदलाव संपादकीय समूह के भीतर मिशनरी भावना के समावेश के रूप में महसूस किया । उन्हें परिवार की तरह रहने के आदेश दिए गए । साथ ही सनातनियों की तरह ही जीवन जीने के लिए निर्देशित किया गया । पारिश्रमिक व अनुलाभ भी बहुत आकर्षक नहीं थे । गीता प्रेस में काम करने के लिए उत्सुक नन्दलाल जोशी को जयदयाल गोयन्दका ने स्पष्ट कहा कि उनकी तनख्वाह किसी भी सूरत में 40 से 50 रुपए से ज़्यादा नहीं हो सकती । उन्होंने जोशी को सलाह दी कि ‘ कल्याण या गीता प्रेस के कार्य से ऋणमुक्त जीवन की सम्भावना कठिन है । ऋणमुक्ति के लिए तो आपको किसी के साथ व्यापार आदि का प्रबंध करने की चेष्टा करनी चाहिए ।’ ²³

गीता प्रेस के साथ काम करते हुए आध्यात्मिक आनंद लेने के विचार में एक आकर्षण भी था । सन् 1968 में कल्याण के साथ जुड़ने के निवेदन पर भारी मात्रा में आवेदन प्राप्त हुए, जिसमें इंडियन एयरलाइन्स के स्टोर खरीद-आपूर्ति विभाग के अधिकारी वी के रॉय भी थे, जिन्होंने अपनी मुफ्त सेवाएँ इस शर्त पर देने की बात कही कि उनकी पत्नी और उन्हें एक सुसज्जित घर तथा चाय और दूध की मुफ्त आपूर्ति मिले । कॉर्पोरेटिव लैंड मोर्टगेज बैंक के येल्मंचिल्ली, आंध्र प्रदेश से सेवानिवृत्त नेमाणी कामेश्वर राव ने भी ‘सुंदर छोटे घर के साथ-साथ बैरागियों की भांति दिन में दो बार भोजन’ की मांग रखी । दोनों ही कल्याण के पुराने सदस्य थे और अपनी वृद्धावस्था में धर्म के कल्याण के लिए कुछ योगदान देना चाहते थे ।

अपेक्षाकृत कम उम्र के और बिहार के रहने वाले उपेन्द्रनाथ झा ने इसी तरह का कोई काम मांगा । उनकी योग्यताओं में उनके ब्राह्मण मूल से होने के साथ-साथ गीता प्रेस की कार्यप्रणाली से बखूबी वाकिफ़ होना भी शामिल था । दिल्ली से अंग्रेज़ी में स्नातकोत्तर बीस वर्षीय मदन गोपाल और रायगढ़, मध्य प्रदेश से इतिहास के व्याख्याता भगवंधर दीवान ने अपनी अच्छी भली नौकरी त्याग कर गीता प्रेस से जुड़ने की इच्छा जताई ।

जो लोग कल्याण से नौकरी छोड़ चुके थे उन्होंने भी उसके लिए लेखन जारी रख कर व पोद्दार से मित्रता कायम रख कर पत्रिका से जुड़ाव बनाए रखा । ²⁴ कल्याण और गीता प्रेस के संपादकीय सदस्य न केवल कम वेतन पर कार्यरत थे बल्कि उन्हें सनातन धर्म के आदर्श नियम-धर्मों को मानने वाला एक कठिन जीवन भी जीना पड़ रहा था । आरंभिक दिनों में संपादकीय कार्यालय प्रसिद्ध गोरखनाथ मंदिर के पश्चिम के विशाल उपवन के पास एक भवन में था । दिन का आरम्भ प्रातः छह बजे से संपादक मंडल के द्वारा किए जाने वाले कीर्तनों से होती थी और उसके बाद गीता प्रेस के दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्ति चिम्मनलाल गोस्वामी द्वारा धार्मिक ग्रंथों का पाठ किया जाता था । पोद्दार के लघु उपदेशों के बाद कामकाज शुरू कर दिया जाता था । कर्मचारियों से यह अपेक्षित

था कि वे काम करते समय भी गीता व रामायण के आदर्शों का पालन करें, भगवान नाम का मन-ही-मन जाप करते रहें और कम, किन्तु सत्य बोले ।

देश भर से आए हुए संपादकों के लिए विविधतापूर्ण भोजन वाली एक सामुदायिक रसोई की व्यवस्था की गई । इन संपादकों के पहले समूह में शांतनु बिहारी द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव', चिम्मनलाल गोस्वामी, दुलीचंद दुजारी, देवधर शर्मा, राजबली पांडे, एन रामचंद्रन ब्रह्मचारी, गोपाल, कृष्णदास दादा, मुनिलाल गुप्त (बाद में सनातन देव), हजारीलाल माहेश्वरी और चंद्रशेखर पांडे थे ।

गोपालदास का दायित्व लम्बे लेखों का संपादन और पुनर्लेखन था । नंददुलारे वाजपेयी ने संपादन और *कल्याण* संपादक के नाम आए पत्रों के उत्तर देने का काम किया । इसके अलावा गीता प्रेस से सर्वाधिक छपी रामायण का संपादन भी वाजपेयी द्वारा किया गया था । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर परीक्षा पास वाजपेयी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक सदस्यों में से एक श्यामसुंदर दास के प्रिय थे । वाजपेयी सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहते हुए सेवानिवृत्त हुए और उज्जैन (मध्य प्रदेश) के विक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति बनाए गए । ²⁵ वाजपेयी को प्रबुद्ध हिन्दी आलोचक रामचंद्र शुक्ल का सुयोग्य उत्तराधिकारी समझा जाता था । रामचंद्रन एक आध्यात्मिक भ्रमणशील अन्वेषक थे । उन्होंने ऋषिकेश में स्वामी शिवानन्द के साथ बहुत समय व्यतीत किया और रामकृष्ण मिशन के सदस्य हो गए । वे पोद्दार की संगति में समय बिताने के लिए गोरखपुर आ गए । रामचंद्रन की तेज टाइपिंग का गीता प्रेस ने बखूबी उपयोग किया जिसके बदले उन्हें बहुत कम वेतन दिया जाता था । ²⁶

बनारस स्थानान्तरण का प्रस्ताव

कल्याण के गोरखपुर में आने के लगभग एक दशक के भीतर ही सन् 1936 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पोद्दार के एक करीबी मित्र व *कल्याण* में नियमित सहयोग देने वाले जीवनशंकर याज्ञिक ने पूरी गीता प्रेस को बनारस में ले जाने का दबाव बनाना शुरू किया । इस स्थानान्तरण के लिए याज्ञिक इतने व्यग्र थे कि सन् 1937 में जब बाँकुड़ा में हुई गोबिंद भवन की बैठक की खबर उन्हें मिली तो उन्होंने पोद्दार को सत्रह वजहें गिनवाते हुए पत्र लिखा कि क्यों प्रेस का स्थानान्तरण होना चाहिए और यह भी कि गीता प्रेस को नई जगह पर बसाने के पक्ष में न्यासियों के बीच जनमत तैयार करने के लिए पोद्दार को क़दम बढ़ाने चाहिए । उन्होंने लिखा कि स्वयं पोद्दार का परिवार भी बनारस में जा बसने का इच्छुक है । आगे यह लिखा कि *कल्याण* और गीता प्रेस के लिए प्रतिबद्ध लोग नई जगह पर बसने में मदद करने के लिए हर संभव सहायता करेंगे । याज्ञिक ने इस तरह के कई अन्य ठोस कारण गिनवाए । उनका मत था कि गीता प्रेस और *कल्याण* का उद्यम और कीर्ति जैसे-जैसे फैलती जाएगी, बनारस में होना उसके

लिए स्थितियों को और भी अनुकूल करता जाएगा। 'इससे काशी का गौरव बढ़ेगा और काशी से गीता प्रेस एवं *कल्याण* का! यहाँ विद्वानों और महात्माओं को आमंत्रित नहीं करना पड़ेगा जैसे गोरखपुर में करना पड़ा।' गीता और रामायण पर शोध के लिए भी बनारस एक आदर्श स्थान है, ऐसा तर्क देते हुए उन्होंने आगे कहा कि अगर *कल्याण* के पाठकों से उनके विचार जाने जाएँ तो बहुलांश इसे बनारस में स्थानान्तरित करने के पक्ष में ही होंगे और यथासंभव आर्थिक सहायता भी करने को तैयार हो जाएंगे। ²⁷

पोद्दार ने याज्ञिक को बैठकों में न्यासियों के बीच हुई बातचीत और प्रतिक्रिया की जानकारी नहीं दी और न ही याज्ञिक द्वारा लिखे दो पत्रों के उत्तर दिए। इस व्यवहार से खिन्न होकर याज्ञिक ने लिखा कि पोद्दार को भी 'बड़े आधुनिक लोगों' वाली बीमारी लग गई है, जिनसे पत्र का उत्तर नहीं दिया जाता। याज्ञिक ने कहा कि उन्होंने पोद्दार से बाँकुड़ा से बनारस आने की उम्मीद की थी जबकि इसके बजाय खबर यह मिली कि गोरखपुर वाले प्रेस भवन को विस्तार दिया जा रहा है। उन्होंने आगे यह पूछा कि 'इस प्रक्रिया को अंतिम फैसले तक रोका क्यों नहीं जा सकता?' ²⁸

पोद्दार का याज्ञिक को लिखा गया जवाब उपलब्ध नहीं है, लेकिन याज्ञिक के अगले पत्र को देख कर अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि पोद्दार ने यह कहते हुए अपनी अनिच्छा ज़ाहिर की होगी कि 'भगवान की इच्छा' नहीं है (कि यह कार्य हो)। पोद्दार की इस बात ने याज्ञिक को और भी क्रोधित कर दिया। ²⁹ गीता प्रेस पर बढ़ते आर्थिक दबाव के अलावा पोद्दार की रुचि व उत्साह भी धीरे-धीरे क्षीण पड़ने लगा था, सन् 1930 तक आते-आते पोद्दार गीता प्रेस को छोड़ने का मन बना चुके थे।

गीता प्रेस याज्ञिक के जीवनकाल में तो बनारस स्थानान्तरित नहीं हुआ, लेकिन याज्ञिक का सपना आंशिक तौर पर तब पूरा हुआ जब छह दशक बाद गीता प्रेस ने सन् 1999-2000 में *कल्याण* के संपादकीय कार्यालय को बनारस स्थानान्तरित कर दिया।

आलोचना और विवाद

कल्याण का संपादक होने के नाते पोद्दार मुख्य लेखों का चयन और संपादन करते थे, जिसमें कभी-कभी उनकी मदद चिम्मनलाल गोस्वामी व एक अन्य सहयोगी राधेश्याम बंका किया करते थे। पोद्दार और गोस्वामी प्रूफरीडिंग का काम स्वयं ही करते थे। मूल पाठ से संदर्भों के मिलान का काम भी दोनों मिलकर करते थे और कई बार यह प्रक्रिया पूरी नहीं होने तक प्रकाशन के कार्य को रोक दिया जाता था। लेकिन, इस तरह की प्रक्रिया भी इस बात की गारंटी नहीं थी कि पत्रिका के आलेखों में त्रुटियाँ नहीं होंगी। *कल्याण* को यह सीख बेहद कड़वे अनुभव से गुज़रकर मिली, जब सन् 1935 में उसका *योग अंक* प्रकाशित हुआ। इसमें 'प्रसिद्ध योगियों और स्वामियों' के जीवन पर आधारित एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें 'रामानंद को रामानुज के अनुयायी के

तौर पर चित्रित किया, जिन्हें तीर्थ यात्रा के दौरान लापरवाह बर्ताव के लिए बहिष्कृत कर दिया गया था ।’ ³⁰

रामानंदी सम्प्रदाय के एक विद्वान अवध किशोर दास ने *कल्याण* की इस तथ्यगत गलती का संज्ञान लिया । उन्होंने लिखा कि ‘हमारे और रामानुजी सम्प्रदाय में कुछ भी समान नहीं है । हम प्रत्येक बिंदु पर उनसे असहमत हैं... *कल्याण* के लेखक और संपादक को यह पता होना चाहिए कि श्री रामानंदाचार्य जी कभी रामानुजी सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं थे...’ ³¹ *कल्याण* को अपनी भूल स्वीकारनी पड़ी ।

समय-समय पर प्रकाशित सामग्री के संबंध में किसी-न-किसी की ओर से आपत्ति दर्ज की जाती थी । हिन्दी विद्यापीठ के संस्थापक सदस्य, हिन्दी साहित्य सम्मलेन के कार्यकर्ता और स्वतंत्रता सेनानी पुरुषोत्तमदास टंडन के करीबी विश्वासपात्र वियोगी हरि ने भक्त रामशरण दास द्वारा बार-बार उनके लिखे लेख को सच्ची घटना पर आधारित बताने की शैली पर आपत्ति ज़ाहिर की । वियोगी हरि, जिन्होंने स्वयं सन् 1921 में संन्यास ले लिया था और अपना वास्तविक नाम हरिप्रसाद द्विवेदी भी त्याग दिया था (बाद में वे भूदान अभियान से जुड़ गए), ³² ने पोद्दार को लिखा, ‘यह बिल्कुल सत्य घटना है बार-बार ऐसा लिखने से क्या साबित होता है?’ ³³ आरंभिक दिनों में वियोगी हरि *कल्याण* के लिए नियमित रूप से लिखा करते थे । उन्होंने सन् 1927 से 1933 के बीच कुल तेरह लेख लिखे । पोद्दार ने वियोगी हरि के दृष्टिकोण में आए इस बदलाव पर अफ़सोस ज़ाहिर किया; ‘नहीं मालूम कहीं वे नास्तिक हो गए हैं या नहीं लेकिन वे बदले ज़रूर हैं ।’ ³⁴

सन् 1935 के इस *योग अंक* में कबीरपंथ के आध्यात्मिक नेता के रूप में धर्मदास पर भी एक लेख प्रकाशित किया गया था । संयुक्त प्रांत के कबीरपंथियों ने बताया था कि धर्मदास जबलपुर के समीप स्थित बंधों गाँव के निवासी थे । इनके नारायणदास और चूड़ामणिदास नाम से दो बेटे थे, जो कबीरपंथी होने के साथ-साथ गृहस्थ भी थे । संयुक्त प्रांत के कबीरपंथियों ने कहा कि वास्तव में इन दोनों भाइयों के एक शिष्य गोपालदास काशी में कबीर पीठ की गद्दी संभाल रहे थे और वही कबीरपंथ के आध्यात्मिक नेता थे । पोद्दार ने यह सूचना प्रकाशित कर माफ़ी मांगी कि उनकी बात से कबीरपंथियों की भावनाएं आहत हुई हों तो वे क्षमाप्रार्थी हैं । ³⁵

कल्याण साहित्यिक चोरी के आरोपों से भी नहीं बच सका । सन् 1940 के *साधना अंक* (ध्यान पर आधारित अंक) में रस-विधा विषय पर नारायण दामोदर शास्त्री द्वारा लिखे लेख पर आरोप लगा कि उन्होंने *महाकाल* के संपादक स्वर्गीय छोटालाल जीवनलाल की गुजराती पुस्तक *योगिनी कुमारी* भाग 1 के कई वाक्य व अनुच्छेद ज्यों-के-त्यों अनूदित करके छपवा दिए हैं । शिकायतकर्ता यह जानना चाहता था कि लेखक और *कल्याण* के संपादक अधिकारों की अवमानना करने वाली इस गलती को अविलम्ब कैसे सुधारेंगे?’ ³⁶ सन् 1960 में मंगलदेव शास्त्री आर्योपदेश द्वारा भगवान कृष्ण पर लिखे लेख को किसी जगदीश चतुर्वेदी ने चुनौती देते हुए शिकायत दर्ज

करवाई कि उनका लेख *वेद प्रकाश* पत्रिका की सामग्री से चुराया गया है। *कल्याण* ने इसके जवाब में कहा कि *वेद प्रकाश* के उस लेख को उन्होंने नहीं देखा। चतुर्वेदी से क्षमा मांगते हुए *कल्याण* ने लिखा 'कोई भी संपादक सर्वज्ञ नहीं होता जो यह जानता हो कि अमुक लेख वास्तविक है या उड़ाया हुआ। तथापि इस भूल के लिए हम मूल लेखक से क्षमा चाहते हैं। और श्री मंगल जी से निवेदन करते हैं कि यदि ऐसी बात हुई हो तो यह कदापि उचित नहीं है, वे भविष्य में ऐसा न करें और मूल लेखक महोदय से अपनी भूल के लिए क्षमा मांग लें।' ³⁷

सन् 1960 में *कल्याण* को अस्तित्व में आए 34 साल हो गए थे। अब यह पूरी तरह स्थापित हो चुका था और हिन्दी जगत में अत्यधिक लोकप्रिय हो गया था। इसके लिए लेखन सम्मान की बात थी। एक धूर्त व्यक्ति ने इसकी सफलता का ग़लत फ़ायदा भी उठाया। गीता प्रेस को दिल्ली, छिंदवाड़ा और अन्य जगहों से इस शिकायत के साथ पत्र मिले कि कोई बलराम शर्मा नाम का व्यक्ति जो स्वयं को ज्योतिषी और *कल्याण* का लेखक बताता है, लोगों को ठग रहा है। *कल्याण* को स्पष्टीकरण छापना पड़ा कि उनकी पत्रिका में लिखने वाले बलराम शर्मा इंदौर के नहीं रायबरेली के हैं, उसने आगे यह भी छापा कि पाठक ऐसे धूर्त लोगों से सावधान रहें। ³⁸

साहित्यिक चोरी और ग़लत बयानी के मामले पत्रिकाओं या प्रकाशन जगत के लिए असामान्य नहीं हैं, लेकिन सेक्स स्कैंडल का धब्बा लगना सर्वथा भिन्न था। सन् 1927 के अंत में जब *कल्याण* को अस्तित्व में आए महज़ एक ही वर्ष हुआ था, तब इसके कर्ता-धर्ता गोबिंद भवन ने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के एक बड़े सेक्स स्कैंडल का सामना किया जिसने पूरे देश में मारवाड़ी समुदाय को हिलाकर रख दिया।

हिन्दी पत्रिकाओं की तीव्र गति से विस्तृत होती दुनिया ने न केवल इस सेक्स स्कैंडल को उजागर किया बल्कि मारवाड़ियों के निजी दायरों में चल रही गतिविधियों पर भी सवाल उठाया। ये सवाल उठाए गए कि किस प्रकार मारवाड़ी समुदाय में घर के पुरुष कारोबार और मुनाफ़े की जुगत में लगे रहते हैं और घर की महिलाओं को नौकरों, परिचारकों और हीरालाल गोयनका (1920 के आरंभिक दशक में जिनके हाथों में गोयन्दका ने गोबिंद भवन की डोर सौंपी थी) जैसे गुरुओं के भरोसे छोड़ दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप वे दरिंदों के हथ्थे चढ़कर यौन शोषण की शिकार बनती हैं।

साप्ताहिक *हिन्दू पंच* ने इस मुद्दे पर लगातार लिखना जारी रखा। कई सप्ताह तक वह इस मामले पर मारवाड़ियों द्वारा चलाए जा रहे अखबारों व पत्रिकाओं में छ़ाई चुप्पी पर सवाल उठाता रहा। इसके अनुसार यह मामले को दबा कर गोयनका को बच निकलने का मौका देने की मारवाड़ियों की कोशिश थी। पोद्दार इस मामले से स्वयं को अलग करने में सफल रहे, लेकिन गोयन्दका गोबिंद भवन और अपने चुने हुए व्यक्ति हीरालाल गोयनका के साथ अपने जुड़ाव को नकार नहीं सके, जिन्होंने *कल्याण* के लिए पहले दो सालों में बुलंद स्वर में नैतिकताओं से भरपूर लेखन किया था। *हिन्दू पंच* ने गोयन्दका और गोयनका को 'भाई' संबोधित करते हुए लिखा कि 'इन गोयनका

बंधुओं का भी विचित्र इतिहास है जयदयाल की बांकुड़े में कपड़ों की दुकान है । पर कुछ समय के उपरांत जयदयाल एकाएक गीता की व्याख्या करने लगे । फिर क्या था, बिजली की तरह यह भावना सर्वत्र फैल गई कि जयदयाल में ईश्वर के अंश ने प्रवेश कर लिया है ।’ ³⁹ इस घटना ने गोबिंद भवन को स्थापित करने में मदद करने वाले कलकत्ता के मारवाड़ियों के बीच उनकी छवि का आधार हिला दिया । *हिन्दू पंच* ने यह भी कहा कि गोयन्दका के संरक्षण के समय ही गोबिंद भवन के दुराचार का अड्डा बनने की अफ़वाहें उड़नी शुरू हो गई थीं । दैनिक *स्वतंत्र* ने यह दर्शाते हुए कुछ कार्टून भी बनाए, लेकिन उनका कुछ असर न हुआ । जब हीरालाल ने गोबिंद भवन की कमान अपने हाथ ली और स्वयं को ईश्वर का अवतार घोषित किया तो गोबिंद भवन में मारवाड़ी महिलाओं की आवाजाही बढ़ने लगी । महिलाएँ हीरालाल के प्रवचन सुनने आने लगीं और उन पर भगवान के लिए संजोकर रखा गया स्नेह न्योछावर करने लगीं । इसमें हीरालाल की जूठन खाना और पैर धोकर उस पानी को पीना तक शामिल था ।

प्रसिद्ध हिन्दी पत्रिका *चांद* ने नवंबर 1929 में मारवाड़ियों पर विशेषांक निकाला जिसमें बराबर मात्रा में उनके उपकारी स्वभाव और निजी जीवन की चर्चा की गई थी । मारवाड़ी पुरुषों के पुरुषत्व पर सवाल खड़े करते हुए *चांद* ने मारवाड़ियों के बेहद अनैतिक संसार का ज़िक्र किया जिसमें महिलाओं की यौन इच्छाओं की पूर्ति करीबी रिश्तेदार, घरेलू नौकर या बाहरी धर्म गुरुओं से होती थी ।

चांद के अनुसार हीरालाल (अब भक्तराज) गीता के विशेषज्ञ बन गए थे और उनके प्रवचन दिन भर चला करते थे । उन्होंने मारवाड़ी महिलाओं के बांझपन के समाधान के लिए पीरों-फ़कीरों के पास जाने के विरोध में अभियान चलाकर मारवाड़ी पुरुषों का दिल जीत लिया था । जैसे-जैसे हीरालाल ने लोकप्रियता हासिल की, वैसे-वैसे उन्होंने अपने प्रवचनों में रासलीला को जोड़ा जिसमें वे स्वयं कृष्ण की भूमिका में होते और महिला श्रद्धालु गोपियाँ बनती थीं । इनमें कुछ ऐसी श्रद्धालु स्त्रियाँ भी थीं जो हीरालाल के दैवीय गुणों में भरोसा करते हुए अपने गले में उनकी तस्वीर वाली माला पहनती थीं । ⁴⁰

तारीख का ज़िक्र किए बिना *हिन्दू पंच* ने लिखा कि हीरालाल के शोषण की शिकार महिलाओं का मामला पहली बार ऋषिकेश में प्रकाश में आया जहाँ गोयन्दका एक धार्मिक प्रवचन के सिलसिले में गए हुए थे । मोक्ष प्राप्ति के तरीकों पर चल रही चर्चा में उपस्थित एक विधवा ने गोयन्दका से पूछा कि भक्तराज के कारण ठहरे गर्भ का अब क्या उपाय हो सकता है? विधवा के इस प्रकटीकरण ने पूरे ऋषिकेश में तूफ़ान ला दिया । अब इस तरह के और भी कई मामले प्रकाश में आने लगे । समाचार पत्र इस विषय पर खबर करने लगे और उनमें पूरक पृष्ठ जुड़ने लगे । मामले को हाथ से निकलता हुआ देख गोयन्दका बैठक के लिए कलकत्ता पहुँचे । ⁴¹

अपने वक्तव्य में गोयन्दका ने स्वीकार किया कि गोबिंद भवन में चल रही कुछ गड़बड़ियों का पता चला था, लेकिन उन्होंने हीरालाल को सत्यनिष्ठ इंसान मानकर इन

गड़बड़ियों की अनदेखी की। गोयन्दका ने कहा कि महिलाओं द्वारा हीरालाल की तस्वीर की पूजा करने वाली बात उन्हें पता चली थी। उन्होंने कहा कि 'मैंने समय-समय पर बहुत ज़ोर के शब्दों में इस बात का विरोध किया था परन्तु मुझे मालूम हुआ है कि स्त्रियों की चाल बंद नहीं हुई।' ⁴² उन्होंने आगे कहा कि हीरालाल के साथ असहयोग ही उनके पापों की उपयुक्त सज़ा होगी। 'हीरालाल को तीर्थ यात्रा पर चले जाना चाहिए, अपने शरीर को कष्ट देना चाहिए और वह लोगों को अपना चेहरा कभी न दिखाए।' गोयन्दका ने अपने उन अनुयायियों को सचेत किया जो गोयन्दका को भगवान का अवतार मानते थे। 'मैंने कई बार कहा कि मैं न तो भगवान हूँ और न ही कोई उपकारी मनुष्य। भगवान और उस तरह के मनुष्य दोनों ही निष्कलंक होते हैं। मैं नहीं हूँ।' यह भी कहा गया कि उन्होंने हीरालाल के शोषण की शिकार महिलाओं के पतियों से यह अनुरोध किया था कि वे अपनी पत्नियों को क्षमा कर दें क्योंकि उन्होंने अनजाने में स्वयं को हीरालाल के समक्ष समर्पित किया था और वे सच में हीरालाल को ईश्वर का अवतार समझ बैठी थीं। ⁴³

कलकत्ता से गायब हुए हीरालाल के खिलाफ़ कोई पुलिस केस दर्ज नहीं हुआ। हिन्दू पंच ने इसे न केवल मारवाड़ियों बल्कि सभी हिन्दुओं के लिए शर्मनाक बताया। हिन्दू पंच ने छापा कि 'क्यों कोई भी मारवाड़ी का बच्चा हीरालाल गोयन्दका की गिरफ़्तारी की मांग नहीं कर रहा? कितना शर्मनाक! क्यों सनातनी और सुधारवादी अपनी शक्ति और समझ का इस्तेमाल यहाँ नहीं कर रहे हैं।' ⁴⁴ साप्ताहिक ने गोबिंद भवन को हिन्दू महासभा को सौंपे जाने की मांग की जिससे 'उसके पापों का थोड़ा प्रायश्चित हो सके।'

हिन्दू पंच ने अखबारों और समुदाय के बड़े नामों जैसे जमनालाल बजाज और जी डी बिड़ला को आड़े हाथों लिया जो मामले को दबाने का प्रयास कर रहे थे। मारवाड़ियों और उनके परोपकारी उपक्रमों के विरोध में चल रही मीडिया अभियान से असहज होते हुए जी डी बिड़ला ने गांधी के सहयोगी महादेव देसाई को पहले ही पत्र लिख कर बता दिया था कि 'देशी भाषा के समाचार पत्र और पत्रिकाएँ भद्दा साहित्य प्रकाशित कर रही हैं... युवा लड़के-लड़कियों को इन्हें पढ़ने की इजाज़त देना भी दुश्वार हो गया है।' ⁴⁵ बिड़ला ने आरोप लगाया कि बहुत-सी पत्रिकाएँ इस घटना का इस्तेमाल समुदाय के बड़े नेताओं को 'ब्लैकमेल' करने के उद्देश्य से कर रही हैं। उन्होंने पत्र के साथ 17 मई 1928 को समाप्त हुए सप्ताह की हिन्दू पंच की एक प्रति भी भिजवाई। इसमें कई पृष्ठ केवल हीरालाल कांड को समर्पित थे, साथ ही जी डी बिड़ला के स्कूल में पढ़ा रही एक शिक्षिका को भी अन्य लोगों के साथ सेक्स स्कैंडल में लिप्त बताया गया था। जी डी बिड़ला ने आगे लिखा कि 'हम में से ही कुछ लोगों द्वारा चलाए जा रहे लड़कियों के स्कूल को यह समाचार पत्र बदनाम कर रहा है। इसमें छपा हर शब्द असत्य है। संपादक का उद्देश्य संस्थान को नुकसान पहुँचाना है।' बिड़ला ने कहा

कि 'क्या यह उचित नहीं होगा कि *नवजीवन* में गांधी जी इस विषय पर एक-दो शब्द कहें ।'

गांधी ने तत्काल *नवजीवन* में लिखा । 24 मई 1928 के *हिन्दू पंच* ने उस लेख को पुनः प्रकाशित किया । *कल्याण* ने इसे पोद्दार के फुटनोट के साथ छापा जिसमें उन्होंने लेख के लिए महात्मा का आभार व्यक्त किया, साथ में यह भी लिखा था कि गीता प्रेस व *कल्याण* भगवान की निःस्वार्थ भक्ति के लिए हमेशा तत्पर रहा है और उसने अपने श्रद्धालुओं को भगवान के नाम के दुरुपयोग के परिणामों के प्रति सचेत भी किया था । [46](#) लेख में हीरालाल की निंदा एक 'ऐसे ही व्यक्ति' के तौर पर की गई और उन्हें भगवान की शरण में जाकर अपने पापों का प्रायश्चित्त करने की सलाह दी गई । गांधी के लेख का निचोड़ यह था कि 'यह अफ़सोसजनक घटना है लेकिन मुझे हैरानी नहीं हुई, क्योंकि ऐसे लोग हर तरफ़ थे जो धर्म का इस्तेमाल भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए कर रहे थे ।' 'जिन्हें लगता है कि राम का नाम उनकी कमजोरियों और इच्छाओं से मुक्त करेगा वे हमेशा कामयाब होते हैं, लेकिन जो राम के नाम का इस्तेमाल अपने शारीरिक सुख के लिए करते हैं उन पर भगवान का प्रकोप होता है ।' उन्होंने स्त्रियों को किसी भी जीवित व्यक्ति की पूजा-उपासना न करने की सलाह देते हुए कहा कि 'राम नाम से मेरे विषय विकार दूर हो जाएँगे यह मानने वालों को राम नाम फलता है, तारता है, राम के नाम पर मैं अपनी काम (वासना) को चरित्रार्थ करूँ, यह सोच कर जो व्यक्ति राम नाम का उच्चारण करता है वह तरता नहीं, वह डूबता है । कोई भी मनुष्य जीवित अवस्था में अच्छा नहीं कहा जा सकता । आज जो अच्छे हैं वही कल बुरे निकल गए हैं । इसी से पूजा केवल भगवान की होती है, मनुष्य की पूजा करनी ही हो तो वह उसकी मृत्यु के बाद होती है । क्योंकि बाद को तो हम उसके गुण की ही पूजा करते हैं, उसके आकार की नहीं ।' [47](#)

हिन्दू पंच पर गांधी के इन शब्दों का कोई असर नहीं हुआ । वह (*हिन्दू पंच*) हिन्दू धर्म की भीतरी सड़ांध और बाहरी मुस्लिम खतरे दोनों से ही सनातन हिन्दू धर्म के हितों की रक्षा करने की क़वायद में जुटा हुआ था । पत्रिका ने कलकत्ता के अखबारों द्वारा इस मुद्दे को न उठाए जाने की कड़ी निंदा की और हीरालाल कांड को दबा देने में लगे पूरे मारवाड़ी नेतृत्व की आलोचना की । *हिन्दू पंच* ने ध्यान दिलाया कि कैसे *द स्टेट्समैन* ने हीरालाल कांड पर कलम चलाई लेकिन गोबिंद भवन पर कोई टिप्पणी नहीं की, और कैसे *विश्वमित्र* ने इस घटना पर लेख स्वीकार करना ही बंद कर दिया । इसने मारवाड़ियों द्वारा 'मासिक पत्रिका चॉंद और इसके विशेष प्रकाशन *अबलाओं का इंसॉफ़* के खिलाफ़ ग़लत प्रचार' करने पर दुःख जताया । [48](#) सुधारवादियों और मीडिया जगत पर तीखा प्रहार करते हुए सत्यदेव विद्यालंकार ने तर्क दिया कि हीरालाल कांड का इस्तेमाल सुधारों को आरंभ करने के लिए होना चाहिए था । उन्होंने कहा, मीडिया का काम है कि अमेरिका में दासप्रथा के विरुद्ध सुधारों और रूस की क्रांति से पहले तोल्स्तोय की भूमिका जैसे उदाहरण लोगों के समक्ष रखें ताकि सत्य को हानि न पहुँचे

। उन्होंने संपादकों के दायित्व पर कहा कि 'संपादक ऐसे पाप के प्रति अपने पाठकों के अंतःकरणों में घृणा, द्वेष व तिरस्कार की आग की तीव्र ज्वालाएँ पैदा करें।'

इस घटना का सामना करते हुए, गीता प्रेस और *कल्याण* ने कुछ ऐसा किया, जिसने सभी को चौंका दिया। 21 जून 1928 में उसने *हिन्दू पंच* में एक संपूर्ण पृष्ठ का विज्ञापन छपवा दिया जिसमें पाठकों से *कल्याण* के तीसरे साल के वार्षिकांक *भक्त अंक* की प्रतियाँ बुक करवाने को कहा गया था। इस विज्ञापन में महावीरप्रसाद द्विवेदी और गौरीशंकर हरिचंद ओझा की ओर से *कल्याण* द्वारा हिन्दी और हिन्दू धर्म के लिए किए जा रहे योगदान के लिए सराहना भी प्रकाशित थी। यह विज्ञापन लगातार दो सप्ताह छपा, लेकिन बदले में गीता प्रेस को कोई राहत नहीं मिली क्योंकि इस विज्ञापन के बाद भी *हिन्दू पंच* ने गोबिंद भवन पर सिलसिलेवार जा रहे अपने लेख '*व्यभिचार मंदिर*' को चालू रखा।

कलकत्ता के इस हाई प्रोफाइल सेक्स स्कैंडल का प्रभाव गोरखपुर स्थित गीता प्रेस की कार्यप्रणाली और *कल्याण* पर भी पड़ रहा था। बतौर प्रबंध अधिकारी गीता प्रेस की तमाम गतिविधियों से जुड़े महावीरप्रसाद पोद्दार ने सेक्स स्कैंडल के उजागर होने पर अपना पद छोड़ दिया।⁴⁹ गांधीवादी और गोरखपुर की महत्वपूर्ण शख्सियत रहे महावीरप्रसाद पोद्दार ने हनुमानप्रसाद पोद्दार का साथ कभी नहीं दिया, हालाँकि ऐसा लगता है कि बाद में जाकर उन्होंने गीता प्रेस के साथ अपने रिश्ते को पुनर्जीवित कर लिया था। सन् 1937 में संयुक्त प्रांत की सरकार ने बाबा राघवदास के साथ उन्हें एक साल के लिए गोरखपुर जेल के गैर-आधिकारिक आगंतुक के तौर पर नियुक्त कर दिया।⁵⁰ रिकॉर्ड के अनुसार, महावीरप्रसाद पोद्दार का पता गीता प्रेस का ही था।

इस कांड ने हनुमानप्रसाद पोद्दार को भी क्षति पहुँचाई थी। उन्होंने नैतिक अधमता के आरोपों का सामना कर चुके अपने करीबी गंभीरचंद दुजारी से स्वीकार किया कि बहुत से लोगों ने निराश होकर गीता प्रेस से दूरी बना ली। उन्होंने दुजारी को भी सावधान रहने की सलाह दी कि 'यह बुरा दौर चल रहा है और कुछ भी हो सकता है'⁵¹ पोद्दार ने दुजारी को गोरखपुर अकेले आने की सलाह दी और कहा कि वे अपनी पत्नी को अपनी माता के साथ छोड़ दें: 'यहाँ बगीचे (गीता वाटिका) में किसी भी बाहर की स्त्री को रखने का विचार नहीं है। दूध के जले को छाछ भी फूँक कर पीनी चाहिए।' ⁵²

इस तरह गीता प्रेस ने शर्मनाक ढंग से इस पूरे विवाद का सामना किया। उसने जनता के हो-हल्ले, मीडिया के अभियान और नैतिक सवालों पर चुप्पी साधे रखी और उन्हें पूरी तरह से खारिज कर दिया। चूंकि यह घटना कलकत्ता में हुई थी, अतः गीता प्रेस को इससे दूरी बनाए रखने का अवसर मिल गया, हालाँकि गोयन्दका अपने ऊपर लगे इस कलंक को कभी धो नहीं सके।

विडम्बना यह थी कि हीरालाल सेक्स स्कैंडल की खबर आने से कुछ महीनों पहले ही *कल्याण* ने *हिन्दू पंच* में अपनी बहन देवकी की पहली आठ संतानों और स्वयं

भगवान कृष्ण की हत्या की कोशिश करने वाले कृष्ण के मामा कंस की सराहना में प्रकाशित लेख के लिए *हिन्दू पंच* की आलोचना की थी। इसकी संपादकीय टिप्पणी में पोद्दार ने लिखा कि ‘बच्चे-बच्चे की जबान पर विराजमान’ हिन्दू भगवान कृष्ण के प्रति इस तरह का निन्दात्मक लेख पढ़ना हृदय को ठेस पहुँचाने वाला है। पोद्दार ने आगे लिखा कि ‘हिन्दू जाति का दुर्भाग्य है कि उसमें इस तरह के लेखक उत्पन्न होने लगे हैं।’ ⁵³ उन्होंने यूरोपियन महिला द्वारा लिखी और एक भारतीय द्वारा अनूदित अपेक्षाकृत कम प्रसिद्ध पुस्तक *हिन्दुस्तान ना देवो* का भी हवाला दिया जिसमें ‘भगवान कृष्ण पर श्रृंखलाबद्ध हमले किए थे।’ पोद्दार ने पुस्तक समीक्षा जैसी नई विधा और साहित्यिक समालोचना द्वारा ऐसी पुस्तकों को श्रेय देने के प्रति खेद व्यक्त किया। हालाँकि उन्होंने *हिन्दू पंच* के संपादक व मित्र रामलाल वर्मा को यह कहते हुए संदेह का लाभ दिया कि उनसे भूलवश ऐसा हुआ होगा। पोद्दार ने कहा कि वर्मा पहले ही इस लेख को मौत से भी बदतर कहते हुए अफ़सोस ज़ाहिर कर चुके थे। इसके साथ ही उन्होंने अपने सभी सदस्यों को दो पृष्ठ का निवेदन यह कहते हुए भेजा था कि वे इससे पहले प्रकाशित लेख को जला दें। पोद्दार ने लिखा कि ‘वर्मा ने बिल्कुल सही काम किया’ और साथ में यह भी सुझाया कि संपादक भगवान का नाम लेकर अपने इस कृत्य की भरपाई करे।

गीता को लोकप्रिय बनाना

हीरालाल कांड की वजह से हुए हंगामे के चरम पर भी गीता प्रेस ने ‘सनातन धर्म रक्षा’ के अपने अभियान को आंखों से ओझल नहीं होने दिया। *कल्याण* इस अभियान का मुख्य संवाहक था, लेकिन केवल संवाहक होना ही पर्याप्त नहीं था बल्कि पाठकों को अपने अभियान के साथ सक्रिय रूप से जोड़ने की भी आवश्यकता थी। इस बात को ध्यान में रखते हुए दो महत्वपूर्ण क़दम उठाए गए: सन् 1929 में ग्रंथ को पूरे भारत में प्रचारित करने के लिए गीता परीक्षा समितियाँ गठित की गईं और उसके बाद सन् 1934 में ग्रंथ का और अधिक प्रचार करने के लिए गीता सोसाइटी गठित की गई।

किसी भी भारतीय प्रकाशन समूह ने अब तक धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक कार्यकर्ता और शिक्षण का लबादा नहीं ओढ़ा था। गोयन्दका और पोद्दार दोनों ने ही गीता को ऐसा तटस्थ और सार्थक ग्रंथ कहा जिसकी दुनिया में कोई मिसाल नहीं थी। जैसा कि मोनिका फ़्रेयर कहती हैं कि वे चाहते थे कि गीता ‘व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचे जो न केवल अपनी मातृभाषा में इसका अनुवाद पढ़ सके बल्कि इस अनुवाद के साथ-साथ दी गई गीता की व्याख्या पर भी भरोसा कर सकें।’ ⁵⁴ गोयन्दका द्वारा अनूदित गीता ने इसे ‘हिन्दीभाषी जनता के बीच केंद्रीय धार्मिक ग्रंथ’ की तरह स्थापित कर दिया। फ़्रेयर ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि वे दोनों ही इस ग्रंथ के ‘रूपकीय पाठ’ के पक्षधर नहीं थे। उनके लिए तो ग्रंथ ‘महाभारत के युद्ध से पहले भगवान कृष्ण और महाकाव्य के नायक अर्जुन के बीच के संवाद का विश्वसनीय पुनरुत्पादन है’, यह कोई ‘दृष्टान्त नहीं है बल्कि धर्म सिद्धांत है।’ वे आगे बताती हैं कि गीता के जिन

अनुच्छेदों को अनुवाद के बाद भी व्याख्या की आवश्यकता थी, पोद्दार और गोयन्दका ने उन अनुच्छेदों के लिए 'धार्मिक और सामाजिक प्रश्नों' के पर्चे निकाले जिनमें रोजमर्रा पढ़ने के लिए 'इन शास्त्रों का दिशा-निर्देशों के रूप में अनुवाद किया गया था ।'

गीता परीक्षा समितियों की संकल्पना के प्रवक्ता पोद्दार ने ज़ोर देकर कहा कि गीता पाठ के माध्यम से ही व्यक्ति सांसारिकता में उलझे रहने के बावजूद मोक्ष प्राप्ति कर सकता है । ⁵⁵ उनका मानना था कि एकमात्र गीता ही औपनिवेशिक काल में जकड़े भारत को सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक पतन से उबार सकती थी । उन्होंने देश में व्याप्त जड़ता का कारण गीता के दिखाए मार्ग से भटकाव को माना । पोद्दार के अनुसार गीता के बारे में किसी कि क्या राय है? यह भगवान का मानवीकरण है । इस तरह इसे घर-घर में प्रचारित किया जाना चाहिए और स्कूलों में पढ़ाया जाना चाहिए । केवल गीता आश्रित होकर भी व्यक्ति ज़िम्मेदार होना सीख सकता है ।

गीता परीक्षा समिति का विचार 1 जुलाई 1927 को बरहज में अस्तित्व में आया । उत्तर प्रदेश के देवरिया जिला में सरयू नदी के किनारे स्थित बरहज देवराहा बाबा का जन्मस्थान है, जिन्हें उनके भक्त हनुमान का अवतार मानते हैं । ⁵⁶ राजनेता व साधु बाबा राघवदास ने भी बरहज में अपना एक आश्रम बनाया । देवराहा बाबा और राघवदास दोनों ही बड़ी संख्या में *कल्याण* के लिए लिखने तथा गीता प्रेस को अपना समर्थन देने वाले धार्मिक शख्सियतों में शामिल थे । महाराष्ट्र के ब्राह्मण बाबा राघवदास हैजा में अपने पूरे परिवार को खो देने के बाद आध्यात्मिक खोज में देवरिया पहुँचे थे और पूर्वी जिलों के गांधी की तरह विख्यात यही बाबा राघवदास गीता परीक्षा समिति के संयोजक थे । ⁵⁷ (स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस ने उन्हें विधानसभा चुनाव में फ़ैजाबाद विधानसभा क्षेत्र से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के आचार्य नरेंद्र देव के विरुद्ध खड़ा किया था) ।

बरहज बैठक में गीता परीक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम तैयार कर पूरे देश में भेजे गए । इस बैठक में यह भी तय हुआ कि 5 नवंबर को परीक्षाओं का आयोजन किया जाये और परिणाम की घोषणा एक महीने बाद की जाएगी । समय के अभाव के बावजूद राजस्थान के चुरू और रतनगढ़, बड़ा राजपुर और आरा (बिहार); बरहज, घूसी, बसंतपुर, महुआदबार, पकड़दिहा, कुबेरनाथ, पडरौना, तमकूही, बनारस और गाजीपुर में परीक्षा केंद्र बनाए गए । हिन्दी पट्टी के बाहर पूना के गीता धर्म मंडल ने पाठ्यक्रम और परीक्षा तंत्र को मंजूरी दी । यहाँ तक कि मंडल ने पूना में दो परीक्षा केंद्रों की व्यवस्था की और पाठ्यक्रम को मराठी में अनूदित भी किया । केवल 17 परीक्षार्थियों ने ही मराठी की परीक्षा दी लेकिन गीता धर्म मंडल के अध्यक्ष जी वी केलकर ने वायदा किया कि अगले साल अधिक परीक्षार्थी इस परीक्षा में भाग लेंगे ।

हिन्दी क्षेत्र में 22 छात्रों ने मध्यमा परीक्षा में भाग लिया और 170 ने प्रथमा परीक्षा में भाग लिया । अपने मज़बूत संपर्क तंत्र द्वारा पोद्दार ने प्रतिष्ठित परीक्षकों के समूह

तैयार किए जिसमें वे स्वयं भी थे। इसके अलावा गोयन्दका, *कर्मयोग* (खंडवा) के संपादक माखनलाल चतुर्वेदी, *आज* (काशी) के संपादक बाबूराव विष्णु पराड़कर, *कृष्ण संदेश* (कलकत्ता) के संपादक लक्ष्मण नारायण गर्दे, सन् 1938 में प्रकाशित इनसाइक्लोपीडिया के प्रथम खंड *हिन्दुत्व* के लेखक रामदास गौड़ तथा बनारस के गौरीशंकर मिश्र और गोरखपुर के स्वामी सच्चिदानंद महाराज जैसे नाम भी शामिल थे। 58 22 में से सत् 17 परीक्षार्थी मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और 170 में से 83 ने प्रथमा परीक्षा पास की। मध्यमा और प्रथमा में अक्वल आने वाले चुरू के शिवप्रसाद और गाजीपुर के अम्बिका को रजत पदक, और क्रमशः 24 और 16 रुपए देकर सम्मानित किया गया। जबकि अन्य सफल छात्रों को पुरस्कार स्वरूप छोटी रकम (2 से 5 रुपए) दी गई। 59

‘धार्मिक शिक्षण’ 60 की अपनी भूमिका को गंभीरता से लेते हुए गीता प्रेस ने अगले कुछ महीनों में गीता परीक्षा के लिए कुछ औपचारिक नियम तय किए। तय हुआ कि अब दो के स्थान पर तीन परीक्षाएं होंगी। नए उम्मीदवारों के लिए प्रथमा, बीच के लिए मध्यमा और सर्वोच्च स्तर के लिए उत्तमा होगी। परीक्षा सितंबर में आयोजित की जानी थी और तीन माह बाद परिणाम *कल्याण* में प्रकाशित किया जाता। परीक्षा केंद्र वहीं स्थापित किए जाएंगे जहाँ एक छोटा डाक घर हो तथा कम-से-कम 16 छात्र परीक्षा देने वाले हों। महिला उम्मीदवारों के लिए परीक्षा निःशुल्क थी वहीं पुरुष उम्मीदवारों को नाममात्र का शुल्क देना था। उत्तमा और मध्यमा परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने के लिए उम्मीदवार को 65 प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करने थे, द्वितीय श्रेणी के लिए 50 प्रतिशत या उससे अधिक और तृतीय श्रेणी के लिए कम से कम 40 प्रतिशत अंक लाने आवश्यक थे। इसी तरह प्रथमा परीक्षा में प्रथम श्रेणी के लिए 60 प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी के लिए 45 प्रतिशत और तृतीय श्रेणी के लिए 34 प्रतिशत अंक लाने आवश्यक थे। असंतुष्ट होने पर परीक्षार्थी परिणाम की घोषणा के एक महीने के अन्दर-अन्दर पुनर्मूल्यांकन की अर्जी दे सकता था। छह महीने के लिए उत्तर पुस्तिकाएँ गीता प्रेस कार्यालय में ही रखी जाती थीं। 61 परीक्षा समिति ने परीक्षार्थी द्वारा प्रथमा परीक्षा में असफल होने के बाद भी मध्यमा परीक्षा दे सकने के अधिकार को सुरक्षित रखा था।

गीता परीक्षाओं से जुड़ी सूचना को *कल्याण* में प्रकाशित किया गया। एक जगह पहले साल की परीक्षा परिणामों में सुधार किया गया और यह तक कहा गया कि निरस्त परीक्षा के बदले उम्मीदवारों को एक प्रमाण पत्र दिया जाएगा। सन् 1939 में *कल्याण* ने दावा किया कि गांधी इस गीता परीक्षा के समर्थन में हैं, ‘श्री गीता परीक्षा के सम्बन्ध में श्री गीता के प्रख्यात प्रेमी महात्मा गांधी जी से सम्मति ली गई थी। उस समय जिस सज्जन ने महात्मा जी से पूछा था उन्होंने इस प्रकार लिखा था बापू जी का दृढ़ मत है कि पाठ्यक्रम में गीता के कुछ अध्यायों को अनिवार्य बनाना अत्यंत आवश्यक है।

गीता परीक्षा समिति के लिए यह आवश्यक है कि वह संशोधित नियमावली में गीता को कंठस्थ करना शामिल करे ।’ [62](#)

गीता परीक्षाओं ने गीता के सिद्धांतों में सर्वथा प्रवीण लोगों का महत्वपूर्ण जनसमूह तैयार किया, लेकिन गीता प्रेस इतने भर से संतुष्ट नहीं था । इसलिए गीता प्रेस ने सन् 1934 में ‘गीता साहित्य को देश-विदेश में प्रचारित करने और भारत व अन्य देशों के स्कूल तथा कॉलेजों में लोकप्रिय करने के लिए’ गीता सोसाइटी शुरू की । ‘इसका लक्ष्य था कि अलग-अलग आस्था वाले लोग अपने धर्म को मानने के सामानांतर भी अपना जीवन गीता के नियमों के आधार पर जियें ।’ [63](#)

पोद्दार की जान-पहचान का बड़ा दायरा फिर काम आया जब कई बड़े नाम इस काम के साथ भी जुड़ते नज़र आए । कलकत्ता उच्च न्यायालय के जज सर मन्मथनाथ मुखर्जी गीता सोसाइटी के अध्यक्ष थे । वे हिन्दू महासभा के करीबी माने जाते थे और बी एस मुंजे व श्यामाप्रसाद मुखर्जी के बाद वे तीसरे व्यक्ति थे जिन्हें सन् 1940 में वीर सावरकर ने वायसराय वॉर काउंसिल की सदस्यता के लिए प्रस्तावित किया था । [64](#) इसके पहले मुखर्जी आनंद बाज़ार पत्रिका के न्यायिक मामले से सुर्खियों में आ चुके थे । यह अखबार विख्यात इन्डियन प्रेस (इमरजेंसी पावर्स) एक्ट की जांच के दायरे में आ गया था जिसके अंतर्गत सरकार के खिलाफ़ कुछ भी लिखने पर देसी भाषाओं के समाचार पत्रों की सुरक्षा राशि ज़ब्त किए जाने का प्रावधान था । मुखर्जी और एक अन्य भारतीय न्यायाधीश शरत कुमार घोष ने ज़बती के आदेश को रद्द कर दिया । [65](#)

गीता परीक्षा के संचालक बाबा राघवदास को गीता सोसाइटी का सचिव बनाया गया । सामाजिक, अकादमिक और व्यावसायिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सोसाइटी के सदस्यों को चुना गया । सदस्यों में गैर-हिन्दू भी शामिल थे । उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर श्यामाप्रसाद मुखर्जी, आंध्र विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर एस राधाकृष्णन, उद्योगपति से दक्षिणपंथी राजनेता बने जुगलकिशोर बिड़ला, इतिहासकार राधाकुमुद मुखर्जी, इम्पीरियल बैंक ऑफ़ इंडिया (1933) के पहले भारतीय अध्यक्ष सर बद्रीदास गोयनका, मारवाड़ी स्टोर्स प्राइवेट लिमिटेड की पूंजी हिस्सेदारी को कम किए जाने संबंधी तीखी क़ानूनी लड़ाई में शामिल गौरीशंकर गोयनका, [66](#) बॉम्बे उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश रहे कृष्णलाल एम झवेरी और अंग्रेज़ी में लिखी पुस्तक द प्रेजेंट स्टेट ऑफ़ गुजराती लिटरेचर के लेखक [67](#), इस सभा से जुड़े अन्य बड़े नाम थे । तारापोरवाला ने पोद्दार को लिख कर और छह नाम सुझाए जिन्हें गीता सोसाइटी से जोड़ा जा सकता था । इन सुझाए गए नामों में लाइट ऑफ़ द अवेस्ता एंड गाथाज़ के लेखक के दादाचंदजी, बॉम्बे स्थित आनंदीलाल पोद्दार उच्च विद्यालय के प्रधानाचार्य आर पी बक्शी, सूरत के पारसी अनाथालय के प्रधानाचार्य खुर्शीद एस दाबू, ब्रह्मविद्या आचार्य और लेखक के जे वाडिया और कलकत्ता के अटर्नी जनरल हिरेन्द्र नाथ दत्ता शामिल थे ।

इतने ही कद्दावर लोगों की एक श्रृंखला इस काम को बाहर से भी समर्थन दे रही थी जिसमें मदनमोहन मालवीय, संस्कृत आचार्य गोपीनाथ कविराज, कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राचीन इतिहास और संस्कृति के कारमाइकल प्रोफ़ेसर देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर और शिक्षा के क्षेत्र में मीरा आंदोलन तथा साधु वासवानी मिशन के संस्थापक साधु थांवरदास लीलाराम वासवानी (*कल्याण* के नियमित लेखक) जैसे नाम शामिल थे ।

विदेशी विद्वानों में मद्रास के अदयार पुस्तकालय के पूर्व निदेशक और काइल विश्वविद्यालय जर्मनी में दैवत्व (डिविनिटी) के प्रोफ़ेसर तथा *कल्याण* के पाठकों से पहले से ही परिचित एफ ओटो श्रेडर गीता सोसाइटी में शामिल होने के लिए तैयार हुए । लेकिन विदेशी विद्वानों में सर्वाधिक उत्साहित हंटर कॉलेज न्यूयॉर्क के प्रोफ़ेसर अर्नेस्ट पी हार्टविट्ज़ थे जिन्हें गीता सोसाइटी का विचार ‘सुंदर और साध्य’ लगा । ⁶⁸ हार्टविट्ज़ कोई साधारण गीता प्रशंसक नहीं थे । उन्होंने हंटर कॉलेज में बारह सालों तक गीता को ‘विश्व साहित्य के अंग’ की तरह पढ़ाया था और यह माना था कि ‘विश्व का कोई ग्रंथ गीता जितनी स्पष्ट शिक्षा नहीं देता और न ही इसके जितना आत्मबोध की उदात्तता व वैश्विक चेतना संपन्न है । पूरा विश्व इसके माध्यम से आध्यात्मिक जगत सम्बन्धी छोटे-बड़े प्रश्नों के उत्तर पा सकता है ।’ हिटलर शासित जर्मनी में हार्टविट्ज़ ने बताया कि किस तरह ‘नाज़ी गीता में अद्वैत के साहसी रक्षा कर रहे क्षत्रियों द्वारा दिखाए गए नायकत्व के पक्ष से गहरे प्रभावित थे ।’ पोद्दार को भाई संबोधित करते हुए हार्टविट्ज़ ने कहा कि वे प्रशांत तटीय पोर्टलैंड या सियेटल के लिए निकल चुके हैं लेकिन गीता के लिए समय निकालने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं है । हालाँकि उन्होंने आर्थिक सहायता करने में खुद को असमर्थ बताया । लेकिन साथ ही यह भी कहा कि ‘जहाँ भी मैं रहूँ अगर वहाँ आपके मित्र या समर्थक हैं जो गीता सोसाइटी की शाखा या गीता कक्षा शुरू करना चाहते हैं तो मुझे हर्ष होगा, अगर आप चाहें तो आयोजित कर सकते हैं ।’

दूसरी ओर ऐसे भी लोग थे जिन्होंने गीता शिक्षण का हिस्सा बनने से इंकार कर दिया । धार्मिक अस्मिता पर दृढ़ विचार रखने वाले पारसी लेखक फ़िरोज़ सी डावर ने सन् 1934 की गीता सोसाइटी का सदस्य बनने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया । उन्होंने लिखा कि ‘मैं सीमित दायरों का व्यक्ति हूँ । इस हिसाब से मेरी पारसी सोसाइटी का मुझ पर पहला अधिकार है, जिसकी सदस्यता भी मैंने अस्वीकार कर दी है ।’ ⁶⁹ डावर ने संस्कृत नहीं जानने को भी वजह बताया । उनके अनुसार हिन्दूवाद, खास कर गीता के, वे बहुत ही मामूली जानकार हैं । उन्होंने लिखा कि ‘ये मैं सिर्फ़ दिखावा करने के लिए या भविष्य में किसी परेशानी से बचाव के लिहाज़ से नहीं कह रहा हूँ ।’

शीर्ष उद्योगपति सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के सचिव ने उनकी ओर से लिख कर ‘आग्रह को पूरा न कर पाने में असमर्थ’ होने पर अफ़सोस ज़ाहिर किया । ⁷⁰ जाने-माने संस्कृत के विद्वान सर गंगानाथ झा ने भी स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों के मद्देनज़र

अधिक गतिविधियों में सम्मिलित हो पाने में असमर्थ बताया और कहा कि उन्हें 'किसी भी सोसाइटी का निष्क्रिय सदस्य बनने में खुशी नहीं होगी।' ⁷¹ बनारस के साहित्यिक जगत में अपनी पहचान बना चुके और हिन्दी व्याकरण पर एक पुस्तक लिखने वाले लंदन मिशनरी सोसाइटी के एडविन ग्रीव्स ने *कल्याण* के लिए भी लेखन किया लेकिन गीता सोसाइटी ने जुड़ने वाली बात पर उन्होंने सतर्कता बरती। ग्रीव्स ने कहा कि वे गीता को समझने का 'दिखावा' नहीं कर सकते और 'दूसरी बात यह कि जितना मैं सामान्य ढंग से समझ पाया हूँ मैं उससे सहमत नहीं हूँ। गीता में जीवन के अर्थ के बारे में, इसकी शर्तों और उद्देश्यों के बारे में प्रस्तुत मत भारी असहमतियों से भरे हैं।' ⁷²

इसके अलावा थे दिल्ली के कुलीन कायस्थ परिवार के रागबंस किशोर बलबीर जो सेंट स्टीफन कॉलेज से दर्शनशास्त्र पढ़ रहे थे। छोटी उम्र में ही बलबीर ने लोगों में अपने धर्म को लेकर फैल रही अज्ञानता के प्रति अपनी व्यथा ज़ाहिर की। उन्होंने कहा कि 'आजकल के सज्जन, और बेहद आधुनिक अर्थों में सज्जन कहे जाने वाले (लोग भी) आराम से खुद को नास्तिक घोषित कर देते हैं।' बलबीर ने गीता के कई अनुवाद पढ़े थे, उन्होंने निष्कर्ष दिया कि गीता ही आत्मबोध का एकमात्र रास्ता है और गीता ही राष्ट्रवाद की एकमात्र निशानी हो सकती है: 'अगर प्रत्येक हिन्दू, मुसलमान, या ईसाई इन सिद्धांतों को अपना ले और आत्मबोध प्राप्त करे तो हमें स्वराज आसानी से मिल सकता है। हमें वह स्वतंत्रता भी आसानी से मिल सकती है जिसके लिए हम बहुत लम्बे समय से प्रयासरत हैं।' ⁷³ बलबीर ने गीता सोसाइटी के लिए संस्कृत उच्च विद्यालय के रायसाहब अज़मत सिंह और हिन्दू कॉलेज के प्राचार्य एन वी थडानी के नाम सुझाए। निस्संदेह, उन्होंने 'किसी भी कार्य अथवा सेवा हेतु' स्वयं के प्रस्तुत होने का प्रस्ताव रखा। दिलचस्प है कि आध्यात्मिक क्षरण और मायावी स्वराज के प्रति चिंतित इसी जोशीले नौजवान का नाम उन लोगों की सूची में शामिल था जिन्हें ब्रिटिश साम्राज्य ने सन् 1947 में 'सम्मान, अलंकार और मेडल' प्रदान किए गए थे। यह वही साल था जब आभासी स्वराज एक वास्तविकता बन गया। ⁷⁴

आज़ादी और विभाजन के बाद के त्रासदपूर्ण समय में गीता प्रेस ने श्री गीता-रामायण प्रचार संघ का विचार सामने रखा जिसमें उसने लोगों से शान्ति, राहत और धैर्य बनाए रखने के लिए संगठित रूप से इन दो ग्रंथों को पढ़ने के लिए कहा। इसके साथ-साथ *कल्याण* के पहले साल में शुरू किए भगवान नाम जाप को फिर से शुरू करने का निर्णय भी लिया। चूंकि यह गीता प्रेस की पहल थी, अतः इसके लिए सिर्फ सामान्य अपील पर्याप्त नहीं थी; इस पहल को औपचारिक ढंग से मिशन का रूप देकर सामूहिक अनुष्ठान में बदलना था। अच्छी तरह से प्रचारित किए गए अपने वक्तव्य में पोद्दार ने चारों ओर फैली अशान्ति, उत्पीड़न और वेदना की बात की। ⁷⁵ इस तरह के हालात में अपनी मातृभूमि भारत में शान्ति व खुशहाली के लिए और पूरे विश्व के लिए ज़रूरी है कि वे उसी तरह नाम जाप करना फिर से शुरू कर दें जिस तरह सन् 1926 में किया गया था। एक बार फिर इस नाम जाप पर सनातन धर्म की ओर से लिंग, जाति

और उम्र के बारे में कोई नियम या बंधन नहीं रखा गया और सभी से अनुरोध किया गया कि वे इस नाम जाप में भाग लें। स्त्रियों को मासिक धर्म के दौरान हरे राम भजने की अनुमति दे दी गई, लेकिन (उस दौरान) उन्हें जाप गिनती के लिए तुलसी माला का प्रयोग करने से मना किया गया। वे तुलसी माला के स्थान पर लकड़ी की माला कर प्रयोग कर सकती थीं। इस मिशन की समय सीमा 16 नवंबर 1948 से 13 अप्रैल 1949 तक की रखी गई। प्रतिभागियों को उनके जाप से जुड़ी जानकारी गीता प्रेस के नाम जाप विभाग में दर्ज करवाने को कहा गया।

श्री गीता-रामायण प्रचार संघ के नियम ज़्यादा विस्तृत थे। ⁷⁶ इस संघ की सदस्यता सबके लिए खुली हुई थी। यहाँ इन दोनों ग्रंथों पर आस्था रखने वालों के बीच जाति, आर्थिक स्थिति और लिंग आदि के स्तर पर कोई भेदभाव नहीं किया गया था। सदस्यता लेने के लिए फॉर्म भरना होता था। जो संघ से अन्य लोगों को भी जोड़ सकते थे, उन्हें सहयोगी बना लिया जाता था। इन सदस्यों की निगरानी का काम गीता और रामायण का कार्य देखने वाले दो विभागों द्वारा किया जाता था।

गीता विभाग चार तरह की सदस्यता का प्रस्ताव रखता था। पहले में वे सदस्य शामिल थे जो एक दिन में गीता के अठारह अध्याय यानी वर्ष में 365 बार उसका पाठ किया करते थे। दूसरे वर्ग में वे सदस्य शामिल थे जो दो दिन में पूरी गीता यानी सालाना पाठ 180 बार पाठ किया करते थे, और तीसरी श्रेणी उन सदस्यों की थी जो एक दिन में छह अध्याय और इस प्रकार साल में 120 बार गीता का पाठ किया करते थे। अंतिम श्रेणी उन सदस्यों की होती थी जो अपनी क्षमता के अनुसार साल में कम-से-कम 42 बार ज़रूर पढ़ लेते थे। सदस्यों को सलाह दी जाती थी कि वे दिन में एक घंटा गीता की बातों को विचारने में अवश्य लगाएँ।

रामायण विभाग के सदस्य से अपेक्षित था कि वह तुलसीदास के ग्रंथों को साल में दो बार ज़रूर पढ़ें। गीता प्रेस की ओर से *रामचरितमानस* के किसी अन्य संस्करण को नकार कर तुलसीदास की *रामचरितमानस* को ही पढ़े जाने पर ज़ोर दिए जाने की वाजिब वजह थी और वह थी सन् 1938 के *कल्याण* के *मानस अंक* का प्रचार! पोद्दार पहले ही यह महसूस कर चुके थे कि एक धार्मिक प्रकाशन समूह के सनातन हिन्दू धर्म का एकमात्र प्रवक्ता बनने के लिए ज़रूरी है कि वह कम-से-कम क्रीमत पर गीता और रामायण जैसे धर्म ग्रंथों को लोगों तक पहुँचाए। उन्होंने 'रामायण की पांडुलिपियों के लिए इस उम्मीद में अपील जारी कि ताकि तुलसी का सारा लेखन एकत्रित किया जाये।' ⁷⁷ कोई सकारात्मक प्रतिक्रिया न मिलने पर पोद्दार ने अयोध्या के विद्वान-साधु अंजनीनंदन शरण की सहायता से 'पुरानी उपलब्ध पांडुलिपियों पर आधारित एक संस्करण बनाने की तैयारी शुरू की।' कई साल इस पर काम करने के बाद *कल्याण* की ओर से सन् 1938 में *रामचरितमानस* आधारित वार्षिकांक निकाला गया। 900 पृष्ठों का यह *मानस अंक* 'लोकप्रिय हिन्दी प्रकाशन की दुनिया में मील का पत्थर' माना गया। 'विशेष रूप से मंगाई गई पेंटिंग्स से बेहद आकर्षक ढंग से सुसज्जित, सोने से

अलंकृत और मोम की स्लिप-शीट्स द्वारा सुरक्षित यह अंक पत्रिका कम और पारिवारिक विरासत अधिक लगती थी ।’ इसमें पोद्दार द्वारा किए गए ‘एक-एक श्लोकों और दोहों के अनुवाद’ थे, साथ-साथ बड़ी मात्रा में प्रत्येक अनुवाद से पहले और उसके बाद भी सामग्री प्रकाशित की गई थी । इसके पहले प्रिंट में 40,600 प्रतियाँ छापी गईं और सन् 1983 के अंत तक कुल 5,695,000 प्रतियाँ छप कर निकलीं । भारतीय प्रकाशन की दुनिया में इतनी बड़ी संख्या में प्रतियाँ छपने की मिसाल नहीं मिलती । कुछ समय बाद गीता प्रेस से पॉकेट साइज़ *रामचरितमानस* छपने शुरू हो गए । ⁷⁸

मानस अंक का प्रभाव कहीं अधिक दूर तक हुआ । मद्रास विश्वविद्यालय में प्राचीन इतिहास के प्रतिष्ठित नाम के ए नीलकंठ शास्त्री का पोद्दार से कोई सीधा संपर्क नहीं था, लेकिन विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के एस एस सूर्यनारायण शास्त्री ने उनके स्थान पर पोद्दार को एक पत्र लिखा: ‘तुलसीदास के रामचरितमानस वाला पहला हिस्सा इतना मूल्यवान है कि भारतीय इतिहास विभाग के मेरे मित्र के ए नीलकंठ ने उसकी विशेष मांग की है ।’ ⁷⁹ पोद्दार ने तत्काल आभार व्यक्त कर मांग पूरी की ।

वैसे तो कोई भी श्री गीता-रामायण प्रचार संघ के गीता और रामायण दोनों विभागों का सदस्य बन सकता था, लेकिन उस व्यक्ति के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक था कि वह स्नान के बाद एक बार स्वयं इन ग्रन्थों का पाठ करे । हालाँकि अगर कोई अस्वस्थ है या यात्रा कर रहा है तो स्नान की कोई आवश्यकता नहीं, पाठ महत्वपूर्ण है । मासिक धर्म के दौरान महिलाओं को ग्रंथ छूने की मनाही थी लेकिन उनके लिए कोई और इन ग्रन्थों का पाठ कर सकता था । गीता प्रेस ने यह भी स्पष्ट किया कि वे सदस्यों को रामायण या गीता की निःशुल्क प्रतियाँ नहीं देंगे ।

इस बीच व्यक्तिगत स्तर पर किए गए गीता सम्बन्धी अनुवाद और उनकी नवीनतम टीकाओं को गीता प्रेस से प्रकाशित करने का आग्रह किया जा रहा था । उदाहरण के तौर पर सन् 1939 में गीता प्रेस से गुलाबचंद नागोरी की टीका सहित गीता का मारवाड़ी अनुवाद प्रकाशित करने की मांग की गई । कहा गया कि यह न केवल भाषा के विकास में सहायक होगा लेकिन कम शिक्षित मारवाड़ियों के लिए फ़ायदेमंद होगा । खास कर महिलाएँ सहजता से इनका पाठ कर सकेंगी । ⁸⁰

कई सालों बाद जब गीता प्रेस देश के सबसे बड़े धार्मिक प्रकाशन समूह के रूप में प्रसिद्धि पा चुका था तब भारतीय सेना की ओर से भी जवानों के प्रशिक्षण समाप्त होने पर गीता की एक प्रति भेंट करने के लिए निःशुल्क प्रतियाँ भेजने का आग्रह किया गया । 1960 के दशक में किए गए इस आग्रह में गीता की ‘टीका रहित हिन्दी लिपि’ की औसतन 1000 प्रतियों की मांग की गई थी । ⁸¹ गीता प्रेस की ओर से दिया गया जवाब ज्ञात नहीं है, लेकिन गीता प्रेस ने मुफ्त प्रचार के लिए आक्रामक ढंग से पॉकेट साइज़ गीता का निःशुल्क वितरण शुरू कर दिया । सेना के लिए मददगार होना गीता प्रेस की मज़बूत राष्ट्र के प्रति वैचारिक आस्था के लिहाज़ से भी उपयुक्त था ।

सन् 1967 में सेना की तरफ़ से किए गए निवेदन के एक साल बाद भारतीय सरकार ने गीता प्रेस से सहायता मांगी । सन् 1969 में गांधी की जन्मशताब्दी की तैयारियों में जुटे उप प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने गांधी और गीता पर डॉक्यूमेंट्री बनाने की सलाह दी । इस कार्य के लिए भारतीय सांस्कृतिक रक्षा काउंसिल के एस एन मंगल से सम्पर्क किया गया । यह काउंसिल जनसंघ और रोड्डा आर्म्स षड्यंत्र में पोद्दार के साथी और ‘अल्पावधि के लिए चले कलकत्ता इंडस्ट्रियल बैंक के प्रचारक’ ओंकारमल सराफ़ की मदद से स्थापित किया गया था । ⁸² मंगल ने पोद्दार से परामर्श लिया, पोद्दार ने गीता डॉक्यूमेंट्री प्रस्ताव को ‘क्रांतिकारी’ कहा और साथ ही उन्हें आगे के दिशा-निर्देश लेने के लिए कई आध्यात्मिक गुरुओं के पास भेज दिया । मंगल ने कहा कि डॉक्यूमेंट्री बनाने में दस लाख रुपए का खर्च आएगा, लेकिन पोद्दार की मदद से इसे कर पाना संभव है । ⁸³

कल्याण-कल्पतरु

पोद्दार नियमित रूप से कुछ विशेष विद्वानों और भारत से बाहर के उन धार्मिक नेताओं को *कल्याण* के अंक भेजा करते थे जिन्होंने अपनी ओर से सनातन धर्म की सेवा के लिए थोड़ा-बहुत भी योगदान दिया हो । लेकिन फिर भी जल्द ही गैर-हिन्दी भाषी जनता विशेषकर पश्चिम के हिन्दू जनसमुदाय और मॉरिशस, त्रिनिदाद और अफ्रीकी देशों तक पहुँचने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी । इस तरह सन् 1934 में अंग्रेज़ी भाषा में *कल्याण-कल्पतरु* का लोकार्पण हुआ ।

पश्चिमी जगत का भारतीय आध्यात्म और विद्या के साथ परिचय ‘भारतीय शास्त्रों की उपलब्धता तथा प्राच्यवादी विद्वानों नौकरशाहों और मिशनरियों द्वारा लिखित इतिहास और टीकाओं के माध्यम से निर्मित हुआ था ।’ ⁸⁴ दूसरी तरफ़, मॉरिशस, जहाँ बड़ी संख्या में ऐसी भारतीय आबादी निवास करती थी जिनके पुरखे गन्ने की खेती के लिए मज़दूर बनाकर ले जाये गए थे । यह वर्ग दो प्रकार से अस्मिता के संकटों का सामना कर रहा था । एक तरफ़ हिन्दू-मुसलमान के बिखराव का संकट था तो दूसरी ओर तमिलों द्वारा अपनी श्रेष्ठता के दावे का संकट था । ‘हिन्दी भाषी हिन्दू कुलीन वर्ग’ ने ‘छोटा भारत’ (लघु भारत) का एक विचार रखा और सन् 1935 में इन मुद्दों ने तब ध्यान खींचा जब यहाँ के भारतीयों ने ‘भारतीय प्रवास के आरंभ की शताब्दी’ का जश्न मनाया । इससे दासता के उन्मूलन (1835) के बाद बसी भारतीय आबादी जो मूल रूप से बिहार की थी और ऐसी भारतीय आबादी जो काफ़ी पहले मुख्यतः दक्षिण भारत में स्थित फ़्रांस के ‘व्यापारिक पोस्टों’ से आई थी, के बीच फाँक पड़ गई । ⁸⁵

कल्याण-कल्पतरु ने गीता प्रेस को हिन्दू हितों का एकमात्र प्रवक्ता होने का तमगा प्रदान करने में सहायता दी । विद्वानों से आध्यात्मिक जिज्ञासुओं तक सभी गीता प्रेस

की चौखट तक आ पहुँचे थे । *कल्याण-कल्पतरु* के लोकार्पण के एक साल के भीतर ही गीता प्रेस ने बदलाव महसूस किया ।

बर्लिन में पढ़ाने वाले सांस्कृतिक दार्शनिक ताराचंद रॉय ने ‘मातृभूमि सेवा निमित्त’ पोद्दार से नियमित रूप से पुस्तकें और *कल्याण* भेजने को कहा । उन्होंने यहाँ तक कि पोद्दार की तस्वीर का इस्तेमाल भी ‘भारत और उसकी संस्कृति’ पर दिए जाने वाले व्याख्यान में करने की बात पूछी । ⁸⁶ कुर’आन के सस्ते संस्करणों के निःशुल्क वितरण से प्रभावित होते हुए रॉय ने गीता प्रेस को सुझाया कि गीता प्रेस भी गीता का अंग्रेज़ी संस्करण यूरोप में निःशुल्क वितरण के लिए छाप सकता है । उन्होंने यह भी सुझाया कि इन कामों में पोद्दार को ‘नामी हिन्दू परिवारों और राजाओं’ से मदद लेनी चाहिए । पोद्दार को हेल्मथ वान ग्लासनेप, डब्ल्यू किर्फ़ेल, लुडविर्क एल्सडोर्फ़ और अर्न्स्ट वाल्ड्समिड जैसे शीर्ष भारतविदों से मिलवाने में भी रॉय की भूमिका सर्वप्रमुख थी ।

भारत में भी इस अंग्रेज़ी पत्रिका के अनेक पाठक थे । कलकत्ता के *अमेरिकन एक्सप्रेस* के कर्मचारी जी ए बर्नाड भी उनमें से एक थे । उन्होंने अंग्रेज़ी में सचित्र प्रकाशित *योग अंक* के माध्यम से किसी ऐसे व्यक्ति का पता करने के लिए कई बार आग्रह किया जिसने ‘तांत्रिक योग साधना विशेषकर प्राणायाम और कुंडलिनी योग में सिद्धि’ ली हो और जो इस कला में उनके लिए मददगार साबित हो । ⁸⁷

गीता प्रेस और *कल्याण-कल्पतरु* के सबसे बड़े संरक्षकों में से एक लंदन का शान्ति सदन था । बरेली के हरिप्रसाद शास्त्री ने इसकी स्थापना की थी । शान्ति सदन के बारे में कहा जाता है कि इसने ब्रिटेन का परिचय आध्यात्मिक योग से करवाया । लंदन में बसने से पहले शास्त्री ने जापान में और चीन में पढ़ाया था जहाँ उनकी मित्रता सन-यात-सेन से हुई । यहीं रह कर उन्होंने ग्यारह साल तक बौद्ध साहित्य का अनुवाद किया । उन्हीं की देख-रेख में कुर’आन का चीनी भाषा में तथा कंप्यूशियस के कार्यों का चीनी से हिन्दी में अनुवाद हुआ । ⁸⁸ *कल्याण-कल्पतरु* से प्रेरणा लेते हुए शास्त्री ने ‘हरे राम के पवित्र मंत्र जाप’ को शास्त्री सदन में लागू किया और अपनी घनिष्ठ मित्र उत्तमा देवी को कहा कि वे इस संदर्भ में पोद्दार को सूचित करें और आभार व्यक्त करें । ⁸⁹ सन् 1942 में समाचार प्रिंट की आपूर्ति में कमी के चलते *कल्याण-कल्पतरु* का प्रकाशन रोक दिया गया था, लेकिन एक साल बाद इसके पुनः शुरू होने पर उत्तमा देवी ने पोद्दार को लिख कर अपनी और अपने दो अन्य मित्रों—कुमारी रोब्ले व श्रीमती बर्नाड की सदस्यता को आगे बढ़ाने का आग्रह किया । उन्होंने पोद्दार को लिखा, ‘हमारा समूह *कल्याण* की बहुत सराहना करता है । हमें खुशी है कि आगे भी इसे जारी रखना संभव हुआ है ।’ ⁹⁰

कल्याण-कल्पतरु के प्रकाशन पर लगी साल भर की रोक ने इसके बहुत से संरक्षकों को निराश किया । सदस्य लुईस वाइल्लिंग ने यह खबर मिलने पर लिखा, ‘अंग्रेज़ी भाषी पाठकों का वर्ग अंग्रेज़ी प्रकाशन रुकने के कारण बड़ी क्षति महसूस

करेगा ।’ ⁹¹ उन्होंने आगे अपने पति एच वाइलडिंग की पुस्तक *कॉसमॉस* की प्रति भी अविलम्ब वापस भेजने को कहा जो एक उद्धरण के इस्तेमाल के लिए गीता प्रेस के पास थी । उन्होंने वायदा किया कि पत्रिका के वापस शुरू होने पर वे उसे भेज देंगी । लुईस ने पोद्दार से कहा कि *कल्याण-कल्पतरु* का फिर से आरंभ होना ज़रूरी है क्योंकि उसमें ‘भारत की सच्ची आत्मा साँसें लेती है’, ‘वह स्पिरिट, हमें भरोसा है कि यही पूरे विश्व में स्फूर्त करने वाली शक्ति का संचालन करेगी, जब भारत को वैश्विक दुनिया में अपना महत्व पता चलेगा ।’ ⁹²

प्रेमेल एल एडरोस, जो शिकागो में सोसाइटी ऑफ़ ट्रांसडेंट साइंस के संस्थापक थे और जो बाद में जाकर स्वामी ब्रह्मविद्य के नाम से जाने गए, पोद्दार के मित्र थे । *कल्याण-कल्पतरु* और गीता प्रेस से छपी अन्य पुस्तकों को संयुक्त राज्य में लोकप्रिय करने का दायित्व उठाने वाले ब्रह्मविद्य भी पत्रिका के न प्रकाशित होने की खबर से आहत हुए । हालाँकि जब तक एडरोस ने गीता प्रेस को लिखा, तब तक पत्रिका का पुनः प्रकाशन आरंभ हो चुका था । एडरोस ने *कल्याण-कल्पतरु* के साथ-साथ छप रही अन्य पुस्तकों को भी नियमित भेजते रहने का आग्रह किया । उन्होंने कहा कि यह सब भेजने के बदले ‘उन्हें कीमत के अलावा कुछ तोहफ़े, मुसीबतें और भरोसे भी भेजे जाते रहेंगे ।’ ⁹³

ससेक्स के रहने वाले हेनरी थॉमस हम्ब्लिन की कहानी कई मायनों में पोद्दार की कहानी से मिलती-जुलती है । निर्धन परिवार में जन्मे हम्ब्लिन अपनी मेहनत और लगन से सफल प्रकाशविज्ञानी बने । लेकिन पोद्दार की तरह ‘ईश्वरीय उपस्थिति के होने वाले आभासी अनुभवों’ ⁹⁴ ने उन्हें रहस्यवादी बना दिया । उन्होंने *द साइंस ऑफ़ थॉट रिव्यू* पत्रिका निकालनी शुरू की जो शीघ्र ही सफल पत्रिका बन गई । इसका आधार ‘अप्लाइड राइट थिंकिंग’ था । पोद्दार और हम्ब्लिन के बीच सन् 1940 के बीच पत्राचार हुआ । हम्ब्लिन *कल्याण* से परिचित थे और उसके प्रशंसक थे । पोद्दार ने हम्ब्लिन से कई पुस्तकें मंगवाईं, लेकिन उनमें से कई पुस्तकें उपलब्ध नहीं थीं, क्योंकि सरकार द्वारा कम आपूर्ति के कारण कागज़ के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था । हम्ब्लिन ने उपलब्ध पुस्तकें आधे दाम पर पोद्दार को भिजवाईं और डाक खर्च भी वहन किया । ⁹⁵

लोगों में बढ़ती अधार्मिकता ने हम्ब्लिन को भी चिंता में डाल दिया था । उन्होंने पोद्दार को लिखा कि किस तरह युद्ध के बाद के ब्रिटेन में ‘रोमन कैथोलिक चर्च के अलावा सभी चर्च खाली हैं, और उनके लोग वही पुरानी नीतियाँ, सिद्धांत स्वीकार रहे हैं । वे सब कुछ उसी तरह निगल जाते हैं जैसे मछली चारा निगल जाती है । हालाँकि उनमें भी कई लोग विचारक हैं, और उनके अनुयायी भोले-भाले लोग हैं ।’ हम्ब्लिन ने माना कि ‘भौतिकवाद अपने चरम तक पहुँच चुका है और अब लहर उल्टी चल पड़ी है ।’ ⁹⁶

फ्रांस के सुप्रसिद्ध और नामी भारतविद् जीन हर्बर्ट ने, जो संयुक्त राष्ट्र में व्याख्या सेवा के संस्थापकों में से एक थे, ने बुद्धवाद और हिन्दूवाद के ज्ञान की खोज में भारत और एशिया के अन्य हिस्सों की यात्रा की थी। उन्होंने *कल्याण-कल्पतरु* को बेहद गंभीरता से लिया और इसके दो लेखों का अनुवाद अपने विशाल *भारत के लघुचित्र* ग्रंथ के लिए किया। हर्बर्ट ने पोद्दार को बताया कि उन्होंने हिन्दू आध्यात्म पर आधारित अपनी अगली पुस्तक *मैलेंजेस सूर लाण्ड* (भारत की चित्रकारी) में *कल्याण-कल्पतरु* से 'उद्धरण को पूरे संदर्भ सहित और आभार ज्ञापन में लगभग 50 बार दिया'। ⁹⁷ यूरोप में युद्ध काल के चलते नियमित तौर पर *कल्याण-कल्पतरु* नहीं पहुँच पा रही थी और हर्बर्ट ने उम्मीद जताई कि हालात सामान्य होने पर पत्रिका का प्रसार बढ़ेगा क्योंकि 'पत्रिका धीरे-धीरे फ्रांस में अपनी पहचान बनाती जा रही है।'

जैसे-जैसे *कल्याण-कल्पतरु* की पहुँच और उसका प्रभाव पाश्चात्य जगत में बढ़ता गया, वैसे-वैसे गीता प्रेस के पास हर तरह की मांगें आती गईं। दिल्ली में रहने वाले डब्लू डी पैडफिल्ड ने *कल्याण-कल्पतरु* पढ़ने वाली पेरिस की अपनी मित्र की ओर से लिखा कि उनकी मित्र ने 'पुनर्जन्म के प्रामाणिक मामलों पर कुछ लेखों' को पढ़ा है और उन्हें तत्काल इससे जुड़े 'पिछले प्रासंगिक अंकों की आवश्यकता' है। ⁹⁸ मैक्सिको से छात्रवृत्ति लेकर भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने दिल्ली विश्वविद्यालय आई वाई जे टोरेस के दिल्ली के संपर्क सूत्र और दिल्ली के ही मॉडर्न स्कूल में शिक्षक कृष्णदत्त भारद्वाज ने टोरेस की ओर से पोद्दार से *कल्याण-कल्पतरु* की सदस्यता मांगी। भारद्वाज ने यह उल्लेख किया कि टोरेस ने तय किया है कि भारत दौरे पर वे शाकाहारी भोजन सेवन करेंगी। ⁹⁹

भारत में *कल्याण-कल्पतरु* ने श्री चित्र सेंट्रल हिन्दू रिलीजियस लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम का ध्यान उस समय अपनी ओर खींचा जब उसने देवासोम विभाग के तत्वाधान में हिन्दू धर्म के प्रचार और उत्थान के लिए अपनी धार्मिक तिमाही पत्रिका *चैत्र प्रभा* निकालना तय किया। जब *चैत्र प्रभा* का पहला अंक मंदिर उद्घोषणा दिवस पर 12 नवंबर 1945 को आया तो पुस्तकालय के संग्रहाध्यक्ष ने गीता प्रेस को *कल्याण-कल्पतरु* से 'त्रावणकोर और उसके बाहर निवास करने वाली जनता के हित में' ¹⁰⁰ लेखों को अनूदित करने की सामान्य अनुमति मांगते हुए लिखा।

पत्रिका के रूप में एक महाकाव्य: अल्पायु वाला महाभारत

नवंबर 1955 में गीता प्रेस ने तीन साल के लिए एक अन्य मासिक पत्रिका *महाभारत* का प्रकाशन शुरू किया। इसके प्रवेशांक में अपनी संपादकीय टिप्पणी 'नम्र निवेदन' में ही पोद्दार ने एक विशेष धार्मिक ग्रंथ को समर्पित इस सीमित अवधि वाली पत्रिका का औचित्य समझाया। उन्होंने कहा कि *महाभारत* के हिन्दी में कई अनुवाद उपलब्ध हैं और उसी तरह कई टीकाएँ भी हैं। लेकिन सभी टुकड़ों में उपलब्ध हैं और महँगी भी

हैं। उन्होंने बताया कि इस पत्रिका के छत्तीस अंक संस्कृत का पूरा मूल पाठ और उसका हिन्दी अनुवाद मुहैया करवाएंगे।

इसके प्रवेशांक में पोद्दार ने बताया कि महाभारत जैसे ग्रंथ को समेटने का वृहत्कार्य इसलिए किया जा रहा है क्योंकि भारत के भिन्न-भिन्न भागों में इसके भिन्न-भिन्न रूप प्रचलित हैं। इस महाकाव्य के जन्म या उद्भव के संदर्भ में पोद्दार ने लिखा कि सदियों की यात्रा में कई बार पाठ में पूरी तरह से विरोधभासी विषयों को भी जोड़ दिया गया है। यहाँ तक कि पूरा महाभारत 89,000 से अधिक वचनों वाला है जिसे पूना के भंडारकर प्राच्य शोध संस्थान ने वर्षों के शोध के बाद निकाला है। पोद्दार के अनुसार, इतने शोध के बावजूद भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह महाभारत का मूल रूप है और इस रूप पर सबकी सहमति रही होगी। ¹⁰¹ बहुत विचार-विमर्श के बाद पोद्दार ने नीलकंठ चतुर्थर की महाभारत की टीका को स्वीकृत करने का फैसला किया क्योंकि इसमें दक्षिण भारत के पाठ भी संलग्न थे। अनुवाद का काम राम नारायण दत्त शास्त्री पांडे और स्वामी अखंडानंद महाराज को सौंप दिया गया। महाभारत के लिए सालाना सदस्यता 20 रुपए तय की जो कि 1950 के दशक के हिसाब से भी बहुत ज़्यादा नहीं थी।

संस्कृत रूप और हिन्दी अनुवाद को छापने का काम तीसरे साल के नवें अंक में पूरा हुआ लेकिन यह तय किया गया कि महाभारत से संबंधित लेखों और इस ग्रंथ को पढ़ने और सुनने के तरीके को आखिरी के तीन अंकों में दिया जाये। आखिरी से ठीक पहले अंक में गंगाशंकर मिश्र ने महाभारत के प्रति पाश्चात्य विद्वानों के आकर्षण पर एक लम्बा लेख लिखा। इस लेख में उन्होंने चार्ल्स लॉसन, अल्फ्रेड लुडविग, अल्ब्रेच्ट वेबर, लुडविग वान श्रोडर, मैक्स मूलर, एडवर्ड वाशबर्न हॉपकिंस और जी ए गियर्सन जैसे विद्वानों के कार्यों का गहन लेखा-जोखा दिया था।

पोद्दार ने महाभारत के अंतिम अंक में लिखा कि इस महाकाव्य को इस तरह धारावाहिक रूप में पूरा करने का प्रयास धार्मिक ग्रंथों के मानकीकरण के गीता प्रेस के व्यापक लक्ष्य का हिस्सा है। उन्होंने लिखा कि वेदव्यास के महाभारत में एक लाख श्लोक थे और उन्हें इस पत्रिका में स्थान दिया गया है। ¹⁰² कुछ समय बाद हिन्दी अनुवाद को छह भागों में प्रकाशित किया गया और यह अब भी निकलता है।

कल्याण के वार्षिकांक

कल्याण के लगभग आठ दशकों के इतिहास में इसका कोई भी अन्य अंक इसके वार्षिक अंकों जितनी लगन और मेहनत से तैयार नहीं किया जाता था। इन्हें वार्षिकांक कहा गया। ये अंक गीता प्रेस के लिए घोषणा पत्र की तरह थे जिसमें हिन्दू अस्मिता और हिन्दू समाज, संस्कृति, धर्म और यहाँ तक की राजनीति में क्या सही है, क्या ग़लत है के संकेत होते थे। संक्षेप में, इन वार्षिक अंकों ने गीता प्रेस के मिशन को अक्षरशः आगे बढ़ाने का कार्य किया।

इन वार्षिक अंकों को केवल भगवान, गो, हिन्दू संस्कृति, स्त्री, पुत्र संतान, शिक्षा, अच्छा व्यवहार और मानवता, जैसे विविध विषय और रामायण, महाभारत, गीता, पुराण, उपनिषदों आदि पर विशेष समर्पित विभिन्न मुद्दे ही विशिष्ट नहीं बनाते थे, बल्कि वह तरीका भी इन अंकों की विशिष्टता थी जिसमें गीता प्रेस द्वारा प्रत्येक विषय पर परंपराओं को 'अनुकूल ऐतिहासिक अतीत के साथ नैरंतर्य स्थापित' करने के उद्देश्य से 'आविष्कृत' किया जाता था। अतीत का निरंतर संदर्भ लिए हुए ये परम्पराएँ रिवाजीकरण और औपचारिकीकरण की प्रक्रिया बन गई। ¹⁰³ राजनैतिक रूप से हिन्दू परम्पराओं के धार्मिक व सांस्कृतिक रूप का यह आविष्कार राष्ट्रीय अस्मिता और आत्म दृढ़ता का प्रतीक बनता गया। ¹⁰⁴

समाचार प्रिंट पर नियंत्रण के दौरान भी 500 से ज़्यादा पृष्ठों तक चले जाने वाले प्रत्येक वार्षिक अंक के विशाल आकार को ध्यान में रखते हुए सारी योजना छह से आठ महीने से पहले ही शुरू हो जाया करती थी। विद्वानों, साधुओं और संपादक मंडल के वरिष्ठजनों के साथ से लंबे विचार-विमर्श के बाद विषय का चुनाव पोद्दार द्वारा ही किया जाता था। उसके बाद बनारस के संस्कृत विद्वान गोपीनाथ कविराज से मुलाकात की जाती थी। वे विषय से जुड़े विभिन्न आयाम सुझाते थे जिन पर लेख मांगे जा सकते थे। वे साथ-साथ उस क्षेत्र विशेष से जुड़े व्यक्तियों के बारे में भी बताते थे। बनारस में पोद्दार दो व्यक्तियों को जानते थे— शिवराज दूबे और रामनारायण शास्त्री, जो कविराज के साथ विचार की अंतिम रूपरेखा तय करते थे। कविराज द्वारा बांग्ला में लिखित लेखों से बिंदु लेने के लिए पोद्दार ने बंगाल से एक व्यक्ति का इंतज़ाम किया था। ¹⁰⁵

कल्याण द्वारा प्रस्तावित विषयवस्तु की सूची प्रकाशित की जाती थी और स्वयं पोद्दार योगदानकर्ता लेखकों को एक पत्र लिखते थे जिसमें विस्तार से विषय को समझाया गया होता था और लेखों को चुनने के तार्किक आधार बताए गए होते थे। प्रत्येक वर्ष के वार्षिकांक में लेखन के लिए आमंत्रण की शुरुआत कल्याण की प्रसार संख्या में हुई वृद्धि के आंकड़ों के साथ की जाती थी जिससे हमें पत्रिका के तेज़ी से बढ़ने का कुछ पता चलता है। पत्रिका के छठे साल यानी सन् 1931 के अंत तक इसका प्रसार 16,000 था और नवें साल (1934) के अंत तक यह 27,500 हो गया, यानी तीन साल में 50 प्रतिशत से अधिक वृद्धि।

हिन्दू संस्कृति अंक (1950) के लिए लिखे गए पत्र में यह स्पष्ट था: 'कल्याण की बिक्री में हर महीने सैकड़ों हज़ारों प्रतियों की बढ़ोतरी हो रही है' यह आंकड़ा आसानी से दोगुना किया जा सकता था 'यदि हमें पिछले तीन-चार वर्षों में अपनी बीस हजार सालाना सदस्यता को निराश करने के लिए बाध्य नहीं किया गया होता।' ¹⁰⁶ इस अंक का लक्ष्य 'हिन्दू संस्कृति के सच्चे रूप को प्रकाशमान करना, इसके व्यापक फलक और प्रभाव, इनके प्रेरकों व संरक्षकों, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक संगठनों, कला व साहित्य आदि से जुड़े सुधारों' को ध्यान में रखते हुए इसे निकालना था। पोद्दार ने

अपने लेखकों और मित्रों से उनके पास रखी 'किसी पुरानी सांस्कृतिक या धार्मिक ग्रंथ की लिखित या मुद्रित पांडुलिपि अथवा कोई पुरानी पेंटिंग या तस्वीर' भी भेजने का आग्रह किया। उन्होंने इस्तेमाल के बाद उसे वापस करने का भी वायदा किया।

लेख हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेज़ी, संस्कृत, बांग्ला, गुजराती और मराठी में भी मंगवाए जाते थे, इनके अनुवाद बाद में *कल्याण* के लिए करवाए गए। पोद्दार ने दावा किया कि, 'अलग-अलग भाषा बोलने वाले लोगों ने भी केवल *कल्याण* पढ़ने के लिए हिन्दी सीखने की शुरूआत कर दी थी।' ¹⁰⁷ वार्षिक अंक के विषय के अनुसार उनके पत्रों का स्वर बदल जाया करता था और उनमें अक्सर हिन्दू धर्म के सामने मौजूद खतरों से चेताते हुए प्रतिबद्ध आह्वान किया जाता था। *गो अंक* (1945) हेतु लेख मंगाने के लिए लिखे अनुरोध पत्र, जो अन्य वार्षिक अंकों की तरह जनवरी में नहीं बल्कि अक्टूबर में आया, में पवित्र पालतू पशु गाय की दुर्दशा पर 'शोकमय स्वर' अपनाया गया। पोद्दार ने कहा कि इस वार्षिक अंक में गो-रक्षा के विषय पर सभी पक्षों—धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक तथा साथ-साथ गायों की दशा में सुधार के कदमों पर चर्चा की जाएगी। ¹⁰⁸ पाँच साल बाद के *हिन्दू संस्कृति अंक* की ही तरह *गो अंक* की 100,000 प्रतियाँ छपी गईं, हालाँकि समाचार प्रिंट नियन्त्रण के कारण पृष्ठों की संख्या तय योजना के अनुरूप कम ही थी।

वार्षिक अंक पर काम करने के दौरान पोद्दार और उनकी टीम काफ़ी समय और ऊर्जा हिन्दू धर्म के उन पक्षों की महत्ता को रेखांकित करने में लगाती थी, जिस पक्ष पर केन्द्रित वह वार्षिक अंक निकाला गया था। उदाहरण के तौर पर *गो अंक* में पोद्दार ने कम होती गायों की संख्या, हिन्दुओं के जीवन में गो के महत्त्व और मुसलमानों की वजह से गायों के सामने पैदा होने वाले खतरों की अपनी बात को मज़बूत करने के लिए सरकारी आंकड़ों को बड़ा आधार बनाया। कलकत्ता में कॉमर्शियल इंटेलिजेंस और स्टैटिस्टिक्स और शिमला में फार्म्स के निदेशक को दुग्ध उद्योग से जुड़े आंकड़ों के लिए संपर्क किया गया था। ¹⁰⁹ भारत सरकार के मवेशी उपक्रम के सलाहकार सरदार बहादुर सर दातार सिंह को विविध प्रांतों और राज्यों की गो-शालाओं और वृद्ध गो-शालाओं की सूची मुहैया करवाने का आग्रह किया गया। ¹¹⁰ ऐसी ही सूचनाओं से जुड़ी मांग देश भर के अन्य कई व्यक्तियों व संगठनों से की गई थी। ¹¹¹

अंक के सौन्दर्य और चाक्षुक आकर्षण का ख्याल रखते हुए पोद्दार ने इम्पेरियल काउंसिल ऑफ़ एग्रीकल्चर रिसर्च के सचिव को इसके बुलेटिन और *इन्डियन फार्मिंग* ¹¹² में प्रकाशित तस्वीरें भेजने के लिए लिखा। जाने-माने निर्देशक वी शांताराम की प्रभात फ़िल्म कंपनी को उसकी सन् 1939 की निर्मित *गोपाल कृष्ण* से कुछ चित्र भेजने के लिए कहा गया। पोद्दार ने वायदा किया कि वे उन चित्रों की कीमत अदा करेंगे या उन्हें प्रयोग के बाद लौटा देंगे। ¹¹³ तिरुवन्नामलाई, मद्रास में स्थित श्री रमणाश्रम ने गीता प्रेस को 'श्री भगवान के साथ गऊ लक्ष्मी की उपलब्ध तस्वीर' भेजी, जो उनके अनुसार ऐसी एकमात्र तस्वीर थी। श्री रमणाश्रम के सर्वाधिकारी

निरंजनानन्द स्वामी ने पोद्दार को लिखा कि 'युद्ध से पहले ऐसी तस्वीरें इससे भी बड़े आकार में मिल जाया करती थीं... बेहतर होगा अगर इन्हें बड़े आकार में छापा जाये। गीता प्रेस से उकेरी जाने वाली रंगीन छवियाँ बेहद आकर्षक होती हैं, हमें विश्वास है कि इसके लिए उपयुक्त बड़ा ब्लॉक बनाया जा सकेगा।' [114](#)

ईश्वर अंक (1932) के लिए पोद्दार ने ईश्वर से जुड़े पाँच सवाल बनाए और उन्हें महत्वपूर्ण व्यक्तियों के समक्ष रखा:

- 1) हमें ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास क्यों रखना चाहिए?
- 2) ईश्वर के अस्तित्व में होने के प्रमाणों के बारे में क्या तर्क हैं?
- 3) उस पर विश्वास न करने के क्या नुकसान हैं?
- 4) कोई ईश्वर को कैसे महसूस कर सकता है?
- 5) ईश्वर पर आस्था रखने मात्र से कोई जीवित रह सकता है?

इसके जवाब में गांधी ने विस्तार से लिखा कि 'हम यदि स्वयं पर विश्वास रखते हैं तो हमें ईश्वर पर भी विश्वास रखना चाहिए', 'ईश्वर से नकार उतना ही हानिकारक है जितना अपने होने से नकार', और 'वास्तव में इस दुनिया में नास्तिक कोई नहीं होता, नास्तिकता महज़ एक ढोंग है' [115](#) पोद्दार ने इन प्रश्नों को आगे बढ़ाते हुए गांधी से ईश्वर में उनके विश्वास को मज़बूत करने वाली घटना का वर्णन लिखने को कहा। गांधी ने जवाब दिया कि ऐसी कोई विशेष घटना नहीं है, पहले उन्हें भी ईश्वर पर आस्था नहीं थी लेकिन उन्हें तब विश्वास हुआ जब उन्होंने 'धर्म के बारे में सोचना शुरू किया।' [116](#) यह भांपते हुए कि पोद्दार उनकी प्रतिक्रिया को कल्याण में इस्तेमाल करना चाह रहे थे, गांधी ने सावधानीपूर्वक जवाब दिया कि ऐसा करने का कोई लाभ नहीं होगा। यहाँ तक कि अगर यह प्रश्न पोद्दार ने अपने मार्गदर्शन के लिए भी पूछा था तब भी 'किसी दूसरे व्यक्ति के अनुभव आपके लिए उतने मददगार नहीं साबित होंगे'। प्रश्नों के उद्देश्य जानकर गांधी ने लिखा, 'यह जानकर मेरा दिमाग़ यूँ भी विचारशून्य हो गया कि आपने ये प्रश्न कल्याण में प्रकाशित करने के उद्देश्य से पूछे हैं।' [117](#)

सन् 1935 में पोद्दार ने ऐसी ही प्रकृति के चार सवाल अपने विभिन्न लोगों के समक्ष रखे थे। इनमें एक सी एफ एंड्रूज थे जिन्होंने प्रतिक्रिया देने से इंकार करते हुए लिखा, 'काम के भारी दबाव, खराब स्वास्थ्य में फंसे होने के कारण मैं समझता हूँ कि आपके सवालों के जवाब देना मेरे लिए नामुमकिन है। इस तरह मना करने के लिए माफ़ी चाहता हूँ।' [118](#)

गांधी की सलाह मानते हुए कल्याण ने पक्षपात के आरोप से बचने के लिए पुस्तकों और पत्रिकाओं की समालोचना कभी नहीं की। हालाँकि कल्याण के वार्षिक अंकों की अन्य सभी पत्रिकाओं द्वारा नियमित रूप से समीक्षा की जाती थी। बेहद सफल रहे सन् 1938 के मानस अंक को अत्यधिक सराहना प्राप्त हुई। आर्य महिला ने

कल्याण की सराहना करते हुए कहा कि इसकी प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है। साथ ही यह भी जोड़ा कि 'प्रत्येक हिन्दू स्त्री व पुरुष के पास मानस अंक की एक प्रति ज़रूर होनी चाहिए।' ¹¹⁹ बनारस से निकलने वाली भारत धर्म पत्रिका ने लिखा, 'एक ऐसे समय में देश को एक भाषा और एक लिपि की तलाश, यह प्रकाशन उपयुक्त और सही सेवा देने वाला है।' रामायण की टीका सहित सरल अनुवाद के चलते हिन्दी के समृद्ध होने की संभावना का स्वागत करते हुए भारत मित्र ने मानस अंक की सराहना में लिखा, 'इस अंक ने महान विषय और तुलसीदास की महानता तथा ग्रंथ की लोकप्रियता के साथ न्याय किया है।' भारत मित्र ने 'हिन्दी व रामायण से अनुराग रखने वाले' सभी लोगों को इसे पढ़ने की सलाह दी। ¹²⁰ लाहौर से निकलने वाली सुधारक पत्रिका ने भी मानस अंक की प्रशंसा में भावुक टिप्पणी की।

इसी तरह कल्याण के सन् 1935 के वार्षिकांक योग अंक की भी कई पाक्षिक पत्रिकाओं ने सराहना की जिसमें मुख्य रूप से कानपुर से निकलने वाला हिन्दी दैनिक प्रताप, अंग्रेज़ी दैनिक बॉम्बे क्रोनिक्ल और पारसी पत्रिका चिराग थी। बॉम्बे क्रोनिक्ल ने कल्याण की 'गैर-साम्प्रदायिक योगदान' के लिए प्रशंसा की। ¹²¹ और चिराग ने पारसी बुद्धिजीवियों को कल्याण या कल्याण-कल्पतरु की सदस्यता लेने के लिए कहा, 'हम खुले तौर पर यह कह रहे हैं कि अगर हमारे पारसी लेखकों में से कुछ लोग इस पुस्तक को देखें तो उन्हें अपनी बौद्धिकता और आध्यत्मिक प्रगति की निरर्थकता का एहसास होगा।' ¹²²

ज़ाहिर तौर पर ऐसे मौक़े भी आए जब कल्याण के वार्षिक अंकों को आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। शक्ति अंक (1934) की आलोचना करते हुए साप्ताहिक अभ्युदय और मासिक सरस्वती ने पोद्दार को आड़े हाथों लिया। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने उनके संज्ञान में लाते हुए प्रत्युत्तर देने को कहा लेकिन पोद्दार ने मना कर दिया। पहले उन्होंने लिखा कि वे पहले ही स्वीकार कर चुके हैं कि वे साहित्यिक पत्रिका के भी संपादन में सक्षम नहीं हैं, धार्मिक और आध्यात्मिक पत्रिका की बात तो रहने ही दी जाये, दूसरे उन्होंने वाजपेयी को कहा कि 'कल्याण के और संपादक के सम्बन्ध में कोई कुछ भी कहे उनका उत्तर नहीं दिया जाएगा। कल्याण में जो कुछ अच्छा बना है वह श्री भगवान की इच्छा और लेखकों की कृपा से है। जितनी बुराई है वह सब मेरी है। बड़ाई से अभिमान बढ़ता है। जो दोस्त बतलावेंगे वही सत्य समझने चाहिए।' ¹²³

कला और कलाकार

कल्याण के संपादक के सामने शुरुआत से ही सबसे बड़ी चुनौती पत्रिका को पाठकों के लिए जीवंत बनाने की थी और इस चुनौती को कुछ हद तक चित्रण का उपयोग कर पूरा किया गया। गीता प्रेस ने अपने सभी प्रकाशनों में देवी और देवताओं के चित्र

उकेरने पर विशेष ध्यान दिया। इसके साथ-साथ इन चित्रों को अलग से बेचा भी गया। दो महत्वपूर्ण घटनाक्रम इसमें मददगार साबित हुए। पहला, 1880 के दशक में आविष्कृत हुआ क्रोमोलीथोग्राफ जिसमें 'स्पष्ट रेखाएँ, सूक्ष्म शेडिंग और फिनिशिंग के साथ-साथ चटख रंगों की भरमार थी', ¹²⁴ और दूसरा घटनाक्रम था, सन् 1907 में कलकत्ता से रामानंद चटर्जी के संपादन में निकलने वाली *मॉडर्न रिव्यू* मासिक पत्रिका की सफलता। चटर्जी पोद्दार के मित्र थे और सन् 1929 में हिन्दू महासभा के अध्यक्ष बने थे। इस पत्रिका को निकालने का उनका उद्देश्य 'कला को राष्ट्रीय एजेंडे के तहत पढ़े-लिखे तबकों के बीच लेकर आना था।' ¹²⁵ पार्था मित्र ने तर्क दिया है कि 'यांत्रिक पुनरुत्पादन के माध्यम से हिन्दू धार्मिकता राष्ट्र के अतीत को पुनर्जीवित करने के जाल में उलझ गई।' ¹²⁶

बंगाल और महाराष्ट्र में क्रोमोलीथोग्राफ की बढ़ती लोकप्रियता *कल्याण* के लिए फ़ायदेमंद साबित हुई। अपने प्रकाशन के पहले वर्ष में पत्रिका ने बॉम्बे के लक्ष्मी आर्ट पेंटिंग से देवी-देवताओं के चित्र मंगवाए थे। अपने आरंभिक दिनों में मुद्रक के रूप में काम करने वाले और बाद में अग्रणी फ़िल्म निर्माता बने घुंडीराज गोविन्द फालके द्वारा सन् 1910 में स्थापित यह प्रेस तब तक 'सुवर्णमाला' नाम की सचित्र बुकलेट छापने के लिए जाना जाता था जो शिवरात्रि, रामनवमी, कृष्णाष्टमी, गणेश चतुर्थी और दीपावाली जैसे त्योहारों में आती थी। इसमें सुप्रसिद्ध कलाकार एम वी धुरंधर के 'एकरंगीय चित्र' होते थे, जो सब्सक्रिप्शन के आधार पर उपलब्ध हो जाते थे। ¹²⁷ सन् 1927 में *कल्याण* के गोरखपुर स्थानान्तरित होने के बाद कलकत्ता के लक्ष्मीविलास प्रेस से चित्र मंगवाए जाने लगे। जल्द ही गीता प्रेस ने इस काम के लिए पूर्णकालिक और अल्पकालिक कलाकार रखने शुरू कर दिए। इनमें से अधिकांश कलाकार कलकत्ता से बुलाए गए थे जिनमें से कुछ ने अवनीन्द्रनाथ टैगोर से प्रशिक्षण प्राप्त किया था।

कजरी जैन ने गीता प्रेस और *कल्याण* के जन्म को 'बाज़ार की प्रकृति' के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा है। ¹²⁸ उनके लिए बाज़ार 'औपनिवेशिक दौर में सुदृढ़ और औपनिवेशिक व्यापार से पारस्परिक लाभदायक तरीकों से संगठित हुए देशज व्यापारिक समुदायों के व्यापक अनौपचारिक आर्थिक और सामाजिक नेटवर्कों का कामचलाऊ नाम है।' ¹²⁹ आगे उनका तर्क है कि बाज़ार ने व्यक्ति की साख को महत्वपूर्ण माना जो केवल आर्थिक प्रदर्शन पर ही नहीं बल्कि धर्मनिष्ठा जैसे नैतिक गुणों पर भी निर्भर करती थी। इस तरह एक ऐसी दुनिया निर्मित हुई 'जहाँ नैतिक, पवित्र और व्यावसायिक दायरे आपस में एक-दूसरे से जुड़े थे' तथा जिसने दीर्घकालिक ढंग में एक ऐसे 'नैतिक समुदाय' को जन्म दिया जिसने हिन्दू महासभा और जनसंघ जैसे संगठनों का समर्थन आधार तैयार किया। ¹³⁰

बाज़ार के भक्ति पक्ष को ग्रंथों और भगवानों की छपी हुई छवियों के माध्यम से गढ़ा गया। उत्तर भारतीय व्यापारिक समुदायों में वैष्णवों के दबदबे ने इस प्रक्रिया को

और गति दी। इसके अलावा सनातन हिन्दू धर्म की ओर से छवियों की आराधना पर ज़ोर देने वाले प्रभावी विमर्शों ने भी इसे हवा दी। ¹³¹ गीता प्रेस का अभियान 'सामाजिक सुधारवादी किन्तु शहरी वैष्णव सामुदायिक संगठनों की रूढ़िवादी संस्कृति से प्रभावित' था। ¹³² इसने *कल्याण* के माध्यम से इस अभियान को प्रचारित किया। पोद्दार ने कहा कि 'निराकार, नामहीन, अपरिभाष्य उच्चतर यथार्थ' वाले निर्गुण ब्रह्म की सिद्धि की न तो सबको सलाह दी जा सकती है और न ही वह सबके लिए संभव है। ¹³³ इसकी जगह उन्होंने 'कुछ विशेष गुणों के साथ कुछ विशेष देवी-देवताओं की आराधना' के माध्यम से सगुण ब्रह्म की साधना की वकालत की। ¹³⁴ *कल्याण* तथा अन्य धार्मिक और निर्देशात्मक ग्रंथों में देवी-देवताओं के चित्रों के यांत्रिक पुनरुत्पादन ने इस प्रकार की आराधना का एक माध्यम उपलब्ध करवाया। 'मंदिर जाने या भगवान को दर्शाने वाले अन्य माध्यमों जैसे पत्थर या क्रीमती धातु आदि के माध्यम से आराधना आसान नहीं थी', क्योंकि पुजारियों का इस पर नियन्त्रण था, लेकिन 'छपी हुई छवियों के रूप में ईश्वर की उपलब्धता ने इस कमी को पूरा कर दिया। ¹³⁵

जैसा कि वाल्टर बेंजामिन ने बताया है कि 'यांत्रिक पुनरुत्पादन' ने 'कला को इसके रीति-रिवाजों पर निर्भरता के बंधन से मुक्त कर दिया।' ¹³⁶ आश्चर्यजनक यह था कि चातुर्वर्ण्य जाति प्रथा को खुलेआम प्रचारित करने और अस्पृश्यता के समर्थन में खड़ी होने वाली गीता प्रेस ने बड़े पैमाने पर तैयार किए जा रहे इन रंगीन देवी-देवताओं की छवियों की उपलब्धता के संबंध में कोई जाति आधारित नियम नहीं बनाए। ये छवियाँ किसी भी हिन्दू घर में हो सकती थीं। यह ज़रूर था कि इन चित्रों में ब्राह्मणों की सर्वोच्चता दिखाई देती थी, जो सनातन हिन्दू धर्म का आधार है। उदाहरण के तौर पर, एक चित्र में एक ब्राह्मण को ईश्वर का आभास होते हुए दिखाया गया जबकि नीचे एक चांडाल को दर्शन के लिए व्यग्र और संघर्षरत दिखाया गया। कलकत्ता के लक्ष्मीबाई प्रेस से छपी इस तस्वीर के कैप्शन का अर्थ निकालने का काम अपने पाठकों पर छोड़ दिया गया था, जिसमें लिखा था, '*ब्राह्मण और चांडाल: ब्राह्मण को पहले भगवत दर्शन*' ¹³⁷ संयोग से गांधी ने पोद्दार द्वारा सन् 1935 में लिखे गए पत्र के जवाब में यह हैरानी जताई कि *कल्याण* के पृष्ठों में इतनी ज़्यादा मात्रा में देवी-देवताओं के चित्रों की ज़रूरत आखिर क्यों पड़ रही है? गांधी ने कहा कि इस पर उन्होंने राघवदास से भी बात की, ¹³⁸ जिन्हें पूरब का गांधी माना जाता था, और जिन्होंने पत्रिका के लिए काम किया था।

ऐसा लगता है कि पोद्दार ने इस बात का अलग से कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया, लेकिन गीता प्रेस ने हमेशा यह दावा किया कि उनके प्रकाशन से छप रहे देवी-देवताओं के चित्रों ने पाठक को शान्ति और सुगति प्रदान की है। कई सालों बाद गीता प्रेस के लिए कई पुस्तकें लिखने वाले रामचरण महेंद्र ने कहा कि मानवीय चेतना भी कैमरे के लेंस की तरह होती है जिसमें सूक्ष्म से सूक्ष्मतरंग विवरण को कैद और संग्रहित करने की क्षमता होती है। फ़िल्मों के पोस्टर, फ़िल्मी और मुख्यधारा की पत्रिकाएँ ऐसे ही चित्रों

से भरी पड़ी होती हैं जो यौन इच्छाओं को जगाते हुए अनैतिकता के लिए प्रेरित करती हैं, लेकिन घरों में देवी-देवताओं के चित्रों के होने से सकारात्मकता बनी रहती है और बुरे ख्याल व मानसिक बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। 'हमारे चित्र, हमारे देवताओं की मूर्तियाँ एक प्रकार के प्रतीक हैं। धर्म के गूढ़तम रहस्यों की जन साधारण को समझाने की सरल भाषा है। प्रत्येक चित्र और मूर्ति में असंख्य गुप्त दिव्य सन्देश और रहस्य भरे पड़े हैं उनके सहारे गहरी बातें मन में बैठ जाती हैं। बुद्धि को कान, आँख और अन्य इन्द्रियों का सहारा मिल जाता है। जो व्यक्ति किसी पवित्र चित्र को घर में स्थापित करता है वह ईश्वरानुभूति के सरल मार्ग खोलता है।' ¹³⁹

महेंद्र ने पाठकों को हिन्दू छवियों के माध्यम से एक यात्रा का अनुभव करवाया, जिसमें शक्ति के तीन रूप—लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा जैसी देवियाँ, विघ्नहर्ता गणेश, निडर वानरदेव हनुमान और सर्वाधिक पूजनीय राम व कृष्ण शामिल थे। उन्होंने कहा कि देवियों और देवताओं के चित्र आध्यात्मिक गुरुओं की तरह काम करते हैं और मन, बुद्धि व आत्मा को नियंत्रण में रखते हैं।

महेंद्र के अनुसार इन चित्रों का महत्व इनके रंगों में है। उन्होंने दुःख प्रकट करते हुए कहा कि रंगों के विज्ञान को आज के हिन्दुओं ने खो दिया है। ¹⁴⁰ महेंद्र ने आगे कहा कि लाल सबसे पवित्र रंग है और इसका महत्त्व सबसे ज़्यादा है। 'लाल रंग का अधिक-से-अधिक मंगल कार्यों में उपयोग किया जाता है। प्रायः सभी देवी-देवताओं को लाल रोली का टीका लगाया जाता है। लाल चन्दन चंद्रमा का परिचायक है। लाल टीका शौर्य का प्रतीक है। लाल तिलक लगाकर पुरुषों को ऊर्जा प्राप्त होती है और वे तेजस्वी, पराक्रमी और स्वाभिमानी बन जाते हैं।'

महिलाओं के बारे में महेंद्र ने कहा कि लाल सिंदूर न केवल उनकी सुंदरता को बढ़ाता है बल्कि उनके सौभाग्य का भी प्रतीक है। उन्होंने आगे कहा कि सिंदूर लगाने वाली महिलाएँ यौन हिंसाओं से सुरक्षित रहती हैं क्योंकि अपराधी सिंदूर के ज़रिए उनकी 'मांग में लाल रंग देख कर सहसा किसी की हिम्मत उस पर कुदृष्टि डालने की नहीं होती। उसे यह प्रकट होता है कि यह स्त्री चरित्रवान महिला है। लाल रंग जैसे उसकी मर्यादा की परिधि है।'

केसरिया रंग संन्यास, ध्यान और वैराग्य का है। महेंद्र ने कहा कि केसरिया आग की लौ के समान है और इसमें बुरे खयालों को दूर रखने की शक्ति है। केसरिया वस्त्र धारण करने से ईश्वर से सान्निध्य बना रहता है और आत्म-संयम व निःस्वार्थ भाव जैसे गुण आत्मसात होते हैं।

हरा रंग प्रकृति, शान्ति, (शांत चित्त) और जीवन का प्रतीक है। उन्होंने यह भी कहा कि देवी लक्ष्मी को लाल के अतिरिक्त हरे रंग में भी सजाया जाता है। 'लाल और हरे रंग के सम्मिश्रण से महालक्ष्मी जी की सात्विकता, जितेन्द्रियता, सत्यपरायणता, कल्याण कामना और सौभाग्य को स्पष्ट किया गया है। लाल और हरे रंग से उद्योगशीलता स्पष्ट होती है। लक्ष्मी जी उन्हीं पुरुष श्रेष्ठों के साथ रहती हैं जो उद्योगी

परिश्रमी स्फूर्तिदायक और आत्म विश्वासी हैं ।’ भारतीय मिथकशास्त्र और धर्म में भी हरे रंग का महत्त्व साधुओं के जंगल में साधना के लिए जाने अथवा उनके गुरुकुल के निर्जन स्थानों में होने के उदाहरणों के माध्यम से दर्शाया गया है ।

महेंद्र के अनुसार, पीला रंग ज्ञान, बुद्धिमत्ता व चेतना का प्रतीक है इसलिए विद्यार्थियों व अन्य ज्ञान पिपासुओं को इसे धारण करने की सलाह दी जाती है । विष्णु और गणेश दो भगवान ज्ञान और विद्या को दर्शाते हैं । महेंद्र ने उल्लेखित किया कि वे दोनों ही पीत वस्त्र धारण करते हैं ।

महेंद्र ने कहा, नीला रंग पराक्रम और दृढ़ता का है । राम और कृष्ण जिन्होंने असुरों से युद्ध किया उन्हें नीले रंग में चित्रित किया जाता है । व्यापक आसमान जैसा नीले राम और कृष्ण पूरी सृष्टि में प्रसिद्ध हैं । नीला रंग उनकी सहनशक्ति व स्थिर चित्त को दिखाता है ।’ और अंततः, श्वेत रंग, जो सात रंगों के मिश्रण से बनता है जो शान्ति, शुद्धता और ज्ञान का परिचायक है जबकि काला रंग मृत्यु व अमंगल को दिखाता है ।

रंगों के इस तर्क और उनकी अंतर्निहित आध्यात्मिक शक्ति को इतना अधिक महत्त्व प्रदान किए जाने पर, पोद्दार से कई बार उनके मित्रों ने सुझाव-परामर्श किया कि उन्हें अपने पूजा घर को किस रंग से रंगना चाहिए । ^स तामऊ के राजा रामसिंह ने अपने साधना केंद्र की दीवारों, दरवाज़ों और खिड़कियों के रंगों के सिलसिले में अपने सचिव शिवराम कृष्ण गोडबोले से जानकारी मांगी थी । ¹⁴¹ जहाँ एक ओर पोद्दार ने कहा कि भगवान की भक्ति मार्ग में रंगों का प्रयोजन बहुत अहम नहीं होता, अलग-अलग रंग अलग-अलग देवी-देवताओं के ही हैं । भगवान राम का रंग नीला और हरा है और यह जानते हुए कि रामसिंह के आराध्य श्री राम हैं, पोद्दार ने गोडबोले को कहा, ‘मेरी समझ से आप किवाड़ों और खिड़कियों पर हरा रंग करवा सकते हैं । अंदर दीवार पर हल्का पीला रंग (भगवान के पीतांबर होने के अनुकरण पर) करवा सकते हैं । पराबैंगनी नीला रंग वर्जित है, नीला रंग वर्जित नहीं ।’ ¹⁴²

गीता प्रेस की धार्मिक चित्रात्मकता को ज़्यादातर सकारात्मक प्रतिक्रियाएं मिलीं । गोयन्दका की ओर से एक आलोचनात्मक प्रतिक्रिया ज़रूर आई थी । उन्होंने वृन्दावन से लिखा, *श्रीमद्भागवत* पर उकेरे गए चित्र में भगवान का आभास करता हुआ एक व्यक्ति है जिस पर नीचे झुकी हुई भगवान की निगाह पड़ रही है । वृन्दावन के बाबा सुखराम दास ने इस तरह के चित्रण को खारिज कर दिया है । गोयन्दका ने पोद्दार को लिखा कि वे इस चित्र को बदलें क्योंकि भगवान की दृष्टि ऊपर की ओर होनी चाहिए । ¹⁴³ इससे पहले सन् 1952 में *कल्याण* के पुराने पाठक कई अंकों में अपना योगदान देने वाले कर्नाटक के रंगनाथ रामचंद्र दिवाकर ने *बालक अंक* के लिए लिखना तो मंजूर किया, लेकिन पोद्दार को ‘पत्रिका के कला पक्ष को देखे जाने’ की ज़रूरत बताते हुए कहा, ‘तस्वीरें वस्तुतः भावरहित होती हैं ।’ ¹⁴⁴

आलोचना की कुछेक घटनाएँ छोड़ दी जाएँ तो गीता प्रेस ने प्रकाशित की जाने वाली कला तथा देवी और देवताओं के चित्रों को दर्शाने के तरीकों को लेकर एक सचेत

नीति विकसित कर ली थी। इस नीति का व्यापक लक्ष्य हिन्दू राष्ट्रवाद के विचार को विस्तार देना था। राम और कृष्ण को हमेशा मानवता के रक्षक के रूप में दिखाया गया और कृष्ण की रासलीला की छवियाँ *कल्याण* व अन्य प्रकाशित सामग्री में प्रायः दिखाई देती थीं। ¹⁴⁵ देवियों की तस्वीरें भक्तों के मन में मातृभाव का संचार पैदा करती थीं, उन्हें अक्सर दुष्टों से रक्षा करते हुए ही दिखाया जाता था। कलाकारों के लिए हिदायत थी कि चित्रण को शक्तिशाली, सौम्य और खूबसूरत होना चाहिए। कर्म, पुनर्जन्म और स्वर्ग जैसी संकल्पनाओं को तस्वीरों में उकेरा जाये, यह भी कि नर्क में कैसी स्थितियाँ मनुष्य की प्रतीक्षा में हैं ताकि लोग भक्ति और नैतिकता की राह अपनाते शुरू करें।

¹⁴⁶

जब गीता प्रेस ने अपने प्रकाशनों के लिए मौलिक कार्यों का चयन आरंभ किया तो पोद्दार को सबसे पहले अपने गृह राज्य राजस्थान के श्रीनाथ मंदिर की पीठ नाथद्वारा का ध्यान आया। नाथद्वारा के पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय ने 'लगभग अठारहवीं सदी से ही अपने समुदाय के समर्पित चित्रकारों को भित्तिचित्र, पिछवाइयों (कमरों के पिछले हिस्से को सजाने के काम आने वाला कपड़ा), अन्य आनुष्ठानिक सजावटों, वास्तुलिपि के चित्रण और विभिन्न लघु पेन्टिंग आदि में सहयोग किया था।' ¹⁴⁷ गौड़ और जांगिड़ उपजातियों से आने वाले इन ब्राह्मण चित्रकारों के कार्य, जिनमें मुख्यतः तीर्थ यात्राओं के स्मृतिचिह्न शामिल थे, को पश्चिम और उत्तर के व्यस्त व्यापारिक मार्गों की ओर अग्रसर हो रहे व्यापारिक समुदायों, खासकर मारवाड़ियों ने प्रसिद्धि प्रदान की। सन् 1927 के बाद इन्हें 'एस एस ब्रजवासी एंड संस द्वारा बनाई गई तस्वीरें' कहकर प्रसिद्धि प्रदान की गई। ¹⁴⁸

पोद्दार के कागज़ात में नाथद्वारा के प्रसिद्ध चित्रकार घासीराम हरदेव शर्मा के पुत्र और नाथद्वारा के कलाकार प्रेम नरेंद्र घासीराम शर्मा के तीन पत्र मिले हैं। ¹⁴⁹ बड़े घासीराम शर्मा 'श्रीनाथ मंदिर के *मुखिया* (मुख्य चित्रकार) थे', जिन्होंने गढ़महल की दीवारों पर तेल और टेम्परा पेंटिंग्स भी बनाई थीं। ¹⁵⁰ सन् 1930 में उनकी मृत्यु हो गई जिसके परिणामस्वरूप प्रेम नरेन्द्र गीता प्रेस से किए अपने वायदे पूरे करने में असमर्थ हो गए। उन्होंने पोद्दार को देरी के लिए क्षमा मांगते हुए लिखा और वायदा किया कि वे शरीर की अनिश्चित हालत के बावजूद अपनी कला के माध्यम से *कल्याण* की सेवा करना जारी रखेंगे। ¹⁵¹ हालाँकि तीन महीने बाद प्रेम नरेंद्र ने एक बार फिर 'ऑर्डर के अनुसार तस्वीरें' नहीं भेज पाने के लिए क्षमा माँगी। उन्होंने इस देरी का कारण अपनी खराब सेहत और एक पहाड़ी जगह पर लिए जा रहे स्वास्थ्य लाभ को बताया। उसके बाद चित्र भेजने पर सहमति देते हुए एक पत्र भेजा, 'अब मैं ठीक से चल नहीं सकता हूँ। अब मैं सुचारू रूप से कार्य संपादित कर रहा हूँ। और दुकान का कार्य भी अच्छी प्रकार से चल रहा है। अब यदि इन चित्रों में जो भेजे गए हैं रखने की इच्छा हो तो बालकृष्ण और पुष्पवाटिका का क्रमशः बीस रुपए और दस रुपए है। यदि पसंद न

आवे तो फिर से भेज दीजिएगा ।’ ¹⁵²‘नए ऑर्डर में भी देरी तो हुई’ ¹⁵³लेकिन पोद्दार ने कलाकार के क़द का सम्मान करते हुए धैर्यपूर्वक इंतज़ार किया ।

सन् 1932 में गीता प्रेस ने *दि लीडर* (इलाहाबाद) और *अमृत बाजार पत्रिका* (कलकत्ता) में कलाकारों के लिए नौकरी का विज्ञापन निकाला । इसके जवाब में देश भर से आवेदनों की भरमार आ गई जिनमें कलकत्ता, बॉम्बे और अन्य स्थानों के न्यू आर्ट कॉलेजों से प्रशिक्षित और आधुनिकता के रंग में सराबोर कलाकारों से लेकर परिवार में क्राफ्ट की तरह पेंटिंग सीखने वाले कलाकार तक शामिल थे ।

कलकत्ता के सत्येन्द्रनाथ बनर्जी ने कला भवन शान्तिनिकेतन में छह साल तक नन्दलाल बोस और असित कुमार हलदार से प्रशिक्षण प्राप्त किया था । ¹⁵⁴उनके पास सन् 1923 में ही बोस और सी एफ एंड्रयूज (इन्होंने उन्हें शान्तिनिकेतन में पढ़ाया था) द्वारा प्राप्त प्रशंसापत्र थे । सन् 1923 में बनर्जी एक नौकरी के लिए कराची में आवेदन कर रहे थे । वृन्दावन के प्रेम महाविद्यालय और कराची के दया आश्रम में काम करने के अनुभव के आधार पर उन्हें सन् 1932 में गोरखपुर आने के लिए कहा गया । ¹⁵⁵हालाँकि उन्हें यह पूरी तरह नहीं पता था कि उन्हें गोरखपुर में ‘क्या काम करना’ था, लेकिन इसके बावजूद उन्होंने अपने लिए न्यूनतम 75 रुपए के वेतन और साथ में कोई प्राइवेट काम करने की अनुमति माँगी । ¹⁵⁶वह अपने कुछ और कार्यों के प्रिंट नमूने के तौर पर भेजने पर सहमत हो गए । अंत में, बनर्जी को एक स्वतंत्र कलाकार के रूप में काम मिल गया । उन्हें समय-समय पर पोद्दार और अन्य लोगों द्वारा सुझाए गए विषयों पर *कल्याण* और गीता प्रेस के लिए अपना काम भेजना था ।

बनर्जी को यह पता नहीं था कि उनके साथ नौकरी की इस दौड़ में शान्तिनिकेतन के एक और वरिष्ठ कलाकार मोहम्मद हकीम खान भी शामिल थे । हकीम, बनर्जी के अध्यापकों बोस और हलदार के साथ-साथ अवनीन्द्रनाथ टैगोर के प्रथम बैच के छह विद्यार्थियों में से एक थे । उनके बारे में किसी को कुछ ज़्यादा मालूम नहीं था क्योंकि कलकत्ता के कला परिदृश्य से वे एकाएक गायब हो गए थे । ¹⁵⁷लेकिन जैसा कि पोद्दार के कागज़ात से पता चलता है, हकीम लखनऊ चले गए थे जहाँ वे *सुधा* और *माधुरी* जैसी पत्रिकाओं के लिए चित्र बनाने का कार्य करते थे । हो सकता है वे दिग्गज हिन्दी लेखक प्रेमचंद को जानते हों जिन्होंने हकीम की सिफ़ारिश पोद्दार के लिए की थी । प्रेमचंद ने अपने असली नाम धनपतराय के नाम से लिखते हुए कहा कि वे हकीम को जानते हैं जिन्होंने आठ वर्षों तक *सरस्वती* में काम किया है । प्रेमचंद ने यह बात ज़ोर देकर लिखी कि हकीम कुशल चित्रकार हैं, और ‘मुसलमान होते हुए भी हिन्दू चरित्रों का चित्रण सफलता से करते हैं ।’ प्रेमचंद ने लिखा कि हाल में हकीम ने वाल्मीकि रामायण के कुछ दृश्यों का चित्रण किया है जो जल्द ही *सुधा* में छपने वाले हैं । उन्होंने लिखा कि ‘वे कृष्ण भगवान के पूरे आकार का तैल चित्र बना रहे हैं जिसका दाम एक हज़ार लग चुका है । धार्मिक द्वेष की इनमें गंध भी नहीं है । वे एक सज्जन व्यक्ति हैं ।’ ¹⁵⁸अपने आवेदन में हकीम ने इस बात को दोहराया कि ‘मुसलमान होने के बावजूद मैं

हिन्दू चरित्रों के चित्र सफलतापूर्वक उतार सकता हूँ ।’ ¹⁵⁹ हकीम की इस आस्था का कारण संयुक्त प्रान्त में उस समय यानी सन् 1931 में छिड़ा गहरा साम्प्रदायिक तनाव हो सकता है । कानपुर में हुए बड़े दंगों में बड़े पैमाने पर मस्जिदों और मंदिरों को तोड़ा गया था जिसमें दिग्गज पत्रकार-राजनेता गणेश शंकर विद्यार्थी मारे गए थे ।

सुधा में 140 रुपए का वेतन मिलने के बावजूद हकीम गीता प्रेस में काम करने के लिए बातचीत करना चाहते थे क्योंकि उनकी नौकरी जल्द ही खत्म होने वाली थी । उन्हें शीघ्र ही गोरखपुर बुलाया गया लेकिन उनके बच्चे की बीमारी के कारण बात नहीं बन पाई । जब वे वहाँ एक महीने बाद गए तब यह तय हुआ कि उन्हें भी स्वतंत्र रूप से ही रखा जाएगा । ऐसा लगता है कि पोद्दार ने हकीम के लिए कुछ काम उनके सुधा वाले पते पर भेजा था, लेकिन वे कार्य को समय से पूरा कर नहीं भेज पाने के बहुत से कारण देते, जैसे कि सुधा से बचा हुआ पैसा नहीं आया है, उनके बच्चों की तबियत ठीक नहीं है और ‘गर्मी और खराब मौसम’ इत्यादि । उन्होंने पोद्दार से कहा कि वे सुझाए गए ‘सुधार’ कर जल्दी ही तस्वीरें वापस भेज देंगे, अतः उन्हें ‘लापरवाह’ न समझा जाये । ¹⁶⁰ जुलाई, 1932 तक हकीम ने अपना काम गीता प्रेस को भेजना शुरू कर दिया और गीता प्रेस से और काम माँगा । ¹⁶¹

शान्तिनिकेतन में अवनीन्द्रनाथ के आरंभिक शिष्यों में से एक रहे शारदा चरण उकील ने भी गीता प्रेस से काम माँगा । अमृता शेरगिल के समकालीन रहे तीन भाइयों में सबसे बड़े शारदा ने सन् 1918 में दिल्ली में पहला आर्ट स्कूल खोला था जो बंगाल शैली का एक दायम रूप था, वे वहीं अध्यापन करते थे । ¹⁶² अपने आरंभिक वर्षों में शारदा ने ‘धनी-संरक्षकों के तैल चित्र’ बनाए थे । बाद में वे अपनी ‘भारतीय शैली की पेंटिंग्स’ के लिए विशेष रूप से जाने गए । ¹⁶³ उन्होंने फ़िल्मों में भी हाथ आजमाया और सन् 1861 में आए एडविन अराल्ड के मशहूर *लाइट ऑफ़ एशिया* पर आधारित सन् 1925 में बनी फ्रेंज आस्टेन की फ़िल्म में राजा शुद्धोधन की भूमिका निभाई । ¹⁶⁴

इस बात की जानकारी नहीं मिली कि गीता प्रेस से शारदा का जुड़ाव कब से शुरू हुआ लेकिन पोद्दार को भेजे गए उनके आरम्भिक पत्र सन् 1935 के हैं । पोद्दार द्वारा भेजे गए टेलीग्राम के जवाब में शारदा ने अपने तीन मौलिक काम भेजे, *कृष्ण और राधा*, *साधना में शिव* और *गुरुनानक और पंजा साहब का उदय* । इसमें यह स्पष्ट उल्लेख था कि ‘तस्वीरों का मानेदय और उनको भेजने की लागत’ उन्हें पार्सल रसीद में भेजी जाये । ¹⁶⁵ अवनीन्द्रनाथ टैगोर के शिष्य की हैसियत से शारदा अपनी अहमियत जानते थे । हालाँकि उन्होंने टैगोर के नाम का हवाला दिए बिना ही पोद्दार के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वे सन् 1936 के *वेदांत अंक* के लिए अपना योगदान देना चाहते हैं । उन्होंने पोद्दार से इस विषय से संबंधित कुछ सामग्री भेजने का आग्रह किया । उन्होंने लिखा कि ‘मैं केवल अपनी प्रतिष्ठा के लिए बहुत साधारण और आम हो चली तस्वीरों को बनाना नहीं चाहता, इसलिए मैं इस विषय से जुड़े कुछ थीम्स के प्रति उत्सुक हूँ ।’ इसके ठीक आगे उन्होंने भुगतान का उल्लेख यह कहते हुए किया कि उन्हें पिछली तीन

तस्वीरों के लिए 75 रुपए भेजे गए हैं जो पिछले भुगतान तीस रुपए से कम है। अपने ऊंचे क्रद का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि 'पहले की तरह' उन्होंने अब मासिक पत्रिकाओं को तस्वीरें देना बंद कर दिया है, लेकिन पोद्दार के प्रति 'आत्मीय आदर' होने के चलते वे *कल्याण* के लिए चित्र भेज रहे हैं। ¹⁶⁶

सन् 1939 तक शारदा पूरी तरह बदल गए थे। अपने चित्रों को बेचने के लिए उतावले शारदा प्रतिष्ठा और विशिष्टता जैसी बातें भूल चुके थे। उन्होंने नवानगर के जाम साहब दिग्विजयसिंह रंजीतसिंह के लिए बुद्ध के जीवन पर आधारित पाँच तस्वीरें बनाईं। उन्होंने शारदा को इन तस्वीरों को पुस्तकाकार प्रकाशित करने की अनुमति दे दी, बशर्ते प्रत्येक तस्वीर का आकार 7 इंच X 5 इंच से ज़्यादा न हो तथा पुस्तक की कम-से-कम 2,000 प्रतियाँ छापी जाएँ। शारदा ने तीस तस्वीरों के साथ कृष्ण की जीवन कथा भी तैयार की थी और इसे भी वह पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराना चाहते थे। ¹⁶⁷ उन्होंने दोनों प्रस्ताव पोद्दार के सामने रखे और पोद्दार बुद्ध की जीवन कथा को सैद्धांतिक तौर पर प्रकाशित करने को तैयार हो गए। उन्होंने कृष्ण की तस्वीरों में भी दिलचस्पी दिखाई और उनमें से अधिकांश को सन् 1939 में *कल्याण* के *गीता तत्व अंक* में पुनः प्रकाशन के लिए चयनित कर लिया। साथ ही कुछ पेन्सिल चित्रों को गीता प्रेस सुरक्षित रखना चाहता था। पैसों की बात इसके बाद हुई। उन्होंने कहा कि 'मुझे मालूम है कि कला जैसी अनमोल वस्तु के मूल्य और पारिश्रमिक के बारे में बात करना अच्छी बात नहीं है, लेकिन इस भौतिकवादी संसार में हमें इन बातों पर भी ध्यान देना पड़ता है।' उन्होंने शारदा को 'पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, तस्वीरों आदि के प्रकाशन माध्यम से एक धार्मिक संस्थान स्थापित करने' ¹⁶⁸ के गीता प्रेस के व्यापक मिशन के बारे में याद दिलाया।

शारदा और पोद्दार के बीच इस सौदेबाज़ी का सिलसिला एक साल तक चला और दोनों ही अपनी ओर से मोल-तोल करते रहे। बुद्ध और कृष्ण की पुस्तकों के लिए बेहतर शर्तें होने की बात पर कायम रहते हुए, शारदा ने पोद्दार को *गीता तत्व अंक* में कृष्ण की तस्वीरों को पुनः छापने की स्वीकृति दे दी। 'मुझे लगता है कि इनमें से कुछ तस्वीरों को छापकर मैं अपनी समिति के सदस्यों के विचारों को सुरक्षित कर सकता हूँ।' ¹⁶⁹ शारदा पेन्सिल चित्रों के लिए गीता प्रेस को विशेष छूट देने की बात कहते हुए प्रति तस्वीर 80 रुपए पर सहमत हो गए (पिछली बार बताए गए मूल्य 100 रुपए की तुलना में)। ¹⁷⁰

पोद्दार इसके जवाब में बहुत समय तक चुप्पी साधे रहे जो संभवतः शारदा को काम के लिए तैयार करने की एक युक्ति थी। मार्च, 1940 में शारदा ने परेशान होकर अपनी पुरानी शर्तों में बदलाव किए। अब वे कृष्ण की पुस्तक के लिए 5,000 रुपए की जगह पर कुल 3,000 रुपए और बुद्ध की पुस्तक के लिए 3,000 रुपए के स्थान पर कुल 2,000 रुपए पर काम के लिए तैयार थे। शारदा की ज़रूरतमंद स्थिति को भांपते हुए पोद्दार ने और मोल-तोल किया। उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध और उसके चलते काग़ज़

की क्रीमतों और कला-कागज़ और स्याही की अनुपलब्धता आदि का हवाला देते हुए शारदा को बताया कि पुस्तकों के प्रकाशन में देरी होगी, साथ ही यह भी जोड़ा कि शारदा की बदली हुई शर्तें भी गीता प्रेस के लिए ज़्यादा हैं। उसी समय उन्होंने शारदा को *साधना अंक* (1940) के लिए तस्वीरें बनाने को कहा। ¹⁷¹

शारदा ने तुरंत अपनी दोनों पुस्तकों के लिए मांगी गई क्रीमत को 500 रुपये और कम कर दिया। उन्होंने लिखा कि 'मैं वास्तव में इस बात के लिए उत्सुक हूँ कि इन पुस्तकों का प्रकाशन तुरंत हो। मुझे आशा है कि आप अब मेरे नज़रिए को समझेंगे और हमारी संस्कृति और ईश्वर-प्रेम के प्रसार में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे जिसके लिए आप और मैं, दोनों कठिन संघर्ष कर रहे हैं।' ¹⁷² तीन दिन के बाद पोद्दार ने शारदा को *साधना अंक* के लिए पहले कृष्ण, बुद्ध और चैतन्य महाप्रभु के जीवन पर आधारित छह तस्वीरें भेजने को लिखा और शारदा की उम्मीदों पर लगभग गाज़ गिराते हुए भविष्य में पुस्तकों के प्रकाशन में अपनी असमर्थता और असहायता व्यक्त कर दी। हालाँकि वे गीता प्रेस समिति के सामने शारदा की बदली हुई शर्तें रखने पर सहमत हो गए। ¹⁷³ शारदा की उम्मीदें चकनाचूर हो गईं और उन्होंने *साधना अंक* के लिए छह तस्वीरें भेजते हुए 150 रुपये के पारिश्रमिक की प्रार्थना की क्योंकि उन्हें 'पैसों की विकट आवश्यकता' थी। ¹⁷⁴

प्रयोग में लाने के बाद *साधना अंक* के लिए भेजे गए चित्र शारदा को लौटा दिए गए, हालाँकि शारदा इस बात से नाराज़ हुए कि उनको वापस मिले कुछ चित्र 'क्षतिग्रस्त' हो गए थे और उनके एक चित्र में 'गीता प्रेस द्वारा छेड़छाड़ की गई जो आपत्तिजनक थी।' ¹⁷⁵ उन्होंने शिकायत की कि 'चित्रों की पैकिंग अच्छी तरह नहीं की गई जिससे वे विकृत हो गए।' शारदा ने 'इस लापरवाही को गंभीरता से लेते हुए' पोद्दार को गीता प्रेस के अंदरूनी कलाकारों को चेतावनी देने को कहा और 150 रुपये हर्जाने का दावा किया। उन्होंने पोद्दार को कुछ चित्र वापस भेजते हुए कहा कि वे चित्रों को पहुँची क्षति को खुद भी देख सकते हैं। पोद्दार ने जवाब दिया कि उन्हें चित्रों में कुछ भी नुकसान जैसा नहीं लगा। इस जवाब से शारदा बहुत क्षुब्ध हुए, लेकिन वे पहले से ही तनावग्रस्त हो चुके संबंध को बिगाड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने हर्जाने की मांग दोबारा नहीं की और मित्रवत स्वर में पोद्दार को लिखा: 'मुझे बहुत खेद और आश्चर्य है कि आपने मुझे ग़लत समझा। छेड़छाड़ की हुई तस्वीर का आपसे कोई संबंध नहीं है, यह केवल आपके लिए एक सूचना थी कि आपके ब्लॉक मेकर को भविष्य में इस तरह का काम बिल्कुल नहीं करना चाहिए। आपको अच्छी तरह से पता है कि मेरे संबंध आपसे अलग तरह के हैं।' हालाँकि वे इस बात पर कायम रहे कि 'तस्वीर में सामने बुरी तरह छेड़छाड़ की गई थी और उसकी पृष्ठभूमि में भी कुछ नीले रंग के धब्बे थे जिससे तस्वीर की गुणवत्ता निश्चित ही गिरी होगी।' ¹⁷⁶

हालाँकि शारदा उकील दूर दिल्ली में बैठकर अपने लिए एक स्थान बनाने में लगे थे, वहीं उनके द्वारा छोड़े गए कलकत्ता के कला परिदृश्य में पुनरुत्थानवादियों और

पश्चिमी कला के पैरोकारों के बीच में तीखी बहस छिड़ी थी । इस विवाद के केंद्र में प्रतिष्ठित कला पत्रिका *रूपम* और बंगाल स्कूल के विचारक ओर्धेन्द्र कुमार गांगुली थे । [177](#) वे 'सभी महान कलाओं में विशिष्ट राष्ट्रीय और नस्ली आदर्श' के पक्के हिमायती थे । उनका तर्क था कि 'किसी देश के कलात्मक विकास में विश्वबंधुत्व से कहीं मूल्यवान और महत्वपूर्ण राष्ट्रवाद है ।' [178](#) गांगुली का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विचार गीता प्रेस से जुड़ा था ।

सन् 1930 के दशक में कलकत्ता, बॉम्बे और लंदन [179](#) में प्रभाव डाल रही तीखी बहसों के बीच में, गांगुली, जो स्वयं एक कलाकार थे, *कल्याण* में अपनी पेंटिंग्स भेज रहे थे । गीता प्रेस के एक प्रतिनिधि ने उनके कलकत्ता आवास से उनके कुछ कार्य लिए । गांगुली पोद्दार को तस्वीरों को प्रदर्शित करने और उनकी पहचान से जुड़े तरीकों पर विस्तृत दिशा-निर्देश देने के शौकीन थे । [180](#) उन्होंने *कल्याण* की प्रतियाँ छपते ही उसके कलर ब्लॉक्स के दो सेट भी माँगे । गांगुली ने अपनी पेंटिंग्स के ब्लॉक तैयार किए और उन्हें सन् 1950 के *हिन्दू संस्कृति अंक* में छपने के लिए भेजा, लेकिन ये पेंटिंग्स इतनी देर से पहुँचीं कि इन्हें उस विशेष अंक में शामिल नहीं किया जा सका । पोद्दार ने उनके काम को अगले अंकों में इस्तेमाल करने का वायदा किया, लेकिन इससे पहले यह भी स्पष्ट कर दिया कि गांगुली ने ब्लॉक्स बनाने के लिए जो 170 रुपए खर्च किए हैं, वह अनुमानित 140 रुपए की लागत से अधिक है । यहाँ तक कि यह अनुमानित लागत भी गीता प्रेस द्वारा सामान्यतः इन ब्लॉक्स को बनाए जाने में लगने वाली लागत से अधिक है । [181](#)

हिन्दू संस्कृति अंक के लिए पोद्दार ने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अधीक्षक से 'बहुत-सी पत्रिकाओं और पुस्तकों में पहले से आ चुके कुछ फोटोग्राफ्स को पुनः प्रकाशित करने' का आग्रह करते हुए संपर्क भी किया । टी ए गोपीनाथ राव के *एलिमेंट्स ऑफ़ हिन्दू आइकनोग्राफी* (1914) के 20 फोटोग्राफ्स और प्लेटों को पुनः प्रकाशित करने के लिए त्रावणकोर राज्य के अधीक्षक से स्पष्ट आग्रह किया गया । [182](#) इन्हें प्रकाशित करने की अनुमति ठीक उस वक़्त मिली जब तस्वीरों को वार्षिक अंक में प्रकाशन के लिए भेजा जाना था ।

कल्याण में योगदान देने वाले कलाकारों में सबसे दिलचस्प नाम दत्तात्रेय दामोदर देवलालिकर का था । होलकर कॉलेज, इंदौर से स्नातक देवलालिकर राज्य स्कॉलरशिप पर सर जे जे स्कूल ऑफ़ आर्ट बॉम्बे गए जहाँ उन्होंने सेसिल बर्न्स, ए के त्रिन्ददे और ग्लेडस्टोन सोलोमन से प्रशिक्षण प्राप्त किया । उन्हें महान वाटर-कलारिस्ट समझा जाता था जिन्होंने बाद में जे जे स्कूल में पढ़ाया और उनका प्रभाव उनके यशस्वी विद्यार्थियों एन एस बेंद्रे और एम एफ हुसैन के कामों में देखा जा सकता था । देवलालिकर अपने गृहनगर लौट आए और सन् 1929 में इंदौर स्कूल ऑफ़ आर्ट के प्राचार्य बन गए । हालाँकि उन्हें होलकर शासकों ने सम्मानित किया था, लेकिन 1930 के दशक की मंदी के दौरान उन्हें गंभीर आर्थिक संकट से गुज़रना पड़ा । इस दौरान

उनके वेतन में सालों तक कोई बढ़ोतरी नहीं हो सकी और इसके चलते उन्हें प्राइवेट ट्यूशन देने को मजबूर होना पड़ा। ग्वालियर स्कूल ऑफ़ आर्ट में अवकाश प्राप्त प्रोफ़ेसर का कार्यकाल पूरा करने के बाद वह सरकार की मदद से दिल्ली में बस गए।

[183](#)

आर्थिक तंगी के दौरान ही देवलालिकर ने काम के लिए गीता प्रेस का दरवाजा खटखटाया था। उन्होंने टेलीग्राम के ज़रिए पोद्दार से संपर्क साधा जिसमें उन्होंने पोद्दार को तत्काल ज़रूरत होने की बात बताई। इंदौर स्कूल ऑफ़ आर्ट का प्राचार्य बनने के बाद एक साल के भीतर ही उनकी कुंठा बढ़ गई, उन्होंने पोद्दार को सन् 1931 में छह महीने की छुट्टी मिलने की संभावना की बात बताते हुए तार भेजा और उनकी सलाह माँगी। इससे पहले कि पोद्दार कोई जवाब लिखते, देवलालिकर ने एक और टेलीग्राम भेजकर कहा कि वे एक सप्ताह के भीतर गोरखपुर में होंगे। [184](#) गीता प्रेस ने देवलालिकर को वापस टेलीग्राम भेजकर इंतज़ार करने को कहा। पोद्दार ने उनको लिखा, 'इसलिए यही निश्चय किया कि अभी चित्रों पर अधिक खर्च नहीं किया जाये, इसलिए बारह महीने तक लगातार आपके द्वारा काम कराने का विचार छोड़ना पड़ा। आप लम्बी छुट्टी न लें। अभी तो थोड़े ही खर्च से थोड़ा ही काम करवाने का इरादा है। आप एक माह का अवकाश लेकर यहाँ आ सकते हैं।' [185](#) देवलालिकर ने आशा नहीं छोड़ी। उन्होंने इंदौर से पेंटिंग्स और ड्राइंग्स भेजना शुरू कर दिया तथा और काम माँगा। उन्होंने अपना खर्च पूरा करने के लिए एक तरह का अंतरिम भुगतान भी माँगा। [186](#) उन्होंने पोद्दार को पेंटिंग्स के काम से जुड़ी छोटी-से-छोटी प्रगति के बारे में भी सूचित करना जारी रखा, उदाहरण के तौर पर उन्होंने पोद्दार को यह तक बताया कि एक तैल चित्र को पूरी तरह सूखने में कितने दिन लगेंगे। [187](#) 1930 के दशक में देवलालिकर को गीता प्रेस से नियमित काम मिलने लगा, जिससे उनकी आय में कुछ बढ़ोतरी हुई। मौक़े-बेमौक़े उन्होंने तत्काल आधार पर पैसे भी माँगे। उन्होंने गोरखपुर आने की इच्छा भी नहीं छोड़ी और सन् 1932 में छह महीने की छुट्टी के लिए आवेदन किया। [188](#) यह संभव है कि इस दौरान उन्होंने गीता प्रेस का दौरा किया हो।

अहमदाबाद के कानू देसाई एक अन्य ऐसे दिग्गज कलाकार थे जिन्होंने गीता प्रेस और *कल्याण* के हिन्दू आइकनोग्राफी कोश में अपना योगदान दिया। वे कलाकार और प्रतिष्ठित कला पत्रिका *कुमार* के संपादक तथा नंदलाल बोस के साथ मिलकर हरिपुरा कांग्रेस [189](#) के पंडाल को सजाने वाले राजनीतिक कार्यकर्ता तथा अध्यापक रविशंकर रावल के शिष्य थे। कला इतिहासकार और भारतविद् हरमन गोएल्ज़े की देखरेख में कानू देसाई का काम आज भी बड़ौदा म्यूजियम में सुरक्षित है। [190](#)

गीता प्रेस से देसाई के जुड़ाव का सिलसिला 1930 के दशक के आरंभ में शुरू हुआ और सन् 1938 तक उन्हें *कल्याण-कल्पतरु* के *धर्म तत्व अंक* के लिए आवरण चित्र बनाने को कहा गया। उन्होंने मानवता का धर्म, धर्म और युद्ध, ईश्वर में विश्वास का मूल्य और बाकी अन्य अमूर्त विषयों पर भी चित्र तैयार करने का भी प्रस्ताव दिया ताकि

इन सबका प्रयोग वर्ष भर हो सके। ¹⁹¹जब उनसे *कल्याण* के वार्षिक अंक *गीता तत्व* (1939) के लिए चित्र बनाने को कहा गया तो देसाई ने यह कहते हुए पोद्दार से सहायता माँगी कि उन्हें लगता है कि 'कोई गीता से जुड़ी तस्वीरों में विचारोत्तेजक, समुचित और सांकेतिक भाव तब तक नहीं डाल सकता जब तक उसने इसे पूरी तरह पढ़ा और आत्मसात न कर लिया हो।' ¹⁹²

इव यैयोवन मैदे दी मोरोस के हंगेरियन पिता और रूसी माता जेनेवा में शिक्षक थे। मोरोस अपने प्रेम सिख रेजीमेंट के सैन्य अधिकारी विक्रम रामजी खानोलकर की तलाश में भारत आई। खानोलकर से उनकी मुलाकात यूरोप में हुई जब वे रॉयल मिलिट्री स्कूल, सैंडहर्स्ट में अपना पाठ्यक्रम पूरा करने के बाद छुट्टी मना रहे थे। भारत पहुँच कर उन्होंने विक्रम से विवाह किया और भारतीय जीवन और संस्कृति से जुड़कर अपना नाम सावित्री रख लिया। भारतीय मिथकशास्त्र में सावित्री गहरी रुचि रखती थीं। सहायक जनरल हीरालाल अटल ने जब उन्हें बतौर चित्रकार स्वतंत्र भारत के सर्वोच्च शहीद सैन्य सम्मान परमवीर चक्र की रूपरेखा को बनाकर उसे निश्चित करने को कहा तो सावित्री ने दोहरे वज्र की छवि का प्रयोग किया। संयोगवश, भारत का पहला परमवीर चक्र स्वर्गीय सोमनाथ शर्मा को प्रदान किया गया जो सावित्री की बड़ी बेटी के बहनोई थे।

सन् 1939 में सावित्री के पति उत्तर-पश्चिम सीमांतीय प्रान्त के नौशेरा में तैनात थे, जब सावित्री ने पहली बार अपनी पेंटिंग्स के साथ गीता प्रेस से संपर्क किया। उन्होंने छपने के लिए *कल्याण-कल्पतरु* में दो तस्वीरें भेजीं। एक 'पूजा का तत्वबोध' अथवा 'आराधना' बताने वाली वॉटरकलर पेंटिंग थी, जबकि दूसरी पेंटिंग में 'ताण्डव के देव शंकर या नटराज' को दिखाया गया था। ¹⁹³गीता प्रेस ने उनके काम को स्वीकार कर लिया और जैसा कि सावित्री के एक अन्य पत्र से पता चलता है, पोद्दार ने उनसे उनकी 'आराधना' पेंटिंग में थोड़ा 'फेर-बदल' करने की अनुमति माँगी। सावित्री इस पर सहमत हो गई, लेकिन अन्य कलाकारों की तरह ही उन्होंने ब्लॉक तैयार होते ही अपनी मूल पेंटिंग वापस करने को कहा। ¹⁹⁴

गीता प्रेस के लिए सबसे सफल कलाकार इलाहाबाद के विनय कुमार मित्र थे। जगन्नाथ चित्रकार और भगवानदास के साथ वे भी गीता प्रेस के चित्रकार बन गए थे। विनय कुमार मित्र इलाहाबाद के एक बंगाली थे जिनके चित्र आज भी *कल्याण* के पृष्ठों की शोभा बढ़ाते हैं।

1960 के दशक के अंतिम वर्षों तक गीता प्रेस ने कला कार्यों के संसार को विस्तार तो दे दिया था, लेकिन बुढ़ापे और बीमारियों के चलते कलाकार अब इसका साथ छोड़ने लगे थे। *कल्याण* के *उपासना अंक* (1968) की संपादकीय टिप्पणी में संपादकों पोद्दार और चिम्नलाल गोस्वामी ने इस विशेषांक में कम चित्र होने के कई कारण बताए : 'हमारे पुराने चित्रकार श्री वी के मित्र महोदय की आँखें खराब हो गईं। वे चित्र निर्माण कर नहीं पा रहे हैं। दूसरे कुशल चित्रकार श्री जगन्नाथ का देहावसान हो

गया । श्री भगवानदास एक कुशल चित्रकार हैं पर इन दिनों वे भी प्रायः अस्वस्थ रहते हैं, इससे हमारी इच्छा के अनुसार चित्र नहीं दिए जा सके । तदापि जो चित्र दिए गए हैं वे बड़े सुंदर हैं तथा भावपूर्ण भी ।’ [195](#)

सन् 1955 में राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद ने गीता प्रेस गोरखपुर में दो कला संबंधी नवाचारों का उद्घाटन किया—गीता द्वार और लीला चित्र मंदिर । पोद्दार के अनुसार, यह नया गीता द्वार भारतीय कला, संस्कृति और समर्पण की विस्तृत वास्तुकला और मूर्तिकला को दिखाता है । इस नए द्वार पर पाँच मूर्तियों के चित्र थे— नारायण, शिव, गणेश, सूर्य और महाशक्ति । ये पाँचों सनातन धर्म की आत्मा समझे जाते थे । इसके बाद राम और कृष्ण की अवतार छवियों वाली मूर्तियाँ थीं । साथ ही पूरे देश भर के सत्रह पूज्य स्थानों के वास्तुकला तत्वों को मिलाकर द्वार के डिज़ाइन में एकीकृत किया गया था । इन सत्रह स्थानों का चयन केवल अपने भौगोलिक विस्तार के लिहाज़ से ही दिलचस्प नहीं था, बल्कि सनातन हिन्दू धर्म के एलोरा, अजंता, दक्षिणेश्वर, द्वारका, मथुरा, सीतामढ़ी, कोणार्क, मदुरई, अमृतसर, खजुराहो, साँची, माउंट आबू, केदारनाथ, बोधगया और अन्य स्थानों को स्वदेशी धर्मों जैसे बुद्धवाद, जैनवाद, सिखवाद के साथ एकीकृत करने के प्रयास के लिहाज़ से भी बहुत दिलचस्प था । [196](#)

लीला चित्र मंदिर भी अपने डिज़ाइन और उद्देश्य में गीता द्वार जितना ही भव्य था । लगभग 800 वर्ग मीटर से ज़्यादा क्षेत्र में विस्तृत और लगभग छह मीटर ऊंची छत वाले इस मंदिर की दीवारों पर सम्पूर्ण गीता लिखी गई थी, साथ ही कबीर, रहीम, तुलसीदास, सुंदरदास, पल्लू और नारायण स्वामी के 700 चयनित दोहे लिखे गए थे । इन दीवारों पर लगाई गई तस्वीरों में 684 तस्वीरें भारतीय कला पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों को दर्शाती थीं । मुग़ल, राजपूत, कांगड़ा, मेवाड़ी, बॉम्बे, बंगाल और विभिन्न दक्षिण भारतीय स्कूलों की पेंटिंग्स को भी दर्शाया गया था । गीता प्रेस ने विशेष रूप से विभिन्न घरानों के कलाकारों को इस कार्य को पूरा करने के लिए आमंत्रित किया था । इन तस्वीरों में कृष्णलीला, रामलीला और भगवान और संतों के विभिन्न अवतारों को दिखाया गया था । [197](#)

अपने भाषण में राष्ट्रपति ने भारतीय संस्कृति की अनश्वरता और सनातन हिन्दू धर्म की सहनशीलता पर ज़ोर देते हुए कहा कि दोनों का मिश्रण ही बहुत से धर्मों का सार है । उन्होंने कहा, ‘जहाँ एक तरह अन्य धर्म एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में विभेद करते हैं, वहीं भगवद्गीता एकता का उदाहरण पेश करती है ।’ उन्होंने गीता प्रेस से अपने द्वार साधारण लोगों के लिए खोलने को कहा ताकि सनातन हिन्दू धर्म के मूल्य आगे प्रसारित हो सकें और लोगों के जीवन को रूपांतरित करने में मदद करें । प्रसाद ने कहा कि इसीलिए ‘गीता प्रेस में जो काम आज तक हुआ है और हो रहा है इसका मैं आदर करता हूँ । और चाहता हूँ कि वह दिन-प्रतिदिन अधिक विस्तार पावे ।’ [198](#)

मृतकों का वृतांत

हालाँकि यह बात अपने आप में महत्वहीन लग सकती है, लेकिन एक दिलचस्प ढंग से *कल्याण* मृतकों को सम्मान देकर अपने कैथोलिक स्वभाव का प्रदर्शन करता था। इनमें ऐसे लोग भी शामिल होते थे जो सामान्य रूप से हिन्दू राष्ट्रवाद के उद्देश्य और विशेष रूप से गीता प्रेस के खिलाफ़ थे। मृतकों के प्रति कोई बुरी बात न बोलने के सिद्धांत का पालन करते हुए *कल्याण* ने श्रद्धांजलियों का एक मिला-जुला रोचक संग्रह निर्मित कर लिया था जिसमें केशव बलिराम हेडगेवार से लेकर किंग जार्ज पंचम, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, एम एस गोलवलकर, संपूर्णानंद, एस राधाकृष्णन, जुगलकिशोर बिड़ला, इंदिरा गांधी और राजीव गांधी तक शामिल थे। हालाँकि सबसे बड़ी श्रद्धांजलि पंडित मदनमोहन मालवीय को दी गई। *कल्याण* ने सन् 1946 में उनकी मृत्यु पर अतिरिक्त अंक निकाला था। ऐसा भक्तिभाव किसी और व्यक्ति की मृत्यु पर नहीं प्रकट किया गया।

निस्संदेह, कुछ जगहों पर श्रद्धांजलि देने में बहुत देर की गई और कुछ लोगों को छोड़ भी दिया गया। महात्मा गांधी की हत्या का उल्लेख कभी नहीं किया गया, हालाँकि सन् 1948 में बहुत बाद में उनकी जीवन शिक्षाओं से जुड़े बहुत से लेख प्रकाशित किए गए। गीता प्रेस ने सनातन हिन्दू धर्म के अपने संसार के लिए अभिशाप की तरह रहे बी आर अम्बेडकर की मृत्यु को पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दिया।

जब सन् 1928 में लाहौर में साइमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन में हुए लाठी चार्ज में लाला लाजपत राय की मौत हुई तो गीता प्रेस तीसरे वर्ष में प्रवेश कर रही थी। पोद्दार ने लाला लाजपत राय को राष्ट्र के लिए शहीद होने वाला व्यक्ति बताया। उनके समर्पित जीवन, सेवा के अनुकरण और उनके जाने से खाली हुए स्थान को भरने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। [199](#)

नेहरू परिवार, विशेषकर मोतीलाल नेहरू और उनके पुत्र जवाहरलाल नेहरू गीता प्रेस को प्रिय नहीं थे। जवाहरलाल नेहरू ने *कल्याण* और उसकी गतिविधियों से उचित व सतर्क दूरी बनाए रखी। मोतीलाल नेहरू ने भी मालवीय के नेतृत्व में कांग्रेस के रूढ़िवादी धड़े को संतुष्ट करने के लिए धार्मिक मसलों पर कभी-कभार किए गए फैसलों के बावजूद अपनी धर्म-निरपेक्ष छवि बरकरार रखी। सन् 1931 में मोतीलाल नेहरू की मृत्यु के पश्चात् पोद्दार ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा कि कैसे वे जीवन के अंतिम दिनों में गायत्री मन्त्र और राम नाम का जाप करते हुए धर्म की ओर उन्मुख हुए थे! [200](#)

सन् 1911 के दिल्ली दरबार द्वारा किंग जार्ज पंचम का राज्याभिषेक मनाने के फैसले ने उन्हें भारत के घर-घर में मशहूर कर दिया। उनकी मृत्यु सन् 1936 में तब हुई जब *कल्याण* अपने पांव जमाने की कोशिश कर ही रहा था। किंग जार्ज पंचम को श्रद्धांजलि देना केंद्र सरकार का विश्वास जीतने के लिए एक ऐसी पत्रिका द्वारा उठाया गया नपा-तुला क़दम था जो हिन्दू राष्ट्रवाद को स्वाधीनता आंदोलन के लिए अनिवार्य शर्त मानती थी। पोद्दार ने किंग जार्ज पंचम को एक आदर्श पिता, आदर्श नरपति,

आदर्श पुत्र और आदर्श मित्र कहा और उनकी मृत्यु के चलते उनके परिवार, दोस्तों और उनसे जुड़े लोगों पर छाई निराशा को उचित ठहराया। [201](#)

हिन्दी साहित्यिक जगत के प्रभावशाली व्यक्ति प्रेमचंद पोद्दार के पुराने दोस्त थे। अक्टूबर, 1936 में अपनी मृत्यु से पहले प्रेमचंद गीता प्रेस कार्यालय गए और उन्होंने वापस आकर गीता प्रेस में दो महीने बिताने का वायदा किया था। पोद्दार ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि प्रेमचंद अपना वायदा पूरा नहीं कर सके और दार्शनिक अंदाज़ में लिखा कि नियति को यही मंज़ूर था। [202](#)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक के बी हेडगेवार की मृत्यु जून 1940 में हुई, लेकिन गीता प्रेस ने उनका सम्मान लगभग एक दशक बाद किया। *कल्याण* के सन् 1950 के विशालकाय अंक *हिन्दू संस्कृति अंक* में दी गई लघु श्रद्धांजलि में शिवनाथ दूबे ने भावुक होकर लिखा कि हेडगेवार बचपन से ही बड़े लक्ष्यों के लिए बने थे। कलकत्ता में मेडिकल के छात्र के रूप में बिताए गए दिनों के दौरान हेडगेवार की दिलेरी, उनके द्वारा सन् 1925 में आरएसएस की स्थापना और अविवाहित रहने के निर्णय का वर्णन करते हुए दूबे ने निष्कर्षस्वरूप लिखा, 'जब तक हिन्दुओं का अस्तित्व बना रहेगा, तब तक आपकी स्मृति अमिट रहेगी।' इस तरह गीता प्रेस ने हेडगेवार के प्रति गहरे सम्मान को सार रूप में वर्णित किया। [203](#)

नेहरू ने गांधी और अपने अन्य कांग्रेसी साथियों की तरह गीता प्रेस को कभी संरक्षण प्रदान नहीं किया। उनकी पश्चिमी शिक्षा और विचार तथा केन्द्रोन्मुख-वाम नीतियाँ नए भारत के हिन्दू राष्ट्रवादियों की विरोधी थीं। इसलिए *कल्याण* द्वारा सन् 1964 में नेहरू की मृत्यु के बाद उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि देना नेहरू के प्रति सम्मान कम और *कल्याण* की विवशता अधिक थी। वास्तविकता यह थी कि गीता प्रेस को नेहरू की लोकप्रियता के बारे में पता था। साथ ही उसे यह भी मालूम था कि देश के पहले प्रधानमंत्री को श्रद्धांजलि नहीं देने की उन्हें क्या नैतिक क़ीमत चुकानी पड़ सकती है! पोद्दार द्वारा दी गई श्रद्धांजलि में नेहरू की अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सहयोग में निभाई गई सुप्रसिद्ध भूमिका को स्वीकार किया गया। उन्होंने कहा कि नेहरू के भीतर ऐसा बहुत कुछ था जिसका अनुसरण सभी विचारधाराओं के लोग कर सकते हैं। [204](#)

नेहरू के उत्तराधिकारी लाल बहादुर शास्त्री और उनकी पत्नी ललिता व्यक्तिगत तौर पर पोद्दार और गीता प्रेस के नज़दीक थे। ये दोनों ही *कल्याण* के लिए लेखन किया करते थे। सन् 1965 में शास्त्री की ताशकंद में हुई आकस्मिक मृत्यु पर पोद्दार ने लिखा कि उनकी मृत्यु ने अफ़सोसजनक ढंग से एक विजय यात्रा (पाकिस्तान से युद्ध के बाद) को शवयात्रा में तब्दील कर दिया। लाल बहादुर शास्त्री की जिस मौत पर आज तक अटकलबाज़ी होती है उसे शहादत घोषित करते हुए गीता प्रेस ने शास्त्री को विश्व-शान्ति का प्रकाश स्तम्भ बताया। उन्होंने कहा कि शास्त्री गीता प्रेस परिवार का हिस्सा थे [205](#) और उनका आकस्मिक निधन यह सीख देता है कि जीवन अनिश्चित है, इसलिए लोगों को ईश्वर की भक्ति की राह कभी छोड़नी नहीं चाहिए।

पोद्दार की मृत्यु सन् 1971 में हुई और उसके बाद चिम्नलाल गोस्वामी *कल्याण* के संपादक बन गए । पोद्दार की स्मृति को एक अंक तक सीमित नहीं रखते हुए, पत्रिका ने अपने संस्थापक-संपादक को अनेक अंकों तक याद किया । उनके आलेख आज तक पुनः प्रकाशित किए जाते हैं ।

सन् 1973 में गोलवलकर का निधन गीता प्रेस के लिए एक और बड़ा झटका था । भीमसेन, जिन्हें आरएसएस ने गोरखपुर में रहकर पोद्दार की सेवा करने के लिए गीता प्रेस में रखवाया था, ने गोलवलकर के लिए विस्तृत श्रद्धांजलि लिखी । यहाँ तक कि पोद्दार और गोलवलकर ने एक परस्पर प्रशंसा समाज चलाया था । गोलवलकर हमेशा कहा करते थे कि बहुत से महापुरुषों ने देशभक्ति, सामाजिक एकता और सामाजिक सेवा का सन्देश फैलाया है, लेकिन यह पोद्दार ही थे जो लोगों को इतने बड़े पैमाने पर सफलतापूर्वक आस्थावान बना सकते थे और बुनियादी धार्मिक ग्रंथों को लोकप्रिय बना सकते थे । भीमसेन ने लिखा कि गोलवलकर उन्हें पोद्दार के पास काम करने के लिए भेजकर किस क्रूर ख़ुश थे । उन्होंने स्वामी अखंडानंद की छत्रछाया में गोलवलकर द्वारा शुरुआत में लिए गए आध्यत्मवाद के प्रशिक्षण को याद किया । अखंडानंद सरगाची स्थित रामकृष्ण मिशन आश्रम में रामकृष्ण परमहंस द्वारा प्रत्यक्ष रूप से दीक्षित सोलह सदस्यों में से एक थे । अखंडानंद की सलाह पर ही गोलवलकर ने आजीवन दाढ़ी और लम्बे बाल रखे । [206](#)

भीमसेन ने इस बात के लिए गोलवलकर की विशेष रूप से प्रशंसा की कि कैसे उन्होंने आरएसएस के संचालन पर राजनीति का प्रभाव नहीं पड़ने दिया, बावजूद इसके कि बहुत से स्वयंसेवकों ने राजनीति में गहरी रुचि ली । उन्होंने 1950 के दशक में वर्धा के समीप आरएसएस शिविर में गोलवलकर और अटल बिहारी वाजपेयी की हुई एक रोचक मुलाकात को याद किया जिसमें वरिष्ठ आरएसएस/जनसंघ नेता दीनदयाल उपाध्याय भी मौजूद थे । प्रश्नोत्तर सत्र में वाजपेयी ने गोलवलकर से पूछा, ‘सत्ता की प्रकृति ऐसी होती है कि जैसे ही वह संकेंद्रित होती है, वह सामान्य तौर पर क्रूर या पाशविक सत्ता में तब्दील हो जाती है । इस बात की क्या गारंटी है प्राचीन भारतीय दर्शन और धर्म से लिया गया आपका गहन सत्ता का सिद्धांत पाशविक नहीं होगा?’ इस पर गोलवलकर ने जवाब दिया, ‘कोई भी सत्ता जो आधारभूत रूप में आध्यत्मिक है, कभी पाशविक नहीं होती । हमें केवल अपने आधारभूत सिद्धांतों की चिंता करनी चाहिए ।’

अपने प्रधानमंत्री पद के दौरान इंदिरा गांधी भी विभिन्न मौकों पर हिन्दू राष्ट्रवादियों की चहेती रहीं । पूर्वी पाकिस्तान में की गई उनकी कार्रवाई, जिसके फलस्वरूप सन् 1971 में बांग्लादेश बना, ने उन्हें पूरे देश की नायिका बना दिया था । कुछ लोग तो उन्हें शक्ति का अवतार दुर्गा कहने लगे थे । सन् 1984 में अपने ही सुरक्षाकर्मी द्वारा की गई उनकी हत्या पर *कल्याण* में छपा कि यह हत्या भारतीय इतिहास में हमेशा काले अध्याय के रूप में दर्ज होगी । अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि में *कल्याण* ने लिखा,

‘श्रीमती गांधी देश की सर्वमान्य नेता थीं । जो निर्भीकता और साहस के साथ देश की समस्याओं के समाधान में सदैव संलग्न रहती थीं । राष्ट्र की एकता, अखंडता शान्ति और प्रगति ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था । जिसके लिए उन्होंने राष्ट्र की वेदी पर अपने जीवन का बलिदान कर दिया । यद्यपि कुछ असामाजिक तत्वों ने वंचनापूर्वक उनके भौतिक विग्रह का विनाश कर दिया तदपि उनकी आत्मा तो आज भी अमर है जिसे कोई मार नहीं सकता ।’ [207](#)

सात साल से कम समय के भीतर ही खुद इंदिरा गांधी के बड़े पुत्र और पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की श्रीपेरंबदूर, तमिलनाडु में हत्या कर दी गई । *कल्याण* के संपादक राधेश्याम खेमका ने इसकी तुलना ‘आसक्त शिव द्वारा विश्व के विनाश के लिए किए जाने वाले नृत्य तांडव’ [208](#) से की और इसे समाज में बढ़ रही हिंसा के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया । हत्या के लिए एक मानव बम को हथियार की तरह प्रयोग में लाए जाने ने भी पत्रिका को चौंका दिया था । [209](#)

आर्थिकी और जनबल

एक ऐसी पहल के साथ बने रहना चुनौती का काम था जो मुनाफ़ा आधारित न हो । गीता प्रेस एक ऐसा ही उद्यम था और इस चुनौती को *कल्याण* के पहले अंक के कुछ दिनों के बाद ही पोद्दार ने भांप लिया था । गंभीरचंद दुजारी को लिखते हुए पोद्दार ने कहा था कि जब तक *कल्याण* के 2,000 सदस्य नहीं हो जाते हैं तब तक इसे बॉम्बे से छापना लाभप्रद नहीं होगा और इसलिए इसकी ‘सदस्यता आधार बढ़ाने की कोशिश करनी होगी ।’ [210](#)

प्रकाशन समूह से जुड़े कुछ शीर्ष मारवाड़ी उद्योगपतियों के साथ गीता प्रेस ने एक नया ‘व्यापारिक प्रारूप’ खड़ा करने का विचार बनाया जो बग़ैर मुनाफ़े और विशाल पूंजी निवेश की दुनिया में अपनी जड़ें जमा सके । इसके लिए एक तरीका निकाला गया: गीता प्रेस के प्रबंध न्यास गोबिंद भवन कार्यालय को विविधता प्रदान करते हुए न्यूजप्रिंट का अत्यधिक मुनाफ़े वाला व्यवसाय बनाने का विचार रखा गया । यह भी तय किया गया कि खादी वस्त्र, जनेऊ, साबुन, कांच के कंगन, जूते (बिना चमड़े वाले), घी और आयुर्वेदिक दवाओं आदि जैसे लघु-मुनाफ़ा उपक्रम शुरू किए जाएँ । ये उम्मीद की गई कि इस तरह के विभिन्न उत्पादों से आने वाला मुनाफ़ा न केवल कम लागत वाले प्रकाशन समूह को चलाने में मदद करेगा बल्कि गीता प्रेस के नक़दी के संकट को भी दूर करेगा । गोबिंद भवन ने पुरुष विद्यार्थियों को संस्कृत और वेद पढ़ाने के लिए चुरू राजस्थान में एक आश्रम भी चलाया ।

लेकिन इन वैकल्पिक ‘व्यापारिक प्रारूपों’ ने *कल्याण* की प्रसार संख्या और नियमित रूप से पुनः प्रकाशित किए जा रहे प्रकाशनों के चलते लगातार बढ़ रही जनबल संख्या का ध्यान नहीं रखा । पोद्दार, गोयन्दका और अन्य प्रवर्तक सनातन हिन्दू

धर्म की रक्षा और उसे लोकप्रिय बनाने के विचार में इस क्रूर धंसे हुए थे कि उन्होंने यह मान लिया था कि जो भी गीता प्रेस की छत्रछाया में आएगा, वह धर्म के व्यापक उद्देश्य के लिए अपनी निजी महत्वाकांक्षाओं और पारिवारिक दायित्वों को छोड़ देगा। सन् 1932 में शुरू हुए इस प्रकाशन समूह ने 25 वर्ष से कम की अवधि में प्रेस कामगारों द्वारा की गई पाँच हड़तालों का सामना किया।

सन् 1932 की हड़ताल में शुरुआत में गीता प्रेस ने कड़ी अनुशासनात्मक कार्रवाई की, लेकिन इससे हड़ताल बंद नहीं हुई। पोद्दार इस समय रतनगढ़ में थे और उन्हें समझौता करने के लिए हड़ताल में हस्तक्षेप करना पड़ा, लेकिन यह समझौता थोड़े समय के लिए ही रहा। गौरीशंकर द्विवेदी के नेतृत्व में कामगारों ने अगले ही साल फिर काम रोक दिया। हड़ताल फिर कामगारों की मांगों को पूरा किए बिना ही खत्म हो गई। यह हड़ताल गोबिंद भवन कार्यालय द्वारा कर्मचारियों के वेतन में प्रति 100 रुपए पर 15 रुपए की कटौती के निर्णय से पुनः शुरू हो गई। पोद्दार ने पुनः इस निर्णय का विरोध किया और कामगारों का साथ दिया। उन्होंने कहा कि अन्य प्रेस कामगारों की तरह गीता प्रेस के कामगारों के पास नियत काम के घंटे या छुट्टियां नहीं हैं। 'काम हुआ तो सुबह छह बजे से रात को ग्यारह बजे तक काम करते हैं। कई आदमी ऐसे हैं जिनका पारिवारिक खर्च मुश्किल से चलता है ऐसी अवस्था में उन लोगों का वेतन घटा कर उनके मन को चंचल करना। तथा पेट के लिए भरसक दूसरी नौकरी खोजने के लिए बाध्य करना, काम में लाभ की दृष्टि से कहाँ तक उचित है?' ²¹¹ पोद्दार ने कहा कि इस मामले में गोयन्दका से भी बात करेंगे।

गीता प्रेस के कामगारों में बढ़ते असंतोष का फ़ायदा साम्यवाद और समाजवाद के तेज़ी से उभर रहे विचारों ने उठाया। ²¹² 1920 और 1930 के दशक तक गोरखपुर में ट्रेड यूनियन संस्कृति दिखाई देने लगी थी। स्थानीय कांग्रेस नेता विंध्यवासिनी प्रसाद वर्मा शहर में रेलवे कामगारों को धरना और प्रदर्शन के लिए संगठित कर रहे थे। ²¹³

सन् 1936 में एक और हड़ताल हुई जब पोद्दार एक बार फिर रतनगढ़ में थे। राजनैतिक माहौल में हो रहे बदलाव और संयुक्त प्रांत की राजनीति में कांग्रेस के बढ़ते वर्चस्व से परिचित पोद्दार ने गीता प्रेस के वरिष्ठ प्रशासकीय अधिकारी गंगाप्रसाद को लचीला रुख अपनाने के लिए सहमत करने की कोशिश की, 'इस समय देश में कांग्रेसी सरकार का ज़ोर है ऐसी हालत में मज़दूर और किसानों की शक्ति बढ़ना स्वाभाविक था। हम लोग भी तो गरीबों और दबे हुए लोगों को सुख शान्ति से देखना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में कर्मचारियों की ओर से कोई कुछ कहे तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। और यह ख्याल रखना चाहिए कि ज़माने की रफ़्तार देखते अभी मज़दूर और किसान युग ही आने वाला है। जो गरीबों के दुखों को किसी अंश तक कम करने वाला होगा। यद्यपि द्वेष एवं हिंसा के भावों से प्राप्त हुई मज़दूरों और किसानों की उन्नति ठहरेगी नहीं।' ²¹⁴

पोद्दार ने प्रसाद को यूनियन नेताओं से बात करने और उन्हें हर संभव सुविधाएँ मुहैया कराने को कहा। उन्होंने सुझाव दिया कि अगर गांधी और मालवीय की ज़रूरत हो तो उनकी भी मदद लें। 'हमारे संस्थान की सबसे पहली पहचान गरीबों के संस्थान की होनी चाहिए। मैं शांत रहता हूँ और अब भी कुछ नहीं कह रहा हूँ क्योंकि मुझे नहीं लगता कि मेरा उद्देश्य पूरा हो रहा है। किसी को भी धमकाने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं गौरीशंकर द्विवेदी को कामगारों का नेता नहीं मानता हूँ। वे जो कुछ भी कर रहे हैं, नफ़रत के चलते कर रहे हैं। संपूर्णानंद, नरेंद्रदेव, राजाराम शास्त्री और पुरुषोत्तमदास टंडन से भी सलाह लेनी चाहिए।' ²¹⁵ लेकिन हड़ताल के ख़त्म होने से पहले पोद्दार को खुद गोरखपुर आकर यूनियन नेताओं से बात करनी पड़ी। हालाँकि ज़्यादातर कामगारों को बहाल कर दिया गया, जबकि गीता प्रेस अधिकारियों ने कुछ को निकाल भी दिया।

सन् 1937 की हड़ताल में एक मुख्य मांग कर्मचारियों के लिए भविष्य निधि (प्रोविडेंट फंड) की स्थापना करना था। यह मांग अंततः सन् 1939 में जाकर पूरी हुई जब गीता प्रेस भविष्य निधि की स्थापना हुई। यह अधिसूचना 3 अप्रैल, 1939 को बोर्ड ऑफ़ ट्रस्टी गोबिंद भवन कार्यालय द्वारा भविष्य निधि से जुड़े नियम मंज़ूर करने के बाद उद्योग विभाग द्वारा जारी की गई। ²¹⁶

सन् 1945 में जब कामगारों के एक हड़ताल नोटिस से संबंधित मांगों को आंशिक तौर पर स्वीकार कर लिया गया तो हड़ताल आगे बढ़ गई। पोद्दार की बहुत कोशिशों के बाद भी सन् 1946 में एक से डेढ़ महीने के लिए गीता प्रेस के बंद होने की घोषणा हुई। सन् 1948 में एक बार फिर कामगार हड़ताल पर चले गए। अपराध निरीक्षण विभाग ने सरकार को भेजी गई अपनी बहुत-सी रिपोर्टों में यह इंगित किया कि 'गीता प्रेस के मज़दूर अपनी मांगें नहीं पूरी होने की स्थिति में हड़ताल पर जाने का विचार कर रहे हैं।' एक समय पर कामगारों ने अपनी हड़ताल बंद कर दी थी, लेकिन यह महसूस करते हुए कि उनकी मांगें पूरी नहीं हुई हैं, उन्होंने पुनः हड़ताल का नोटिस दे दिया। ²¹⁷

एक वजह जिसने गीता प्रेस के वित्तीय प्रबंधन को प्रभावित किया वह थी, जन आपदाओं के समय उसके द्वारा किया गया हस्तक्षेप। गीता प्रेस की स्थिति आरएसएस जैसी ही थी जो बाढ़, अकाल और निःशुल्क आयुर्वेदिक चिकित्सालयों के माध्यम से लोगों को राहत मुहैया करा रही थी। हालाँकि सामाजिक पूंजी के निर्माण के उद्देश्य से ये गतिविधियाँ धनी मारवाड़ी संरक्षकों और सरकार की आंशिक आर्थिक मदद से चलाई जा रही थीं, लेकिन आने वाले सालों में गीता प्रेस को इन गतिविधियों को चलाए रखने के लिए अपने संसाधनों को भी झोंकना पड़ा। गोरखपुर और आस-पास के इलाकों में सन् 1936 की बाढ़ के दौरान पोद्दार द्वारा आरंभ किया गया गीता प्रेस सेवा दल आज भी गोबिंद भवन कार्यालय के विभाग के तौर पर कार्य कर रहा है।

पोद्दार के कागज़ात में सन् 1936 से 1938 की बाढ़ और सन् 1942 के अकाल के दौरान गीता प्रेस द्वारा किए गए काम का विस्तृत लेखा-जोखा है। साथ ही स्थानीय प्रशासन, राजनीतिज्ञों और प्रेस द्वारा इस काम के बदले मिलने वाले सम्मान और

प्रशंसा का भी जिक्र है। प्रतिष्ठित पत्रिका *सरस्वती* ने पोद्दार द्वारा अनाज और कपड़ों के लिए की गई अपील को भी जगह दी। ²¹⁸

गोरखपुर के कलेक्टर आईसीएस जे ई पेडले गीता प्रेस द्वारा सन् 1938 की बाढ़ के दौरान किए गए कार्य से इस क़दर प्रभावित हुए कि उन्होंने 'हनुमानप्रसाद पोद्दार और गीता प्रेस की निःस्वार्थ सज्जनता' की प्रशंसा करते हुए एक प्रशंसा पत्र लिखा कि उनके बग़ैर 'इस जिले और अन्य जिलों के बाढ़ग्रस्त गांवों के हज़ारों लोगों तक राहत पहुँचाना लगभग असंभव होता।' ²¹⁹ सन् 1942 के अकाल के समय गोरखपुर के कमिश्नर एच एस रॉस ने सस्ते दामों में अनाज उपलब्ध कराने के काम को 'वास्तविक लोकोपकार' बताते हुए गीता प्रेस का स्तुति गान किया। ²²⁰ जब मुज़फ़्फ़रपुर में गीता प्रेस द्वारा खरीदे गए चावल की आपूर्ति में देरी हुई तो रॉस ने दखल देते हुए बिहार सरकार के कांपट्रोलर ऑफ़ प्राइजेज को राज्य से अनाज निर्यात करने को लिखा क्योंकि यह 'विशुद्ध रूप से लोकोपकारी उपक्रम' था। ²²¹ उन्होंने बताया कि गीता प्रेस के पास अनाज को ढोने के लिए अपने वाहन हैं। कुछ अन्य ब्रिटिश अधिकारियों, जिनमें बहुत से रेल प्रशासन में थे, ने गीता प्रेस के राहत कार्य की प्रशंसा की।

1950 के दशक में जब आज़ाद भारत की पहली सरकार ने कामकाज संभाला तो गीता प्रेस को नए नियमों के कारण हुए बदलावों का सामना करना पड़ा। पहला निर्णय जिसने गीता प्रेस को सीधे प्रभावित किया, वह था पुस्तक पैकेटों की पोस्टल दरों में लगभग 100 प्रतिशत की बढ़ोतरी। गीता प्रेस ने इसका विरोध किया और संसद में गीता प्रेस से सहानुभूति रखने वाले नेताओं जैसे पोद्दार के क़रीबी दोस्त, बुजुर्ग कांग्रेस नेता और रूढ़िवादी धड़े के सदस्य सेठ गोविन्द दास से दखल देने की मांग की। ²²² पोस्टल दरों में बढ़ोतरी को 'प्रत्यक्ष रूप से देश की व्यापक जनसंख्या और परोक्ष रूप से देश की वित्त व्यवस्था को प्रभावित करने तथा बढ़ती बेरोज़गारी' और 'देश में शिक्षा और ज्ञान के प्रसार में बाधा बनने वाला क़दम' बताते हुए गीता प्रेस ने सेठ गोविन्द दास से इस मामले को संसद में उठाने का आग्रह करते हुए एक संक्षिप्त नोट भेजा। इस नोट में यह दावा किया गया था कि गीता प्रेस के कुछ लोकप्रिय प्रकाशनों—जैसे भगवद् गीता, रामायण और दुर्गा सप्तशती आदि पर लगाए गए पोस्टल शुल्क इन पुस्तकों की कीमत के बराबर हैं। साथ ही डाक विभाग पर अपने एकाधिकार का दुरुपयोग करने का भी आरोप लगाया। सरकार ने अपने इस क़दम में कोई रियायत नहीं बरती।

सन् 1956 में जब कर्मचारी प्रोविडेंट फंड एक्ट 19, 1952 के विस्तारीकरण की संभावना की खबर आई तो सबसे पहले गीता प्रेस ने उत्तर प्रदेश के श्रम आयुक्त (लेबर कमिश्नर) को इस एक्ट से छूट मांगने के लिए याचिका दायर की। इस याचिका में छूट का एक कारण सरकार द्वारा संचालित भविष्य निधि योजना के प्रति गीता प्रेस के कर्मचारियों की अनिच्छा बताया गया था। गीता प्रेस के मैनेजर बी एल चांदगोठिया ने तर्क दिया कि प्रेस के पास पहले से ही अपनी भविष्य निधि है जिसके 'नियम

कर्मचारियों के लिए किसी भी तरह सरकारी कर्मचारी भविष्य निधि के प्रावधानों की तुलना में कम फ़ायदेमंद नहीं हैं।' ²²³ वे ऐसे किसी भी नियम में संशोधन के लिए सहमत हो गए जो कर्मचारियों के लिए कम फ़ायदेमंद हो। चांदगोठिया ने गीता प्रेस की मज़बूत वित्तीय स्थिति साबित करने के लिए इसके खाते जांचने की पहल भी की। भविष्य निधि का मुद्दा कामकाजी पत्रकारों के लिए सन् 1967 में बनाए गए वेतन बोर्ड के सुझावों की तुलना में कम उलझा हुआ था।

कल्याण और *कल्याण-कल्पतरु* के समाचार पत्र की परिभाषाओं के दायरे में आने की संभावना से सतर्क जयदयाल डालमिया, जो गीता प्रेस से 1960 के दशक से ही जुड़े हुए थे, ने डालमिया इंटरप्राइजेज के क़ानूनी विभाग से सलाह माँगी। क़ानूनी सलाह स्पष्ट रूप से यह थी कि दोनों ही पत्रिकाएँ समाचार पत्र की श्रेणी में नहीं आती हैं क्योंकि इनमें आने वाले आलेखों में सार्वजनिक समाचार या उन पर कोई टिप्पणी शामिल नहीं होती है। लेकिन गीता प्रेस बेहद सतर्कता से यह देखना चाहता था कि कहीं *कल्याण* की ही तरह की अन्य प्रकाशित पत्रिकाएँ वेतन बोर्ड के अनुसार समाचार पत्र के रूप में तो परिभाषित नहीं हैं। ²²⁴ डालमिया ने गीता प्रेस को उत्तर प्रदेश के एडवोकेट जनरल से भी क़ानूनी सलाह लेने को कहा ताकि भविष्य में कोई उलझन होने पर राज्य सरकार अपने ही शीर्ष क़ानूनी अधिकारी की सलाह को खारिज नहीं कर सके। ²²⁵

1960 के दशक के अंतिम वर्षों में गोबिंद भवन कार्यालय को अपनी आय में नियत गिरावट का सामना करना पड़ा जबकि उसके खर्चों में कोई कटौती नहीं हुई थी। इसके अलावा न्यूजप्रिंट की कीमत भी 25-30 प्रतिशत बढ़ने की उम्मीद थी और प्रेस कामगारों को भी सरकार द्वारा निर्धारित नया वेतन मिलना था जिसके चलते गीता प्रेस का वेतन पर खर्च होने वाला बजट सालाना 3 लाख तक पहुँचने वाला था। पोद्दार ने कहा कि इस स्थिति से निपटने के दो तरीक़े हैं, पहला यह कि गीता प्रेस की आय को बढ़ाया जाये और दूसरा गीता प्रेस के कार्य को थोड़ा समेटा जाये। हालाँकि *कल्याण* की कीमत बढ़ा दी गई है, लेकिन घाटे की भरपाई के लिए केवल इतना ही आवश्यक नहीं होगा। विभिन्न प्रकार के क़दम सफल नहीं रह सके थे: कलकत्ता में गोबिंद भवन कार्यालय के निचले तल को किराए पर देने का निर्णय असफल साबित हुआ, ठीक इसी तरह सरकारी अस्पतालों को न्यूनतम 20-25 प्रतिशत कमीशन पर आयुर्वेदिक दवाओं की बिक्री के लिए विनिर्माण का विचार भी अपेक्षा के अनुरूप सफल नहीं रहा था। पोद्दार ने सुझाव दिया कि आयुर्वेदिक इकाई को अतिरिक्त आय के लिए पुनः आरंभ किया जा सकता है। गोयन्दका के शिष्य मोहनलाल पटवारी ने भी एक प्रस्ताव रखा जिसके अनुसार गीता प्रेस को हथकरघा वस्त्र व्यवसाय का कार्य आरंभ करना चाहिए जिससे गीता प्रेस को 150,000 की वार्षिक आय हो सकती है। पोद्दार इस विचार पर सहमत थे और इस पर समर्थन प्राप्त करने के लिए उन्होंने ईश्वरीप्रसाद गोयनका को गोबिंद भवन कार्यालय न्यास की बैठक में मौजूद रहने को कहा। यह कहा गया कि

‘बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो बैठक में हुए बिना सर्कुलर माध्यम से निश्चित नहीं हो सकतीं ।’ [226](#)

सन् 1969 में कलकत्ता की जूता यूनिट में कामगारों ने संभवतः 1960 के अंतिम दशक में शहर में ट्रेड यूनियन के बढ़ते प्रभाव के चलते गोबिंद भवन कार्यालय के सामने स्वयं को ठेकेदार के रूप में रखने और प्रति कामगार प्रति महीने 5 रुपए लाइसेंस शुल्क के रूप में घटाने के विरुद्ध प्रदर्शन किया । कामगारों ने जूता निर्माण दरों में 25 प्रतिशत बढ़ोतरी, लाइसेंस शुल्क खत्म करने, एक महीने के वेतन के बराबर वार्षिक बोनस, पूरी मज़दूरी के साथ त्योहार अवकाश और कर्मचारी और नियोक्ता दोनों तरफ़ से 10 प्रतिशत योगदान के साथ भविष्य निधि देने की मांग की ।

जूता व्यवसाय प्रेस की तरह नहीं था । यह गोबिंद भवन कार्यालय के लिए विविधतापूर्ण व्यवसाय था और कामगारों द्वारा अपनी मांग पर अड़े रहने की स्थिति में आसानी से बंद किया जा सकता था । यह पूरा मामला सन् 1969 में सर पर आ पड़ा जब कामगारों ने गोबिंद भवन कार्यालय की घेराबंदी कर ली । गोबिंद भवन के बहुत से वरिष्ठ अधिकारियों को घंटों तक बंधक बना लिया गया और पुलिस को दखल देनी पड़ी । बंधक बनाए जाने की घटना से पहले ही लेदर यूनिट को बंद करने का निर्णय लिया जा चुका था क्योंकि गोबिंद भवन इस बात को लेकर स्पष्ट था कि अपने कर्मचारियों को स्थायी नौकरी देने से इसका थोड़ा-बहुत मुनाफ़ा भी चला जाएगा और समस्याएं आगे और उलझ जाएंगी । इसके अलावा, राज्य सरकार का रवैया भी सहयोगपूर्ण नहीं था । गोबिंद भवन के एक अधिकारी ने कुछ इस तरह कामगारों की बढ़ती ताक़त के प्रति अपना पछतावा जताया: ‘कोई भी कामगारों के विरुद्ध कुछ करने की नहीं सोच सकता । बंगाल की स्थितियों को देखकर यह असंभव लगता है कि कोई अनुकूल समझौता हो ।’ [227](#)

हालाँकि गोबिंद भवन के लिए स्थितियां तब बेहतर हुईं जब पश्चिम बंगाल श्रम आयुक्त कार्यालय (लेबर कमिश्नर ऑफिस) ने जांच के बाद निष्कर्षस्वरूप कहा, ‘लोगों ने कांट्रेक्ट एग्रीमेंट के तहत काम किया न कि इंडस्ट्रियल डिस्प्यूट एक्ट में परिभाषित “कामगारों” के रूप में ।’ श्रम आयुक्त कार्यालय (लेबर कमिश्नर ऑफिस) ने यह भी इंगित किया कि सैंतीस लोगों ने ‘आपूर्तिकर्ता’ के रूप में अपनी देनदारी को पहले ही निपटा लिया है । ‘इन परिस्थितियों में, आपूर्तिकर्ताओं को इंडस्ट्रियल डिस्प्यूट एक्ट के तहत कामगार नहीं माना जा सकता और इस तरह के विवादों को इंडस्ट्रियल विवाद नहीं कहा जा सकता ।’ [228](#)

गोबिंद भवन के सन् 1968-69 के वार्षिक खाता विवरण में फैंसी चप्पलों के अलावा बाकी सभी प्रकार के जूतों की बिक्री में गिरावट दर्ज की गई । रिकॉर्ड के अनुसार वेलवेट जूतों की बिक्री बढ़ी थी, हालाँकि एक साल पहले उनको बेचा ही नहीं गया था । रिपोर्ट में जूता विभाग के कर्मचारियों द्वारा सामान चुराने की बढ़ती प्रवृत्ति का

भी ज़िक्र किया गया था । अन्य विभागों से भी वित्तीय घाटे की ऐसी ही कहानियाँ सामने आ रही थीं । [229](#)

अंततः जब गोबिंद भवन के न्यासी 7 मार्च, 1970 को पोद्दार के निवास स्थान गीता वाटिका में मिले तो उस बैठक की कार्यसूची में पहला बिंदु जूते के व्यवसाय को हमेशा के लिए बंद करना था । यह भी प्रस्तावित किया गया कि उन घरों को खाली करा लिया जाये जहाँ कामगार रहते थे और संबंधित संपत्ति को बेच दिया जाये । [230](#) न्यासी सदस्यों ने यह भी तय किया कि चुरू के ऋषिकुल ब्रह्मचर्य आश्रम में तब तक नए विद्यार्थियों को नहीं प्रवेश दिया जाएगा जब तक वहाँ से कुछ दुष्ट तत्वों को निकाल नहीं दिया जाता । यहाँ तक कि आश्रम के वार्षिक समारोह को भी कुछ समय के लिए रोक दिया गया ।

गोबिंद भवन कार्यालय को लगातार व्यापार और धर्म तथा लाभ और दान के बीच के झगड़े को निपटाने के लिए काम करना पड़ा । हालाँकि न्यूजप्रिंट व्यापार से बड़ा मुनाफ़ा हुआ लेकिन ऋषिकुल आश्रम के बढ़ते घाटे, गीता प्रेस, *कल्याण* और गोबिंद भवन की चिंता के कारण थे । गीता प्रेस के संचालन की लागत भी लोगों द्वारा दिए गए योगदानों पर आने वाले ब्याज से निकल रही थी । काफ़ी चर्चा और आंतरिक कलह के बाद *कल्याण* और अन्य प्रकाशनों का आवरण मूल्य बढ़ाया गया । गीता प्रेस के प्रकाशनों का पहली बार दाम 50 प्रतिशत तक सन् 1942 में बढ़ाया गया था जब न्यूजप्रिंट की कीमत बढ़ी थी । लेकिन ये कीमत न्यूजप्रिंट की कीमत स्थिर होने के बाद घटा भी ली गई थी । पोद्दार ने महसूस किया कि कीमतों को बढ़ाना ही उपक्रम को टिकाए रखने और कर्मचारियों के गुस्से को क़ाबू में करने का एकमात्र तरीक़ा है । 1960 के दशक में हुई बढ़ोतरी को जायज़ ठहराते हुए उन्होंने कहा, ‘तो एक रुपया खर्च करके एक रुपया वसूल करना अधर्म क्यों हो?’ [231](#)

पोद्दार ने पूरी ज़िम्मेदारी लेते हुए कहा कि गीता प्रेस की कीमतें धार्मिक पुस्तकें बेच रहे अन्य संस्थानों की तुलना में अब भी कम थीं । ‘गीता प्रेस की गीता आदि पुस्तकों की कीमत उस समय की रखी हुई है जिस समय काग़ज़ का दाम तीन रुपए प्रति पौंड था और कर्मचारियों का वेतन छह रुपए से शुरू होता था ।’ [232](#) एक कुशल व्यवसायी की तरह अपने असफल हो रहे व्यवसाय को उबारने में लगे पोद्दार ने बताया कि कैसे आगत के पाँच से सात गुना बढ़ने के बावजूद, प्रकाशन अब भी पुरानी लागत पर ही पत्रिकाएँ बेच रहा था क्योंकि नुक़सान की भरपाई न्यूजप्रिंट व्यवसाय के मुनाफ़े से हो रही थी । हालाँकि न्यूजप्रिंट व्यवसाय से होने वाला मुनाफ़ा ख़त्म होने की कगार पर था । ‘गत वर्ष दो लाख का घाटा रहा । इस वर्ष तथा अगले वर्ष नौकरी और बढ़ानी पड़ेगी । महंगाई है ही, सरकारी क़ानून है और मज़दूर यूनियन है । महंगाई में उनकी मांगे अनुचित नहीं हैं । दाम न बढ़ाए जाएँ घाटा लगता चला जाये तो पूँजी कम होगी, सो तो होगी ही ।’

पोद्दार ने गीता प्रेस की चरमराई हुई आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला । ‘प्रेस और रियल स्टेट (प्रॉपर्टी) में पूंजी निवेश की गई है, पुस्तकों का स्टॉक लोगों द्वारा जमा पैसों से तैयार किया गया है जबकि न्यूजप्रिंट के लिए बैंक लोन लिए गए हैं ।’ उन्होंने अपने कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए लोगों से योगदान लेने के प्रस्ताव को यह कहते हुए अस्वीकृत कर दिया कि आखिर हर साल कौन रुपए देगा! पोद्दार ने कहा, ‘सभी ट्रस्टी करोड़पति नहीं हैं । हम सूखे जैसे आपातकालीन स्थितियों में योगदान लेकर काम ज़रूर कर सकते हैं लेकिन बिक्री आधारित संस्था को दान लेकर चलाना सही नहीं है । ईसाईयों का मामला अलग है । उन्हें धार्मिक प्रचार के लिए करोड़ों का फंड मिलता है । किसी भी ट्रस्टी के पास इसकी चालू लागत के लिए एक लाख से दो लाख रुपए भी शायद ही होंगे, योगदान देने की बात अलग ही रखी जाये । हमें दो ट्रस्टों से पैसा उधार लेना पड़ा । इन हालात में हम भावनाओं पर आश्रित होकर काम नहीं कर सकते । हमें यथार्थवादी ढंग से इससे निपटना होगा ।’

आर्थिक उठापटक के दौर से गुज़रते हुए भी गीता प्रेस ने सन् 1968 में तय किया कि भगवद्गीता के अंग्रेज़ी अनुवाद को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया जाये । इसका अनुवाद सन् 1952 से 1957 तक लगातार छह साल *कल्याण-कल्पतरु* के वार्षिक अंकों में छपा गया था । 1,728 पृष्ठों में प्रकाशित किया गया यह एक बड़ा काम था । जयदयाल डालमिया ने *द टाइम्स ऑफ़ इंडिया* और *द इंडियन एक्सप्रेस* से 3,000 से 5,000 प्रतियों के लिए संपर्क किया । इसमें उन्होंने मुनाफ़ा शामिल नहीं किया क्योंकि ‘यथासंभव कम कीमत पर धार्मिक पुस्तकों की आपूर्ति ही गीता प्रेस का लक्ष्य था ।’ ²³³ *द टाइम्स ऑफ़ इंडिया* ने सफ़ेद काग़ज़ पर 3,000 प्रतियों के लिए 67,392 का अनुमानित दाम तय किया और पतले या बाइबल काग़ज़ पर तीन हज़ार प्रतियों के लिए 91,584 रुपए देना तय किया । ²³⁴ गोयनका ने कहा कि *द इंडियन एक्सप्रेस* के पास ‘दिल्ली में ऑफ़सेट प्रेस’ नहीं था, केवल ‘रोटरी प्रेस’ ही था । ²³⁵ इसके बावजूद भी उन्होंने ‘दिल्ली में गीता प्रेस के लिए कोई भी काम निःशुल्क करने की बात कही ।’

सन् 1970 में अखबारी काग़ज़ की रोक के बाद गीता प्रेस ने बड़ा संकट झेला । यह न्यूजप्रिंट की सीमित आपूर्ति का दौर था । सरकार की तरफ़ से सभी अखबारों के लिए एक सीमित कोटा तय किया गया था । कई अखबारों ने अपने सर्कुलेशन के आंकड़ों को बढ़ा कर पेश किया ताकि उसके अनुसार न्यूजप्रिंट मुहैया हो सके और बाद में वे उसकी कालाबाज़ारी कर सकें ।

‘जिस प्रकरण की वजह से केवल गीता प्रेस का आर्थिक संकट बढ़ता, उसने उसकी कार्यप्रणाली को ही संदेह के घेरे में खड़ा कर दिया ।’ यह जल्द सामने आया कि गीता प्रेस द्वारा *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु*, तथा अन्य धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशन के लिए आवंटित न्यूजप्रिंट को बाज़ार में बेचा जा रहा था । गीता प्रेस को न्यूजप्रिंट आपूर्ति करने और गंगाप्रसाद बिड़ला के मालिकाना हक़ वाली ओरिएंट पेपर

मिल्स ने बात सामने आने पर आपूर्ति पूरी तरह से रोक दी । तब पोद्दार का स्वास्थ्य ठीक नहीं था और इस घटना में उनकी सहभागिता पर संदेह बना हुआ था । इस घटना ने गीता प्रेस की छवि को भारी क्षति पहुँचाई । यह छवि सनातन हिन्दू धर्म के सिद्धांतों और निजी व सार्वजनिक स्तर पर उच्च नैतिक मूल्यों तथा ईमानदार लेन-देन की वकालत करने वाले एक धार्मिक प्रकाशन की थी ।

जी पी बिड़ला न्यूजप्रिंट की आपूर्ति को चालू करने पर मान गए । उन्होंने पोद्दार के इस आश्वासन को माना कि ‘भेजे जा रहे कागज़ का प्रयोग प्रकाशन के लिए ही किया जाएगा, बाज़ार में बेचने के लिए नहीं’ ²³⁶ लेकिन जी पी बिड़ला के क़रीबी श्यामसुंदर गोयनका ने दो टूक शब्दों में कहा, ‘गीता प्रेस जिन परेशानियों से जूझ रहा है उसके लिए वह स्वयं ज़िम्मेदार है ।’ ²³⁷ उन्होंने गीता प्रेस को आश्वासन देते हुए कहा, ‘अच्छे उद्देश्य के लिए काम कर रही एक संस्था’ को अपने ही काम के लिए आपूर्ति की कमी जैसी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा । यह कहीं-न-कहीं पोद्दार के गीता प्रेस की कार्यप्रणाली से बढ़ते अलगाव का परिचायक था । गोयनका ने कहा कि प्रेस को उनके आश्वासन के अनुसार निष्ठापूर्वक काम करना चाहिए ।

कुछ महीने के भीतर ही गीता प्रेस को न्यूजप्रिंट की भारी कमी का सामना करना पड़ा । हालाँकि न्यूजप्रिंट का मासिक आवंटन कोटा 130 टन था, लेकिन गीता प्रेस को इस निर्धारित कोटे का केवल 30 प्रतिशत ही मिल रहा था । पोद्दार ने फिर दखल देते हुए इस मामले को जी डी बिड़ला के समक्ष रखा ताकि गीता प्रेस ‘सुचारू रूप से उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशन का काम जारी रख सके ।’ ²³⁸

सन् 1970 में रामनाथ गोयनका को *नारायणम* नाम का एक ग्रंथ मिला जिसमें 1,008 संस्कृत के श्लोक थे । उन्होंने उसे पोद्दार को भेजते हुए निवेदन किया कि इसे अनुवाद सहित प्रकाशित किया जाये । बहरहाल, जयदयाल डालमिया से यह पता चलने पर कि गीता प्रेस स्वयं न्यूजप्रिंट के संकट से जूझ रहा है और अपने ही कामों को बाहर से करवाने पर बाध्य है, रामनाथ गोयनका ने इसे दिल्ली से प्रकाशित करवाने का प्रस्ताव रखा । ²³⁹

घाटा जैसे-जैसे बढ़ता गया, गीता प्रेस अपने प्रकाशन के मूल्य बढ़ाने पर मजबूर हुआ । सन् 1970 में गोबिंद भवन ने 34,000 रुपए का घाटा उठाया । जबकि इससे पिछले साल में प्रकाशन को मुनाफ़ा हुआ था । ²⁴⁰ कागज़, पोस्टेज, और कर्मचारियों की तनख्वाह में हो रही वृद्धि हालात को और मुश्किल बना रही थी । पोद्दार ने ऐसे समय में भी क़ीमत बढ़ाने का विरोध किया । उन्होंने कहा कि किसी भी तरह की मूल्य वृद्धि गीता प्रेस के कम क़ीमत पर अच्छी गुणवत्ता वाली पुस्तकें उपलब्ध करवाने के बुनियादी आदर्श के विरुद्ध है । पोद्दार ने ईश्वरीप्रसाद गोयनका जैसे ट्रस्टियों को इस बात के लिए मनाया कि यदि किसी मूल्य वृद्धि की आवश्यकता है भी तो यह कार्य सन् 1970 की बैलेंस शीट बनने के बाद करना ही ठीक रहेगा । बंगाल में बढ़ रही नक्सली हिंसा को दिमाग़ में रखते हुए पोद्दार ने कहा कि पुस्तकों के बढ़े दाम से होने वाले

मुनाफ़े के कारण नज़र में आना भी आजकल के राजनैतिक हालात में ठीक साबित नहीं होगा। वे बंगाल व आस-पास के प्रांतों में बढ़ रही हिंसा से चिंतित थे। ²⁴¹

ठीक इसी समय पोद्दार को यह डर हुआ कि लगातार बढ़ रहे घाटे के चलते इस धार्मिक प्रकाशन समूह को बंद करने की भी नौबत आ सकती है। उन्होंने बताया कि किस तरह 90 पैसे में बेची जा रही *रामचरितमानस गुटका* की लागत 1.25 रुपए पड़ रही है और बेचने वालों के कमीशन का मूल्य अलग से देना पड़ता है।

स्वयं गीता प्रेस के भीतर भी *रामचरितमानस गुटका* की कीमत को लेकर तीखी बहस हुई क्योंकि इसे सन् 1970 में मॉरिशस से 100,000 प्रतियों का थोक ऑर्डर मिला था। पोद्दार और जयदयाल डालमिया इस दुविधा में पड़ गए कि इस ऑर्डर के बदले महज़ लागत मूल्य वसूला जाये या उसमें थोड़ा इज़ाफ़ा कर मुनाफ़े पर ध्यान दिया जाये। इस दुविधा में दोनों ने कई विकल्पों पर विचार किया। एक विकल्प यह था कि इन प्रतियों के मुख्यपृष्ठ पर दाम नहीं लिखा जाये और प्रकाशक के रूप में गीता प्रेस के स्थान पर इंडो मॉरिशस मैत्री संघ का नाम प्रकाशित किया जाये। ²⁴² काफ़ी चर्चा के बाद प्रत्येक प्रति का मूल्य एक रुपया निर्धारित किया गया। यह तय हुआ कि ऑफ़सेट प्रिंटिंग के निगेटिव पर होने वाला 3,500 रुपए का खर्चा विश्व हिन्दू परिषद के वरिष्ठ सदस्य जयदयाल डालमिया के बेटे विष्णु हरी डालमिया उठाएंगे। अगस्त 1964 में आरएसएस और अन्य हिन्दू समूहों के सदस्यों की मदद से गठित इस दक्षिणपंथी हिन्दू संगठन का उद्देश्य विश्व भर में हिन्दुओं का एक बड़ा नेटवर्क बनाना था। पचास प्रतिशत हिन्दू आबादी और धार्मिक संगठनों के विशाल नेटवर्क वाला मॉरिशस इस उद्देश्य के लिए आदर्श था। यह भी संभव है कि गीता प्रेस को इतना विशाल ऑर्डर दिलवाने में विश्व हिन्दू परिषद का कोई हाथ रहा हो।

कुछ इसी समय के दौरान गीता प्रेस ने धार्मिक साहित्य के निर्यात की निर्बंध अनुमति के लिए रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया से संपर्क किया। ²⁴³ यह अनुमति संभवतः मॉरिशस से आए ऑर्डर को पूरा करने के सिलसिले में मांगी जा रही थी। गीता प्रेस के पास निर्यात की स्वीकृति पहले से थी, जिसे मासिक तौर पर मंज़ूर किया जाता था। गीता प्रेस ने अपने आवेदन में यह तर्क दिया कि प्रत्येक तीस दिन के बाद इस अनुमति को आगे बढ़ाया जाता है, जिसमें बहुत देर हो जाती है। इस देरी के चलते गीता प्रेस की पुस्तकों को निःशुल्क ले जाने वाले सिंधिया स्टीम नेविगेशन कंपनी के जलपोत पर सामान की लदाई आए दिन छूट जाती है। इस तरह गीता प्रेस ने 'चीन, पुर्तगाल और पाकिस्तान के अलावा कई देशों में धार्मिक पुस्तकें निःशुल्क निर्यात करने का अनुमति पत्र मांगा।' ²⁴⁴ भारतीय रिज़र्व बैंक के सामने यह भी बताया कि 'विश्व के अन्य देशों के साथ बेहतर धार्मिक और सांस्कृतिक संबंध को विकसित करने के लिए, इस तरह के साहित्य का निर्यात मददगार होगा।'

पोद्दार के निधन के कई दशकों बाद भी गीता प्रेस ने आर्थिक उतार-चढ़ाव के कई दौर देखे हैं। हालाँकि भारत के प्रकाशन जगत में गीता प्रेस अब भी एक परिघटना की

तरह उपस्थित है जो कम-से-कम तकनीक के मामले में समय के साथ-साथ चल रहा है । उपभोक्ता प्रयोग में सुगम इसकी वेबसाइट गीता प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियाँ और *कल्याण* तथा *कल्याण-कल्पतरु* की ऑनलाइन सदस्यता आश्चर्यजनक रूप से कम दामों पर उपलब्ध करवा रही है ।

अध्याय 3

लेखक : स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय

हनुमानप्रसाद पोद्दार ने कई बार अपनी संपादकीय नीति के बारे में यह दावा किया कि गीता प्रेस और विशेषकर *कल्याण* मध्य-मार्ग अपनाएगा। वह न दूसरे धर्म पर प्रहार करेगा और ही हिन्दू धर्म में धर्मांतरण की वकालत करेगा। इस तरह मध्य-मार्ग अपनाने का दावा करने के बाद भी धर्म के संबंध में उनकी टिप्पणियों ने कहीं-न-कहीं यह स्पष्ट कर दिया कि उनकी नज़र में सभी धर्म एक-दूसरे से भिन्न हैं और उनमें एक्य नहीं हो सकता। ¹ यहाँ तक कि *कल्याण* और गीता प्रेस प्रकाशन ने तनाव व हिंसा के दौरान विभिन्न समुदायों को ध्रुवीकृत करने वाले विचार प्रकाशित किए।

महाकाव्यों और ऐतिहासिक ग्रंथों के अलावा गीता प्रेस प्रकाशन ने श्रुति, स्मृति और पुराणों का भी अपनी विषयवस्तु और शैली के लिए उपयोग किया। ² श्रुति 'हिन्दूवादी धर्मग्रंथों का सबसे पवित्र भाग है और इसे आस्था व विश्वास के मामलों में स्थापित व्याख्या या अंतिम सत्य के तौर पर माना गया है। इसकी अलग-अलग व्याख्याएँ हो सकती हैं लेकिन न इसे नकारा जा सकता है और न ही इसकी उपेक्षा की जा सकती है।' ³ यह माना गया है और जैसा कि इतिहासकार ए एल बाशम ने भी ध्यान दिलाया है कि श्रुति 'प्रत्यक्ष रूप से अपने लेखकों के सामने ही उजागर' हुई थी। ⁴ इसी श्रेणी में संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद आते हैं। स्मृति, 'जो उजागर हो चुकी है', में उत्तर-वैदिक युग में लिखे गए हिन्दू धर्म ग्रंथ शामिल हैं। इनमें अधिकांश हिस्से आचार संहिता से संबंधित हैं जिसे किसी-न-किसी रूप में तैयार किया गया है, जैसे *मनुस्मृति* और *याज्ञवल्क्य स्मृति* ⁵। स्मृति पवित्रता के मामले में श्रुति से थोड़ा नीचे मानी गई। ⁶ श्रुति बनाम स्मृति की व्यापक दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक जटिलताओं को सम्बोधित किए बिना ही गीता प्रेस ने दोनों ही नावों पर पैर रख दिए और दोनों के ही अंश प्रकाशित करने शुरू किए। इनका बड़ा लक्ष्य भारतीयों को वर्तमान के अँधेरे युग में उनके सुनहरे अतीत से परिचित करवाना था। इस उपक्रम ने 'पूरे देश को अपनी कक्षा' मान लिया और इसके अपने प्रकाशन ही इसके शिक्षण की सामग्री बन गए, ⁷ ऐसे में श्रुति और स्मृति में अंतर करने का मतलब सनातन हिन्दू धर्म

और इसकी गरिमा को पुनः प्राप्त करने के अपने व्यापक मिशन की राह में रोड़ा खड़ा करना था ।

संपादकीय नीति का लक्ष्य मनुष्य में अंतश्चेतना और निर्लिप्तता के माध्यम से छह गुणों का समावेश करना था । ये छह गुण थे—तितिक्षा, सम, दम, उपरति, श्रद्धा और समाधान । ⁸बहरहाल, उनके इन छह गुणों के लक्ष्य उभयमुखी थे लेकिन उसमें एक दुविधा थी । क्योंकि पत्रिका ने मनुष्य के जीवन धन और शारीरिक इच्छा की ज़रूरत को समझा और तरजीह दी लेकिन साथ ही यह भी कहा कि धर्म के माध्यम से उसे संयमित किया जा सकता है । ⁹

कल्याण व अन्य पुस्तकों के लिए लेख आमंत्रण एक धर्मनिरपेक्ष प्रक्रिया थी । पोद्दार इसके लिए हर दरवाज़े पर दस्तक देते थे । इसका लेखक की धार्मिकता या राजनैतिक पक्षधरता से कोई लेना-देना नहीं था । कल्याण के लेखकों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी भिक्षुक, आध्यात्मवादी, अकादमिक विद्वान और राजनेता सभी शामिल थे । इसका मुख्य लक्ष्य हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान की ज़रूरत पर प्रकाश डालना और जनमत तैयार करते हुए इसे एक सामूहिक प्रक्रिया में तब्दील करना था ।

साधु, संन्यासी, सनातनी

गीता प्रेस की पुस्तकें साधुओं और संन्यासियों के उद्धरणों से भरी पड़ी हैं । कहा जाता है कि शहर के नामी विद्वान और बनारस के संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य गोपीनाथ कविराज ने स्वामी ज्योति (क्षीरोदनंदन दत्त रॉय) को कल्याण के सन् 1933 के वार्षिकांक में लिखने के लिए बाध्य किया । इस दौरान उन्होंने स्वामी जी को अपने साथ छह घंटों के लिए एक कक्ष में बंद कर लिया था और उनके भक्त बाहर प्रतीक्षा करते रहे । डिप्टी कलेक्टर से संन्यासी बने श्री नारायण स्वामी को पोद्दार ने बहुत समझा-बुझाकर अपने जीवन की यात्रा के बारे में लिखने के लिए तैयार किया । वे उर्दू में लिखने के लिए माने और बाद में उसका अनुवाद किया गया । स्वामी शिवानंद ने अंग्रेज़ी में लिखा । पारसी मूल के स्वामी मेहर बाबा ने कल्याण के लिए लेखन किया । पत्रकार पॉल ब्रंटन ने उनके लम्बे-चौड़े आध्यात्मिक दावों के कारण कई बार उनकी आलोचना की लेकिन साथ ही ‘पश्चिम में योग और साधना को प्रचलित करने’ का श्रेय भी दिया । ¹⁰ मेहरदास के एक करीबी नागपुर के मॉरिस कॉलेज में दर्शनशास्त्र के व्याख्याता सी डी देशमुख ने एक व्याख्यान के सिलसिले में सन् 1941 में गोरखपुर का दौरा किया । बनारस से गोरखपुर पहुँचने से कुछ दिन पहले उन्होंने गीता पर एक व्याख्यान देने तथा कम-से-कम एक छोटे सत्संग में भाग लेने को लेकर अपनी दिलचस्पी जताते हुए पोद्दार को लिखा । ¹¹

श्री अरविंद घोष और मदर (पेरिस में जन्मी मीरा अल्फासा) ने मिलकर *कल्याण* के लिए पचास से ज़्यादा लेख लिखे । पोद्दार और अरविंद एक-दूसरे को कलकत्ता के दिनों से जानते थे । पोद्दार ने घोषित किया कि घोष संपादित *बंदे मातरम* और *धर्म* जो बाद में *कर्मयोगीन* बना, ने उन्हें उनके युवा दौर में क्रांतिकारी गतिविधियों जैसे स्वदेश बांधव समिति और अनुशीलन समिति से जुड़ने के लिए प्रभावित किया था । पोद्दार के संबंध घोष के अतिरिक्त उनके पांडिचेरी के अनुयायियों से भी अच्छे थे, और जीवनपर्यन्त अच्छे ही रहे । आश्रम के कई सदस्य गीता प्रेस के विभिन्न विभागों से भी जुड़े ।

कल्याण के लिए लिखने वाले साधु-संन्यासियों की सूची बनाना और उनसे जुड़े क्रिस्सों को इकट्ठा करना अपने आप में एक बड़ा काम है । पोद्दार के कागज़ात में मिले लेखकों की सूची यह बताने के लिए काफ़ी है कि *कल्याण* के लिए सबसे ज़्यादा लेखन भारत के धर्म गुरुओं ने किया है । ऐसा हो भी क्यों न, यह एक धार्मिक पत्रिका थी, जो पहली थी और जिसने पाठकों की कल्पनाओं को परख लिया था, खास कर उन्हें जो हिन्दू धार्मिक दुनिया से जुड़े थे ।

उदाहरण के तौर पर, इन लिखने वालों में एक माधव आशीष भी थे, जिनका वास्तविक नाम अलेक्जेंडर फिप्स था और उनके माता-पिता प्रोटेस्टेंट थे । वे एक पब्लिक स्कूल से लंदन, चेलेसी के एरोनॉटिकल इंजीनियरिंग कॉलेज गए, लेकिन अपना कोर्स पूरा नहीं कर पाए । फिप्स दूसरे विश्व युद्ध के दौरान बतौर एयरक्राफ्ट इंजीनियर भारत आए । एक मुलाक़ात में रमण महर्षि उन्हें अल्मोड़ा जिले के मिरतोला गाँव के उत्तर बृन्दावन आश्रम ले गए । फिप्स को उनके गुरु श्री कृष्ण प्रेम द्वारा फिर से नाम देकर माधव आशीष बनाया गया और वे कृष्ण प्रेम के खास सहयोगी हो गए । सन् 1959 में माधव ने पोद्दार को अपने गुरु द्वारा *मानवता अंक* के लिए लेखन न कर सकने के बारे में सूचित करते हुए लिखा कि 'वे अब लेखन पूरी तरह से बंद कर चुके हैं ।' ¹² माधव ने अपने न लिखने के बारे में भी सूचित किया । लेकिन सात साल बाद उन्होंने *धर्म अंक* (1966) के लिए लिखा ।

अन्य धार्मिक संगठनों के साथ भी गीता प्रेस ने मिलजुल कर काम किया । भारत धर्म महामंडल की स्थापना सन् 1902 में हुई । यह अपनी तरह का पहला संगठन था जिसके गठन में मदनमोहन मालवीय ने बड़ी भूमिका निभाई । सन् 1934 तक 'सनातनियों के अखिल भारतीय सामाजिक-धार्मिक समिति होने का दावा करने वाले और साम्राज्यवादी सरकार, हिन्दू शासित राजकुमारों, सभी धार्मिक प्रमुखों और हिन्दू समुदाय द्वारा मान्यता प्रदत्त' महामंडल ने अपने अनुभव से यह समझ लिया था कि अनुभव के बाद भी इनके प्रकाशन जनता तक उस तरह नहीं पहुँच रहे हैं जैसे गीता प्रेस के प्रकाशन पहुँच रहे हैं ।

इस संगठन के अध्यक्ष रहे दरभंगा के महाराजा ने पोद्दार को लिखा कि इनका प्रकाशन अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पा रहा है क्योंकि यह ब्राह्मणों द्वारा चलाया जा रहा है

जिन्हें वाणिज्य की समझ न के बराबर है। उन्होंने पोद्दार से पूरे महामंडल प्रकाशन का कार्यभार संभालने और उन्हें अपनी मर्जी से प्रकाशित करने का आग्रह किया। ‘आप भारत धर्म महामंडल के काम भी कर रहे हैं। यह मात्र हिन्दुओं की भलाई के लिए नहीं है बल्कि भगवान ने आपको चुना है ताकि आप दुनिया में ज्ञान का प्रकाश फैला सकें।’

¹³ बहरहाल, वजह जो भी रही हो, गीता प्रेस ने सहायता नहीं की।

इसी तरह स्वामी देव मूर्ति नाम के एक योग गुरु हुए जिन्होंने योग को यूरोप तक पहुँचाया। उनका कार्यालय लाउफ, जर्मनी में था। सन् 1968 में एक दशक बाद स्वामी जी का भारत दौरा तय हुआ। इस दौरे पर उनके साथ तीन यूरोपीय छात्र भी थे। उनके दिल्ली के सम्पर्क सूत्र श्यामस्वरूप शर्मा ने लिखा कि गीता प्रेस और स्वामी देव मूर्ति दोनों ही भारतीय सभ्यता, संस्कृति, दर्शन और धर्म को प्रचारित करने का एक समान लक्ष्य रखते हैं। यह भी कि गीता प्रेस द्वारा किए जा रहे काम के प्रति स्वामी जी के मन में प्रशंसा का भाव है और वे प्रकाशित पुस्तकों को अपने यूरोप आश्रम में रखना चाहते हैं। शर्मा ने लिखा कि बनारस के अपने एक दिन की यात्रा में स्वामी देव मूर्ति वहाँ के स्थानीय गीता प्रेस कार्यालय ज़रूर जाना चाहेंगे। ¹⁴

कुछ धर्म गुरुओं के प्रति गीता प्रेस का झुकाव सकारात्मक नहीं था जैसे कि महेश योगी। उनके योग के नए तरह का स्वरूप और भावातीत साधना के दर्शन की अव्यवस्थित-सी व्याख्या, जिसमें चेतन-अवचेतन स्तर पर समन्वय शामिल था, ने पोद्दार को चिंतित कर दिया था। बीटल्स (विश्व विख्यात रॉक म्यूजिक समूह) महेश योगी से उनके ऋषिकेश आश्रम सन् 1968 में मिलने आए और उनकी साधना के तरीकों को अंतर्राष्ट्रीय मीडिया तक पहुंचा दिया। गीता प्रेस उनकी साधना तकनीकों को शास्त्रों के मार्ग से विचलन और सनातन हिन्दू धर्म के लिए खतरा ही मानता था।

पोद्दार ने उनसे दूरी बनाए रखना ही उचित समझा और दो टूक शब्दों में उनके सिद्धांतों को ‘सनातन धर्म की भक्ति परम्परा का विरोधी’ कहा। *कल्याण* में महेश योगी पर कोई लेख लिखने की सम्भावना को नकारते हुए पोद्दार ने कहा कि उनकी आलोचना को छापना भी उन्हें प्रसिद्धि ही देगा, ‘परन्तु इसके विरुद्ध में *कल्याण* में लेख प्रकाशित करना प्रकारान्तर में इनके प्रचार का ही काम करने वाला होगा। *कल्याण* के पाठक जो कुछ भी जानकारी नहीं रखते हैं वे भी जान जाएँगे।’ ¹⁵ बहरहाल, पोद्दार ने पाठकों के सवाल वाले कॉलम में महेश योगी का नाम लिए बिना भावातीत साधना के पक्ष में गीता के कुछ हिस्सों की व्याख्या पर सवाल उठाए, ‘रही अनुयायी मिलने की तथा उनके व्याख्यानों में भीड़ होने की बात, सो भीड़ के लोगों की संख्या किसी मत के निर्भ्रांत सत्य होने का कदापि प्रमाण नहीं है... आजकल बहुत से अशास्त्रीय मत-पंथ चल रहे हैं इसे भी वैसा समझना चाहिए।’ ¹⁶

पोद्दार और गीता प्रेस दोनों के संबंध संयुक्त राज्य अमेरिका के इस्कॉन के संस्थापक स्वामी प्रभुपाद के साथ निजी और संस्थागत स्तर पर मधुर थे। हालाँकि कई बार प्रभुपाद पोद्दार के प्रति बहुत आलोचनात्मक होते हैं और कई बार ‘सांसारिक

टाइप' ¹⁷, 'बड़बोला', अवैयक्तिक ¹⁸ कहकर तक्ररीबन खारिज कर देते हैं। वे गीता और कृष्ण के आख्यान को जन-जन तक पहुंचाने के लिए गीता प्रेस को श्रेष्ठ स्थान देते थे। वे गीता प्रेस के प्रकाशनों में विज्ञापन को जगह न देने और *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* में पुस्तक समीक्षा न करने के लिए इसकी सराहना किया करते थे। ¹⁹ सन् 1961 या 1962 में प्रभुपाद ने गोरखपुर में पोद्दार के यहाँ आतिथ्य स्वीकार किया था और फ़रवरी 1971 में प्रभुपाद इस्कॉन के अपने चालीस छात्रों के साथ फिर गीता प्रेस के मेहमान बने। ²⁰

सन् 1970 की जनवरी में पोद्दार ने प्रभुपाद को लिखा कि उन्हें इस्कॉन के संसाधन व मंदिर परिसर में हुई वृद्धि की जानकारीयाँ चाहिए क्योंकि वे *कल्याण* में इस पर एक विस्तृत लेख छापना चाह रहे हैं। उस समय यात्रा में व्यस्त प्रभुपाद ने पोद्दार को लम्बा आत्मकथात्मक रेखाचित्र भेजा जिसमें उन्होंने शुरुआती दिनों में कलकत्ता के डॉ बोस की प्रयोगशाला में बतौर प्रबंधक काम करने से लेकर चैतन्य महाप्रभु को पश्चिमी दुनिया में ले जाने का संदेश देने वाले गुरु श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती से मिलने के सभी अनुभवों के बारे में विस्तार से लिखा। प्रभुपाद ने इस्कॉन के लिए *श्रीमद्-भागवतम* (1960-1961) छापने के लिए पोद्दार का भी शुक्रिया अदा किया, साथ ही उन्हें इस्कॉन की कार्यप्रणाली और अपने सम्प्रदाय के बारे में भी विस्तार से बताया। ²¹

कल्याण के लेख के लिए प्रभुपाद ने पोद्दार को सामग्री भेजने की तैयारी की तो वहीं पोद्दार ने इस्कॉन से जुड़ी जानकारीयों की एक पुस्तक छापने की अनुमति माँगी। प्रभुपाद सहमत हो गए। उन्होंने पोद्दार को बताया कि इस्कॉन के लंदन ऑफ़िस से तस्वीरें और अखबारों की कतरने भेजी जाएँगी। 'यह पुस्तक मेरे साथ संपूर्ण वैष्णव समाज में उत्साह भर देगी... भारत में भी हमें अभी बहुत कुछ करना है क्योंकि आजकल के राजनेताओं के भ्रामक प्रचार ने युवा पीढ़ी को ईश्वरविहीनता का शिकार बना दिया है।' ²²

यह लेख सन् 1971 में *कल्याण* के अप्रैल अंक में प्रकाशित हुआ। प्रभुपाद ने पोद्दार का आभार व्यक्त करते हुए पत्र लिखा और इसकी एक प्रति हवाई डाक से मंगवाई। ²³ प्रभुपाद ने चौथी लोकसभा के निर्दलीय सदस्य और हिन्दू महासभा के पूर्व अध्यक्ष एन सी चटर्जी को भी *कल्याण* में छपे लेख के बारे में सूचित किया। उन्होंने इसे इस्कॉन की गतिविधियों के बारे में 'खूबसूरती से लिखी गई खबर' कहा 'जिसके परिणामस्वरूप भारत से हमारे बारे में जिज्ञासा बढ़ी है।' ²⁴

रूढ़िवादी, परंपरावादी, उदारवादी

सन् 1926 में पोद्दार *कल्याण* के लिए गांधी की शुभकामनाएँ लेने जमनालाल बजाज के साथ उनसे मिलने गए। महात्मा ने उन्हें कभी विज्ञापन स्वीकार न करने की और पुस्तक समीक्षा कभी न छापने की दो हिदायतें दीं। गांधी ने कहा कि विज्ञापन अक्सर

बड़े वादे करते हैं जो कि झूठे होते हैं, लेकिन जब एक बार वे बड़ा मुनाफ़ा कमाना शुरू कर देते हैं तो उन्हें रोकना मुश्किल हो जाता है। गांधी ने पुस्तक समीक्षा के बारे में कहा कि अधिकांश लेखक चाहते हैं कि उनकी पुस्तक की सराहना की जाये और अगर ऐसा न किया जाये तो हम अक्सर लेखक को ठेस पहुँचा देते हैं। पोद्दार ने ये सलाह मानी और आज भी *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* में न तो विज्ञापन छपते हैं और न ही पुस्तक समीक्षाएँ! ²⁵

कल्याण के शुरुआती अंकों में गांधी द्वारा लिखे गए कई लेखों से लिए गए अंश प्रकाशित थे और सन् 1928 के *कल्याण* के वार्षिकांक *भक्त अंक* में उन्होंने स्वयं सन्देश सहित शुभकामनाएं भिजवाई थीं। चूँकि गांधी द्वारा गीता की ऐतिहासिकता को नकारा जाना गीता प्रेस के विचारों से मेल नहीं खाता था इसलिए वे गांधी द्वारा अनूदित गीता, *अनाशक्ति योग* को नहीं छापना चाहते थे ²⁶ गीता पर गांधी के प्रश्नचिह्न को लेकर *कल्याण* की असहमति को और पत्रिकाओं ने भी छपा। *कल्याण* के *श्री कृष्ण अंक* (1931) की समीक्षा करते हुए सरस्वती ने पद्मसिंह शर्मा द्वारा की गई गांधी की आलोचना को छपा। इसमें शर्मा ने यह कहते हुए उपहास किया था कि गांधी एक ओर महाभारत को काल्पनिक भी मानते हैं और दूसरी ओर गीता से अहिंसा की शिक्षाओं को उद्धृत भी करते हैं। जिसके अनुसार युद्ध के आरम्भ में ही अर्जुन ने शान्ति और अहिंसा के विचारों का प्रतिपादन कर दिया था। ²⁷

गीता प्रेस और महात्मा गांधी के संबंधों में हरिजनों के मंदिर प्रवेश और पूना पैक्ट जैसे जाति व साम्प्रदायिक मुद्दों पर बहुत-सी असहमतियों की श्रृंखलाओं के बीच उतार-चढ़ाव आते रहे। उसके बाद भी पोद्दार के कागज़ात में दी सूची के अनुसार *कल्याण* ने गांधी के कुल 54 लेख छापे। कुछ *नवजीवन* और *हरिजन* से लिए गए उद्धरण मात्र थे, लेकिन अधिकांश विशेष तौर पर गीता प्रेस के लिए लिखे गए थे जबकि कुछ मरणोपरान्त भी प्रकाशित किए गए। पोद्दार अक्सर जमनालाल बजाज या महादेव देसाई से महात्मा से कुछ-न-कुछ लिखवाने के लिए संपर्क किया करते थे। कई बार गांधी के एक अन्य करीबी प्यारेलाल, गांधी के लेखों में से कुछ चुनकर बापू की इजाज़त के साथ *कल्याण* के लिए भेजा करते थे। ²⁸ गांधी के लेख व्यक्ति के जीवन में ईश्वर की महत्ता से लेकर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव, हिन्दू विधवाओं की स्थिति और गो-रक्षा तक कई मुद्दों पर छपे। मुसलमानों के लिए गांधी के विचारों को लेकर *कल्याण* ने कई बार उनकी आलोचना की। लेकिन उग्र माहौल वाले 1940 के दशक में भी गांधी के लेख *कल्याण* में देखे जा सकते हैं।

गांधी के बहुत करीबी व उनके पांचवें पुत्र की तरह जाने गए जमनालाल बजाज ने अपने मार्गदर्शक गांधी की तरह उतने उत्साह व लगन से गीता प्रेस में लेखन नहीं किया। हालाँकि उन्होंने इसकी पूर्ववर्ती पत्रिका *मारवाड़ी अग्रवाल* के लिए लिखा था। जमनालाल बजाज ने *कल्याण* में केवल एक लेख लिखा कि किस तरह भगवान के नाम ने उनकी सहायता की।

गांधी के एक अन्य अनुयायी जी डी बिड़ला ने भी पोद्दार और गांधी से घनिष्ठता के बावजूद भी *कल्याण* के लिए लेखन नहीं किया। गांधी की हत्या के बाद उन्होंने पोद्दार और गीता प्रेस से दूरी बना ली। इसमें गीता प्रेस के सिद्धांत और उसकी पक्षधरता वाली सभी बातों से दूरी भी शामिल थी। सन् 1958 में पोद्दार ने जी डी बिड़ला को लिखने के लिए कहा लेकिन उन्होंने 'जल्द विदेश रवाना होना है' कहते हुए खेद प्रकट किया। ²⁹

जुगल किशोर बिड़ला जी डी बिड़ला के बड़े भाई थे। अफीम, सोने और चांदी के व्यापार से अपना भाग्य खुल जाने के बाद उन्होंने सब त्याग दिया और धर्म की राह अपनाते हुए हिन्दू महासभा के बड़े नेताओं से मित्रता कर ली। गो-रक्षा आंदोलन और हिन्दू कोड बिल के विरोध में पोद्दार के करीबी सहयोगी रहे बिड़ला ने *कल्याण* के लिए कई लेख लिखे। जिसमें सन् 1950 के *हिन्दू संस्कृति अंक* वाले कुछ लेख पोद्दार को विशेष प्रिय थे। बिड़ला के प्रति आभार व्यक्त करते हुए पोद्दार ने देश के अलग-अलग हिस्सों में लगातार चल रही हिंसा पर बात की। 'देश की स्थिति प्रतिकूल है, अभी यह और बिगड़ेगी।' ³⁰ मुसलमान और ईसाई संतों के जीवन संबंधी विवरण प्रकाशित करने की *कल्याण* की नीति की आलोचना जुगल किशोर बिड़ला ने की। उन्होंने कई बार सवाल किया, 'क्या हिन्दू में महात्मा संत नहीं हैं जो तुम मुसलमान और ईसाईयों के बारे में छापते हो?' ³¹

गांधी और मालवीय कांग्रेस के भीतरी विस्तार के दो ध्रुव थे। दोनों को ही गीता प्रेस में समान महत्त्व दिया गया। चूंकि मालवीय खुले समर्थक थे इसलिए उनका सान्निध्य स्पष्ट दिखता था। लेकिन बात जब *कल्याण* के लिए लिखने की हो तो गांधी की तुलना में मालवीय में उत्सुकता कम ही थी। पोद्दार ने इस बात को माना है 'मालवीय जी महाराज पत्र के उत्तर नहीं देते थे प्रायः वे लिखने में बड़े कच्चे थे, बोलने में तो बड़े पक्के थे।' ³² मालवीय ने कुल पंद्रह लेख भेजे जिनमें से अधिकांश सन् 1946 में उनकी मृत्यु के बाद ही प्रकाशित हुए।

इनके अलावा गीता प्रेस द्वारा न्योछावर किए प्रेम के हक्रदार जो बने उनमें से एक थियोसोफिस्ट और कांग्रेस नेता रहीं एनी बेसेंट थीं। भगवानदास के साथ मिल कर *सनातन धर्म: एन एडवांस्ड टेक्स्टबुक* लिखने वाली बेसेंट का निधन सन् 1933 में हुआ और वे गीता प्रेस को पल्लवित होते हुए नहीं देख पाईं। पोद्दार ने उन्हें सन् 1931 के *श्री कृष्ण अंक* के लिए कृष्णलीला पर एक लेख लिखने हेतु राजी कर लिया था। गीता प्रेस ने एनी बेसेंट के जीवन की कहानी को 'आदर्श भारतीय नारी' के रूप में भुनाया। उनका लेखन उनके निधन के बाद भी गीता प्रेस में छपता रहा।

'उदार हिन्दुवाद की पत्रिका' ³³ *भारत धर्म* के संपादक और भारत समाज के महत्वपूर्ण अंग रहे एस राजाराम ने भी सन् 1931 के *कल्याण* वार्षिकांक में कृष्ण केंद्रित लेख लिखा। सन् 1939 में मद्रास प्रेसिडेंसी के उग्र कांग्रेसी नेता और *द हिन्दू* के एक बार के लंदन प्रतिनिधि पत्रकार रहे एस सत्यमूर्ति ने *कल्याण* के लिए रामायण को

मानव जीवन का स्रोत बताते हुए एक लेख लिखा । कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी के संस्थापक और विधानसभा के सदस्य रहे तिलक के बहुत बड़े प्रशंसक एम एस अणे थे, जिन्होंने बिहार के गवर्नर पद पर रहते हुए उपनिषदों के आध्यात्मिक पक्ष पर लिखा । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर की हैसियत से समाजवादी आचार्य नरेन्द्र देव *कल्याण* में बच्चों की शिक्षा से जुड़े लेख लिखा करते थे ।

कांग्रेस के शीर्ष नेता और बाद में स्वतंत्र पार्टी गठित करने वाले सी राजगोपालाचारी ने *कल्याण* के लिए पांच लेख लिखे । पहला सन् 1928 में भक्त कणप्पा पर लिखा । ये तमिल साहित्य के बड़े आदिवासी मुखिया थे जिन्होंने भक्ति में शिव को अपनी दोनों आँखें चढ़ा दी थीं । सन् 1935 में पोद्दार ने राजगोपालाचारी को भगवान पर लिखने के लिए कहा, लेकिन उन्होंने विनम्रता से इंकार कर दिया । इसकी जगह राजगोपालाचारी ने गीता प्रेस से 'संक्षिप्त गीता' प्रकाशन के सिलसिले में मदद मांगी जिसे उन्होंने मद्रास की एक संस्था द्वारा अंतर्धार्मिक छात्रवृत्ति मिलने पर अंग्रेजी में लिखा था । मद्रास की इस संस्था ने वरियर एल्विन द्वारा लिखा ऐसा ही संक्षिप्त बाइबिल भी प्रकाशित किया था । ³⁴ इसमें गीता प्रेस ने उनकी सहायता नहीं की । शायद इसलिए क्योंकि राजगोपालाचारी ने यह स्पष्ट कर दिया था कि 'पूरी आर्थिक ज़िम्मेदारी और हानि-लाभ' गीता प्रेस को उठाना होगा । ³⁵

हिन्दू संस्कृति के प्रतिमान रूप में छपे सन् 1950 के विवादित *हिन्दू संस्कृति अंक* में एक लेख राजगोपालाचारी का भी था । लेकिन दो साल बाद मद्रास के मुख्यमंत्री रहते हुए उन्होंने *बालक अंक* (1953) में लिखने के लिए खुद को असमर्थ बताया । उन्होंने लिखा कि 'मैं अपनी शुभकामनाएं भेज रहा हूँ लेकिन क्षमा कीजिएगा, अभी मैं जो चाहता हूँ वह कर सकने वाली स्थिति में नहीं हूँ ।' ³⁶

पांच लेख दार्शनिक-राजनीतिक एस राधाकृष्णन की ओर से लगभग तीन साल में *कल्याण* में प्रकाशित हुए । इन्होंने हिन्दुवाद में भगवान की मान्यता और धर्म का महत्व जैसे विषयों पर लिखा । कई मौकों पर उन्होंने लिखने से इंकार भी किया लेकिन हर बार *कल्याण* की प्रशंसा भी की, जो 'कई सालों से अच्छा काम कर रहा है ।' ³⁷ पोद्दार ने राधाकृष्णन को गीता समाज से जुड़े अन्य उपक्रमों की बागडोर थमा दी थी ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का आधिकारिक इतिहास लिखने वाले पट्टाभि सीतारमैया ने रामायण की प्रासंगिकता और बच्चों के जीवन में अभिभावकों की भूमिका विषय पर अपने विद्वतापूर्ण आलेख लिखे । इसके बाद पुरुषोत्तमदास टंडन, के एम मुंशी और संपूर्णानंद जैसे रूढ़िवादी कांग्रेसी भी थे । टंडन ने हिन्दू महिलाओं द्वारा पति की पूजा किए जाने पर भी एक लेख लिखा । वकील और शिक्षाशास्त्री रहे मुंशी ने धर्मांतरण का विरोध किया और इस राजनीति के पूरे विस्तार को कांग्रेस से स्वतंत्र पार्टी और फिर जनसंघ तक मोड़ दिया । गुजरात में सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण में अपनी मुख्य भूमिका के ज़रिए वह दक्षिणपंथियों के प्रिय बन गए । के एम मुंशी भारतीय विद्या भवन के अध्यक्ष भी रहे । उन्होंने *कल्याण* के लिए भले ही मात्र चार लेख लिखे हों, लेकिन

अपने धार्मिक लेखन में बड़ी मात्रा में गीता प्रेस के संसाधनों का इस्तेमाल किया। एक अवसर पर उन्होंने पोद्दार से 'हरिवंश' का 'संस्कृत-हिन्दी अनुवाद' उपलब्ध करवाने को कहा क्योंकि तब वे 'पुराणों के आधार श्री कृष्ण के जीवन' पर लेखन कर रहे थे। ³⁸ एक अन्य अवसर पर उन्होंने पोद्दार को भारतीय विद्या भवन के छात्रों और आगंतुकों में निःशुल्क वितरण हेतु गीता की 200 प्रतियाँ भिजवाने के लिए आभार व्यक्त किया था। ³⁹

कल्याण के लिए किए गए संपूर्णानंद का लेखन ईसाईयत, हिन्दू संस्कृति से लेकर स्त्रियों और बच्चों तक फैला रहा। संयुक्त प्रांत के शिक्षा मंत्री, उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री और बाद में राजस्थान के गवर्नर रहे संपूर्णानंद की पोद्दार से इतनी घनिष्ठता थी कि कल्याण संपादक ने उन्हें पत्र में लिखा, 'कल्याण के हिन्दू संस्कृति अंक के लिए लेख भेजने की प्रार्थना की गई थी। अब तक कोई उत्तर न मिला। आपकी कार्यव्यस्तता और उन कार्यों की महत्ता को मैं जानता हूँ परन्तु कल्याण भी आपका ही है। आप सदा से कृपा करते हैं और इसमें कुछ विषय ऐसा है जिनपर लिखने के योग्य अधिकारी भी आप सरीखे कुछ ही पुरुष हैं।' ⁴⁰ पोद्दार ने आगे लिखा कि इसकी 125,000 प्रतियाँ छपेंगी। उसके बाद भी जब संपूर्णानंद ने कोई लेख नहीं भेजा तब पोद्दार ने उन्हें दूसरा पत्र लिखा कि 'आपका लेख तो जाना ही चाहिए, बड़ी प्रतीक्षा है।' ⁴¹ जबकि तब तक अंक प्रकाशन के लिए निकल चुका था। हालाँकि संपूर्णानंद ने 'हिन्दू संस्कृति' शीर्षक से एक लेख भेज दिया, जिसे अंक के अंतिम चरण में जोड़ा गया। बदले में संपूर्णानंद ने गीता प्रेस पर अपना अधिकार ज़ाहिर किया। अगर उन्हें कल्याण की प्रति मिलने में ज़रा भी देरी होती थी तो इसकी सूचना तत्काल गोयन्दका को जाती थी।

इस संबंध का अपना एक इतिहास है। सन् 1937 में बनारस में लम्बे समय से बीमार रहे बहुत निराश संपूर्णानंद ने पोद्दार को अपने बिगड़े हुए स्वास्थ्य और पैसों की कमी के बारे में बताया। 'हम लोग साधारण कार्यकर्ता हैं जिनके पास धन का नितांत अभाव है।' ⁴² पोद्दार ने सहानुभूति व्यक्त की और तत्काल कुछ पैसे उन्हें भेज दिए। संपूर्णानंद ने अभिभूत होकर पोद्दार को लिखा, 'आपने जिन शब्दों के साथ उसे भेजा है उन्हें लौटाना तो असंभव कर ही दिया है, धन्यवाद देना भी कठिन कर दिया है।' ⁴³

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री रहने के दौरान संपूर्णानंद ने भक्ति अंक (भक्ति को समर्पित, 1958) में लिखा। पोद्दार को भक्ति सम्बन्धी मुख्यमंत्री के विचारों से कुछ समस्याएँ थीं और उन्होंने संपूर्णानंद को उनसे असहमत होते हुए भी लिखा कि, 'यह तय हुआ था कि इसे संपादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया जाएगा।' ⁴⁴ उन्होंने लिखा, 'आशा है आपको उससे कोई आपत्ति नहीं होगी।' अपनी संपादकीय टिप्पणी में पोद्दार ने संपूर्णानंद द्वारा 'भक्ति मार्ग' के अत्यधिक सामान्यीकृत किए जाने के प्रति असहमति व्यक्त की। यह भी कि उनके द्वारा सामान्यीकृत किए जाने का यह अर्थ एकदम नहीं है कि नियमों को मानने के कोई मायने नहीं होते। ⁴⁵ चूंकि इस लेख के

लेखक उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे इसलिए यह लेख इसके आगे किसी तरह के विमर्श के लिए खुला नहीं था ।

वकील और राजनेता कैलाशनाथ काटजू भी गीता प्रेस के उत्साही सहयोगी थे और इसके निमित्त लेखन के लिए हमेशा अपना समय निकाला करते थे । जून 1949 में जब पोद्दार की तरफ़ से उन्हें *हिन्दू संस्कृति अंक* के लिए लिखने का आमंत्रण दिया गया तो काटजू ने पहले तो इंकार किया लेकिन संपादक के अनुनय और पक्के प्रयासों से काटजू लिखने के लिए मान गए । संपादक का बड़े लोगों को इस तरह मना लेने का यह तरीका बहुत कारगर था । तब पश्चिम बंगाल में गवर्नर रहे काटजू ने गीता प्रेस को कहा कि इलाहाबाद के *लीडर* अखबार के लिए लिखे गए उनके लेख '*भगवत गीता एंड कम्युनिज्म*' को वे *कल्याण* के लिए ले सकते हैं । काटजू ने इसकी वजह देते हुए कहा कि *लीडर* की 'दैनिक समाचार पत्र होने के कारण सीमित जगहों पर इसकी सीमित पहुँच है' जबकि *कल्याण* 'विस्तृत क्षेत्र और देश के व्यापक हिस्से तक पहुँच सकेगा ।' ⁴⁶ पोद्दार ने यह बात स्वीकारी ।

काटजू के लेख में साम्यवाद विचारधारा को एक अहितकर सोच की तरह देखा गया । ठीक उसी तरह जैसे गीता प्रेस ने इसे हिन्दू सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक संरचना के प्रति एक खतरा माना । यहाँ तक कि अब साम्यवाद पर गहरी चिंता को केंद्र में लिए लेख अब नियमित रूप से *कल्याण* में छपने लगे । सन् 1957 में गीता प्रेस ने स्वामी करपात्री महाराज का '*मार्क्सवाद और रामराज्य*' छापा ।

यूँ तो उन्होंने *कल्याण* के लिए कई लेख लिखे लेकिन *बालक अंक* आते-आते लिखने के इच्छुक होते हुए भी काटजू ने कहा, 'मैं नहीं जानता क्या लिखूँ... दिनचर्या की व्यस्तताएँ मुझे पूरी तरह से निचोड़ दे रही हैं ।' ⁴⁷

टाटा सन्स के एक बार निदेशक रहे कपास सेठ और राजनेता व बॉम्बे प्लान के मुख्य संयोजक रहे पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास एक साथ कई भूमिकाएँ निभा रहे थे । भारतीय उद्योगपतियों के हितों की रक्षा के लिए सक्रिय अभियान करने के साथ वे ऑल इंडिया एंटी अनटचेबिलिटी लीग के केंद्रीय बोर्ड और बॉम्बे के हिन्दू संरक्षण मंडल के सदस्य भी थे । वे पहले ही बहुत ज़ोर-शोर से फ़रवरी 1929 के बॉम्बे दंगों में हिन्दू महासभा और आर्य समाज की भूमिका को सही ठहरा चुके थे । ⁴⁸

गीता प्रेस और *कल्याण* में ठाकुरदास की स्थायी रुचि थी । अप्रैल 1942 के *कल्याण* अंक में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले (और नियमित लेखन करने वाले) मोहम्मद हाफ़िज़ सैयद द्वारा गीता के महत्व पर लिखे गए लेख में रुचि लेते हुए ठाकुरदास ने पोद्दार को उस लेख को छापने के लिए बधाई भेजी और सैयद का पता भी माँगा । ⁴⁹

जब पोद्दार ने सन् 1945 के *गो अंक* के लिए लिखने का आग्रह किया तब नासिक में स्वास्थ्यलाभ कर रहे ठाकुरदास ने अपने सचिव के माध्यम से जवाब भिजवाया कि वे 'आमतौर पर अतिरिक्त कार्य को नहीं ले रहे हैं' लेकिन जब मसला गो-रक्षा का हो तो

कुछ रियायत की ही जा सकती है। ठाकुरदास ने गायों की महत्ता पर अंग्रेज़ी में 800 शब्दों का एक लेख लिखने पर सहमति दे दी। यह तय हुआ कि व्यापक प्रसार के लिए लेख का हिन्दी अनुवाद छापा जाएगा। उन्होंने उम्मीद जताई कि *कल्याण* का गाय केंद्रित यह अंक 'हिन्दुओं की चेतना को जागृत करेगा' ⁵⁰ लेकिन बढ़ती उम्र और गिरते स्वास्थ्य के कारण वे *हिन्दू संस्कृति अंक* में लेखन के लिए किए आग्रह को नामंजूर करने को बाध्य हो गए। उन्होंने खेद के साथ यह भी कहा कि वे इतने विद्वान नहीं हैं कि पत्र में पोद्दार की भेजी सूची में से किसी भी विषय पर लिख सकें। ⁵¹

केंद्रीय प्रांत के एक अन्य मारवाड़ी सेठ गोविंद दास अपनी सर्वस्व धन-संपदा त्यागकर पूर्णकालिक राजनेता, कवि और हिन्दी तथा गो-रक्षा के पक्के समर्थक बन गए थे। सेवाराम कौशलचंद नामक बैंकिंग फर्म से जुड़े रहे उनके दादा सेठ गोकुलदास ने 'केंद्रीय प्रांतों में ईस्ट इंडिया कम्पनी की बड़ी मदद की थी।' उनका 158 गाँवों पर आधिपत्य था और उनके 'नाम से पहले राजा की उपाधि जुड़ी थी' ⁵² जीवनपर्यंत कांग्रेसी रहे सेठ गोविंद दास ने बाद में मथुरा की कृष्ण जन्मभूमि आंदोलन के लिए एम एस गोलवलकर और पोद्दार के साथ हाथ मिलाया।

गोविंद दास ने गीता प्रेस के मिशन और तरीकों के साथ अपने जुड़ाव को महसूस किया। उनके अनुसार गीता प्रेस का योगदान 'धर्म और संस्कृति में बेमिसाल है।' उन्होंने पोद्दार को *कल्याण* में अपने लेख छपवाने के लिए मना लिया था। जिनमें से अधिकांश आज के उत्तराखण्ड और दक्षिण भारत के यात्रावृत्तान्त थे और एक वल्लभाचार्य पर पांच भागों में लिखा गया नाटक था। (उन्होंने ये बात भी आगे बढ़ाई कि गीता प्रेस को एक पुस्तकाकार रूप में इसे प्रकाशित करना चाहिए) ⁵³ दास ने महसूस किया कि गीता प्रेस की सहायता करना उनके लिए गौरव की बात है, बतौर सांसद उन्होंने डाक खर्च में हुए तीव्र इज़ाफ़े का मुद्दा उठाया। ⁵⁴

कल्याण की राजनेताओं-लेखकों की लगभग अनगिनत लोगों की सूची में जवाहरलाल नेहरू का नाम एकदम सिरे से गायब दिखा। सन् 1936 के गोरखपुर बाढ़ के बाद पोद्दार और नेहरू की छोटी मुलाकात रही। कई घटनाओं के ज़िक्र में पोद्दार ने दावा किया कि उन्होंने गोरखपुर से नज़दीक बरहज में होने वाली बैठक में जाने के लिए नेहरू को अपनी कार देने का प्रस्ताव भी दिया था।

लेख की बात तो दूर, नेहरू ने पोद्दार के निवेदन के बाद भी पहले *हिन्दू संस्कृति अंक* और फिर *मानवता अंक* के लिए एक छोटा संदेश तक भेजने से इंकार कर दिया। ⁵⁵ नेहरू के गृह मंत्री जी बी पंत उत्साहित थे और उन्होंने *मानवता अंक* में लघु संदेश भी भिजवाया। पंत ने *कल्याण* के लिए लेखन भी किया और गीता प्रेस के उपक्रमों का समर्थन भी किया। बतौर गृह मंत्री उन्होंने पोद्दार को लिखा कि गोरखपुर के आधिकारिक दौरे पर वे गीता प्रेस दफ्तर पहुँचने के लिए समय निकालेंगे। ⁵⁶ धर्म और खासकर गीता प्रेस के प्रति नेहरू की उदासीनता कई बार पोद्दार और पंत के बीच

बातचीत का विषय बनी। जिसमें उन्होंने कहा कि 'जवाहरलाल जी ऊपर से कुछ भी कहें आस्तिक हैं। सो ठीक है। उनके बारे में मैं भी यही कहूँगा।' ⁵⁷

लालबहादुर शास्त्री नेहरू के उदारवादी पश्चिमी पालन पोषण और शिक्षा के बरक्स एक मज़बूत विपरीत ध्रुव थे। काशी विद्यापीठ में पढ़े शास्त्री हिन्दू रिवाजों में रच-बस कर ही बड़े हुए थे। उन्होंने सन् 1965 में (प्रधानमंत्री रहते हुए) भगवान नाम की शक्ति और धर्म में निहित संदेश पर *कल्याण* के लिए दो लेख लिखे।

डॉ राजेंद्र प्रसाद के साथ गीता प्रेस, खासकर पोद्दार के संबंध आपसी सम्मान के भाव से भरे थे। राजेंद्र प्रसाद पूजा पाठ में यत्कीन रखते थे और वे चंद्र व सूर्य ग्रहण के समय उपवास रखने वाले एक 'सनातनी हिन्दू' थे। प्रसाद गो-रक्षा आंदोलन और हिन्दी के प्रचार से करीब से जुड़े थे। *कल्याण* में लिखने के लिए वे हमेशा समय निकाल लिया करते थे। राष्ट्रपति रहने के दौरान भी जब उन्हें *बालक अंक* के लिए लिखने को कहा गया तब उन्होंने अपने निजी सचिव से संदेश भिजवाया, 'राष्ट्रपति ने हमेशा *कल्याण* के लिए अपनी शुभकामनाएं भेजी हैं। गीता प्रेस द्वारा किए जा रहे काम का वे सम्मान करते हैं।' पत्रिका को बिड़ला विद्या निकेतन, नैनीताल में उनके द्वारा दिए गए भाषण में से उद्धरण लेने के लिए सुझाया गया क्योंकि 'अब राष्ट्रपति जी ने पत्रिकाओं के लिए लेखन बंद कर दिया है।' ⁵⁸

सन् 1955 में गीता प्रेस के नए भवन का उद्घाटन राष्ट्रपति ने किया। उन्होंने देखा कि प्रेस हिन्दुओं के लिए अच्छा काम कर रहा है। वे स्वयं गीता प्रेस से छप रही पुस्तकों के उत्सुक पाठक थे। ⁵⁹ जब प्रसाद को अल्पकालिक पत्रिका *महाभारत* का छठा अंक प्राप्त नहीं हुआ तो उनके निजी सचिव ने पोद्दार को अंक भेजने के लिए कहा ताकि उनका संग्रह पूरा हो सके। ⁶⁰

एक घटना *कल्याण* को पढ़ने के प्रति उनके लगाव की ओर इशारा करती है। सन् 1956 में प्रकाशित *सतकथा अंक* में एक लेख छपा था। घटना 'जीरादेई' के आस-पास से थी। बिहार के छपरा से नज़दीक ही प्रसाद का जन्मस्थान है। प्रसाद ने तुरंत अपने निजी सचिव ज्ञानवती दरबार को *कल्याण* में 'जीरादेई' के ज़िक्र वाली *हिस्ट्री ऑफ़ पर्सिया* पुस्तक मंगवा भेजी। राष्ट्रपति भवन के पुस्तकालयाध्यक्ष ने दिल्ली विश्वविद्यालय का पुस्तकालय देखा लेकिन वहाँ पुस्तक नहीं मिली। उतावलेपन में दिल्ली विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष ने पोद्दार को लिख कर उस लेख के लिखने वाले जानकी नाथ शर्मा से जानने को कहा कि 'क्या वी ए स्मिथ की *हिस्ट्री ऑफ़ पर्सिया* का संदर्भ सही है? और क्या लेखक जीरादेई के उद्धरण वाले पृष्ठ टाइप करवा कर भिजवा सकते हैं या पुस्तक की ही एक प्रति भेज सकते हैं।' ⁶¹

सन् 1947 में कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में राजेंद्र प्रसाद के पूर्ववर्ती रहे जे बी कृपलानी ने *कल्याण* के *हिन्दू संस्कृति अंक* में लिखने से मना कर दिया। उनके सहयोगी एन कृष्णास्वामी ने पोद्दार को कृपलानी की व्यस्तताओं का हवाला देते हुए न लिख पाने के लिए 'खेद' प्रकट किया। ⁶² लेकिन कांग्रेस नेताओं की दूसरी फ़ेहरिस्त में

शामिल लोग गीता प्रेस के प्रति उदासीन नहीं थे। सन् 1957 में बॉम्बे के गवर्नर रहे श्री प्रकाश ने पोद्दार से *महाभारत* पत्रिका की प्रतियाँ मंगवाई ताकि उन्हें अपने दूसरे बेटे की असमय मृत्यु से उबरने में मदद मिले। एक गांधीवादी अर्थशास्त्री, सांसद, नेपाल में राजदूत और गुजरात के गवर्नर रहे श्रीमन् नारायण ने पोद्दार द्वारा सुझाए किसी भी विषय पर लेखन करने का प्रस्ताव दिया था। ⁶³ यही नहीं, नेपाल में राजदूत रहे श्रीमन् नारायण ने नेपाल के राजा और पोद्दार जैसे महत्वपूर्ण हिन्दू नेताओं के साथ मिलकर हिन्दू संगठनों का एक बड़ा नेटवर्क तैयार करने में सहायता की।

धुर दक्षिणपंथी

गीता प्रेस की कहानी उन दक्षिणपंथी राजनेताओं और धार्मिक नेताओं की फ़ेहरिस्त के बिना अधूरी ही रहेगी जिन्होंने न केवल बतौर लेखक योगदान दिया बल्कि गीता प्रेस और *कल्याण* का इस्तेमाल भारत में धार्मिक ध्रुवीकरण के बीज को गहराई से बोने के लिए किया, विशेषकर 1940 के दशक वाले साम्प्रदायिक उत्तेजना के दौर में। विभिन्न प्रकार के लेखकों ने परस्पर विरोधी विचार अभिव्यक्त किए, उदाहरण के लिए आर्य समाज और सनातन धर्म सभा के बीच का आपसी वैमनस्य कभी भी स्वामी दयानन्द के भाषणों व लेखनों के *कल्याण* में छपने में बाधक नहीं बना, न ही नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, चांदकरण शारदा और युधिष्ठिर मीमांसा जैसे अन्य आर्य समाजियों के। शारदा कांग्रेस के साथ सक्रिय रूप से जुड़े थे और सन् 1918 में दिल्ली में जमनालाल बजाज की अध्यक्षता और गणेश शंकर विद्यार्थी की उपाध्यक्षता में आयोजित कांग्रेस के सत्र में गठित राजपुताना मध्य भारत सभा के महत्वपूर्ण सदस्य बन गए। ⁶⁴ अपने भाषणों में शारदा ने पोद्दार से ज़्यादा कठोर शब्दों के प्रयोग किए, उन्होंने कहा कि हिन्दू ‘कायर, कमज़ोर और आलसी’ हो गए हैं। ⁶⁵ *कल्याण* के *हिन्दू संस्कृति अंक* के लिए शारदा ने हिन्दू संस्कृति के निर्माण पर लिखा। इस लेख का विषय हिन्दू संस्कृति का इस्तेमाल राम और भरत के उदाहरणों से स्थापित किया कि किस तरह एक मुसलमान औरंगजेब ने सत्ता हथियाने के लिए भाइयों की हत्या की। ⁶⁶

कल्याण के पृष्ठों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माधव सदाशिव गोलवलकर ने अपनी उपस्थिति सन् 1947 में ‘*सच्चा राष्ट्रवाद*’ लेख से दर्ज करवाई और दिल्ली में संघ कार्यकर्ताओं के बीच दिए गए भाषण ‘*हमारी संस्कृति की अखंड धारा*’ से भी कुछ अंश लिए। *हिन्दू संस्कृति अंक* में लिखने के लिए पोद्दार के भेजे गए आमंत्रण के जवाब में गोलवलकर ने एक लघु संदेश भेजते हुए संपादक को लिखा, ‘यदि आपको पसंद न आए तो इसे प्रकाशित न करें... न ही मैं लेखक हूँ तथा न ही अधिक शिक्षित। आपके प्रति मेरे अंतःकरण में जो आदर भाव व श्रद्धा है उसी प्रकार आपका मुझ पर जो प्रेम है उसी कारण मैंने यह लेख लिखने का साहस किया है। विषय अत्यंत व्यापक है किन्तु लेख की मर्यादा निश्चित होने के कारण विवेचन संक्षिप्त हो गया है। आज हिन्दू शब्द

कहने में शर्म आती है। ⁶⁷पांच साल बाद गोलवलकर ने भावुक होकर लिखा, 'पथभ्रष्ट होने जा रहा आज का मेरा हिन्दू समाज इसका (*हिन्दू संस्कृति अंक*) अध्ययन कर अपने जीवन की श्रेष्ठता को समझेगा और अच्छा समझ कर अपनाई तुच्छ गैर-भारतीय विचारधाराओं का त्याग करेगा।' ⁶⁸

गोलवलकर ने *कल्याण* के लिए कुल सात लेख लिखे। वे *कल्याण* के इतने उत्सुक पाठक थे कि जब वे केरल, पट्टाम्बि (मालाबार) में अपना तैलीय उपचार कराने गए, तब उनके सहयोगी आबा थट्टे ने उस नए पते पर *सतकथा अंक* की एक प्रति पार्सल डाक से भेजने को कहा। ⁶⁹जब पट्टाम्बि तहसील के आरएसएस कार्यवाह ए के वारियर के आवास पर एक प्रति गोलवलकर को प्राप्त हुई तो उन्होंने यह कहकर अंक की प्रशंसा की कि उसने उनकी 'मन बुद्धि की उत्तम चिकित्सा' की है। ⁷⁰

इस तरह दो दशकों के भीतर ही गीता प्रेस उदारवादियों और दकियानूसी कांग्रेस नेताओं के साथ कट्टर हिन्दू राष्ट्रवाद का प्रचार करने और बरतने वालों के लिए आकर्षक प्लेटफार्म बन गया। *कल्याण* के पृष्ठों में गांधी जैसे बड़े क्रद के लोग भी शामिल थे। यह बात और है कि उन्हें भी क्रदम-क्रदम पर चुनौती मिलती रही, उनके साधनों जैसे प्रतिरोध, सहनशीलता, अहिंसा आदि पर प्रहार किए गए और मुसलमानों का पक्षधर कहते हुए उनका उपहास उड़ाया गया। संयोगवश, सन् 1949 में बनारस के टाउन हॉल में गांधी की हत्या में शामिल होने के कथित आरोप के कारण गिरफ्तार हुए गोलवलकर की रिहाई के बाद उनके स्वागत के लिए आयोजित सभा की अध्यक्षता पोद्दार ने की।

हेडगेवार, वीर सावरकर और गोलवलकर के पुराने परिचित श्यामाप्रसाद मुखर्जी सन् 1933 में कांग्रेस छोड़कर हिन्दू महासभा से जुड़ गए। कुलीन बंगाली परिवार से संबंध रखने वाले मुखर्जी 'विद्वत्जन के सान्निध्य में बड़े हुए' जहाँ उन्हें भारत और ब्रिटेन की उदार शिक्षा का उच्च रूप मिला। ⁷¹सन् 1929 में बंगाल विधानसभा काउंसिल में कांग्रेस की टिकट से चुनाव लड़े मुखर्जी में कांग्रेस से विरक्ति ने उन्हें आरएसएस और हिन्दू महासभा के करीब ला दिया। सन् 1951 में उन्होंने आरएसएस के राजनैतिक अंग भारतीय जनसंघ की स्थापना की। पोद्दार ने *गो अंक* और *हिन्दू संस्कृति अंक* के लिए लिखने के लिए लगातार मिन्नतें कीं और मुखर्जी ने दोनों ही बार उनकी बात मान कर उनका सम्मान दिया। सन् 1952 में कश्मीर में उनके निधन से ठीक एक साल पहले मुखर्जी, जो तब तक नेहरू-लियाकत पैक्ट की वजह से नेहरू कैबिनेट से बाहर थे और सरकार की कश्मीर नीति के विरोध में तल्लीन थे, ने लम्बे लेख लिख पाने में असमर्थता व्यक्त की लेकिन *कल्याण* के लिए छोटे लेख लिखने के लिए हामी भरी। बहरहाल, उन्होंने *कल्याण* की सदस्यता चालू रखी और पोद्दार को सूचित किया 'मुझे हर महीने के हिसाब से तुम्हारी पत्रिका नियमित नहीं मिल रही है।' ⁷² पोद्दार ने उस पत्र पर अपने हाथ से 'तत्काल' लिख कर एक कर्मचारी को जांचने भेजा

ताकि यह सुनिश्चित किया जाये कि मुखर्जी को *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* बिना रुकावट मिलती रहें ।

बंगाली कुलीनों में मुखर्जी अकेले नहीं थे जो हिन्दू महासभा और इसकी राजनीति की ओर आकर्षित हुए थे । बड़े वकील और न्यायाधीश रहे निर्मलचन्द्र चटर्जी भी मुखर्जी के आस-पास ही संगठन से जुड़े और 1940 के उत्तेजक दशक में आज़ाद भारत में बड़ी पुरातनपंथी आवाज़ बन कर उभरे । सन् 1951 में जनसंघ से जुड़ने के प्रस्ताव को ठुकरा कर भी वे महासभा के साथ ही बने रहे । निर्मलचन्द्र चटर्जी पूर्व लोकसभा अध्यक्ष और वाम नेता सोमनाथ चटर्जी के पिता थे । तीन बार लोकसभा के सदस्य और 1960 के आरम्भिक दशक तक उच्चतम न्यायालय के प्रख्यात वकील रहे निर्मलचन्द्र चटर्जी *कल्याण* के लिए लिखने के प्रस्ताव पर भावुक हो गए । उन्होंने पोद्दार को लिखा, ‘आप नहीं जानते कि हिन्दू धर्म और संस्कृति के लिए किए गए आपके महान काम के प्रति कितना सम्मान और प्रशंसा का भाव है ।’ ⁷³ उन्होंने सन् 1953 के वार्षिकांक में हिन्दू जाति के भविष्य पर लिखा ।

इसी वार्षिकांक में कभी कांग्रेसी रहे, केंद्रीय प्रांतों व बरार के प्रमुख, अलवर के मुख्यमंत्री और महासभा नेता नारायण भास्कर खरे ने लोगों के बीच धार्मिक मान्यताओं की पुनरुत्थान की आवश्यकता पर लिखा । सन् 1949 में कलकत्ता में बतौर महासभा अध्यक्ष दिए गए अपने भाषण में खरे ने ‘हिन्दू राष्ट्र को सांस्कृतिक राज्य’ के रूप में गढ़ने का आह्वान किया । ⁷⁴ खरे भी उन लोगों में से एक थे जिन्हें सन् 1948 में महात्मा गांधी की हत्या में किसी भी तरह के ताल्लुक होने के शक पर गिरफ़्तार किया गया था । ⁷⁵ *कल्याण* के लिए लिखने वाले महासभा के अन्य लेखकों में महंत दिग्विजयनाथ (गोरखपुर के नाथ सम्प्रदाय के प्रमुख), एन सी केलकर (हिन्दू महासभा के कानपुर सत्र 1925 के अध्यक्ष) और साधु राजनेता बाबा राघवदास थे जिन्होंने सर्वाधिक लेखन किया । ⁷⁶ *कल्याण* में राघवदास के पैतालिस लेख थे । हैरानी की बात है कि उन्होंने सन् 1948 के उप-चुनावों में फ़ैज़ाबाद विधानसभा चुनावक्षेत्र से एक अन्य *कल्याण* के लेखक आचार्य नरेन्द्रदेव के खिलाफ़ बतौर कांग्रेस प्रत्याशी चुनाव लड़ा और जीते भी । इस चुनाव में उन्हें हिन्दू महासभा का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ ।

संस्कृत विद्वान, शिक्षक और भाषा विशेषज्ञ रघुवीर सन् 1961 में सरकार की चीन नीति पर नेहरू के साथ मतभेद के कारण पार्टी छोड़ने वाले कुछ शुरुआती कांग्रेसियों में से एक थे । वे जनसंघ में शामिल हो गए और वहाँ सन् 1962 में उन्हें पार्टी अध्यक्ष चुन लिया गया । उन्होंने अपनी इंटरनेशनल अकादेमी ऑफ़ इंडियन कल्चर (सरस्वती विहार) को हिन्दू संस्कृति, धर्म और भाषाओं के लिए शोध केंद्र में बदल दिया । रघुवीर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए कार्यरत थे । सरस्वती विहार से छपने वाले शब्दकोश के प्रयासों और *ग्रेटर इंग्लिश हिन्दी डिक्शनरी* (1969) के संयोजन के पीछे रघुवीर ही थे । उनके प्रयासों के प्रति हिन्दी साहित्यिक जगत का रुख आलोचनात्मक था, खास कर उनकी ओर से संस्कृतनिष्ठ हिन्दी पर दिए जा रहे ज़ोर के प्रति स्वीकार्यता

नहीं थी। *कल्याण* में छपे उनके अधिकांश लेख (छह) राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय अस्मिता निर्माण केंद्रित थे। बाद में बौद्ध धर्म और भारतीय कला के विद्वान उनके पुत्र लोकेश चन्द्र ने भी *कल्याण* के लिए लिखने का काम किया। रघुवीर को पोद्दार से बहुत फ़ायदा था रघुवीर ने पोद्दार को सरस्वती विहार का सदस्य बनने का प्रस्ताव भी दिया। उन्होंने कहा, 'हमारे मिशन को आपसे बेहतर समझने वाला कोई दूसरा नहीं है।' ⁷⁷ यह भी चौंकाने वाली बात थी कि पोद्दार को भेजी गई दस पुस्तकों का पैसा लेने से रघुवीर ने मना कर दिया जबकि उसी पत्र में उन्होंने अपनी संस्था को चालू रखने के लिए सत्तर से अस्सी हज़ार रुपयों की मांग की क्योंकि मासिक खर्च के लिए संस्था के पास पर्याप्त धन नहीं बचा था। ⁷⁸

गीता प्रेस के लिए लिखने वालों की सूची में साधु-राजनेताओं की भी एक सूची थी। स्वामी करपात्री महाराज, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आज़ादी के तुरंत बाद गो-रक्षा आंदोलन और हिन्दू कोड बिल के विरोध में निभाई गई अपनी भूमिका के कारण कई साल तक राजनीतिक सुर्खियों में बने रहे। पर्याप्त प्रशंसकों और आरएसएस, हिन्दू महासभा की ओर से मज़बूत संरक्षण वाले ये दोनों साधु राजनेता नेहरूवादी साम्यवादी और पंथनिरपेक्ष नीति के खिलाफ़ धीमी गति से आकार ले रहे विपक्ष की पहली पीढ़ी का हिस्सा बने।

संयुक्त प्रांत के प्रतापगढ़ जिले में सन् 1907 में जन्मे करपात्री महाराज ने आज़ादी के समय तक भीड़ को उकसाने वाले व्यक्ति के रूप में ठीक-ठाक सम्मान हासिल कर लिया था। भारत को कौन-सा रास्ता अपनाना चाहिए, इस पर उनके काफ़ी ठोस विचार थे। उनकी जीवन यात्रा जाने-पहचाने धर्म गुरुओं की जीवन यात्रा के अनुरूप हुई थी—युवा उम्र में ईश्वर से साक्षात्कार, गृहस्थ जीवन को सोलह वर्ष की उम्र में त्याग देना (उनका विवाह नौ वर्ष की आयु में हुआ था)। उनका आध्यात्मिक लगाव उन्हें कई गुरुओं तक ले गया। कहा जाता है कि शंकर द्वारा संन्यासियों के लिए स्थापित दंडी सम्प्रदाय में शामिल होने से पहले वह संन्यासी की तरह जीवन जीने हिमालय तक गए। ⁷⁹ जैसे ही 1930 के दशक में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण तेज हुआ, करपात्री महाराज ने सन् 1940 में धर्मसंघ की स्थापना की और *सन्मार्ग* समाचार पत्र निकाला। एक तरह से यह विभिन्न सनातन हिन्दू धार्मिक संगठनों को एक स्वर प्रदान करने वाला और हिन्दुवाद की रक्षा में सबको एकताबद्ध करने वाला नया गठबंधन था।

'हिन्दुवाद खतरे में है' की घोषणा करते हुए, धर्मसंघ ने धर्म की रक्षा में ऐसे नारे रचे जो आज तक सार्वजनिक और निजी सनातन हिन्दू धार्मिक समारोहों का हिस्सा हैं। उदाहरण के तौर पर, 'धर्म की जय हो', 'अधर्म का नाश हो', 'प्राणियों में सद्भावना हो', 'विश्व का कल्याण हो'। ⁸⁰ सन् 1948 तक स्वामी करपात्री ने रामराज्य परिषद नाम से अपनी राजनीतिक पार्टी बना ली। यह निश्चित रूप से उस समय तक प्रसिद्ध हुई दक्षिणपंथी पार्टियों में सबसे ज़्यादा रूढ़िवादी पार्टी थी। परिषद ने परंपरागत जजमानी तंत्र और वस्तु-विनिमय प्रणाली पर आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था की पैरवी

की, साथ ही दवाओं, मादक पेय पदार्थों तथा गो-वध पर प्रतिबन्ध के लिए वकालत की। ⁸¹ करपात्री महाराज का ज़ोर इस बात पर था कि जनसंघ को पवित्र हिन्दू ग्रंथ पर आधारित होना चाहिए। इस सुझाव को दीनदयाल उपाध्याय ⁸² ने खारिज कर दिया था जिसके चलते 1950 के दशक के आरम्भ में दक्षिणपंथी दल संयुक्त गठबंधन बनाने में असफल हो गए।

करपात्री महाराज ने *कल्याण* के लिए 39 लेख लिखे जिनमें से अधिकांश साम्प्रदायिक प्रकृति के थे। पोद्दार और गीता प्रेस दोनों से ही ऊँचा स्थान प्राप्त करपात्री महाराज द्वारा गो-रक्षा और हिन्दू कोड बिल के विरोध में निभाई उनकी भूमिका को हिन्दू हितों के योगदान के विस्तृत मूल्यांकन में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाएगा।

वहाँ दूसरी ओर 'झूसी के संत' ⁸³ प्रभुदत्त ब्रह्मचारी राजनैतिक दांव-पेचों में बहुत आगे थे। करपात्री महाराज से अलग प्रभुदत्त ने पूर्णकालिक राजनैतिक कार्यकर्ता बनने के बाद धर्म को पूरी तरह अपना लिया। अलीगढ़ में जन्मे प्रभुदत्त गिने-चुने शुरुआती साधु-राजनेताओं में से एक थे जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया। बनारस में सब कुछ त्यागने और इलाहाबाद के झूसी में आश्रम बनाने से पहले उन्होंने *आज* समाचार पत्र का संपादन भी किया। ⁸⁴

उन्होंने आरएसएस के अग्रिम पंक्ति के नेताओं के साथ नज़दीकी संबंध बना लिए। गोलवलकर और अन्य लोगों ने उन्हें सन् 1952 के पहले आम चुनावों में जवाहरलाल नेहरू के खिलाफ़ चुनाव लड़ने के लिए मना लिया। ⁸⁵ आरएसएस नेटवर्क के मज़बूत प्रचार, गो-रक्षा व हिन्दू कोड बिल जैसे मुद्दों से जुड़े दक्षिणपंथी समूहों के समर्थन के बावजूद प्रभुदत्त को नेहरू के 233,571 वोटों के मुकाबले केवल 56,718 वोट ही हासिल हुए। उसके बाद भी रातों-रात प्रभुदत्त रूढ़िवादियों के प्रिय बन कर उभरे। अगले कुछ सालों में उन्होंने गीता प्रेस और पोद्दार सहित दक्षिणपंथी समूहों और नेताओं के साथ मिलकर गो-रक्षा और हिन्दू कोड बिल के विरोध में एक सामूहिक अभियान तैयार किया। *कल्याण* के दूसरे साल से ही उसके लिए लेखन करने वाले प्रभुदत्त ने चौवन लेख लिखे। उनके और पोद्दार के बीच व्यक्तिगत घनिष्ठता थी।

काका कालेलकर और विनोबा भावे ने न केवल *कल्याण* के लिए लिखा बल्कि पोद्दार तथा गीता प्रेस के गो-रक्षा और हिन्दी व गीता की लोकप्रियता वाले उनके अभियानों में भी सहयात्री बने। हालाँकि हिन्दू महासभा और बाद में जनसंघ के नेताओं से उनकी नज़दीकी के बावजूद दोनों ने अपने मूल आदर्श और गांधीवादी मूल्यों को क़ायम रखा। गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी, गीता विशेषज्ञ और भूदान आंदोलन के नेता भावे ने गीता से हिन्दुवाद व परिवार नियोजन तक विविध विषयों पर *कल्याण* के आरम्भिक दौर से उसकी विकसित अवस्था तक भरपूर लिखा।

सन् 1953 में पिछड़ी जाति आयोग की अध्यक्षता करने वाले कालेलकर *कल्याण* के आरम्भिक वर्षों से ही लेखन में योगदान देते रहे लेकिन संपादक से असहमत होने

की ज़रूरत को महसूस करने पर वे महीन शब्दों में अपनी बात कहते । सन् 1968 में पोद्दार ने उन्हें *कल्याण* 1969 के वार्षिकांक *परलोक और पुनर्जन्म* में लिखने के लिए आमंत्रित किया । पोद्दार द्वारा सुझाए गए '200-250' विषयों के बारे में आलोचनात्मक होते हुए कालेलकर ने लिखा कि पुनर्जन्म पर निजी स्तर पर विश्वास करने के बावजूद उन्हें लोगों के मुंह से किसी नदी या किसी दर्शन विशेष के कारण जन्म-मरण से मुक्ति की बातें सुन कर क्रोध आता है । ⁸⁶ उन्हें कर्म की महत्ता पर विश्वास था, किसी भी व्यक्ति का यह जीवन उसके पिछले जन्म के कर्मों पर आधारित होता है । और इसी समय व्यक्ति को इस जीवन में अच्छे कर्म करने की सलाह दी जाती है । कालेलकर ने पोद्दार को चेताया कि उन्हें असंख्य मान्यताओं के नाम पर ऐसा कचरा इकट्ठा करना बंद कर देना चाहिए जिन्हें ठीक से परखा भी न जा सके । उन्होंने कहा कि सनातन हिन्दू धर्म की आलोचना करने वाले लोगों को पुनर्जन्म जैसे विषय वाले *कल्याण* के अंक को देख कर बड़ा आनंद आएगा । 'वे कहेंगे कि सनातन हिन्दू धर्म के सिद्धांतों को मानने वाले कितनी मूर्खतापूर्ण और बेफ़िजूल बातों में यकीन रखते हैं ।' बावजूद इन सबके कालेलकर ने पोद्दार के प्रयासों की सराहना की और निवेदन किया कि *कल्याण* के विशेष अंक में उनके पत्र को प्रकाशित किया जाये ।

पोद्दार ने कालेलकर के आलोचना पत्र को पूरा छापा लेकिन अपनी ओर से खंडन करते हुए । पोद्दार ने कहा कि जो तार्किक तौर पर स्वीकार्य है, उसे ही एकमात्र सत्य मान लेना एक साहसिक कार्य है । 'विश्वास और तर्क एक साथ नहीं चल सकते । यह हमारी अज्ञानता का ही प्रतीक है कि हम ऐतिहासिक कृष्ण और भगवान कृष्ण में फ़र्क करते हैं । काका इसे कचरा कहते हैं तो मैं इसे प्रशंसा की तरह देखता हूँ, उनके मजाकिया अंदाज़ को ध्यान में रखकर । यह संभव है कि कचरे के इसी ढेर में से हम में से कुछ लोग एक दो मोती पा जाएँ ।'

कालेलकर ने अपने पत्र के साथ पोद्दार के जवाब को साथ में इस तरह से प्रकाशित किए जाने के तरीके को पसंद किया । बाद में कालेलकर ने गीता प्रेस के एक पदाधिकारी राधेश्याम बंका को बताया, 'इसमें मतभेदों के लिए अवकाश रहेगा । उसकी चर्चा सज्जनता से होती रहे, यह भी ज़रूरी है । आपका '*कल्याण*' ही इस कार्य के लिए योग्य है । श्री हनुमानप्रसाद जी अगर पसंद करें तो यह प्रवृत्ति शुरू करने लायक है ।' ⁸⁷

बुद्धिजीवी, अकादमिक विद्वान, पत्रकार और कलाकार

इतिहासकार राधाकुमुद मुखर्जी ने बंगाल विभाजन के खिलाफ़ स्वदेशी आंदोलन के दौरान राजनीति में पहली बार हाथ आजमाया । मुखर्जी उन चंद लोगों में से थे जिन्होंने डॉन सोसाइटी के साथ मिलकर विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के बहिष्कार किए जाने का नेतृत्व किया । बाद में वे स्वदेशी आंदोलन के कलकत्ता में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में किए पहल के फलस्वरूप बंगाल नेशनल कॉलेज के पाठ्यक्रम तैयार करने और पढ़ाने

के उद्देश्य से राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के सदस्य बन गए। ⁸⁸ तथाकथित राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन से उनका जुड़ाव लम्बा नहीं चला लेकिन उनके द्वारा आयोजित किए गए ऐतिहासिक शोध और इनसे जुड़े अन्य समूह भले ही 'स्वदेशी बजार' वाले थे। ⁸⁹ मुखर्जी ने चन्द्रगुप्त मौर्य और प्राचीन भारत समुद्रीय व्यापार व जलयात्रा पर शोध किया। ⁹⁰ भारत में ब्रिटिशों के कारण एकता स्थापित होने की 'औपनिवेशिक धारणा' के बरक्स भारतीय बुनियादी एकता को स्थापित करने के लिए उन्होंने 'शास्त्रीय हिन्दू ग्रंथों और पांडुलिपियों' से तर्क जुटाए। मुखर्जी की थीसिस ने उन्हें हिन्दू राष्ट्रवादियों के बीच प्रिय बना दिया चाहे वह हिन्दू महासभा हो या गीता प्रेस।

जब विभाजन के बादल घने हुए तब मुखर्जी ने वीर सावरकर के दिमाग की उपज को साकार करते हुए 7-8 अक्टूबर 1944 को अखंड हिन्दू सम्मेलन की बैठक आयोजित की जिसमें सनातनी, पिछड़ा वर्ग, सिख, आर्य समाज जैसे संगठन, डेमोक्रेटिक स्वराज पार्टी, कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी व अन्य सामान्यतः विरोधी राजनीतिक दलों की एकजुटता का नज़ारा देखने को मिला। इसके पीछे का उद्देश्य विभाजन के विरोध में एकजुट प्रदर्शन को दर्ज करवाना था। अपने भाषण में मुखर्जी ने कहा 'हमारे राष्ट्रीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण संकट उन महान नेताओं द्वारा पैदा कर दिया गया है जिन्होंने खुद को यह समझा लिया है कि हिन्दू-मुसलमान एकता के बिना आज़ादी नाम के अपने जन्मसिद्ध अधिकार को हासिल करना नामुमकिन है।' ⁹¹

मुखर्जी के लिए पोद्दार विनम्र व्यक्ति थे। 'अफ़सोस कि मैं नहीं जानता कि आप जैसी महान व्यक्ति से कैसे बात करूँ! मैं आपके सम्मान में बढ़ती जा रही अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में असमर्थ हूँ! यह और भी बढ़ गई है जब आपने मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति को भी इतना सम्मान देते हुए महामहिम कहा है।' ⁹² मुखर्जी ने *कल्याण* के लिए लिखा और बदले में पोद्दार को भी अपने से जुड़े प्रकाशन के लिए लिखने को कहा। सन् 1954 में जब वैदिक विचारों वाला लेख *कल्याण* में छपने के लिए स्वीकृत हो गया तो प्रसन्न मन से लेखक ने 'संस्कृत शब्दावली छापने को कहा जिसको केंद्र में रखकर यह लेख लिखा गया है।' ⁹³ उनकी यह मांग पूरी नहीं हो सकी।

राधाकुमुद के भाई राधाकमल मुखर्जी एक समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, पारिस्थितिकी विज्ञानी, आध्यात्मवादी और संस्था निर्माता थे। राधाकमल ने बंगाल नेशनल कॉलेज में राधाकुमुद के मित्र व सहकर्मी रहे बिनय कुमार सरकार के साथ कुछ समय बिताया था। ⁹⁴ होनहार छात्र, सफल अध्यापक और बहुभाषी राधाकमल के बारे में रामचंद्र गुहा लिखते हैं, 'उन्होंने दशकों पहले अमेरिकी विश्वविद्यालय के विभागों द्वारा पारिस्थितिकी और सामाजिक विज्ञानों के बीच हाल में लागू किए गए पद्धति आधारित गठबंधन का अनुमान लगा लिया था।' ⁹⁵ वे अपने आरम्भिक जीवन में ही रामानंदी सम्प्रदाय से जुड़ गए थे। कलकत्ता, ग्वालियर, व अन्य जगहों पर काम की अवधि समाप्त होने के बाद के वर्षों में लखनऊ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र व अर्थशास्त्र पढ़ाने के दौरान वे गीता की धार्मिक चर्चाओं से जुड़े। उनके अनुसार 'अपनी

मातृभूमि की गरिमा को पुनः प्राप्त करने के लिए' इतिहास का अध्ययन आवश्यक है ।
⁹⁶ उनके इसी तर्क ने उन्हें गीता प्रेस का प्रिय बना दिया । शुरुआती समय से ही *कल्याण* के लिए लिखने वाले राधाकमल ने धार्मिक रहस्य(वाद), विज्ञान व शक्ति और जंगल व चारागाह के संबंध पर चार लेख लिखे ।

राधाकमल और पोद्दार के संबंधों में आत्मीयता थी । वे *कल्याण* संपादक को 'पोद्दार महाशय' कह कर संबोधित किया करते थे । इस पर उन्होंने 'आश्चर्य' व्यक्त किया कि पोद्दार ने लखनऊ यात्रा के दौरान उनसे मुलाकात नहीं की । भविष्य के लिए उन्होंने कहा, 'कृपया मेरे घर ही रुकें' ⁹⁷ शेष सब वही लेखक-संपादक वाला रिश्ता था । अपनी एक बातचीत में राधाकमल ने पोद्दार को 'सौ रुपए' भेजने को कहा । लेकिन पोद्दार के कागज़ात में ऐसा कुछ नहीं मिला जिससे इस आदान-प्रदान की पुष्टि की जा सके । दोनों ही भाई अक्सर कलकता से छपने वाली *मॉडर्न रिव्यू* में भी लिखा करते थे ।

लिखने वालों में कई अकादमिक विद्वान भी थे जिनमें सिटी कॉलेज में पढ़ाने वाले प्रोफेसर सत्येन्द्र नाथ सेन का भी नाम है । सेन बंगाल विधानसभा के सदस्य और हिन्दू धर्म के अधिकारों की रक्षा के लिए कार्यरत राजनैतिक कार्यकर्ता थे । गीता प्रेस में लेखकों की सूची में सेन के नाम के आगे उपाधि में धर्मरत्न लिखा हुआ है । सेन ने *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* दोनों के लिए लेखन किया । *कल्याण-कल्पतरु* के लिए 'धर्म और राजनीति' विषय पर लिखने के लिए कहे जाने पर उन्होंने हामी तो भरी लेकिन व्यस्तता का हवाला देकर समय-सीमा बढ़ाने को कहा । उन्होंने लिखा कि 'वे सरकार द्वारा हिन्दुओं के नागरिक और धार्मिक अधिकारों में किए जाने वाले हस्तक्षेप का विरोध करने के लिए उपजे आंदोलन से जुड़े होने के कारण व्यस्त हैं ।' बंगाल में विभिन्न स्थानों पर विसर्जन में हो रही गड़बड़ियों से यह हस्तक्षेप स्पष्ट है । ⁹⁸ सरकार ने दुर्गा पूजा सवारी के मुसलमान इलाकों से निकाले जाने पर प्रतिबंध लगा दिया था जिसके परिणामस्वरूप बंगाल में जगह-जगह पर विरोध प्रदर्शन हो रहे थे । धीरे-धीरे साम्प्रदायिक तनाव में बदल गए इस आंदोलन में हिन्दू महासभा के नेताओं की सक्रिय भागीदारी थी । ⁹⁹ सन् 1945 में जब उन्हें गाय के मुद्दे पर लिखने के लिए कहा गया तो सेन ने पोद्दार से कहा कि वे वॉशिंगटन डीसी में भारतीय स्वंत्रता के लिए बनी राष्ट्रीय समिति से छपने वाली मासिक पत्रिका *वॉईस ऑफ़ इंडिया* में छपे उनके रिव्यू को *गो अंक* के लिए ले लें क्योंकि वे व्यस्त होने के कारण लेख नहीं दे पाएँगे । ¹⁰⁰

गीता प्रेस के संग्रह में लेखकों की विविधताओं के बीच में एक नाम संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान और शान्तिनिकेतन के अगुआ क्षितिमोहन सेन का था । (क्षितिमोहन सेन नोबल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन के दादा थे) । क्षितिमोहन सेन का जीवन हिन्दू धर्म ग्रंथों और सामाजिक संस्थानों के अध्ययन में व्यतीत हुआ । हिन्दुवाद पर इस्लाम के प्रभाव की बात हो या हिन्दुओं के बीच जाति प्रथा या महिलाओं की स्थिति का मसला हो, सेन की व्याख्याएँ हिन्दू सनातन धर्म के खेमे वाले बुनियादी तर्कों से अलग

थीं। बहरहाल, 'सेन उत्कृष्ट विद्वता और उदार विचारों का अद्भुत सम्मिश्रण' थे। ¹⁰¹ और उनका यही क्रद उन्हें *कल्याण* के लेखक सूची तक ले आया। उन्होंने चार लेख लिखे जिसमें एक कबीर पर और एक हिन्दूवादी एकता पर था। सन् 1929 में छपी *मिडिवल मिस्टिसिज्म ऑफ़ इंडिया* भी इस बात की गवाह है कि भक्ति और सूफी धारा के मध्यकालीन कवि क्षितिमोहन सेन की विशेषज्ञता के क्षेत्र थे। उनकी पुस्तक *हिन्दुइज्म* के अनुवादक शिशिर कुमार घोष नियमित रूप से *कल्याण* में छपते थे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के कई लेखों के बहुत से हिस्से *कल्याण* में प्रकाशित हुए थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ही क्षितिजमोहन सेन को बहुत प्रेरणा देकर शान्तिनिकेतन भेजा था। ¹⁰² *कल्याण* के शुरुआती अंकों में रवीन्द्रनाथ टैगोर के लेख मिलते हैं लेकिन सन् 1936 के बाद उनके कर्मचारियों ने उनकी उम्र के आधार पर लेखन संबंधी निवेदनों के जवाब में कहा, 'टैगोर जिस उम्र में हैं उस उम्र में सभी व्यक्ति के लिए ज़रूरी हो जाता है कि वे सार्वजनिक गतिविधियों से दूरी बना लें। उनकी बढ़ रही शारीरिक अक्षमताएं जिस तरह ज़ाहिर हो रही हैं उसके चलते उनके स्वास्थ्य संबंधी सलाहकारों, परिवारजनों ने उन्हें हर उस कार्य से मुक्त करने को कहा है जिसे छोड़ा जा सकता है। इस तरह आपसे निवेदन है कि आप अक्षम स्थिति को समझें।' ¹⁰³

सन् 1938 में प्राचीन भारत में महिलाओं की सुरक्षा और सम्मान के पक्ष में शास्त्रीय ढंग से बात करने वाली पुस्तक *द पोजिशन ऑफ़ वुमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन* के छपने से चार साल पहले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के इतिहासकार ए एस अल्टेकर को *कल्याण* की ओर से *शक्ति अंक* में लेखन का प्रस्ताव मिला था। अल्टेकर ने खेद भरा एक पत्र भेजा जिसमें उनकी शैली से उनके और पोद्दार के परिचित होने का पता चलता है। लेखन के लिए आमंत्रित करने पर पोद्दार का आभार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा, 'अपनी वर्तमान साहित्यिक प्रतिबद्धताओं के कारण मैं क्षमा चाहता हूँ। इस अंक के लिए किसी भी तरह का योगदान देने में मैं असमर्थ हूँ।' ¹⁰⁴ ऐसा इसलिए भी हो सकता है क्योंकि वे पहले ही महिलाओं से जुड़े अपने बड़े काम की शुरुआत कर चुके थे।

भारत के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री और भारोपीय भाषाओं के विशेषज्ञ सुनीति कुमार चटर्जी ने *कल्याण* के सन् 1933 के शिव केंद्रित अंक में शिव की अवधारणा पर लिखने के लिए समय निकाला। *हिन्दू संस्कृति अंक* की योजना के समय ही पोद्दार ने चटर्जी से सहमति ले ली थी। शिव पर 'मूल्यवान' लेख लिखने के लिए आभार ज्ञापित करते हुए पोद्दार ने 'प्राचीन काल में भारत की महान गौरव गाथा पर एक लेख का योगदान' करने का निवेदन किया जिसमें 'भारतीय संस्कृति के सभी पहलू ठीक उसी तरह शामिल हों जिस तरह प्राचीन काल में पाए जाते थे और अब भी महान भारत में पाए जाते हैं।' ¹⁰⁵ लेकिन इस बार चटर्जी ने लेख नहीं लिखा।

गंगानाथ झा और अमरनाथ झा की पिता-पुत्र की जोड़ी संस्कृत और अंग्रेज़ी की समान अधिकार से ज्ञाता थी। इन दोनों ने इलाहाबाद और बनारस के अकादमिक

जगत में लम्बे समय तक अपना दबदबा कायम रखा। हमेशा अच्छे लेखकों की खोज में लगे रहने वाले पोद्दार की नज़रों से ये दोनों बच न सके। गंगानाथ झा ने *कल्याण* में योग के विविध पक्ष, वेदांत, गीता और भगवान पर ग्यारह लेख लिखे। अपने समय के अन्य लेखकों से अलग इन्होंने एक तय सीमा क्षेत्र में विषय केंद्रित लेख ही लिखे। जब भी उन्हें लगा कि पोद्दार द्वारा दिए गए किसी विशेष विषय पर लिखने में वे असमर्थ हैं तो उन्होंने उनसे विकल्प में कोई दूसरा लेख भेजते हुए संपादकीय टिप्पणी का इंतज़ार किया, 'मैं उम्मीद करता हूँ कि यह स्वीकृत होगा और अगर न हो बताने में झिझकिएगा नहीं। मैं कुछ और भेजने का प्रयास करूँगा।' ¹⁰⁶ अमरनाथ झा ने सन् 1953 में *बालक अंक* के लिए लिखा।

आध्यात्म, शान्ति और प्रेम की खोज में भारत आकर इसे ही अपना घर मान लेने वाले तीन महत्वपूर्ण विदेशी भी पोद्दार की नज़र में आए। पोद्दार ने उन्हें *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* के लिए लिखने हेतु तैयार कर लिया। बीसवीं सदी के आरंभिक ढाई दशकों में सी एफ एंड्रयूज़, निकोलस रोयरिश और जॉर्ज अरुन्देल ने अपना घर क्रमशः दिल्ली, हिमाचल प्रदेश और मद्रास में बनाया और लगातार भारत की बौद्धिक समृद्धि में अपना योगदान दिया।

सन् 1904 से दिल्ली के सेंट स्टीफन कॉलेज में पढ़ाने वाले ¹⁰⁷ ब्रिटिश पादरी एंड्रयूज़ गांधी के करीबी समूह में शामिल थे और उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय स्वतंत्रता की पुरजोर वकालत की और उसमें अहम भूमिका निभाई। जिस समय एंड्रयूज़ गांधी के नज़दीक आ रहे थे उसी समय पोद्दार एंड्रयूज़ के प्रति आकर्षित होते जा रहे थे। यह संभव है कि इन दोनों ने एक अच्छा तालमेल बना लिया था। एंड्रयूज़ के सन् 1923 के शान्तिनिकेतन से लिखे पत्रों से पोद्दार और एंड्रयूज़ के बीच सहज संबंधों के आभास मिलते हैं जिसमें उन्होंने सत्येन्द्रनाथ बनर्जी को गीता प्रेस में कलाकार की नौकरी देने का आग्रह किया है। ¹⁰⁸ गीता प्रेस अभी गोरखपुर आया ही था और छोटे-छोटे धार्मिक ग्रंथ प्रकाशित कर रहा था। तब तक *कल्याण* अस्तित्व में नहीं आया था, हालाँकि पोद्दार गोयन्दका के खास हो चुके थे। एंड्रयूज़ का पहला लेख *कल्याण* के पहले साल के तीसरे अंक में छपा। यह असीसी के संत फ्रांसिस पर लिखा गया था। चौदह साल बाद उन्होंने गीता के वैश्विक प्रचार-प्रसार पर लेख लिखा।

कैम्ब्रिज से पढ़े अरुन्देल केंद्रीय हिन्दू महाविद्यालय के प्रधानाचार्य थे। अरुन्देल जे कृष्णमूर्ति और उनके भाई नित्यानंद के शिक्षक रहे, जो ऐनी बेसेंट के बाद थियोसोफिकल सोसाइटी के अध्यक्ष बने। इन्हें सन् 1935 में पहली बार कोई लेख भेजने के लिए कहा गया था लेकिन अरुन्देल ने मना कर दिया, 'मुझे खेद है कि असंख्य कामकाज फैले होने के बीच हाल फ़िलहाल में मेरे लिए कोई भी लेख भेज पाना सम्भव नहीं है।' ¹⁰⁹ सन् 1940 में अरुन्देल ने गीता पर एक लेख लिख कर *कल्याण* में अपना योगदान दिया।

यूनाइटेड लॉज ऑफ थियोसोफिस्ट की सोफिया वाडिया ने *ब्रदरहुड ऑफ रिलिजियंस* से प्रसिद्धि हासिल की। यह सभी धर्मों में 'बुनियादों की समानता' ¹¹⁰ को प्रदर्शित करने वाले निबंधों का संग्रह था। सभी धर्मों से जुड़े ज्ञान को प्राप्त करने की उनकी जिज्ञासा उन्हें गीता प्रेस के संपर्क में ले आई। सन् 1934 में जब गीता सोसाइटी चल निकली थी तब वाडिया ने 'इस विचार का सम्मान' किया और 'प्रसन्नता से' इससे जुड़ी भी। ¹¹¹ *कल्याण* में उन्होंने ब्रह्मविद्या में भगवान की मान्यता पर लिखा। वाडिया की ही तरह थियोसोफिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया के संस्थापक और होमरूल लीग के समय एनी बेसेंट के करीबी रहे सर सुब्रमन्य अय्यर ने भी 'आर्यों' पर एक लम्बा लेख लिखा।

सन् 1928 में पूरे देश का भ्रमण कर चुके चित्रकार निकोलस रोयरिश ने उस समय के पंजाब प्रांत के नगर, कुल्लू में अपना घर बनाया। यहाँ से उन्होंने अपना उरुस्वती हिमालयन रिसर्च इंस्टिट्यूट चलाया जिसमें 'वे अपनी खोज यात्राओं से हासिल हुए नतीजों और तब तक प्रकाश में नहीं आए अन्वेषणों का अध्ययन कर सके।' ¹¹² भारतीय आध्यात्मवाद से प्रभावित और गहरे पर्यवेक्षक रोयरिश ने 'दार्शनिक अवधारणों को दृश्य चित्रों में तब्दील' कर दिया। (उनके बेटे स्वेटोस्लाव भी एक कलाकार थे जिन्होंने प्रसिद्ध भारतीय अभिनेत्री देविका रानी से विवाह किया) भारत में बसने के कुछ ही साल बाद उनके और पोद्दार के बीच संवाद की शुरुआत हो गई। सन् 1932 में पोद्दार को 'प्रो दे रोयरिश की पुस्तक *रेल्म ऑफ लाइट* के अतिरिक्त पत्रक' के बारे में सूचित किया गया और उनसे जानना चाहा, 'आपके करीबी सदस्यों के लिए आपकी पत्रिका *कल्याण* में उन्हें शामिल करने की सम्भावना' है कि नहीं? ¹¹³

रोयरिश स्वयं भी *कल्याण* में लिखने के लिए बहुत उत्साहित थे। सन् 1932 में पोद्दार की ओर से *ईश्वर अंक* में लिखने के लिए किए गए निवेदन का जवाब सरगर्मी से मिला। रोयरिश ने न केवल *राज राजेश्वरी* लेख लिखने की सहमति दी बल्कि अपनी पेंटिंग की एक तस्वीर भेजने का भी वायदा किया। इसके साथ उन्होंने न्यूयॉर्क के अपने म्यूजियम से पेंटिंग्स के रंगीन पोस्टकार्ड भेजने का भी प्रस्ताव दिया। वे गीता प्रेस और *कल्याण* के प्रति अति प्रशंसा का भाव रखते थे: 'मैं आपकी पत्रिका के लिए भविष्य में अत्यधिक सफलता की कामना करता हूँ।' ¹¹⁴

सी वाई चिंतामणि *कल्याण* में लिखने वाले एक अन्य नाम थे। इनका जन्म पुजारियों के घर हुआ जो विजयनगरम् के राजघराने के लिए काम करते थे। उन्होंने संयुक्त प्रांत को अपनी कर्मभूमि बनाया। पहले मोतीलाल नेहरू द्वारा स्थापित *इंडियन पीपुल* के संपादक रहे, फिर मदनमोहन मालवीय के *लीडर* के संपादक रहे। एक बार कांग्रेसी रहे चिंतामणि ने पार्टी में फैले भ्रष्टाचार को आधार बना कर पार्टी छोड़ दी और नेशनल लिबरल फेडरेशन नाम से अपनी पार्टी बनाई जिसमें तेज बहादुर सप्रू, चिमनलाल सीतलवाड़, दिनशा वाचा और एस एन बनर्जी थे। चिंतामणि सनक की हद तक गोपाल कृष्ण गोखले के प्रशंसक थे। वे ट्रेन में एक सीट अलग से बुक कर उसे

खाली छोड़ दिया करते थे ताकि उनके आदर्श (जिनकी मृत्यु सन् 1915 में हो चुकी थी) उनके साथ यात्रा कर सकें। चिंतामणि यूपी विधानसभा के सदस्य और प्रांत के पहले शिक्षा मंत्री हुए। [115](#) पोद्दार के आग्रह पर उन्होंने 1930 के दशक के उत्तरार्द्ध में *कल्याण* के लिए तुलसीदास के *रामचरितमानस* और गीता पर दो लेख लिखे।

पूना के पत्रकार और लेखक श्रीपद आर टिकेकर भी लेखकों की सूची में थे जो मानदेय के बारे में बहुत मुखर थे। सन् 1927 में टिकेकर ने नेशनल एसोसिएशन फॉर द एडवान्समेंट ऑफ़ कलर्ड पीपुल की पत्रिका *द क्राइसिस* के लिए लिखा। इसका संपादन अफ्रीकन-अमेरिकन सिविल राइट्स एक्टिविस्ट डब्लू इ बी बोइस ने किया। [116](#) जब इस लेख को *कल्याण-कल्पतरु* में छापने के लिए कहा गया तो पोद्दार ने इसके लिए पैसे देने से मना कर दिया जो कि टिकेकर को एकदम नामंजूर था। सन् 1935 में टिकेकर ने पोद्दार को फिर से पत्र लिख कर ऐसा प्रस्ताव दिया जिससे वे इंकार नहीं कर सके। टिकेकर ने कहा कि उनके पास वारेन हेस्टिंग्स का सन् 1784 में पहली बार गीता के अंग्रेज़ी अनुवाद पर लिखा गया चालीस हजार शब्दों का (अंग्रेज़ी में लिखा हुआ) नोट है। अपने पास उपलब्ध सामग्री के नयेपन का राग सुना देने के बाद टिकेकर ने पोद्दार को बताया, ‘बाक़ी परेशानियों और टाइपिंग के खर्च को रहने भी दें तो भी, आप तो समझ ही सकते हैं कि मूल लेखन की इतनी पुरानी प्रति संभालना ही कितना मुश्किल रहा होगा। मैं समझता हूँ कि मुझे आपको यह बताने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी कि वारेन हेस्टिंग्स जैसी शख्सियत का लिखा हुआ कुछ कितना कीमती हो सकता है। तो क्या मैं जान सकता हूँ कि अगर आपको ज़रा भी परवाह है तो इस योगदान को पाने के लिए आप क्या शर्तें रखते हैं?’ आगे, टिकेकर अपनी साफ़गोई की जुबान पर कूदते हुए बोले, ‘मैं स्पष्ट कहता हूँ, आपके आदर्श चाहे जितने ऊँचे हों और लक्ष्य चाहे जितने सराहनीय हों, लेकिन मेरा विश्वास है कि आप नहीं चाहेंगे कि बाक़ी सब आपके लिए प्रेमवश श्रम करें।’ [117](#)

टिकेकर के अगले पत्र से यह स्पष्ट हुआ कि पोद्दार ने रुचि दिखाई और मानदेय से जुड़ी कुछ जानकारी लेनी चाही। टिकेकर ने इस पूरे काम के लिए बीस रुपए मांगे और दोहराया, ‘...किसी भी सूरत में यह धर्मार्थ प्रकाशित नहीं होगा।’ [118](#) अंततः पोद्दार ने टिकेकर को हेस्टिंग्स के नोट को पांच हजार शब्दों में संपादित करने को कहा। इसे टिकेकर ने अप्रैल 1935 में गोरखपुर भेज दिया, पोद्दार को याद दिलाते हुए कि उन्होंने पारिश्रमिक का पैसा नहीं लिया है बल्कि अपनी जेब से हुए खर्च का पैसा लिया है। उनके संबंधों की पकड़ थोड़ी कमज़ोर हुई, टिकेकर ने उनसे और काम माँगा। ‘क्या आप मुझे अपनी पत्रिका के काम आने का मौक़ा देंगे?’ और ‘लेकिन आपको मेरे खर्च का थोड़ा ख़याल रखना होगा जिससे मैं गुज़र रहा हूँ।’ [119](#) उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान के हिन्दू मंदिरों की पूरी सूची का प्रस्ताव रखा और उनसे निवेदन किया कि हेस्टिंग्स के नोट वाले *कल्याण-कल्पतरु* के अंक की एक प्रति उन्हें भेज दें।

हिन्दी साहित्यिक जगत की प्रतिक्रिया

केवल शक्तिशाली, श्रेष्ठ और पवित्र लेखकों को जुटा भर लेना *कल्याण* के लिए पर्याप्त नहीं था, बल्कि धार्मिक प्रकार की इस पहली पत्रिका के लिए हिन्दी साहित्यिक जगत की नज़र और उसकी सरपरस्ती में आना बहुत ज़रूरी था। यहाँ पोद्दार की ज़बरदस्त नेटवर्किंग और गंभीर दृढ़ता का नमूना देखने को मिलता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन सन् 1910 में नागरी प्रचारिणी सभा की शाखा के रूप में आरम्भ हुआ और एक स्वायत्त संस्था बन गया जिसका मुख्यालय इलाहाबाद में था। इसने उत्तर भारत के विविध स्थानों पर सालाना बैठकें आयोजित कीं। सन् 1930 की बैठक गोरखपुर में हुई और पोद्दार ने बनारसी दास चतुर्वेदी, ठाकुर शिवमूर्ति सिंह और ऐसे बड़े लोगों की मैज़बानी की। पोद्दार के क़रीबी रामजी दास बाजौरिया को लेखकों का ख़्याल रखने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई थी। जिस पर चतुर्वेदी ने टिप्पणी की, 'यदि कोई सेवा का कॉलेज खुले तो श्री रामजी दास बाजौरिया को उसका प्रिंसिपल नियुक्त करना चाहिए।' ¹²⁰

पोद्दार भी सन् 1918 में गांधी द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में लोकप्रिय बनाने के लक्ष्य से शुरू की गई दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के साथ जुड़ गए। ¹²¹ उन्होंने साहित्यिक राजनीति में हाशिए से ही भाग लिया और *कल्याण* को हिन्दी केंद्रित लेखों को राष्ट्रवादी ढंग से छापने के लिए एक मंच बना दिया। इनमें से अधिकांश लेख एकतरफ़ा थे जो एक तरह की सांस्कृतिक गोंद की तरह हिन्दी को एकीकृत करने वाली शक्ति के रूप में दिखा रहे थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा सन् 1967 में पोद्दार की पहल और उनके प्रयासों के बदले उन्हें सबसे बड़े पुरस्कार साहित्य वाचस्पति से सम्मानित किया गया।

बहरहाल, सनातन हिन्दू धर्म और सांस्कृतिक व राजनैतिक अस्मिता की रक्षा और प्रचार का गीता प्रेस का मिशन हिन्दी आंदोलन में शामिल बड़े नेताओं के बीच पैठ बनाने में असफल हो गया था। यही वजह रही कि बीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य के प्रमाणिक ऐतिहासिक विवरण में गीता प्रेस अपनी जगह बनाने में चूक गया। *मिश्रबंधुविनोद और हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास* इसके अपवाद रहे।

मिश्रबंधुविनोद चार भागों वाला विस्तृत हिन्दी साहित्य का इतिहास ग्रंथ है। अपने व्याकरण वाली एक भाषा के रूप में हिन्दी की स्वतंत्र पहचान की वकालत करती यह पुस्तक 'हिन्दी समुदाय के अपने साहित्य के ऐतिहासिक वर्णन का पहला प्रमाणिक प्रयास है।' ¹²² *मिश्रबंधुविनोद* में लिखा है, 'वे लोग जो हिन्दी लिखने के लिए भी संस्कृत के व्याकरण पर निर्भर हैं वे हिन्दी के अस्तित्व को नहीं पहचान पा रहे हैं। हम उन्हें हिन्दी का शत्रु मानते हैं।' ¹²³

गणेशबिहारी, श्यामबिहारी और सुखदेवबिहारी मिश्र तीनों भाइयों के सामूहिक प्रयास सन् 1913 में प्रकाशित *मिश्रबंधुविनोद* को बेहिसाब सफलता मिली। पुस्तक तेजी से बिकी। (कालाबाज़ारियों को ख़ूब फ़ायदा हुआ होगा)। ¹²⁴ इस पुस्तक को

उत्तरोत्तर आने वाले नए संस्करणों के रूप में अद्यतित किया जाता रहा और शुरुआती संस्करणों से हटाए गए कुछ नए लेखकों के नाम भी जोड़े जाते रहे ।

मिश्रबंधुविनोद में नवीनता यह थी कि इसने हिन्दी के पैर जमाने में सहायक सिद्ध हुए बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे उपक्रम को समेटकर उल्लेखित किया । इस विशाल उपक्रम का लक्ष्य हर तरह के लेखक, और हर क्षेत्र से लेखन को बिना किसी पक्षपात के उचित स्थान देना था । लेकिन साथ ही इन्होंने आलोचनात्मक मूल्यांकन को भी जगह दी ।

मिश्रबंधुविनोद के 1934 के संस्करण में *कल्याण* संपादक पोद्दार का उल्लेख ‘मारवाड़ी’ विशेषण से मिलता है जिनके लेख ‘पांडित्य’ से अलंकृत हैं । इसके अनुसार ‘*कल्याण* की प्रसार संख्या 20,000 प्रतियाँ प्रति माह हैं । हिन्दी की अन्य पत्रिकाओं के बीच इसका अलग महत्व है लेकिन लेख साधारण गुणवत्ता के हैं ।’ ¹²⁵ इसे पोद्दार की प्रतिभा या उनके संपर्क प्रबंधन की क्षमता ही कहा जाएगा कि उनके व्यक्तित्व ने गीता प्रेस और इसके संस्थापक जयदयाल गोयन्दका दोनों को ही समेट लिया था ।

हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास अयोध्या सिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ के पटना विश्वविद्यालय में दिए गए भाषणों का संग्रह है जिसे इस विश्वविद्यालय द्वारा सन् 1934 में प्रकाशित किया गया । उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के निज़ामाबाद के पूर्व कानूनगो और अपनी धार्मिक मान्यताओं में सनातनी हरिऔध ने अपनी नौकरी के दिनों में लेखन कार्य किया और बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय व अन्य स्थानों पर पढ़ाया । ¹²⁶ लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इंडिया (1898-1928) आयोजित करने वाले जी ए ग्रियर्सन की जान पहचान वाले हरिऔध (कविताओं के माध्यम से) *कल्याण* से भी जुड़े थे । उनकी पुस्तक *मिश्रबंधुविनोद* से कम प्रभाव की थी, लेकिन इसमें हिन्दी के विकास के ठोस सैद्धान्तिकरण पर जोर था । यह पुस्तक हर एक व्यक्ति और हर एक बदलाव की घटना को दर्ज करने में नहीं उलझी । यह स्वीकार करते हुए भी कि उर्दू भाषा कृत्रिमता के चरण पार कर चुकी है, हरिऔध ने पुरजोर ढंग से यह कहा, ‘ये दोनों भाषाएँ मात्र अलग ही नहीं हैं, बल्कि हिन्दी उर्दू की माँ है । मैं यह नहीं मानता कि हिन्दी उर्दू भाषा के सिद्धांतों पर आधारित है ।’ उन्होंने धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशन के लिए गीता प्रेस की सराहना की लेकिन पोद्दार को असली श्रेय दिया । ‘उनका उत्साह केवल सराहना योग्य ही नहीं है बल्कि प्रशंसा के सर्वोच्च पद का हकदार है । वे न केवल धार्मिक पुस्तकें लिख रहे हैं बल्कि औरों से लिखवाने का काम भी देख रहे हैं । वे इन धार्मिक पुस्तकों के प्रचार प्रसार में गंभीरता से जुटे हैं ।’ हरिऔध ने हिन्दी की मुख्यधारा पत्रिकाओं में *कल्याण* को स्पष्ट रूप से धार्मिक पत्रिकाओं की श्रेणी में रखा, ठीक वैसे ही जैसे *माधुरी*, *चाँद*, *सुधा*, *सरस्वती*, *विशाल भारत*, *वीणा*, *हँस* और *विज्ञान* को साहित्यिक पत्रिकाओं की श्रेणी में रखा । उनके विचार में इन पत्रिकाओं की विशेषता न केवल अच्छा संपादन था बल्कि हिन्दी साहित्यिक जगत में इनकी प्रतिष्ठा भी थी । ¹²⁷

मिश्रबंधुविनोद और हरिऔध की हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास के बीच सन् 1929 में हिन्दी साहित्यिक इतिहास की प्रमाणिक पुस्तक मानी जाने वाली रामचंद्र शुक्ल की *हिन्दी साहित्य का इतिहास* छपकर आई। हालाँकि बाद में शुक्ल के काम की विस्तृत आलोचनाएँ हुईं लेकिन इसका महत्व ज्यों-का-त्यों रहा। शुक्ल का जोर महत्वपूर्ण लेखकों और बड़ी साहित्यिक प्रवृत्तियों पर था जो ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी के विकास मार्ग में दिखती हैं और शायद यही गीता प्रेस, *कल्याण* और यहाँ तक कि पोद्दार को नज़रअंदाज़ करने की वजह बनी। आश्चर्य की बात यह है कि *कल्याण* के सन् 1938 के 'मानस की धर्मभूमि' अंक में शुक्ल ने लेख लिखा था। शुक्ल की प्रभावशाली पुस्तक में अनुपस्थिति ने हिन्दी राष्ट्रवाद के आधुनिक इतिहासकारों और गीता प्रेस के जनदायरों में दिए योगदान के आलोचनात्मक चिंतन से ध्यान हटाने में भूमिका निभाई।

पोद्दार ने अपने अतिसाधारण उत्साह से हिन्दी इतिहास के इतिहासकारों द्वारा स्वयं को मिली फीकी प्रतिक्रिया को महत्वहीन बना दिया। यह उनका अपना अंदाज़ था कि वे लेखकों से निजी स्तर पर काम निकलवा लेते थे। हिन्दी के व्यापक साहित्यिक जगत में सनातन हिन्दू धर्म या हिन्दू राष्ट्रवाद की परवाह कर रहे लेखकों को गीता प्रेस के लिए लिखने को तैयार करते थे। वे लोग जो धर्मनिरपेक्ष विचारों के साथ भी लिखना चाह रहे थे, उनका भी स्वागत किया गया। अंत तक पोद्दार ने एक परम्परावादियों, कट्टर रूढ़िवादियों और प्रगतिशील हिन्दी लेखकों का एक विलक्षण सम्मिश्रण तैयार कर लिया। *कल्याण* के शुरुआती दशक में लिखने वाले अधिकांश हिन्दी लेखक पत्रिका की विकास यात्रा और 1940 से 1950 के दशक में उसके द्वारा अदा की गई साम्प्रदायिक भूमिका देखने के लिए अगर जिंदा बचे होते तो उन्हें इसके साथ अपने जुड़ाव पर अफ़सोस होता।

कल्याण के लिखने वालों की एक लम्बी सूची हिन्दी जगत से रही है जहाँ सभी किसी-न-किसी रूप में गीता प्रेस के आरम्भिक वर्षों में इससे जुड़े रहे। सन् 1896 में गठित नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक सदस्यों में एक रहे बाबू श्यामसुंदर दास ने अपना जीवन स्कूलों तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाने और जनभाषा के रूप में हिन्दी को प्रचारित करने में लगा दिया। इनका सबसे बड़ा योगदान सोलह भागों में तैयार किया गया *हिन्दी शब्दसागर* है, जिसे नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित किया गया। बाबू श्यामसुंदर दास का एक ही लेख *कल्याण* में दिखाई दिया। यह सन् 1929 में तुलसीदास की कविताई पर लिखा गया था।

महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम पर हिन्दी साहित्य के एक भाग को द्विवेदी युग कहा गया। इस युग ने लेखकों की कई पीढ़ियों को प्रभावित किया। सत्रह साल तक *सरस्वती* पत्रिका के संपादक रहे द्विवेदी भाषा के विद्वान थे और खड़ी बोली के संस्थापक थे जो संस्कृत और उर्दू से मुक्त मानक हिन्दी की एक बोली। कलकत्ता में उनकी मुलाक़ात पोद्दार से हुई। ¹²⁸ उन्होंने *कल्याण* के पहले दशक में ही करुणा, गंगा

और प्रार्थना पर चार मौलिक लेख लिखे । एक अन्य लेख उनके प्रकाशित लेख से उद्धृत था ।

पोद्दार और *कल्याण* के लिए द्विवेदी के मन में अगाध श्रद्धा थी और वे प्रशंसा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे । जब कभी लेख न भेज पाने की अक्षमता ज़ाहिर करते थे तो साथ ही किसी पूर्व प्राकशित लेख से उद्धरण लेने की अनुमति भी दे दिया करते थे । द्विवेदी *कल्याण* के नियमित पाठक थे और जब कभी पोद्दार का लिखा कुछ उन्हें पसंद आता था तो सराहना का पोस्टकार्ड भेजा करते थे । ईश्वर अंक पढ़ने के बाद उन्होंने लिखा, ‘मेरी आँखों से जो आंसू निकले हैं और अब तक निकल रहे हैं उनका कुछ अंश ऊपर कार्ड पर भी लग गया है । आप धन्य हैं । आपकी योजना धन्य है ।’ कुछ सालों बाद *कल्याण* के *संत अंक* की प्रति प्राप्त होने पर द्विवेदी ने पोद्दार को धन्यवाद करते हुए लिखा कि, ‘आपकी बदौलत सम्भव है मुझ सांसारिक जीव का भी कुछ भला हो जाये ।’ [129](#)

संपादक, लेखक, कार्यकर्ता और सन् 1947 के बाद संसद के मनोनीत सदस्य बनारसी दास चतुर्वेदी हिन्दी साहित्यिक जगत में लम्बे समय तक प्रभावशाली व्यक्तित्व रहे जिन्होंने राजनैतिक व साहित्यिक दुनिया के बीच खूबसूरती से संपर्क साधे रखा । अलग-अलग भूमिकाएँ अदा करने वाले चतुर्वेदी का जीवनपर्यन्त लक्ष्य फिजी में ठेके पर श्रम करने वाले भारतीय मजदूरों के लिए काम करना था, और इसी लक्ष्य ने उन्हें सी एफ एंड्रयूज़ व सभी प्रकार की विचारधारा के राजनेताओं के करीब ला दिया ।

विशाल भारत हिन्दू महासभा के रामानंद चटर्जी की पत्रिका थी, इसके अलावा रामानंद अंग्रेज़ी व बांग्ला में छपने वाली *मॉडर्न रिव्यू* के भी संस्थापक-संपादक थे । *विशाल भारत* के संपादक चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य की राजनीति में गहरे शामिल थे । उन्होंने पांडेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ के कहानी संग्रह *चॉकलेट* (1929) के खिलाफ़ बड़ा अभियान छेड़ा । यह संग्रह अचानक ही बेस्टसेलर हो गया । लेकिन ‘साहित्यिक प्रतिष्ठानों’ के मानदंडों पर खरा नहीं उतरा । क्योंकि इसका संबंध समलैंगिकता जैसे वर्जित विषय से था । यही नहीं उसे केवल झुगगी-झोंपड़ी की गंध में नहीं बल्कि हिन्दू और मुसलमान मध्यवर्गीय परिवारों में फलते-फूलते दिखाया गया । [130](#) पुस्तक को दरकिनार करने वाले प्रेमचंद हों या उग्र के अनुसार उनके समर्थन में आए गांधी हों, [131](#) इस विवाद में सभी के हाथ दिखाई दिए लेकिन ये चतुर्वेदी ही थे जिन्होंने उसे ‘घासलेटी साहित्य’ की संज्ञा दी । चतुर्वेदी और ‘उग्र’ के बीच आपस में पत्राचार हुआ । कहा गया कि चिकित्सा विज्ञान के अनुसार ‘चुम्बन प्रथा डॉक्टरों के कथानुसार बीमारी फैलाने वाली होती है ।’ [132](#) उसके बाद भी चतुर्वेदी ने उग्र की एक कहानी को *विशाल भारत* में प्रकाशित किया । [133](#)

पोद्दार और चतुर्वेदी पुराने परिचित थे । सन् 1931 में चतुर्वेदी के बेटे के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए पोद्दार ने गिरमिटिया मजदूरों के लिए किए गए उनके काम को सराहा और सलाह दी, ‘आप परमात्मा पर विश्वास रखिए, देखिए क्या होता है! सारे

कष्ट आनंद के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं या नहीं ।’ ¹³⁴चतुर्वेदी ने *कल्याण* में तीन लेख लिखे जिनमें से एक गांधी और लेनिन पर सापेक्ष अध्ययन था, एक बाल साहित्य और एक भक्ति केंद्रित था । सन् 1941 में उन्होंने पोद्दार को सलाह दी कि *कल्याण* को *मातृभूमि* अंक निकालना चाहिए । ‘यह जनता को केवल शिक्षित ही नहीं करेगा बल्कि यह विषय भी समकालीन रहेगा ।’ चतुर्वेदी ने इस विशेष संस्करण के निकालने हेतु अपनी सहायता का प्रस्ताव रखा और इसकी योजना के सिलसिले में गोरखपुर आने का वायदा किया । ‘हमारे विचार बहुत-सी बातों पर एक दूसरे से नहीं मिलते हैं’ यह जानते हुए भी चतुर्वेदी ने स्पष्ट किया कि वे दोनों ‘जहाँ विचार मिलते हैं वहाँ साथ काम कर सकते हैं ।’ ¹³⁵लेकिन यह योजना अंजाम तक नहीं पहुँची ।

समय-समय पर चतुर्वेदी पोद्दार से लोगों के लिए और अपने कुछ विशिष्ट जनों के लिए आर्थिक सहायता भी लिया करते थे । सन् 1958 में पोद्दार की शीघ्र स्वस्थ होने की कामना भेजने वाले एक पत्र में उन्होंने स्वीकारा है, ‘आपने समय समय पर जो सहायता मुझे दी है उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ?’ चतुर्वेदी ने पोद्दार द्वारा की गई सहायताओं की सूची लिखी थी । जिसमें पचास से अस्सी रुपए तक की मदद से लेकर *कल्याण* के लिए लिखने के बदले में भेजे गए मानदेय भी शामिल थे । इसी पत्र में चतुर्वेदी ने यह लिखा कि ब्राह्मण होने के कारण वे पोद्दार को संबोधित करते हुए ‘प्रणाम’ नहीं लिखते बल्कि ‘आशीष’ लिखते हैं । जिससे चतुर्वेदी के अंदर गहरे बैठी स्वयं की जातिगत श्रेष्ठता के बोध का पता चलता है । ¹³⁶

अपने समय के महानतम लेखक प्रेमचंद उस समय हिन्दी जनवृत्त की प्रभावी आवाज़ थे जब पोद्दार ने उन्हें *कल्याण* में लिखने के लिए प्रोत्साहित करना आरम्भ किया । प्रेमचंद द्वारा *कल्याण* जैसी पत्रिका को लिखने के लिए चुनना काफ़ी दिलचस्प था क्योंकि उन्होंने न केवल अपने पात्रों के जीवन में धर्म की घटती भूमिका को दर्शाया था बल्कि गीता प्रेस और हिन्दू महासभा द्वारा उर्दू को मुसलमानों की भाषा बताकर उसका खुलेआम विरोध करने की नीति के विरुद्ध आवाज़ भी उठाई । सन् 1934 में उन्होंने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की बैठक में कहा था, ‘हिन्दी नाम मुसलमानों द्वारा दिया गया था और अब से पचास साल पहले तक आज उर्दू कहलाने वाली भाषा को मुसलमान भी हिन्दी कहते थे ।’ ¹³⁷

पोद्दार द्वारा लगातार प्रोत्साहित किए जाने पर प्रेमचंद ने सन् 1931 में श्रीकृष्ण पर लिखा । लेकिन उन्होंने अपनी अनिच्छा भी ज़ाहिर कर दी, ‘आपका कृपापत्र मिला, आपका यह कथन सत्य है कि मैंने तीन वर्षों में *कल्याण* के लिए कुछ भी नहीं लिखा, लेकिन इसके कारण हैं । यह एक धर्म विषयक पत्रिका है, और मैं धार्मिक विषय में कोरा हूँ । आप अधिकारी होकर मुझ अनाधिकारी से लिखाते हैं । इसीलिए अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा । श्री कृष्ण और भावी जगत यह प्रसंग मेरे अनुकूल है और मैं इसी पर कुछ लिखूँगा ।’ ¹³⁸सन् 1931 में इस विषय पर प्रेमचंद का पहला लेख *कल्याण* में आया ।

प्रेमचंद से *कल्याण* में लिखने के लिए कहते समय पोद्दार ने भाषायी राजनीति की कशमकश से आंखें मूँद ली थीं जिसमें प्रेमचंद ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इसका एक कारण संभवतः प्रेमचंद का क्रोध था, इसके अलावा वह और पोद्दार एक दूसरे के प्रति सहज भी थे। जैसा कि हम पहले भी देख चुके हैं, प्रेमचंद ने एक मुस्लिम कलाकार मुहम्मद हाकिम खान की सिफ़ारिश गीता प्रेस में काम के लिए की थी। सन् 1948 में लेखक की मृत्यु के बारह साल बाद *कल्याण* ने अपने वार्षिक *नारी अंक* में प्रेमचंद के आलेख के अंश प्रकाशित किए।

गीता प्रेस की अपने लेखकों के परस्पर-विरोधी विचारों के प्रति तटस्थता की नीति केवल हिन्दी की भाषाई राजनीति तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसका विस्तार नए साहित्यिक रुझानों तक था। पोद्दार के लिए लेखकों के साहित्यिक और निजी झुकावों के कोई खास मायने नहीं थे। उनको बस इस बात से फ़र्क़ पड़ता था कि *कल्याण* के लिए आने वाले लेख गीता प्रेस के खाक़े के अनुकूल हों। द्विवेदी युग के स्थापित साहित्यिक मूल्यों को सबसे बड़ी चुनौती ऐसे तीन कवियों से मिली जो भिन्न-भिन्न स्थानों पर काम करते थे और एक दूसरे से अनभिज्ञ थे। यह अपमान और अनादर के एक नए दौर की शुरुआत थी जो हिन्दी साहित्य को झिंझोड़ने वाला था। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और सुमित्रानंदन पन्त की कविताओं का साहित्यिक प्रतिष्ठानों ने उपहास उड़ाया और उसे 'छायावाद' की संज्ञा दी जो हिन्दी काव्य में 'नव-प्राकृतवाद या रहस्यमयी सतही-पलायनवादी कविता' ¹³⁹ का सूचक था। इस आक्रमण का नेतृत्व स्वयं द्विवेदी ने किया और वे छायावाद को सबसे ज़्यादा अपमानित करने वाले व्यक्ति थे, 'छायावाद का अर्थ संभवतः एक ऐसा काव्य है जो कहीं और लिखी गई कविता की छाया है।' ¹⁴⁰ हिन्दी जनवृत्त न केवल छायावादियों द्वारा 'भाषा, मीटर, छंदशास्त्र के प्रति पूर्ण अनादर बल्कि उनके द्वारा प्रेम, पराजय, रूमनियत, प्रकृति, सौन्दर्य' जैसे विषयों के चयन और 'व्यक्ति विशेष के सामाजिक सन्दर्भों के विस्तार पर ज़ोर' से भी भड़का हुआ था। ये विषय एक ऐसे समय में राष्ट्रवाद के प्रभुत्व वाले विषयों को चुनौती दे रहे थे 'जब सामाजिक और राजनीतिक गहनता अपने उफान पर थी। यह वह समय था जब भावी आज़ादी के प्रति उम्मीदें परवान चढ़ रही थीं और निराशा के बादल छंट रहे थे।'।

बनारस के प्रसाद, अल्मोड़ा के पन्त (बाद में इलाहाबाद में बसने वाले) और उन्नाव, उत्तर प्रदेश के रहने किन्तु महिषादल, बंगाल ¹⁴¹ (पूर्वी मेदनीपुर का हिस्सा) में जन्में सर्वोत्कृष्ट यायावार निराला ने अपना अलग साहित्यिक स्थान बनाया और अपनी रचनाएँ प्रकाशित करवाईं। प्रसाद और पन्त ने तो केवल साहित्यिक शैली और सांसारिक नज़रिए से जुड़े नियमों को तोड़ा, लेकिन तीनों में सबसे ज़्यादा प्रतिभाशाली निराला ने द्विवेदी युग की परंपराओं के मूल को चुनौती दी और गीता प्रेस द्वारा बहुत उत्साहपूर्वक प्रचारित-प्रसारित किए जाने वाले सनातन हिन्दू धर्म की सभी संस्थाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के करियर का सबसे महत्वपूर्ण पड़ाव *मतवाला* में उनकी कार्यावधि थी। ¹⁴² कलकत्ता में 26 अगस्त, 1923 को सेठ महादेव प्रसाद द्वारा निकाली गई *मतवाला* एक ऐसी पत्रिका थी जो संस्थाओं, व्यक्तियों, संगठित धर्म, राजनीति और राजनीतिज्ञों की अवहेलना करती थी, लेकिन प्रगतिशील लोकाचार के प्रति सम्मान का भाव रखती थी। *मतवाला* ने सनातन धर्म पर इस क्रूर तीखे हमले किए कि इसके प्रत्युत्तर में *धर्म-रक्षक* नाम की पत्रिका निकाली गई। ¹⁴³ त्रिपाठी उपनाम के साथ 'निराला' उन लेखकों ने जोड़ा जिन्हें *मतवाला* गैंग के नाम से जाना गया। यह बेहद प्रतिभाशाली लेखकों का एक मिला-जुला समूह था, जिसमें मुख्य रूप से व्यंग्यकार नवजादिकलाल श्रीवास्तव, सुंदर गद्य के लेखक शिवपूजन सहाय और समूह-प्रमुख 'निराला' शामिल थे। *मतवाला* में तत्कालीन समय के दिग्गज नामों ने लिखा। बाद में, जब निराला पर टैगोर की साहित्यिक चोरी का आरोप लगा और *मतवाला* इस आरोप के जवाब में निराला का बचाव करने में नाकाम हो गई और उसने निराला की कविताएं छापने से इंकार कर दिया तो निराला ने *मतवाला* को छोड़ दिया। निराला सभी के प्रति अपनी दरियादिली के लिए जाने जाते थे जबकि वे स्वयं आर्थिक रूप से संघर्ष करते रहे। कान्यकुब्ज ब्राह्मण निराला ने यज्ञोपवीत का त्याग कर दिया था। उनका नियमित उठना-बैठना मुसलमानों के साथ था, वे मदिरापान करते थे और वे कलकत्ता के सोनागाछी के वेश्यालय में एक 'बहुत बीमार' वेश्या के पास भी गए। जिसके कारण निराला को रोग भी हुआ। उन्हें इस वेश्यालय ले जाने का काम बदले की भावना से ग्रस्त 'उग्र' ने किया था क्योंकि बहुत पहले निराला ने उन्हें देशी शराब रंग में मिला कर पिलाई थी। बाद में प्रसाद ने निराला का बनारस में इलाज भी कराया और इस तरह एक छायावादी ने दूसरे छायावादी की मदद की।

कल्याण के लिए निराला ने समकालीन साहित्य और धर्म पर लिखना तय किया। स्वयं उनके और उनके छायावादी साथियों पर हिन्दू राष्ट्रवाद की भाषा में उलझे स्थापित साहित्यिक संस्थानों द्वारा हो रहे चौतरफा हमलों के बीच ऐसे विषयों से उनके मन में टीस उठी होगी। निराला का आलेख सन् 1931 में आया जब वे *मतवाला* छोड़ चुके थे और स्वतंत्र लेखन कर रहे थे। पुनः यह पोद्दार द्वारा बार-बार अनुरोध करने का ही नतीजा था। पोद्दार के बार-बार याद दिलाने से शर्मिंदा होकर निराला ने आगे बताया कि वह घरेलू मामलों में उलझे हुए थे, 'क्या लिखूं, आपके सहृदय सज्जनोचित बर्ताव के लिए मैं बहुत ही लज्जित हूँ। आपके आगे के अंकों के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य भेजता रहूँगा। एक प्रबंध कुछ ही दिनों में भेजूँगा।' ¹⁴⁴

पोद्दार ने सन् 1950 के *हिन्दू संस्कृति अंक* के लिए हिन्दू धर्म की महत्ता पर पन्त से लिखने का आग्रह किया। ¹⁴⁵ हालाँकि पन्त के करियर का यह दौर 'छायावाद की परिणिति' और 'गांधीवाद तथा मार्क्सवाद से प्रभावित वैचारिक काव्य' की शुरुआत का था, उन्होंने बाद में 'अरविंद से प्रभावित होकर दार्शनिक काव्य' का रुख कर लिया। ¹⁴⁶ *हिन्दू संस्कृति अंक* के लिए उन्होंने 'स्तवन' काव्य लिखा।

प्रसाद, जो बनारस के तम्बाकू व्यापारी थे, ने ब्रज भाषा में कविता लिखनी शुरू की, फिर खड़ी बोली में कविताएं लिखीं तथा छायावादी काव्य के स्तम्भ बने। जब सरस्वती ने उनकी कविताएं छापने से इंकार कर दिया तो उन्होंने स्वयं अपनी पत्रिका इंदू आरम्भ की। ¹⁴⁷ निराला और पन्त की तरह ही प्रसाद ने भी *कल्याण* के लिए सन् 1937 में अपेक्षाकृत सुरक्षित विषय 'रहस्यवाद' पर लिखना तय किया। इसी साल उनकी मृत्यु भी हो गई। छायावादी काव्य में बाद में प्रवेश करने वाली महादेवी वर्मा ने *कल्याण* के लिए कभी नहीं लिखा।

गीता प्रेस द्वारा हिन्दी साहित्यिक जगत से चुने गए इन लेखकों के समूह में द्विवेदी युग के सबसे प्रभावी राष्ट्रवादी हिन्दी कवि मैथिलीशरण गुप्त का नाम भी आता है। सन् 1947 के बाद उन्हें राष्ट्रकवि कहकर विभूषित किया गया और सन् 1952 के बाद उन्हें लगातार दो बार राज्य सभा के लिए भी नामांकित किया गया। सन् 1912 में प्रकाशित *भारत-भारती* से उन्हें प्रसिद्धि मिली जो देश की स्थिति और हिन्दुओं को जगाने वाला राष्ट्रवादी सर्वेक्षण था। ¹⁴⁸ इसके साथ-साथ यह ब्रिटिश राज का स्तुति गान भी था, 'यह संभव नहीं है कि सबसे अच्छे व्यक्ति द्वारा किया गया विदेशी शासन भी अच्छा हो, अगर यह सच भी है तो भी हमें ब्रिटिश शासन स्वीकार्य है। यह बेहतर ढंग से संगठित है और इसमें आशा की किरण भी है।' देश में बारम्बार पड़ते अकाल का मार्मिक वर्णन करते समय भी गुप्त *भारत-भारती* में अंग्रेज़ी सरकार को यह सर्टिफिकेट देना न भूले कि 'है खोलती सरकार यद्यपि काम शीघ्र अकाल के, होती सभाएँ, और खुलते सत्र आटे दाल के, पूरा नहीं पड़ता तदपि, वह त्राहि कम होती नहीं, कैसी विषमता है कि कुछ भी हाय! सम होती नहीं।' ¹⁴⁹ जब गुप्त की कविता '*अंग्रेज़ी अमलदारी में ईश-विनय*', जो *भारत-भारती* का हिस्सा थी, की खबर आई तो बेअदब *मतवाला* ने गुप्त पर चुटकी लेते हुए लिखा, 'अंग्रेज़ी अमलदारी में ईश विनय। लंका में बैठ कर राम नाम! सरकार को चाहिए कि गुप्त जी को कहीं इन्टर्न करके उनका 'गुप्त' नाम सार्थक कर दे।' ¹⁵⁰

भारत-भारती की व्यापक महत्ता हिन्दू-मुसलमान पहचानों को पैना तथा लेखकों, पत्रकारों और राजनीतिज्ञों के एक हिस्से में 'हिन्दी', 'हिन्दू' और 'इंडियन' जैसे शब्दों को एक समानार्थक बनाने में थी। गुप्त और पोद्दार कलकत्ता में मिलने तक *भारत-भारती* की प्रसिद्धि उफान पर पहुँच चुकी थी और गुप्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे। सन् 1950 में *हिन्दू संस्कृति अंक* की योजना बनाते हुए पोद्दार गुप्त को भूले नहीं थे। पोद्दार को पूरी तरह मालूम था कि गुप्त का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। उन्होंने फिर भी गुप्त से एक पृष्ठ लिखने का ज़ोर डाला। 'हिन्दी संसार के सात्विक वृत्तियुक्त महाकवियों में और हिन्दू संस्कृति के सुविज्ञ उपासकों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। इसीलिए आपसे विशेष प्रार्थना की गई थी। शरीर का ध्यान रखते हुए जो कुछ भी संभव हो भेजने की अवश्य कृपा करें।' ¹⁵¹ अंततः सन् 1927 में प्रकाशित गुप्त के कविता-संग्रह *हिन्दू* की

कविता अपनी संस्कृति छापी गई। इस कविता में उन्होंने ब्रिटिश-विरोधी रुख अपनाया जिससे हिन्दी/भारतीय राष्ट्रवाद की धारणा और पैनी हो गई थी।

इससे पहले सन् 1945 में गुप्त ने बिगड़े स्वास्थ्य का हवाला देते हुए वार्षिक *गो अंक* में न लिखकर पोद्दार को निराश किया। चिरगांव नामक झांसी जिले के अपने पैतृक गांव में स्वास्थ्य लाभ लेते हुए गुप्त ने पोद्दार को बताया कि उनका और उनके छोटे भाई सियाराम शरण गुप्त, जो स्वयं भी कवि हैं, का स्वास्थ्य सांस-संबंधी समस्या के चलते अच्छा नहीं है। लेकिन उन्होंने पोद्दार को बताया, ‘भारत-भारती से गो-वध पर एक कविता ले लें।’ गुप्त ने साथ ही यह भी कहा, ‘उन्होंने बहुत लम्बे समय से *कल्याण* के दर्शन नहीं किए हैं, लेकिन उसकी प्रगति और बढ़ते सर्कुलेशन का समाचार उन्हें मिलता रहता है। और कुछ नहीं तो वे हिन्दी के लिए खुश हैं।’ ¹⁵²

बिहार के ‘ठेठ, निर्धन और घुमंतू स्वतंत्र हिन्दी पत्रकार’ ¹⁵³ शिवपूजन सहाय का चमेली या पुष्प-सदृश्य गद्य शैली के लिए हिन्दी साहित्यिक जगत के सभी धड़ों में बहुत सम्मान था। ¹⁵⁴ वे हिन्दी जगत में सभी को बेहद आत्मीय थे। एक तरफ़ उद्दंड निराला उनको पसंद करते थे और कलकत्ता में सहाय की पत्नी का गम्भीर बीमारी में ध्यान रखते थे ¹⁵⁵ तो वहीं सख्त मिजाज़ के पोद्दार उनसे *कल्याण* में लिखने के लिए लगातार कहते रहते थे। हिन्दी लेखकों, कवियों और आलोचकों की पूरी मंडली उनकी ईमानदारी के चलते उन पर विश्वास करती थी। शिवपूजन सहाय एक संस्थान निर्माता थे जिन्होंने अकेले ही बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का काम सन् 1947 के बाद के निर्माणात्मक वर्षों में संभाला था। वह 1930 के दशक के आरंभिक वर्षों में बनारस में साप्ताहिक पत्रिका *जागरण* के संपादक रहे थे। पोद्दार ने *जागरण* के कार्य की प्रशंसा की थी और *कल्याण* के सन् 1932 के वार्षिक *ईश्वर अंक* के लिए लिखने का आग्रह किया था।

पोद्दार के कागज़ात में शिवपूजन सहाय का कोई पत्र नहीं मिला है लेकिन यह स्पष्ट है कि उन्होंने *कल्याण* के लिए लिखने का वायदा किया था। यह पोद्दार के उस पत्र से स्पष्ट है जिसमें उन्होंने सहाय को लिखने का निमंत्रण स्वीकार करने के लिए धन्यवाद दिया है। साथ ही बनारस में समीप रहने वाले जयशंकर प्रसाद को *कल्याण* के लिए लिखने के अपने वायदे को याद दिलाने के लिए कहा गया है। ¹⁵⁶ हालाँकि बिगड़े स्वास्थ्य के चलते सहाय कभी *कल्याण* के लिए लिख नहीं सके लेकिन वे *कल्याण* के नियमित पाठक थे और छूटे अंकों को पढ़ने के लिए आग्रह करते थे। जब भी संभव हुआ पोद्दार ने उन्हें अंक उपलब्ध कराए। ¹⁵⁷

जागरण में प्रकाशित होने वाले धार्मिक आलेखों के लिए पोद्दार से सुझाव-परामर्श लिया जाता था। उदाहरण के तौर पर, तुलसीदास से जुड़ी पुस्तकों की सूची मुहैया कराने की बात पूछे जाने पर पोद्दार ने *जागरण* के कर्मचारी प्रवासी लाल वर्मा को जवाब दिया कि तुलसीदास पर मौजूदा पुस्तकों की प्रमाणिकता संदेहास्पद है और कवि ने अपना बेहद संक्षिप्त परिचय लिखा है। ¹⁵⁸ उनकी मृत्यु के सात साल बाद

उनके शिष्य बेनीमाधव दास द्वारा लिखा गया *गोसाईं चरित* विवरण सबसे प्रामाणिक माना जाता है, लेकिन इसकी कोई प्रति अब मौजूद नहीं है। सन् 1926 में बिहार में जब तुलसीदास द्वारा लिखी किसी पुस्तक की पांडुलिपि मिलने की बात सामने आई तब इस घटना पर 'उत्साह और संशय' दोनों देखने को मिला। बहुत से विद्वानों ने इसे '19वीं सदी की मनगढ़ंत' रचना कहकर खारिज कर दिया। ¹⁵⁹ हालाँकि गीता प्रेस ने इसे सन् 1934 में प्रकाशित किया।

बाबूराव विष्णुराव पराड़कर और पोद्दार का जीवन भी कुछ समय तक साथ-साथ चलता रहा। मूलतः महाराष्ट्र के लेकिन बनारस में जन्मे और बिहार में शिक्षित पराड़कर कलकत्ता काम और पार्ट टाइम अध्ययन के लिए आए थे। वे *बंगवासी* और बाद में *हितवार्ता* अखबार से जुड़ गए। अरविंद घोष (जो उस समय बंगाल नेशनल कॉलेज के प्रमुख थे) और उनके भाई से प्रभावित होकर वे क्रांतिकारी आंदोलन में शामिल हो गए। ¹⁶⁰ पराड़कर ने कलकत्ता में युवा मारवाड़ियों द्वारा गठित साहित्य संवर्धिनी समिति के लिए गीता का हिन्दी में अनुवाद किया और उनका पोद्दार से परिचय उसी दौरान हुआ। इस अनूदित ग्रंथ के मुख्य पृष्ठ में भारतमाता के एक हाथ में गीता और दूसरे हाथ में तलवार दिखाई गई थी। यह आरएसएस और दक्षिणपंथी संगठनों द्वारा भारत के हिन्दू राष्ट्र को दर्शाने वाला मानक चित्र बन गया। इसी के चलते पराड़कर ब्रिटिश सरकार की नजर में आए। पोद्दार ने दावा किया कि पराड़कर रोड्डा आर्म्स रॉबरी केस में भी शामिल थे और उन्हें हथियारों का ज़खीरा छिपाने का कार्य दिया गया था। ¹⁶¹ पराड़कर को बंगाल से निर्वासित कर दिया गया और वे बनारस आ गए जहाँ उन्होंने हिन्दी अखबार *आज* का संपादन किया जो संयुक्त प्रांत का शीर्ष अखबार बन गया था। 'उग्र' जो अभी अपनी किशोरावस्था में ही थे, का पहला लेख पराड़कर के चलते ही *आज* में प्रकाशित हुआ। वे पराड़कर को अपना गुरु मानते थे। पराड़कर ने *कल्याण* में एकमात्र आलेख देवी भगवती पर लिखा लेकिन गीता प्रेस ने उनसे मराठी आलेखों का हिन्दी में अनुवाद करने को कहा।

लक्ष्मण नारायण गर्दे भी एक अन्य अनुवादक थे जिन्होंने मराठी लेखों का अनुवाद हिन्दी और अंग्रेज़ी में *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* के लिए किया। पराड़कर की तरह ही छोटी किन्तु बौद्धिक रूप से महत्वपूर्ण मानी जाने वाली बनारस की मराठी ब्राह्मण आबादी से आने वाले गर्दे ने शुरुआती वर्षों में *कल्याण* के लिए काम किया लेकिन अपनी अन्य पत्रकारीय कार्यवाधियों की तरह ही यह कार्यकाल भी छोटा था। तिलक के प्रशसंक, गांधी-विरोधी और 'हिन्दुत्व के तरफ़दार' माने जाने वाले गर्दे ने वीर सावरकर की रचना *हिन्दुत्व* को सन् 1923 में मराठी से हिन्दी में *हिन्दूपद पदशाही* शीर्षक से अनुदित किया। वैचारिक रूप से संकुचित गर्दे एक समय तिलक के *गीता रहस्य* पर कलकत्ता में विमर्श किया करते थे जहाँ उन्होंने पहले *भारतमित्र* और बाद में डाबर परिवार के डॉ एस के बर्मन की आर्थिक मदद से चलाए जा रहे *श्री कृष्ण सन्देश* में काम किया। ¹⁶²

अपनी सभी प्रकर की वैचारिक दृढ़ताओं, जिन पर वह सार्वजनिक रूप से क्रायम भी रहे, की वजह से गर्दे का जीवन कुछ उलझा हुआ और यहाँ तक कि मुश्किलों भरा भी रहा। अपने द्वारा किए गए पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए वे लगातार पोद्दार से सलाह-मशविरा लेते थे जिन्हें वह अपनी माँ और श्री अरविंद घोष के साथ अपनी आत्मा का रखवाला मानते थे। उन्होंने एक घटना का जिक्र किया है जब वे बनारस में पोद्दार के जीवन दृष्टि पर आधारित एक सिनेमा देखकर लौट रहे थे और उन्होंने पोद्दार से एक ऐसे व्यक्ति का नाम सुझाने को कहा जो बनारस में नैतिक रूप से उनका पथ-प्रदर्शन कर सके। ¹⁶³ हालाँकि उन्होंने केवल सिनेमा देखने के पाप का उल्लेख पत्र में किया था, लेकिन पत्र का अभिप्राय देखते हुए यह कहा जा सकता था कि उन्होंने और भी कई पाप किए थे।

बाद के वर्षों में गर्दे ने पोद्दार को अपनी पत्नी के साथ कोर्ट में चल रही लड़ाई के बारे में भी लिखा जिसमें उनकी पत्नी अपने 'स्वत्व' पर जोर दे रही थी। ¹⁶⁴ गर्दे के अनुसार उनकी पत्नी ने उन्हें छोड़ दिया था और वह आर्थिक भरपाई की मांग कर रही थी। प्रति माह 300 रुपए भेजने के बावजूद यह आर्थिक भरपाई करना गर्दे के लिए मुश्किल हो रहा था। वे *कल्याण* के सह-संपादक चिम्मनलाल गोस्वामी को लिखकर भी कोर्ट में बेकार होने वाले समय, लिखने में अपनी असमर्थता और अपनी आर्थिक कठिनाइयों का रोना रोते रहते थे। ¹⁶⁵ उन्होंने *कल्याण* के विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक अंकों में उन्नीस आलेख लिखे, जिनमें *हिन्दू संस्कृति अंक* के लिए हिन्दुवाद और गांधी पर लिखा गया बेहद आलोचनात्मक लेख भी शामिल थे।

1930 के दशक में जब गीता प्रेस और *कल्याण* संयुक्त प्रांत और उसके बाहर अपने पाँव जमाने की कोशिश कर रहे थे, तब तक हरिवंशराय बच्चन हिन्दी जगत में उमर खैय्याम की *रुबाइयात* पर आधारित अपनी रचना *मधुशाला* के चलते घर-घर में मशहूर हो चुके थे। ऐसा लगता है कि पोद्दार और बच्चन तब करीब आए जब सन् 1960 में *कल्याण* के लिए बच्चन ने भगवान के आह्वान के रूप में एक गीत लिखा। ¹⁶⁶ पोद्दार का बच्चन के साथ निजी संबंध पोद्दार के मित्र और सहयोगी राधा बाबा द्वारा बच्चन पर डाले गए गहरे और निर्णायक प्रभाव का नतीजा हो सकता था। बच्चन राधा बाबा से 1950 के दशक में कलकत्ता के उद्योगपति और पोद्दार के मित्र रामनिवास ढाँढरिया से दिल्ली में मिले थे। बच्चन और उनकी पत्नी तेजी द्वारा पोद्दार को लिखे गए पत्रों में राधा बाबा का जिक्र हमेशा आदरपूर्वक किया गया है। बच्चन ने दावा किया कि बाबा के सपने ने ही उन्हें भगवद्-गीता को *रामचरितमानस* में उपयोग हुई अवधी भाषा में अनूदित करने के लिए प्रेरित किया। ¹⁶⁷ इस तरह *जन गीता* प्रकाशित हुई। सन् 1958 में अपने छोटे बेटे अजिताभ के बारहवें जन्मदिन पर बच्चन इस ग्रंथ को राधा बाबा को सुनाने के लिए गोरखपुर गए थे। जब *जन गीता* के दो संस्करण आ गए तब चिम्मनलाल गोस्वामी, राम भाई और माधव शरण (सभी गीता प्रेस से संबद्ध) ने कुछ अशुद्धियों की ओर इंगित किया जिन्हें बच्चन ने बाद में ठीक कर दिया। जब वे

संशोधित *जन गीता* को राधा बाबा को उपहार में देने के लिए सन् 1964 में गए तो राधा बाबा ने बच्चन को गीता का खड़ी बोली में संस्करण तैयार करने को कहा । बच्चन ने इस चुनौती को स्वीकार किया और जनवरी 1966 में गीता का खड़ी बोली अनुवाद पूरा कर लिया । [168](#)

हिन्दी की यह कहानी शिवप्रसाद गुप्त का ज़िक्र किए बिना लगभग अधूरी ही रहेगी जो *आज*, *मर्यादा*, *स्वार्थ* (जब औपनिवेशिक सरकार उन्हें खोज रही थी) और साइक्लोस्टाइल्ड *रणभेरी* जैसी पत्रिकाएं और अखबार निकालने वाली ज्ञानमंडल प्रेस के महामना प्रकाशक थे । स्वतंत्रता के समय उन्होंने नरेंद्रदेव द्वारा संपादित किए जाने वाले अखबार *समाज* का प्रकाशन किया । शिवप्रसाद गुप्त बनारस में एक पहली की तरह ही थे । जहाँ एक ओर वे काशी विद्यापीठ जैसे संस्थानों को 10 लाख रुपए के अनुदान के साथ आर्थिक मदद करते थे, वहीं वे नागरी प्रचारिणी सभा को भी आर्थिक मदद मुहैया कराते थे, कांग्रेस कार्यकर्ताओं तथा क्रांतिकारियों की समान रूप से आर्थिक मदद करते थे । इसके साथ-साथ उन्होंने भारत माता मंदिर की स्थापना में भी मदद की । [169](#) इन सबने उन्हें गांधी का बेधड़क विश्वासपात्र बना दिया था । उन्होंने *कल्याण* के लिए लिखने का भी समय निकाला ।

रामनरेश त्रिपाठी ब्रज भाषा और हिन्दी के कवि थे । वह एक राजनीतिक कार्यकर्ता भी थे जिन्होंने असहयोग आंदोलन में भाग लिया था और वे तिलक स्वराज कोष और बाद में नागरी प्रचारिणी सभा जैसी वर्गीकृत संस्थाओं के भी क़रीबी सहयोगी थे । हिन्दी के लिए त्रिपाठी ने बहुत योगदान दिया: उन्होंने *ग्राम गीत* शीर्षक से ग्रामीण लोक गीतों का तीन भागों में संकलन किया, *कविता-कौमुदी* काव्य का सात भागों में संकलन किया । त्रिपाठी ने हिन्दी मंदिर नाम से अपने प्रकाशन संस्थान की स्थापना की और बाल पत्रिका *बानर* का संपादन किया जिसे बाद में उन्होंने सस्ता-साहित्य मंडल को दे दिया । सेवानिवृत्ति के बाद वे बसंत निवास चले गए । यह मकान उन्होंने सुल्तानपुर में बनवाया था लेकिन बाद में उन्हें दिक्कतों का सामना करना पड़ा क्योंकि रेलवे ने उनके मकान की जमीन पर अपना दावा कर दिया ।

कल्याण के सशक्त संरक्षक त्रिपाठी से जब सन् 1952 में अगले साल निकलने वाले बालक अंक के लिए लिखने को कहा गया तो उन्होंने जोश में भरकर पोद्दार से कहा, ‘आप *कल्याण* द्वारा हिन्दू समाज की जो अनमोल सेवा कर रहे हैं इसका उदाहरण तो इतिहास में कहीं नहीं है । महाराज अशोक ने बौद्ध धर्म की जो सेवा की थी उससे इसकी तुलना किसी अंश तक हो सकती है । मुझे बाल साहित्य से प्रेम ज़रूर था और अब भी है पर अपना प्रकाशन नहीं, प्रेस नहीं, लिख कर दे तो किसे दें । आपको कभी आवश्यकता पड़े तो एक पत्र डाल कर मंगा लिया कीजिए । मैं आपका मित्र हूँ ।’ त्रिपाठी ने पोद्दार द्वारा रामचरितमानस पर लिखी टिप्पणी की प्रशंसा की और कहा कि ‘आपकी अवधी भाषा और तुलसीदास जी के प्रयोगों का सही मर्म समझ लेने

की क्षमता पर मुग्ध हो गया, आपकी मातृभाषा तो मारवाड़ी है, पर जिनकी अवधी है वे भी हिज्जा लिखने में धोखा खा गए हैं।' ¹⁷⁰

जैनेंद्र कुमार ने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया था और वह सन् 1923 के झंडा सत्याग्रह के दौरान गिरफ्तार भी हुए थे। उन्होंने अपनी साहित्यिक छाप अपने उपन्यास *परख* से छोड़ी जिसके लिए उन्हें हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार भी मिला। ¹⁷¹ प्रेमचंद के करीबी और हिन्दुस्तानी के समर्थक माने जाने वाले जैनेंद्र कुमार से सन् 1959 में *कल्याण* के *मानवता* अंक के लिए लिखने को कहा गया लेकिन ऐसा लगता है कि उन्होंने इसकी समय-सीमा का ख्याल नहीं रखा जिसके लिए उन्होंने पोद्दार से क्षमा माँगी। एक आध्यात्मिक गुरु के तौर पर पोद्दार के बढ़ते क्रोध से परिचित कुमार ने इसी पत्र में उनसे मिलने की 'तीव्र इच्छा' भी व्यक्त की। 'कभी अपने से मैं बेहद परेशान हो जाता हूँ। आशा है उत्तर प्राप्त होगा।' ¹⁷²

एक ऐसे दौर में जब हिन्दू अस्मिता और राष्ट्रवाद के बीच एक विभाजक रेखा धुंधला रही थी, *कल्याण* जैसी पत्रिकाएं उन हिन्दी लेखकों की पूरी पीढ़ी के लिए एक आकर्षक मंच बन गई थीं जो अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्षरत तो थे, लेकिन साथ-साथ राष्ट्रीय विमर्श के साथ भी स्वयं को जोड़ने के प्रति उत्सुक थे। इसलिए गीता प्रेस और उसकी चालक शक्ति कल्याण के लिए लेखकों का एक ऐसा जमावड़ा दिखाई पड़ता है जो साहित्यिक होने का दिखावा नहीं करते थे। गीता प्रेस ने अपने लेखकों से केवल एक ही बात की अपेक्षा रखी थी कि वे गीता प्रेस के घोषित उद्देश्य, 'हिन्दुवाद खतरे में है', के प्रति निष्ठा रखें और बदले में उनके लेखों को साहित्यिक दायरों के बाहर बड़ी मात्रा में प्रसार मिलेगा।

इन लेखकों में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी की पहली डी. लिट उपाधि लेने और गढ़वाल के रहने वाले पीतांबर दत्त बड़थवाल; हिन्दी के शुरुआती विज्ञान लेखकों में से एक और वैज्ञानिक अद्वैत पर प्रकाश डालने वाले बद्रीनाथ भट्ट; द्विवेदी युग के लेखक और *बालसखा* तथा *सुधारक* जैसी पत्रिकाओं के संपादक रहे गुलाबराय; ओरछा के संपन्न परिवार से आने वाले साहित्यिक मामलों के मंत्री; स्वाध्यायी और *मॉडर्न रिव्यू* में साहित्यिक प्रतिष्ठानों पर हमले करने वाली इलाचंद्र जोशी; ब्रज भाषा और खड़ी बोली में समान रूप से लिखने और *त्रिशूल* छद्मनाम से राष्ट्रवादी कविताएं लिखने वाले गया प्रसाद 'शुक्ल सनेही'; निबंधकार, उपन्यासकार और शान्तिनिकेतन के अगुआ हजारी प्रसाद द्विवेदी जिन्होंने कबीर पर अधिकृत संस्करण लिखा; अपने बेहद कड़े लेकिन ईमानदार लेखन के लिए प्रसिद्ध प्रतिष्ठित साहित्यिक आलोचक पद्म सिंह शर्मा; प्रतिभाशाली युवा लेखिका दिनेशनंदिनी चोराडिया, जो बाद में जाकर उद्योगपति रामकृष्ण डालमिया की पत्नी बनीं; स्वतंत्र अखबार के लेखक अंबिका प्रसाद वाजपेयी; कलकत्ता समाचार के संपादक और क्रांतिकारी वर्षों में पोद्दार के करीबी सहयोगी रहे झावरमल शर्मा; आलोचक किशोरीदास वाजपेयी; प्रतिष्ठित कवि और स्कूल निरीक्षक दामोदर सहाय 'कविकिंकर'; राजस्थान के इतिहासकार

गौरीशंकर शामिल थे। ¹⁷³ इनमें से बहुतों ने *कल्याण* में अपनी लेखन कला को साधा और बाद में अन्य जगहों पर अपनी पक्की जगह बना ली। इस पूरी प्रक्रिया में इन लेखकों ने गीता प्रेस और दक्षिणपंथी समूहों द्वारा दावा की जाने वाले सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की दृष्टि को अंगीकार किया और सराहा।

गैर-हिन्दू योगदानकर्ता

पोद्दार हमेशा यह दावा करते थे कि सभी प्रकार के मतों को मानने वाले लोग *कल्याण* की ओर आकर्षित हुए क्योंकि *कल्याण* मध्य मार्ग का अनुसरण करता था। (विभिन्न वैचारिक पृष्ठभूमि के लेखकों को) प्रेरित करने की पोद्दार की योग्यता ने *कल्याण* को दिखावे के लिए विविधतापूर्व स्वरूप प्रदान किया। धर्म को समर्पित अपने तरह की पहली पत्रिका होने के चलते विभिन्न मतों को मानने वाले ऐसे लोगों को आकर्षित किया जिनकी हिन्दू दर्शन और धर्म को मानने से ज़्यादा उनके अध्ययन में रुचि थी। *कल्याण* और अन्य पत्रिकाओं के लिए कभी-कभार लिखने के अलावा उनमें से शायद ही कोई गीता प्रेस से जुड़ा रहा हो।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि *कल्याण* में गैर-हिन्दुओं के लेखन के समावेश ने गीता प्रेस की मूल मान्यता को किसी भी तरह से हल्का नहीं किया। 1920 के दशक के बाद से आम हो चले धार्मिक मनमुटाव और हिंसा के दौर में इसकी वैचारिक तौर पर सभी के लिए खुले प्रकाशन संस्थान की छवि टिक नहीं सकी। ऐसे सभी अवसरों पर यह हिन्दू बनाम अन्य या सीधे तौर पर कहें तो हिन्दू बनाम मुस्लिम हो जाती थी। 1940 का दशक आते-आते यह भाषा और विमर्श तीखा हो गया।

गीता प्रेस के गैर-हिन्दू लेखकों में सबसे मुख्य नाम इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के प्रोफ़ेसर मुहम्मद हाफ़िज सईद का था। 1930 के मध्य दशक के बाद से उन्होंने हिन्दुवाद के विभिन्न पक्षों, इस्लाम और हिन्दुवाद के संबंध, इस्लाम में भक्ति, सूफ़ीवाद, गो-रक्षा और गीता जैसे विषयों पर *कल्याण* के लिए सोलह आलेख लिखे। सन् 1934 में जब गीता सोसाइटी अच्छी तरह चलने लगी, तब पोद्दार ने उनसे इसका सदस्य बनने को कहा, साथ ही औरों को भी इसमें शामिल करने का सुझाव दिया। सैयद ने विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्रोफ़ेसर आर डी रानाडे और कलकत्ता में स्थित एक महाधिवक्ता हीरेन्द्र नाथ दत्त का नाम सुझाया। दोनों ही 'नामी विद्वान थे और गीता को पसंद' करते थे। ¹⁷⁴ स्वयं के लिए उन्होंने प्रस्ताव को पूरी तरह खारिज नहीं किया, लेकिन अपनी सदस्यता के प्रस्ताव के खिलाफ़ यह तर्क दिया कि 'मैं संस्कृत का विद्वान नहीं हूँ। लेकिन आपके ज़ोर डालने पर मैं केवल अनिच्छा से अपनी सहमति दे सकता हूँ। बेहतर होगा कि मेरे नाम का विचार छोड़ दें।' (हालाँकि वे बाद में सदस्य बन गए)। इसी पत्र में उन्होंने कहा कि वह प्रेस के *गीता अंक* के लिए गीता पर लेख लिखने की कोशिश करेंगे। 1950 के दशक के अंतिम वर्षों तक *कल्याण* के लिए

लिखने वाले सैयद ने अक्सर लेख लिखने के लिए उन्हें बहुत कम समय पहले सूचित करने के लिए नाराज़गी भी जताई ।

सैयद एक प्रकार के आध्यात्मवादी भी थे । उन्होंने पोद्दार से तिरुवन्मलाई जाकर रमन्ना महर्षि के साथ बिताई गई एक रात का भी ज़िक्र लिखकर किया । वहाँ उनकी मुलाक़ात किसी मेजर चैडविक से हुई जिन्होंने महर्षि के कुछ अप्रकाशित तमिल कार्यों को अंग्रेज़ी के गद्य और पद्य में अनुदित किया था । सैयद ने मेजर चैडविक को यह कार्य कल्याण में प्रकाशन के लिए भेजने को भी कहा और साथ ही 30 रुपए शुल्क के बदले उन्हें पोद्दार को देने का प्रस्ताव भी दिया । ¹⁷⁵ हालाँकि चैडविक का अनुवाद प्रकाशित नहीं हो सका ।

एक मौक़े पर पोद्दार ने सैयद के एक लेख ‘नर और नारायण’ को यह कहते हुए सीधे लौटा दिया कि लेख ‘गुणवत्ता पर खरा नहीं’ उतरता । पोद्दार ने सैयद से दोबारा लेख लिखने को कहा । सैयद ने जवाब दिया कि उन्होंने लौटाया गया आलेख इलाहाबाद के वकील, *पर्शियन मिस्टिक्स* के लेखक और *लीडर* के संपादक रामनाथन और अन्य लोगों को दिखाया है और सभी ने ‘इसे मंजूर कर लिया है । मैंने भी पाया कि यह ठीक है । मैंने इसे पुनः ठीक किया है । अगर आप इसे देखना चाहते हैं तो मैं यह आपको दोबारा भेज सकता सकता हूँ । मुझे क्षमा करिए, मेरे पास नया लेख लिखने का समय नहीं है । ¹⁷⁶ इसके बावजूद उन्होंने शिकायत की कि पोद्दार ने उनसे *कल्याण* के विशेष अंक जैसे सन् 1939 के *गीता तत्व अंक* में लिखने के लिए नहीं कहा । अपनी उपकृत करने की इच्छा को ज़ाहिर करते हुए, सैयद ने नुक्ताचीनी निकालने वाले अंदाज़ में लिखा, ‘आपने मुझसे आखिरी वक़्त पर अपने विशेष अंक के लिए लिखने को कहा । मेरे लिए इसका पालन करना मुश्किल था क्योंकि मैं बहुत व्यस्त रहता हूँ और मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता ।’ ¹⁷⁷

कभी-कभार झलकने वाले क्रोध और अपेक्षाओं को छोड़ दें तो पोद्दार और सैयद का संबंध किसी अति उत्साही प्रशंसक और अपने आदर्श के ठेठ संबंध जैसा था । सैयद के लिए यह काफ़ी नहीं था कि उनके लेख *कल्याण* में छपें, उनकी इच्छा संपादक से मिलने की भी रहती थी । जनवरी 1943 में पोद्दार रतनगढ़ में थे और सैयद ने अधीर होकर उन्हें लिखा, ‘अगर आप निकट भविष्य में यूपी नहीं आ सकते हैं तो मैं आपसे कहाँ मिल सकता हूँ? विश्वविद्यालय से कुछ दिनों के बाद छुट्टी मिलने पर मैं आपसे रतनगढ़ आकर मिलने की पूरी कोशिश करूंगा । इससे पहले कि मेरी मौत हो जाये, मैं आपसे एक आमने-सामने मुलाक़ात करना चाहता हूँ ।’ सैयद की अधीरता और बढ़ गई जब उन्होंने *कल्याण-कल्पतरु* के प्रकाशन के अस्थायी तौर पर बंद होने की ख़बर सुनी । सैयद अपना आलेख *आर्यन व्यू ऑफ़ लाइफ़* अंग्रेज़ी पत्रिका में प्रकाशित करवाना चाहते थे । ¹⁷⁸

जून, 1944 में उन्होंने फिर अपने और पोद्दार के बीच की भौतिक दूरी का राग अलापते हुए पुनः पत्र लिखा, लेकिन इस बात से ख़ुद को सांत्वना भी दी, ‘हम दोनों की

आत्माएं तो एक हैं। मैं अक्सर आपके बारे में सोचता हूँ और महसूस करता हूँ कि मैं आपसे दूर नहीं हूँ। मैं सचमुच नहीं जानता कि आपसे मिलने की मेरी इच्छा कब पूरी होगी!’ सैयद ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्ति की तैयारियों के लिए एक साल का अवकाश ले लिया और अब उन्हें कल्याण के लिए और ज़्यादा समय मिलने लगा, ‘मुझे आपको बताते हुए हर्ष हो रहा है कि मुझे अब अपने आपको ईश्वर की सेवा में लगाए रखने के लिए ज़्यादा खाली समय मिल रहा है।’ ¹⁷⁹ 1950 के दशक के अंतिम वर्षों में सैयद की अपने आदर्श से मुलाकात हो गई। पोद्दार ने बताया है कि कैसे सैयद उन्हें अपने इलाहाबाद के घर ले गए और उन्हें कृष्ण की एक फोटो दिखाई जिसमें कृष्ण के माथे पर चन्दन का टीका लगा हुआ था। ¹⁸⁰ सन् 1958 में बीमार होने के बाद भी सैयद *कल्याण* में लिखने के प्रति उत्साहित थे और एक बार फिर पोद्दार से मिलने के प्रति उत्सुक थे, उन्होंने लिखा था, ‘मेरा जीवन अनिश्चित हो गया है।’ ¹⁸¹

जबलपुर के रहने वाले सैयद कासिम अली एक पत्रकार थे जिन्हें साहित्यालंकार की उपाधि मिली हुई थी। *कल्याण* में लिखने के लिए उत्साहित सैयद कासिम अली पोद्दार को ‘धर्मात्मा समझते थे जिनकी परोपकारिता को वे बड़ा प्रोत्साहन मानते थे।’ ¹⁸² उन्होंने *कल्याण* में इस्लाम में ईश्वर, मांस खाने के हानिकारक प्रभाव, इस्लाम में मानवतावाद, बाबा तजूद्दीन और अन्य विषयों पर नौ लेख लिखे। कासिम अली ने कुर’आन के कुछ हिस्सों का रामायण के कुछ हिस्सों से मिलान करने का भी प्रयास किया। ¹⁸³ एक और मुस्लिम लेखक मुबारक अली के बारे में ज़्यादा कुछ पता नहीं है, जिनके भिन्न-भिन्न विषयों जैसे अब्राहम लिंकन और होरेशियो नेल्सन आदि पर *कल्याण* में ग्यारह आलेख प्रकाशित हुए।

कल्याण के एक अन्य उत्साही लेखक फैज़ाबाद के सैयद अफज़ल हुसैन थे। उन्होंने ‘सबसे सराहनीय उपक्रम’ के लिए लिखने के आमंत्रण को सम्मान के रूप में लिया। जब उनसे ‘पवित्र ग्रंथ’ (गीता) पर लिखने को कहा गया तो हुसैन ने इस कार्य के लिए अपने योग्य होने पर संदेह जताया, लेकिन उन्होंने पोद्दार से कहा कि वे ‘कुछ इस्लामिक ग्रंथों में ईश्वर की अवधारणा’ और ‘गीता की नैतिकता’ ¹⁸⁴ पर कुछ लिखने की कोशिश करेंगे।

मैंने पहले ही रेहाना तैयबजी और पोद्दार के करीबी संबंध के बारे में बता दिया है। *कल्याण* के पृष्ठ रेहाना के लिए हमेशा खुले रहते थे जिन्होंने कृष्ण भक्त के रूप में कृष्ण के विभिन्न अवतारों पर कुल मिलाकर नौ लेख लिखे।

फिरोज कावसजी डावर प्रतिष्ठित गुजरात कॉलेज अहमदाबाद में अंग्रेज़ी के प्रवक्ता थे। वे वहाँ से पढ़े भी थे। पारसियों के मठ में रहने और अपनी नस्लीय शुद्धता बरकरार रखने वाले डावर ने मिश्रित विवाहों के खिलाफ़ तर्क देते हुए लिखा, ‘बड़े समुदायों को मिश्रित विवाहों से थोड़ा या लगभग नहीं के बराबर नुकसान होता है। वास्तव में छोटे समुदाय अति उत्साह में आकर अपनी सामुदायिक अस्मिता खो देते हैं।’ ¹⁸⁵ डावर ने स्वयं को साम्प्रदायिक कहने का बुरा नहीं माना और इस बात में कोई

आश्चर्य नहीं है कि उनके सीधे-सपाट अंदाज से कई बार गलतफहमी हुई। सन् 1935 में हिन्दू गाथाओं संबंधी अपने ज्ञान के अभाव के बारे में बोली गई बात पर सफाई देते हुए उन्होंने पोद्दार को लिखा, 'यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अपनी कुछ गंभीरतम बातों पर अपनी प्रतिबद्धता नहीं जता सका जिन्हें मेरे कुछ प्रिय और दयालु मित्रों ने गलत समझ लिया है। मैं फिर से कहना चाहता हूँ कि हिन्दू गाथाओं के बारे में मेरा ज्ञान बेहद सीमित है। संस्कृत के बारे में मेरा अज्ञान इस क्षेत्र में न केवल मेरे उत्साह को अनिश्चित बना देता है, बल्कि उस पत्रिका की प्रतिष्ठा को भी नुकसान पहुंचाता है जिसमें लिखने के लिए मेरे भीतर उतावलापन रहता है।' ¹⁸⁶

सन् 1936 में एक बार फिर डावर कृष्ण की शिक्षाओं और गीता पर कथित तौर पर टिप्पणी करने की वजह से चर्चा में थे। उन्होंने एक बार फिर पोद्दार को सफाई देते हुए लिखा, 'मैंने कभी श्रीकृष्ण की शिक्षाओं की सार्वभौमिकता और गीता की शिक्षाओं पर संदेह नहीं जताया है। न ही मैंने एक क्षण के लिए भी यह कहा है कि गीता को केवल हिन्दुओं तक सीमित होना चाहिए। ये उन सभी लोगों के लिए है जो इनसे लाभ उठा सकते हैं। कानून के अतिरिक्त, किसी भी चीज के बारे में अज्ञान को एक उचित कारण के तौर पर स्वीकार करना चाहिए। मुझे आशा है कि इसे श्रीकृष्ण और गीता के प्रति अपमान के रूप में नहीं समझा जाएगा।' ¹⁸⁷ हालाँकि उन्हें चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उनसे *कल्याण* के लिए लिखने के आग्रह आगे भी होते रहे। *कल्याण* के *गीता तत्व अंक* (1939) के लिए डावर ने पारसीवाद के आवश्यक तत्वों पर एक लेख लिखा। सन् 1958 में एक अन्य लेख मानवता के धर्म पर लिखा। तब तक उनके 'हाथ कांपने लगे थे' लेकिन उन्होंने *कल्याण* के लिए लेख लिखने को 'इस सम्मानित पत्रिका के प्रति सम्मान के कर्ज के तौर पर लिया जो समाज में प्रेम, शान्ति और भलाई के प्रसार के उद्देश्य से कार्यरत थी।' ¹⁸⁸ डावर का गीता प्रेस से जुड़ाव सन् 1932 में आरम्भ हुआ और उन्होंने कुल मिलाकर ग्यारह लेख लिखे।

कल्याण और *कल्याण-कल्पतरु* में लिखने वाले अधिकांश अन्तर्राष्ट्रीय लेखक ईसाई धर्म के थे। अमेरिका के राल्फ टी टेम्पलिन कोई साधारण मिशनरी नहीं थे। अपने भारत प्रवास के 15 वर्षों में उन्होंने अपने कार्यों की बहुत-सी सीमाएं तोड़ीं। इनमें 'युवा लड़कों द्वारा स्थानीय गाँवों में मदद के लिए बहुत-सी संरचनाओं का निर्माण करने वाली सहकारी शिक्षा विधि' से लेकर 'महात्मा गांधी की हत्या के बाद स्थापित किया गया शान्ति आंदोलन' तक शामिल था। ¹⁸⁹ टेम्पलिन ने अमेरिका लौटने के बाद गांधीवादी तरीकों की मदद से प्रयोग करना जारी रखा जिसके तहत उन्होंने सबसे पहले सफरन, न्यूयॉर्क में स्कूल ऑफ़ लिविंग के निदेशक का कार्य संभाला और उसके बाद ऑल-ब्लैक सेंट्रल स्टेट यूनिवर्सिटी, विलबरफ़ोर्स, ओहायो में संकाय सदस्य के रूप में समाजशास्त्र पढ़ाने वाले पहले श्वेत समुदाय के व्यक्ति बने। उन्होंने कर चुकाने से मना कर दिया, द्वितीय विश्व युद्ध में खुद को अधिसूचित नहीं करवाया और पोर्टो रिको के स्वतंत्रता संग्राम में अमेरिकी अत्याचार का विरोध किया। इसके अलावा वे मैकार्थी युग

के दौरान हाउस कमिटी ऑन अन-अमेरिकन एक्टिविटीज के सामने पेश होने में नाकाम रहे। टेम्पलिन ने भारत से जाने के बहुत समय बाद *कल्याण-कल्पतरु* में मानव संबंधों पर लेख लिखे। इससे *कल्याण* द्वारा अपनी विचारधारा के अनुरूप लिखने वालों की गई खोज और कार्य का पता चलता है। अपने भारत प्रवास के उन्होंने बेहद समृद्ध अभिलेख अपने पीछे छोड़े। इस लिहाज़ से उनका जीवन अध्ययन के लिए रोचक विषय हो सकता है। इन अभिलेखों को अब ड्र्यू यूनिवर्सिटी, न्यू जर्सी के जनरल कमीशन ऑफ़ आर्काइव एंड हिस्ट्री, यूनाइटेड मेथडोलाजिस्ट चर्च ने सर्वसुलभ बना दिया है।

क्रिश्चियन डी लार्सन कोई संत तो नहीं थे लेकिन नव विचार शिक्षक के तौर पर उनका बहुत प्रभाव था। हालाँकि उन्हें मिनीयापोलिस में लुथरन सेमिनरी में भेजा गया था, वे लिबरल यूनिटेरियन थिओलॉजिकल स्कूल चले गए और वहाँ उन्होंने न्यू एज टेम्पल की स्थापना की। लार्सन का विश्वास था कि हर व्यक्ति में गुप्त शक्ति होती है जिसका उपयोग वह सही नज़रिए के साथ सफलता हासिल करने में कर सकता है। ¹⁹⁰उनकी प्रतिष्ठा के चलते ही पोद्दार का ध्यान उन पर गया होगा। लार्सन ने *कल्याण* में मुसीबत के समय ईश्वर का आश्रय लेने के विषय पर लिखा।

बनारस स्थित लंदन मिशनरी सोसाइटी के एडविन ग्रीव्स सन् 1896 में पहली बार प्रकाशित हुए और सन् 1921 में संशोधित अपनी पुस्तक *ग्रामर ऑफ़ माडर्न हिन्दी* से मशहूर हुए। इस पुस्तक में ऊर्दू का कोई भी शब्द शामिल नहीं था। हिन्दी और ऊर्दू को लेकर चल रही तीखी बहसों से परिचित ग्रीव्स ने स्वीकार किया, 'पुस्तक उस आधुनिक हिन्दी भाषा में लिखी गई है जिसके मानकीकरण का प्रयास भाषा के बहुत से सबसे अच्छे मित्र कर रहे हैं। यह आत्म-सम्मान के बोध वाली वह हिन्दी है जो हमेशा संस्कृत शब्दों से अपने पन्ने भरकर अपने कुलीन वंश के तलवे चाटने में लगी हुई नहीं है। न ही इसने फ़ारसी शब्दों और कहावतों को शामिल कर अपनी आधुनिकता को प्रभावित किया है।' साथ ही उन्होंने तर्क दिया कि 'हिन्दी में शुद्धवाद निरी मूर्खता है। पारसी और अरब मूल के शब्दों तथा अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं से आयातित किए गए शब्दों का हिन्दी में स्थानीयकरण हो चुका है और उन्हें हटाने और अपने स्थान से निकालने की कोशिश निरर्थक है।' ¹⁹¹हालाँकि गीता प्रेस को हिन्दी-ऊर्दू अवदाह की कोई गंभीर आवाज़ कभी नहीं माना गया, लेकिन यह हिन्दू महासभा का अनुसरण करते हुए इस विवाद में कूद पड़ी और हिन्दी को हिन्दू राष्ट्रवाद के साथ जोड़ने में अपनी थोड़ी भूमिका निभाई।

ग्रीव्स ने *कल्याण* में चार आलेख लिखे, हालाँकि इनका हिन्दी से कोई संबंध नहीं था। उदाहरण के लिए 'ईसाई धर्म में योग', महापुरुषों की जीवनियाँ और कार्य। वे *कल्याण-कल्पतरु* के भी लेखक थे। उनका लगातार ज़ोर इस बात पर रहता था कि 'उनके आलेख अपने अंग्रेज़ी रूप में ज्यों-के-त्यों प्रकाशित किए जाएँ क्योंकि 90

प्रतिशत पाठक हिन्दी के साथ अंग्रेज़ी जानते हैं । उनमें से कुछ तो अंग्रेज़ी बेहतर जानते हैं ।’ ¹⁹²

तीन और संतों आर्थर ई मैसी, जॉर्ज चेनी और ई टी प्राइस ने भारतीय संस्कृति और धर्म का गहराई से अध्ययन किया था । ये गीता प्रेस के वैचारिक झुकाव के अनुकूल थे । हिन्दू धर्म के विभिन्न पक्षों की प्रशंसा करने वाले विदेशियों ने गीता प्रेस के सनातन हिन्दू धर्म को संसार के कोने-कोने में पहुंचाने वाले मिशन को आगे बढ़ाने में मदद की ।

जाने-पहचाने लेखकों के कार्यों के अंश को प्रकाशित करना उस समय की पत्रिकाओं के लिए सामान्य बात थी और *कल्याण* भी इन पत्रिकाओं से अलग नहीं था । *कल्याण* अपने चयन में कैथोलिक था: राजनीति सिद्धांतकार और दार्शनिक एडमंड बर्क; संत, इतिहासकार और हिन्दुवाद के ताज के रूप में क्रिश्चियेनटी के *फिलिंग* सिद्धांत के जनक जे एन फर्कक्युर ; जॉर्ज बनार्ड शा, राबर्ट लुईस स्टीवन्सन और ऑस्कर वाइल्ड जैसे लेखक, दिग्गज ऊर्दू कवि जोश मलीहाबादी; मध्यकालीन इतिहासकार अबुल फज़ल, भारत के भाषाई सर्वेक्षण करने वाले जी ए ग्रियर्सन; *कल्याण* ने इन सभी महापुरुषों के कार्यों को प्रकाशित किया । यह ध्यान रखा गया कि इन महापुरुषों के उन ही कार्यों को प्रकाशित किया जाये जिनमें कोई अनुकूल संदेश या नैतिक सीख हो ।

गीता प्रेस की अंग्रेज़ी पत्रिका *कल्याण-कल्पतरु* ने धर्म, दर्शन और इंडोलॉजी के यूरोपीय और अमेरिकी विद्वानों में काफ़ी दिलचस्पी पैदा की । सभी में इस नई पत्रिका में लिखने के लिए होड़ मच गई । पोद्दार विश्वविद्यालयों और धार्मिक संस्थाओं में लिखने वालों की लगातार तलाश कर ही रहे थे और इस तरह लेखकों का एक अभीष्ट समूह बन गया ।

जब *कल्याण-कल्पतरु* के शुरुआती वर्षों में एफ ओटो श्रेडर ने लिखना आरम्भ किया तब तक वे भारत में काफ़ी समय रह चुके थे । स्ट्रेसबार्ग से दिव्यता में डाक्टरेट श्रेडर ने अपने देश लौटने से पहले मद्रास में अद्यार पुस्तकालय के निदेशक के रूप में ग्यारह साल बिताए थे । अपनी पुस्तक *इंट्रोडक्शन टू द पांचरात्र एंड अहीरबुधया संहिता* के लेखक के रूप में पहले ही नाम कमा चुके श्रेडर के कार्यकाल का इसे ‘सबसे अच्छा निष्कर्ष माना गया है,’ ¹⁹³ श्रेडर पोद्दार के अच्छे दोस्त बन गए थे । काइल विश्वविद्यालय, जहाँ श्रेडर पढ़ाते थे, से वे *कल्याण-कल्पतरु* के लिए जर्मन में लिखते थे । अपने *योग अंक* के आलेख से संतुष्ट होकर श्रेडर ने पोद्दार को बताया, ‘मुझे लगता है आपको यह पसंद आएगा और इसका अनुवाद कराने में आपको कोई दिक्कत नहीं होगी ।’ ¹⁹⁴ श्रेडर कुछ उन गिने-चुने लिखने वालों में से एक थे जिन्हें पोद्दार द्वारा दिया गया विषय बदलकर अपने पसंद के विषय पर लिखने की आज़ादी थी । वह *कल्याण-कल्पतरु* के एक उत्सुक पाठक भी थे । जब भी उन्हें पत्रिका में कुछ रोचक या कोई नया लेख मिलता था, वे पोद्दार से अपनी जानकारी बढ़ाने के लिए इसके बारे में पूछते

थे । जब जुलाई, 1937 में *कल्याण-कल्पतरु* में एक लेख ब्रह्म-संहिता शीर्षक से आया तो श्रेडर ने तुरंत ही इस आलेख की एक प्रति मांगते हुए पोद्दार को लिखा क्योंकि 'उन्हें इस कार्य के किसी संस्करण का पता नहीं था ।' [195](#)

ऑक्सफोर्ड के पढ़े हुए जॉन जॉर्ज वूड्रोफ ठीक उसी तरह के आध्यात्मवादी थे जिसकी छवि पोद्दार के दिमाग में हिन्दुवाद की सर्वोच्चता का तर्क देते समय रहती थी । वे एक उच्च वर्गीय ब्रिटिश थे जो जेम्स टिसडाल वूड्रोफ के पुत्र थे । वे बंगाल के एडवोकेट जनरल, वकील और जज थे जो अकादमिक जगत में सक्रिय थे और जिन्होंने हिन्दू दर्शन और धर्म का गहरा अध्ययन किया था तथा इसके कट्टर समर्थक बन गए थे । उन्होंने संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद किया था तथा हिन्दुवाद और भारत के आलोचकों के साथ वाद-विवाद किया था । जब आस्ट्रेलिया में जन्मे और स्कॉटलैंड मूल के साहित्य और नाटक के आलोचक विलियम आर्चर ने अपनी पुस्तक *इंडिया एंड द फ्यूचर* में 'भारत को सम्पूर्ण रूप में बर्बरता की अवस्था' में बताया तो वूड्रोफ ने निबंधों की एक पूरी श्रृंखला लिखकर उनका विरोध किया जो बाद में '*इज इंडिया सिविलाइज्ड? एसेज ऑन इंडियन कल्चर*' शीर्षक से प्रकाशित हुई । 'इसमें धर्म, देवता और गो-माता के साथ प्राचीन भारत की सभ्यता के सिद्धांतों का उत्सव मनाया गया था । एक ऐसी सभ्यता जो अपनी गहराई में बहुत गहन है और जो सतह पर प्राचीन सुंदरता के खिताब की तरह है । भारत की ऐसी सभ्यता जो हिन्दुओं की सभ्यता है ।' वूड्रोफ का पूरा विश्वास था कि अगर 'हजारों साल पुराने अंतर्निहित विचार और संस्कार अपनी दायेदारी' करें और अगर इनका प्रसार समुचित ढंग से हो तो भारतीय संस्कृति का मनुष्य मात्र पर लाभ व्यापक स्तर पर पड़ेगा । [196](#)

सन् 1910 में वूड्रोफ को तंत्र गुरु शिवचन्द्र विद्यार्णव से 'शक्ति मिली ।' उन्होंने पुस्तकें लिखना जारी रखा । उन्होंने 'आर्थर अवलन' छद्म नाम से शक्त तंत्र शास्त्र पर *शक्ति एंड शाक्त* शीर्षक से एक पुस्तक लिखी । इसके साथ-साथ मन्त्र शास्त्र पर एक पुस्तक *दि गारलैंड ऑफ लैटर्स* नाम से भी लिखी । [197](#)

जब पोद्दार ने जनवरी 1934 में वूड्रोफ को *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* में लिखने के लिए आमंत्रित किया तो वे वूड्रोफ की विद्वता विशेषकर उनके तंत्रों पर लिखे गए ग्रंथों से परिचित थे । वूड्रोफ को लंदन में लिखा गया पहला पत्र वापस गोरखपुर आ गया, इसलिए पोद्दार ने उन्हें पुनः शक्ति अंक के लिए लिखने का आग्रह करते हुए पत्र लिखा । यह बताते हुए कि *कल्याण*, जिसकी मासिक प्रसार संख्या 22,000 है और इतनी प्रसार संख्या किसी भी स्थानीय पत्रिका की नहीं है, वूड्रोफ के आलेखों को प्रकाशित करने का इच्छुक है, पोद्दार ने उन्हें *कल्याण-कल्पतरु* के अंग्रेजी में प्रकाशन की योजना के बारे में बताया । साथ ही यह भी कहा कि नयी पत्रिका के आने पर उनके आलेख उसमें भी प्रकाशित किए जाएंगे । 'हमें पता है कि आपने जीवन भर तंत्रों और शाक्त सम्प्रदाय का अध्ययन किया है और हमें पूरा भरोसा है कि आप हमें प्रसन्नतापूर्वक और शीघ्र ही हमारे निमंत्रण का जवाब देंगे । आप केवल *कल्याण* के

लिए नहीं लिखेंगे, बाकि उन असंख्य पाठकों और इससे सहानुभूति रखने वालों के लिए भी लिखेंगे ।’ [198](#)

आर्थर बर्नेल कैथ ‘स्कॉटिश अधिगम की मुख्य विभूति थे’ [199](#) और अपने नाम के शास्त्रीय अर्थ के अनुरूप ही बहुश्रुत थे । इनर टेम्पल के बैरिस्टर तथा एडनबर्ग विश्वविद्यालय में संस्कृत तथा तुलनात्मक भाषाशास्त्र के रेगस प्रोफेसर कैथ का बहुत सारे विषयों, जैसे संवैधानिक कानून, भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन आदि पर सहजता से अधिकार था और उन्होंने अपने पीछे काम का एक बहुत बड़ा कोष छोड़ा था । *कल्याण-कल्पतरु* में लिखने वाले और जर्मन इंडोलॉजिस्ट ओटो स्ट्रास के समकालीन कैथ (श्रेडर की तरह) को भी संपादक द्वारा सुझाए गए विषय पर आसानी से लिखने के लिए तैयार नहीं किया जा सकता था । *कल्याण-कल्पतरु* के श्रीकृष्ण अंक के लिए लिखने का आग्रह करने पर कैथ ने लिखा, ‘मुझे नहीं लगता है कि कोई ऐसा विषय है जिस पर ऐसा लेख लिखा जा सके जो सभी कृष्ण भक्तों को स्वीकार्य हो ।’ पश्चिम-पूर्व नज़रिए में टकराव का ज़िक्र करते हुए कैथ ने *कल्याण-कल्पतरु* के संपादक चिम्मनलाल गोस्वामी को बताया, ‘यह विषय पश्चिमी मस्तिष्कों के सम्मुख एक अलग पक्ष को प्रस्तुत करता है और मुझे ऐसे विचारों को प्रस्तुत करने की परवाह नहीं करनी चाहिए जो बड़ी संख्या में आपके लेखकों और पाठकों के सद्भाव में न हों ।’ [200](#)

ओटो स्ट्रास ने भी श्रीकृष्ण अंक में लिखने की बात कही लेकिन वे कम समय में लेख पूरा कर पाने की स्थिति में नहीं थे । इसके बजाय उन्होंने संपादक से ‘अपना अधूरा लेख, भगवद्गीता की नई व्याख्या के साथ छापने को कहा ।’ [201](#) ‘बिगड़े स्वास्थ्य का हवाला’ देते हुए श्रेडर ने श्रीकृष्ण अंक के लिए लिखने से मना कर दिया लेकिन यह कहते हुए अपनी शुभकामनाएं भेजीं, ‘आपका कृष्ण अंक अपने सभी पूर्ववर्ती अंकों जितना ही सफल होगा ।’ [202](#)

प्रख्यात रहस्यवादी और प्रसिद्ध *लाइफ ऑफ़ फ्रांसिस एसीसी एंड इन द डेसर्ट ए हाईवे* के लेखक रिचर्ड व्हिटवेल ने 1950 के दशक के आखिरी वर्षों में जीवन में सत्य की राह का चयन विषय पर *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* दोनों में लिखा । ‘सन् 1958 में व्हिटवेल ने एक लेख भेजा जो उनके द्वारा सामान्यतः भेजे जाने वाले लेखों से थोड़ा भिन्न था ।’ [203](#) व्हिटवेल का एकमात्र लेख प्रेम से संवाद विषय पर *कल्याण* में नवंबर 1954 में आया ।

जुजेप्पे टुकी विश्व के अग्रणी प्राच्यविदों में से एक थे । उनका संस्कृत, जापानी, चाइनीज और पूर्वी धर्मों पर पूर्ण अधिकार था । मुसोलिनी द्वारा शान्तिनिकेतन भेजे जाने के बाद उन्होंने वहाँ इतालवी व चीनी भाषा और बौद्ध ग्रंथों व शिलालेखों के अध्ययन भी शुरू किए । मुसोलिनी के समर्थक तथा नस्लीय शुद्धता के कट्टर पक्षधर टुकी यह बात मज़ाक़ में कहते थे कि ‘पिछले जन्म में वे ब्राह्मण रहे होंगे और कुछ पापों के चलते उनका जन्म बर्बर स्थान पर हो गया ।’ [204](#) एक विद्वान के अलावा प्रतिष्ठा अर्जित करने के साथ-साथ ऐसे विचारों ने उन्हें गीता प्रेस का प्रिय बना दिया था

। सन् 1926 में शान्तिनिकेतन आने पर टुकी पहले ही भारतीय प्रेस के प्रिय हो गए थे । एक प्रतिष्ठित पत्रिका *मॉडर्न रिव्यू* ने टुकी की अकादमिक उपलब्धियों की प्रशंसा करते हुए कहा था, 'हम मिस्टर मुसोलिनी के आभारी हैं जिन्होंने इटली के विज्ञान का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक ऐसे बहुमुखी विद्वान को भारत भेजा है ।' [205](#)

सन् 1958 में टुकी को *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* के आगामी अंक में मानवता विषय पर लिखने के लिए आमंत्रित किया गया । हालाँकि जब तक चिम्मनलाल गोस्वामी का आग्रह उन तक पहुँचता, वे रोम, पूर्वी एशिया के लिए जा चुके थे । उनके सहायक अंटोनियो गार्गानो ने गोस्वामी को लिखा, 'टुकी आपके द्वारा आध्यत्मिक विचारों के प्रसार के लिए किए जा रहे कार्य से परिचित हैं । यही एकमात्र तरीका है जिससे संस्कृति की सेवा की जा सकती है और इस तरह मनुष्यों के बीच शान्ति और समझदारी विकसित की जा सकती है । अगले साल से पहले उनके लौटने की कोई उम्मीद नहीं है । इसलिए वह ऐसा कोई भी सन्देश नहीं लिख पाएँगे जो आप अपनी पत्रिका में प्रकाशित कर सकें ।' [206](#)

बर्कले स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के एफ डी लेसिंग ने अनेक बौद्ध तांत्रिक ग्रंथों का अंग्रेज़ी में अनुवाद कर बहुत प्रतिष्ठा अर्जित की थी । इस कार्य को उनकी मौत के बाद अलेक्स वेमैन ने पूरा किया । लेसिंग ने ही अंग्रेज़ी-मंगोलियन शब्दकोष तैयार किया था और टुकी की तरह ही वे भी *कल्याण* से परिचित थे लेकिन उसके मानवता अंक के लिए कुछ लिख नहीं सके । 'दुर्भाग्य से मैं अपने शोध कार्य से जुड़ा हुआ हूँ जिसमें मुझे बहुत-सी प्रतिबद्धताएँ पूरी करनी हैं, इसलिए मेरे पास अतिरिक्त ज़िम्मेदारी निभाने का समय नहीं है । मेरे लिए कोई भी वायदा करना मुश्किल है ।' [207](#)

गीता प्रेस और इसकी दोनों पत्रिकाओं को हिन्दू आध्यात्मवाद, तौर-तरीकों और संस्कृति का एकमात्र अधिकारी बनाने के प्रयास में पोद्दार और अन्य लोगों ने तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ लोगों की सेवाएं हासिल करने में जी-जान लगा दी । शिव शरण से अपने परिचय के चलते पोद्दार ने फ्रांस के तत्वमीमांसक रेन ग्वेनॉन से भी संपर्क बना लिया । बहुआयामी प्रतिभा के धनी ग्वेनॉन ने तत्कालीन भारत में जड़ें जमा रही थियोसोफी की कड़ी आलोचना करने के अलावा हिन्दुवाद और वेदान्त पर भी लिखा था । पेरिस में रहते हुए शिव शरण ने ग्वेनॉन को लिखा था और वह उनके प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा भी कर रहे थे । पोद्दार ग्वेनॉन के लेखन के हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन कराना चाहते थे, ऐसा लगता है कि ग्वेनॉन ने कोई अपेक्षा के अनुरूप प्रतिक्रिया नहीं दी । [208](#) ग्वेनॉन पर पोद्दार के कागज़ात में इसके आगे के पत्राचार का विवरण नहीं मिलता है और न ही उनके द्वारा *कल्याण* अथवा *कल्याण-कल्पतरु* में प्रकाशित किसी आलेख का कोई जिक्र मिलता है ।

बौद्धधर्म को अमेरिका में लोकप्रिय बनाने में रुथ फुलर सासकी की भूमिका मुख्य थी । जापान में ज़ेन बौद्धधर्म का कई सालों तक प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद सासकी ने ज़ेन ग्रंथों के अंग्रेज़ी अनुवाद और उनके प्रसार का भी बीड़ा उठाया था । जिन सालों

के दौरान वे जापान और अमेरिका के बीच आवाजाही कर रही थीं, उसी अवधि में पोद्दार ने उनसे आलेख लिखने का 'बारंबार आग्रह' किया जिसके बदले में उन्हें कोई सकारात्मक उत्तर नहीं मिला। [209](#)

लेकिन बहुत-से विद्वानों से आलेख लिखवाने में पोद्दार को सफलता भी मिली। सन् 1959 के *मानवता अंक* के लिए लिखने का आग्रह किए जाने पर इंडोलॉजिस्ट के डे ब्रीज ने यह कहते हुए उत्तर दिया कि गीता प्रेस द्वारा दिए गए विषयों की सूची में 'ऐसा कोई विषय नहीं है जो ठीक उनके जीवन और चरित्र के क्षेत्र और दायरे में हो।' इसके बजाय उन्होंने एक नया विषय 'मानवता और विद्वता' सुझाया और मथुरा आर्ट पर लिख चुके तथा भारतीय पुरातत्व विभाग से जुड़े रहे लेडेन विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफ़ेसर तथा अपने गुरु स्वर्गीय जे एफ वोगेल के विषय में लिखने को कहा। ब्रीज ने चिमनालाल गोस्वामी को बताया, 'मेरे लिए वोगेल हमेशा के लिए मानवता का सच्चा उदाहरण रहे हैं और रहेंगे।' [210](#)

पोद्दार के कागज़ात के भारी दस्तावेजों में सन् 1940 के दशक में डब्ल्यू के से आरम्भ होने वाले किसी लेखक के पत्रों की पूरी सीरीज है जिसके हस्ताक्षर से यह समझा नहीं जा सकता कि वह कौन है। यह अवश्य पता लगता है कि विला गुसिदा, स्विट्जरलैंड में रहने वाला यह व्यक्ति *कल्याण* का उत्साही पाठक था जो अक्सर पोद्दार को याद दिलाता रहता था कि कुछ अंक उसे नहीं मिले हैं। तत्कालीन विश्व युद्ध के बारे में डब्ल्यू के ने कहा था, 'यूरोप अभी एक अराजक स्थिति में है, किसी को पता नहीं कि ये कब खत्म होगा? और कोई यह भी नहीं कह सकता कि ये किसी अच्छी शुरुआत के निशान हैं।' इन सबके बीच उसने पोद्दार को *कल्याण-कल्पतरु* के लिए भेजी जाने वाली कविता के बारे में बताया और यह जानना चाहा कि उन अंकों की अतिरिक्त प्रतियां उन तक क्यों नहीं पहुँची जिनमें यह कविता प्रकाशित हुई है? [211](#)

युद्ध की समाप्ति पर जब *कल्याण-कल्पतरु* का प्रकाशन फिर से आरम्भ हो गया, डब्ल्यू के ने फिर लिखा कि लेख का तीन-चौथाई हिस्सा उसके द्वारा स्वामी यतीश्वरानन्द की सुनी गई कक्षा के आधार पर लिखा गया है जो रामकृष्ण मिशन के प्रमुख स्वामी थे। निजी रूप से उसने पोद्दार को यह गुप्त बात बताई कि आठ सप्ताह पहले उसकी बहन एक ऐसी जगह पर थी जहाँ बमबारी हुई थी 'और मैं उत्सुकतापूर्वक उसकी खबर मिलने का इंतजार कर रहा था।' तीन दिन बाद उसने एक और पत्र भेजा जिसमें शेष आलेख था और इस बात का ज़िक्र था कि उसकी 'बहन का सारा सामान नष्ट हो गया है कि और अब भी इस बात की उम्मीद नहीं जाती है कि वह मिल जाएगी।' [212](#)

कल्याण-कल्पतरु में विभिन्न पृष्ठभूमियों के लोगों ने लिखा, इनमें कुछ *इंडियन डस्ट* के लेखक ओटो रोथफेल्ड और *योगा सूत्रास ऑफ़ पतंजलि* के लेखक चार्ल्स जांस्टन जैसे आईसीएस अधिकारी थे तो शेक्सपियर और इब्सन पर पुस्तकें लिखने वाले एच जी डी टर्नबल, जर्मन मानवाधिकार लीग के ओटो मारिया सेंगर की अपनी

पुस्तक *पालिकपारा एंड कंडी राज* में मुर्शिदाबाद के जमींदार परिवार का विवरण लिखने वाले एच डब्ल्यू बी मोरेनो, रसायनविद और न्यूयॉर्क अकेडमी ऑफ साइंसेज तथा *मैन डज़ नॉट स्टैंड एलोन एंड सेवेन रीजंस ए साइंटिस्ट बिलीव्स इन गॉड* जैसी पुस्तकों के लेखक क्रेसी मोरिसन, थियोसोफिकल सोसाइटी के पहले क्रिश्चियन लॉज की स्थापना करने वाले जीन डेलआयर, पोद्दार के दोस्त और बाद में स्वामी ब्रह्मवैद्य के नाम से जाने गए आनुवांशिक वैज्ञानिक पी ऐड्रोस, यूनिटी स्कूल ऑफ क्रिश्चियेनटी के लावेल फिलमोर और पोद्दार के साथ अक्सर संपर्क स्थापित करने वाले ईसाई संत आर्थर मैके आदि थे ।

पत्र और निवेदन

कुछ सालों में ही गीता प्रेस ने वह मकाम हासिल कर लिया कि हिन्दू धर्म से जुड़े हर मसले का यह अब एक पुख्ता ठौर बन चुका था । कम से कम विदेशी विद्वानों और आध्यात्म जिज्ञासुओं के लिए तो यह एक ठिकाना था ही । अब ‘कबीरपंथी आंदोलन के नेताओं’ की खोज और *बीजक* की प्रतियों को संग्रहित करने वालों से लेकर वेदांत शिक्षकों के अनुरोध आने लगे थे । [213](#)

जेनेवा, इटली से एंजो टरबियानी से एक असामान्य पत्राचार हुआ जिन्होंने पहले एक युवा लड़के की तरह पत्र लिखा जो ‘भारत को बहुत पसंद’ करने के कारण हिन्दी सीख चुके थे, उनके द्वारा हिन्दी में लिखित पत्र में कुछ व्याकरणिक अशुद्धियाँ थीं, लेकिन बात पूरी समझ में आ रही थी । भारतीय आध्यात्म को समझने की चेष्टा में पढ़े गए सभी ग्रंथों में उन्हें गीता ने काफ़ी प्रभावित किया । उन्होंने गीता को ‘दुनिया की सबसे सुंदर रचना’ कह कर संबोधित किया । लगभग सभी पाश्चात्य लोगों की तरह टरबियानी का भी विश्वास था कि भारत ही ‘विश्व को सत्य और मिथ्या के बारे में सीख दे सकता है’ [214](#) उन्होंने गीता प्रेस के साथ अपने लम्बे ताल्लुक को गढ़ते हुए पोद्दार के साथ नियमित पत्राचार किया । अक्सर अपने गृहदेश में बढ़ रहे भौतिकवाद के गुणगान से बढ़ रही अपनी निराशा का ज़िक्र भी किया और लिखा कि ‘समझदार लोग ईसाईयत से संतुष्ट नहीं हैं ।’ [215](#) उनकी आलोचना अधिक कठोर हुई, उन्होंने कहा कि ईसाई धर्म में केवल ईसाईयों की मुक्ति की बात है जबकि गीता जैसे ग्रंथ सभी की मुक्ति के लिए प्रतिबद्ध हैं—आदमी, औरत, बच्चे, अछूत—जो भी भगवान को मानते हैं । [216](#) दो महीने बाद टरबियानी ने स्पष्ट किया, ‘मैं किसी भी धर्म के खिलाफ़ नहीं हूँ । मैं अन्याय के खिलाफ़ हूँ । कैथोलिक पुजारियों में अच्छे लोग भी हैं, लेकिन उनमें से एक बड़ा समुदाय केवल राजनीति करना जानता है ।’ [217](#)

टरबियानी ने गोस्पल और गीता में समानताएं तलाश ली थीं । उन्होंने इतालवी में हिन्दी व्याकरण की पुस्तक लिखनी भी शुरू कर दी । उन्होंने कहा कि हिन्दी एक ख़ूबसूरत भाषा है जिसका अच्छा भविष्य है । [218](#) टरबियानी अपनी छोटी-से-छोटी

परेशानियाँ भी पोद्दार के समक्ष रखते थे। जैसे कि, योगी रामचरक की *हठयोग और द योगी फिलॉसोफी ऑफ़ फिजिकल वेल्-बींग* पढ़ने के बाद उन्होंने एक और पुस्तक पढ़ी जिसमें रामचरक की बहुत आलोचना की गई थी और उन पर बिना हठ योग के अभ्यास के उसपर लेखन करने का आरोप लगाया गया था। उन्होंने पोद्दार से सुझाव माँगा कि अब उनका अगला क़दम क्या होना चाहिए। ²¹⁹

1960 के दशक की शुरुआत में टरबियानी की आध्यात्म ज्ञान की जिज्ञासा बढ़ी जिसने उन्हें इस्लाम, ईसाईयत और हिन्दुवाद के धार्मिक ग्रंथों से होते हुए इस निष्कर्ष तक पहुँचाया कि ‘गीता महान है और सभी को इसे पढ़ना चाहिए।’ ²²⁰ उन्होंने आगे कहा कि उनके अनुसार सन् 1961 वह साल था जब भारत और पाकिस्तान में पुनः मैत्री हो गई थी। अनजाने ही वे वही कह रहे थे जिसकी वकालत उग्र दक्षिणपंथी तत्वों ने हमेशा ही की। टरबियानी ने उम्मीद जताई कि ‘एक-न-एक दिन ये दोनों देश एक हो जाएँगे।’ उनकी यह उम्मीद एक उर्दू पत्रिका की वजह से जगी थी जिसमें उर्दू को हिन्दी की एक शाखा और दोनों देशों में सांस्कृतिक समानता पर बात की गई थी। दोनों देशों के बीच शान्ति और सद्भावना के टरबियानी की दुआ को भारी ठेस पहुँची जब अगले चार सालों में कश्मीर के मुद्दे पर भारत और पाकिस्तान के बीच रार ठन गई।

बाद के वर्षों में टरबियानी ने दो पुस्तकें लिखीं— *ला वैराग्य: संदीपनी दी गोस्वामी तुलसीदास* (1977) और *इल सिखिस्मो: ला रिलिजन देइ डिविनी मेस्त्री* (1987), और कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा भक्ति साहित्य के सूचना विस्तार पर रामानंदी सम्प्रदाय पर एक लेख भी लिखा। ²²¹

टरबियानी की ही तरह व्लादिमीर मिल्टनर गीता प्रेस और पोद्दार से अपने छात्र जीवन में जुड़े। उस समय के चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में रहने वाले मिल्टनर ‘इंडो आर्यन भाषाएँ पढ़ रहे थे, लेकिन ब्रज और अवधी में विशेष रुचि’ थी। उनके पास तुलसीदास का बहुत सारा लेखन था लेकिन *हनुमान बाहुक* नहीं था, उन्होंने पोद्दार से उसकी एक प्रति भेजने के लिए कहा बदले में उन्होंने चेक पुस्तकों के अंग्रेज़ी अनुवाद भेजने का भरोसा दिलाया। पुस्तक उन्हें पहुँची और मिल्टनर ने तुलसीदास और सूरदास से जुड़ी और भी चीज़ों की मांग की। उन्होंने अपने नाम के साथ ‘जगन्नाथ’ जोड़ लिया। ²²² बाद में मिल्टनर शीर्ष के इंडोलोजिस्ट बने। उन्होंने *फ़ोक टेल्स फ़्रॉम इंडिया, द महाभारत, द हिन्दी सेंटेंस स्ट्रक्चर इन द वर्क्स ऑफ़ तुलसीदास* और *थियरी ऑफ़ हिन्दी सिंटेक्स: डिस्क्रिप्टिव, जेनेरेटिव, ट्रांसफॉर्मेशनल* जैसी कई पुस्तकें लिखीं।

कार्ल जी गेश नामक जर्मनी के एक वैज्ञानिक गीता प्रेस और *कल्याण* से परिचित थे। *कल्याण* में उनके द्वारा संपादक के नाम पत्र पहले ही प्रकाशित थे। उन्होंने सन् 1957 में भारत दौरे का मन बनाया जिसे उन्होंने कुछ महीनों की तीर्थयात्रा का नाम दिया। वे बॉम्बे, वर्धा और गोरखपुर गए। अच्छी हिन्दी बोल लेने वाले गेश को उनकी यात्रा योजनाओं में कई दिक्कतें भी हुईं, लेकिन वे ज्ञान की तलाश में बढ़ते ही गए।

उनके दौरे के कई साल बाद भी उन्होंने पोद्दार को लिखना जारी रखा और हिन्दुवाद पर एक व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित भी किया। [223](#)

सायराक्यूज विश्वविद्यालय के दार्शनिक रेमंड एफ पाइपर ने गीता प्रेस प्रकाशन के आरंभिक चित्रकार बी के मित्रा द्वारा बनाई शिव की पेंटिंग को खोजने में मदद के लिए लिखा। उन्होंने तब ललित कला अकादेमी के साथ काम कर रहे मित्रा को लिखा लेकिन उन्हें कोई जवाब प्राप्त नहीं हुआ। [224](#)

सन् 1967 में पूर्वी लंदन में गठित हिन्दू केंद्र ने एक मंदिर और एक पुस्तकालय बनवाया। इस केंद्र के संस्थापक सदस्य बी के गोयल ने गीता प्रेस से *कल्याण* और *कल्याण-कल्पतरु* सहित इसके अन्य प्रकाशित सामग्री के सिलसिले में सम्पर्क किया। तीस पौंड की पुस्तकों के पहुँचने में हो रही देरी ने गोयल को पोद्दार से सीधे सम्पर्क करने पर बाध्य किया जो उस समय स्वस्थ नहीं थे। उन्होंने यह आरोप भी लगाया कि ‘ऑफिस में किसी ने ड्राफ्ट मनी के साथ छेड़छाड़ की है।’ [225](#) पोद्दार को गोयल का पत्र मिलने के कुछ ही दिनों के अंतराल में गीता प्रेस के मैनेजर ने पैसों के मिलने की पुष्टि की और बाईस बंडल पुस्तकें भिजवा दीं। गोयल के आरोपों की वजह से गुस्साए मैनेजर ने कहा कि मामले को डाक अधिकारियों के सामने रखा जाएगा। [226](#)

विद्वता और धर्म की दुनिया के बाहर गीता प्रेस और पोद्दार को आध्यात्मिक आधार की तरह देखने वाले सामान्य भारतीय उन्हें निजी अनुभव व सुझाव भेजा करते थे। मॉरिशस से किसी जी पी मिश्रा ने पोद्दार और गीता प्रेस की उनके जैसे घर से दूर रह कर अपने लेखों के माध्यम से भगवान में मन रमाने में लोगों की मदद करने के लिए सराहना की। उन्होंने पोद्दार से आग्रह किया कि भारत दौरे पर जा रहे उनके मॉरिशस निवासी ससुर के लिए वे थोड़ा वक्त निकालें। [227](#) ब्रिटेन के रोहंडा में रहने वाले आर के श्रीवास्तव ने पोद्दार को सूचित किया कि अपने दोस्तों द्वारा बार-बार यह बताए जाने के बाद भी कि ठन्डे देश में सब्जियों पर जीवित रहना मुश्किल है, तब भी किस तरह उन्होंने शाकाहार को अपनाने में सफलता हासिल की! [228](#) ब्रिटिश गुयाना, दक्षिणी अमेरिका से रमेश कुमार प्रसाद ने ‘आर्थिक लाभ’ की घोषणा करते हुए सुझाया कि गीता प्रेस को तुलसीदास की रामचरितमानस को इसकी टीका सहित प्रकाशित करना चाहिए। [229](#)

रंगून के एक धर्मार्थ अस्पताल रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम ने *कल्याण* के संपादक से अस्पताल में नए खुले पुस्तकालय के लिए पत्रिका की निःशुल्क प्रतियाँ भेजने का निवेदन किया। यह महसूस किया गया जैसे अस्पताल के पुस्तकालय में *कल्याण* पत्रिका न केवल मरीजों को अच्छा समय बिताने में मदद करेगी बल्कि उनके त्वरित स्वास्थ्य लाभ में भी मददगार बनेगी। [230](#) भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त अस्पताल की प्रबंधन समिति ने अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए कहा कि वे भेजने के दौरान लगे डाक भत्ते को भी वहन नहीं कर पायेंगे। गीता प्रेस धर्मार्थ में प्रतियाँ भेजने के लिए राजी हो गया।

सांचे में ढलना

आरंभिक चार दशकों में गीता प्रेस के लेखकों का संसार लगातार व्यापक होता गया जिसमें सनातन हिन्दू धर्म की चिंता करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को जगह दी गई। लेखक के राजी होने के बाद यह तक नहीं देखा गया कि सनातन धर्म के किस पहलू पर लिखा जा रहा है। इसके प्रति भी कई तरह के खतरे थे जैसे औपनिवेशिक दौर का खतरा, मुसलमानों के साथ हित रक्षा की लड़ाई, और भौतिक उपभोग की संस्कृति का उभार। गीता प्रेस का मानना था कि इन सभी बातों का लोगों की नैतिक बुनावट पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। प्रेस के रक्षा-से-पुनरुत्थान के इस मिशन को पवित्रता, धर्म निरपेक्षता, साम्प्रदायिकता, वैश्विकता, स्थानीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के अलग-अलग दायरों से परे बड़ी मात्रा में लेखकों की ज़रूरत थी।

सावधानी से विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि पोद्दार द्वारा एकजुट किए कैथोलिक संसार में एक सुनिश्चित सांचा था। वे प्रत्येक उस व्यक्ति तक पहुंचे जो उस सुनियोजित मंदिर के ढांचे के किसी भी पहलू पर फिट बैठता था। प्रत्येक लेखक को किसी-न-किसी खास वजह से चुना गया था। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों व दर्शनों का प्रतिनिधित्व करने वाले भिक्षुओं, साधुओं व संस्कृत आचार्यों (विद्वानों) से मिलकर *कल्याण* का पवित्र पावन स्थल बना था। इन्होंने लगातार पवित्र ग्रंथों पर खोजबीन की और कठिन सिद्धांतों को सामान्य पाठकों के लिए आसान भाषा में विखंडित करते रहे। साथ-साथ पोद्दार और गोयन्दका सहित इन लेखकों ने पाठकों को व्यक्तिगत, घरेलू और सार्वजनिक जीवन में रीति-रिवाजों की महत्ता को समझाने में अतिरिक्त श्रम किया। यह बात अलग है कि शास्त्रीय नियमों से भरे इन रीति-रिवाजों का बोझ उन महिलाओं पर ही अधिक पड़ा जिन्हें यूँ भी अपने लिए कम या कहीं कि एकदम समय नहीं मिलता था। हिन्दू नारी की आदर्श छवि के साथ-साथ उसे बेटी, पत्नी और माँ की भूमिका भी निभानी थी। यह एक ऐसा काम था जिसे गीता प्रेस ने ज़रूरत से ज़्यादा गंभीरता से लिया। उसने केवल *कल्याण* के पृष्ठ ही नहीं रंगे बल्कि महिलाओं पर अलग से कई पर्चे भी प्रकाशित किए। इसमें सबसे पहला सन् 1926 में *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी* था।

धार्मिक ग्रंथों की ठीक-ठाक समझदारी वाले और सनातनी जीवन जीने वाले ग़ैर-माहिर लोगों की एक अलग मंडली थी। इस मंडली में भारतीय और ग़ैर-भारतीय विद्वान, इन्डोफील्स, पूरबवासी और पश्चिमीवासी, के एम मुंशी, गोविंद दास, संपूर्णानंद जैसे पुराने राजनेता, कवि, लेखक, व्यवसायी और स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाने वाले शिक्षक थे। पोद्दार ने इस सूची में श्रेष्ठ नाम जोड़ने के लिए जी जान लगा दी। इन्होंने न केवल पत्रिका के सहज संचालन में योगदान दिया बल्कि इनकी जीवनियों को कई बार सफलता की कहानियों में छापा गया, जिन्होंने सनातन हिन्दू धर्म के मार्ग पर चलकर सफलता हासिल की।

हिन्दू और हिन्दी राष्ट्रवाद, गो-रक्षा, हिन्दू कोड बिल और अन्य विवादित मुद्दों पर लिखने वालों की एक अलग मंडली थी । इसमें हिन्दू महासभा और आरएसएस के नेता, मालवीय जैसे कांग्रेस के रूढ़िवादी नेता, करपात्री महाराज, राघवदास और प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जैसे राजनेता और साधु शामिल थे । इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्यिक जगत ने भी *कल्याण* के लिए लेखन किया और 1930 के दशक की साम्प्रदायिक हवा में अस्तित्व में आए अल्पायु वाले संगठनों के प्रतिनिधियों ने भी साम्प्रदायिक बहसों में बेहद भद्दी भाषा में अविश्वास, और असंगति को बढ़ाने वाले माहौल में अपना योगदान दिया ।

अंततः वे विद्वान व दार्शनिक जिन्हें गीता प्रेस के चश्मे से दिखाए जा रहे हिन्दुवाद पर कोई संकट नहीं दिखता था, लेकिन फिर भी उन्होंने *कल्याण* के लिए लिखा । इनमें रवीन्द्रनाथ टैगोर, क्षितिमोहन सेन, सी एफ एंड्रयूज, एस राधाकृष्णन जैसे लेखक भी थे जिन्होंने पोद्दार से मतभेद रखते हुए भी गीता प्रेस और *कल्याण* को सही मायनों में साम्प्रदायिक एजेंडे से अलग आध्यत्मिक, सांस्कृतिक और धार्मिक हस्तक्षेप माना । लेकिन यह व्याख्या जांच-पड़ताल की मांग करती है क्योंकि इनमें से कुछ लेखकों ने गीता प्रेस के अन्य प्रयासों से खुद को हिन्दू राष्ट्र निर्माण के लक्ष्य से ही जोड़ा ।

अध्याय 4

संघ परिवार के स्वयंसेवक

हिन्दू पुनर्जागरण और सुधार आंदोलन की शुरुआत उन्नीसवीं सदी में ब्रह्म समाज (1828) और आर्य समाज (1875) के साथ हो चुकी थी। इस सुधार आंदोलन को निश्चित आकार देने का काम धुर हिन्दू राष्ट्रवादियों ने किया। उन्होंने राजनैतिक और सामाजिक विचारधारा के आधार पर हिन्दुवाद को उज्ज्वल अतीत वाला एकमात्र धर्म बताते हुए उसकी व्याख्या की। रोमिला थापर ने इसे 'संगठित हिन्दुवाद' (सिंडिकेटेड हिन्दुइज्म) कहा, जिसे 'भारतीय धर्म की विरासत पर एकल दावेदारी' की तरह पेश किया गया। इस संगठित हिन्दुवाद का एक पहलू ब्राह्मणवादी ग्रंथ जैसे गीता और धर्मशास्त्रों को 'रूढ़ीवादी प्रकारों को आधुनिक, परिष्कृत धर्म के लबादे में पेश' करने की व्याख्या पर ज़रूरत से ज़्यादा आश्रित है।' ¹

सन् 1909 में लाला लाजपत राय की पहल से लाहौर में गठित हिन्दू सभा शान्तिकाल के बाद अपने पुराने सदस्यों की सक्रियता की बदौलत सन् 1915 में हिन्दू महासभा का जन्म हुआ। 'संगठित हिन्दुवाद' इसका वैचारिक आधार बना। इस विलक्षण इतिहास की कल्पना को 'इस्लाम जैसे किसी विरोधी छवि' ² के विपरीत तैयार करने की बिनाह पर सही ठहराया गया। खिलाफ़त आंदोलन (1919-24) और सन् 1921 के मोपलाओं द्वारा हुए नरसंहार के परिणामों के बाद इस तरह की तीखी और धार्मिक पहचान वाली हिन्दू लामबंदी की स्वीकार्यता बढ़ी।

सन् 1923 में विनायक दामोदर सावरकर की पुस्तक *हिन्दुत्व: हू इज़ ए हिन्दू?* के प्रकाशन और सन् 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना जैसी दो अलग-अलग घटनाओं ने 1920 के दशक को हिन्दू राष्ट्रवाद के लिए सबसे उत्पादक और महत्वपूर्ण दशक बनाने में योगदान दिया। *एसोशियल्स ऑफ़ हिन्दुत्व* शीर्षक वाली सावरकर की पुस्तक का प्रयास हिन्दुत्व (हिन्दू होने के गुण) के उद्भव को इतिहास सम्मत करना था, जिसका हिन्दुवाद मात्र एक 'यौगिक अंश' था। ³ हिन्दुवाद के बतौर एक संस्कृति और एक आस्था के बीच में सावरकर ने न केवल अंतर स्पष्ट किया बल्कि उसे (डार्विन, टी अच हक्सले और हर्बर्ट स्पेंसर के काम का हवाला देकर) 'नस्लीय राष्ट्रवाद को वैधानिक बनाने का प्रयास किया।' ⁴ उन्होंने 'हिन्दू' और 'सिंधु' शब्द का प्रयोग किया (इंडस/

सिंधु नदी का संस्कृत नाम जिससे इंडिया नाम बना) यह तर्क दिया गया कि संस्कृत का 'स' शब्द प्राकृत के 'ह' में बदल गया ।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक के बी हेडगेवार ने राष्ट्र की अपनी परिभाषा दी: 'देश सिर्फ़ ज़मीन का टुकड़ा नहीं है । राष्ट्र बनता है ऐसे लोगों से जिन्होंने एक सोच, एक प्रथा, एक संस्कृति और एक परंपरा को सदियों से कायम रखा हो ।' ⁵ इस परिभाषा के आधार पर आरएसएस और उसके संगठनों ने नेपाल को एक 'हिन्दू राष्ट्र' का अंग स्वीकार किया । ⁶ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद और दूसरे वे सभी संगठन जो आरएसएस की विचारधारा से संचालित हैं, वे मिलकर संघ परिवार या आरएसएस-संबद्ध बनाते हैं ।

धार्मिक पहचान के तीव्र होने और विचारधारा के सूत्रीकरण के समानांतर 1920 के दशक में 'हिंसा और क्रूरता की भीषणता से भरे' हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे लगातार हुए । 'सामयिक सूची' इस दशक के दौरान देशभर में बड़े और व्यापक स्तर पर हुए अनतीस दंगों को सामने रखती है ⁷ जिसमें मालाबार के मोपला दंगे (1921) से लेकर अजमेर और सिंध (1923), दिल्ली और लखनऊ (1924), इलाहाबाद, कलकत्ता और शोलापुर (1925), लाहौर और नागपुर (1927) और बॉम्बे (1929) तक के दंगे शामिल हैं ।

हिन्दू धर्म की रक्षा में

इस उत्तेजक दशक के दौरान अस्तित्व में आया *कल्याण* शुरुआत से हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर अपनी राय को लेकर स्पष्ट था । प्रवेशांक के संपादकीय में ही पोद्दार ने दंगों का सारा इल्ज़ाम मुसलमानों पर लगाया और हिन्दुओं की निष्क्रियता पर पछतावा ज़ाहिर किया । पोद्दार ने संघबल का आह्वान करते हुए सहधर्मियों को कहा कि वे अहिंसा के सिद्धांत को कायरता में न बदलें । ⁸

दंगों में हिन्दुओं की भूमिका को धर्म की रक्षा से जोड़ दिया गया । सन् 1927 में एक चिंतित पाठक ने जयदयाल गोयन्दका से परामर्श लेना चाहा । दंगों में संलिप्तता की वजह से इस पाठक के नाम वारंट जारी हुआ था । गोयन्दका ने कहा कि उसने ये सब अपने धर्म की रक्षा के लिए किया है, इसलिए उसे सज़ा के लिए तैयार रहना चाहिए और कायरों की तरह बर्ताव नहीं करना चाहिए । उन्होंने कहा, 'यदि यह समझते हैं कि बिना ही दोष आप पर लोकहित करते यह आपत्ति आई है तो आपको एक वीर की भांति प्रसन्नता से जेल जाना चाहिए । अथवा अपने को प्रमाणों से निर्दोष साबित करना चाहिए । कैद की तो बात ही क्या है! परोपकार के लिए फांसी पर लटकना पड़े तो भी बहुत आनंद की बात है ।' ⁹

अपने शुरुआती दौर में ही *कल्याण* ने अपने पाठकों के समक्ष अपने विचारधारात्मक संघर्ष को धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से प्रकट कर दिया । उसने न

केवल धार्मिक आस्था में गिरावट से सनातन धर्म पर संकट की बात की बल्कि तत्काल प्रभाव का वायदा करने वाली आस्था और उपासना का एक नया ढांचा भी प्रस्तुत किया । यह भक्ति से लाभ कमाने वाला एक 'बनिया मॉडल' था । वैष्णव भक्ति में डूबी हुई परंपरा में पाठकों को पुण्य इकट्ठा करने के लिए (आचारिक और आध्यात्मिक गुण) भगवान नाम जाप करने के लिए कहना एक ऐसी ही पहल थी जो अच्छा स्वास्थ्य, धन और मानसिक शान्ति जैसे हितलाभ गिनवा रही थी । इसी तरह दान-पुण्य पर भी समान बल दिया गया जिसमें *कल्याण* के पाठकों की संख्या बढ़ाने के लिए मदद व चन्दा (खासकर मारवाड़ी व्यापारियों से) शामिल थे ।

गीता प्रेस ने गांधी, मालवीय जैसे विशिष्ट लोगों से लेकर सामान्य जनों के जीवन की चित्रात्मक कहानियों के माध्यम से भक्ति के बदले तत्काल शक्ति मिलने का भरोसा पैदा करने वाले मौलिक ढांचे को ज़ोर-शोर से फैलाया । इसके अनुसार, मालवीय को निरंतर सफलता नारायण जाप से मिली ¹⁰ और इसी तरह राम नाम ही गांधी को राह दिखाने वाला जंतर था । ¹¹ एक पाठक ने अपने एक धार्मिक परिचित के बारे में लिखा कि उसे अपनी बेटी के विवाह के दिन एक अनपेक्षित मनीआर्डर मिला ¹² सही मायनों में भक्ति से होने वाले दुनियावी फ़ायदों के क्रिस्से आरम्भिक समय से ही *कल्याण* का नियमित रूप से हिस्सा रहे हैं ।

पोद्दार के लिए भगवत नाम जाप की भक्ति जीवन की सारे मुश्किलों से निजात दिलाने की कुंजी थी और यह दैवीय अनुकम्पा भी बनाए रखती थी । एक पारिवारिक विवाह में बलात्कार की शिकार हुई एक महिला ने पोद्दार से मार्गदर्शन के लिए लिखा । इस पर पोद्दार ने पुरुषों में घटती नैतिकता पर खेद व्यक्त किया और महिला से इस घटना को अपने पति से छिपाने के लिए कहा । उन्होंने महिला को एक साल तक प्रतिदिन राम नाम की सौ माला (एक माला में 108 मनके होते हैं) जपने के लिए कहा । ¹³

कल्याण पत्रिका सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक रूप से देश के सुचारू प्रबंधन के लिए वर्ण-व्यवस्था के दैविक आदेश की सबसे प्रभावशाली प्रवक्ता बन कर उभरी । इस दृष्टि से गीता प्रेस अछूतों को हिन्दू समाज में बनाए रखने की वकालत करने वाली हिन्दू महासभा और सहयात्री आर्य समाज से अलग था । जहाँ एक ओर *कल्याण* के अंकों में हिन्दू महासभा और आर्य समाज के नेताओं को जगह दी गई और दोनों के बीच स्पष्ट विचारधारात्मक मतभेद होने के बावजूद दोनों में सीधे टकराव से गुरेज़ किया, वहीं गीता प्रेस जन्म आधारित जाति व्यवस्था के अपने विचार पर अडिग रहा ।

इस अन्तर्निहित विरोधाभास की छाया हिन्दुओं के एक संगठित चेहरे को सामने रखने और उसका एकमात्र प्रवक्ता बनने के गीता प्रेस के प्रयास पर पड़ती थी । राम नाम जाप के आह्वान में इन्होंने बस इतनी रियायत दी कि इसमें अछूतों सहित सभी

जाति के हिन्दुओं को शामिल किया, जो अपनी सुविधा, समय और स्थान के अनुसार राम नाम जप सकते थे ।

दिसंबर 1939 में साम्प्रदायिक दंगों के बाद बुरी तरह बंट गए गोरखपुर में गीता प्रेस का सीधा हाथ था और जिसकी वजह से उसके अस्तित्व पर भी संकट आन पड़ा । उन दिनों पोद्दार बीमार थे और अपने पैतृक निवास रतनगढ़ में रह रहे थे । मुहम्मद अली जिन्ना ने 22 दिसंबर 1939 को भारतीय मुसलमानों के लिए 'मुक्ति दिवस' घोषित किया क्योंकि इसी दिन कांग्रेस के नेताओं ने ब्रिटिश सरकार के भारत से बिना परामर्श लिए द्वितीय विश्व युद्ध में उसे शामिल कर लिए जाने के निर्णय का विरोध करते हुए सरकारी दफ्तरों से इस्तीफे दिए ।

ठीक उसी दिन गोरखपुर में निकाली गई वार्षिक गीता जयंती जुलूस पर हुए हमले ने शहर भर को हिंसा की ज़द में ला दिया । साहिबगंज की एक मस्जिद से गुजरते समय यह दंगा शुरू हुआ, जिसमें लाठियों और पत्थरों का इस्तेमाल हुआ था । यह घटना इतनी गंभीर थी कि *टाइम्स ऑफ इंडिया* ने एसोसिएटेड प्रेस रिपोर्ट छापी । गोरखपुर जिला कलेक्टर ने स्पष्ट किया कि इस हिंसा का 'मुक्ति दिवस समारोह से कोई सम्बन्ध नहीं' था, क्योंकि 'इससे जुड़ी एकमात्र बैठक जामा मस्जिद में पहले ही सम्पन्न हो चुकी थी ।' ¹⁴

पोद्दार द्वारा गोरखपुर स्थित अपने सहयोगियों को लिखे गए पत्रों के अनुसार पुलिस ने गीता प्रेस के बहुत-से कर्मचारियों को मुसलमानों और मस्जिदों पर हमला करने के आरोप में पीटा और गिरफ्तार किया । गीता प्रेस की मुश्किलें तब बढ़ीं जब मुसलमानों ने शान्तिवार्ता को अस्वीकार कर दिया । यह समुदाय अब गीता प्रेस के खिलाफ़ कार्रवाई की मांग कर रहा था ।

तनाव के बढ़ने और जांच शुरू होने पर पोद्दार को मामले की प्रगति से अवगत करवाया गया । उनकी प्रतिक्रिया सामान्य थी कि यह घटना भगवान की इच्छा थी और जो कुछ भी आगे हुआ वह भी ईश्वर का आदेश था । उन्होंने चिम्मनलाल गोस्वामी को लिखा, 'हमारा हृदय इस बात को जानता है कि अपनी न तो कोई बुरी नीयत थी, न मुसलमानों पर न मस्जिद पर आक्रमण करने की कोई कल्पना थी और न किसी ने आक्रमण किया ही । भगवान की कृपा ही सब कुछ कराती है उन्हीं के विधान से उन्हीं के गीता जयंती के जुलूस पर हमला हुआ, उन्हीं के विधान से आगे जो कुछ होना होगा, होगा ही । अपन भगवान के सामने निर्दोष हैं । इस पर कलेक्टर साहब दोषी मान लें तो हमारा क्या बिगड़ेगा हम लोग जब तक भगवान के सामने निर्दोष हैं ।' ¹⁵ इसी समय गीता प्रेस के कर्मचारियों के खिलाफ़ पुलिस कार्रवाई की संभावना के मद्देनज़र पोद्दार को क़ानूनी आश्रय की आवश्यकता महसूस हुई । उन्होंने गोस्वामी से एक अच्छा वकील करने को कहा । उन्होंने कहा कि यह सुनिश्चित किया जाये कि गीता प्रेस के सभी गिरफ्तार कर्मचारी जमानत पर रिहा हों और उनके परिवारों की देखभाल की जाये । यह स्वीकार करते हुए कि बात इतनी जल्दी ख़त्म होने वाली नहीं है, पोद्दार ने

कहा, 'प्रेस गोरखपुर से अन्यत्र चला जाये, उठ जाये इसमें कुछ भी हर्ज नहीं है । भगवान का यही विधान होगा तो यही परम श्रेष्ठ है । ठीक सच्ची-सच्ची बात कोर्ट में कह दीजिए ।' उन्होंने गोस्वामी को पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे नेताओं और बाक्री लोगों से मदद लेने की सलाह दी ताकि 'हिन्दुओं के साथ सहानुभूति बनी रहे और कोई भी हमारे विरोध में न हो ।' उन्होंने मामले के निपटारे के लिए गोरखपुर के कुछ प्रभावशाली मुसलमानों जैसे ज़ाहिद अली और मुर्तज़ा हुसैन के नाम भी सुझाए ।

बहरहाल, कोई समझौता नहीं हो सका । शहर की स्थिति तनावपूर्ण बनी रही और पुलिस भी सतर्क थी । हालाँकि कलेक्टर ने पोद्दार को जवाब में एक तार भेजा था कि 'सब शांत है, चिंता का विषय नहीं है ।' ¹⁶ पूरी तरह से स्वस्थ हुए बिना पोद्दार अभी गोरखपुर लौटने के पक्ष में नहीं थे और न ही रतनगढ़ में चल रहे अपने आध्यात्मिक कार्यक्रम को बीच में स्थगित करना चाहते थे । कलेक्टर के जवाब को आश्वासन की तरह बताते हुए पोद्दार ने बाबा राघवदास की मदद लेने को कहा और यह सुनिश्चित करने को कहा कि सभी कर्मचारी बेहतर सुरक्षा के लिहाज़ से एक साथ एक ही जगह पर रहें ।

तीन दिन बाद पोद्दार को एक उत्तेजक तार द्वारा गोरखपुर का बुलावा भेजा गया क्योंकि गीता प्रेस के चार कर्मचारियों को गिरफ़्तार किया गया था । हालाँकि पोद्दार तुरंत गोरखपुर नहीं गए । उन्होंने लिखा, 'तदापि प्रेस वाले ये अनुभव न करें कि भाई जी हमारी विपत्ति के समय नहीं आए ।' ¹⁷ जयदयाल डालमिया की मदद से उन्होंने एक वकील श्याम लाल को गिरफ़्तार कर्मचारियों के बचाव के लिए नियुक्त किया । लड़ाई के राजनैतिक और साम्प्रदायिक दोनों स्तरों पर लड़े जाने की ज़रूरत को महसूस कर पोद्दार ने सवाल उठाया कि कथित तौर पर हिंसा की शुरुआत करने वाले मुसलमानों को क्यों गिरफ़्तार नहीं किया गया? उन्होंने गोरखपुर के हिन्दुओं की निष्क्रियता की आलोचना की । पोद्दार ने कहा कि चूंकि जुलूस पर हमला मुसलमानों ने किया था इसलिए उन्हें दण्डित किया जाये ताकि ऐसी घटना भविष्य में दोहराई न जाये । उन्होंने गीता जयंती जुलूस पर हुए हमले की आलोचना करते हुए देशव्यापी आंदोलन करने के लिए वीर सावरकर, गीता धर्म मंडल और गीता सभा के समक्ष प्रस्ताव रखने का सुझाव दिया । पोद्दार गोरखपुर के कलेक्टर के साथ अपने हार्दिक संबंध ख़राब नहीं करना चाहते थे इसलिए उन्होंने हिन्दू समर्थक संगठनों से सम्पर्क स्थापित करने का बीड़ा गोस्वामी पर छोड़ दिया ।

सन् 1939 के अंत तक वकीलों का एक पूरा दल गीता प्रेस कर्मचारियों का बचाव करने के लिए लगा दिया गया, जनवरी 1940 के शुरुआत में जुगल किशोर बिड़ला के आग्रह पर बाबा राघवदास गोरखपुर पहुँचे । ¹⁸ पोद्दार ने दंगों में घायल हुए 'शुक्ल' उपनाम वाले एक व्यक्ति को (जिनका पहला नाम ज्ञात नहीं है) सुझाव दिया कि उन्हें एक तीसरी पार्टी को गोरखपुर के हिन्दुओं को या हिन्दू महासभा या एक स्वतंत्र जाँच समिति को दंगों पर एक रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए । हालाँकि, उन्होंने प्रस्तावित रिपोर्ट

की व्यापक रूपरेखा सामने रखी। उनके अनुसार इसमें जुलूस पर हमला करने में हुई मुस्लिम सहभागिता, दंगों में उनकी संलिप्तता, गीता प्रेस से हथियार बरामद होने की अफवाह फैलाने और उसके कर्मचारियों पर धारा 144 लागू होने (गैर-क्रान्ती सभा में भागीदारी) पर विस्तार देते हुए रिपोर्ट बनाई जाये। उन्होंने कहा कि इस रिपोर्ट में कलेक्टर की सराहना भी शामिल होनी चाहिए। पोद्दार ने रिपोर्ट की एक प्रति वरिष्ठ अधिकारी (ICS) पन्नालाल को भेजने के लिए मांगी, 'जिससे सारा सच्चा हाल उनके ध्यान में रहेगा जो आगे चल कर समय पर काम आ सकता है।' ¹⁹ लेकिन पोद्दार ने वायसराय, गवर्नर, गांधी या नेहरू को तार न भेजने की सलाह दी क्योंकि ऐसा करना ज्यादा फ़ायदेमंद नहीं लगा। उन्होंने कहा, 'गांधी जी नेहरू जी का मत मुसलमानों के लिए यही होना संभव है कि (हम) उनके सामने आत्मसमर्पण कर दें, यद्यपि हम लोग शान्ति ही चाहते हैं तदपि (आत्मसमर्पण) हमारे मन के अनुकूल नहीं है।' ²⁰ यह योजना बनाई गई कि कई धार्मिक और सामाजिक संगठन जुलूस पर हमले के लिए देश भर में विरोध प्रदर्शन करेंगे लेकिन इस तरह के विरोध आयोजन में गीता प्रेस की भूमिका को गुप्त रखा जाएगा। ²¹ मुसलमानों द्वारा शान्ति समझौते को अस्वीकार करने पर यह पूरा प्रयास निराधार साबित हो गया। अंततः मामला अदालत में जा पहुँचा। हालाँकि सारे मामले अगले कुछ महीनों में एक के बाद एक वापस ले लिए गए।

दिलचस्प बात यह कि दिसंबर 1939 के *कल्याण* अंक में हिन्दी के विख्यात लेखक रामनरेश त्रिपाठी का एक लेख छपा। इस लेख में उन्होंने उसी साल जनवरी में एक मुस्लिम तांगेवाले के साथ बरेली यात्रा के अनुभव को लिखा था। ²² उस वक़्त यह शहर साम्प्रदायिक दंगों की चपेट में था जब अर्धरात्रि में त्रिपाठी वहाँ पहुँचे। लेखक ने जानबूझ कर एक तांगा लिया जिसके चालक की मूछें थीं। 'दंगे के दिनों में मुसलमान तांगे वाले मौत के सिपाही बन जाते हैं। एक तांगे वाले की मूछे कटी हुई नहीं थीं, मैंने उसे हिन्दू समझा और उसी को कर लिया।' उसके आगे त्रिपाठी की यह कहानी उसी घिसे-पिटे अंदाज़ में आगे बढ़ती है जिसमें एक मुसलमान के पहनावे और हाव-भाव का वर्णन है। उन्होंने बताया कि कैसे तांगे वाले ने रवाना होने से पहले फुसफुसा के बात की। जैसे ही तांगे ने अँधेरे में चलना शुरू किया दो लोग रास्ते में मिले, उनमें से एक त्रिपाठी के कोई इलाहाबाद के परिचित थे। उस दोस्त ने तांगा रास्ते में रोका और तब त्रिपाठी को पता चला कि वह तांगा वाला उन्हें मुस्लिम बहुल इलाक़े में ले जा रहा था, जहाँ उनकी हत्या करना आसान था। *कल्याण* में वर्णित यह घटना ये बताने के लिए थी कि किस तरह भगवान ने उन्हें बचाया था, लेकिन इस कहानी में अन्तर्निहित साम्प्रदायिकता को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। इसी तरह *कल्याण* के बहुत-से अंकों में ऐसी कहानियों की भरमार है जो मुसलमानों की निष्ठा पर सवाल उठाती रही हैं।

पोद्दार ने बहुत बाद में स्वीकार किया कि *कल्याण* में 'नए' धर्मों के प्रति एक संरक्षणवादी प्रवृत्ति भी थी, 'उनकी मुक्ति का मार्ग जो भी हो, वे सभी हिन्दू हैं। बौद्ध, जैन, सिख विशाल हिन्दू वृक्ष की विभिन्न शाखाएं हैं।' ²³ गीता प्रेस ने भारत में अस्तित्व में आए सभी धर्मों को हिन्दू संस्कृति का अंश माना। हालाँकि ये धारणा आरएसएस और हिन्दू महासभा द्वारा प्रचलित की जा रही व्यापक व्याख्या का एक हिस्सा थी, लेकिन इसके कारण कभी गीता प्रेस और अन्य धर्मों जैसे बौद्ध, जैन या सिख के बीच टकराव नहीं हुए थे। सन् 1934 में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी (एसजीपीसी) को हस्तक्षेप करना पड़ा, जब एक लेख '*देवी और सिख धर्म*' *कल्याण* के *शक्ति अंक* के लिए प्रस्तावित किया गया। एसजीपीसी को इस विषय के बारे में पता चला तो गीता प्रेस को लिखा कि 'सिख गुरु विशेषकर गुरु गोबिंद सिंह जी ने दुर्गा (देवी) की पूजा की थी या नहीं इस बात को लेकर इतिहासकारों के विचारों में बड़ा मतभेद है।' ²⁴ जबकि 'कुछ लेखक जो हिन्दू धर्म के प्रभाव में थे', इस विचार को प्रचारित कर रहे थे कि सिख गुरु दुर्गा की पूजा करते थे। एसजीपीसी ने तर्क दिया कि अधिकतर लोग इस सिद्धांत में विश्वास नहीं रखते हैं। 'गुरुओं द्वारा देवी की पूजा वाला विचार सिख धर्म के सिद्धांतों और उनके मत के विपरीत है।' एसजीपीसी ने गीता प्रेस को चेतावनी दी कि 'इस विवादास्पद विषय में न पड़ें क्योंकि इसके प्रकाशन से सिख समुदाय में उत्तेजना फैल सकती है।'

अमृतसर के सिखों का प्रतिनिधित्व करने वाले एक संगठन के चीफ़ खालसा दीवान को भी गीता प्रेस के इस लेख की भनक पड़ी। उन्होंने 'पूरी तरह स्थापित और हिन्दुस्तान के कोने-कोने तक जनता के बीच लोकप्रिय हो चुके' गीता प्रेस से कहा कि वह सिख इतिहास के बारे में भ्रामक तथ्य न फैलाए। अगर लेख को प्रकाशित करने की गीता प्रेस की इतनी ही इच्छा थी तो विषय से जुड़े सही तथ्य देते हुए एक दूसरा लेख दिया जा सकता था। ²⁵ एसजीपीसी की ओर से गीता प्रेस को एक और पत्र भेजा गया जिसमें *शक्ति अंक* से इस विषय से जुड़े लेख को हटाने और विवादास्पद काम के बीच न पड़ने की हिदायत दी गई थी। ²⁶ अपनी अनाक्रमण की नीति पर कायम रहते हुए, विशेषकर हिन्दुवाद की छत्रछाया के भीतर आने वाले सम्प्रदायों और धर्म के साथ न उलझने की नीति पर अडिग रहते हुए गीता प्रेस ने इस मुद्दे को टालना ही उचित समझा।

विभाजन की भूमिका

1940 के दशक में जैसे-जैसे आज़ादी की संभावनाएँ और विभाजन के आसार सच होते दिखने लगे वैसे-वैसे गीता प्रेस और *कल्याण* का ध्यान पूरी तरह राजनीति पर केंद्रित हो गया। यही नहीं, इसने घटनाओं की साम्प्रदायिक चश्मे से खूब रिपोर्टिंग की। इस दौर में *कल्याण* ने अपने ही आध्यात्म और शान्ति, सहनशीलता और भाईचारे के

मार्ग को विस्मृत कर दिया। यही वह समय था जब गीता प्रेस ने आरएसएस और हिन्दू महासभा के साथ अपने मधुर संबंध को एक नया मुकाम दिया और खुलेआम एक-दूसरे का हाथ थाम आगे बढ़े।

16 अगस्त 1946 को 'सीधी कार्रवाई दिवस' (डायरेक्ट एक्शन डे) पर कलकत्ता में हत्याएं होनी शुरू हो गईं। 'पूरे तीन दिन और रात तक ब्रिटिश इंडिया की पूर्व राजधानी और सबसे ज़्यादा आबादी वाला यह शहर चोरी, ठगी करने वालों के लिए हत्याएँ करने का खुला मैदान बन गया। पहले मुसलमान, फिर प्रतिशोध लेने वाले हिन्दू, हत्या, लूटमार और निर्दयता से हत्याएँ शुरू हुईं। जो भी नज़र में आया, वह मारा गया।' ²⁷ 4,000 लोग मारे गए और 10,000 घायल हुए। कलकत्ता में हुई हत्याओं को वहाँ के मुख्यमंत्री सोहरावर्दी की शह मिली हुई थी, जिन्होंने एक रैली के दौरान 'पुलिस और सेना की दखलअंदाज़ी से मुक्ति दिलाने का वायदा' किया था। हालाँकि वावेल और सरदार पटेल द्वारा यह बताया गया कि हिन्दुओं से ज़्यादा मुसलमान मारे गए। ²⁸ अक्टूबर तक ये दंगे नोआखली और टिपेरा तक फैल गए। नोआखली दंगों में हत्याओं के मुकाबले बलात्कार और संपत्ति नष्ट करने की घटनाएँ ज़्यादा हुईं।

हिन्दू महासभा ने आशुतोष लाहिड़ी, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, एन सी चटर्जी और पंडित नरेन्द्रनाथ दास जैसे वरिष्ठ नेताओं को नोआखली में राहत कार्य के लिए भेजा और यहाँ भी हिन्दू महासभा से समुदाय के निहित दीर्घकालिक लाभ देखने में चूक नहीं हुई। हिन्दू महासभा ने राहतकार्यों में प्रगति से जुड़ी जानकारी प्रकाशित करते हुए हिन्दुओं में पैदा हुई सहानुभूति का उल्लेख किया और लिखा कि 'इस बड़ी तबाही के बावजूद राहत कार्य के सदस्यों के लिए ये बड़ी संतुष्टि की बात है कि भारत के हर प्रांत में हिन्दुओं में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति पैदा हुई है।' ²⁹ बहरहाल, देखते-देखते यह हिंसा बिहार, संयुक्त प्रांत, बॉम्बे और देश के दूसरे हिस्सों में फैल गई।

पोद्दार के लिए अब सारी मर्यादाओं को तोड़ने का समय आ चुका था और इस तरह गीता प्रेस के सभी घोषित उद्देश्यों जैसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आदि की जगह पर हिंसा, धमकी, प्रतिशोध वाली भाषा प्रयुक्त होने लगी जिसने 1940 के दशक में अनिश्चितता को बढ़ाने में योगदान दिया। 'वर्तमान विकट परिस्थिति और हमारा कर्तव्य' ³⁰ शीर्षक के अंतर्गत कल्याण ने नवंबर 1946 के अंक में द स्टेट्समैन के माध्यम से साम्प्रदायिक हिंसा का एक सारांश प्रस्तुत किया। मुसलमानों के लिए अपमानजनक शब्दों के साथ उस लेख में हिन्दू महिलाओं के साथ हुए बलात्कार और यातनाओं का विषद वर्णन किया गया और इन सबमें साधारण मुसलमान और मुल्लाओं की सहभागिता की ओर इशारा किया गया।

पोद्दार ने यह ज़रूर कहा कि इस दंगे में केवल हिन्दू ही नहीं मारे गए बल्कि मुसलमान भी मर रहे हैं। चूंकि मुसलमानों ने पहले हमला किया इसलिए शुरुआत में ज़्यादा हिन्दू मरे। आगे उन्होंने जोड़ा कि 'हिन्दू आत्मरक्षा या कोई-कोई प्रतिहिंसा की भावना से प्रत्याक्रमण करते हैं तब मुसलमानों का संहार भी कम नहीं होता।' पोद्दार ने

दोनों समुदायों के बीच दुश्मनी पैदा करने के लिए मुस्लिम राजनेताओं को ज़िम्मेदार ठहराते हुए कहा, 'आज यदि मुसलमानों में भी कोई गांधी हृदय रखने वाले मुसलमान महानुभाव होते और वे मियाँ जिन्ना के पद पर आसीन होते तो देश में कितनी शान्ति फैलती और दोनों जातियों की जनता परस्पर प्रेम से गले लगती, कन्धा-से-कन्धा मिला कर खड़ी होती तो आज राष्ट्र की इस आत्महत्या का भयानक दृश्य जगत के सामने कभी न आता।' पोद्दार ने प्रत्येक पाठक से मानवता के लिए कार्य करने को कहा।

पोद्दार ने सर शफ़त अहमद जैसे राष्ट्रवादी मुसलमान पर हमला करने के लिए मुस्लिम लीग की गंभीर आलोचना की। उन्होंने लिखा, 'यद्यपि यह सत्य है कि राष्ट्रीय मुसलमान भी पहले मुसलमान हैं, पीछे राष्ट्रीयता और यह मौलाना अबुल कलाम आज़ाद साहब जैसे महानुभावों के व्याख्यानो से स्पष्ट है, तदापि लीग तो उनसे नाराज़ है।' अपने मूल बिंदु तक पहुँचते हुए उन्होंने लिखा, 'अभिप्राय यह कि आत्मीयता प्रेम सौहार्द, सहानुभूति, सौजन्य, पारस्परिक सहायता और सेवा की भावना तो मानो दुनिया से उठती चली जा रही है।' पोद्दार ने कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (सीपीआई) को मुसलमानों का पक्ष लेने के लिए दोषी ठहराया। इसके अलावा उनके अनुसार अछूतों और सवर्ण हिन्दुओं के बीच में संपर्क गांधी और दूसरे कांग्रेस के नेताओं पर हमले का कारण बने। उन्होंने यह भी कहा कि अन्तरिम सरकार ने हिन्दुओं का समर्थन नहीं किया, जैसा कि नेहरू और पांच कांग्रेसियों ने देश को समर्थन देने का दावा किया, न कि हिन्दू समुदाय को। इसके आगे उन्होंने हिन्दू युवाओं की नैतिकता में गिरावट के लिए अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को दोषी ठहराया। बहरहाल अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हिन्दुत्व इस हमले से वैसे ही उबर जाएगा जैसे अतीत में उबरता आया है।

पोद्दार ने *द्वादश साधन* (बारह-सूत्री साधन) का प्रस्ताव रखा जिसमें प्रत्येक शहर और गाँव में 'रक्षा दल' का गठन करना शामिल था जिससे हिन्दू समुदाय के बीच आत्मविश्वास और सुरक्षा की भावना पैदा हो। ताकि इनकी बढ़ी हुई ताक़त को देख दूसरा पक्ष हमला करने की हिम्मत न कर सके। पोद्दार ने प्रत्येक इलाक़े और घरों में प्राथमिक उपचार केंद्र बनाने की वकालत की जिससे समय आने पर घायलों के उपचार के लिए तैयार रहा जा सके। उन्होंने सुझाव दिया कि खाद्यान्न का एक हिस्सा आपातकाल के लिए अलग रख दिया जाये। महिलाओं को आत्मसुरक्षा के लिए प्रशिक्षित होना चाहिए ताकि उनमें एक महिला योद्धा जैसी शक्ति आ सके। पोद्दार ने उसी लेख में महिलाओं को सती होने के लिए कहा, जैसे राजपूत महिलाएँ अपना शील खोने के बजाय अपने जीवन का त्याग करना चुनती थीं।

दुविधा और विरोधाभास पोद्दार के व्यक्तित्व के अहम हिस्से थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता की बातें करते हुए ये विरोधाभास एक बार फिर उभरे। उन्होंने कहा कि सभी धर्मों के अनुयायी एक ही ईश्वर की संतान हैं और सभी को शरण देनी चाहिए, चाहे वो मुसलमान ही क्यों न हो!

परिस्थिति चाहे जैसी भी हो, पोद्दार के पास उससे निपटने के अचूक अस्त्र थे, जैसे भगवान नाम जाप, गीता और रामायण का अध्ययन, और यज्ञ आयोजन। 1940

के पूरे दशक और इसके अगले दशक के कुछ सालों तक व्यक्तिगत और सामुदायिक स्तर पर भगवान नाम जाप के संयोजन को गीता प्रेस ने लगातार बदलते राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं से छुटकारा पाने का एक नुस्खा बना लिया ।

पोद्दार के नवंबर 1946 के लेख में पाठकों की ओर से तीव्र और विविध प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुईं । जिन्हें दिसंबर के प्रकाशन में संक्षेप में प्रकाशित किया । ³¹ इन पाठकों के नाम गुप्त रखे गए थे । लेकिन पोद्दार ने स्वीकार किया कि उनके बहुत-से 'सम्मानजनक मित्रों' ने लेख के कुछ भाग को आपत्तिजनक पाया और भविष्य में ऐसी टिप्पणी न दोहराने का अनुरोध किया । पोद्दार के कलकत्ता के कुछ मित्रों ने बताया कि लेख में उल्लेखित बहुत-सी हिंसा की घटनाएँ वास्तव में हुई ही नहीं हैं लेकिन पोद्दार ने कहा कि उनके द्वारा उल्लेखित सभी घटनाएँ अखबारों से ली गईं और सबूत के तौर पर उन्होंने अखबार की कतरनें भी दिखाने की पेशकश की । उन्होंने लिखा, 'समाचार पत्रों में प्रकाशित घटनाओं में कुछ यदि अतिरंजित और अयथार्थ है तो बहुत ही आनंद की बात है । जितना कम अत्याचार हुआ हो उतना ही अच्छा है ।' इस पर कुछ अन्य लोगों ने यह राय दी कि भले ही कुछ घटनाएँ हुई हों, अच्छा यही होगा कि हम इस बारे में बात न करें, क्योंकि ऐसा करने से शत्रुता फैलेगी । पोद्दार ने इस तरह की बातों का यह कह कर जवाब दिया कि 'मैं इस बात को हृदय से मानता हूँ, परन्तु जिस प्रकार के अत्याचार हुए एवं अब भी हो रहे हैं वे सर्वथा असह्य हैं । उन अत्याचारों का विरोध न करना एक प्रकार की कायरता है ।'

एक दोस्त ने तर्क दिया था कि '(दोष देने के लिए) हिन्दू भी कम नहीं थे, दो समुदायों के बीच एक सक्रिय प्रतिस्पर्धा थी,' पोद्दार ने हिन्दुओं द्वारा की गई हिंसा को मुस्लिमों द्वारा की गई हिंसा की प्रतिक्रिया कहते हुए न्यायसंगत ठहराया । कलकत्ता में पहले दो दिनों तक मुसलमानों का बोलबाला रहा और मुस्लिम लीग का रवैया उदासीन रहा । उन्होंने यह भी कहा कि कलकत्ता से बॉम्बे तक मुसलमानों ने हत्याएँ करने के लिए चाकुओं का इस्तेमाल किया जिसके अधिकांश शिकार हिन्दू हुए ।

एक बहुत ही महत्वपूर्ण और बुजुर्ग विद्वान पोद्दार की बात से सहमत थे जिसमें उन्होंने विभिन्न धर्मों में एक ही ईश्वर के होने की बात कही थी । इनके नाम को भी उजागर नहीं किया गया । पोद्दार से सहमत होते हुए उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि यह वक्त हिन्दुओं में एकता की मांग कर रहा है । उस पत्र में लिखा था कि 'हिन्दुओं को जाग आते ही मुसलमान हिन्दुओं के मित्र बनेंगे । कांग्रेस ने हिन्दुओं को अपनी संगठना करने से रोका और हिन्दू असंगठित रहे ।' पोद्दार के अनुसार यह खत उनके विचारों के समर्थन में था ।

कल्याण में दिसंबर 1946 के एक अंक में एक और बुलेटिन था जिसमें साम्प्रदायिक घटनाओं का ज़िक्र था जो अब और भी तेज़ और व्यापक हो गई थीं । उसका शीर्षक था, 'हिन्दू क्या करें', इसमें मुसलमानों के खिलाफ़ चरम क्रोध ज़ाहिर किया गया और शान्ति बनाए रखने के लिए एक सांकेतिक घोषणा-पत्र भी दिया गया ।

‘वर्तमान विकट परिस्थिति और हमारा कर्तव्य’ और ‘हिन्दू क्या करे’ नामक दो लेखों को फिर से प्रकाशित करने की बहुत मांग उठी। गीता प्रेस ने इन्हें अलग-अलग प्रकाशित भी किया। इनकी एक प्रति का मूल्य दो पैसे था। पाठकों को अनुमति दी कि वे खुद भी इन्हें छपवा कर वितरित कर सकते हैं। आगरा के एक पंडित घासीराम शर्मा ने ‘वर्तमान विकट परिस्थिति और हमारा कर्तव्य’ लेख की 4,000 प्रतियों का निःशुल्क वितरण किया। ³²

सन् 1946 गीता प्रेस के लिए एक और दुर्भाग्यपूर्ण घटना का समाचार लेकर आया। इसके पथ-प्रदर्शक और उम्मीद के केंद्र मदनमोहन मालवीय चल बसे। भारतीय पुरातनपंथी राजनैतिक समूहों के लिए इस मौत की खबर इससे ज़्यादा बेवक़्त नहीं हो सकती थी, जब बंटवारे की सम्भावना तेज़ी से वास्तविक होने लगी। व्यक्तिगत तौर पर पोद्दार के लिए मालवीय सनातन धर्म परंपरा के आदर्श नेता रहे। श्रद्धांजलि के तौर पर गीता प्रेस ने *कल्याण* का एक अंक मालवीय पर प्रकाशित करने का फैसला किया। अपने पूरे जीवनकाल में गीता प्रेस ने किसी व्यक्ति को इतना सम्मान नहीं दिया था। गीता प्रेस में इस *मालवीय अंक* को अक्टूबर महीने में प्रकाशित दिखाया गया जबकि उनकी मृत्यु नवंबर में हुई थी। इसके पीछे तर्क हो सकता है कि चूंकि प्रकाशन को सितंबर-अक्टूबर में हड़ताल का सामना करना पड़ा था और नवंबर के दोहराव से बचने के लिए इसे एक महीने पीछे अक्टूबर में दिखाने का निर्णय लिया गया। पोद्दार के अनुसार सनातन धर्म की दुनिया में मालवीय का बड़ा कद इसका महत्वपूर्ण कारण था। उनके विचार में मालवीय हिन्दुओं के साथ हुए अत्याचार के साक्षी थे जो अंततः एक निराश मौत मरे।

पोद्दार को मालूम था कि आध्यात्मिक विचारधारा वाले पाठक पूछ सकते हैं कि *कल्याण* वर्तमान राजनीतिक घटनाक्रम को इतना स्थान क्यों दे रहा है? उन्होंने तर्क दिया कि *कल्याण* अपने आध्यात्मिक मिशन से भटका नहीं है। जैसे सनातन धर्म में आध्यात्मिकता कर्म का हिस्सा है वैसे ही कर्म आध्यात्मिकता का हिस्सा है। उन्होंने कहा कि गीता प्रेस की ओर से अतिरिक्त मूल्य वहन कर *मालवीय अंक* की 100,000 प्रतियाँ छापना उस अंक के महत्व को दर्शाता है। ³³

मालवीय अंक ने स्वर्गीय नेता के अंतिम सार्वजनिक बयान के खुद के पास होने का दावा किया। *कल्याण* के एक नियमित लेखक भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र ‘माधव’ बनारस में प्रभुदत्त ब्रह्मचारी की रिहाई में मदद के लिए मालवीय के पास गए। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी को रामलीला जुलूस से संबंधित मामले में गिरफ़्तार किया गया था। 28 अक्टूबर को मालवीय ने गोविंद वल्लभ पन्त और रफ़ी अहमद किदवई को टेलीग्राम भेजा जिसमें उन्होंने ब्रह्मचारी को ‘अग्रिम श्रेणी का आध्यात्मिक व्यक्ति बताया’, जिन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है। ³⁴ उसकी तुरंत रिहाई की मांग करते हुए मालवीय ने कहा कि ब्रह्मचारी एक दशक से मौन व्रत धारण किए हुए हैं और ग्रंथों के अध्ययन में लीन हैं। उनका राजनैतिक और साम्प्रदायिक मुद्दों से कोई लेना-देना नहीं है। उनकी

गिरफ्तारी से आध्यात्मिक लोगों को बहुत चोट पहुँची है, और ये हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध में और तनाव पैदा कर देगा। अंततः ब्रह्मचारी को रिहाई मिली।

मालवीय ने एक सार्वजनिक बयान भी जारी किया जिसे पोद्दार ने अपने विशेष अंक में उनके आखिरी बयान के तौर पर प्रकाशित किया। वह बयान उत्तेजक और सख्त था, व पोद्दार *कल्याण* में जो भी लिख रहे थे उसका समर्थन करता था।

मालवीय द्वारा अंतिम क्षणों में ऐसा बयान देना कट्टर हिन्दू राष्ट्रवाद में उनकी दृढ़ आस्था का प्रमाण देता है। उन्होंने हिन्दू नेताओं से कहा कि अपनी मातृभूमि के अलावा अपने धर्म, संस्कृति और सहधर्मियों की सेवा के प्रति अपने दायित्व को निभाएं। मुसलमानों के रवैये को देखते हुए हिन्दुओं में एकता बहुत ज़रूरी थी। उन्होंने 'मुसलमानों द्वारा दिए जाने वाले उग्र भाषणों, भूमिगत मुस्लिम संगठनों के गुप्त साहित्य, मुस्लिम लीग के उत्तेजक रवैये, कलकत्ता की हत्याओं और पूर्वी बंगाल के मुस्लिम गुटों के दंगा करवाने जैसी ओछी हरकतों, हिन्दू आदमी, औरतों व बच्चों के प्रति क्रूर व्यवहार, हिन्दू महिलाओं से बलात्कार और हिन्दू धार्मिक स्थलों पर लूटमार' [35](#) आदि का हवाला दिया।

वहीं दक्षिणपंथी तरीके का आसरा लेते हुए मालवीय ने इस बात पर अफ़सोस ज़ाहिर किया कि कांग्रेस एक राष्ट्रवादी संगठन था और मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक, लेकिन फिर भी दोनों के साथ समान व्यवहार किया गया। 'हिन्दू जाति के अधिकारों को कुचला गया है, उनकी आशाओं पर विकसित होने के समय ही पानी फेर दिया गया है। भारतीय राष्ट्रीयता के नाम पर उनकी संस्कृति और धर्म की सर्वथा अवहेलना की गई है'। मालवीय ने कहा कि हिन्दुओं और अन्य समुदायों का राजनैतिक संरक्षण एकमात्र कांग्रेस के हाथों में था। साम्प्रदायिक, धार्मिक और सामाजिक विकास के मामलों पर अंतिम निर्णय हिन्दुओं के हाथ में ही रहेगा या उनका प्रतिनिधित्व करने वाले किसी संगठन पर! धर्मांतरण को रोकना होगा और जिन्हें जबरन मुसलमान बना दिया गया है उनके लिए कुछ विशेष प्रावधान होने चाहिए।

मालवीय ने 'बहुसंख्यक हिन्दुओं' को कट्टर नज़रिया रखने की नसीहत दी। 'जो हिन्दुओं को शान्ति के साथ नहीं रहने देना चाहते उनके साथ किसी प्रकार सहिष्णुता नहीं हो सकती, यदि यही धर्म की पुकार है तो अवश्य ही उसमें धार्मिक दृढ़ता की गूँज होनी चाहिए। हिन्दू अपने धर्म को मरने देना नहीं चाहते। अपनी संस्कृति को मिटने देना नहीं चाहते और न अपनी संख्या को घटने देना चाहते हैं, यदि हिन्दू अपनी रक्षा नहीं करेंगे तो वे मर जाएँगे।'।

मालवीय ने भड़काऊ भाषणों और लेखन के लिए मुसलमान नेताओं को दोषी ठहराया। उन्होंने कहा कि ग़ज़नफ़र अली ख़ान व अन्य मुस्लिम नेताओं ने ग़ैर-ज़िम्मेदार लेखों के ज़रिए हिन्दुओं को चुनौती दी है। उन्होंने कहा कि मुस्लिम लीग के एक भी नेता ने बंगाल में हुई घटना की आलोचना नहीं की। मालवीय ने हिन्दुओं को संदेश दिया कि केवल अपने धर्म और संस्कृति के लिए नहीं बल्कि अपने देश, अपनी

मातृभूमि के लिए संगठित होना होगा। मुसलमानों के लिए संदेश था कि पहले की तरह मुसलमान शान्तिपूर्वक हिन्दुओं के साथ रह सकते हैं बशर्ते कि वे हिन्दू धर्म का सम्मान करें और वायदा करें कि वे पूजाघरों पर हमला नहीं करेंगे, धार्मिक स्वतंत्रता को सुनिश्चित करेंगे और जीवन में शुद्धता व स्त्रियों की शुचिता का ख्याल रखेंगे।'

मालवीय का वक्तव्य सन् 1948 में रामराज्य परिषद की स्थापना करने वाले स्वामी करपात्री महाराज के वक्तव्य के आगे फीका ही पड़ा। ³⁶रामराज्य परिषद भारत की सबसे रूढ़िवादी पार्टियों में से थी और बाद में जनसंघ में जाकर मिल गई थी। *मालवीय अंक* में छपे करपात्री महाराज के लेख में राजनीतिक वर्ग के खिलाफ़ यह कहते हुए आक्षेप लगाया था कि वह लोगों को परंपरागत समाधानों से दूर ले जा रहा है। उन्होंने हिन्दुओं की निष्क्रियता को ललकारा। 'जान पड़ता है हमारे खून में गरमाहट रह ही नहीं गई है, जो वीर आर्य संतान होते हुए भी आज हम अत्याचार और अन्याय सहन कर रहे हैं हमारे धर्म सभ्यता और संस्कृति पर चतुर्दिक प्रहार हो रहे हैं। अनादिकालिक अपने ही देश में विधर्मी तथा विदेशी बनाने के षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं।'

³⁷

पोद्दार ने इस तरह के आह्वानों को हवा दी। यूँ तो पोद्दार यह मानते थे कि सनातन हिन्दू धर्म कभी नष्ट नहीं हो सकता लेकिन फिर भी पोद्दार ने कहा कि इसे बचाए रखने के लिए कई अग्नि परीक्षाओं से गुज़रना होगा। उन्होंने इस्लाम के एक्य का सामना करने के लिए हिन्दुओं में एकता के अभाव की ओर संकेत किया। उन्होंने 99 प्रतिशत हिन्दुओं वाली कांग्रेस का खुद को हिन्दू संगठन की बजाय राष्ट्रवादी कहने पर आश्चर्य व्यक्त किया। हिन्दू महासभा को कमज़ोर करने, ज़मींदारी प्रथा को खत्म करने की जन घोषणा करने, निजी उपक्रमों को अपने अधीन लेने, अस्पृश्यता, विवाह व सहभोजन सहित जातिगत भेदभाव को समाप्त करने जैसी कांग्रेस की सभी कोशिशों ने उन्हें और भी क्रोधित कर दिया। पोद्दार ने कहा कि इस तरह के वायदों ने हिन्दू एकता को नुकसान पहुँचाया है। व्यक्तिवाद को मज़बूती देने के लिए अंग्रेज़ी शिक्षा को भी ज़िम्मेदार ठहराया गया।

पोद्दार के अनुसार सन् 1927 में आदि हिन्दू महासभा की स्थापना उन राजनेताओं द्वारा की गई जो हिन्दुओं के भीतरी तनाव को बाहर लाकर जनता के सामने रखने के लिए प्रयासरत थे। ³⁸हो सकता है कि आदि हिन्दू महासभा द्वारा सनातन हिन्दू धर्म के सामाजिक विकास के मॉडल को खुलेआम ललकार देना पोद्दार को चुभ गया हो। आदि हिन्दू महासभा ने दावा किया कि 'अछूत भारत के मूल निवासी थे', 'हिन्दुओं के सामाजिक सुधार को नकार दिया' और 'दलितों के लिए अलग निर्वाचन मंडल की मांग' की। ³⁹पोद्दार ने कहा कि इस तरह के मतभेदों का जिन्ना ने नाजायज़ फ़ायदा उठा लिया। बंगाल के दलित नेता जोगेंद्र नाथ मंडल मुस्लिम लीग से जुड़ गए। (बाद में वे पाकिस्तान के पहले क़ानून व श्रम मंत्री बने) इस तरह सत्ता और पैसों का लालच हिन्दुओं में कड़वाहट और विभेद पैदा कर रहा था।

मालवीय के निधन से पहले बिहार में मुसलमानों के खिलाफ भीषण हिंसा हुई। मुज़फ़्फ़रपुर के पहले दंगे में चौदह मुसलमान मारे गए और ख़बर थी कि 'अराजक हिन्दुओं की भीड़ ने मुसलमानों का खात्मा करने की ठान ली है।' ⁴⁰ मालवीय अंक ने इसे बंगाल में जो हुआ उसकी प्रतिक्रिया कह कर जायज़ ठहराया। ⁴¹ हालाँकि पोद्दार ने यह माना कि बिहार के हिन्दू 'पागलपन' की हद तक चले गए थे। लेकिन फिर भी उन्होंने हिन्दुओं की इस हिंसा में भी धर्माचरण ढूँढ़ लिया और कहा कि 'बिहार में न बलात्कार हुआ, न बलपूर्वक विवाह किया गया, न नारी अपहरण हुआ और न किसी का बलात् धर्म परिवर्तन किया गया। हुआ हत्याकांड, लूटपाट और अग्नि लीला। पूर्व बंगाल के अत्याचार की तुलना में कुछ भी न होने पर भी था तो यह भी मानवता का पतन ही।' पोद्दार अब अपने चिर-परिचित दोहरे व्यक्तित्व पर उतर आए, कभी वे हिन्दुओं के व्यवहार की आलोचना करते थे, कभी समर्थन। वे अब सरकारों और उनकी कार्यवाहियों के मतलब निकाल रहे थे, बंगाल के बारे में उन्होंने कहा कि गवर्नर बॉरोज और मुस्लिम लीग ने मिल कर दंगे को सतर्क योजना के तहत अंजाम दिया था जबकि बिहार सरकार हत्याओं को रोकने के लिए झट से बीच में कूद पड़ी। जवाहरलाल नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण जैसे राष्ट्रीय नेताओं और मुस्लिम नेताओं ने झटपट हिंसा स्थलों का दौरा भी किया। 'पंडित नेहरू जी और श्री राजेंद्र बाबू ने यह भी कहा कि पहले हम लोगों को मार कर फिर मुसलमानों को मारिये। यद्यपि मियाँ जिन्ना आदि से ऐसा कहने करने की आशा नहीं की जा सकती थी। वे लोग केवल बिहार में ही नहीं पूर्व बंगाल में भी ऐसी ही चेतावनी देते।'

पोद्दार ने आरोप लगाया कि बिहार हिंसा को दबाने के लिए सरकार ने ब्रिटिश और मुस्लिम सेना कर्मियों से मदद लेकर क्रूरता से दमन किया। स्वामी करपात्री महाराज के अखबार *सन्मार्ग* में छपे हिन्दू महासभा के नेता जगत नारायण लाल को पोद्दार ने उद्धृत किया (जगत नारायण लाल बाद में कांग्रेस से जुड़ गए और आज़ादी के बाद बनी पहली बिहार सरकार में मंत्री बने)। लाल ने लिखा था कि नौसा (अब वैशाली जिले में) हुई गोलीबारी में कथित रूप से वृद्ध, महिलाएँ, और यहाँ तक बिस्तर पर पड़े बीमार भी मारे गए। लाल ने इस घटना की तुलना सन् 1919 में अमृतसर में हुए जलियांवाला बाग हत्याकांड से की।

पोद्दार ने गांधी के नोआखली दौरा कर 'हिन्दुओं के आँसू पोछने' के निर्णय की यह कहते हुए आलोचना की कि हिन्दुओं के खिलाफ़ साज़िश रचने वाले मुस्लिम लीग के यही नेता गांधी के साथ नज़र आते हैं। 'महात्मा जी सोहरावर्दी और उसकी सरकार का खुले तौर पर विरोध नहीं करते। और अभी उस दिन तक भी सोहरावर्दी के सभापतित्व में शान्ति समिति बनाने का प्रस्ताव सुनते हैं और शायद उसका समर्थन भी करते हैं। पर शायद इसमें प्रभावशाली हिन्दुओं को शामिल कराने का वायदा भी करते हैं। बंगाल में जो हुआ (क्या) उसे हिन्दू भूल जाएँ? रही धमकी और फौजी गोलियों से

भूनने की बात सो यदि तीस करोड़ गोलियों से अपने भुनवाने के लिए तैयार हो जाएँगे तो गोलियां भी नहीं रहेंगी ।’

श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने भी *मालवीय अंक* में गांधी की आलोचना की थी । उन्होंने कहा कि उनकी ओर से अनशन का निर्णय हालात का हल देने के बजाय उसे और उलझा सकता था । जिन्ना को बिहार से सबक सीखना चाहिए । ‘वे समझ जाएँ कि एक क्षेत्र में मुसलमानों की ग़लत कार्रवाई से दूसरी जगह भयानक प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकती है । यदि वे समझ जाएँगे तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चंगुल से अपने को मुक्त कर दोनों सम्प्रदायों के बीच सौहार्द स्थापित करने के लिए तैयार हो जाएँगे ।’ ⁴²

पोद्दार के लिए बड़ा खतरा अखिल इस्लामवाद था । उन्हें विश्वास था कि पाकिस्तान की मांग अन्तर्राष्ट्रीय आंदोलन का एक हिस्सा है । उन्होंने एक प्रस्ताव का उल्लेख किया जिसमें जिन्ना भारत में एक बैठक आयोजित करने पर विचार कर रहे थे । इसमें ईरान, इराक़, सऊदी अरब, सीरिया, लेबनान सभी मुस्लिम देशों से प्रतिनिधि शामिल होने थे । ‘जिन्ना कहते हैं इन देशों के निवासियों से बहुत-सी बातें हमारे समान हित की हैं । और इस सम्मेलन से परस्पर सांस्कृतिक, और सैद्धांतिक मतैक्य तथा प्रगति के लिए बहुत लाभ हो सकता है ।’ ⁴³ पाकिस्तान की मांग रखने वालों में से चौधरी रहमत अली का नाम लेते हुए पोद्दार ने स्पष्ट किया कि वे महज़ दोनों समुदायों के बीच भाईचारे को बढ़ाने का ओछा दिखावा करते हैं । एक तरफ़ हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात और दूसरी तरफ़ पाकिस्तान की उनकी मांग, ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं ।

हिन्दू महिलाओं की गुमशुदगी एक ज्वलंत मुद्दा था । *मालवीय अंक* ने दावा किया कि बंगाल से अपहृत 10,000 महिलाओं को बचा लिया गया है जबकि 20,000 महिलाएँ अब भी मुस्लिम घरों में हैं । पोद्दार ने कहा कि बुर्के में छिपा दिए जाने के कारण उन महिलाओं को ढूँढ़ निकालने का काम मुश्किल हो गया है । बंगाल की पढ़ी लिखी महिलाएँ उनकी तलाश कर रही हैं और श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने उनकी सफलता की उम्मीद जताई । महिलाओं से कहा गया कि सरकारी अधिकारियों की मदद लें ‘पाकिस्तान बने हुए उस इलाक़े में सफलता के साथ काम करना संभव नहीं है ।’ ⁴⁴ *मालवीय अंक* ने कहा कि अगर पुलिस सुरक्षा मिल जाये तो महिला स्वयंसेवक बुर्का पहनने वाली महिलाओं के बीच से हिन्दू महिलाओं को तलाश लेंगी ।

इस अंक में दो हिन्दू महिलाओं के पत्र शामिल थे जिन्हें *कल्याण* में नोआखली के खौफ़नाक समय को झेलने और उससे निकल कर आने वाली ‘हिन्दू देवियाँ’ कहा गया । ⁴⁵ इन पत्रों की शुरुआत में एक आत्मतुष्ट व मात्र प्रतीकात्मक संपादकीय टिप्पणी जोड़ी गयी कि पाठक उत्तेजित होकर बदला लेने की न सोचें बल्कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए काम करें ताकि दोनों समुदायों का शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व बना रहे ।

पहला पत्र ‘अमर बहन’ का लिखा हुआ था जिसमें स्त्रियों को यह याद दिलाया गया कि पुरुष को साहसी बनाने की ज़िम्मेदारी स्त्रियों की थी और इसके साथ हिन्दू

समाज की सेवा करने के लिए सोलह रास्ते सुझाए गए थे । पहला, कि वे परिवार में पुरुष को यह मनवा लें कि हिन्दू महिलाएँ खतरे में हैं । पुरुष को स्त्री की मदद 'तन' और 'धन' से करनी चाहिए । वरना महिलाओं के 'धन' यानी सदाचार... आदि को लूट लिया जाएगा । यह ज़िम्मेदारी भी महिलाओं की थी कि वे पुरुषों के भीतर से दंगों के प्रति डर को खत्म करके उन्हें निडर होकर दंगों का सामना करने के लिए तैयार करें । साथ ही स्त्री से यह अपेक्षा थी एक स्त्री को खुद अपने सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ हो । अगर यह संभव नहीं हो तो एक स्त्री को मलेच्छ (अनार्य/मुसलमान) के सामने हार नहीं माननी चाहिए । 'ऐसी किसी स्थिति में बेहतर होगा कि वे खुद अपनी जान ले लें या घर के ही किसी पुरुष को ऐसा करने के लिए कहें ।' महिलाओं को कहा गया कि मेकअप न किया करें और बिना परिवार के किसी पुरुष सदस्य के बाहर न निकलें । और अंततः अपने करीबियों व प्रिय लोगों से उपहार लेते हुए वस्तुओं की जगह नक़द मांग लें क्योंकि नक़द राशि मुसीबत के समय सामाजिक राहत के लिए मददगार सिद्ध होगी ।

दूसरा पत्र 'बंग कन्या की मर्मस्पर्शी अपील' में नोआखली में बलात्कार का शिकार हुई महिला की आत्मकथा थी । 'मेरे शील को उस आदमी ने भंग कर दिया । वो लाख रोकने पर नहीं रुका । मैं चाहती थी कि वो मेरी जान ले लें, लेकिन उन्होंने मेरा धर्म, मेरी इज्जत और मेरा सब कुछ ले लिया । मेरे पति और मेरे पिता को मेरी आँखों के सामने मार दिया गया । मेरा बच्चा मुझसे छीन लिया । मेरे पिता, मेरे श्वसुर और मेरे बच्चे की आँखों के सामने मुझसे अमानुषिक बलात्कार किया गया ।'

शंकराचार्य आदि साधुओं से गुहार करते हुए उसने कहा कि जब उसे मदद चाहिए थी तब वे कहाँ थे, उनका धर्म कहाँ था? उसके बाद सभी जातियों के मर्दों को धिक्कारते हुए उसने सवाल किया कि अपनी बहन की पीड़ा सुन कर उनका खून क्यों नहीं खौल उठता? उसने सिखों का भी आह्वान किया (बहादुरी के लिए प्रसिद्ध होने के बावजूद उसकी उम्मीदों पर चूकने के कारण), मदनमोहन मालवीय (उसने सोचा कि मालवीय उनकी स्थिति का समाचार सुनने के बाद मूर्छित हो गए), और उसके बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सभी छात्रों से भी, जिन्होंने उस जैसी महिला की मदद के लिए कुछ नहीं किया । सबसे कड़वे शब्द गांधी के लिए थे जिन पर आरोप लगाते हुए कहा, 'तुम्हारा कलेजा पाषाण से भी अधिक कठोर है ।' तुम्हारे जीवित रहते मेरी यह दुर्दशा! तुमने तो बंगाल की दशा देखी भी है । तुम्हें शर्म नहीं आती शान्ति का असमय सन्देश देते? तुम्हें ईश्वर का जरा भय नहीं रहा जो तुम मुझ जैसी निरीह अबलाओं पर अत्याचार करने वाले दुर्वृत्तों के साथ संधि की चर्चा छेड़कर मेरे साथ निष्ठुर उपहास कर रहे हो?' नेहरू, पटेल, सुभाषचंद्र बोस, अरविंद घोष, राम और हनुमान के भक्तों को भी इसमें नहीं बख्शा गया । महिला ने हिन्दू पुरुषों को 'नपुंसक' का तमगा दिया और हिन्दू महिलाओं को मर्दों पर अपनी निर्भरता खत्म कर एकजुट होने को कहा ।

यह पत्र हिन्दू महासभा, गीता प्रेस और अन्य प्रकाशन संस्थानों की सहभागिता का एक ज्वलंत उदाहरण है । ये सभी संस्थान हिन्दू राष्ट्रवाद के विचार का समर्थन

करते थे । संयुक्त प्रांत की सरकार *मालवीय अंक* में की गई इस अपील पर तुरंत ही सतर्क हो गई । आपराधिक जांच विभाग को इलाहाबाद में हिन्दू महासभा के मंत्री द्वारा प्रकाशित और मुद्रित ऐसे ही विवरण वाला एक और पर्चा मिला जिसका वितरण 13 दिसंबर 1946 को किया गया था । राजनीतिक गतिविधियों पर सीआईडी की साप्ताहिक रिपोर्ट में यह कहा गया था कि ‘हिन्दुओं, विशेषकर हिन्दू महिलाओं से यह अपील की गई थी कि मुस्लिमों के अत्याचार का विरोध तलवारों से करें ।’ ⁴⁶

सीआईडी की स्पेशल ब्रांच के एफ आर स्टॉकवेल ने *कल्याण* के विशेष अंक की एक प्रति संयुक्त प्रांत के गृह सचिव राजेश्वर दयाल को भेजी और इसे गैर-क्रान्ती क्रार दिए जाने का सुझाव दिया । उन्होंने दयाल को विशेष तौर पर बताया, ‘भारत में *कल्याण* की प्रसार संख्या बहुत ज़्यादा है और इस तरह बताए गए लेख का प्रभाव बहुत बुरा हो सकता है ।’ ⁴⁷

स्टॉकवेल का पत्र मिलने के एक दिन के भीतर ही राजेश्वर दयाल ने एक आदेश जारी कर दिया । इस बात पर सहमति जताते हुए कि ‘अपील का असर निस्संदेह दुर्भाग्यपूर्ण हुआ होगा’, उन्होंने कहा कि ‘पहले से ही प्रसारित हो चुके अक्टूबर अंक के खिलाफ़ क़दम उठाने का कोई फ़ायदा नहीं होगा । इसकी जगह यह ठीक रहेगा कि जिलाधीश (गोरखपुर) की ओर से संपादक को चेतावनी दी जाये कि भविष्य में ऐसी कोई भी भड़काऊ अपील छापने से बचें ।’ ⁴⁸ दयाल ने स्वयं इस मामले के संदर्भ में जिलाधीश को लिखा । ⁴⁹

दयाल का आदेश जारी होने और इसके क्रियान्वयन की अवधि में सीआईडी की स्पेशल शाखा ने सूचित किया कि कैलाश प्रेस, इलाहाबाद से ‘*बंगकन्या की मर्मस्पर्शी अपील*’ शीर्षक से भड़काऊ पर्चों की प्रतियाँ प्रसारित की जा रही हैं ।’ इस पर्चे में *कल्याण* के पत्र के कुछ हिस्से थे । सीआईडी ने बताया कि कैलाश प्रेस की तलाशी लेने के बाद इस पर्चे की 4,000 प्रतियाँ पुलिस ने अपने क़ब्ज़े में ले ली हैं । यह पता चला कि हिन्दू महासभा के एक स्थानीय नेता विश्वनाथ इसके प्रकाशन के लिए ज़िम्मेदार हैं और इसी तरह के पर्चे इलाहाबाद के सेन्ट्रल प्रेस से भी प्रकाशित किए गए थे । ⁵⁰

स्टॉकवेल ने एक बार फिर दयाल को यह सुझाव देते हुए लिखा कि ‘*कल्याण* के उस अंक को अब गैर-क्रान्ती क्रार दे देना चाहिए और या तो प्रकाशक और मुद्रक को अभियुक्त बना लेना चाहिए या फिर उनसे भविष्य में साम्प्रदायिक तौर पर आपत्तिजनक ऐसा कोई भी लेख नहीं प्रकाशित करने के बदले गारंटी के तौर पर सिक्योरिटी जमा करवानी चाहिए ।’ स्टॉकवेल का विचार था कि ‘प्रतिबंध इस तरह की सामग्री का प्रकाशन रोकने के लिए अच्छा उपाय सिद्ध होगा क्योंकि इससे प्रकाशक और मुद्रक यह जान जाएँगे कि साम्प्रदायिक रूप से आपत्तिजनक सामग्री छापने के बाद उन्हें छोड़ा नहीं जाएगा ।’ ⁵¹

अभी संयुक्त प्रांत का गृह विभाग विचार-विमर्श कर ही रहा था कि तभी दयाल को अपने बॉम्बे सरकार के साथी जी सी देवरे का पत्र यह कहते हुए मिला कि उसी

‘अपील’ को पूना के *मराठा* के 13 दिसंबर 1946 के अंक में प्रकाशित किया गया है। देवरे ने दयाल को सूचित किया कि बॉम्बे सरकार ने *मराठा* के खिलाफ़ इंडियन प्रेस (इमरजेंसी पावर्स) एक्ट, 1931 के तहत कार्रवाई करने का प्रस्ताव दिया है और वे यह जानने चाहते हैं कि क्या उत्तर प्रदेश सरकार भी *कल्याण* के खिलाफ़ ऐसा कोई क़दम उठाने पर विचार कर रही है? ⁵²

बहरहाल, दयाल ने बताया कि ‘*कल्याण* के संपादक को इसके लिए पहले ही चेतावनी दी जा चुकी है, मैं नहीं मानता कि उनके खिलाफ़ आगे कोई कार्रवाई की जाने की आवश्यकता है।’ ⁵³ इसके कुछ ही दिन बाद इलाहाबाद से हज़ारों की संख्या में ऐसे पर्चे मिले जिनमें उसी अपील को छापा गया था ⁵⁴ लेकिन इस संदर्भ में दयाल का आदेश अपरिवर्तित रहा।

कल्याण के लेख ने संयुक्त प्रांत सरकार को चिढ़ाना जारी रखा; स्वतंत्रता से महज़ चार महीने पहले ग्वालियर से इसकी एक बुकलेट प्रकाशित होने की खबर आई। ⁵⁵

राजनीति पर लौटते हुए *मालवीय अंक* ने नोआखली की एक तस्वीर पेश की जहाँ सत्ता और सारे आर्थिक नियन्त्रण मुसलमानों के हाथ में थे। *मालवीय अंक* में एक खबर के हवाले से यह छापा गया कि धर्मांतरित हिन्दू मुसलमानों जैसे कपड़े पहन रहे हैं और उन्होंने तय किया है कि वे अदालत में अर्जी देंगे कि उन्होंने अपने आप ‘हिन्दुवाद के अँधेरे’ को छोड़ने और अपने अंधेपन को दूर करने के लिए इस्लाम की पवित्र रोशनी को कुबूल करने का फ़ैसला किया है। इसे पाकिस्तान बनने की शुरुआत कहते हुए इस अंक में यह लिखा गया कि ‘नए हथकंडे अपनाए जा रहे हैं और मुस्लिम लीग बाहर यह कहती फिर रही है कि ये सभी धर्मांतरण स्वेच्छा से हो रहे हैं।’ बहुत-से धार्मिक नेताओं ने आगे बढ़ हिन्दुओं के धर्मांतरण पर अपने विचार रखे। इस्लाम को स्वीकार कर चुके हिन्दुओं को कहा गया कि सारे विधि-विधान से उनकी ‘शुद्धि’ के बाद उनका पुनः स्वागत किया जाएगा। ⁵⁶

यह वह समय था जब एक प्रशासनिक निर्णय तक को साम्प्रदायिक विभेद के संदर्भ से परे रख कर नहीं देखा जा रहा था। बॉम्बे सरकार द्वारा अस्पृश्यता को प्रतिबंधित किए जाने, हिन्दू कोड बिल लाने और तलाक़ क़ानून के प्रस्तावित विधेयक ने पोद्दार को क्रुद्ध कर दिया। उन्होंने रेल मंत्री अशफ़ाक़ अली को बुरा-भला कहा। पोद्दार ने कहा कि रेल मंत्री द्वारा हिन्दू और मुसलमान यात्रियों के लिए अलग से चाय, पानी और खाने के प्रयोजन को समाप्त करना हिन्दू धर्म की शुचिता पर हमला है। ⁵⁷

हिन्दुओं के लिए आह्वान

पोद्दार ने हिन्दू एकता और रक्षा के लिए *मालवीय अंक* में *द्वादश साधन* (बारह सूत्री साधन) को विस्तार से समझाया। ⁵⁸ उनका पहला सुझाव यह था कि एक अखिल भारतीय संगठन बनाया जाये जो सभी जातियों और सम्प्रदायों के हिन्दू-हितों की रक्षा

करे । दूसरे में उन्होंने सनातन हिन्दू धर्म के मूल्यों को प्रचारित करने में मीडिया की भूमिका पर ज़ोर दिया । पोद्दार ने देश के अलग-अलग हिस्सों के लिए विविध भाषाओं में अखबारों के प्रकाशन का सुझाव दिया । उन्होंने बंगाल के हिन्दुओं पर हुए अत्याचार को प्रमुखता से उठाने के लिए कलकत्ता के अंग्रेज़ी दैनिक *आनंद बाज़ार पत्रिका* की सराहना की । इसी तरह हिन्दी दैनिक *भारत*, *आज*, *संसार* और *प्रताप* की तारीफ़ की । उन्होंने कहा कि बनारस का *सन्मार्ग* एकमात्र ऐसा अखबार था जो हिन्दू आस्था को प्रचारित कर रहा था । पोद्दार का सपना था कि *सन्मार्ग* जैसे अखबार सभी बड़े शहरों और हिन्दी, अंग्रेज़ी व अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में हों । यहाँ पोद्दार ने मुस्लिम लीग की मंशा का मुद्दा यह कहते हुए उठाया कि मुसलमानों की यह शीर्ष पार्टी बॉम्बे से नौ अखबार निकालने वाली है ।

धनी हिन्दुओं से कहा गया कि हिन्दुओं और हिन्दूवाद की रक्षा, इसके सम्मान और वृद्धि के लिए उदारता से खर्च करें । पोद्दार ने एक देशव्यापी रक्षक दल की कल्पना की । इस हिन्दू सैन्य दल में पचास लाख युवा शामिल किए जाने थे । इस संदर्भ में पोद्दार ने आरएसएस के काम को सराहा । हिन्दू युवाओं को इस तरह के कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए कहा । संघचालकों को हिन्दू धर्म के मानवीय पहलू, इसके दर्शन और इसकी सर्वोच्चता की रक्षा पर ज़ोर देने को कहा गया ।

घुमावदार बात करने के फैशन में पोद्दार ने अपने पाठकों से कहा कि दिल्ली में दिए गए जिन्ना के भाषण में ‘मुसलमान’ की जगह ‘हिन्दू’ रखकर उसे पढ़ें, ‘हम लड़ाई-झगड़ा करना नहीं चाहते हैं, हम शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं’ । पर आक्रमण से बचने के लिए हमें पर्याप्त शक्ति संग्रह कर लेना चाहिए कि दूसरे लोगों को यह अनुभव हो जाये की यदि हम मुसलमानों के विरुद्ध कुछ भी करेंगे तो हमारा ही अधिक नुकसान होगा और इस प्रकार हम अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारेंगे ।’

हिन्दू महिलाओं को अनावश्यक बाहर न निकलने, बच्चों को घर के भीतर रखने, अपने साथ चाकू रखने और हर पल सचेत रहने को कहा गया । लोगों को देर तक फ़िल्म न देखने जाने की सलाह दी गई । हिन्दू उद्योपतियों और मकानमालिकों को अपने कर्मचारियों के साथ उदार व्यवहार और परिवार की तरह पेश आने को कहा गया ताकि संकट के समय वे शत्रु न बन पड़ें । उन्हें यह भी कहा गया कि घर, दफ़्तर तथा फैक्टरियों में सुरक्षाकर्मी और ड्राइवर के लिए केवल हिन्दुओं को भर्ती करें । पोद्दार ने मंदिरों, आश्रमों और मठों को मज़बूत किए जाने की सलाह दी ।

सन् 1946 के उत्तेजक साम्प्रदायिक माहौल में *कल्याण* के दिसंबर अंक में ‘हिन्दू क्या करें’ लेख और दिसंबर में ही छपे *मालवीय अंक* ने काफ़ी विवाद फैलाया तथा शासन का ध्यान खींचा । बहुत हिचकिचाहट के बाद फ़रवरी 1947 में बिहार और संयुक्त प्रांत की सरकार ने इन दोनों अंकों पर प्रतिबंध लगाने का निर्णय लिया ⁵⁹—तब तक इनकी लाखों प्रतियाँ बंट चुकी थीं और गीता प्रेस ‘हिन्दू क्या करें’ को अलग से भी

छाप चुका था। यही नहीं बहुत-से अमीर हिन्दू पाठक इसे अपने खर्चे से छपवा कर निःशुल्क वितरित भी कर रहे थे।

भारतीय दंड संहिता की धारा 153-ए के तहत साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाने के आरोप में लगे इस प्रतिबंध ने पोद्दार को चौंका दिया। उन्होंने मार्च 1947 के *कल्याण* अंक में दोनों राज्यों की कांग्रेस सरकार द्वारा समस्या के व्यापक रूप को न देख पाने के लिए खरी-खोटी सुनाई। उन्होंने कहा कि दोनों ही अंकों का लक्ष्य साम्प्रदायिक सौहार्द था और उसी को साबित करने के लिए उद्धरण चुने गए थे। पोद्दार ने फ़ैसले में हुई देरी के लिए भी सरकार का माखौल उड़ाया। उन्होंने लिखा कि 'पता नहीं इससे *कल्याण* के किस अंक का प्रभाव घटेगा या बढ़ेगा!' ⁶⁰ आगे उन्होंने सवाल उठाया कि क्यों मुस्लिम लीग के प्रकाशन 'केवल साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने के लिए निकाले जाते हैं' और फिर भी उन पर आंच नहीं आती। 'ऐसा इसलिए कि वे मुसलमान हैं और उनसे पद-पद पर डरकर चलना है?' सच यह है कि *कल्याण* के खिलाफ़ क्रदम मुसलमानों को खुश करने के लिए उठाए गए बहुत-से क्रदमों में से एक है। पोद्दार ने कहा कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सरकार विरोधी लिखने पर भी औपनिवेशिक सरकार ने *कल्याण* पर कोई कार्रवाई नहीं की लेकिन आज आज़ादी की पूर्व संध्या पर भारतीयों की एक सरकार ने दो अंकों पर प्रतिबंध लगा दिया।

पोद्दार ने इस प्रतिबंध को ईश्वरेच्छा के रूप में लिया। गीता प्रेस ने न इसके लिए खेद प्रकट किया और न इसकी शिकायत करने की इच्छा व्यक्त की। वे सन् 1947 के वार्षिकांक की योजना में जुट गए। यह *मार्कंडेय* और *ब्रह्म पुराण* केंद्रित 725 पृष्ठों का विशाल अंक था। पूरी तरह विषय केंद्रित पिछले वार्षिकांकों से भिन्न इस अंक में सन् 1947 की राष्ट्रीयता व हिन्दू-मुस्लिम हिंसा से जुड़े कुछ प्रसंगों के लिए जगह बनाई गई थी।

बहस शुरू करने के लिए आरएसएस प्रमुख एम एस गोलवलकर के भाषण से एक अंश उद्धृत करने से बेहतर और क्या हो सकता था! भाषण '*सच्चा राष्ट्रवाद*' नाम से था जिसमें उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद की उनकी व्याख्या और बाहरी प्रभावों द्वारा राष्ट्र की अवधारणा को पहुँची क्षति को सामने रखा था। ⁶¹ गोलवलकर ने कहा कि आरएसएस का लक्ष्य हिन्दुओं को संगठित करना है। संगठित करने के बाद शक्तिशाली हिन्दुओं की समृद्धि के लिए काम करना है। कुछ लोग इसकी गहराई नहीं समझेंगे लेकिन इतिहास को लेकर गोलवलकर का विचार और हिन्दू सर्वोच्चता के लिए उनके निर्देश अपने दृढ़ निश्चय में डराने वाले थे।

गोलवलकर का मानना था कि भारत की सबसे बड़ी समस्या राष्ट्रवाद का निर्माण है। हालाँकि लक्ष्य एक राष्ट्र का निर्माण करना था, लेकिन इसका ढाँचा बाहर से लिया गया। दूसरी गलती राष्ट्रवाद के सूत्रीकरण में थी। गोलवलकर के अनुसार आर्यों के आक्रमण के सिद्धांत की स्वीकार्यता और भारत का बहुत-से राष्ट्रों में मिलकर बनने की अवधारणा एक समस्या है। उन्होंने कहा कि इसी मान्यता ने दूसरी बड़ी भूल को जन्म

दिया। उनके अनुसार यह कहा गया कि, 'भारत वर्ष एक महाद्वीप है। इसमें एक राष्ट्र नहीं अनेक राष्ट्र रहते हैं। हमने भी यही कहना शुरू कर दिया तथा अनेक राष्ट्रों का निवास स्थान मान कर बाहर के राष्ट्रों ने इस प्रश्न को जैसे सुलझाया वैसे ही हम भी सुलझाने लगे। हमने देखा कि अमेरिका ने एक फेडरेशन बनाया है इसीलिए हमारी भी फेडरेशन बनाने की इच्छा हो गई। फलस्वरूप हम अपने जीवन में प्रादेशिक राष्ट्रवाद को ले आए और वह भी अत्यंत विकृत रूप में।' उनके विचार में भारत में औपनिवेशिक शासन के विरोध में बनी राष्ट्रीयता लम्बी नहीं टिकेगी: 'इस प्रकार बाहर से स्फूर्ति प्राप्त करने की वृत्ति अभारतीय तथा अराष्ट्रीय है, बाहर से स्फूर्ति प्राप्त करना, बाहर के आदर्श ग्रहण करना तो सबसे बड़ी एक्स्ट्राटेरीटोरियल लॉयलिटी (अलौकिक आचरण) है। यह तो भीषण राष्ट्रद्रोह है। आत्मघात है।'।

कल्याण में नोआखली संबंधित विवाद जनवरी 1947 के अंक तक अनवरत चलता रहा। इस अंक में ऐसी आठ घटनाओं का ज़िक्र किया गया जहाँ दैवीय हस्तक्षेप ने बंगाल में मुसलमानों द्वारा किए जा रहे आक्रमण से हिन्दुओं को बचाया। ⁶² एक तरफ़ भगवान हिन्दुओं को बचा रहे थे तो वहीं कल्याण ने ऐसी भी बहुत-सी घटनाओं का ज़िक्र किया जब मेरठ के आस-पास हिन्दू मुसलमानों के बचाव में आए। एक बहुश्रुत घटना में यह बताया गया कि काले खां और मुहम्मद उमर नाम के दो मुसलमानों ने एक हिन्दू महिला की संपत्ति को दंगाइयों के हाथों लुटने से बचाया। ⁶³

इसके बाद इसमें देश की वर्तमान स्थिति पर और 'हिन्दुओं को क्या करना चाहिए' विषय पर एक विस्तृत रिपोर्ट भी थी। ⁶⁴ संदेश यह था कि केंद्र सरकार पर पूरी तरह निर्भर न रहा जाये क्योंकि मुस्लिम लीग शासित राज्यों में इसकी पहुँच न के बराबर रह गई थी, विशेषकर नागरिक सुरक्षा (हिन्दू को लक्षित) के मामले में। इस रिपोर्ट ने हिन्दुओं को अपनी रक्षा आप करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसमें कांग्रेस के मेरठ सत्र में दिए गए पटेल के भाषण को भी उद्धृत किया गया था जहाँ उन्होंने मुस्लिम लीग के नेताओं को चेतावनी देते हुए कहा था, 'तलवार का जवाब तलवार से दिया जाएगा' और यह भी कि 'पकिस्तान की प्राप्ति लूट, हत्या, अग्निकांड, धर्मान्तरण और बलात्कार से हरगिज़ नहीं हो सकती।'।

हिन्दू और मुसलमान शरणार्थी कैम्पों की स्थितियों की तुलना करते हुए कल्याण ने लिखा कि बिहार में मुसलमानों के लिए लगे कैम्पों की स्थिति बेहतर है क्योंकि उन्हें मुस्लिम लीग के स्वयंसेवी चला रहे हैं। सुचेता कृपलानी को उद्धृत करते हुए एक रिपोर्ट के हवाले से हिन्दू शरणार्थी कैम्प की दयनीय स्थिति के बारे में लिखा गया कि पूर्वी बंगाल के हिन्दू शरणार्थी कैम्प बदहाल हैं और वहाँ रसद की आपूर्ति भी अपर्याप्त है।

इस लेख में बिहार के हिन्दुओं के मुकाबले मुसलमानों को आवंटित हो रहे बंदूक के लाइसेंसों की ज़्यादा संख्या पर भी चिंता व्यक्त की गई। 'बिहार सरकार के इस वक्तव्य से पता लगता है कि बिहार में नवासी प्रतिशत हिन्दुओं को बावन प्रतिशत

बंदूकों के लाइसेंस दिए गए हैं और ग्यारह प्रतिशत मुसलमानों को अड़तालीस प्रतिशत ।’

कल्याण ने मुस्लिम दुष्प्रचार के कुछ उदाहरण दिए जैसे यह दावा करना कि बंगाल के हिन्दुओं के मुकाबले बिहार के मुसलमानों ने ज़्यादा कष्ट उठाया है, और संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा की बैठक पर आरोप लगाते हुए पर्चे बंटवाना कि उसमें मुस्लिम प्रतिनिधित्व नहीं था, जबकि विजयलक्ष्मी पंडित ने ध्यान दिलाया कि प्रतिनिधि मंडल में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व एम सी छागला और नवाब अली यावर जंग ने किया था ।

पूरे लेख में जिन्ना को आज के औरंगज़ेब की तरह दिखाया गया था । ऐसी तुलना उनकी तारीफ़ में सबसे पहले मद्रास से मुस्लिम लीग के नेता रहे मुहम्मद इस्माइल ने की थी । ‘अच्छा हुआ कि एक लीगी मुसलमान ने अपने मुंह से अपने प्रधान नेता की असलियत प्रकट कर दी । उदारता, सहिष्णुता तथा सर्वहितैषी पिता की जो चादर मिस्टर जिन्ना ने ओढ़ रखी है उसे उतार कर उसके वास्तविक रूप का सबको दर्शन करा दिया । लीगियों को यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार औरंगज़ेब का पतन हुआ है वैसा ही पतन मिस्टर जिन्ना का भी होना अवश्यम्भावी है ।’ जिन्ना की सीधी कारस्तानी ने उत्तर भारत में हिंसा के फैलाव को अंजाम दिया है । कल्याण ने कहा कि इसका जवाब देना ज़रूरी था । ‘ऐसा समय आ गया है कि इस समय प्रत्येक हिन्दू नर-नारी को आत्मरक्षा के लिए सैनिक बनना है । संख्या के अनुपात से ही सरकारी नौकरियां हों । जैसे एक डंके की चोट और एक अल्लाह-हू-अकबर के नारे से मुसलमानों में जाग्रति हो जाती है वैसे ही हिन्दुओं को भी अपने शंख घंटों की ध्वनि और हर हर महादेव या बजरंग बली की जय के नारों की व्यवस्था करनी होगी ।’

बेहद कठोर और दिखावे से भरे इस विरोध के अलावा पाकिस्तान की सच्चाई कुछ ऐसी बन पड़ी जिसने हिन्दू राष्ट्रवादियों और गीता प्रेस को सन् 1947 की पहली तिमाही तक अपनी शर्तों के साथ सामने आने पर मजबूर कर दिया । और कल्याण व हिन्दू राष्ट्रवादी हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान के आदर्श के साथ अस्तित्व में आने वाले आज़ाद भारत के अपने स्वप्न को लेकर समक्ष उपस्थित हो गए ।

कल्याण के फ़रवरी 1947 के अंक में इस सपने का सजीव चित्रण ‘हिन्दुत्व विहीन स्वराज्य से क्या होगा?’ नामक एक कविता के माध्यम से किया गया । [65](#) इसकी मानें तो इस कविता के लेखक कांग्रेस की अगुआई में हुए राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के कारण छह बार जेल गए थे ।

उत्तेजक, आवेगपूर्ण और हिन्दुत्व वाली राष्ट्र भक्ति से ओतप्रोत इस कविता में विद्यालयी पत्रिका में जगह बनाने के सभी गुण मौजूद थे और साथ ही यह हिन्दू राष्ट्रवादियों की बहसों को भी समेटे हुए थी :

यदि हम में हिन्दुत्व न होता, क्यों स्वराज हित लड़ते?

हो जाते सब यवन-क्रिश्चियन, क्यों झगड़ों में आते?
क्यों डटकर कुर्बानी करते, क्यों जेलों में सड़ते?
क्यों गोली सीनों पर सहते, क्यों फांसी पर चढ़ते?
आज किसी को खुश करने-हित धर्म दिए क्या होगा?
क्या होगा ऐसे स्वराज से, जो हिन्दुत्व न होगा?

अगले छंद में हिन्दी-हिन्दू मिशन था । इसमें हिन्दुओं की भाषा पर हिन्दुस्तानी या उर्दू के शासन करने के डर का मिश्रण था । हिन्दी की हत्या को हिन्दुओं की हत्या की तरह देखा गया ।

हिन्दी-हिन्दू धर्म हिन्द का, प्यारी हिन्दी भाषा!
हिन्दी-भोजन बसन, प्राण में बहती हिन्दी श्वासा!
आज चल रहा है हिन्दी पर, हिन्दुस्तानी फांसा!
हर प्रकार हिन्दू हत्या हो, देखे हिन्द तमाशा!

और इसके बाद वहाँ हिन्दुओं का बिगुल बजा :

आज चाहें तो पाकिस्तानी अदा सुदूर बहा दें!
आज चाहें तो हम अवनि से अत्याचार मिटा दें!
आज चाहें तो दुनियाभर में रामराज्य फैला दें!
अगर पाप पर प्रबल धर्म का रणसिंघा बजवा दें!

कल्याण ने समाचार पत्रों से चुनिंदा उद्धरण प्रकाशित करना जारी रखा । सन् 1947 में 'हिन्दू जाति के साथ त्रासदी' नाम का एक स्तंभ लगभग नियमित प्रकाशित होने लगा । इसके केंद्र में बंगाल और मुस्लिम लीग सरकार की 'भयानक नीतियाँ' रहीं जिसमें अधिकतर प्रशासनिक पदों पर खुलेआम मुसलमानों की नियुक्ति की जा रही थीं । [66](#)

गांधी द्वारा दोनों समुदायों के बीच मेल-मिलाप के प्रयास को पोद्दार ने निरर्थक कहा । हालाँकि उन्होंने गांधी की अहिंसा और सहिष्णुता के सिद्धांतों की सराहना की लेकिन ये भी कहा कि वे सिद्धांत मुसलमानों के लिए कोई मायने नहीं रखते । दंगा पीड़ितों के लिए सहायतार्थ लगाई गांधी की गुहार पर बंगाल के मुसलमानों की उपेक्षा को चिह्नित करते हुए पोद्दार ने कहा कि उसी गुहार के जवाब में हिन्दुओं ने गांधी पर प्रेमस्वरूप धन और अन्य कीमती वस्तुओं की वर्षा कर दी थी । उन्होंने कहा, 'महात्मा जी का असर पड़ता है, उस हिन्दू जनता पर जिसका हृदय धर्म तथा श्रद्धा के भाव से भरा है जो महात्मा गांधी को एक राजनीतिक नेता नहीं पर एक बहुत उच्च कोटि के

धार्मिक, संत और महात्मा मानती है, महात्मा जी कहते हैं तुमने 'पाप किया', वे मान लेते हैं ज़रूर पाप किया, महात्मा जी कहते हैं, 'सहन करना', वे मानते हैं, हाँ सहन करेंगे। परन्तु देखना तो यह है कि इस आत्मग्लानी भरी पाप भावना और इस कायरता भरी सहनशीलता का परिणाम क्या होगा। हिन्दुओं को मुसलमानों का सम्मान तब तक नहीं हासिल होगा जब तक वे संगठित नहीं होंगे।' ⁶⁷

हर बीतते महीने के साथ हिन्दू-मुस्लिम मुद्दे पर गीता प्रेस का रुख आक्रामक होता जा रहा था। इसके दो अंकों के प्रतिबंधित होने के एक महीने बाद *कल्याण* ने मुस्लिम हिंसा के विरोध में हिन्दुओं को कमर कस लेने के अपने एक पृष्ठ के आह्वान को पुनर्प्रकाशित किया। यह सबसे पहले सन् 1896 में स्वामी विवेकानंद द्वारा रामकृष्ण मिशन के तहत शुरू की गई पत्रिका *प्रबुद्ध भारत* में प्रकाशित हुई थी। '*हिन्दुओं का कर्तव्य*' नाम से छपे इस आह्वान में मुसलमानों के लिए सीधा संदेश था कि हिन्दुओं के मामलों में हस्तक्षेप न करें। इसमें प्रकाशित हुआ कि 'धर्म हिन्दुओं का आधार है जो भी उनकी उपासना की स्वतंत्रता में बाधा पहुँचाता है वह असुर तुल्य है। किसी भी प्रकार से उसका प्रतिकार होना ही चाहिए। हिन्दू तलवार के बल पर किसी को अपना धर्म बदलने के लिए बाध्य नहीं करता। अपने धर्म और अधिकारों की रक्षा के लिए उन्हें खड़े होना चाहिए और वीरों की भांति लड़ते हुए मर जाना चाहिए। किन्तु उन्हें झगडा आरम्भ करने वाले आक्रमणकारी नहीं बनना चाहिए। आत्मरक्षा के लिए की गई हिंसा उचित हो सकती है पर आक्रमणात्मक हिंसा घृणास्पद है।' ⁶⁸

सरकार ने अप्रैल 1947 में धर्मयुद्ध की पहल के लिए करपात्री महाराज की गिरफ्तारी तय की। उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ में जन्मे हर नारायण ओझा यानी करपात्री महाराज कोई सामान्य धर्म-गुरु नहीं थे। करपात्री (वह जो अपने हाथ को भोजन के लिए 'पात्र' के रूप में व्यवहार में लाता है) 'शिव का अवतार' माने जाते थे और बहुत-से शंकराचार्य इनके शिष्य थे। ⁶⁹

मई 1947 के *कल्याण* अंक में इस गिरफ्तारी के विरोध में मुहिम चलाई गई। ⁷⁰ उनके धर्मयुद्ध के आह्वान को न्यायोचित ठहराते हुए पत्रिका ने कहा कि 'यह हिन्दुओं की मांगों के प्रति बहरी हो चुकी सरकार के रवैये का नतीजा है। जो सरकार धार्मिक स्वतंत्रता का आश्वासन देती है, सबके साथ न्याय करने की घोषणा करती है, वह सरकार सनातनधर्मी जनता, जो आज भी भारत में सबसे अधिक है, उसकी बात तक नहीं सुनती।' *कल्याण* ने करपात्री महाराज की शीघ्र रिहाई की मांग की और हिन्दुओं से उनके द्वारा शुरू किए आंदोलन को मज़बूत करने के लिए कहा।

उसी अंक में पोद्दार ने चेतावनी देते हुए लिखा, 'मियाँ जिन्ना पाकिस्तान लेकर ही संतुष्ट नहीं होंगे, वे जैसी तैयारी कर रहे हैं उसे देखते संभव है कि सारे हिन्दुस्थान पर कब्ज़ा करने के लिए मौक़ा पाते ही आक्रमण करेंगे।' ⁷¹ पोद्दार ने कहा भारतीय मुसलमान जो यहाँ रह जाएँगे वे ही जिन्ना के *कैप्चर हिन्दुस्तान* (हिन्दुस्तान पर कब्ज़ा) अभियान में सहायक बनेंगे। अगर पोद्दार की मानी जाये तो इसके लिए जिन्ना की

योजना मुसलमानों के बड़े नेटवर्क में हथियारों को बंटवाने से शुरू हो गई थी। उन्होंने कहा कि मुसलमानों द्वारा हथियार निर्माण का काम पंजाब, संयुक्त प्रांत, सिंध और सीमांत इलाकों में चल रहा है। उन्होंने कहा कि लम्बे समय से अलीगढ़ हथियार निर्माण और वितरण का केंद्र है। 'यह भी कहा जा है कि काठियावाड़ के देशी मुस्लिम राज्य के बंदरगाहों पर हथियार उतारे जाते हैं। मुस्लिम नेशनल गार्ड को हथियार देने की बात खुल्लमखुल्ला चल ही रही है। सुना गया है असम में पुलिस को बन्दूक, कारतूस और हथगोलों के भंडार का भी पता लगा है।'

किसी तरह का हमला करने के लिए नहीं बल्कि हमलों से आत्मरक्षा हेतु उन्होंने हिन्दुओं और सिखों को सचेत रहने के लिए कहा। दो अलग राष्ट्रों का निर्माण पोद्दार के लिए सबसे बड़े अफ़सोस की बात थी। 'पाकिस्तान तो सर्वथा शुद्ध मुस्लिम राज्य होगा और हिन्दुस्थान हिन्दू राज्य न होकर खिचड़ी राज्य रहेगा।'

जून 1947 में *कल्याण* ने दिल्ली में आरएसएस के वार्षिकोत्सव में दिए गए गोलवलकर के एक अन्य भाषण को प्रकाशित किया। ⁷²पहले की तरह वही बात दोहराते हुए गोलवलकर ने गांधी का नाम लिए बिना हिन्दू-मुस्लिम एकता की अनवरत कोशिशों का मजाक उड़ाया। उन्होंने कहा, 'परस्पर विपरीत विभिन्न सांस्कृतिक स्वरूप वाले दो धर्मों को साथ लाने की कोशिश सफल नहीं होगी। अगर एक ब्राह्मण शैतान से मित्रता करने को बढ़ेगा तो ब्राह्मण ही हर बार हारेगा।'

इसी बीच करपात्री महाराज के जेल में होने के बावजूद दिल्ली में धर्म युद्ध आंदोलन जारी था। साधु-संन्यासियों के एक समूह और गीता प्रेस जैसे सनातन धर्म वाले संगठनों ने सरकार से यह वायदा मांगा कि सदियों पुराने शास्त्रीय विधानों के खिलाफ़ कोई विधेयक नहीं लाया जाएगा। *कल्याण* ने सरकार को करपात्री महाराज के धर्म युद्ध को वापस लेने का आश्वासन इन शर्तों पर दिया—अगर कांग्रेस आलाकमान गैर-धार्मिक विधेयक लाने से परहेज़ करे, गो-हत्या प्रतिबंध पर काम चालू करे और भारत के विभाजित न होने का आश्वासन दे। ⁷³

जुलाई 1947 में पोद्दार को यह बात परेशान करने लगी कि हिन्दुओं के नारे 'जिन्ना चाहे दे दे जान, नहीं मिलेगा पाकिस्तान' के बदले में मुस्लिम लीग के नारे 'लड़ के लेंगे पाकिस्तान, मार के लेंगे पाकिस्तान' ⁷⁴ज्यादा सुनाई देने लगे थे। पोद्दार ने हिन्दू नेतृत्व की आलोचना की। भारत के विभाजन के विरोध में भारी जन विरोध होने पर भी पाकिस्तान के गठन को आगे बढ़ाने का दोषी ठहराते हुए पोद्दार ने अपनी आलोचना के केंद्र में गांधी को लिया। 'महात्मा जी की परस्पर विरोधी बातों को समझना भी आज विकट पहेली हो गया है।' उन्होंने कहा, 'अगर राजनैतिक वर्ग पाकिस्तान बनाने की मांग को रोकने में नाकाम है तो पाकिस्तान दो साल पहले ही बन जाना चाहिए था। ऐसा करने से स्थितियां तो कम-से-कम इस हद तक अतिरेकी नहीं होतीं और मुस्लिम लीग को साथ लिया जा सकता था।' पोद्दार ने नए राष्ट्र को 'हिन्दुस्थान' कहने में बरती जा रही हिचकिचाहट के लिए भारतीय राजनीतिक वर्ग को

दोषी ठहराया । उन्होंने राजनैतिक वर्ग के मुस्लिम अल्पसंख्यकों के साथ बहुसंख्यक हिन्दुओं के तर्ज पर व्यवहार करने के वायदे पर भी प्रश्न खड़ा किया : 'यदि पाकिस्तान में अल्पसंख्यक हिन्दुओं के प्रति बुरा बर्ताव हो तो यहाँ के अल्पसंख्यक मुसलमान अच्छे बर्ताव के अधिकारी नहीं हो सकते हैं ।'

इसके बाद पोद्दार ने स्वतंत्र भारत के हिन्दू बहुसंख्यकों के लिए बारह-सूत्री साधन प्रस्तुत किया, और अपील करते हुए कहा, 'इसके लिए हिन्दू मात्र को—कांग्रेसी, हिन्दू सभाई, सनातनी, जैन, सिख आदि सभी को एक होकर बड़े ज़ोर से आवाज़ उठानी चाहिए :

- 1) हिन्दुस्थान का नाम 'हिन्दुस्थान' या आर्यावर्त हो ।
- 2) हिन्दुस्थान शुद्ध हिन्दू-राज्य हो और इसका संघटन सर्वांश में हिन्दू-संस्कृति के आधार पर हो । राष्ट्रीय झंडा गेरुआ हो और उसपर स्वस्तिक का चिह्न हो । एवं 'वंदे मातरम्' राष्ट्र-गीत (National Anthem) हो ।
- 3) हिन्दुस्थान में मौलिक सिद्धांत रूप में गो-वध सर्वथा बंद हो ।
- 4) हिन्दुस्थान की सरकारी भाषा शुद्ध हिन्दी (भ्रष्ट हिन्दुस्तानी कदापि नहीं) हो और लिपि देवनागरी हो ।
- 5) हिन्दुस्थान में सैनिक-शिक्षा अनिवार्य रहे और शस्त्र-क़ानून में आवश्यक परिवर्तन हो ।
- 6) हिन्दुस्थान में सेना में केवल हिन्दू ही रहें, इसलिए पहले से सेना का भी बंटवारा कर लिया जाये ।
- 7) हिन्दुस्थान में किसी भी विभाग में उच्च पदों पर एक भी मुसलमान की नियुक्ति न की जाये ।
- 8) हिन्दुस्थान में सरकारी नौकरियों में मुसलमानों के उतने ही स्थान हों, जितने उनकी संख्या के अनुपात से आते हों । पर वे भी तब हों जब कि पाकिस्तान में हिन्दुओं को संख्या के अनुपात से स्थान मिले ।
- 9) किसी भी धर्म के धार्मिक विधान समाज सुधार के नाम पर क़ानून बनाकर कभी न पलटे जायें ।
- 10) पूर्व और पश्चिम बंगाल की सीमा, पूर्व और पश्चिम पंजाब की सीमा, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत की सीमा, आसाम की सीमा एवं पाकिस्तान और हिन्दुस्थान की सीमाओं पर केंद्रीय सरकार की ओर से सर्वप्रकार से सुसज्जित सुदृढ़ सेना पर्याप्त संख्या में तैयार रखी जाये और साथ ही मज़बूत और सुसंघटित जन बल का भी सहयोग

रहे । जिससे कभी भी सहज में हिन्दुस्थान पर कोई आक्रमण न होने पावे ।

- 11) पाकिस्तान के साथ विदेशी सत्ता का सा व्यवहार किया जाये तथा आने जाने में पासपोर्ट की व्यवस्था रहे ।
- 12) हिन्दुस्थान में मुसलमान एवं अन्यान्य सभी अल्पसंख्यकों को सब प्रकार की न्यायोचित सुविधायें दी जाये । उनके जीवन तथा मान-सम्मान की रक्षा का सुप्रबंध हो ।’

इसमें जोड़ते हुए पोद्दार ने आठ सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जिसे हिन्दुओं को अवश्य मानना चाहिए:

- 1) अपनी प्राचीन संस्कृति, अपने गौरवमय इतिहास और अपने शौर्य, ऐश्वर्य, ज्ञान और शील सर्वोपरि पूर्वपुरुषों पर अचल श्रद्धा और उन्हीं आदर्श पर चलने की प्रवृत्ति ।
- 2) हिन्दुत्व में गौरव-बोध । कोई भी हिन्दू किसी भी वर्ण, जाति, सम्प्रदाय का क्यों न हो हिन्दू के नाते अपना ही स्वरूप है—ऐसी एकात्मता की भावना और परस्पर के दुःख-सुख में आत्मीयतापूर्ण सहयोग ।
- 3) सामाजिक वर्णादि भेदों के रहते हुए ही एक महान हिन्दू-राष्ट्र का निर्माण ।
- 4) व्यक्तिगत पदलोलुपता, अधिकार-लालसा तथा सम्मान-धन आदि अपने क्षुद्र स्वार्थों को महान हिन्दू-राष्ट्र के महान स्वार्थ में मिला देना ।
- 5) दुर्बलों की सर्वथा और सर्वदा तन, मन, धन अर्पण करके रक्षा करना और आततायियों से ज़रा भी न डरकर उनके आततायीपन को हरेक आवश्यक उपाय से मिटा देना । दुर्बल को सताना जैसे पाप है वैसे ही आततायी पर दया दिखाना भी पाप है ।
- 6) अपने को सदा अजेय और शक्तिशाली मानना तथा ऐसा ही बनने का सतत प्रयत्न करते रहना । शक्ति-संचय करना एवं सफलता में पूर्ण श्रद्धा रखना ।
- 7) भगवान के आश्रय और उनकी असीम शक्तिमयी कृपा पर पूरा भरोसा करके बाहरी तथा भीतरी शत्रुओं का दमन करने के लिए नित्य प्रयत्नशील रहना । ‘भगवान की कृपाशक्ति’ तथा ‘आत्मा की अमरता’ पर दृढ़ विश्वास करके किसी भी प्राणी का परिणाम में जरा

भी अहित न चाहते हुए साहस तथा शक्तिपूर्वक प्रत्येक परिस्थिति का सामना करना ।

- 8) जीवन के प्रत्येक शुभ कार्य को भगवान की पूजा का प्रकार मानकर उनकी प्रसन्नता के लिए उनके आज्ञानुसार दृढ़तापूर्वक कर्तव्य पालन करते रहना । कर्तव्य से च्युत होना नहीं और उसका फल भगवद्प्रीति के अतिरिक्त अन्य कुछ भी चाहना नहीं ।

आश्चर्यजनक रूप से *कल्याण* के अगस्त अंक में राजनैतिक टिप्पणियाँ कम थीं । 'तब और अब' शीर्षक से मात्र एक नकारात्मक लेख छपा था जिसमें पहले की शान्ति, अक्षोभ, भाईचारे, वर्ण व्यवस्था के प्रति सम्मान, क़ानूनी शासन और कम क़ीमतों की तुलना बहुप्रतीक्षित स्वराज के आने के बाद की विभिन्न जातियों और धर्मों में व्याप्त मौजूदा तनाव, सामाजिक अवरोध और ऊंची क़ीमतों आदि की चर्चा गई थी । ⁷⁵

आज़ादी के इसी माह में *कल्याण* ने भी 'पाकिस्तानी बर्ताव' पर दो लेखों को पुनर्प्रकाशित किया । इनमें से एक कलकत्ता के बांग्ला दैनिक *हिन्दुस्तान* से लिया गया था और दूसरा शिकारपुर, सिंध से छपने वाले *मिलाप* से लिया गया । ⁷⁶ पहला एक पोस्टकार्ड था जिसे सूचना के अनुसार पूर्वी बंगाल से हिन्दुओं के लिए मोहम्मद शम्सुल हुसैन ने लिखा था । उन्होंने प्रसन्नता से कहा, 'खुदा की मेहरबानी से हमारे पूर्वी बंगाल में पाकिस्तान वास्तविक रूप में हो गया है ।' और सलाह दी कि हिन्दुओं के पास अपनी ज़िन्दगी बचाने का एक ही रास्ता बचा है, वह है विवाह । उसमें लिखा था, 'हम लोग जटिलता पसंद नहीं करते । सीधी भाषा में कहना चाहते हैं कि आपकी अथवा आपके संबंधी की कन्याओं के साथ निकाह करके हम लोग उन्हें अपने घर में रखना चाहते हैं ।'

दूसरा सिंध के किसी क़ाज़ी-अर्फ़ गाँव से भेजा गया था । इसे 15 जुलाई 1947 को दिए गए मुस्लिम लीग के भाषण का हिस्सा कहा गया । इसमें हिन्दुओं को धर्मांतरण की धमकी देते हुए कहा गया था कि मंदिरों को मस्जिदों में और ब्राह्मण पंडितों को मौलवी में बदल दिया जाएगा । इस रिपोर्ट में यह कहा गया कि गाँव के हिन्दुओं द्वारा रहम की गुहार को मुसलमानों द्वारा दरकिनार कर दिया गया ।

अगले कुछ महीने *कल्याण* ने पाकिस्तान के बुरे कर्मों के विवरण प्रकाशित किए । इसमें नेहरू की शिकायत भी शामिल थी कि पाकिस्तान ने पश्चिम बंगाल से सभी संचार बिंदु बाधित कर दिए हैं और वहाँ फंसे हुए हिन्दुओं और सिखों के स्थानांतरण में सहयोग नहीं कर रहा है । ⁷⁷ जब पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों का ताँता लगने लगा तब पोद्दार के पुराने परिचित प्रभुदत्त ब्रह्मचारी का एक लेख *कल्याण* में छपा । इस लेख में उन्होंने गहरा आग्रह करते हुए रिलीफ़ कैम्प लगवाने और नौकरी, पैसे, आसरा व भोजन देकर लोगों की मदद करने को कहा । ⁷⁸ पोद्दार ने इस अपील के साथ अपनी संपादकीय टिप्पणी जोड़ते हुए लिखा कि पाकिस्तान से आने वाले हिन्दुओं को

शरणार्थी नहीं माना जाना चाहिए बल्कि ये 'हमारे अपने लोग हैं' जिन्हें 'शैतानी जुल्म' झेलना पड़ा है।

जहाँ तक *कल्याण* का मानना था, उसके लिए विभाजन हिन्दुओं के लिए दुर्भाग्य की बात थी। ⁷⁹ इसने विभाजन के लिए बार-बार गांधी और कांग्रेस नेतृत्व को ज़िम्मेदार ठहराया। हिन्दुओं को होने वाली 'सभी' तरह की क्षति के लिए खेद प्रकट करते हुए *कल्याण* ने लिखा कि पाकिस्तान के बनते ही एक और मुस्लिम देश बन कर तैयार हो गया जबकि दुनिया में एक भी हिन्दू देश नहीं है।

1940 के दशक में *कल्याण* जैसे सशक्त मुद्रित माध्यम द्वारा गीता प्रेस जिस कट्टर राष्ट्रवाद की वकालत कर रहा था वह अकेले चलने वाले प्रकाशन समूह के कारण ही नहीं था बल्कि आरएसएस, हिन्दू महासभा और अन्य हिन्दू राष्ट्रवादी संगठनों की सामूहिक आवाज़ बन कर उभरने के कारण संभव हो रहा था। यह 24-25 दिसंबर 1946 को गोरखपुर में हुए हिन्दू महासभा के इकतीसवें सत्र के बाद विशेष रूप से उभर कर सामने आया। एक ज़माने में हिन्दू महासभा से गहरा जुड़ाव रखने वाले पोद्दार इस बैठक में प्रतिनिधि थे और देश भर से कार्यक्रम में भाग लेने आए छह से सात हज़ार सदस्यों के भोजनादि की ज़िम्मेदारी इन्हीं के कंधों पर थी। बैठक कलकत्ता की पृष्ठभूमि पर हुई। इसमें नोआखली दंगों और इसी तरह की अन्य घटनाओं ने महासभा की कार्रवाई पर प्रभाव भी डाला। दोनों ही दिन पोद्दार का भाषण था जिसमें उन्होंने बंगाल में हो रही मुस्लिम हिंसा के खिलाफ़ हिन्दुओं को एकजुट होने को कहा। ⁸⁰

कल्याण और पोद्दार द्वारा सन् 1947 में जो भी लिखा गया उसके बीज महासभा के इसी सत्र में बोये गए थे। ⁸¹ इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे एल बी भोपटकर ने आह्वान किया, 'हिन्दुओं अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए शस्त्र उठा लो।' जब मनुष्य भूलने और क्षमा करने लगता है तब दैवीय शक्ति उसे प्रतिरोध और प्रतिशोध की शक्ति देती है। पोद्दार सन् 1947 तक *कल्याण* में इसी तरह की गुहार लगाते रहे। इस सत्र में ही हिन्दू नेशनल गार्ड के गठन की वकालत की गई जिसमें हिन्दू महिलाओं को अपने साथ कटार रखने को कहा गया। हिन्दुस्तान को लेकर बनाया गया उनका बारह-सूत्री साधन भी महासभा सत्र में भारी आकर्षण का केंद्र बना।

हिन्दू कोड बिल

सन् 1941 में औपनिवेशिक सरकार ने कलकत्ता के न्यायाधीश बी एन राव की अध्यक्षता में एक हिन्दू लॉ कमिटी गठित की। इसने हिन्दू लॉ कोड के गठन की पैरवी की। सन् 1944 में समिति फिर से सक्रिय हुई और इसने हिन्दू कोड बिल का प्रारूप तैयार किया। यह सामाजिक विधान का एक भाग था जो हिन्दू विवाह और संपत्ति के अधिकारों संबंधी कानूनों के आधुनिकीकरण का काम कर रहा था। इसका उद्देश्य 'एकल विवाह, पुत्रियों द्वारा उत्तराधिकार के सिद्धांत और स्त्रियों को अपनी संपत्ति पर

सीमित के बजाय पूर्ण अधिकार देने जैसे प्रावधानों को लागू कर हिन्दू स्त्रियों के अधिकारों को विस्तार देना था ।’ ⁸² इस हिन्दू कोड बिल ने दकियानूसी हिन्दू गुटों को चिढ़ा दिया । उन्होंने इस नए क़ानून को समाज सुधार के नाम पर हिन्दुओं और उनके धर्म पर प्रहार माना । जैसे ही दकियानूसी गुटों के बड़े गठबंधन का उभार हुआ, गीता प्रेस के *कल्याण* ने विधेयक के खिलाफ़ मोर्चे का नेतृत्व किया । वह न केवल अपने पाठकों को नए गुर सिखा रहा था बल्कि उन्हें विरोध करने के लिए उकसा भी रहा था ।

यही *कल्याण* सन् 1929 के शारदा अधिनियम पर चुप्पी साधे हुए था जिसके तहत विवाह के लिए लड़कियों की न्यूनतम आयु चौदह और लड़कों की अठारह वर्ष कर दी गई थी । पोद्दार ने क़ानून का विरोध तो किया लेकिन अपने गुस्से को *कल्याण* के पृष्ठों से दूर रखा । उन्होंने गोयन्दका को लिखा, ‘इस क़ानून का मैं बड़ा विरोधी हूँ, केवल कन्या की आयु के वास्ते ही नहीं वरन धार्मिक विषय में क़ानून के द्वारा हस्तक्षेप के कारण भी । इस क़ानून को रद्द करवाने और आइंदा इस तरह का क़ानून न बने इसके लिए ज़रूरत है । क़ानून तोड़कर जेल जाना और सरकार के विरुद्ध लोकमत जागृत करना ही इलाज है । इस क़ानून का विरोध केवल सामाजिक या धार्मिक दृष्टि से करने पर कोई फल नज़र नहीं आता । राजनैतिक दृष्टि से इसका विरोध ज़ोरदार शब्दों में किया जा सकता है ।’ ⁸³ उन्होंने आगे कहा, ‘*कल्याण* इन सब बातों में न पड़कर केवल मानव धर्म सदाचार और भगवत भक्ति के क्षेत्र में काम कर रहा है । आज हज़ारों सरकारी नौकरों में इसके द्वारा सदाचार और भक्ति का प्रचार होता है । इसके राजनैतिक क्षेत्र में आते ही वे इससे अलग हो जाएंगे । ग्राहक घटने-बढ़ने का प्रश्न इसमें नहीं है । प्रश्न है नीति का!’ लेकिन इसके दो साल के भीतर ही हिन्दू राष्ट्रवाद के अधिक मुखर होने के साथ ही ये सिद्धांत भी बदल गए ।

सचेत *कल्याण* ने सन् 1946 में निर्वाचित संविधान सभा द्वारा पेश किए जा रहे विधेयकों पर पैनी निगाह रखी थी । ऐसे ही एक विधेयक ने गोयन्दका का ध्यान खींचा जिसमें पति से संबंध विच्छेद पर पत्नी को मुआवज़े की राशि दिए जाने का प्रावधान किया जा रहा था । गोयन्दका ने *कल्याण* में लिखा, ‘हिन्दू समाज व्यवस्था में इस प्रकार की स्वतंत्रता स्त्रियों को नहीं दी जा सकती है । वे कुमारी अवस्था में अपने पिता तथा अपने अन्य अभिभावक के अधीन रहें, विवाहित दशा में पति के अधीन और पति के परलोकवासी हो जाने पर अथवा प्रवासी हो जाने पर अपने पुत्र अथवा अन्य किसी निकट सम्बन्धी के अधीन रहें । किसी भी हालत में वे स्वतंत्र नहीं रह सकतीं ।’ ⁸⁴ गोयन्दका ने शास्त्रों की सर्वोच्चता पर ज़ोर देकर कहा कि उसमें हिन्दू जीवन के हर पहलू पर निर्देश दिए गए हैं जिनके साथ छेड़छाड़ नहीं की जानी चाहिए । इसके अलावा तीन अन्य विधेयकों पर गोयन्दका ने आपत्ति जताई । ये अंतर्जातीय विवाह, समान गोत्र में विवाह, और तलाक़ से जुड़े थे । गोयन्दका के अनुसार ये तीनों स्त्रियों को सशक्त नहीं करेंगे बल्कि उनका नैतिक पतन करेंगे । इसलिए हिन्दुओं को संगठित होकर इसका विरोध करना चाहिए । गोयन्दका ने कहा कि हिन्दुओं के शुभचिंतक

मालवीय ने भी यह कहते हुए इस तरह के सामाजिक विधेयकों का विरोध किया है कि ये देश के बड़े मुद्दों से ध्यान भटका रहे हैं।

हिन्दू लॉ कमिटी की अंतिम रिपोर्ट 21 फ़रवरी 1947 को सरकार के पास जमा की गई। राव के अलावा इस कमिटी में कलकत्ता उच्च न्यायालय के पूर्व जज द्वारकानाथ मित्र, पूना लॉ कॉलेज के आर घारपुर और बड़ौदा से वकील राजरत्न वासुदेव विनायक जोशी थे। इस रिपोर्ट को हिन्दू क़ानून के विशेषज्ञ मित्र के भारी विरोध के बावजूद जमा किया गया। ⁸⁵ एक विधेयक केंद्रीय विधानमंडल में पेश किया गया और तब इस पर निर्णय को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। ⁸⁶ लेकिन स्वतंत्रता के तुरंत बाद भारत में क़ानून मंत्री बी आर अम्बेडकर ने इस पर पुनः काम शुरू किया।

संक्षेप में, हिन्दू कोड बिल ने 'दो तरह के विवाह प्रस्तावित किए; रीति-रिवाज परक और सिविल।' ⁸⁷ तथा विवाह और तलाक़ में स्वतंत्रता और लचीलेपन का वायदा किया। इसने हिन्दू परंपरावादियों के आक्रोश को न्योता दे दिया। यहाँ तक कि परंपरा के अनुसार विवाह करने वाले भी कोर्ट में अपने विवाह को दर्ज करवा सकते थे। यह क़दम उनमें से किसी भी पक्ष को आगे कभी भी तलाक़ की दावेदारी में क़ानूनी मदद कर सकता था। इस बिल से बहु विवाह प्रथा भी किनारे लग गई, इसने विवाह के लिए जातीय पहचान व सगोत्रीय विवाह पर लगे प्रतिबंध को हटाया, और नपुंसकता को तलाक़ लेने का आधार बनाया।

हिन्दू कोड बिल ने 'निर्वसीयत उत्तराधिकार के वारिसों को हमवारिस की तरह नहीं बल्कि व्यक्तिगत संपत्ति के अधिकार वाले व्यक्ति' के रूप में देखा। विधेयक ने 'ऐसे वारिस को पूर्ण संपत्ति के अधिकार दिए जिससे वह इस संपत्ति को बेच सके।' इसके साथ ही, इसके माध्यम से 'विरासत से मिले उत्तराधिकार के नियम' को समाप्त कर दिया गया और उत्तराधिकार निर्धारण हेतु रक्त संबंधों पर ज़ोर दिया गया। इस तरह, 'विधवा, पुत्री और पूर्व-मृतक पुत्र की विधवा को इस क़ानून के तहत लाया गया।

जेराल्डिन फ़ोर्ब्स के अनुसार राव समिति रिपोर्ट ने 'हिन्दू समाज के दो विचारों को कुशलतापूर्वक मिला दिया।' समिति ने 'महिला अधिकारों के आंदोलन का राष्ट्रीयकरण' करते हुए यह साबित कर दिया कि 'प्राचीन हिन्दू धर्म ग्रंथों के उपयुक्त तत्वों को और वर्तमान समाज के उचित क़ानूनी सिद्धांतों को मिला कर साथ लाया जा सकता है।' ⁸⁸

कल्याण का जवाब तीखा और सीधा था। इसमें लेखक का नाम दिए बिना एक विस्तृत टिप्पणी छपी गई। जिसमें प्रस्तावित विधेयक को कुछ लोगों के हाथों की कारस्तानी कहा जिन्हें शास्त्रों की तनिक जानकारी नहीं थी और जो शारीरिक ज़रूरतों को प्राथमिक मानने वाली पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में ला कर हिन्दू जाति को ख़त्म कर देना चाहते हैं। ⁸⁹ इसके निशाने पर अम्बेडकर थे। अछूतों के लिए समान अधिकारों की मांग करने वाले अम्बेडकर पर कल्याण का रुख हमेशा ही कड़ा रहा और इस बार बुरी तरह अपमानित करते हुए विधानसभा के क़ानून मंत्री पर भी

जातिवादी फब्तियां कसी गईं । सन् 1944 में संविधान सभा में इस विधेयक को पेश करने वाले पूर्व क़ानून मंत्री सर सुल्तान अहमद को भी नहीं बख़्शा गया ।

क़ानून मंत्री अम्बेडकर अपनी पूरी कार्यावधि में हर बार पोद्दार के विरोध को झेलते रहे । मामूली बातों पर भी उनका त्यागपत्र माँग लिया जाता था । सन् 1950 में अख़बारों में अम्बेडकर पर हिन्दू भगवान राम और कृष्ण पर कथित नकारात्मक टिप्पणी करने की ख़बर छपी । इसने *कल्याण* को मोटे तौर पर धर्मनिरपेक्षता और विशेषकर अम्बेडकर की हिन्दू विरोधी व्यक्तित्व पर निशाना साधने का मौक़ा दे दिया । ‘लोकतंत्र की शैशव अवस्था में ही इस तरह के संकेतों को शुभ नहीं कहा जा सकता । अभी तक हिन्दू जनता उनकी बातों को गंभीरता से ले रही थी, लेकिन अब यह तय हो गया कि अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित हिन्दू कोड बिल दरअसल हिन्दू धर्म को नष्ट करने के लिए बुने गए उनके षड्यंत्र का अहम हिस्सा है । यह हिन्दुओं के लिए बड़े अपमान और शर्म की बात है, और अगर उनके जैसा इंसान क़ानून मंत्री बना रहा तो यह हिन्दू धर्म के नाम पर धब्बा है । शान्तिप्रिय किन्तु प्रभावशाली तरीक़ों से हमें उन्हें पद से हटाने और हिन्दू कोड बिल वापस लेने के लिए सरकार पर दबाव बनाना होगा ।’ ⁹⁰

कल्याण ने धार्मिक तौर पर उन्मुख ‘भारत के राष्ट्रपति’ (डॉ राजेन्द्र प्रसाद), ‘अंतर्राष्ट्रीय राजनेता’ प्रधानमंत्री (जवाहरलाल नेहरू), ‘बुजुर्ग अनुभवी’ गृह मंत्री (सरदार पटेल) और कांग्रेस के शीर्ष नेताओं से अम्बेडकर को बाहर निकालने और न्याय, धर्मनिरपेक्ष विश्वसनीयता और लोकतांत्रिक सिद्धांतों में विश्वास प्रदर्शित करने के लिए हिन्दू कोड बिल को वापस लेने को कहा ।

पत्रिका ने दावा किया कि देश भर में हो रहे भारी विरोध के बावजूद भी संसद इस विधेयक को ज़बरन लागू कर रही है । पत्रिका मित्तर की असहमति वाली टिप्पणी पर ज़रूरत से ज़्यादा निर्भर थी, जो खुद ही सुधार के भारी विरोध के फलस्वरूप की गई थी ।’ ⁹¹ मित्तर ने प्रत्यक्ष तौर पर एक हिन्दू लॉ कमिटी का सुविस्तृत रिकॉर्ड तैयार किया था, जिसमें हिन्दू कोड बिल पर विभिन्न प्रांत से मिले समर्थनों और विरोधी विचारों को दर्ज किया गया था । वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ‘हिन्दुओं का बड़ा भाग यह मानता है कि हिन्दू क़ानून का संहिताकरण न तो संभव है और न ही अभीष्ट ।’ उन्होंने कहा, ‘हिन्दुओं के बहुत-से नियम समझे और व्यवस्थित किए जा चुके हैं । इसलिए संहिताकरण की कोई आवश्यकता नहीं है ।’ ⁹²

गीता प्रेस के लिए हिन्दू कोड बिल की जन सुनवाई पर मित्तर के तैयार विवरण में भारत धर्म महामंडल, हिन्दू महासभा, अखिल भारतीय धर्म संघ, अखिल भारतीय वर्णाश्रम स्वराज संघ और जैन एसोसिएशन जैसे पुरातनपंथी समूहों द्वारा जताया विरोध भी शामिल था । इन विचारों के इस्तेमाल से *कल्याण* ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि हिन्दू कोड बिल के समर्थक निराश अल्पसंख्यक समुदायों में हैं । पत्रिका ने मालवीय और कैलाशनाथ काटजू जैसे बड़े पुरातनपंथी राजनेताओं और बंगाल की अनुरूपा देवी जैसे महिला उपन्यासकारों द्वारा जताए विरोध को विशेषरूप

से उल्लेखित किया, 'क्या ये सभी सज्जन विद्य बुद्धि से रहित हैं? और क्या वे थोड़े से सुधारवादी ही बुद्धिमान हैं?' ⁹³

हिन्दू कोड बिल से समाज में जाति और लिंग के स्तर पर समानता आएगी, इस प्रगतिशील तर्क के जवाब में इसी लेख में सवाल उठाया गया कि क्या समानता आने से पश्चिमी घरेलू संसार में खुशियाँ आ गईं! 'अविवाहित स्त्रियों का बाहुल्य, असंख्य गर्भपात, तलाक़ की बढ़ती संख्या, गृह विनाश, अपनी प्रतिष्ठा और पवित्रता को ताक पर रख कर स्त्रियों का होटलों और दुकानों में नौकरी करते फिरना आदि बातें क्या पुकार-पुकार कर यह नहीं कह रही हैं कि पश्चिम की सभ्यता नारी जाति के लिए अभिशाप है। भारतीय ऋषियों ने स्त्रियों के लिए घर और समाज में जो व्यवस्था बनाई थी वह सब उनके दिव्य ज्ञान से संभूत थी।'

गीता प्रेस ने महसूस किया कि हिन्दू कोड बिल का विरोध अगर हिन्दू-मुसलमान के नज़रिए से किया जाये तो पुरातनपंथी जगत में उसकी अहमियत ज़्यादा बन पड़ेगी। जैसे इस क़ानून को हिन्दू घरेलू दायरों में मुस्लिम घुसपैठ जैसा उदाहरण बना कर पेश करना। इस तरह, पिता की सम्पत्ति में बेटी के उत्तराधिकार के अधिकार को मुस्लिम क़ानून से उठाया हुआ लगने लगेगा, 'सर सुल्तान अहमद की बुद्धि से उत्पन्न होने के कारण इस हिन्दू कोड में भी ऐसे विधान का ग्रहण स्वाभाविक ही है।' बेटियों को मिलने वाले उत्तराधिकार की *कल्याण* ने भयानक तस्वीर उतारी। 'अभी तक तो भाई-भाई के लड़ने की बात सुनी जाती थी परन्तु अब भाई-बहन में भी लड़ाइयाँ होंगी। मायके में तो वह भाई से आधा हिस्सा लेगी पर उसे ससुराल में ननद को आधा हिस्सा देना पड़ेगा। लाभ तो कुछ हुआ नहीं प्रेम रूपी निर्मल दूध में खटाई अवश्य पड़ जाएगी। स्त्री यदि पति के साथ रहती है तो पिता के घर का आधा हिस्सा उसे किस काम आएगा?'

इसी तरह यह डर भी बैठाया गया कि विवाह के लिए लड़कियों की उम्र सोलह या इससे ज़्यादा होना और अपनी पसंद से विवाह की आज़ादी मिली तो इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि वे मुसलमान लड़कों से विवाह करना चाहें। 'अब एक ही घर में एक ओर शंख बजेगा, भगवान की पूजा होगी और दूसरी ओर कुर'आन पढ़ा जाएगा। गो-मांस पकाया जाएगा। कौन हिन्दू सहन करेगा ऐसे विधान का बनना।' समान गोत्र में विवाह और तलाक़ के बारे में भी ऐसे ही डर सामने रखे गए। *कल्याण* ने कहा हिन्दू विवाह दो लोगों के बीच का आध्यात्मिक बंधन होता है, यह कहते हुए किसी ए मार्क मैथ्यू की बात का उदाहरण दिया गया, 'तलाक़ क़ानून अमेरिका के कलंक का टीका है। अमेरिका की बीमारी है', यह साबित करने के लिए कि भारत भी कुछ इसी तरह की सामाजिक बुराई को अपनाने वाला था। अपने पाठकों को प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिख कर विरोध करने का निवेदन करते हुए *कल्याण* ने यह स्पष्ट किया कि हिन्दू विवाह में सही या ग़लत की स्पष्ट व्याख्या करने का अधिकार केवल शास्त्रों के विद्वानों और पंडितों को है।

सरकार पर नैतिक दबाव बनाने की रणनीति और बिल के पक्षधरों को गोलबंद करने के लिए *कल्याण* ने फागुराम अग्रवाल के दिल्ली स्थित *इंडियन न्यूज़ क्रोनिكل* में छपे उनके पत्र को पुनर्प्रकाशित किया। जहाँ उन्होंने हिन्दू कोड बिल पर स्वर्गीय गांधी की असहमति को उद्धृत किया था, 'मैं ऐसी अवस्था का स्वप्न नहीं देखता जिसमें पत्नी अपना धंधा पति से अलग करे। बच्चों की संभाल और घर की देखभाल का काम ही उसकी समस्त शक्तियों को लगाए रखने के लिए पर्याप्त है।' ⁹⁴

गीता प्रेस से पुराना जुड़ाव रखने वाले स्वामी करपात्री हिन्दू कोड बिल पर अपना ज़हर उगल रहे थे। ज़ाहिर तौर पर वे अपने संसाधनों को मिलाकर काम कर रहे थे। ऐसा करते हुए *कल्याण* ने उसी जन सूचना को छपा जो करपात्री महाराज के *सन्मार्ग* में जन सूचना के रूप में पहले ही छप चुका था। प्रवर समिति की बैठक 20 जुलाई 1948 को होनी थी और संविधान सभा का सत्र 4 अगस्त से शुरू होना था। इस समय से पहले ही जैन, आर्य समाजी और सिख, यानी हिन्दू कोड बिल के विरोधियों को मुखर होकर असहमति जताने के लिए कहा गया।

'इस समय सभी लोग झंझटों में फंसे हैं। देश की परिस्थिति से लाभ उठा कर सरकार शीघ्रता के साथ यह बिल पास कर देना चाहती है। लोकतंत्र सिद्धांतों का कुछ तो ध्यान होना चाहिए। गाँव के लोगों को तो इसका पता तक नहीं है। श्री नेहरू जी से हमारा अनुरोध है कि वे उक्त समिति की रिपोर्ट में लिखित डॉ मित्र का मत ध्यानपूर्वक पढ़ कर उस पर गम्भीरता से विचार करें। साथ ही कोड विरोधी विचार रखने वाले सभी लोगों को इस बीच सभाएँ करके और भारत सरकार के पास 4 अगस्त के पहले तार तथा पत्र भेज कर अपना पूरा विरोध प्रकट करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो बाद में यही कहा जाएगा कि अधिक विरोध न होने से ही इस तरह के सुधार सबको मान्य हैं।' ⁹⁵

अगले ही महीने *कल्याण* ने सरकार से जोशीला आग्रह करते हुए बिल को आगे नहीं बढ़ाने को कहा। पिछले तर्कों को दोहराते हुए पत्रिका ने सरकार से 'हिन्दू भारत के बिना ताज के बादशाह' मालवीय के विचारों और कलकत्ता उच्च न्यायालय के चारों जजों की बात पर गौर करने का आग्रह किया जिन्होंने कहा, 'इस समय हिन्दू धर्म शास्त्र के नियम ठीक तरह निश्चित हो गए हैं और लोग उन्हें अच्छी तरह समझते हैं। इसीलिए किसी कोड के बनने की ज़रूरत नहीं है। हमें यह पता नहीं है कि किसी भी देश में किसी भी जाति के पूरे व्यक्तिगत क़ानून को कोड के रूप में बनाया गया हो या बनाने की चेष्टा की गई हो। और हमारा यह विश्वास है कि भारत वर्ष में सब जातियाँ मुसलमानों के समान इस बात को बड़ी दृढ़ता से प्रतिवाद करेंगी यदि उनके व्यक्तिगत क़ानून को कोड के रूप में बनाया जाये। हम कोई कारण नहीं देखते कि हिन्दुओं के साथ ही क्यों भिन्न व्यवहार किया जाये।' ⁹⁶

संविधान सभा के अगस्त 1948 के सत्र में हिन्दू कोड बिल नहीं लिया जा सका लेकिन *कल्याण* ने अभियान जारी रखा। संपादकीय टिप्पणी में पोद्दार ने पाठकों को

सलाह दी कि वे यह न समझें कि बिल बर्खास्त हो गया है। 'डॉ श्री राजेन्द्र प्रसाद जी ने क़ानूनी कारण दिखला कर भी बिल को स्थगित करने की सलाह दी थी। परन्तु उनकी सलाह नहीं मानी गई और उस पर बहस करना आगामी अधिवेशन के लिए स्थगित किया गया। इसलिए पहले की तरह ही सामान्य जनता व संगठनों को विरोध सभाएँ, पत्र लेखन और टेलीग्राम भेजते रहना होगा।' ⁹⁷ यह सच था कि 'प्रसाद ने शुरुआत से ही हिन्दू कोड बिल का पुरजोर विरोध किया था। उन्होंने महसूस किया कि यह बिल मज़बूत पारिवारिक की कड़ियों को तोड़ देगा और हमारी सांस्कृतिक परंपरा बिगड़ जाएगी।' ⁹⁸

मंदिर प्रबंधन को अपने नियंत्रण में लेने की सरकार की योजना पता चलने पर *कल्याण* ने उसी संपादकीय टिप्पणी में मंदिरों को बड़ा भू-भाग दिए जाने को न्यायोचित ठहराया। *कल्याण* का कहना था कि वे उसी से होने वाली आमदनी से अपना आर्थिक देख-रेख करते हैं। 'इन मंदिरों के द्वारा होने वाली हिन्दू संस्कृति की रक्षा के लिए इनके साथ जुड़ी हुई ज़मींदारियों की रक्षा परम आवश्यक है जो मुसलमानी और अंग्रेज़ी शासनकाल में भी अक्षुण्ण बनी रही।' ⁹⁹ स्वतंत्र भारत के 'अपने' क़ानून में कमज़ोर पड़ती अपनी स्थिति को बयान करते हुए गीता प्रेस ने कहा कि इस तरह मंदिरों की ज़मींदारी को कब्ज़े में ले लेना पाप होगा और बड़े शर्म की बात होगी। मंदिरों को प्रति माह सुनिश्चित भत्ता देने का सरकार का प्रस्ताव अप्रभावी ही रहेगा। हालाँकि उसने मंदिरों के स्वामित्व वाली ज़मीन पर काम कर रहे किसानों के अधिकारों की रक्षा में किए गए सरकारी हस्तक्षेप पर अपनी सहमति दी।

सन् 1949 तक आते-आते *कल्याण* ने हिन्दू कोड बिल पर अपने वार को धार दी। अभी तक इसकी आलोचना केवल धार्मिक और साम्प्रदायिक भाषण ही थे, लेकिन अब वहाँ कुछ सार्थक विरोध नज़र आ रहे थे। पत्रिका ने एक बड़ी आलोचना के माध्यम से प्रस्तावित विधेयक को तीन स्तरों पर चुनौती दी। ¹⁰⁰ पहला, संविधान सभा को धार्मिक मामलों में क़ानून बनाने का अधिकार नहीं है, क्योंकि न तो मतदाता और न ही मतदान प्राप्त करने वाला ही धर्म की जानकारी रखता है। और अगर धार्मिक जानकारी ही नहीं है तो वे धार्मिक मामलों पर कुछ भी तय किस आधार पर करेंगे? दूसरा, इसी संविधान सभा ने सिद्धान्त: यह स्वीकार किया है कि वह धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी और यह ऐसा ही मामला है, हिन्दुओं के लिए विवाह एक पवित्र प्रथा है। तीसरा, धर्मनिरपेक्ष देश में किसी एक धर्म से जुड़ा क़ानून बनाना आपत्तिजनक है। अंतिम अभियोग यह था कि बहुसंख्यकों के धार्मिक नियमों में हस्तक्षेप किए गए जबकि अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों को छोड़ दिया गया। इसको नेहरू की उस नीति के रूप में देखा गया जिसमें वे अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों के प्रति तरजीही रुख रखते हैं।

कल्याण ने संविधान सभा की मूलभूत बुनियाद पर भी प्रहार किए। यह सच में लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहा है जिस तरह इसे प्रांतीय सभाओं में चालीस करोड़

की आबादी में से साढ़े तीन करोड़ आबादी द्वारा चुना गया है । ‘इन बारह प्रतिशत में से मुसलमानों के मत निकाल दिए जाएँ तो प्रतिशत बहुत ही कम हो जाता है ।’ ¹⁰¹

इसी लेख में विधेयक की कुछ विशिष्ट धाराओं को इंगित करते हुए इससे पड़ने वाले प्रभावों का एक भयानक चित्र उकेरा गया । सगोत्रीय विवाह को अनुमति देने का अर्थ हुआ कि चचेरे-फुफेरे या चाचा-मामा या भतीजी भी आपस में विवाह कर सकते हैं । अंतर्जातीय विवाह को क़ानूनी संरक्षण मिल जाएगा और हिन्दुओं में किसी भी जाति और अन्य धर्मों में विवाह वैध हो जाएँगे । *कल्याण* ने एक दृश्य प्रस्तुत किया जहाँ किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य का मनमौजी लड़का नीची जाति की लड़की या ईसाई या मुसलमान लड़की को घर ले आए, और मांसाहार करे और वर्ण व्यवस्था के नियमों को मानने वाले परिवार को दुःख पहुँचाए । अगर कोई ईसाई या मुसलमान खुद को हिन्दू घोषित करे और हिन्दू लड़की से विवाह करे तो उनका पुत्र सीधे माँ की संपत्ति का अधिकारी हो जाएगा और फिर अपने पिता के मूल धर्म में परिवर्तित हो जाएगा । कोर्ट मैरिज के ज़्यादा प्रचलित और स्वीकार्य होने की स्थिति में एक बड़ा खतरा शास्त्रीय विधि-विधान से होने वाली विवाह परंपरा के निरर्थक होने का भी था । तलाक़ के संदर्भ में जैसा कि *कल्याण* ने समझा कि एक साझेदार के दूसरे पर इल्ज़ाम लगाने पर आसानी से तलाक़ होने लगेगा । यह महिलाओं के पतिव्रता होने की महान परंपरा को खत्म कर देगा । इससे महिलाओं को होने वाले नुकसान (विशेषरूप से उसके चरित्र को) पर ज़ोर दिया गया जैसे ‘पुरुष अपनी पत्नी को व्यभिचारिणी सिद्ध करके गुज़ारा देने से बचने की चेष्टा करेगा ।’ गोद लेना एक अन्य मुद्दा था जिसे *कल्याण* ने उठाया । *कल्याण* ने ज़िक्र किया कि गोद लेना एक धार्मिक प्रक्रिया थी जिसके लिए विस्तृत नियम-धर्म मानने होते थे, लेकिन विधेयक के अनुसार गोद लेने के प्रावधान में संतानहीन आदमी ग़ैर-हिन्दू बालक को गोद ले सकता है ।

हिन्दू कोड बिल को संयुक्त परिवार व्यवस्था के लिए भी खतरे की तरह देखा गया । *कल्याण* ने तर्क दिया, ‘इसी प्रथा का यह फल है कि आज हज़ारों वर्षों से नृशंस शासनों की परतंत्रता भोगते हुए भी हिन्दू परिवारों में संपत्ति बचती चली आई है ।’ *कल्याण* के अनुसार, संयुक्त परिवार में संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार का नियम बनाने के कारण एक दिन ऐसा आएगा जब परिवार का एक सदस्य बाक़ी सब से सुझाव-परामर्श किए बिना ही अपने हिस्से को बेचना शुरू कर देगा । इस नए क़ानून की उत्तराधिकार संबंधी धारा पुरुष संतति की ज्येष्ठता के आधार पर सदियों से परखी उत्तराधिकार की व्यवस्था के लिए खतरा है ।

हिन्दू कोड बिल के खिलाफ़ हो रहे विरोध प्रदर्शन ने अचानक तेज़ी पकड़ी जब *कल्याण* ने अपने पाठकों को इसमें शामिल करना शुरू कर दिया । कांग्रेस के भीतर भी कई तरह के मत विद्यमान थे यह कहते हुए पाठकों को प्रधानमंत्री नेहरू और लोकसभा अध्यक्ष जी वी मावलंकर को पत्र भेजने को कहा गया । ¹⁰² करपात्री महाराज और संयुक्त प्रांत के विभिन्न जिलों में काम करने वाली विधानसभा के कांग्रेस सदस्य तथा

अछूतों के लिए काम करने वालों की सूची में अपना नाम दर्ज करवा चुके अलगू राय शास्त्री द्वारा की गई अपील *कल्याण* में प्रकाशित की गई। ¹⁰³ जहाँ एक ओर करपात्री महाराज ने कहा कि विधेयक न तो 'तर्कसम्मत' था और न ही 'शास्त्रसम्मत' या 'लोकसम्मत', वहीं दूसरी ओर आश्चर्यजनक रूप से शास्त्री ने अछूतों के बीच किए गए अपने काम को विस्मृत कर सरकार से कहा कि इस तरह के मसलों को धर्म गुरुओं पर छोड़ दें और समाज के भ्रम में पड़ना बंद करे। उन्होंने कहा कि, 'यह नियम बनाने का कार्य वैसा ही है जैसे हम अपनी अनुपस्थिति में अपने घर पर किसी व्यक्ति पर वहाँ आने वालों को जलपान के प्रबंध के लिए भेजें और वह वहाँ जाकर हमारी सब सम्पति ही बेच डाले।' ¹⁰⁴

हिन्दू कोड बिल विवाद के दौरान *कल्याण* ने एक नई साहित्यिक विधा को शुरू किया जिसमें उन्होंने एक स्वामी द्वारा 15 जून 1949 की 'अर्धरात्रि से अरुणोदय' तक देखे गए सपने का विवरण दिया गया था। यह संभवतः किसी के भी देखे गए सपने से ज़्यादा लम्बा था। इस सपने में कोर्ट का कमरा था और इसमें अम्बेडकर एक वकील की तरह शामिल थे। स्वामी ने सपने में देखे हर संवाद को इस लेख में दोबारा बयान किया। ¹⁰⁵

यहाँ एक ब्राह्मण महिला का केस चल रहा था जिसमें इस महिला से उसके डॉक्टर ने प्रलोभन देकर शादी रचा ली। उसने ब्राह्मण होने का दावा किया लेकिन वास्तव में वह चमार था। जिस व्यक्ति ने डॉक्टर की जाति की गवाही दी वह भी नीची जाति का निकला। ब्राह्मण महिला ने दावा किया, शादी के समय उसे पिता की संपत्ति का एक हिस्सा मिला था। इसे बेच दिया गया और पैसे उसके पति की जेब में गए। उसके सपने में महिला के पति की ओर से केस अम्बेडकर लड़ रहे थे और उनका कहना था कि हिन्दू कोड बिल के अनुसार महिला के पति ने कुछ भी गलत नहीं किया है। बहरहाल, जज ने इस क़ानून को अवैध ठहराया और फ़ैसला ब्राह्मण महिला के पक्ष में दिया। जब अम्बेडकर ने विरोध किया और यहाँ तक कि जज को बर्खास्तगी की धमकी भी दी तब जज ने इसके जवाब में कहा कि वे 'दैवीय शक्ति' से आग्रह करेंगे कि वे भारत से 'काले अंग्रेज' भी बाहर कर दें जिस तरह 'असली अंग्रेज' शासकों को देश छोड़ के जाना पड़ा है, ताकि 'शुद्ध प्रजातंत्र सरकार कायम की जा सके'।

सन् 1950-51 में जब हिन्दू कोड बिल संसद में बहस के लिए रखा गया तब संसद के सिलसिलेवार प्रस्तावों द्वारा इसे बार-बार टाला गया। पोद्दार के युवा दौर के मित्र और रोड्डा आर्म्स षड्यंत्र में सहयोगी प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका एक बड़े वकील और संविधान सभा के सदस्य बन चुके थे। विश्वनाथ दास ने विधेयक पर व्यापक चर्चा की मांग करते हुए आगे बढ़ा दिया। कुछ ने प्रवर समिति को भेजे जाने की मांग की तो कुछ ने सभी धर्मों के लिए एक समान नियम की ज़रूरत का बहाना बनाया। ¹⁰⁶ अंततः विधेयक कई सालों के लिए ठंडे बस्ते में चला गया और इससे निराश अम्बेडकर ने त्यागपत्र दे दिया।

जब एक तरफ़ सुधारवादी और पुरातनपंथी राजनेता विधानसभा की तीव्र लड़ाई में उलझे थे उसी समय दूसरी तरफ़ पोद्दार और *कल्याण* ने हिन्दू कोड बिल के विरोध पर काम शुरू किया। हिन्दू अस्तित्व के खतरे की बीन बजाने की बजाय पोद्दार ने यह बात फैलानी शुरू की कि, नए देश की सरकार के पास हिन्दू कोड बिल पास करने के अलावा भी बहुत काम हैं।

देश को प्रभावित करने वाली बहुत-सी समस्याओं की ओर सरकार का ध्यानाकर्षण करते हुए पोद्दार ने लिखा, 'कहीं सूखा पड़ा है तो कहीं बाढ़, कहीं अन्न के लिए हाहाकार मची है। एक तरफ़ पाकिस्तान जिहाद का एलान कर रहा है और मियां लियाकत जंग पर आमादा हैं। ऐसे हालात में हमारी नीतियाँ एकता और भाईचारे को बढ़ाने वाली होनी चाहिए ताकि सभी एक आवाज़ में सरकार को समर्थन करें और मज़बूती दें। लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसे मोड़ पर हमारी सरकार को हिन्दू कोड बिल लाने की चिंता है।' [107](#)

पोद्दार को एहसास हुआ कि यह विधेयक सन् 1951-52 के पहले आम चुनाव के दौरान सशक्त ढंग से मतदान को प्रभावित करेगा। बहरहाल, *कल्याण* के ज़रिए अपने पाठकों से की गई अपील भी उन्हें कांग्रेस को भारी बहुमत से जीतने से नहीं रोक सकी। नेहरू के नेतृत्व में नव-निर्वाचित और आत्मविश्वास से भरी इस सरकार ने हिन्दू कोड बिल पर फिर से काम शुरू किया और इसे हिन्दू विवाह विधेयक, हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, हिन्दू अल्पसंख्यक और संरक्षण विधेयक, हिन्दू दत्तक तथा भरण पोषण विधेयक में चार हिस्सों में विखंडित कर दिया। सन् 1954-1956 तक तीन साल की अवधि में चारों ही विधेयक भारी बहुमत से पारित कर दिए गए। [108](#)

उसके बाद भी पोद्दार ने हार नहीं मानी। सन् 1954 में हिन्दू उत्तराधिकार बिल पर लोगों के विचार लिए जाने पर उन्होंने अपने विरोध को दोहराया और 'हिन्दू जनता, शिक्षित, प्रबुद्ध, हिन्दू संस्थानों, धर्म गुरुओं, व्यवसायिक संगठनों' अपने पाठकों से निवेदन किया कि विधेयक के विरोध में क़ानून मंत्री को लिख कर अपना विरोध प्रेषित करें। [109](#) लेकिन यह एक हारी हुई लड़ाई थी और गीता प्रेस ने इसके लिए कांग्रेस को कभी माफ़ नहीं किया। विशेषकर नेहरू को गीता प्रेस ने कभी माफ़ नहीं किया जिनकी वजह से बहुसंख्यक समुदाय पर ये हमला हुआ।

जाति व धर्मांतरण के प्रश्न

गीता प्रेस द्वारा हिन्दू कोड बिल की आलोचना की उत्पत्ति का कारण इस बात के विरोध पर था कि स्वीकृत क़ानून के अनुसार वैवाहिक संबंधों के आधार पर निम्न जातियों को ऊँची जाति के घरों तक पहुँचने का अवसर मिल जाएगा। यह सनातन हिन्दू धर्म की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की नींव खोखली कर देगा। गीता प्रेस अपने आरंभिक दिनों से ही जातीय स्तरीकरण को लेकर अपने इस मत से विचलित नहीं हुआ कि यह न केवल

शास्त्रीय विधान है बल्कि समाज के चारों वर्णों के बीच सामाजिक स्तर पर शान्ति और परस्पर सम्मान को बनाए रखने के लिए भी उत्तरदायी है। इसी वर्ण व्यवस्था को गोबिंद भवन कार्यालय की प्रबंधन न्यास ने गीता प्रेस के भीतर भी बनाए रखा, जहाँ सदस्यता केवल 'ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति के सनातन धर्मी हिन्दुओं' ¹¹⁰ के लिए थी और चतुर्थ वर्ण के 'शूद्रों या अछूतों, और आदिवासियों' के लिए नहीं थी, जो 'द्विज' नहीं थे।

सन् 1932 में यरवदा जेल में गांधी और अम्बेडकर के बीच पूना पैक्ट हुआ। इसमें उच्च जाति के हिन्दुओं और वंचित तबके के प्रतिनिधियों ने इस वायदे के साथ हस्ताक्षर किए कि दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व को बढ़ाया जाएगा। यही पूना पैक्ट गीता प्रेस के लिए पहली परीक्षा की घड़ी साबित हुआ। पोद्दार ने बहुत शोर-शराबे के साथ इसका विरोध किया और पत्रों के माध्यम से गांधी के साथ लम्बे तर्क-वितर्क में उलझे रहे। दोनों ही अपने विचार से टस-से-मस होने को तैयार नहीं थे और एक-दूसरे को सहमत करना चाह रहे थे। गांधी सह-भोजन और मंदिर प्रवेश के पक्षधर थे, वहीं गीता प्रेस के लिए हरिजन मुद्दा कुछ ऐसा था जिसकी शर्त मानना कठिन था। जाति के मुद्दे पर पोद्दार ने गांधी के पुराने लेखन से कुछ हिस्से उद्धृत करते हुए उनकी उभयमुखी दृष्टि को चिह्नित भी किया लेकिन फिर भी गांधी नहीं डिगे।

सन् 1946 में प्रभाकर नामक एक हरिजन ने पंडित बनकर एक विवाह करवाया। गांधी ने विवाहित दम्पति को आशीर्वाद दिया और काका कालेलकर व विनोबा भावे ने विवाह के लिए वेदमंत्रों का हिन्दी में अनुवाद किया। *कल्याण* के एक पाठक ने इस विवाह की खबर को पोद्दार की जानकारी में लाते हुए उनकी प्रतिक्रिया जाननी चाही। चूंकि वे गांधी के अनुयायी थे, अतः उन्होंने जवाब दिया, 'मैं उन्हें संत मानता हूँ और उनकी सत्यशीतला का सम्मान करता हूँ। मैं उन्हें प्रेम करता हूँ और करता रहूँगा। लेकिन जहाँ तक मैं जानता हूँ वे भारतीय परंपराओं के संत नहीं हैं। भारतीय संतों, भगवानों और अवतारों से अधिक वे पाश्चात्य संतों और सामाजिक सुधारकों से प्रभावित हैं। लिहाज़ा वे इस तरह के काम कर बैठते हैं जो भारतीय संस्कृति के एकदम खिलाफ़ हैं।' ¹¹¹ पोद्दार ने 'हरिजनों से घृणा करना पाप है' और 'ब्राह्मण और हरिजन में कोई अंतर नहीं है' भी लिखा। उन्होंने तर्क दिया कि एक शिक्षित ब्राह्मण हो या चांडाल, एक गाय हो या हाथी या कुत्ता, आत्मा सबमें एक ही है। अतः एक शिक्षित व्यक्ति सभी को समान दृष्टि से देखता है, 'लेकिन इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि सभी के लिए उसका व्यवहार भी समान हो।' उन्होंने कहा कि हरिजन को वह सब करने का अधिकार नहीं है जो बाक़ी सभी करते हैं बल्कि 'उन्हें वही करना चाहिए जिसके लिए उसके शरीर को बनाया गया है। इस तरह महात्मा द्वारा किया गया काम न तो हिन्दू संस्कृति से मिलता है और न ही वर्ण धर्म से। चूंकि गांधी को संत माना जाता है और अनगिनत लोग उनपर विश्वास करते हैं और आँख बंद कर उनकी राह को मानने वालों की कमी नहीं है, तो इस लिहाज़ से उनका यह कृत्य गंभीर है। हिन्दू धर्म

के आलोचकों को इससे बढ़ावा मिलेगा जब वे गांधी के इस कृत्य को अपनी मान्यता के पक्ष में जाता देखेंगे। सबसे बड़ा संकट यह है कि एक तरह गांधी स्वयं को सनातनी हिन्दू मानते हैं, और फिर दूसरी तरफ वे ऐसे अशास्त्रीय क्रियाकलापों को भी प्रोत्साहित कर रहे हैं।

इस बीच गांधी ने फ़ैसला लिया कि वे उन्हीं विवाहों में शिरकत करेंगे जहाँ दोनों में से एक पक्ष हरिजन हो। इस फ़ैसले ने पोद्दार को बुरी तरह क्रोधित कर दिया। पोद्दार ने प्रतिक्रिया में कहा, 'अगर यह सच है तो यह भयानक है। अपने बच्चों के लिए महात्मा का आशीर्वाद चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने बेटे/बेटी का विवाह हरिजन से करना होगा। अब महात्मा जी के बारे में कोई क्या बोले?'

अछूतों के मंदिर प्रवेश के मुद्दे को गीता प्रेस ने इस रूप में देखा कि एक स्तर पर यह मुस्लिम लीग के राजनेताओं द्वारा अछूतों को लुभा कर अपनी पार्टी, और अंततः इस्लाम की ओर ले आने की कोशिश है। जिन्ना द्वारा वायसराय काउंसिल में जोगेंद्रनाथ मंडल की नियुक्ति को इस बिंदु को प्रमाणित करने के तौर पर देखा गया। दूसरे, इसे अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' के तहत भी देखा गया जिसके अंतर्गत मजदूरों, अछूतों, मिल मालिकों, किसानों और ज़मींदारों के रूप में नए हित समूह बनाए जा रहे थे। एक बड़े मुद्दे को इतिहास के हवाले से स्थापित करने की कोशिश की गई जो कि अंततः दोषपूर्ण साबित हुई। गीता प्रेस ने कहा कि हिन्दुओं और मुसलमानों ने बिना कोई शर्त रखे एक साथ मिल कर सन् 1857 की लड़ाई लड़ी थी: 'हिन्दू-मुस्लिम एकता का आह्वान करते हुए हम दरअसल उन्हें दो विभिन्न समुदायों में बांट देते हैं। अब हरिजनों को साथ जोड़ने की बात कर हम खुद से उन्हें अलग करके देख रहे हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकता ने जिन्ना को और अछूतोंद्वारा के आह्वान ने अम्बेडकर को जन्म दिया।' [112](#)

अपनी समझ से गीता प्रेस ने मंदिर प्रवेश की मांग को धर्म व राजनीति की मिलावट कहा जिसके लिए गांधी को पूरी तरह ज़िम्मेदार ठहराया गया। और इसे वृहद प्रतिनिधित्व के लिए निम्न जाति द्वारा अपनाई गई दबाव राजनीति की तरह देखा। गीता प्रेस ने दावा किया कि खुद अम्बेडकर ने सन् 1933-34 के मंदिर प्रवेश विधेयक का विरोध किया था। यहाँ गीता प्रेस ने अम्बेडकर के विरोध की पूरी तरह ग़लत और सुचिंतित व्याख्या की। अम्बेडकर के अनुसार अछूतों के लिए मंदिर प्रवेश के बजाय 'उच्च शिक्षा, व्यापक रोजगार और आर्थिक उन्नति' कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण मुद्दे थे। मंदिर प्रवेश 'हिन्दुओं और उनके बीच की दीवार को तो तोड़ कर अछूतों के लिए राजनैतिक अधिकार की दावेदारी के बुनियादी आधार को भी नष्ट' कर देता। [113](#)

मंदिर प्रवेश बहस की बहुस्तरीय जटिलताओं को जानबूझ कर नज़रअंदाज़ करते हुए मदनगोपाल सिंघल के एक लेख ने कई प्रांतीय सरकारों और अछूतों के संगठनों द्वारा विधेयक के विरोध को यह समझाने के लिए इस्तेमाल किया कि हिन्दू संसार इस विधेयक पर एकमत से विरोध में था। [114](#)

सिंघल ने शुचिता के पहलू को उठाया । उन्होंने कहा कि अछूतों को प्रकृति के देवी-देवताओं, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, पृथ्वी, गंगा, बरगद, वृक्ष आदि की उपासना का अधिकार मिला था । ‘सांस्कृतिक प्रतिमाओं’ की तरह भगवान के अन्य रूप वेदों की स्तुति के माध्यम से अस्तित्व में आए और इनकी उपासना केवल ‘द्विज’ कर सकते थे, और ‘इसी आधार पर धर्मशास्त्रों ने मंदिरों में अछूतों के प्रवेश को निषिद्ध किया था ।’ यह तर्क भी दिया गया कि सामाजिक सुधार हृदय परिवर्तन से संभव हैं, क़ानून बनाने से नहीं । अछूतों को कहा गया कि उनके लिए अलग से मंदिर बनवाए जा सकते थे लेकिन उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य और आजीविका पर ध्यान देना चाहिए । प्रकट तौर पर गीता प्रेस जितने भोलेपन से अछूतों के प्रति अम्बेडकर के प्राथमिक सरोकार को दोहरा रही थी वास्तव में यह उतनी सीधी बात नहीं थी । हमें जिस पर विश्वास करने के लिए कहा जा रहा था वहाँ कहीं गहरे धंसे पूर्वग्रह के प्रतिबिंब थे । अस्पृश्यता को न्यायोचित ठहराने के ‘वैज्ञानिक’ कारण भी खोजे गए: ‘महर्षियों ने अपनी विद्वतापूर्ण दृष्टि से परख कर यह निष्कर्ष निकाला कि पीढ़ियों से भंगी का काम करने से फलस्वरूप उनके शरीर पर कीटाणु रह जाएँगे और इस तरह अछूत व्यवस्था की आवश्यकता पड़ी ।’

कल्याण के सन् 1950 के वार्षिकांक *हिन्दू संस्कृति अंक* में मंदिर प्रवेश की मांग की आलोचना पहले से ज़्यादा मुखर और उत्तेजक रूप ले चुकी थी, यहाँ तक कि इसमें अछूतों के लिए अपमानजनक शब्द भी प्रयुक्त थे । वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के एक लेख में लिखा था: ‘जिन्होंने अच्छे कर्म किए होते हैं वे ब्राह्मण और क्षत्रिय के रूप में जन्म लेते हैं और जिनके कर्म बुरे होते हैं वे चांडाल के रूप में जन्म लेते हैं । पाप करने वाले मनुष्य का शरीर अपवित्र होता है । वह उसी अपवित्रता के साथ अगले जन्म में प्रवेश करता है । इसलिए ऐसे व्यक्तियों के मंदिर में प्रवेश को वर्जित किया गया है । अछूतों को पता होना चाहिए कि उनके मंदिर प्रवेश पर निषेध उनके पिछले जन्मों के पापों का परिणाम है । उन पापों का पश्चाताप करना उन्हें मंदिर प्रवेश से ज़्यादा शुद्ध करेगा ।’

[115](#)

अस्पृश्यता के नियमों को पक्षपातपूर्ण मानने से इंकार करते हुए वर्णाश्रम स्वराज्य संघ ने महिलाओं को ‘अशुद्ध’ माने जाने की दलील दी, जहाँ *मनुस्मृति* में यह लिखा है कि चांडाल के संपर्क में आने पर स्नान अनिवार्य है उसी तरह मासिक धर्म के समय या दुग्धपान करवाने वाली स्त्री के शारीरिक संपर्क में आने पर भी नहाने का प्रावधान है, चाहे वह माँ, बहन या पत्नी ही क्यों न हो ।’ अति विनीत स्वर में अछूतों को कहा गया कि अगर ऊँची जाति वाले उनके साथ सच में दुर्व्यवहार कर रहे हैं तो उनका भी वही हश्र होगा जो संयुक्त राज्य अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों के साथ हुआ: उनमें से लाखों लोग जीवित ही नहीं रह पाएँगे ।

यह नया गणराज्य पोद्दार की कल्पना वाले हिन्दू राष्ट्र जैसा नहीं था । भारत के संविधान में सम्मिलित धर्मनिरपेक्षता ही पोद्दार के अफ़सोस की एकमात्र वजह नहीं थी । लेकिन निर्णायक स्थितियों में मौजूद बहुत-से नेताओं ने सुधारवादियों के साथ

मिलकर पुरातनपंथियों की आवाज़ को कमज़ोर किया। बिहार ने पहला क़दम 27 सितंबर 1953 को उठाया जब मुख्यमंत्री श्री कृष्ण सिन्हा ने कांग्रेस नेता महेश प्रसाद सिंह और विनोदानंद झा के साथ मिलकर आठ सौ हरिजनों के समूह को देवघर (अब झारखंड में) के बैद्यनाथ मंदिर के मुख्यद्वार से प्रवेश दिलाया। ¹¹⁶पोद्दार के अनुसार यह अपमानजनक घटना थी जिसकी कड़े शब्दों में पुरजोर ढंग से निंदा की जानी चाहिए।

देश के सबसे पुराने बारह शिव धामों (शिव के ज्योतिर्लिंगों) में से एक बैद्यनाथ धाम ¹¹⁷के लिए इस तरह का विवाद नया नहीं था। सन् 1934 में गांधी हरिजन सेवक संघ के बुलावे पर यहाँ आए थे और पुरातनपंथी समूहों के हथ्थे चढ़ते-चढ़ते बचे थे जिन्होंने मंदिर के द्वार खोलने और अछूतों के शिव लिंग की पूजा के विचार का हिंसात्मक विरोध किया था। देवघर छोड़ने से पहले गांधी ने हज़ारों की संख्या में मौजूद अपने समर्थकों से कहा कि वे मंदिर में प्रवेश तभी करेंगे जब हरिजन उनके साथ होंगे।

गांधी के खिलाफ़ सनातनियों के व्यवहार ने उनके विरोध में पर्याप्त जनमत तैयार कर दिया, जिसे मुंगेर में 3 मई 1934 की जन सभा में एक प्रस्ताव पारित कर ज़ाहिर किया गया। इस संदर्भ में हिन्दू शास्त्र के मत जानने के लिए प्रतिनिधि विद्वानों का प्रतिनिधिमंडल बनाया जाना तय हुआ। सी राजगोपालाचारी की बेटी से देवदास गांधी का विवाह करवाने वाले लक्ष्मण शास्त्री जोशी को हरिजनों की ओर से प्रतिनिधित्व करने की ज़िम्मेदारी दी गई जबकि सनातनियों की ओर से पंडित अखिलानंद प्रतिनिधि बने। यहाँ कहा जाता है कि जोशी ने 'बिना किसी संदेह के यह सिद्ध किया कि वैदिक विचार हरिजनों के बैद्यनाथ धाम मंदिर प्रवेश के मार्ग में बाधक नहीं हो सकते।' हालाँकि अखिलानंद ने विरोध किया और इस बहस का असर भी हुआ। जिसके परिणामस्वरूप 'सनातनियों ने हरिजनों के हितों के खिलाफ़ देवघर मंदिर के परिसर में जन सभाएँ करनी बंद कर दीं।'।

बैद्यनाथ धाम में हरिजनों के साथ श्री कृष्ण सिन्हा का प्रवेश एक लम्बे संघर्ष का अंतिम पड़ाव था। *बलपूर्वक देव मंदिर प्रवेश और भक्ति शीर्षक* वाले बारह पृष्ठों के पर्चे के माध्यम से पोद्दार ने तीखी प्रतिक्रिया दी। उन्होंने दावा किया कि बिहार की घटना के बाद अचंभित जनता उनके विचार जानना चाहती है और इस संदर्भ में उन्हें इतनी मात्रा में पत्र प्राप्त हुए हैं कि उन्हें गिनना मुश्किल है।

हरिजनों को भक्ति का अधिकार है, ऐसा कहते हुए भी पोद्दार ने कहा कि भक्ति के लिए मंदिर की अनिवार्यता नहीं है। उन्होंने कहा कि मंदिर सार्वजनिक स्थल नहीं होते, सभी के अपने भगवान होते हैं जिनकी आराधना के विशेष विधान होते हैं। भगवान की मूर्ति भले ही पत्थर, धातु या लकड़ी की बनी होती हो लेकिन उनकी आराधना शास्त्रों के आधार पर की जानी चाहिए: 'भगवान की मूर्ति में जान फूंकने वाले शास्त्रों ने ही पूजा आराधना संबंधी कुछ विधान भी तय किए हैं। अगर हम मंदिर के भीतर रखी मूर्ति के जीवन में आस्था नहीं रखते तो ऐसे किसी भगवान की पूजा

करना व्यर्थ है। कोई भी बाज़ार में बिक रही या संग्रहालय में रखी भगवान की तस्वीर या मूर्ति की पूजा कर सकता है, तो मंदिरों में प्रवेश की मांग क्यों?’ ¹¹⁸ अन्य सनातन धर्मियों की तरह पोद्दार ने भी सभी नागरिकों की समानता पर ज़ोर देने वाले इस नए स्वतंत्र राष्ट्र की बहस को खारिज कर दिया। अब जबकि सरकार के पास बहुसंख्यक मतों से अपने मन मुताबिक क़ानून बनाना और मंदिर सभी के लिए खुलवा देना संभव है या फिर मंदिरों को सरकारी अधिग्रहण में लेना और पूजा के नियमों में बदलाव करना संभव है तब भी ‘कानूनों के ज़रिए किए गए इस तरह के बदलाव शास्त्रों का लिखा नहीं बदल सकते। अगर शास्त्रों के अनुसार नहीं चला गया तो भगवान तस्वीरों में, मंदिरों की मूर्तियों में वास करना बंद कर देंगे... जबरन प्रवेश बलात्कार है, हिंसा है, शक्ति का दुरुपयोग है। यह किस तरह का लोकतंत्र या स्वराज है जो किसी व्यक्ति, राजनैतिक दल या सत्तासीन दल को पूजास्थल में जबरन प्रवेश करने देकर किसी की धार्मिक आस्था से खिलवाड़ कर रही है?’ सरकार द्वारा मंदिर अधिग्रहण को विनोबा भावे के समर्थन की खबरों पर प्रतिक्रिया देते हुए पोद्दार ने कहा कि गांधी समर्थक होकर भी विनोबा बलात्कार का समर्थन कैसे कर सकते हैं? पोद्दार ने उसी साँस में संभावित हिंसा की चेतावनी देते हुए उन सनातनियों की आलोचना की जिन्होंने विनोबा भावे और उनके साथ की एक महिला पर शाब्दिक प्रहार किए थे।

पोद्दार के पर्चे में 5 नवंबर 1932 का गांधी लिखित पत्र शामिल था। जिसमें उन्होंने कहा था कि, वे लोग जो ‘सनातनियों को ताना कसते हैं और लांछन लगाते हैं वे हिंसा करते हैं, और निश्चित रूप से अस्पृश्यता को समाप्त करने के उद्देश्य को हानि पहुँचाते हैं। अस्पृश्यता को धर्म का हिस्सा मानने वाले सनातनियों को किसी भी तरह की हिंसा का शिकार नहीं बनाया जाना चाहिए। उन्हें भी अपने विचार पर दृढ़ता से कायम रहने का उतना ही अधिकार है, जितना हमें।’ ¹¹⁹

सन् 1967 के अक्टूबर में *कल्याण* ने दिल्ली में शंकराचार्य निरंजन देव तीर्थ के दिए गए धार्मिक प्रवचन का सार प्रकाशित किया। ¹²⁰ यह भाषण शहरी जीवन शैली में हो रहे परिवर्तनों और उपभोग के ढर्रे के प्रति घृणा से भरा था। इसमें आदमी के खुलेआम पेशाब करने से लेकर ‘बिस्कुट में अंडे के प्रयोग, सूअर के बालों से बने दूधब्रश और अशुद्ध दूधपाउडर’ तक सभी पर टिप्पणी की। जाति व्यवस्था के बचाव में दिया गया तीर्थ का तर्क सबसे ऊपर था जिसमें उन्होंने इसे सामाजिक अस्मिता की निशानी कहा। उन्होंने कहा कि ‘जाति’ हिन्दुओं के लिए कोई अनोखी चीज़ नहीं है बल्कि यह तो पूरे सजीव जगत से लेकर पत्थर, धातु, पक्षी, पशु, पौधों, फूलों जैसे निर्जीव जगत में व्याप्त है। उन्होंने जाति विहीन समाज के लिए प्रयासरत लोगों का उपहास किया। तीर्थ ने इस तरह के कृत्य को महापाप माना। उन्होंने कहा कि किसी विशेष जाति में पैदा होना भाग्य के हाथों है और उसे ज्ञान और शुद्ध जीवनशैली के आचरण से नहीं बदला जा सकता। ज़्यादा-से-ज़्यादा व्यक्ति इस जन्म में अच्छे कर्म कर सकता है ताकि उसका अगला जन्म बेहतर हो, हो सकता है कि कोई शूद्र भी

अगले जन्म में ब्राह्मण बन कर पैदा हो। उन्होंने कहा कि इसका उल्टा भी सत्य है, एक अविश्वासी ब्राह्मण भी अगले जीवन में शूद्र बन सकता है।

6 दिसंबर 1968 को *कल्याण* में छपे तीर्थ के इस लेख पर लोकसभा में बहस हुई। केंद्रीय गृह मंत्री यशवंतराव चव्हाण ने जॉर्ज फ़र्नान्डिस के सवाल का जवाब देते हुए कहा, 'शंकराचार्य के विचारों से सरकार की पूरी असहमति है और सरकार ऐसे लेखों को राष्ट्रीय अखंडता के लिए हानिकारक मानती है।' हालाँकि उन्होंने यह माना कि लेख कानूनी कार्रवाई योग्य नहीं है। ¹²¹ जब यह मामला संसद में पहुँचा तब *कल्याण* का दिसंबर 1968 का अंक छपने के लिए गया था लेकिन तब भी इसने तीर्थ के लेख के बचाव में सफाई देते हुए 'लेख अन्य धर्मों को हेय नहीं देखता है' का तर्क आंतरिक पृष्ठ आवरण पर देने में कोई देरी नहीं की। ¹²² बिना लेखक के नाम वाले इस आलेख में पोद्दार कि लेखनी की छाप छिपती नहीं है: 'उस लेख को भली-भांति पढ़ कर समझना चाहिए। हमारा तो यह अनुमान है कि लोकसभा में चर्चा चलाने वाले महानुभाव एवं सम्मान्य श्री चव्हाण महोदय ने भी उस लेख को भली-भांति पढ़ने तथा समझने का कष्ट नहीं उठाया है। श्री चव्हाण साहब ने लेख के भावों को जिन शब्दों में व्यक्त किया है और श्री शंकराचार्य जी पर जो उद्गार प्रकट किए हैं वे सर्वथा अशोभनीय हैं।' एक धर्मनिरपेक्ष देश इतने बड़े पद के व्यक्ति को हिन्दू सनातन धर्म और उसके धर्मगुरुओं पर ऐसी टिप्पणी करने का कोई कारण या कोई अधिकार नहीं है।' *कल्याण* ने भी वह समर्थन जताने वाला टेलीग्राम प्रकाशित किया जो द्वारका के शंकराचार्य ने राष्ट्रपति को भेजा था। इसमें चव्हाण के शब्दों को वापस लेने की मांग की। उन्होंने चव्हाण के शब्दों को 'अत्यंत आपत्तिजनक' कहा। 'हिन्दुओं के धर्माचार्यों की मर्यादा को जानबूझ कर ठुकराने वाला तथा हिन्दू धर्म और हिन्दुओं की धार्मिक आचार पद्धति पर हस्तक्षेप करने वाला है जबकि तथाकथित धर्मनिरपेक्ष शासन तो अन्य अल्पसंख्यक जातियों की हलचलों के प्रति एक शब्द भी बोलने का साहस नहीं है।'

आदिवासियों की स्थिति के प्रश्न पर गीता प्रेस ने हिन्दू राष्ट्रवादियों की तरह ही अपेक्षित चुप्पी बरती थी। दूसरे पिछड़े वर्गों ने 1920 के दशक से खुद के अधिकारों के लिए लड़ना शुरू किया लेकिन विस्तृत फैलाव वाले आदिवासी भारत की आवाज़ मुख्यधारा की राजनीति या मुखर रूढ़िवादी हिन्दी समूहों के बीच में ठोस ढंग से नहीं उठ पाई।

बहरहाल, आरएसएस द्वारा अक्टूबर 1951 में भारतीय जनसंघ का गठन राजनैतिक कार्य के लिए अपने ढांचे को खड़ा करने का पहला प्रयास था। ¹²³ इससे सार्वजनिक और चुनावी क्षेत्र में नए मुद्दों की भरमार आ गई। हालाँकि, जैसा कि क्रिस्टोफ जैफरलॉट लिखते हैं, 'कांग्रेस के भीतर हिन्दू परंपरावादियों की मौजूदगी ने जनसंघ के बेहद मज़बूत तर्कों जैसे हिन्दी को बढ़ावा देना, गो-रक्षा और ईसाई मिशन से रक्षा पर आधारित अपील को छीन लिया। इसीलिए जनसंघ ने अपनी दावेदारी अलग से करनी आरम्भ की।' ¹²⁴ अगस्त, 1953 में पार्टी की इलाहाबाद में हुई अखिल

भारतीय आम सभा ने हाल में अमेरिकी, ब्रिटिश और अन्य विदेशी मिशनरियों की बढ़ती गतिविधियों के प्रति चिंता व्यक्त की जो 'समाज के पिछड़े तबकों कि असाक्षरता और गरीबी का फ़ायदा उठा कर उन्हें ईसाई बना रहे हैं।' ¹²⁵ उन्होंने कहा कि, 'पहले से एक कमज़ोर समाज में ग़ैर-राष्ट्रीय तत्त्वों' के निर्माण ने 'झारखंड और नागा क्षेत्र में स्वतंत्र राज्यों' की उनकी मांग को बढ़ावा दिया और ये मांगें उनके 'विघटनकारी और देशद्रोही प्रभाव रखने के प्रमाण हैं।'

जनवरी, 1954 में जनसंघ ने सरकार से विदेशी मिशनरियों की राष्ट्रविरोधी गतिविधियों पर क़रीब से नज़र रखने की मांग की और यह सुनिश्चित करने को कहा कि 'इन अभियानों को विदेशी धन की मदद नहीं मिले।' ¹²⁶ पार्टी के 'एंटी-फॉरेन मिशनरी वीक' विरोध के चलते मध्य प्रदेश सरकार ने कलकत्ता हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश डॉक्टर भवानी शंकर नियोगी के नेतृत्व में ईसाई मिशनरी की गतिविधियों की जांच करने के लिए एक कमीशन का गठन किया था। ¹²⁷

1940 के दशक अति सक्रिय भूमिका में रहे गीता प्रेस के लिए विदेशी मिशनरियों के आदिवासी क्षेत्रों में काम करने का मुद्दा चिंता और प्रतिकार का विषय बन गया। लेकिन सबसे पहला कार्य यह सिद्ध करना था कि आदिवासी स्वतंत्र होते हुए भी हिन्दू समाज का अभिन्न हिस्सा हैं। *कल्याण* पर वनवासियों के हिन्दू उद्भव की ऐतिहासिकता निर्धारित करने का कार्य आन पड़ा और इसके साथ-साथ गीता प्रेस के बहुत-से सहयोगी आदिवासी क्षेत्रों में पुनर्धर्मांतरण के अभियान में उतर गए। आरएसएस की शाखा के तौर पर सन् 1952 में आदिवासियों के बीच में कार्य करने के उद्देश्य से गठित वनवासी कल्याण आश्रम पहले ही मध्य प्रदेश और वर्तमान के छत्तीसगढ़ के जनजाति क्षेत्रों में सक्रिय था।

राजनीतिक-साधु प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने *कल्याण* में लिखते हुए कहा कि आर्यों के आक्रमण के चलते आदिवासियों को अंदरूनी वन क्षेत्रों में धकेल देने की स्वीकार्यता का सिद्धांत पश्चिमी है और इसमें पश्चिमी सिद्धांतकारों की नासमझी और अधार्मिक रुझान दिखाई देता है। ¹²⁸ उन्होंने कहा कि भारत में दो प्रकार के आदिवासी हैं: इनमें कोल, भील, उरांव, गोंड, बैगा, मटिया और बाकियों को वन्य आदिवासी की श्रेणी में रखा गया है जबकि निषाद, मल्लाह, केवट, कहार और महार को नदी किनारे रहने वाले आदिवासी कहा गया है। *कल्याण* के अनुसार, इनमें दूसरी श्रेणी के आदिवासी प्रायः शहरों के निवासियों को लूटकर अपना जीवन चलाते थे।

जनजातियों के उद्भव के बारे में प्रभुदत्त ब्रह्मचारी का सिद्धांत भी इतना ही आपत्तिजनक था। उनके अनुसार वन के राजा वेन ने वनों में रहने वाले संन्यासियों का दमन किया और बदले में उसे मार दिया गया। लेकिन वेन की मौत से अराजकता फैल गई इसलिए ऋषि को मृतक शरीर को जीवित करना पड़ा। 'काला पुरुष, ठिगना, नासिका का अग्र भाग चपटा था और आँखें लाल थीं।' इस तरह पहले हिन्दू आदिवासी का जन्म हुआ जिसे कभी भी जंगल नहीं छोड़ने के लिए कहा गया।

ब्रह्मचारी का दावा था कि अपने चौदह वर्ष के वनवास के दौरान वन्य और गैर-वन्य निवासियों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध बनाने और विभिन्न आदिवासियों की धार्मिक आदतों को रूपांतरित करने में राम की भूमिका मुख्य थी। 'वनवासियों के देवी-देवता यद्यपि वन, पर्वत, भूमि, गो, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस होते थे किन्तु वर्णाश्रमियों के संसर्ग से और विशेषकर राम जी के वन गमन से वे वर्णाश्रमियों की भांति भगवत्परायण हो गए, राम जी ने तो उन्हें विमोहित करके अपना बना लिया। वे भी राम भक्ति में तल्लीन हो गए।'।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने ब्रिटिश सरकार पर पूरे देश को ईसाई बनाने की कोशिश करने का आरोप लगाते हुए मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों, गुजरात, महाराष्ट्र और बिहार की आदिवासी क्षेत्रों में ईसाइयों की बढ़ती संख्या का लेखा तैयार किया। उनके अनुसार ऐसा प्रयास तो मुस्लिम शासकों ने भी नहीं किया था। जनसंघ के भय को दोहराते हुए ब्रह्मचारी ने कहा कि नियोगी कमीशन की रिपोर्ट 'रोंगटे खड़ी करने वाली' है और इस बात का सुबूत है कि कैसे मिशनरियां भोले आदिवासियों को खाना, शिक्षा और दवाइयों के बदले उन्हें ईसाई में बदलकर उनका शोषण कर रही हैं।

जैसा कि बैक्सटर ने कहा है कि नियोगी रिपोर्ट ने 'सभी साम्प्रदायिक हिन्दू राजनीतिक पार्टियों, आर्य समाज तथा सनातन धर्म जैसे हिन्दू समूहों अन्य राजनीतिक पार्टियों के रूढ़िवादी हिन्दुओं को मिशनरी-विरोधी रुख मुहैया करना जारी रखा।' [129](#) नियोगी कमीशन ने कहा था कि उसने 'स्वतंत्रता के बाद से अमेरिकी लोगों की संख्या में भारी बढ़ोत्तरी देखी है', अनुचित प्रभाव से जमाकर धर्मांतरण कराया जा रहा है। चर्च की राजनीतिक गतिविधियों में बढ़ावा हो रहा है और मिशनरी का कार्य दुनिया भर में 'पश्चिमी सर्वोच्चता पुनः स्थापित करने और क्रिश्चियनिटी को पुनर्जीवित करने की यूनिफार्म वर्ल्ड पालिसी का हिस्सा' है। बैक्सटर के अनुसार, 'कमीशन ने पहले ही यह मन बना लिया था कि उसका क्या निष्कर्ष निकालना है' और उसने ठीक वैसा ही किया। [130](#)

ब्रह्मचारी ने नियोगी कमीशन की सिफारिशों पर तुरंत कदम उठाने की मांग की। इन मांगों में विशेष मांग यह थी कि 'मुख्य रूप से प्रचार कार्य में लगे' मिशनरियों को उनके घर वापस भेजा जाये और इनको मिलने वाली सभी प्रकार की सुविधाओं पर प्रतिबंध लगाया जाये। साथ ही, भारत में यूनाइटेड क्रिश्चियन चर्च बनाया जाये जो विदेशी कोष पर निर्भर न हो तथा संविधान में संशोधन कर केवल भारतीय नागरिकों को ही धर्म का प्रचार करने का अधिकार दिया जाये।

गीता प्रेस को उम्मीद थी कि मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री रविशंकर शुक्ल कोई कार्रवाई करेंगे, लेकिन उनकी असमय मौत ने गीता प्रेस को रूढ़िवादी हिन्दुओं के स्थान पर स्वयं ही आदिवासी क्षेत्रों और ईसाइयत में धर्मांतरण पर नज़र रखने के लिए मैदान में उतरने को मजबूर कर दिया। ब्रह्मचारी ने गीता प्रेस द्वारा संचालित कल्याण आश्रम द्वारा किए गए कार्य, खासकर इसके द्वारा धर्म परिवर्तन कर चुके लोगों को वापस

अपने धर्म में आने के लिए प्रेरित करने को रेखांकित किया। गीता प्रेस ने टीका सहित रामायण की सौ प्रतियाँ आदिवासी क्षेत्रों में वितरित करने के लिए प्रदान कीं।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, जिन्होंने भारत के जनजाति क्षेत्रों में 1,000 किलोमीटर से भी ज़्यादा यात्रा की थी, ने बताया कि कैसे हज़ारों आदिवासी उनकी बातें सुनने को उमड़ पड़ते थे। ¹³¹ उनके अनुसार, ‘...वनवासी बंधु वैसे कहने को लोभवश परिस्थितियों के कारण ईसाई बन तो गए हैं किन्तु उन्हें अपने देश, धर्म तथा जाति के प्रति वैसा ही अनुराग है।’ उनको पूरा विश्वास था कि अगर उनके बीच पूरे मन से काम किया जाये तो वे बड़ी तादाद में हिन्दुवाद की ओर लौट सकते हैं। उन्होंने कई ऐसे उदाहरण दिए जब आदिवासियों ने रामायण को हाथों-हाथ लिया। एक स्थान पर तो उन्होंने पाया कि मंदिर, बैठक कक्ष और धार्मिक चर्चा के लिए कमरा बनाए जाने के साथ-साथ रात भर रामायण का पाठ होता रहा।

आदिवासी क्षेत्रों में रामायण मंडलियां बनाई गईं। जशपुर में काम करने वाले आरएसएस के स्वयंसेवक भीमसेन ने लिखा कि इन मंडलियों की प्रेरणा गोलवलकर से आई जो कल्याण आश्रम द्वारा सन् 1963 में हुई इन मंडलियों की एक बैठक में मौजूद रहे थे। लेकिन इस पूरी पहल को गीता प्रेस का बड़ा समर्थन हासिल था जिसके चलते इन समूहों को रामायण और अन्य धार्मिक ग्रंथों की मुफ्त आपूर्ति हो सकी।

हिन्दू संस्कृति पर विशेषांक

उच्च गुणवत्ता के धार्मिक ग्रंथों को कम दाम में छापना ही गीता प्रेस का प्राथमिक उद्देश्य था लेकिन यह पर्याप्त नहीं था। इसके पीछे जनसमूह को, खासकर महिलाओं और बच्चों को सनातन धर्म के भक्ति, अनुष्ठान, नैतिकता, निजी व सार्वजनिक आचरण, आवश्यक आत्मरक्षा और एक तरफ़ मुसलमानों से होने वाले खतरे और दूसरी तरफ़ धर्मनिरपेक्ष सरकार से होने वाले खतरे के प्रतिकार के पाठ पढ़ाने की विशेष इच्छा का बल शामिल था। गीता प्रेस ने *कल्याण* व समय-समय पर छपने वाली अन्य पुस्तकों में इन्हीं पाठों को सूत्रबद्ध किया लेकिन इसमें हिन्दुवाद को लेकर ठोस रूपरेखा की कमी थी। यह कमी सन् 1950 में *कल्याण* के *हिन्दू संस्कृति अंक* प्रकाशन के बाद पूरी हुई। यह हिन्दू संस्कृति पर छपा 800 पृष्ठों का अंक था जिसमें इससे जुड़े एक भी पहलू को नहीं छोड़ा गया था। *हिन्दू संस्कृति अंक* के अब तक सात संस्करण आ चुके हैं और लगातार प्रकाशन में रहे इस विशेषांक की अब तक 147,200 प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

विषय चयन के साथ-साथ लेखकों का चयन भी *हिन्दू संस्कृति अंक* का एक अनोखा पहलू था। इसमें शंकराचार्य से लेकर हिन्दू महासभा के दक्षिणपंथी राजनेता जैसे साधु राजनेता महंत दिग्विजयनाथ और चांदकरण शारदा, आरएसएस प्रमुख एम एस गोलवलकर, करपात्री महाराज जैसे राजनेता-साधु और विनोबा भावे जैसे गांधीवादी थे। वहीं हिन्दी के लेखक अयोध्या सिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ और

सुमित्रानंदन पंत जैसे लेखकों को मिला-जुला कर हिन्दू संस्कृति अंक के पृष्ठों में विभिन्न दर्शनग्राहियों की एक मिली-जुली आवाज़ थी। हालाँकि अनुमानतः एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी इन सभी लेखों के केंद्र में सनातन धर्म की सर्वोच्चता को स्थापित करना और उसके गौरवपूर्ण इतिहास पर प्रकाश डालना ही दो प्रमुख उद्देश्य थे। इन उद्देश्यों की प्राप्ति हिन्दू संस्कृति की ठोस प्रकृति और इसकी लम्बी परंपरा में शिक्षा, दर्शन, चिकित्सा, वास्तुशिल्प, विज्ञान, संगीत, भाषा और साहित्य, धार्मिक ग्रंथों की भरमार के अलावा इसके धार्मिक अनुष्ठानों की व्याख्या पर ज़ोर दे कर ही की जा सकती थी। इनमें से बहुत-से लेखों में राजनैतिक व साम्प्रदायिक व्यंजना थी।

हिन्दू अस्मिता के पहले ही सवाल से निपटते हुए स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती ने कहा कि वेदों जैसे धार्मिक ग्रंथों और वर्णाश्रम धर्म के सिद्धांतों को मानने वाले व्यक्ति को हिन्दू माना गया है। ¹³² इनके अनुसार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास नामक हिन्दू जीवन की चार अवस्थाओं और चातुर्वर्ण्य समाज व्यवस्था की नींव पर ही हिन्दू पहचान टिकी है। नए धर्मनिरपेक्ष गणराज्य की स्थापना से निर्भीक होकर स्वामी ने स्वतंत्र भारत के शासकों को हिदायत दी कि वे देश के प्रशासनिक कामों को हिन्दू संस्कृति के अनुसार करें क्योंकि हिन्दुस्तान, हिन्दुओं का देश है। इस लेख में कहा गया कि ‘अन्य संस्कृतियों के अनुयायी अन्य देशों में हिन्दुओं की भांति ‘अतिथि रूप में’ यहाँ आकर रहें तो कोई हानि नहीं।’ इस तरह सरकार को चेतावनी दी गई कि धार्मिक व सामाजिक मामलों से दूर रहे और ऐसे क़ानून बनाने से परहेज़ करे जिनकी वजह से जाति की रेखाएं धुंधली हों तथा अछूतों को मंदिर में पहुँचने की इजाज़त मिले। असफल होना ही समानता कायम करने वाली कोशिशों की नियति है। हिन्दू संस्कृति इस लेख में कहा गया कि ‘इतिहास साक्षी है कि बड़े-बड़े दूरदर्शी बौद्ध सम्राट अशोक, कनिष्क आदि के बाद जब अदूरदर्शी परवर्ती बौद्ध राजाओं ने समाज में समानता फैलाने का प्रयत्न किया तब उसका फल उल्टा हुआ।’ बहरहाल, गो-हत्या को पूर्णतः प्रतिबंधित करने वाले क़ानून की तत्काल मांग भी उठाई गई।

समर्थकों में उत्तेजना भर देने वाले स्वामी करपात्री महाराज को ‘हिन्दुस्तानी’ नाम की इस मिश्रित संस्कृति की नई अवधारणा ने बैचैन किया हुआ था जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों के शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की पैरवी थी। ¹³³ करपात्री महाराज के लिए यह ‘खिचड़ी संस्कृति’ थी। अपने लेख में उन्होंने कहा, ‘प्रायः देखा तो यह गया है कि जहाँ-जहाँ भारतीय संस्कृति के किसी अंग पर विदेशी प्रभाव पड़ा, वहीं उसमें निकृष्टता आ गई। इसे दर्शन कला साहित्य आदि में दिखाया जा सकता है। हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू धर्म वेदादि शास्त्र मंदिर और रामकृष्ण आदि समझ में आ सकते हैं, उसी तरह कुर’आन मस्जिद इस्लाम अरबी उर्दू भाषा भी समझ में आ सकती है, परन्तु इन दोनों को बिगाड़ कर वेद, पुराण, कलमा, कुर’आन, मंदिर, मस्जिद, अल्लाह, राम को मिला कर हिन्दुस्तानी संस्कृति, हिन्दुस्तानी भाषा आदि कदापि समझ में नहीं आते।’

अखिल भारतीय पुरातनपंथी हिन्दुओं की मंडली का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री भारत धर्म महामंडल [134](#), में हिन्दुओं द्वारा अपनाए नियमों और अनुष्ठानों का उल्लेख करते हुए हिन्दू की परिभाषा को विस्तार दिया गया था । इसमें हिन्दू धर्म के सोलह आधारभूत सिद्धांतों की सूची भी थी, जिन्हें सोलह कला रूप कहा गया । [135](#)

गोरखपुर के नाथपंथी मुख्यालय के अध्यक्ष और हिन्दू महासभा के प्रमुख नेता महंत दिग्विजयनाथ ने हिन्दुत्व के विचारों को साम्प्रदायिक मानने से इंकार किया और कहा कि 'यह आज का एक प्रचलित नारा हो गया है और यह भी दावे के साथ कहा जा सकता है कि इसके सदृश्य भ्रमपूर्ण और अनर्गल नारा हो भी नहीं सकता । यदि आज के अनभिज्ञ भारतीय और विशेषकर हिन्दू यह समझ सकें कि हिन्दुत्व और असाम्प्रदायिकता में उतना ही अंतर है जितना आकाश और पाताल में ।' [136](#) महंत दिग्विजयनाथ ने हिन्दू महासभा के अनुसार, 'सिंधु नदी से कन्याकुमारी तक के क्षेत्र में रहने वाला' 'हिन्दू' की परिभाषा को उद्धृत करते हुए कहा कि इससे ज़्यादा गैर-साम्प्रदायिक परिभाषा दूसरी नहीं हो सकती । अगली ही सांस में उनके भीतर का कट्टर हिन्दू उभर आया, 'हिन्दू वह है जो इस समग्र भारतभूमि को पितृभूमि और पुण्यभूमि मानता है । जो मनुष्य इस भूमि को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि मानेगा वह कभी इसको धोखा नहीं दे सकता ।' महंत दिग्विजयनाथ ने व्याख्या करते हुए कहा कि पुण्यभूमि वह स्थल है जहाँ व्यक्ति तीर्थ के लिए जाता है और जहाँ उसके धर्म की पवित्र आत्मा जन्म लेती है । अपने द्वारा अभी तक दिखाई गई सहनशीलता को खारिज करते हुए दिग्विजयनाथ ने पूरा ज़ोर दिया और कहा कि भारतीय नागरिक के हृदय में बारम्बार इसी धरती पर पैदा होने की प्रार्थना हो न कि 'मदीना' में पैदा होने की । उन्होंने आगे जोड़ा कि 'एक मुसलमान या अंग्रेज़ यह मानता है कि भारत भूमि उसकी पितृभूमि है और वह हिन्दू तब तक नहीं कहला सकता जब तक वह उसे पुण्यभूमि भी न माने अर्थात् यहाँ के तीर्थों को अपना तीर्थ न माने । उसे फिलिस्तीन और मक्का की याद छोड़नी ही पड़ेगी और शुद्ध भारतीय बनना ही पड़ेगा ।' महंत दिग्विजयनाथ ने अपने पाठकों से कहा कि कल्पना कीजिए अगर भारत और मक्का में युद्ध हो जाये, तब भारत को अपनी पुण्यभूमि नहीं मानने वाले मुसलमान मक्का की तरफ़दारी करेंगे । हिन्दुत्व की उनकी कल्पना का निहितार्थ स्पष्ट था कि 'अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के नेतृत्व और संरक्षण को स्वीकार करना होगा ।'

बौद्ध और जैन धर्म को हिन्दू धर्म की छत्रछाया में लेकर इसे विस्तार देने की कोशिश भी साथ-साथ चल रही थी । जबकि यह स्पष्ट था कि ये दोनों ही धर्म खुलेआम जाति व्यवस्था और इसके बहुत सारे रीति-रिवाजों को लेकर सनातन हिन्दू धर्म का विरोध कर चुके थे । बहुत बार इस बात पर भी बहस हुई कि क्या बौद्ध और जैन धर्म 'भारत में प्रादुर्भाव होने के कारण हिन्दू धर्म में शामिल हैं और सभी बहसों व आलोचनाओं से परे हैं ।' [137](#) दिग्विजयनाथ ने बहुत सारे हिन्दू विरोधी सम्प्रदायों का उल्लेख किया: 'चार्वाक भी उतने ही हिन्दू थे जितना की व्यास' और 'उतने ही अहिंसा

की विचारधारा को मानने वाले बौद्ध और जैनी भी हिन्दू हैं ।’ ¹³⁸ दिग्विजयनाथ के विलक्षण विश्लेषण के अनुसार हिन्दुवाद एक विशाल सागर की तरह था जिसमें बहुत-सी नदियाँ जा कर मिलती हैं । उन्होंने कहा कि ‘हिन्दू एक महान राष्ट्र का नाम है न कि किसी फ़िरके का! हिन्दुत्व एक आदर्श भारतीय राष्ट्रीय समाजवाद है । हिन्दुत्व साम्प्रदायिकता नहीं राष्ट्रीयता है, ऐसी राष्ट्रीयता जिसका भारत के अतिरिक्त कोई अस्तित्व ही नहीं । किसी दिन भारत की इस राष्ट्रीयता (हिन्दुत्व) के समाप्त होने की बात सोची जा सकती है तो उसी के साथ यह भी सोच लेना चाहिए कि उस दिन भारत भी समाप्त हो जाएगा ।’

हिन्दू महासभा के एक अन्य बड़े नेता कुंवर चांदकरण शारदा ने महंत दिग्विजयनाथ के हिन्दुवाद-साम्प्रदायिकता के वर्णन में रही-सही कमी को पूरा कर दिया । शारदा ने हिन्दू संस्कृति की परिभाषा पर अपना ध्यान केंद्रित रखा और कहा कि यह एक ऐसी संस्कृति है ‘जिसमें सब ईश्वर विश्वासी हों, भाई-भाई के समान एक दूसरे को समझने वाले हों, पीले-गोरे-काले का भेदभाव जहाँ न हो, अपितु प्रेम समझ सरलता और सुख शान्ति का रामराज्य हो ।’ ¹³⁹ लेकिन यह परिभाषा तब तक पर्याप्त नहीं थी जब तक इस्लामी संस्कृति से इसकी तुलना नहीं की गई । राम के सत्ता परित्याग व उनके छोटे भाई भरत की उनकी जगह शासन करने की अनिच्छा और मुसलमान शासक औरंगज़ेब द्वारा तख्त के लिए अपने पिता को बंदी बनाने और भाइयों की हत्या करने की घटना के बीच तुलनात्मक अध्ययन किया गया । इस लेख में उनका मत स्पष्ट था कि ‘हम ऐसी संस्कृति को नहीं चाहते जिसके मूल में यह शिक्षा दी गई है कि अन्य धर्मावलम्बी का वध करना ही धर्म है । उनके धर्म स्थानों को तोड़ना, पुस्तकों को जलाना और उनके स्त्री पुरुषों को दास-दासी बना कर अनाचार करने के आदेश हैं ।’

शारदा ने हिन्दू परंपराओं में त्याग को गौरवपूर्ण साबित करते हुए कहा कि ‘14,000 वीरांगनाओं ने जौहर की ज्वाला में भस्मीभूत होकर आर्य संस्कृति को अमर बनाया है’ । इसके आगे उन्होंने गुरु गोविंद सिंह का अपने बच्चों को त्यागना, शिवाजी के मुश्किल दिनों, राणा प्रताप, दुर्गादास राठौर और हिन्दू संस्कृति के अन्य लोगों के उदाहरण दिए । हिन्दू संस्कृति की सर्वोच्चता को स्थापित करने की अपनी कोशिश में शारदा ने आगे तर्क दिया कि एशिया, अफ्रीका और दक्षिण यूरोप के बड़े भाग को अपने अधीन रखने के बाद भी मुसलमान भारत को अपने अधीन नहीं कर सके हैं । मुगल सत्ता अकबर के शासनकाल में अपने शिखर पर थी क्योंकि अकबर ने हिन्दू सिद्धांतों और हिन्दू शासकों के मेल-जोल से शासन करना तय किया । शारदा के लेख के अनुसार अकबर के हिन्दू मित्र राष्ट्रों से बैर पालने के बाद ही मुगल शासन के पतन की शुरुआत हुई । शारदा का वर्णन ‘ग्यारह सौ सालों की अराजकता, आक्रमणों, नरसंहारों और लूट’ के बावजूद भी हिन्दू संस्कृति और सभ्यता को श्रेष्ठ साबित करता है ।

इन दोषपूर्ण वर्णनों से अलग गोलवलकर ने हिन्दू संस्कृति के निर्माण आधारित ठोस तर्क देते हुए जटिल लेख लिखा। ¹⁴⁰ उन्होंने सभी मनुष्यों की ज़रूरतों को पूरा कर पाने की असम्भवता पर बल दिया, व्यक्तिगत स्वार्थ की जगह सामाजिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए व्यक्ति द्वारा अपने को 'मैं' से 'हम' में बदलने के महत्व को बताया। गोलवलकर ने राजसत्ता की सीमाओं को चिह्नित करते हुए बताया कि किस तरह अनियंत्रित शक्ति स्वतंत्रता सुख देने के स्थान पर दासता और उदासी दे सकती है। उनके अनुसार, 'हिन्दू संस्कृति में सत्ता से ऊपर एक निःस्वार्थी महान व्यक्ति की अवधारणा है। राजसत्ता के द्वारा हो सकने वाले अन्याय को अन्याय ही कहते हुए उसे बदल देने का अधिकार भी उन्हें दिया।' ऐसे महान व्यक्ति के पास ही अन्याय को पहचानने कि स्वतंत्रता होती है और उससे लड़ने का साहस भी! अतः 'उन्होंने सत्ता के ऊपर ऊपरी निर्दिष्ट श्रेष्ठ पुरुषों का नियन्त्रण डाला।'।

सत्ता के द्वन्द्वों की व्याख्या करते हुए गोलवलकर ने तर्क दिया कि हिन्दू संस्कृति ने राजनैतिक शक्ति और धन उत्पत्ति के बीच स्पष्ट अंतर बनाया है। गोलवलकर ने लिखा कि 'धन एक शक्ति है, राजसत्ता भी शक्ति है दोनों के द्वारा मद उत्पन्न होकर अन्याय की प्रवृत्ति हो सकती है। राजसत्ता और द्रव्योत्पादन के अधिकार, दोनों के एकत्रित होने पर कितनी उन्मत्तता उत्पन्न हो सकती है, यह कोई भी समझ सकता है! एक ही व्यक्ति या व्यक्ति समूह में दोनों शक्तियों के केन्द्रित हो जाने से शेष समस्त समाज का सर्वथा दीन गुलाम सा हो कर पतित होना या अत्याचार के नीचे पिसे जाने के कारण चिढ़ कर विद्रोही बन जाना और इस प्रकार समाज की शान्ति और सुख का नाश हो जाना स्वाभाविक ही है। हिन्दू संस्कृति इसी सिद्धांत को अपने सामने रख कर ही समाज रचना का प्रयास करती है। इससे परस्पराविलम्ब, परस्पर सहकार्य तथा परस्पर सद्भावपूर्ण स्नेह ही समाज को सुव्यवस्थित रख कर सब व्यक्तियों को सुखका जीवन प्राप्त करा सकता है और हिन्दू संस्कृति इसी सिद्धांत को अपने सामने रख कर ही समाज रचना का प्रयास करती है।'।

स्वतंत्रता की हिन्दू अवधारणा की व्याख्या करने की कोशिश भी की गई जो विदेशी शासन से मिली आज़ादी से किंचित भिन्न थी, इसमें बुद्धि, शरीर और आत्मा की स्वतंत्रता थी। हिन्दू राष्ट्रवादियों के इतिहास के अपने प्रोजेक्ट में योगदान देते हुए जस्टिस जीवजी ने हिन्दुवाद की जड़ें मोहन जोदड़ो और हड़प्पा में तलाशीं। ¹⁴¹ विज्ञान से उपजी आधुनिकता की नई लहर पर सवाल उठाते हुए उन्होंने कहा कि अपनी संस्कृति को दरकिनार कर पश्चिम से प्रभावित हिन्दू कोड बिल को स्वीकार करना और तकनीक व खाद्यान्न के लिए पश्चिम पर निर्भरता हिन्दू मायने में स्वतंत्रता नहीं है। पराधीनता भी हिन्दू संस्कृति को खंडित नहीं कर सकी, इस पर ज़ोर देते हुए उन्होंने लिखा, 'स्वाधीनता दो प्रकार की होती है, भौमिक और दूसरी आत्मिक। पराधीन भारत में भी इसी रूप में हिन्दू संस्कृति अवशिष्ट रह गई थी, इसका कारण यह है कि उसकी आंतरिक स्वाधीनता के बीज को कोई भी नष्ट नहीं कर सका था।' मैकाले द्वारा भारत

में अंग्रेजी शिक्षा नीति को लाने की घटना ने पहली बार इस स्वतंत्रता के सामने संकट खड़ा किया था। जीवजी ने रेखांकित किया कि आधुनिक शिक्षा के परिणामस्वरूप उपभोग की नई संस्कृति सामने आई। चाय, सिगार, बिस्कुट, संघनित दूध जैसे अनेक उत्पादों के उभार ने भारतीय अर्थव्यवस्था को पंगु बनाने वाली क्रीमतों पर आयात में वृद्धि की। जीवजी के अनुसार स्वतंत्रता का मूलभूत अर्थ हिन्दू संस्कृति की रक्षा है। उन्होंने तर्क दिया कि मुसलमानी संस्कृति के पास विश्व को देने के लिए बहुत कुछ (खास) नहीं है। जीवजी ने जताया कि उन्हें डर है कि स्वतंत्रता के बाद हिन्दू संस्कृति में चल रही तोड़फोड़ को देख कर ब्रिटिशों को ज़रूर आनंद आ रहा होगा।

इसी सिलसिले में जाने-माने हिन्दी के लेखक किशोरीदास वाजपेयी ने लिखा कि हिन्दू संस्कृति और राष्ट्रवाद एक ही है। हालाँकि उनका सूत्रीकरण दिग्विजयनाथ जितना कट्टर नहीं था लेकिन वाजपेयी ने माना कि भारतीय संस्कृति और अन्य सभी धर्म सम्मिलित रूप से हिन्दू धर्म ही है। उन्होंने तर्क दिया कि धर्मनिरपेक्षता का मतलब यह नहीं है कि देश संस्कृति को लेकर तटस्थ हो जाये। ¹⁴²

बिड़ला बंधुओं में बड़े जुगल किशोर बिड़ला ने स्वतंत्र भारत में हिन्दू संस्कृति को होने वाले खतरों के बारे में लिखा। इतिहास को अपने ही ढंग से प्रस्तुत करते हुए बिड़ला ने यूरोप, ईरान, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान सभी को आर्य संस्कृति का अंग माना लेकिन चूंकि यहाँ के लोग विभिन्न धर्मों को मानने वाले हैं इसलिए लोग अपने को अलग मानते हैं। संस्कृति और धर्म के परस्पर संबंध पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि 'धर्म की रक्षा से ही संस्कृति भी टिक सकती है। देश का श्रेय हो सकता है।' ¹⁴³ समानता की मांग करने वाले संगठनों द्वारा सनातन हिन्दू धर्म के हो रहे प्रतिरोध ने बिड़ला को चिंता में डाल दिया था। उन्होंने सुधारवादी महिलाओं के जन सभाओं में जाने की आलोचना की। उनके लिए 'कुल्टा' और 'पतित' का संबोधन करते हुए कहा कि इन्होंने सीता, सावित्री और पद्मिनी की परंपरा को ठेस पहुँचाई है। उन्होंने कहा कि सह-शिक्षा और बच्चों में नैतिक शिक्षा के हास ने छात्रों की शारीरिक और मानसिक कमजोरियों के रूप में क्षति पहुँचाई। उनके अनुसार, 'सामाजिक एकता के स्थान पर अनेकता बढ़ रही है, समानाधिकार के नाम पर अशान्ति और विरोध की आग यहाँ तक फैल रही है कि अनेक वर्गवादों के उपरान्त स्त्री और पुरुष वर्ग के नाम पर भी विरोध चल रहा है। यदि स्थिति को नहीं संभाला गया तो भारतीय समाज तथा संस्कृति के सर्वथा नष्ट होने का डर है।'

कांग्रेस के आंतरिक पुरातनपंथियों में से एक, संपूर्णानंद ने जब *हिन्दू संस्कृति अंक* के लिए लिखा तब वे संयुक्त प्रांत के शिक्षा मंत्री थे। ¹⁴⁴ संपूर्णानंद पूर्णकालिक राजनेता होने के कारण कट्टर हिन्दू राष्ट्रवादी सुर में बोलना वहन नहीं कर सकते थे, अतः उन्होंने अपने विचारों को संयत करते हुए भारतीय संस्कृति को सभी का योग कहा। लेकिन इसी के साथ उन्होंने कहा, 'इस मिली-जुली संस्कृति को भारतीय संस्कृति कहना सर्वथा उपयुक्त होगा: परन्तु यह निर्विवाद है कि इसका ताना वही है जिसे आर्य

या हिन्दू नाम से उपलक्षित किया जा सकता है । परधर्मावलंबियों के साथ जैसा व्यवहार हिन्दुओं ने किया है वह वस्तुतः अप्रतिम है ।’

गवर्नर सी राजगोपालाचारी ने भी हिन्दू संस्कृति को भारतीय संस्कृति और भारतीय संस्कृति को ही वैश्विक संस्कृति कहा । [145](#) कल्याण से लम्बे समय तक जुड़े राजगोपालाचारी हिन्दू परंपराओं में पूरी तरह रचे बसे थे लेकिन उन्होंने खुद को हिन्दू-मुस्लिम टकराव से दूर रखा । यही नहीं, उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान, धर्म गुरुओं और भगवान के समक्ष समर्पण पर बल दिया । उन्होंने ज़ोर दिया कि दुःखों और असफलताओं से पार पाने और मन की शान्ति के लिए इसके सिवा कोई दूसरा हल नहीं है । ‘धनी एवं निर्धन, पंडित एवं मूर्ख सबके लिए चाहे वे जीवन में कोई भी धंधा करते हों, हिन्दू संस्कृति का वास्तविक स्वरूप यही है ।’

गांधीवादी विनोबा भावे ने अपने आप को हिन्दू की एक संबद्ध परिभाषा देने तक ही सीमित रखा और कहा कि ‘हिन्दू’ वह है ‘जो वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था में निष्ठा रखने वाला भू-सेवक, श्रुतियों को माता की भांति पूज्य मानने वाला तथा सब धर्मों का आदर करने वाला है: देवमूर्ति की जो अवज्ञा नहीं करता, पुनर्जन्म को मानता और हिंसा से उसका चित्त दुःखी होता है ।’ [146](#)

राष्ट्रभाषा

सबसे ज़्यादा विक्रय वाली हिन्दी पत्रिका का संपादक होने के नाते पोद्दार हिन्दी भाषा के पक्षधर थे । सन् 1941 में सस्ता साहित्य मंडल (सन् 1925 में गांधी और शीर्ष के कांग्रेस नेताओं द्वारा हिन्दी साहित्य को प्रचारित करने की सस्ती उपलब्धता के लिए संस्थापित) ने अपने प्रकाशन की पहुँच को विस्तार देने के लिए पोद्दार से कल्याण के सदस्यों की सूची मांगी । मंडल ने एक पुस्तक मेले की तैयारी कर शहर-दर-शहर पहुँचने की योजना बनाई । इन मेलों में गीता प्रेस की पुस्तकें भी बेची जानी थीं । सस्ता साहित्य मंडल से पत्राचार करते हुए पोद्दार के पुराने मित्र हरिभाऊ उपाध्याय ने एक नोट लिखा कि सदस्यों की सूचनाओं का दुष्प्रयोग नहीं होगा । हरिभाऊ उपाध्याय बाद में राजस्थान के बड़े कांग्रेस नेता हुए । सस्ता साहित्य मंडल ने इसी तरह की मांग अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं से भी की । हिन्दी के समर्थक रहे पोद्दार ने उनकी मांग को स्वीकार किया । [147](#)

पोद्दार द्वारा की गई स्वतंत्र भारत की परिकल्पना में हिन्दी संपर्क भाषा के रूप में केंद्रीय भूमिका निभा रही थी, जिसके पास संगठित करने की शक्ति थी । हिन्दी साहित्य सम्मेलन व हिन्दी लेखकों के साथ हमेशा ही करीबी से जुड़े और भाषाई विमर्शों के हर पहलू से भली-भांति परिचित रहने वाले पोद्दार तथा कल्याण कभी हिन्दुओं की भाषा और अस्मिता की राजनीति के प्रमुख घटक के रूप में हिन्दी का समर्थन करने में नहीं हिचके ।

एक पाठक के हिन्दुस्तानी/उर्दू के वर्चस्व पर चिंता ज़ाहिर करने पर पोद्दार ने क्रोध भरा जवाब दिया कि वे पर्सियन या उर्दू या किसी भाषा के पक्ष या प्रतिबंध की नहीं सोचते । लेकिन हिन्दी में फ़ारसी को मिला कर हिन्दुस्तानी बनाने की कोशिश और लोगों को नागरी व फ़ारसी दोनों पढ़ने के लिए मजबूर करना 'कठोर कृत्य है जो समाज में समानता नहीं लाएगा बल्कि भाषाई साम्प्रदायिकता फैलाएगा । कोई भी इसे फैलते हुए देख सकता है ।' पोद्दार ने कहा कि 'मुसलमान हिन्दी पढ़ने को तैयार नहीं हैं जबकि हिन्दुओं का हिन्दी भूल जाना संस्कृति के विरुद्ध है । क्या किया जाये? आजकल सब उल्टा ही तो हो रहा है । हिन्दी के समर्थकों को हिन्दुस्तानी के थोपे जाने का विरोध करते हुए प्रदर्शन करना चाहिए । कोशिश हिन्दी को उर्दू बना देने की हो रही है । फिर उर्दू से फ़ारसी । ताकि हमेशा के लिए हिन्दी की हत्या की जा सके । ऐसा होने से रोकना होगा ।' ¹⁴⁸

हिन्दी-उर्दू का झगड़ा बढ़ा । इसे *कल्याण* के पृष्ठों में बेलगाम होता हुआ भी देखा जा सकता है । हिन्दुस्तानी/उर्दू की चर्चा के एक महीने बाद उनकी पत्रिका में '*हिन्दुस्तानी का रहस्य*' शीर्षक से दो पृष्ठों का लेख छपा । ¹⁴⁹ पहले भाग में लेखक का नाम नहीं था, शीर्षक में '*एक हिन्दी के मुख से*' लिखा हुआ था । दूसरे हिस्से में लेखक की पहचान दी हुई थी । ये लेखक थे केंद्रीय प्रांत के एक कांग्रेस नेता रविशंकर शुक्ल जो एक हिन्दू परंपरावादी थे और मदनमोहन मालवीय की स्वतंत्र कांग्रेस पार्टी से जुड़े हुए थे । हिन्दू महासभा के बी एस मुंजे ने शुक्ल को कांग्रेस से परिचित करवाया था । ¹⁵⁰ मुंजे तिलक के करीबी थे और आक्रामक हिन्दू राष्ट्रवादी समूहों से जुड़ने से पहले लम्बे समय तक कांग्रेस से जुड़े थे ।

शुक्ल संस्कृत में प्रकांड पंडित थे लेकिन उन्होंने यहाँ उसकी मिलावट नहीं की । वे आंध्र क्षेत्र के मद्रास राज्य के राष्ट्रवादी मुसलमानों के प्रति रोष से भरे थे जिन्होंने मौलाना आज़ाद को अर्जी भेज कर शिक्षा की भाषा तेलुगू से उर्दू करवा ली थी । शुक्ल के अनुसार, इस क्रदम से यह साबित हुआ कि गिनती के कांग्रेसी मुसलमान भी भाषा के मुद्दे पर बाक़ी मुसलमानों जैसे ही हैं । शुक्ल के अनुसार, आंध्र के मुसलमानों की मांग से वहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन में साम्प्रदायिक मतभेद व अविश्वास फैल सकता है । साथ ही उर्दू के स्कूल और कॉलेजों को खुलवाने में करदाताओं के पैसे खर्च होंगे ।

शुक्ल ने महसूस किया कि भाषा के स्तर पर बहुत दुविधा है । और इसके आगे का हिस्सा गांधी के विरोध में था । एक तरह तो भाषा के आधार पर भारतीय राज्यों को पुनर्संगठित करने की मांग की जा रही थी और दूसरी तरह गांधी खुद हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी और उर्दू व देवनागरी लिपि के अनिवार्य शिक्षण का प्रचार कर रहे थे ।

गांधी के हिन्दुस्तानी सूत्र को 'तुष्टिकरण नीति से अधिक कुछ नहीं' कहते हुए शुक्ल ने उनकी कठोर आलोचना की । उन्होंने कहा कि अगर कांग्रेस सरकार इसे लागू करती है तो मुसलमान केवल उर्दू भाषा और साहित्य सीखेंगे और सभी आधिकारिक

काम उर्दू में ही करेंगे । शुक्ल ने एक विकट परिदृश्य को चित्रित करते हुए कहा कि हिन्दुस्तानी का हिस्सा होने की वजह से उर्दू अपना दबदबा बना लेगी और इस तरह लम्बे समय में यही प्रादेशिक भाषाओं के खत्म होने की वजह बनेगी । शुक्ल ने कहा कि मुसलमानों को प्रादेशिक भाषाओं के बजाय केवल उर्दू की पड़ी है । शुक्ल ने कहा कि उर्दू के पाठ्यक्रम में बदलाव लाना चाहिए और हिन्दीवालों को जबरन हिन्दुस्तानी लेने के लिए मजबूर करने के बजाय उर्दू-समर्थकों को हिन्दी अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ।

कल्याण में इसी लेख के दूसरे हिस्से में पाकिस्तान बड़ी सच्चाई बन कर उभरा और शुक्ल की ओर से कांग्रेस पर हो रहे हमलों की तीव्रता कई गुणा बढ़ी हुई थी । प्रख्यात भाषाविद सुनीति कुमार चटर्जी की *इंडो-आर्यन एंड हिन्दी* का उल्लेख करते हुए शुक्ल ने दावा किया कि हिन्दी का अस्तित्व हिन्दुस्तानी से पहले से है । उन्होंने सवाल किया, 'क्या लोगों को अब दोनों ही लिपियाँ सिखाई जाएँगी (उर्दू और देवनागरी)? अगर नहीं तो कौन से देश का रेडियो इसका इस्तेमाल करेंगे और किस देश के विश्वविद्यालय इसे शिक्षण का माध्यम बनाएँगे? मेरे विचार से यह हिन्दुस्तान के हिन्दुओं के लिए ही है । हिन्दुओ जागो ।'

रविशंकर शुक्ल संविधान-सभा के भी सदस्य थे । उन्होंने अपील कर कांग्रेस से कहा कि हिन्दुस्तानी के साथ जो करना है वो करे लेकिन हिन्दी को बर्ख़श दे । उन्होंने कहा कि संयुक्त प्रांत और बिहार में हिन्दी का पूर्ण आधिपत्य होना चाहिए और सभी प्रशासनिक काम हिन्दी में ही होने चाहिए । केंद्रीय सरकार के स्तर पर शुक्ल ने सुझाया कि रक्षा व गृह विभागों में परीक्षण के आधार पर हिन्दुस्तानी का प्रयोग किया जाना चाहिए । शुक्ल उर्दू को वैकल्पिक भाषा बनाने के पक्ष में थे लेकिन केवल इस शर्त पर कि पाकिस्तान भी हिन्दी के पक्ष में ऐसा करेगा । आगे 'हिन्दुस्थान को हिन्दू राष्ट्र बनना चाहिए और इसका राजधर्म हिन्दू होना चाहिए । उच्च पदों पर हिन्दुओं या गैर-मुसलमानों को होना चाहिए । हिन्दू संस्कृति... को नहीं मानने वाले व्यक्ति को हिन्दुस्थान की सरकार का हिस्सा नहीं बनाया जाएगा । केंद्रीय प्रांतों के मंत्री की मांग के अनुसार मुसलमानों को नागरिकता नहीं दी जानी चाहिए । मुसलमानों ने अपनी अलग पहचान की मांग रखी और बदले में उन्हें पाकिस्तान मिला ।'

शुक्ल ने कहा कि 'हिन्दुस्थान' पर 'इंडिया' को तरजीह देने के लिए नेहरू जिम्मेदार हैं 'जिनके बारे में मौलाना आज़ाद कहते हैं, सपने भी अंग्रेज़ी में ही देखते हैं ।' उन्होंने आगे कहा कि 'अंग्रेज़ी भले ही उनकी भाषा हो लेकिन 99.9 प्रतिशत भारतीयों की नहीं है ।' उन्होंने तर्क दिया कि फ़ारसी शब्द 'स्तान' को बदल कर 'स्थान' करना चाहिए, ताकि राष्ट्र 'हिन्दुस्तान' से बदल कर 'हिन्दुस्थान' रहे ।

शुक्ल का निंदात्मक पत्र हिन्दी के ही एक अन्य उत्साही समर्थक रघुवीर को पर्याप्त स्वीकार्य नहीं जान पड़ा । उस समय के कांग्रेस नेता रघुवीर भी 'हिन्दी बचाओ' से जुड़ गए थे और हिन्दी की श्रेष्ठता साबित करने के लिए दूसरी भाषाओं से अलग करने के तर्क दे रहे थे । उन्होंने भारतीय प्रशासन की कमान संभाले उच्च अधिकारियों

को संबोधित करते हुए कहा कि उन्होंने थोड़े से प्रेम और धर्म के बदले में मुसलमानों और ब्रिटिशों के सामने अपने दिल-दिमाग को समर्पित कर दिया है। ¹⁵¹ हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू बहुसंख्यक की सरल-सी अवधारणा को समझने में भारतीय नेताओं की असफलता का राग अलापने के बाद उन्होंने मराठी, नेपाली और गुजराती जैसी कई क्षेत्रीय भाषों की लिपि के रूप में देवनागरी की व्यापक स्वीकार्यता से जुड़ी लम्बी व्याख्या पेश की।

रघुवीर ने पाठकों से अपील कर उन्हें प्रांतीय विधानसभाओं के सदस्यों को संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को भारत की एकमात्र भाषा और देवनागरी को एकमात्र लिपि बनाने के समर्थन में पत्र लिखने को कहा। ऐसा इसलिए क्योंकि छोटी-सी संपादकीय टिप्पणी में केवल पोद्दार का लिखना ही पर्याप्त नहीं था। ¹⁵² उन्होंने चेतावनी दी कि अगर हिन्दुस्तानी भाषा में परिवर्तित हिन्दी और फ़ारसी लिपि ने देवनागरी की जगह ले ली तो आने वाला दौर इतना भयानक बन पड़ेगा कि उससे उबरना मुश्किल हो जाएगा। उन्होंने पाठकों को फिर याद दिलाया कि वे सीधे राजेंद्र प्रसाद, अबुल कलाम आज़ाद और प्रांतीय विधानसभाओं के सदस्यों को इस मुद्दे पर लिखें।

हिन्दी समर्थकों के सामने उसकी शब्दावली और व्याकरण को विकसित करने का समय आया तो केंद्रीय प्रांत और बरार विधानसभा के घनश्याम सिंह गुप्त ने सावधानी बरतने को कहा। उन्होंने बोलचाल की सामान्य भाषा और प्रशासनिक शब्दावली व विभिन्न विषयों के शिक्षण के लिए विशिष्ट शब्दावली में अंतर बताया। और अपने विधिक अनुभवों के आधार पर व्याख्या करते हुए विधि संबंधी उद्देश्यों में हिन्दी शब्दों के प्रयोग में आने वाली कठिनाइयों की चर्चा की। ¹⁵³ उन्होंने इस काम की जटिलता को समझाने के लिए व्यवस्थापिका की शब्दावलियों के कई उदाहरण दिए। उन्होंने उन भाषाई कट्टरपंथियों की बात नहीं मानी जो बोलचाल के हिन्दी शब्दों के बजाय संस्कृतनिष्ठ शब्दों को लागू करने पर ज़ोर दे रहे थे। हालाँकि गुप्त इस बात को लेकर आश्वस्त थे कि नए शब्द दे सकने का सामर्थ्य संस्कृत भाषा में है। उन्होंने हिन्दी में समावेशन के कुछ तय नियमों की वकालत की।

राजभाषा के प्रयोग में अंग्रेज़ी को सन् 1965 के बाद स्थगित करने और फिर हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में सांवैधानिक रूप से अपना लेने के प्रावधान के बाद कई सालों तक भाषा की केतली ठंडी ही रही। लेकिन अंग्रेज़ी के स्थगन की निर्धारित तिथि नज़दीक आने पर दक्षिण भारत, विशेषकर मद्रास राज्य से भाषा को लेकर होने वाले दंगों की सुगबुगाहट की खबर आने लगी। ¹⁵⁴ उत्तर भारत में केवल पैंतीस प्रतिशत लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी भाषा को इस तरह लागू किए जाने को अपनी स्थानीय भाषाओं के प्रति चिंतित दक्षिण भारतीयों द्वारा इसे थोपा जाना समझा गया। यद्यपि राजभाषा अधिनियम 1963 में पास किया जा चुका था और इस बात को सुनिश्चित किया गया कि 'भविष्य में हिन्दी के साथ अंग्रेज़ी का सहअस्तित्व बना रहेगा' तब भी सन् 1965 में हिन्दी विरोधी दंगे हुए।

गीता प्रेस की योजना में हिन्दी हिन्दुओं की भाषा थी । मुसलमान और ब्रिटिश शासकों द्वारा अपने विजितों के मस्तिष्क, शरीर व आत्मा को अधीन करने के लिए अपनी भाषाओं फ़ारसी, उर्दू और अंग्रेज़ी के इस्तेमाल किए जाने का विस्तृत वर्णन देते हुए कल्याण ने तर्क दिया कि हिन्दी और संस्कृत ही हिन्दू धर्म, संस्कृति और उनके प्राचीन विचारों के प्रतीक हैं । उत्तर और दक्षिण भारत के बीच के भाषाई द्वंद का ज़िक्र किए बिना कल्याण ने धर्मों की एकता और भाषाई अस्मिता पर ज़ोर दिया; ‘संस्कृत और हिन्दी पढ़ना हमारे धर्म का अविभाज्य अंग है । जो यह नहीं जानता वह हिन्दू कैसा! हिन्दी देश में भावात्मक एकता पैदा कर सारे राष्ट्र को आबद्ध कर सकती है । [155](#)

दशकों तक कल्याण के पृष्ठों पर नियमित जगह पा रहे हिन्दी और संस्कृत को बढ़ावा देने वाले लेख हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्थान के संरक्षक के रूप में गीता प्रेस के मिशन का नियमित पुनर्कथन बने, यह सब कुछ संघ परिवार के बतौर स्वयंसेवक की इसकी अपनी भूमिका का हिस्सा था ।

अध्याय 5

राजनीति के रूप में धर्म और धर्म की राजनीति

प्रिंट की शक्ति के ज़रिए गीता प्रेस ने हिन्दू अस्मिता और संस्कृति को बढ़ावा देने वाले विभिन्न आंदोलनों, विचारधाराओं और संगठनों का समर्थन और साथ ही सनातन धर्म के लिए खतरा समझे जाने वाले संगठनों का विरोध करना शुरू किया। इस तरह उसने स्वतंत्र भारत की नीतियों और राजनीति में जगह बनानी शुरू की। गीता प्रेस की भूमिका किसी बड़े लक्ष्य के एक अंशमात्र की तरह नहीं थी, उसका लक्ष्य कहीं अधिक व्यापक और सूक्ष्म थी। गीता प्रेस को भारतीय राष्ट्रवादियों का संरक्षण प्राप्त था और *कल्याण* के माध्यम से बड़ी तादाद में मध्यवर्गीय परिवारों तक उसकी पैठ थी। महात्मा गांधी, एस राधाकृष्णन, राजेंद्र प्रसाद, सी राजगोपालाचारी और गोविंद वल्लभ पंत के साथ-साथ एम एस गोलवलकर, करपात्री महाराज और प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जैसे लोगों के लेख किसी एक ही पत्रिका के विशेषांक में अन्यत्र कहाँ मिल सकते थे भला? ¹

हिन्दू राष्ट्रवादियों ने *कल्याण* के अनूठेपन और हिन्दू पाठक वर्ग तक उसकी व्यापक पहुँच का इस्तेमाल किया और इस प्रयास में उसे गीता प्रेस व पोद्दार का तत्परता से सहयोग मिला। बकौल पोद्दार, पहली कांग्रेस सरकार की ग़ैर-हिन्दू नीतियों से खिन्न होने के बाद हिन्दू राष्ट्रवादियों और फिर जनसंघ जैसी पार्टियों का खुलेआम समर्थन करना और उनकी राजनीति व संघर्ष से जुड़ना उनकी एक ज़रूरत बन गई थी। *कल्याण* का इस्तेमाल केवल हिन्दू राष्ट्रवादियों के सांसारिक नज़रिए के प्रसार के लिए ही नहीं, बल्कि 'जातीय-धार्मिक अपील के माध्यम से हड़ताली आंदोलन खड़ा करने वाली' प्रोपेगैंडा वाहक के रूप में भी किया गया। ² गो-रक्षा आंदोलन के समय यह सब खुलेआम देखने को मिला।

गो-रक्षा के आरंभिक वर्ष

उग्र हिन्दू अस्मिता और राष्ट्रीयता का पावन प्रतीक तथा माँ (गो-माता) का प्रतिनिधित्व करने वाली गाय, गीता प्रेस की संपूर्ण परियोजना के लिए केन्द्रीय मुद्दा थी। ³ गो-रक्षा के नाम पर विभाजनकारी राजनीति और व्यापक हिंसा की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के

अंत तक शुरू हो गई थी, जब आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने सन् 1879 में पहली गोशाला की स्थापना की और सन् 1881 में आगरा की पहली गो-रक्षिणी सभा बनाई ।

बीसवीं सदी के आरंभिक ढाई दशकों में जब तक गीता प्रेस गो-रक्षा की बहस में पड़ता, तब तक इस बहस की रूपरेखा भली प्रकार तय हो चुकी थी । गाय 'हिन्दू समुदाय को संगठित करने वाले एक उत्तेजक प्रतीक' के तौर पर उभरी । ⁴ इस आंदोलन ने एक ओर गोकशी करने वाले मुसलमानों को निशाना बनाते हुए उन्हें दुश्मन की तरह पेश किया, तो वहीं औपनिवेशिक सरकार को भी हिन्दू मान्यताओं और इसके रीति-रिवाजों के संसार में हस्तक्षेप करने पर नहीं बख्शा ।

पीटर वान देर वीर ने सवाल किया कि लोग गाय की रक्षा के लिए मरना और मार देना क्यों चाहते हैं? ⁵ उन्होंने गाय के मुद्दे की केंद्रीयता को चार स्तरों पर देखा । पहला, ब्राह्मणों के रिवाजों में गाय को माँ मानना, 'पृथ्वी का प्रतीक, पोषक, कामधेनु गाय, धन और सौभाग्य की देवी', जो 'मृत्यु, प्रदूषण और पाप के साथ-साथ देवी-देवताओं की भक्ति' का अनिवार्य अंग है । दूसरा, गाय से जुड़े उत्पादों जैसे दूध, गोबर और मूत्र के साथ पवित्रता का जुड़ा रहना भी एक कारण है । कहा जाता है कि दूध, मक्खन और घी का सेवन व्यक्ति को सात्विक बनाता है वहीं गाय से जुड़े पांच तत्वों—दूध, दही, मक्खन, मूत्र और गोबर को मिला कर 'पंचगव्य' बनाया जाता है जिसका इस्तेमाल अशुद्ध व्यक्ति को शुद्ध करने के लिए किया जाता है । (विभाजन के समय साम्प्रदायिक हिंसा की शिकार हुई हिन्दू महिलाओं को यही खाने के लिए कहा गया था) । तीसरा, गाय की एक छवि कृष्ण की सारी इच्छाओं की पूर्ति करने वाली मैया की है । भक्ति काल में यह रूप मिलता है । चौथा और अंतिम कारण यह कि गो-माता परिवार और समुदाय का प्रतीक थीं । गाय की रक्षा करने का अर्थ आदर्श हिन्दू राज्य की छवि वाले रामराज्य जैसे पितृसत्तात्मक प्रभुत्व को बार-बार दोहराना था ।

राजनैतिक रूप से तुर्की के खलीफ़ा के समर्थन में सन् 1919 में हुए खिलाफ़त आंदोलन के समय गाय के मुद्दे ने राष्ट्रीय महत्ता हासिल कर ली । गांधी की अगुआई में कांग्रेस ने खिलाफ़त आंदोलन का 'असहयोग के राष्ट्रवादी कार्यक्रम' की तरह समर्थन किया । ⁶ यह समर्थन गो-रक्षकों द्वारा इस समझौते के आधार पर हुआ कि मुसलमान गो-हत्या नहीं करेंगे । स्वयं गो-हित से जुड़े गांधी ने भी खिलाफ़त आंदोलन में समर्थन की शर्त के रूप में गो-हत्या पर पूर्ण प्रतिबंध जैसी शर्तों के घालमेल करने का विरोध किया । उन्होंने उम्मीद जताई कि इस शर्त के बिना भी मुसलमान गो-हत्या प्रतिबंध के लिए आगे आते । मुस्लिम लीग ने अपने दिसंबर 1919-जनवरी 1920 के वार्षिक कांग्रेस में 'वध-कटौती' को मंजूरी दे दी । लेकिन विभिन्न प्रांतों की गो-रक्षिणी समितियों की कोशिशों के बाद भी कांग्रेस में गो-हत्या के विरोध में बने इस प्रस्ताव पर असमंजस बना रहा । सन् 1927 में गो-हत्या और मस्जिद के बाहर बजने वाले संगीत आदि के मसले पर आपसी मतभेदों से निपटारे के लिए कांग्रेस ने हिन्दू-मुसलमान से

एक साथ मिल कर काम करने का आह्वान किया । इस तरह विवादास्पद धार्मिक मुद्दों पर अस्पष्ट पक्ष लेने के पार्टी के लम्बे इतिहास में एक क्रिस्सा और जुड़ गया ।

गाय के साथ गीता प्रेस का जुड़ाव तीन स्तरों पर था—विधि-विधान आधारित, भक्ति-भाव आधारित और आर्थिक । *कल्याण* में हिन्दू जीवन में गाय की महत्ता और उससे जुड़ी चुनौतियों पर लेख छपते रहते थे लेकिन सन् 1945 में पहली बार गो-केंद्रित वार्षिक अंक की योजना बनाई गई । *गो अंक* के लिए लिखने वालों के नाम पोद्दार के पत्र में यह कहा गया कि इसमें गो-रक्षा पर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक दृष्टि से चर्चा की जाएगी । लेकिन कुछ विद्वानों, जैसे राजेंद्र लाल मित्र, एल एल सुंदर राम, पी वी काणे, एच डी संकालिया, लक्ष्मण शास्त्री जोशी और भारतविदों के महत्त्वपूर्ण कामों को नज़रअंदाज़ किया गया जिसमें उन्होंने गो-हत्या और गो-मांस भक्षण के प्राचीन भारत में व्यवहृत होने को सत्यापित करते हुए धर्मशास्त्र से उद्धरण दिए गए थे । ⁷पोद्दार ने अपना दुखड़ा रोते हुए कहा कि भगवान श्रीकृष्ण की अनगिनत लीलाओं के दर्शन करने वाली भारतवर्ष की भूमि पर गाय की इतनी दुःखद स्थिति कितनी क्षोभित करने वाली है! ⁸

663 पृष्ठों वाला यह *गो अंक* अलग-अलग विचारधारा वाले लोगों द्वारा गाय पर लिखे गए लेखों से भरा पड़ा है जिसमें शंकराचार्यों, स्वामी करपात्री, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जैसे अति परम्परावादी से लेकर हिन्दू राष्ट्रवादी राजनेता मदनमोहन मालवीय, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, गोविंद वल्लभ पंत, राजेंद्र प्रसाद, के एन काटजू, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और जमनालाल बजाज की पत्नी जानकी देवी बजाज जैसे कांग्रेसी नेता तक शामिल थे । *कल्याण* के *गो अंक* के लिए गांधी ने एक छोटा-सा संदेश केवल यह कहते हुए भेजा कि भारत की समृद्धि गाय और गो-वंशजों के कल्याण से जुड़ी है । ⁹लेकिन इस संक्षिप्त नोट के साथ उनके गो आधारित पूर्व भाषणों और लेखों को विस्तार सहित जोड़ कर प्रकाशित किया गया था । वरिष्ठ कांग्रेस नेता पट्टाभि सीतारमैया ने अपने छोटे वक्तव्य में कहा कि हिन्दुवाद को तीन माताओं से स्नेह मिला है, गो-माता, भू-माता और गंगा माता । हिन्दू-मुस्लिम गो-रक्षा समिति के अध्यक्ष मौलाना काबिल, गांधीवादी विनोबा भावे और काका कालेलकर ने भी साम्प्रदायिक पहलू से ध्यान हटाते हुए अपने लेख-टिप्पणियां भेजीं । हिन्दू राष्ट्रवाद के बड़े पक्षधर कवि मैथिलीशरण गुप्त ने '*गो-गीत*' लिखा, जिसमें उन्होंने गाय की तुलना माँ से करते हुए उसे निःस्वार्थ दान देने वाली बताया जो खेती हेतु अपना गोबर और मुक्ति हेतु अपना मूत्र देती है । ¹⁰हिन्दी के एक अन्य बड़े कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी गाय की पवित्रता का बखान करते हुए एक लेख लिखा ।

गो अंक ने 'माँ सदृश्य गाय' जैसे रूपक को सर्वथा भिन्न धरातल पर पहुंचा दिया । यह भी कहा गया कि स्त्री को गाय समान और गाय को स्त्री समान देखना स्वाभाविक है । ¹¹इसके अनुसार प्राचीन काल में युद्ध स्त्रियों और गायों के लिए हुआ करते थे । यह भी कि परिवार की सुख-शान्ति के लिए स्त्रियों ने गायों का पालन-पोषण किया ।

इसमें आगे कहा गया कि गाय अहिंसा, करुणा और सहनशक्ति तीनों का सम्मिलित रूप है और यही आदर्श हिन्दू स्त्री के लक्षण हैं। 'आदर्श हिन्दू नारी अपने नारीत्व, पत्नीत्व और मातृत्व में ही अपनी सफलता देखती है, इसके लिए वह अपने निजी सुख तक का त्याग कर देती है। अपने कुटुंबियों को सुखी देखकर वह कृत्य-कृत्य हो जाती है। पशु जगत में नारी की इस अनुपम सेवा भावना की प्रतिकृति गो में ही देखने को मिल सकती है।'

द्वारका, ज्योतिषपीठ और कांची के शंकराचार्यों ने गो-रक्षा के धार्मिक, वैज्ञानिक और आर्थिक आधारों को ध्यान में रखते हुए लेख लिखे, जिसमें यहाँ तक लिखा कि गाय और उसके उत्पाद विश्व को युद्धोत्तर आर्थिक संकट से बचाने में समर्थ हैं। उन्होंने दूध में निहित औषधीय गुणों और दूसरे विश्व युद्ध के बाद फैली महामारियों से निपटने की उसकी क्षमता पर भी प्रकाश डाला। ¹²

लेकिन हिन्दुत्व और गाय के बीच संबंध स्थापित करने का काम प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के ऊपर छोड़ दिया गया था। उन्होंने लिखा '...जो गो को माता माने वही हिन्दू है। इससे बढ़कर सर्वांग सुंदर दूसरी कोई परिभाषा हो ही नहीं सकती है। एक स्वयंसेवक ने कहा कि यह तो अधूरी परिभाषा हुई तो मैंने कहा कि यदि हम कहें कि वेदों को जो माने वह हिन्दू है तो हिन्दुओं में बहुत से ऐसे वर्ग हैं जो वेदों को अपौरुषेय नहीं मानते जैसे जैनी, सिख आदि।' ¹³

ब्रह्मचारी का व्यापक तर्क यह था कि नेपाल जैसे हिन्दू देश ने गो-हत्या को पूर्णतः निषिद्ध कर दिया। उन्होंने वेदों, पुराणों और महाभारत से उदाहरण लेकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि जब तक समाज में गाय को प्रधानता दी गई तब तक सब कुछ ठीक था। गो-हत्या जैसा जघन्य अपराध कोई दूसरा नहीं है और गाय को भोजन करवाने से श्रेष्ठ कोई दूसरा काम नहीं है। हमारे 'गौरवशाली अतीत' में लोग गाय की रक्षा करने के लिए अपनी जान तक दांव पर लगा दिया करते थे। ब्रह्मचारी ने यह भी कहा कि आज के दौर में हिन्दू भी गाय की हत्या करने में तनिक नहीं सोचते। बूढ़े पशुओं को कसाइयों को बेच देते हैं। सन् 1857 के विद्रोह के समय का हवाला देते हुए उन्होंने लिखा कि 'मेरठ में कारतूसों को मुंह से दबाने के प्रश्न पर इतना बड़ा ग़दर हो गया था, आज हमारे वकील, बैरिस्टर आदि सभ्य विदेशियों के साथ गो-मांस तक खा जाते हैं।'

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने हिन्दुओं और हिन्दुत्व को बचाए रखने के लिए दशांग मार्ग बताए। इसमें उन्होंने हिन्दुओं से कहा कि वे अपने घरों में गायें अवश्य रखें, भले ही ऐसा करने के लिए उन्हें मोटर-गाड़ी जैसी सुख-सुविधाओं का थोड़ा त्याग करना पड़े। उनके अनुसार, गो-मांस खाने वालों को बहिष्कृत कर देना चाहिए। उनके साथ रोटी-बेटी का संबंध समाप्त कर देना चाहिए। किसी भी हालत में कसाइयों के हाथों गाय को नहीं बेचना चाहिए। गायों को पारिवारिक सदस्य की भांति रखना चाहिए। गायों के लिए घास घर पर ही उगानी चाहिए। गाय के दूध और घी का सेवन करना चाहिए।

लोगों को उसी उम्मीदवार को वोट देना चाहिए, जो गो-हत्या प्रतिबंध का वायदा करते हों। गाय के दूध को बढ़ाने के लिए कृत्रिम प्रयोग बंद करने चाहिए। अच्छे सांडों की नस्ल तैयार करने के लिए उन्हें दूध पिलाना चाहिए। उनसे क्षमता से अधिक काम नहीं लेना चाहिए। बूढ़े बैलों को कसाई के हाथों में नहीं देना चाहिए। इनकी सुरक्षा के लिए गो-रक्षा सभाएं स्थापित की जानी चाहिए।

अपनी संपादकीय टिप्पणी में पोद्दार और सह-संपादक चिम्मनलाल गोस्वामी ने 'क्या करें और क्या न करें' की एक विस्तृत सूची तैयार की। इस सूची के निर्देशित सुझावों में मुसलमान समुदाय को प्रभावित करने पर ज़ोर दिया गया था। ¹⁴ उन्होंने कहा, 'गो-रक्षा संबंधी विचारों और लेखों को मुसलमानों द्वारा उर्दू में अनूदित करवा कर 'मुस्लिम अखबारों' में छपवाने पर बल दिया जाये। ज़ाहिर तौर पर उर्दू को सभी मुसलमानों की भाषा के रूप में देखने वाले जड़ नज़रिए से ही यह ख्याल भी जन्मा था।

गाय के प्रति अपने सम्मान को व्यक्त करने का पोद्दार और गोस्वामी ने एक नायाब तरीका यह कहते हुए निकाला कि गाय का मूल्य बढ़ाने हेतु कुछ कदम उठाए जाने चाहिए। 'इन सब प्रत्यनों के द्वारा जीवित गो का मूल्य बढ़ा देना, जिसमें केवल धर्म की दृष्टि से नहीं प्रत्यक्ष लाभ की दृष्टि से गो रखने को मनुष्य का जी ललचावे।' मारवाड़ियों के हाथों से संचालित एक प्रकाशन समूह के संपादकों द्वारा यह धर्म और कारोबार के घालमेल का शानदार प्रयोग था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में धनी मारवाड़ियों ने गो-रक्षिणी सभाओं की आर्थिक सहायता तो की, लेकिन गो-रक्षा आंदोलन के सफल होने में कहीं-न-कहीं लाभ का बिंदु उनके निजी मुनाफ़े से भी जुड़ा था और यही भक्ति का व्यावसायिक ढांचा था।

इसके साथ-साथ यह सब गो-रक्षा के तर्कों को 'धर्मनिरपेक्ष शाब्दिक ढांचों' (बाक़ी के *गो अंक* की तरह) में ढालने के लिए किए जा रहे सम्पूर्ण प्रयास के भी अनुकूल था और इस तरह इस पुनर्निर्मित बहस ने मुख्य रूप से तीन बातों को रेखांकित किया जिसकी ओर थेरेस ओ'टूल ने ध्यान दिलाया। ¹⁵ पहला, गाय के मुद्दे की मज़बूत आर्थिक उपयोगिता थी, और अब इस तरह गोशाला की गुणवत्ता और देश की समृद्धि का सीधा संबंध भी था। दूसरा, आर्थिक समृद्धि का संबंध देश के सम्मान से जुड़ गया था जो गाय की आर्थिकी से जुड़ा था। तीसरा, गाय के मुद्दे में 'हिन्दू-मुसलमान के रिश्ते की दरार को भरने' का सामर्थ्य था। इसके साथ-साथ इसमें गाय की सुरक्षा के नाम पर 'मुसलमानों का आर्थिक बहिष्कार करने से हिन्दुओं को होने वाला आर्थिक फ़ायदा भी शामिल था।' ¹⁶

गो अंक में आर्थिक पक्ष पर इतना अधिक ज़ोर दिया गया कि इसमें स्वामी दयानंद के सन् 1881 में लिखे पर्चे *गो करुणानिधि* से भी गायों की स्थिति, और समाज में गायों व बैलों की हत्याओं के न होने से आने वाली समृद्धि के तर्कों को उद्धृत किया गया था। दयानंद ने चौंका देने वाले आंकड़े दिए थे। उनके अनुसार एक गाय औसतन

यदि तेरह बार गर्भ धारण करती है तो वह 25,740 लोगों की दूध की ज़रूरत को पूरा करेगी। हर गर्भ धारण पर गाय 1,980 लोगों के लायक दूध देती है। इसी तरह बैलों का एक जोड़ा दो सौ टन अनाज उपजाने में सहायक है। जबकि एक मृत गाय का मांस अस्सी लोगों को सिर्फ़ एक वक्रत का भोजन दे सकता है। ¹⁷

इस विशेषांक में गोशाला पर विशेषज्ञों, दुग्ध वैज्ञानिक और शाकाहारियों ने वैज्ञानिक ढंग से गाय सुरक्षा के तर्क दिए थे। औपनिवेशिक सरकार के समय गोशाला गृह उद्योग के सलाहकार रहे सर दातार सिंह ने अपना पूरा जीवन गो-रक्षा के लिए दे दिया। (उनकी नातिन बीजेपी नेता और पशु अधिकारवादी कार्यकर्ता मेनका गांधी हैं)। उनका तर्क था कि पूरी प्रकृति का अर्थशास्त्र अधिक-से-अधिक गोशाला और पनाहघर बनाने के हक़ में है। पोद्दार के मित्र सिंह ने गायों पर आंकड़े रखते हुए कहा कि पूरी दुनिया के 61 लाख मवेशियों में से 21 लाख भारत में हैं। जबकि प्रति व्यक्ति दूध की खपत 7 आउंस है जो न्यूजीलैंड में होने वाली 56 आउंस और आस्ट्रेलिया में होने वाली 45 आउंस के मुकाबले काफ़ी कम है।

सिंह ने यह माना कि भारत में विकसित देशों के मुकाबले गायों की नस्लें कमज़ोर हैं। और उन्होंने प्रजनन के लिए मज़बूत नस्ल के सांडों का इस्तेमाल करने की सलाह दी। सिंह का मानना रहा कि गायों की रक्षा बिना सरकारी ढर्रे में बदलाव के नहीं हो सकती। उन्होंने प्रांतीय सरकारों से अनुरोध किया कि अफ़सरों की नियुक्ति की जाये जो गोशालाओं और पनाहघरों को विकसित करने की दिशा में काम करें। पहला, इन्हें शहर से बाहर ले जाने का अनुरोध किया गया ताकि उन्हें बेहतर चारागाह मिल सके, दूसरा नई और पुरानी गायों को खाना देने के स्तर पर कोई भेदभाव न किया जाये। और तीसरा यह कि पशुओं को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ दी जाएँ। ¹⁸

समाजशास्त्री-पारिस्थितिकी विज्ञानी और अन्य कई क्षेत्रों के विद्वान राधाकमल मुखर्जी ने जंगलों को बचाए जाने और नए जंगल बनाए जाने की सलाह के बीच तत्काल चारागाह न बनाए जाने पर पैदा होने वाले अवश्यम्भावी खतरों के प्रति आगाह किया। ¹⁹ मुखर्जी ने कहा कि ज़मीन को छोटे-छोटे हिस्से में बाँट कर प्रयोग करने की बढ़ती आदत ने एक मौसम में पशुओं के लिए चरने के उद्देश्य से खेत छोड़ने की व्यवस्था चक्र को नष्ट कर दिया है। उन्होंने कपास, गन्ने और जूट की पैदावार से परिचय होने पर भी खेद ज़ाहिर किया जो किसानों को तो फ़ायदा पहुंचाते हैं लेकिन मवेशियों के लिए हानिकारक हैं क्योंकि इन्हें दाल, छिमियों और चारा पर प्राथमिकता दी जाने लगी है। मुखर्जी ने प्रांतीय आधार पर जंगल और कृषि योग्य भूमि के वितरण में असमान अनुपात को सामने रखा।

पोद्दार की भाषा में ग़ैर-उत्साही लेखक मदनमोहन मालवीय ने औपनिवेशिक सरकार द्वारा गठित बहुत सारी समितियों और कमीशनों से आंकड़े देते हुए एक लम्बा लेख लिखा। ²⁰ गाय की रक्षा के लिए उनका सोचा हुआ ढांचा भी अपनी प्रकृति में पूरी तरह आर्थिक था। उन्होंने मिश्रित कृषि को लोकप्रिय बनाने का सुझाव दिया जिसमें

गाय की अहम भूमिका थी, एक किसान के लिए एक से अधिक गाय या बैल का होना एक अतिरिक्त प्रलोभन की तरह देखा गया। मालवीय चाहते थे कि अधिक सघन आबादी वाले शहरों में सरकार द्वारा लोगों को सहकारी डेयरी स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और इसी उद्देश्य के लिए शहरों में कुछ हिस्से आवंटित किए जाने चाहिए। उन्होंने कहा कि प्रत्येक जिले में मवेशियों के लिए चारागाह और घास भरे हिस्सों की देख-रेख के लिए समितियाँ होनी चाहिए। देश में 'अधिक दूध उत्पन्न करो और खूब पियो' के नारे के साथ आंदोलन की शुरुआत होनी चाहिए।

मंझे हुए व्यापारी और रूढ़िवादी राजनेता पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने गो-हत्या के शान्तिपूर्ण समाधान के बीच आ रहे साम्प्रदायिक संकट की ओर इशारा किया। उन्होंने नास्तिकों और गैर-हिन्दुओं से कहा कि अगर धार्मिक और रवायतों में पड़ कर गाय की रक्षा नहीं कर सकते तो कम-से-कम उसकी आर्थिकी को समझ कर उसकी रक्षा कर लें। ²¹

राजेंद्र प्रसाद ने बाक़ी सबकी तुलना में अधिक वैज्ञानिक सोच को सामने रखा। उन्होंने गायों के अच्छे प्रजनन, अधिकाधिक चारागाहों की ज़रूरत, खेतीबाड़ी की तकनीकों में सुधार और मृत गायों के शरीर से चमड़ा, मांस और हड्डी निकालने के मामले में रूढ़ियों से मुक्त होने जैसी बातें कहीं। ²²

गीता प्रेस के लिए गाय की पूरी बहस को धर्मनिरपेक्ष करने के पीछे उद्देश्य यह स्थापित करना था कि गो-मांस खाना इस्लाम में स्वीकृत नहीं है। धरम लाल सिंह ने दावा किया कि कुर'आन के दूसरे अध्याय *सुरा-ए-बक्र* में सऊदी अरब, टर्की और अन्य इस्लामिक देशों में गाय की पूजा का विस्तृत वर्णन है। ²³ अलग-अलग इस्लामिक ग्रंथों से ढेर सारे उद्धरण देकर सिंह ने तर्क दिया कि पैगंबर मुहम्मद दयालु हृदय थे और किसी भी जीव के प्रति हिंसा के पक्ष में नहीं थे। यहाँ तक कि उनके जीवन के ऐसे कई किस्से हैं जहाँ उन्होंने पशुओं को मुसीबत से बचाया था। सिंह ने *सुरा-ए-हज* से उदाहरण दिया 'खुदा तुम्हारी कुर्बानी में जानवर का मांस और लहू नहीं चाहता, वह सिर्फ तुम्हारी पवित्रता चाहता है।' भारत में लम्बे समय तक शासक रहे मुसलमान शासकों पर लौटते हुए सिंह ने कहा कि वे हिन्दुओं की संवेदनशीलता का सम्मान करते थे और गो-हत्या के विरोध में थे। उन्होंने अकबर की सभा से 5 जून 1593 के एक फैसले को सामने रखते हुए उल्लेखित किया कि मथुरा और आस-पास के निवासियों को मोर को क्षति पहुँचाने और चारागाहों में गायों को परेशान करने के जुर्म में प्रतिबंधित कर दिया गया था।

गो अंक में मेजर चार्ल्स स्टुअर्ट द्वारा अनूदित हुमायूँ के नौकर जोहर के संस्मरण का एक छोटा भाग प्रकाशित किया था। ²⁴ जोहर ने लिखा कि ईरान यात्रा के समय हुमायूँ को खाने के लिए कुछ भी नहीं मिला। आधी रात में हुमायूँ को पता चला कि उनके सौतेले भाई कामरान और उसकी माँ ने भोजन की तलाश में सेवादारों को भेजा है। भोजन में सब्जियाँ और मांस था। हुमायूँ को मांस पर संदेह हुआ, जब उन्हें पता

चला कि वह गो-मांस है तो उन्होंने कहा, 'हाय रे कामरान! पेट भरने का तेरा यही रास्ता है, अपनी पवित्र मां को तू यही गोमांस खिलाता है, उनके लिए तू चार बकरियां लेने में असमर्थ हो गया?' जोहर ने लिखा कि हुमायूँ ने खाने को हाथ भी नहीं लगाया और सिर्फ़ शर्बत पी कर वे वहाँ से उठ गए ।

मौलाना काबिल साहब ने गो-रक्षा के पक्ष में अपनी बात रखी । पूरे मसले को गैर-धार्मिक नज़रिए से देखने की बात करते हुए जीवंतता, आर्थिक समृद्धि, राजनीति और राष्ट्रीय विकास के नज़रिए से देखे जाने की ज़रूरत पर बल दिया क्योंकि गाय खेती-बाड़ी का आधार तैयार करती है । ²⁵ उन्होंने ज़ोर दिया कि देश का विकास हिन्दू और मुसलमान की एकता में ही संभव है । मौलाना ने कहा कि इस देश के मुसलमान शासकों ने इस एकता की ज़रूरत को समझा और गायों की रक्षा के सिलसिले में क़दम उठाए । 'हिन्दू और मुस्लिम को एक प्लेटफ़ॉर्म पर लाने के लिए गो-रक्षा से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है ।' उन्होंने विशेष तौर पर मुसलमानों को बताया कि कुर'आन में गो-मांस खाने का कोई ज़िक्र नहीं मिलता है और आगे कहा कि सूफी गो-मांस को छूते तक नहीं । मौलाना ने हिन्दुओं से अपील की कि वे गो-रक्षा में भागीदार मुसलमानों पर धार्मिक तानेबाजी न करें बल्कि उनका सम्मान करें ।

गो-हत्या प्रतिबंध के लिए एक क़ानून

सन् 1947 के आते-आते गीता प्रेस का सौहार्दपूर्ण रवैया तेज़ी से परिवर्तित होता गया । गो-हत्या के खिलाफ़ चलाए जा रहे सामूहिक हिन्दू अभियान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने के लिए पोद्दार पूरी तरह तैयार थे । *कल्याण* के अधिकांश हिस्सों को भारत विभाजन के विरोध के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था, लेकिन गाय के मुद्दे को भुलाया नहीं गया था ।

सन् 1947 की जुलाई में *कल्याण* ने पाठकों से संविधान सभा के अध्यक्ष राजेंद्र प्रसाद को टेलीग्राम भेजने की अपील यह कहते हुए जारी की कि भारतीय संघ का पहला क़ानून इसी संदर्भ में ही बने कि 'भारतवर्ष में किसी भी हालत में एक भी गो ना मारी जाये' ²⁶ पाठकों को यह भी याद दिलाया गया कि 'गो-रक्षा से ही धर्म की और जीवन की रक्षा होगी, भारतवर्ष का तो प्राण ही गो है ।' अखबारों को गो-रक्षा आंदोलन से जुड़ने के लिए कहा गया ।

गो-रक्षा की बहस के केंद्र में सबसे बड़ा तर्क यह था कि घी से पका भोजन व्यक्ति को सात्विक बनाता है, इस तर्क से घी प्रयोग को लोकप्रिय बनाने की कोशिश हुई । इसे पहला खतरा बड़ी मात्रा में किए जा रहे वनस्पति तेल के उत्पादन से था । वनस्पति इकाइयों की स्थापना कर रहे उपक्रमों को प्रांतीय सरकारों द्वारा प्रोत्साहन राशि भी दी जा रही थी । *कल्याण* ने 'वनस्पति घी' को 'मीठा ज़हर' कहा, 'जिसे वैज्ञानिक खोज करने वाली संस्थाओं ने भी अपच, कब्ज़, नपुंसकता और नाना प्रकार के रोग उत्पन्न

करने वाला बताया है ।’ ²⁷ गांधी, जिन्होंने उस समय तक वनस्पति का विरोध किया था, ने भोजन पकाने के इस नए माध्यम के खिलाफ़ छेड़े गए अभियान को बंद करने को कहा । *कल्याण* ने कहा कि ‘यदि यह सच है तो कोई भी इसके पीछे का रहस्य नहीं जानता है ।’

बहरहाल, वनस्पति को लेकर गांधी का आलोचनात्मक रुख कायम रहा । अप्रैल 1946 तक उन्होंने घी की सर्वोच्चता के मामले में गो सेवा संघ के सक्रिय सदस्य सर दातार सिंह से सहमति जताई । दातार सिंह के विस्तृत लेख का सारांश निकालते हुए गांधी ने कहा कि वनस्पति, ‘घी का दोयम दर्जे का विकल्प है’ लेकिन इस उद्यम में मुनाफ़े का बड़ा अंतर है । जैसे सन् 1937 में हुआ इसका उत्पादन 26 हज़ार टन से बढ़ कर सन् 1943 में 105 हज़ार टन सालाना हो गया है ।’ ²⁸ गांधी ने कहा कि वनस्पति उद्योग की इतनी भारी वृद्धि ‘न केवल किसानों की खुशहाली में प्रतिकूल असर डालेगी बल्कि मवेशी उद्योग पर भी हानिकारक प्रभाव छोड़ेगी जिस पर पूरे देश की समृद्धि निर्भर है ।’ गांधी ने सुझाया कि अगर वनस्पति के उद्यम को प्रतिबंधित नहीं किया गया तो कम-से-कम तत्काल प्रभाव से इसे लाइसेंस व्यवस्था के भीतर लाकर सख्ती से नियंत्रित किया जाये ।

सन् 1950 आते-आते *कल्याण* वनस्पति तेल उद्योग पर पूरा प्रतिबंध चाहने वाले कांग्रेस नेता ठाकुरदास भार्गव द्वारा लाए गए बिल के समर्थन में वनस्पति घी विरोधी लॉबी का वाहक बन गया था । ²⁹ इस जोशीले अभियान को अच्छे-खासे विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों का स्पष्ट समर्थन मिल चुका था । वैज्ञानिक शान्ति स्वरूप भटनागर का समर्थन मिलते ही वनस्पति विरोधी लॉबी के लिए भोजन पकाने के इस नए माध्यम की निंदा करना मुश्किल हो गया जो कथित तौर पर जानवरों की चर्बी से बना था । उतना ही मुश्किल इसका जवाब देना भी था कि वनस्पति तेल गरीब विरोधी और अमीरों के पक्ष में है । अपने संपादकीय में पोद्दार ने एक लेख जोड़ते हुए लिखा कि वेजिटेबल आयल की लॉबी ने लोगों को मूर्ख बनाने के लिए अभियान चलाने में 700,000 रुपए की राशि निश्चित की है, और आरोप लगाया कि वनस्पति उपभोक्ताओं को पोषक तत्वों की सराहना कर इस तेल के पक्ष में हस्ताक्षर करने को कहा जा रहा है ।

आज़ादी से ठीक पांच दिन पहले 10 अगस्त 1947 को गीता प्रेस और अन्य हिन्दू रूढ़िवादी संगठन देश भर में ‘गो-हत्या निषेध दिवस’ आयोजित करने में व्यस्त थे । ³⁰ बाबा राघवदास ने दावा किया कि गो-हत्या पर पूर्ण प्रतिबंध के लिए ठोस क़ानून की मांग करते हुए केन्द्रीय परिषद के अध्यक्ष को 400,000 पत्र भेजे गए हैं । उन्होंने इस आंदोलन को सर्वजातीय और सर्वप्रांतीय कह कर इसकी समावेशी छवि को बताते हुए पाठकों के सामने मांग पूरी न होने तक डटे रहने का दम भरा । राघवदास ने कहा कि गो-हत्या को अवैध घोषित करने के लिए स्थानीय निकायों जैसे विधानसभा, काउंसिल, जिला बोर्ड, नगर बोर्ड, छावनी बोर्ड आदि के साथ-साथ विधायी संरचनाओं पर समान रूप से दबाव बनाना चाहिए । पत्र और टेलीग्राम राजेंद्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू और

सरदार पटेल तीनों ही नेताओं को भेजे जाने थे । सिखों, मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयों से समर्थन जुटाने के लिए हिन्दुओं से विशेष आग्रह किया गया था ।

आज़ादी के आरंभिक महीनों में गो-रक्षा कांग्रेस नेताओं से होते हुए उद्योगपतियों तक अपने समर्थन के दायरे को विस्तार देती हुई धीमी किन्तु नियमित चाल से चलती रही । विचार यह था कि भारतीय संविधान के निर्माण में जुटी संविधान सभा को अपने प्रभाव में ले लिया जाये । इस काम को 'अकूत संपदा के मालिक दकियानूसी हिन्दू उद्योगपति', गो-बध निवारणी सभा के संस्थापक और पोद्दार के दशकों पुराने मित्र रामकृष्ण डालमिया ने अपने हाथ में लिया । ³¹ गो-वध प्रतिबंध पर क़ानून की मांग करने वाला यह अभियान प्रांतीय विधानसभाओं और विधायी परिषदों के हिन्दू सदस्यों का पूरा समर्थन हासिल करने में चूक गया । गीता प्रेस के अनुसार क़ानून के प्रति गांधी द्वारा (गो-वध) प्रतिबंध को क़ानूनी संरक्षण देने का विरोध किए जाने ने माहौल में उदासीनता पैदा की । इस उदासीनता की वजह गांधी थे जो नहीं चाहते थे कि प्रतिबंध क़ानून के ज़रिए लागू किया जाये । गीता प्रेस और गांधी के बीच की खाई तेज़ी से गहरी होती जा रही थी । *कल्याण* ने कहा कि प्रतिबंध का विरोध करने वाले अधिकांश नेता गांधी भक्त हैं । और वे हैं जिनकी नीति ही गांधी का विरोध करने की नहीं है या फिर उनमें विरोध की हिम्मत ही नहीं है । ³²

रामकृष्ण डालमिया ने गो-रक्षा केंद्रित एक बड़ी बैठक आयोजित की । जिसमें बॉम्बे मानवतावादी लीग के जयंतीलाल मनकर, बाबा राघवदास, हनुमानप्रसाद पोद्दार, लाला हरदेव सहाय, जयदयाल डालमिया और राम नरसिंह जैसे प्रतिनिधि सदस्यों ने डॉ राजेंद्र प्रसाद से भेंट की और गो-वध पर प्रतिबंध को सिखों के कृपाण रखने के अधिकार की तरह एक मौलिक अधिकार में तब्दील करने की मांग की । मामले को संभालने के लिए एक समिति बनाई गई थी, लेकिन अंततः इस मांग को नामंजूर कर दिया गया । ³³

बावजूद इन सबके गीता प्रेस अपनी राह चलता रहा । बहुत से प्रस्ताव जिन्हें संविधान के लिए फाइनल ड्राफ्ट का हिस्सा बनाया जा सकता था, उन्हें इकट्ठा किया गया ताकि गो-रक्षा के मुद्दे पर सामूहिक हिन्दू विचार को मज़बूती से रखा जा सके । कांग्रेस के सेठ गोविंद दास, ठाकुरदास भार्गव, सरदार जयदेव सिंह, शिबबन लाल सक्सेना, आर वी धुलेकर और निहाल सिंह तक्षक जैसी शख्सियतों ने *कल्याण* को अपनी लिखित प्रस्तुति भेजी ।

संविधान सभा की बहसों के दौरान ठाकुरदास भार्गव ने प्रस्तावित किया कि गो-वध निषेध को राज्य की नीति निर्देशक सिद्धांत की सूची में डाला जाया । उन्होंने कहा कि गाय 'कृषि आर्थिकी' के केंद्र में है, इसलिए उसकी हत्या निषिद्ध होनी चाहिए । ³⁴ उनके द्वारा दिए गए इस तर्क से संविधान सभा के बहुत से सदस्य सहमत नहीं हुए, यह माना गया कि मांग धार्मिक कारणों से की जा रही है । आखिरकार भार्गव द्वारा किए संशोधन को स्वीकृत करते हुए गो-वध निषेध को निर्देशक सिद्धांतों में जोड़ दिया गया ।

कृषि और पशुपालन से संबंधित संविधान का अनुच्छेद 48 यह कहता है, 'राज्य, कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा और विशिष्टता गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए क़दम उठाएगा।' बहरहाल, इसका मतलब यह था कि गो-रक्षा को निर्देशक सिद्धांत बना दिया गया और इसे किसी कोर्ट द्वारा जबरन लागू नहीं करवाया जा सकता था।

गीता प्रेस ने सरकार पर दबाव बनाना जारी रखा, राज्यों में भेजे गए गो-वध पर बनाए गए विधेयक के मॉडल के विरोध में विशेष तौर पर दबाव बढ़ाया गया। इस प्रस्तावित विधेयक में गायों के लिए इस्तेमाल किए गए 'उपयोगी' और 'अनुपयोगी' शब्दों ने गीता प्रेस और अखिल भारतीय गो-सेवक समाज का ध्यान खींच लिया था।

³⁵ यह विधेयक चौदह साल से बड़ी गाय और प्रजनन में असमर्थ गायों के वध को मंजूरी दे रहा था। *सन्मार्ग* के दकियानूसी संपादकीय से सहमत होते हुए *कल्याण* ने सवाल किया अगर बूढ़ी गायों के साथ यह बर्ताव किया जा सकता है तो उन बूढ़े व्यक्तियों के प्रति क्या बर्ताव किया जाना चाहिए जो अब काम के नहीं रहे? इसके अलावा ऐतराज़ इस बात पर भी था कि यह विधेयक धार्मिक, चिकित्सकीय और शोध उद्देश्यों के साथ गो-हत्या को छूट दे रहा था। अखिल भारतीय गो-सेवक समाज के सचिव हरदेव सहाय ने अपने वक्तव्य में इस तरह के सभी प्रावधानों के लिए दिए गए तर्कों का खंडन करते हुए 'औरंगजेब तक ने गो-हत्या प्रतिबंधित कर दिया था' कह कर सरकार को मुसलमान शासकों से कुछ सीखने की हिदायत दी।

गीता प्रेस अब यह समझ चुका था कि इस जंग में अपने पाठकों को भी उतारने की ज़रूरत आन पड़ी है। बॉम्बे में नया कसाईबाड़ा खुलने की ख़बर मिलते ही पोद्दार ने तत्काल अपने पाठकों से विरोध में शामिल होने की गुहार लगाई। ³⁶ उन्होंने पाठकों को याद दिलाया कि किस तरह ब्रिटिश शासन में पंजाब और सिंध में कसाईबाड़ा खुलने के प्रस्ताव को मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में किए गए भारी विरोध के ज़रिए खारिज करवाया गया।

गाय से जुड़े मामलों पर सरकार की ओर से की जा रही हर छोटी-बड़ी कार्रवाई पर बारीक नज़र बनाए रखने वाले पोद्दार के पास दिसंबर 1949 में अपने पाठकों के लिए एक ख़बर थी। भारतीय रुपए के अवमूल्यन के बाद बढ़े निर्यात को मापने के लिए एक समिति बनाई गई। इस समिति ने यह पाया कि चमड़ा निर्यात के व्यवसाय में गिरावट आई है, इसका संबंध कुछ प्रांतीय सरकारों द्वारा गो-हत्या पर रोक लगाए जाने से जोड़ा गया। पोद्दार ने कहा कि चमड़ा निकालने का व्यवसाय ही गो-हत्या का बड़ा कारण था। केवल सन् 1940 में 52,700,000 गायों को मारा गया। उन्होंने सत्तासीन राजनेताओं को याद दिलाया कि वे आज़ाद भारत में गो-हत्या पर पूर्ण प्रतिबंध का अपना वायदा याद रखें और इसके साथ ही उन्होंने अपने जोशीले पाठकों से अनुनय में कहा, 'यदि वस्तुतः हिन्दुओं में कुछ भी सच्ची देशहितेषिता और धार्मिकता शेष है तो

उन्हें इन अनिष्टकारी कार्यों का घोर विरोध करना चाहिए । हमारी अपने माननीय पत्रकार बंधुओं से विनित प्रार्थना है कि वे नए बूचड़खाने के प्रस्ताव और खाल के निर्यात के लिए प्रांतीय सरकारों द्वारा लगाए हुए प्रतिबंध को हटाने का घोर विरोध कर देशवासियों के तथा लाखों मूक पशुओं के आशीर्वाद का भागी बनें ।’ ³⁷

गो-रक्षा आंदोलन के लिए सन् 1950 से 1960 के मध्य का समय शांत रहा लेकिन ये समय व्यवस्थापिका और उच्चतम न्यायालय में पुरजोर उठा-पटक का भी था । गो-संरक्षणवादियों का भारी पलड़ा साफ़ दिखाई दे रहा था । ‘इस मुद्दे पर प्रधानमंत्री पद की अपनी दावेदारी को दांव पर लगाने की तैयारी कर चुके’ नेहरू के लिए बेचैनी का समय था । ³⁸ उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश की कांग्रेस शासित राज्य सरकारें गो-हत्या को प्रतिबंधित कर चुकी थीं । सन् 1954 में भारत में सभी मवेशियों की हत्या पर रोक के संबंध में बनी केंद्र सरकार की विशेषज्ञ समिति ने निष्कर्ष दिया कि ‘सभी प्रकार के मवेशियों की हत्या पर प्रतिबंध लगाना देश हित में नहीं है ।’ उच्चतम न्यायालय ने चार राज्य सरकारों द्वारा गो-हत्या पर लगे प्रतिबंध की वैधानिकता को बरकरार रखा । ³⁹ इस तरह शीर्ष न्यायालय ने बैलों, सांडों, भैसों, भेड़ों और बकरियों की हत्या को मान्यता दी ।

हालाँकि जब मुख्यतः निजी सदस्यों के बिलों के माध्यम से एक केंद्रीय क़ानून बनाने के प्रयासों को सफलता नहीं मिली, तब कांग्रेस में मौजूद दकियानूसी तत्वों ने हर बार की तरह गाय के मुद्दे पर भी हिन्दू राष्ट्रवादियों का साथ दिया । जब सेठ गोविंद दास के निजी सदस्य बिल भारतीय गाय संरक्षण बिल पर वोटिंग हुई तब कांग्रेस के दो नेताओं (पुरुषोत्तमदास टंडन और ठाकुरदास भार्गव) ने विधेयक के पक्ष में मत दिया । ⁴⁰ इस विधेयक को रखते समय सेठ गोविंद दास ने न केवल नेहरू कि अवहेलना की बल्कि आरएसएस मुखिया एम एस गोलवलकर के साथ भी हो लिए ।

हिन्दू राष्ट्रवादियों की पूज्य गो-माता 1960 के दशक के मध्य तक आते-आते उन्मादी आकर्षण बिंदु चुकी थीं । 30 सितंबर 1962 में गो-रक्षा आंदोलन की सबसे असरदार आवाज़ माने जाने वाले लाला हरदेव सहाय का निधन इसका परिवर्तन बिंदु साबित हुआ ।

सन् 1946 से अपनी मृत्यु तक लाला हरदेव सहाय गो-रक्षिणी सभा, भारत गो-सेवक समाज, गो-हत्या निरोध समिति और भारत गो-रक्षक संघ जैसे संगठनों को स्थापित करने में शामिल थे । ⁴¹ सन् 1948 में गठित भारत गो-सेवक समाज उनके और बॉम्बे मानवतावादी लीग के जयंतीभाई नारद लाल मनकर की घनिष्ठता के परिणामस्वरूप ही अस्तित्व में आया । कांग्रेस के सेठ गोविंद दास को इसका अध्यक्ष बनाया गया । जबकि सहाय और मनकर इस नई संस्था के सचिव बने । यह उस दौर की विचारधारात्मक सहजता थी कि इसका मुख्य कार्यालय दिल्ली स्थित सेठ गोविंद दास के आवास पर बनाया गया ।

सहाय के निधन के बाद उनके मित्रों ने तय किया कि भारत गो-सेवक समाज को पुनः संचालित किया जाये क्योंकि औपचारिक रूप से वे सबसे पहले इसी के साथ जुड़े थे । सहाय के मित्र आरएसएस के एम एस गोलवलकर और सन् 1947 में दिल्ली के आरएसएस संचालक बने आर्य समाजी उद्योगपति लाला हंसराज की भी इस फैसले पर सहमति थी । ⁴²वृद्ध व अस्वस्थ ठाकुरदास भार्गव को भी नए सिरे से किए जा रहे संचालन से जोड़ लिया गया । भार्गव ने सहाय द्वारा संपादित की जाने वाली पत्रिका *गोधन* को भी फिर से प्रकाशित करने की सलाह दी । दिसंबर 1962 में मृत्यु को प्राप्त हुए भार्गव इस पुनःप्रवर्तन को देख नहीं सके ।

भारत गो-सेवक समाज को पुनर्गठित करने की पहली बैठक हंसराज गुप्ता के आवास पर 28 फ़रवरी 1963 में हुई । बैठक में पुनर्गठन योजना पर सहमति बनी । सेठ गोविंद दास इसके अध्यक्ष बनाए गए और केंद्रीय समिति के लिए दस सदस्यों का चुनाव किया गया । हनुमानप्रसाद पोद्दार भारत गो-सेवक समाज के चार उपाध्यक्षों में से एक थे । और बाक़ी दस सदस्यीय समिति गठित की गई जिसमें उनके मित्र जयदयाल डालमिया भी शामिल थे । ⁴³

अगस्त 1964 में समाज की वृन्दावन में हुई बैठक में यह मांग की गई कि सरकार को गो-हत्या प्रतिबंध का ज़िम्मा अपने हाथों में लेना चाहिए ⁴⁴और ‘सन् 1965 की गोपाष्टमी (कार्तिक शुक्ल पक्ष अष्टमी) तक गो-हत्या प्रतिबंध पर एक क़ानून पारित कर देना चाहिए’ ⁴⁵हिन्दू राष्ट्रवादियों की विशिष्ट मंडली ने इस सम्मलेन में भाग लिया । उद्घाटन भाषण गोलवलकर ने दिया और दीनदयाल उपाध्याय ने सभा को संबोधित किया । इसी बीच प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने घोषित किया कि अगर सरकार इस वायदे को पूरा करने में असफल होती है तो देशव्यापी आंदोलन की शुरुआत होगी ।

सन् 1966 तक सरकार की ओर से गो-हत्या प्रतिबंध पर कोई क़दम उठता हुआ नहीं दिखाई दिया । हालाँकि गो-रक्षा आंदोलन का समकालीन इतिहास बताता है कि नवंबर 1966 से पहले कोई बड़ा आंदोलन भी नहीं हुआ था । *कल्याण* के जून अंक में पोद्दार ने सरकार से दिल्ली जेल में गो-हत्या प्रतिबंध की मांग लिए अनशन पर बैठे करीब बीस साधुओं को रिहा करने की अपील की । ⁴⁶पोद्दार ने आरोप लगाया कि सरकार लोकतान्त्रिक मूल्यों के साथ खिलवाड़ कर रही है । ‘अनुचित मांग के लिए यदि हिंसात्मक, उग्र कार्य किए जाये तो सरकार झुक जाएगी, उचित मांग को शील सहित निवेदन किया जाये तो शील की कोई कीमत नहीं । अवांछनीय शोरगुल की आवाज़ सरकार तक पहुँच सकती है किंतु जो मांग विशुद्ध राष्ट्रीय है, विशुद्ध देशहित की भावना से प्रेरित है और विशुद्ध रूप से भारतीय गौरव की पोषक एवं भारतीय संस्कृति के अनुकूल है, उस मांग को सुनने में सरकार को कठिनाई होती है ।’

केंद्रीय सरकार पर आरोप लगाते हुए पोद्दार ने आगे कहा कि यह गो-हत्या प्रतिबंध से अपने पाँव पीछे खींच रही है । पहले राज्यों को क़ानून बनाने के लिए कहा और फिर अब उन्हें लागू करने में सहायता नहीं कर रही है ।

आंदोलन तेज़ी से गति पकड़ रहा था । गोलवलकर के गो-रक्षा आंदोलन के सक्रिय समर्थक होने के बावजूद पोद्दार ने उन्हें इस सामूहिक उद्यम से जुड़ने के लिए औपचारिक न्योता दिया । ‘इस आंदोलन में प्राण तभी आ सकेंगे जब आप स्वयं सक्रिय रूप से भाग लेंगे ।’ ⁴⁷ इस काम में करपात्री महाराज और प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के जुड़ने की सूचना भी पोद्दार ने गोलवलकर को भेजी । आरएसएस का सहयोग सिर्फ़ गोलवलकर, आर्थिक मदद या स्वयंसेवकों तक ही सीमित नहीं था बल्कि इस आंदोलन की रोज़ाना की गतिविधियों में आरएसएस के वरिष्ठ पदाधिकारी भी संलग्न थे । सन् 1994 में आरएसएस के सरसंघचालक बने राजेंद्र सिंह उर्फ़ ‘रज्जू भईया’ उत्तर प्रदेश की गो-रक्षक महाभियान समिति के लिए फंड जुटाने का काम देख रहे थे । रज्जू भईया कार्य की प्रगति को सीधे सर्वदलीय गो-रक्षा महाभियान समिति के राष्ट्रीय खजांची के साथ-साथ प्रादेशिक अध्यक्ष पोद्दार को सूचित किया करते थे । ⁴⁸

25 सितंबर 1966 को विभिन्न गो-रक्षा समूहों ने एकजुट होकर सर्वदलीय गो-रक्षा महाभियान समिति का गठन किया, और इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार के सामने बड़ी चुनौती खड़ी की । वाम दलों और समाजवादियों के अलावा जितने भी नवगठित संगठन थे, सबने एक साथ मिलकर सामने आने का निर्णय लिया । इसमें कांग्रेस, जनसंघ, आरएसएस, आर्य समाज, हिन्दू महासभा और साधु तथा विभिन्न आस्था के नेता थे ।

पोद्दार इस सर्वदलीय गो-रक्षा महाभियान समिति के सर्वोच्च समिति का हिस्सा थे, उनके अलावा इसमें गोलवलकर, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, स्वामी करपात्री महाराज, पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य, जैनियों के आध्यात्मिक गुरु मुनि सुशील कुमार और भारत साधु समाज के स्वामी गुरु चरणदास थे । इसकी प्रबंधन समिति में महंत दिग्विजयनाथ (हिन्दू महासभा), सेठ गोविंद दास (कांग्रेस), रामगोपाल शालवाले (आर्य समाज), हंसराज गुप्ता (आरएसएस), वी पी जोशी (दिल्ली आरएसएस और जनसंघ), नन्दलाल शास्त्री (एमपी तथा रामराज्य परिषद के पूर्व सदस्य) और रामसिंह (हिन्दू महासभा) शामिल थे । ⁴⁹

बतौर खजांची पोद्दार ने अपने आप को आंदोलन से दूर नहीं रखा । बल्कि उन्होंने *कल्याण* के इस्तेमाल से गो-रक्षा आंदोलन के प्रोपेगेंडा को बहुत विस्तार दिया । गो-रक्षा आंदोलन में गीता प्रेस और पोद्दार द्वारा अदा की गई भूमिका बड़े पैमाने पर गंभीर विवरणों से नदारद है ।

नवंबर 1966 में संसद के सामने एक बड़ा धरना हुआ था । इससे ठीक चार माह पहले प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने *कल्याण* में एक तीखा लेख लिखा । इसमें उन्होंने हिन्दुओं को गो-रक्षा के उद्देश्य से अपने प्राण न्योछावर करने का आह्वान किया । ⁵⁰ ब्रह्मचारी ने माना कि गो-रक्षा राष्ट्रीय आंदोलन के केंद्र में रहा है । उन्होंने मोतीलाल नेहरू को दोहराते हुए कहा कि वे कहा करते थे कि वे गो-मांस नहीं खाते थे लेकिन वे गो-मांस खाने वालों का मांस ज़रूर खा सकते थे । असहयोग आंदोलन के समय ब्रह्मचारी ने

कहा देशभक्त वही था जो खादी कात और पहन रहा था, हिन्दी का प्रचार-प्रसार और गो-पूजा कर रहा था। इसीलिए उन्हें इस बात का झटका लगा कि कांग्रेस सरकार कैसे आज़ादी के बाद गो-हत्या प्रतिबंध पर अपने पैर पीछे हटा रही है।

ब्रह्मचारी ने गोलवलकर, करपात्री महाराज, सहाय और पोद्दार द्वारा शुरू की गई कई पहलों की व्याख्या की ताकि गो-हत्या प्रतिबंध के मुद्दे पर सरकार पर दबाव बनाया जा सके। प्रतिनिधियों (जिसमें शुरुआत की तारीख में पोद्दार भी शामिल थे) के साथ हुई नेहरू की बैठक का एक और दिलचस्प पक्ष है। यह कहा गया कि नेहरू ने प्रतिनिधियों की मांग पर सुनवाई की बात मानी और पूछा, 'आप लोग तो ऐसा प्रचार करते हैं कि मैं गो-मांस खाता भी हूँ?' गो-रक्षा आंदोलन के महत्वपूर्ण चेहरों वाले प्रतिनिधि समूह ने इस हरकत के पीछे अपने हाथ के होने से इंकार किया। लेकिन यह ज़रूर कहा कि पूरी तरह गो-हत्या निषिद्ध करना ही अपने आलोचकों को चुप करवाने का सही तरीका है।

हालाँकि अभी सर्वदलीय समिति (एसजीएमएस) की औपचारिक घोषणा होनी बाक़ी थी तभी *कल्याण* के जुलाई अंक ने सरकार पर गो-हत्या पर प्रतिबंध को शीघ्र लागू करने का नैतिक दबाव बनाने के लिए अपने पाठकों से व्रत, पूजा और धार्मिक पाठों को करने की अपील की। ⁵¹ ब्रह्मचारी और अन्य लोगों ने 20 नवंबर 1966 से आमरण अनशन की घोषणा की। पोद्दार ने अपनी ओर से लोगों से व्यक्तिगत अपील की कि गाय की हत्या में सहभागी प्रत्येक व्यक्ति का बहिष्कार करें। अगस्त में *कल्याण* ने अपने पाठकों से कहा एसजीएमएस की छत्रछाया में गो-हत्या प्रतिबंध के लिए सामूहिक संघर्ष करें और सितंबर में ब्रह्मचारी ने एक और अपील जारी करते हुए पाठकों को बड़ी संख्या में नवंबर अनशन में शामिल होने का आह्वान किया ताकि 'लापरवाह सरकार की कान पर जूँ रेंगे।' ⁵²

ब्रह्मचारी ने 22 सितंबर 1966 से गो-हित में उत्तेजक सर्मथन जुटाने के लिए प्रचार शुरू कर दिया। वहीं पोद्दार ने विस्तार में लेखन कर गो-रक्षा आंदोलन को जन-जन और देश भर के अन्य धर्मों व जाति के संगठनों तक पहुँचाने का बीड़ा उठा लिया। ⁵³

पोद्दार ने लखनऊ आधारित एक मुस्लिम संगठन जमात-ए-ईमानों-हिन्द के एक प्रस्ताव का हवाला देते हुए कहा कि इस संगठन ने सरकार द्वारा प्रतिबंधित किए जाने से पहले ही गो-हत्या निषेध को अपनाने की बात कही है। पोद्दार ने बनारस के विदेशी शिक्षा प्राप्त एक उच्च सरकारी अधिकारी का ज़िक्र किया जो बाद में मौनी बाबा हो गए थे, जिन्होंने सत्रह दिनों के लिए पानी का त्याग कर दिया। दिल्ली में एक संसदीय गो-समिति बनाई गई थी। इसमें सेठ गोविंद दास, कमलनयन बजाज, एम एस अणे, अटल बिहारी वाजपेयी, हरि विष्णु कामथ, दागाभाई पटेल और प्रकाश वीर शास्त्री थे। इस समिति का लक्ष्य गो-हत्या के खिलाफ़ जनमत खड़ा करना था। पोद्दार ने दावा किया कि यह आंदोलन नेपाल तक पहुँच गया है जहाँ हज़ारों लोग अपनी जान की बाजी

लगाने को तैयार हैं। *कल्याण* ने सामान्य जनता से सिर्फ विरोध करने को ही नहीं कहा बल्कि यह भी कहा कि गो-हत्या के पक्षधर किसी भी प्रत्याशी को वे वोट न दें। ⁵⁴

यह जान पड़ता है कि 1966 में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आचार्य सुशील कुमार से हुई बैठक में कुछ आश्वासन दिए होंगे। *कल्याण* में प्रकाशित हुआ कि आचार्य और प्रधानमंत्री की भेंट 'आश्चस्ति' पैदा करती है जिसके आधार पर बनारस के मौनी बाबा ने अपना अनशन समाप्त कर दिया है। ⁵⁵ हालाँकि इसी बीच दिल्ली में अनशन पर बैठे पंडित रामचंद्र वीर को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। पत्रिका ने बार-बार दोहराया कि गो-हत्या प्रतिबंध को राज्यों के ऊपर नहीं छोड़ा जाएगा। 'यदि ऐसी बात है तो संविधान को बदलना कोई अनहोनी बात नहीं। 21 बार संविधान बदला गया है और आवश्यक होने पर फिर बदला जा सकता है। हमारे आंदोलन में शान्ति के साथ प्रबलता होनी चाहिए और आंदोलन देशव्यापी होना चाहिए।'

इधर सरकार पर दबाव बढ़ रहा था और उधर पुरी के शंकराचार्य निरंजनदेव तीर्थ ने मेरठ में एक भाषण दिया। इस भाषण को *कल्याण* में जगह दी गई, 'एक पोटी रामलु ने अपने प्राणों पर खेलकर आंध्र प्रांत बना डाला था और अकेले ही संत फतेह सिंह ने मरने की धमकी देकर पंजाबी सूबा बना डाला तो यदि एक भी सच्चा गो-भक्त गो-माता की रक्षा के लिए और देश से गो-हत्या का काला कलंक मिटाने के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा दे तो देखें फिर भला गो-हत्या कैसे बंद नहीं हो सकती। एक लाख नवयुवकों की आवश्यकता नहीं है, पुलिस और फ़ौज उन्हें अपनी गोलियों का निशाना बना देगी और फिर भी इस ज़ालिम कांग्रेसी सरकार के कानों पर तनिक भी जूं नहीं रेंगेगी। हमें तो आज समस्त भारत में अत्यंत प्रभावशाली, सच्चे गो-भक्त तथा अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहने वाले धर्मप्राण केवल पांच-छह व्यक्ति चाहिए जो प्रसन्नता के साथ प्राणों की बाज़ी लगाकर गो-हत्या बंद करवाना चाहते हों।' ⁵⁶

निरंजनदेव तीर्थ ने पहले शंकराचार्य की हैसियत से गो-हित के लिए बलिदान देने वालों की सूची में सबसे ऊपर स्वयं को रखा। शंकराचार्य ने भीड़ के सामने मेरठ के गौरवमयी अतीत को दोहराया और सन् 1857 की क्रांति में सिपाहियों द्वारा गाय और सूअर की चर्बी वाले कारतूस का इस्तेमाल करने से मना कर देने वाला क्रिस्सा याद दिलाया। पूर्व प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री की ताशकंद में हुई आकस्मिक मृत्यु से पहले किए गए गो-हत्या प्रतिबंध के उनके आश्वासन की याद भी उन्होंने सरकार के लिए ताज़ा की।

नवंबर के उसी अंक में पोद्दार ने आंदोलन की ताज़ा गतिविधियों का विवरण दिया। ⁵⁷ उन्होंने कहा कि आंदोलन निर्णायक क्षण तक पहुँच चुका है और अब इसे सफल बनाने की ज़रूरत है। यथासंभव फंड से सहायता करने के लिए सभी से अपील की गई। अपील जारी हुई कि जिनके लिए मुनासिब बन पड़े वे दिल्ली में आयोजित विशाल रैली का हिस्सा बनें और बाक़ी लोग अपने-अपने स्थानीय क्षेत्रों से ही इस संघर्ष में भाग लें। पोद्दार ने शंकराचार्य, गोलवलकर, मुनि सुशील कुमार और प्रभुदत्त

ब्रह्मचारी को उनके योगदान के लिए आभार व्यक्त किया। उन्होंने आरएसएस द्वारा किए गए काम का विवरण तो नहीं दिया लेकिन उसे 'महान' कहा। इसी तरह 'हिन्दू महासभा के सम्मान्य नेता और कार्यकर्ता भी जी जान से जुट गए हैं।'

पोद्दार ने स्वयंसेवकों द्वारा आंदोलन को समर्थन देने के लिए गोलवलकर के प्रति अलग से धन्यवाद ज्ञापित किया। इससे यह निष्कर्ष निकल कर सामने आया कि उन्हें गो-रक्षा के लिए काम करने का अलग से प्रशिक्षण दिया जा रहा था। पोद्दार ने गोलवलकर को सूचित किया कि 'संघ के स्वयंसेवक आदर्श क्रियाशील तथा कर्मकुशल कर्तव्यपरायण सच्चे लोग हैं। श्री ब्रह्मचारी जी के घर पर ट्रेनिंग के द्वारा इधर जो कुछ भी हुआ बड़ा ही अच्छा हुआ, उसका सारा श्रेय हमारे इन पवित्र कर्मि स्वयंसेवकों को है। वे सप्ताहों पहले से तैयारी कर रहे थे।' ⁵⁸ उन्होंने देवरिया व अन्य स्थानों की जन सभाओं में जनता की विपुल भागीदारी का उदाहरण देते हुए इसका श्रेय स्वयंसेवकों को दिया।

जैसा कि पहले भी हो चुका था, *कल्याण* ने इस आंदोलन में अपने साथ मुस्लिम समर्थन भी लिया। पहले प्रसिद्ध हिन्दी पत्रिका *गांडीव* में छप चुके अतिकुर रहमान किदवई के एक लेख को *कल्याण* ने उद्धृत किया। ⁵⁹ किदवई ने तर्क दिया कि हिन्दुओं का गो-रक्षा आंदोलन मुसलमान विरोधी नहीं है। और आरोप लगाया कि सरकार इस पचड़े में पड़ने से घबराई हुई है। इसकी मुख्य वजह कसाईबाड़ों को न बंद करने की इच्छा है। उन्होंने मुसलमानों से नई मुश्किलें पैदा करने की जगह जोखिम भरे समय को समझने को कहा।

एक संगठित चेहरा अख्तियार कर और हिन्दुओं के लिए एकजुट आवाज़ में बोलने की महीनों की योजना 7 नवंबर को ध्वस्त हो गई। इससे पहले दिल्ली ने किसी भी मौके पर एक साथ सवा लाख से सात लाख लोगों का इतना बड़ा हुजूम नहीं देखा था, जो प्रदर्शन से कुछ रोज़ पहले से इकट्ठा होना शुरू हो गया था। ⁶⁰ इस विशाल रैली का समापन संसद के सामने होना था जिसमें अलग-अलग विचारधाराओं से आने वाले गो-रक्षा आंदोलन के प्रसिद्ध नेताओं द्वारा जनता को संबोधित किया जाना था। इसके मंच पर गोलवलकर, करपात्री महाराज और प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, कांग्रेस नेता सेठ गोविंद दास, जनसंघ के अटल बिहारी वाजपेयी और गीता प्रेस के पोद्दार थे।

कुछ समय तक भाषण योजानुसार चलते रहे। जबकि अन्दर लोकसभा की कार्यवाही में बाधा पैदा करने की वजह से पहले भी सितंबर में दस दिनों के लिए निलम्बित किए जा चुके करनाल से जनसंघ के सांसद स्वामी रामेश्वरानंद को अंततः पूरे सत्र के लिए बर्खास्त कर दिया गया। उस समय तक भाषण सुनियोजित लय में चल रहे थे, लेकिन बर्खास्तगी के तुरंत बाद रामेश्वरानंद ने मंच पर पहुँचते ही लाखों प्रदर्शनकारियों के हुजूम को भड़काऊ भाषण देकर कहा कि संसद में किसी के भी प्रवेश और निकास को बाधित किया जाये। इसे सीधे-सीधे संसद पर हमला माना गया। वाजपेयी और ब्रह्मचारी ने भीड़ को शांत करने की पूरी कोशिश की लेकिन तब तक

बेकाबू हो चुकी भीड़ ने संसद की ओर क्रदम बढ़ा दिए थे और पत्थरबाजी व लड़ाई शुरू हो गई। इसके बाद पुलिस ने लाठी चार्ज किया। भीड़ की एक टुकड़ी ने वहाँ से कुछ ही दूरी पर स्थित कांग्रेस नेता के कामराज के आवास पर घेराबंदी कर दी और उनके कर्मचारियों को ज़ख्मी कर दिया। परिणामस्वरूप गाय के प्रति अहिंसक होने की मांग कर रहे आंदोलन ने आठ मौतों और बहुत से घायलों के साथ दिल्ली के दिल पर हिंसा के निशान छोड़ दिए।

इस हिंसा का पहला नतीजा इंदिरा गांधी द्वारा गृह मंत्री गुलजारीलाल नंदा की बर्खास्तगी के रूप में सामने आया। सन् 1952, 1957 और 1962 में गो-हत्या प्रतिबंध को अपने चुनावी घोषणापत्र [61](#) का हिस्सा बना चुके जनसंघ ने रामेश्वरानंद जैसे लोगों से किनारा कर लेने की ज़ोरदार कोशिश की। लेकिन जनसंघ के शीर्ष नेता गिरफ्तारी से बच नहीं सके। पहले से ही गो-रक्षा के समर्थक रहे नंदा सन् 1968 में इस आंदोलन के भागीदार बने। [62](#) उन्होंने निरंजनदेव तीर्थ के साथ बैठकों को संबोधित किया।

ब्रह्मचारी और निरंजनदेव तीर्थ 20 नवंबर को पूर्व निर्धारित अपने अनशन की योजना पर अडिग रहे। जनसंघ, आरएसएस और गीता प्रेस भी जल्द वापस लौट आए। जनसंघ ने गो-रक्षा को अपने 1967 के चुनावी घोषणापत्र [63](#) में शामिल कर चारागाहों, डेरियों और गोशालाओं के वायदे को पूरा करने से जोड़ दिया।

लेकिन पोद्दार हिंसा को देख कर उद्विग्न हो गए थे और वे इसके परिणामों के प्रति चिंतित हो गए। अपनी ओर से एक लम्बी और नीरस सफ़ाई पेश करते हुए पोद्दार ने कहा, 'यद्यपि हिन्दू धर्म के अनुसार हिन्दू राजनीति को धर्म से रहित नहीं मानता, मैं वर्तमान किसी भी पॉलिटिकल पार्टी से कोई संबंध नहीं रखता।' [64](#) उन्होंने कहा कि मुझे गो-रक्षा आंदोलन का हिस्सा भगवान की इच्छा ने बनाया है। उन्होंने माना कि आलोचक इस बात का उपहास करेंगे कि गाय की रक्षा मांगने वालों ने इंसानों की हत्या होने दी। 7 नवंबर की हिंसा के लिए आयोजकों को दोषी मानना पाप होगा। लोग मारे गए, जिन्हें दूसरे के दुःख में सुख मिलता है उन्होंने कुछ इमारतों और पुरानी गाड़ियों में आग लगा दी। पोद्दार ने आंदोलन के नेताओं से आग्रह किया कि दिल छोटा न करें, लेकिन शान्ति और धैर्य बनाए रखें। इसके साथ उन्होंने सरकार से भी गो-हत्या प्रतिबंध पर शीघ्रातिशीघ्र क़ानून बनाने का निवेदन किया।

कल्याण के उसी अंक में एक दूसरी जगह पोद्दार ने 7 नवंबर की हिंसा को किसी षड्यंत्र का हिस्सा मानने से इंकार कर दिया। 'किससे क्या कहा जाये? यह सीधी-सी बात भी न सोची गई कि 10 लाख आदमियों का पूर्व-नियोजित मारकाट और लूटपाट के लिए धावा होता तो क्या वे 50,000 से अधिक स्त्रियों को साथ लेकर मैदान में आते? क्या दुधमुंहे शिशुओं को गोद में उठाए तरुणी देवियां और लाठी टेकती बूढ़ी दादियां साथ आतीं। केवल शांत-शिष्ट प्रभावशाली प्रदर्शन का आयोजन था।' [65](#)

पोद्दार ने जान-माल को पहुँची हानि के लिए अफ़सोस ज़ाहिर किया और न्यायिक जांच की मांग की। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी और शंकराचार्य निरंजनदेव तीर्थ की गिरफ्तारी

उनके लिए ज़्यादा कष्टकर थी। उन्होंने कहा कि इससे पहले किसी सरकार ने शंकराचार्य का ऐसा अपमान नहीं किया था। पोद्दार ने शिमला में दिए गए जयप्रकाश नारायण के भाषण का हवाला देते हुए हिंसा के लिए सरकार को दोषी ठहराया। उन्होंने यह भी कहा था कि गो-रक्षा आंदोलन के लिए जनता में अपार सहानुभूति है।

इंदिरा गांधी को बहन संबोधित कर लिखे अपने लम्बे पत्र में पोद्दार ने औपनिवेशिक समय में अदा किए गए अपने क्रांतिकारी अतीत का जिक्र किया। ⁶⁶ उन्होंने अपने नज़दीक रहे बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, देशबंधु चितरंजन दास और मदनमोहन मालवीय जैसे राष्ट्रवादी नेताओं के नाम लिए। महात्मा गांधी के लिए पोद्दार ने कहा वे उनके लिए परिवार सरीखे थे। पोद्दार ने यह दिखाने की कोशिश की कि उनकी नज़दीकी सभी राजनैतिक दलों के साथ रही है और उनका अपना कोई राजनैतिक प्रयोजन नहीं है।

पोद्दार ने स्वीकार किया कि गो-रक्षा उनके दिल के करीब है लेकिन उसकी वजह आध्यात्मिक है। पोद्दार ने कहा, उन्हें सरकार के रवैये से दुःख हुआ है। उन्होंने आयोजकों का हिंसा में कोई हाथ न होने को प्रमाणित करने के लिए कई घटनाओं का हवाला दिया। पोद्दार ने कहा कि लाखों की तादाद में बूढ़े, जवान, आदमी, औरत, यहाँ तक कि नाबालिग मिलकर गाय के सम्मान की खातिर सड़कों पर उतरे थे, ऐसी निर्मम हिंसा को अंजाम देने के लिए नहीं। उन्होंने इंदिरा गांधी से अनुरोध किया कि तथ्यों पर नज़र डालें। 'मुझे वे दिन याद हैं जब अहिंसावादी निर्दोष सत्याग्रही लोगों पर अंग्रेज़ी हुकूमत के डंडे पड़ते थे, गोलियों की बौछार होती थी। आज हमारे ही देश में हमारे ही शासन में उसकी पुनरावृत्ति हो, यह तो किसी को भी वांछनीय नहीं होना चाहिए, आप इस पर विचार करें और सहानुभूतिपूर्ण हृदय से विचार करें, आप सबकी अपनी बहन हैं।' गो-रक्षा के प्रति उनकी आस्था अडिग रही थी। उन्होंने इंदिरा से इसे प्राथमिकता से सोचने के लिए कहा।

जनवरी, 1967 के *कल्याण* में इंदिरा गांधी और उनके गृहमंत्री वाई बी चव्हाण द्वारा बार-बार दिए जाने वाले तर्क को चुनौती दी गई। जिसमें उन्होंने कहा था कि गो-रक्षा राज्य का विषय है; कई राज्य पहले ही गो-हत्या को प्रतिबंधित कर चुके हैं और जो राज्य ऐसा नहीं कर सके हैं उन पर केंद्र द्वारा दबाव डाला जाएगा। पोद्दार ने दावे से कहा कि बूढ़े बैलों के नाम पर गायों को रोज़ाना मारने वाले राज्य ऐसा सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर कर रहे हैं। ⁶⁷ पोद्दार ने मांग रखी जिसमें उनका ज़ोर गो-वंश से जुड़े किसी भी पशु की हत्या पर पूर्ण पाबंदी और उल्लंघनकर्ताओं पर कार्रवाई से था। उन्होंने कहा, उत्तर प्रदेश का क़ानून इतना लचीला है कि गो-हत्यारा थोड़ी-बहुत घूस खिला कर जेल से रिहा हो जाता है।

पोद्दार ने सुझाया कि गो-रक्षा मामले में शान्तिपूर्ण कार्रवाई केंद्रीय क़ानून से ही हो सकती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 और 250 का हवाला देकर उन्होंने कहा कि केंद्र सरकार को राष्ट्रीय हित में राज्यों के लिए क़ानून बनाने का अधिकार है।

उन्होंने गो-हत्या पर राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश लागू करने की भी सलाह दी। सन् 1967 के चुनाव जब बमुश्किल दो महीने दूर थे तब पोद्दार ने कहा कि यह बेहतर होगा कि इस संबंध में मंत्रियों की ओर से आश्वासन मिले।

सन् 1967 का आम चुनाव आज़ादी के बाद का सबसे महत्वपूर्ण चुनाव साबित होने वाला था, जब कांग्रेस के एकाधिकार को समाजवादियों और हिन्दू राष्ट्रवादियों से कड़ी चुनौती मिलने वाली थी। पोद्दार ने सर्वदलीय समिति की ओर से एक-एक बगैर हस्ताक्षर वाली अपील जारी कर दी जिसमें इसके चुनावों से किसी राजनैतिक दल से संबंधों से इंकार किया गया था। लेकिन वे कांग्रेस की खबर लेने से नहीं चूके और उन्होंने चेताया कि गायों की हो रही हत्याओं से नज़र फेर लेने के अंजाम अच्छे नहीं होंगे। 'वर्तमान परिस्थिति में तो हिन्दू मात्र के सम्मान्य आचार्यों, साधु-महात्माओं को महीनों भूखों मरने और इस अति शीतकाल में हज़ारों-हज़ारों देशवासियों और नर-नारियों को कारागार में डालने का पाप करने वाले तथा उनके समर्थक लोग उन्हीं लोगों से वोट की आशा कर सकेंगे जो केवल नाम के भारतीय हिन्दू हैं, जो अपने पूर्वजों की आचार्यनिष्ठा का परित्याग कर केवल अर्थ और अधिकार की लोलुपता से निम्न श्रेणी का स्वार्थ साधन करने में संलग्न हैं—अथवा जो अत्यंत भोले-भाले या डरपोक हैं।' ⁶⁸

30 और 31 जनवरी 1967 तक निरंजनदेव तीर्थ और प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने सरकार के इस वायदे पर अपना अनशन समाप्त कर दिया कि एक बारह सदस्यीय समिति गठित की जाएगी जिसे, गो-रक्षा के लिए अगर ज़रूरत हुई तो, संविधान-संशोधन की अनुशंसा का अधिकार होगा। ⁶⁹ इस समिति के सदस्यों में गोलवलकर, रमाप्रसाद मुखर्जी (कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और जनसंघ के श्यामाप्रसाद मुखर्जी के भाई) और निरंजनदेव तीर्थ थे। बहरहाल, गोलवलकर ने तीन महीने तक इसमें अपनी उपस्थिति दर्ज न करवा सकने की बात कही। वहीं तीर्थ ने यह कहते हुए इस्तीफ़ा दे दिया कि सरकार प्रतिबंध लागू करने को लेकर गंभीर नहीं है। इस तरह एक हद तक उदासीनता फैल गई थी। करपात्री महाराज जो कि सर्वदलीय गो-सेवक समिति के अध्यक्ष बन गए थे, ने सुझाया कि जनसंघ, हिन्दू महासभा और उनके अपने रामराज्य परिषद को मिल कर एक संयुक्त मोर्चा बनाना चाहिए जो व्यक्तिगत स्तर पर लोगों से जुड़ कर गो-हत्या प्रतिबंध की मांग करेगा। लेकिन जनसंघ ने इस प्रस्ताव में कोई रुचि नहीं दिखाई। भले ही गो-रक्षा का मामला उसके आगामी चुनावों में चलता रहा।

फ़रवरी 1967 के चुनावों में इंदिरा गांधी की सत्ता में वापसी हुई। *कल्याण* ने कांग्रेस नेता बृजलाल बियानी का एक लेख छापा। बियानी ने गो-रक्षा आंदोलन के इर्द-गिर्द चल रही बहसों को केंद्र में रखा। जैसे कि गो-रक्षा आंदोलन अपनी प्रकृति में धार्मिक था, दूसरा औपनिवेशिक काल में ऐसा कोई आंदोलन आकार नहीं ले पाया था, तीसरा इस आंदोलन की ज़मीन चुनावों के निकटता के अनुसार बुनी गई थी, चौथा गो-रक्षा एक राजनैतिक मुद्दा बन चुका था, पांचवां अनशन पर बैठने की रणनीति सफल

नहीं हो पाई । [70](#) बियानी ने हरेक आलोचना का एक-एक कर जवाब दिया । पहले, अगर एक धर्म निरपेक्ष राज्य धर्म और आस्था के बीच आता है तो इसके खिलाफ़ आंदोलन होना ही चाहिए, दूसरा, गो-रक्षिणी सभाएं ब्रिटिश शासनकाल में ही देशभर में गठित हुई थीं तो यह कहना ग़लत होगा कि इस तरह का कोई आंदोलन पहले कभी नहीं हुआ, तीसरा, जब आंदोलन के सफल होने के अच्छे आसार हों तो इस तरह की पहल करना स्वाभाविक है, चौथा, सभी राजनैतिक दलों की अपनी एक विचारधारा होती है और इसी तरह गो-रक्षा में विश्वास रखने वाले किसी राजनैतिक दल के आंदोलन से जुड़ने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । और अंत में पांचवां, अनशन गांधी द्वारा ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ़ इस्तेमाल हुआ स्वीकृत और प्रभावशाली विरोध का तरीका है जिसका इस्तेमाल हाल में ही पोद्दी श्रीरामुलु ने किया और यह आमरण अनशन ही था जिसके ज़रिए आंध्र प्रदेश अस्तित्व में आया ।

बियानी ने कांग्रेस नेता एस के पाटिल की टिप्पणी को अपवाद माना । पाटिल ने कहा था कि पुरी के शंकराचार्य अगर अनशन के कारण चल बसे होते तो यह हिन्दू धर्म के लिए बड़ा कलंक होता । बियानी ने उल्टे यह कहा अगर शंकराचार्य चल बसे होते तो यह वर्तमान सरकार पर धब्बा होता ।

पोद्दार ने बियानी के लेख पर छोटी-सी टिप्पणी की, जिसका मतलब यह था कि यह लड़ाई कौन जीतेगा, इसका फैसला अब भविष्य ही करेगा । [71](#) संघर्ष के खिंचते जाने से कुंठित, हताश पोद्दार ने कहा कि बियानी की उम्मीद कामयाब होगी, इसकी संभावना कम ही है । प्रतिबंध हेतु ठोस क़ानून की उम्मीद लगाए लोगों से पोद्दार ने कहा कि उत्साह में कमी न आने दें और भगवान में विश्वास बनाए रखें । व्यापारियों का एक बड़ा समूह जिनमें अधिकांश मारवाड़ी थे, जेल से छूट रहे प्रदर्शनकारियों को भोजन और छत मुहैया करवाने में जुटा हुआ था । और आधी दिल्ली में फैले आर्य समाज के मंदिरों में ये सहूलियत मुहैया कराई जा रही थी ।

जैसे ही गो-रक्षा आंदोलन की प्रगति क्षीण पड़ी, दिल्ली के तिहाड़ जेल से कुछ खतरनाक अपराधियों द्वारा जेल अधिकारियों की मौजूदगी में साधुओं पर हमला होने की एक खबर आई । पोद्दार ने *कल्याण* में लिखा कि यह हमला जून 29, 1967 की शाम हुआ जब करपात्री महाराज जेल में अपने सहयोगी प्रदर्शनकारियों को एक भाषण दे रहे थे । [72](#) पोद्दार ने कहा कि अपराधियों ने साधुओं पर रॉड, लाठियों और पत्थरों से हमला किया । तिहाड़ जेल के अस्पताल में ज़ख्मी साधुओं से मिलने के बाद पोद्दार ने कहा, उनमें से कई साधु ज़िन्दगी और मौत से जूझ रहे हैं । करपात्री महाराज की एक आँख में चोट आई थी । पोद्दार ने तस्वीरों और गवाहों के पर्याप्त सबूतों के आधार पर इसमें सरकार की मिलीभगत का दावा किया । लेकिन सरकार ने तत्काल पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त जज एस एस दुलत की निगरानी में एक जांच आयोग बनाया और इस तरह ये सारे ही सबूत जनता के बीच आने से बचा लिए गए ।

पोद्दार ने कहा कि हमले कि वजह का पता नहीं चला है लेकिन बहुत संभव है कि जेल अधिकारी आंदोलन को खत्म करने के लिए साधुओं को डराना चाह रहे थे। उन्होंने 5 जुलाई 1967 को घटित एक और चिंतित करने वाली घटना का जिक्र किया। रिहाई के बाद 105 साधुओं के तिहाड़ से बाहर क़दम रखते ही एक अपराधी ने आकर उन्हें धमकाया कि अगर वे गो-रक्षा आंदोलन को जारी रखेंगे तो उन्हें मार दिया जाएगा।

सन् 1967 में बिहार ने पहले भीषण सूखे की मार झेली। उसके ठीक एक साल बाद राज्य ने भयानक बाढ़ का दंश भी झेला। सर्वदलीय गो-सेवक समिति के तत्वाधान में पोद्दार ने पहले पांच हज़ार रुपए और फिर बीस हज़ार रुपए जोड़े। इन रुपयों को उन्होंने केंद्रीय मवेशी राहत समिति की बिहार इकाई को सौंप दिया। रुपयों का इस्तेमाल 147 से भी ज़्यादा केन्द्रों में विस्तृत 2,624 परिवारों के पशुओं के चारा प्रबंधन के लिए किया गया। ⁷³

सर्वदलीय समिति ने गो-रक्षा के नाम पर ठीक-ठाक धन राशि जोड़ ली थी। इसमें से अधिकांश धन राशि दिल्ली और कलकत्ता के गुमनाम गो-संरक्षकों की ओर से आई थी। ⁷⁴ जयदयाल डालमिया के विश्वासपात्र कर्मचारी हितशरण शर्मा दिल्ली में एसजीएमएस के वित्त प्रबंधन को देख रहे थे। वे उन्हें रोज़ाना की स्थिति से अवगत करवाते। कई बार लगभग चिढ़ते हुए उन्होंने कहा कि कुछ खर्च कम किए जा सकते हैं जैसे निरंजनदेव और करपात्री महाराज के टेलीफ़ोन के बिल और गो-हत्या पर पूर्ण प्रतिबंध लागू न होने तक सत्याग्रह पर बैठे रहने की ठान कर यमुना किनारे आश्रय लिए नागा साधुओं का खर्च। जून 1967 में तिहाड़ जेल में हुए हमले में ज़ख्मी हुए लोगों के उपचार और क़ानूनी कार्रवाई का खर्चा भी एसजीएमएस ही वहन कर रहा था। ⁷⁵ कोर्ट केस लापरवाही का शिकार हुआ, वकील ने एसजीएमएस के साथ धोखा किया। इसके अलावा वरिष्ठ नेताओं के बीच अविश्वास और असंगति भी फैल गई थी।

सन् 1967 की आखिरी तिमाही में पोद्दार ने एसजीएमएस से दूरी बनानी शुरू कर दी। कुछ तो ख़राब स्वास्थ्य और कुछ आंदोलन से बढ़ती विरक्ति, इस अलगाव की वजह बनी। लेकिन बावजूद इन सब परिस्थितियों के *कल्याण* सड़कों और संसद में चल रहे प्रदर्शन की गतिविधियों को दर्ज करता रहा। एक बार पत्रिका में एक घटना छपी कि गाय की रक्षा के लिए एक मुसलमान ने अपनी जान दांव पर लगा दी और इसके बदले गो-माता ने उसे दर्शन दे कर कृतार्थ किया। ⁷⁶ गाय की रक्षा करने से होने वाले सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक फ़ायदों की पुनरावृत्तियों की पत्रिका में भरमार देखी जा सकती है। ⁷⁷

21 दिसंबर 1967 को लोकसभा के दो सदस्यों—संसद में जनसंघ के अध्यक्ष अटल बिहारी वाजपेयी और उत्तर प्रदेश के आर्य समाजी ओम प्रकाश त्यागी ने सवाल उठाया कि साबुन बनाने में गाय और सूअर की चर्बी का इस्तेमाल हो रहा है, क्या सरकार इस बात से वाकिफ़ है कि बहुसंख्यक भारतीयों को पशु चर्बी छूने में समस्या है

। इसके जवाब में पेट्रोलियम, केमिकल और सोशल वेलफेयर के मंत्री के रघुरामिया ने स्वीकार किया कि साबुन बनाने में पशु चर्बी का इस्तेमाल हो रहा है। उन्होंने कहा कि 11 प्रतिशत सामग्री के तौर पर साबुन में यह मिलाया जाता है। आगे जोड़ते हुए उन्होंने कहा कि यूएस से आयातित भोज्य चर्बी को इसमें नहीं मिलाया जा रहा और सूअर मांस मिश्रण से भी उन्होंने इंकार किया। मंत्री ने दावा किया कि उपभोक्ताओं द्वारा कोई शिकायत नहीं की गई है।

वाजपेयी और त्यागी ने सवाल संसद में पूछा था लेकिन इसका जवाब पोद्दार ने अपनी टिप्पणी के साथ *कल्याण* में दिया। 'हिन्दुओं की धार्मिक भावना की अवहेलना करने में सरकार निर्भय है पर मुसलमानों का कुछ भय है शायद इसलिए सूअर की चर्बी के बारे में स्पष्ट ना कहा हो पर यह तो चर्बी भेजने वाले अमेरिका को पूछा जा सकता है और सूअर की चर्बी भी हो तो पैकटों पर साफ़ लिखना चाहिए कि इसमें गाय तथा सूअर की चर्बी लगी है।' ⁷⁸

जिसे पोद्दार ने हिन्दू भावनाओं का अपमान और संकट समझा वह असल में पशु चर्बी रहित साबुन उत्पादकों के लिए व्यवसाय को जमा लेने का सुनहरा मौका साबित हुआ। पोद्दार ने अपने पाठकों से बिना पशु चर्बी के साबुन उत्पादकों के नाम भेजने को कहा। जून 1968 तक *कल्याण* को ऐसे 68 उत्पादकों के नाम मिल चुके थे। ⁷⁹ इनमें सबसे पहला नाम गीता प्रेस वर्तमान संगठन यानी गोबिंद भवन कार्यालय का था जिसे हमेशा ही अपने प्रकाशन के लिए छोटे-मोटे मुनाफ़े की तलाश रहती थी। इस सूची में भारतीय कम्पनियां सबसे ज़्यादा थीं जैसे रोहतास इंडस्ट्री (यह 1960 के दशक तक रामकृष्ण डालमिया के दामाद शान्तिप्रसाद जैन के नियन्त्रण में थी), बंगाल केमिकल्स, मोदी सोप वर्क्स, डीसीएम केमिकल वर्क्स, गणेश फ्लॉर मिल्स, मारवाड़ी सोप वर्क्स, कच्छ ऑयल एंड एलाइड इंडस्ट्रीज, टाटा ऑयल मिल आदि शामिल थे। यहाँ तक कि बहुराष्ट्रीय हिन्दुस्तान लीवर ने भी दावा किया वह पशु चर्बी रहित नहाने और कपड़े धोने के साबुन बनाने की ओर बढ़ गई है।

गो-रक्षा आंदोलन में नेताओं के बीच मतभेद की बात को *कल्याण* ने सन् 1968 में स्वीकार किया। ⁸⁰ एक अनाम लेख, जिस पर पोद्दार के विचारों की स्पष्ट छाया थी, ने कहा कि एसजीएमएस में शीर्ष पदों के लिए होने वाली होड़ ने परस्पर विरोधी विचारों को गढ़ने में मदद की है। लेख के अनुसार एसजीएमएस की सबसे बड़ी गलती थी, अपने गो-रक्षा आंदोलन को समाप्त करके सरकार द्वारा गठित गो-रक्षा समिति के साथ जुड़ना। *कल्याण* ने उल्लेख किया कि आंदोलन के समाप्त होने के बावजूद सरकार ने 7 नवंबर 1966 में हिंसा के बाद पकड़े गए कथित आरोपियों के खिलाफ़ केस को वापस लेने का अपना वायदा पूरा नहीं किया।

कल्याण के लिए गो-रक्षा समिति द्वारा किया जा रहा विचार-विमर्श चिंताजनक था। *कल्याण* ने अपना डर जताते हुए यह भी कहा कि यह गो-रक्षा आंदोलन को खत्म कर देने का एक प्रयास है। समिति ने गो-हत्या पर किसी भी तरह के प्रतिबंध का

विरोध कर रहे गाय विशेषज्ञों से बातचीत बढ़ाई और विमर्श के लिए 'पूर्ण प्रतिबंध', 'आंशिक प्रतिबंध' और 'प्रतिबंध नहीं' पर मतदान करवाए। इसके साथ ही *कल्याण* ने कुछ अर्थशास्त्रियों के सुझाव भी प्रकाशित किए जिसमें कहा गया कि अगर गाय की हत्या के बजाय उसे निर्यात कर दिया जाये तो इससे भारत को विदेशी विनिमय का लाभ होगा। *कल्याण* ने लिखा कि 'यह अर्थ-पैशाचिक वृत्ति का आसुरी मत है।' *कल्याण* के इस लेख में गो-रक्षा आंदोलन को फिर खड़ा करने की वकालत भी थी। 'पिछले आंदोलन में सरकार का आसन डोला था, इस समय वह बात नहीं है इसके लिए भली-भांति सोच-विचार कर मार्ग निश्चित करना होगा, आंदोलन हो तो ऐसा हो जिससे सरकार को झुकना पड़े पर इसके लिए बहुत जल्दी ना करके गंभीर विचार करने की आवश्यकता है। परस्पर सच्चा सहयोग, विश्वास तथा सद्भाव हो, छोटी या बड़ी बातों को लेकर जो परस्पर का मतभेद है उसे इस क्षेत्र में सर्वथा भुला दिया जाये। आंदोलन को राजनीति से सर्वथा पृथक रखा जाये, विधानसभा और संसद के सदस्यों को सम्पूर्ण गो-रक्षा के क़ानून के पक्ष में तैयार किया जाये।'।

कल्याण के इसी अंक में *गांधीजी और गो-रक्षा* नाम से छपे केंद्रीय सरकार के प्रकाशन की आलोचना भी थी। हिन्दी में छपी इस पुस्तक के निःशुल्क वितरण को गो-हत्या की बहस को उलझाने वाली सरकारी चालाकी की तरह देखा गया। जिसकी कोशिश जनता के बीच यह राय पहुँचानी थी कि गांधी खुद गो-हत्या पर प्रतिबंध के पक्ष में नहीं थे। तीन भागों में लिखे गए *कल्याण* के इस लेख में जयदयाल डालमिया ने *हरिजन* में सन् 1938 में गांधी के लिखे एक लेख से दो पंक्तियाँ उद्धृत कीं, 'आखिर कसाइयों को भी अपना धंधा करना है' और 'हम आर्थिक दृष्टि से गो को कसाई के हाथ बेचना अनावश्यक और असंभव बना दें।' डालमिया ने कहा इन पंक्तियों को समझना तब तक मुश्किल है जब तक कि गांधी के संदर्भों को न समझा जाये। 'जिस समय में महात्मा जी ने ये वाक्य लिखे, संभव है कि हिन्दू-मुसलमान के बीच दंगा हुआ हो और गो-वध की बात को लेकर कसाई पीटे गए हों।' ⁸¹

गो-हत्या पर गांधी का नज़रिया दुविधाग्रस्त नहीं था, ये साबित करने के लिए डालमिया ने गांधी के कुछ और उद्धरण भी इकट्ठे किए। गायों व अन्य पशुओं की हत्या में शामिल क्रूरता महज़ दिखावा नहीं होते, यह साबित करने के लिए डालमिया ने कई सरकारी रिपोर्ट के माध्यम से पशु हत्या के चित्रात्मक विवरण भी दिए।

डालमिया ने गांधी को आलोचना से परे रखा वहीं भारत में गो-हत्या को जारी रखने का इल्जाम नेहरू पर लगाते हुए उन्हें चौतरफा घेरा। उन्होंने सन् 1955 में संसदीय बहस में दिए गए नेहरू के भाषण का उल्लेख किया जहाँ उन्होंने कहा था कि गाय को देश की अर्थव्यवस्था से ज़्यादा महत्व नहीं दिया जाना चाहिए, न ही इंसान से ज़्यादा महत्व दिया जाना चाहिए। सन् 1955 में भारतीय गो-रक्षा विधेयक की बहस के दौरान नेहरू ने कहा, 'मुझे प्रधानमंत्री के पद से इस्तीफ़ा देना मंज़ूर है लेकिन मैं पीछे

नहीं हटूंगा... जो अर्थशास्त्र और कृषि (के समीकरण) को नहीं समझते हैं उन्हें मेरी सलाह है कि ऐसा कोई कदम न उठाएं जो पशु धन को बर्बाद कर दे ।’ ⁸²

अपने लेख की अंतिम किस्त में डालमिया ने कहा कि अगर सरकार गो-हत्या प्रतिबंध पर क़ानून बनाने को लेकर गंभीर नहीं है तो कम-से-कम (कई साल पहले) सन् 1923 में *यंग इंडिया* में छपे गांधी के लेख में दी गई हिदायतें ही मान लें जो आज़ादी के बाद भी सच हैं । सरकार को खुले बाज़ार में बिकने वाली गायों को ऊँचे दामों पर ख़रीद लेना चाहिए, उसके दूध को बड़े शहरों में उचित दामों पर बेचना चाहिए, मरी हुई गायों की खाल और हड्डियों का उचित उपयोग तय करना चाहिए, अपने संरक्षण में चमड़ा फैक्टरी खोलनी चाहिए, पशु फार्म्स के मॉडल खोलने चाहिए ताकि लोग पशुपालन सीख सकें, और चारागाह उपलब्ध करवाएं तथा पशु कल्याण विभाग खोलें ।

कई मायनों में अब डालमिया गो-रक्षा अभियान को संभाले हुए थे । इसका कारण लोगों के बीच बढ़ रही दुविधा पर स्पष्टीकरण देना था कि वेदों में गो-हत्या और बीफ़ भक्षण है या नहीं । उन्होंने गीता प्रेस में काम करने वाले कृष्ण चन्द्र को लिखा कि पोद्दार अंग्रेज़ी या हिन्दी में लिखी कोई पुस्तक सुझाएँ जिससे यह साबित किया जा सके कि वेदों और उपनिषदों के समय में न तो गो-हत्या होती थी और न ही बीफ़ खाया जाता था । ⁸³

डालमिया ने ए बी शाह की *काऊ स्लाटर: होर्न्स ऑफ़ ए डिलेमा* का एक हिस्सा उद्धृत करते हुए दावा किया कि ‘प्राचीन भारत में शुभ अवसरों पर गाय की बलि को समृद्धि सूचक माना जाता था ।’ शाह ने लिखा कि ‘दूल्हा और दुल्हन को मंडप में लाल सांड की खाल पर बैठाया जाता था ।’ और इसी तरह की खाल का इस्तेमाल राजा की ताजपोशी के समय किया जाता था । शाह के अनुसार यह प्रथा विश्व के एकमात्र हिन्दू देश नेपाल में अब भी बरती जाती है । राजा महेन्द्र के राज्याभिषेक के समय *द टाइम्स ऑफ़ इंडिया* ने ख़बर छपी कि ‘ताजपोशी के लिए बैल की पवित्र खाल पर राजा का सिंहासन रखा हुआ था, इस खाल को पाकिस्तान के विदेश मंत्री हमीदुल हक़ चौधरी हवाई यात्रा से स्वयं लेकर काठमांडू पहुंचे थे ।’

यह मालूम नहीं चला कि पोद्दार ने डालमिया को क्या सलाह दी लेकिन डालमिया के लिए यह निजी मिशन में बदल चुका था । डालमिया ने खुद ही एक पुस्तक के संपादन का निर्णय लिया— *प्राचीन भारत में गो-मांस: एक समीक्षा* । इस पुस्तक का लक्ष्य यह स्थापित करना था कि प्राचीन भारत में कभी गो-हत्या नहीं हुई और न ही गो-मांस खाया गया । डालमिया समूह भले ही घाटे में रहा हो लेकिन तब भी जयदयाल डालमिया के पास पुस्तक की दस हज़ार प्रतियाँ छपवा कर उनमें से पांच हज़ार प्रतियाँ निःशुल्क बंटवाने का सामर्थ्य था । ⁸⁴ डालमिया ने पहले अध्याय का मसौदा गोरखपुर में पोद्दार के सहयोगी हरिकृष्ण दुजारी को भिजवाया ताकि दुजारी पोद्दार के स्वास्थ्य में सुधार आते ही उनकी ओर से स्वीकृति ले लें । ⁸⁵

प्राचीन भारत में गो-मांस: एक समीक्षा गीता प्रेस से छपी और गो-प्रदर्शनकारियों के बीच तेज़ी से लोकप्रिय हुई। आरएसएस के साप्ताहिक पाञ्चजन्य में समीक्षा छपने से लेकर बनारस के अति रूढ़िवादी प्रकाशनों और यूपी के छोटे शहरों तक ने इसे हाथोंहाथ लिया। डालमिया की मेहनत को सेठ गोविंद दास और गोलवलकर से लेकर आध्यात्मिक नेताओं और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तक ने सराहा।

खराब स्वास्थ्य ने पोद्दार को डालमिया की पुस्तक की सफलता से दूर ही रखा। सन् 1969 के अंत तक पोद्दार ने डालमिया से निवेदन किया कि निरंजनदेव तीर्थ को सर्वदलीय गो-सेवक समाज के लिए नया खजांची ढूँढ़ने का संदेशा भिजवा दें। ⁸⁶ उन्होंने स्पष्ट किया कि सर्वदलीय गो-सेवक समाज को दान देने वालों को आयकर में छूट नहीं मिलती है और ऐसा होने वाला भी नहीं है। इसी में आगे उन्होंने आयकर से बचने के लिए सर्वदलीय गो-सेवक समाज द्वारा अपनाए गए तरीके भी ज़ाहिर कर दिए। पोद्दार ने कहा कि सर्वदलीय गो-सेवक समाज भारत गो-सेवक समाज के नाम की रसीद इस्तेमाल करता है जिसे आयकर से मुक्त रखा गया है। उन्होंने डालमिया से कहा कि उनसे फिर से बातचीत कर और रसीदों का प्रबंध करें।

दो साल बाद पोद्दार नहीं रहे। गो-रक्षा आंदोलन में उनके योगदान को श्रद्धांजलि देते हुए भारत गो-सेवक समाज ने उनकी स्मृति में अपनी पत्रिका गो धन का एक विशेषांक निकाला।

विश्व हिन्दू परिषद

29 और 30 अगस्त 1964 को दक्षिणपंथी हिन्दू संगठनों के बड़े सदस्यों की बैठक बॉम्बे के स्वामी चिन्मयानंद के संदीपनी आश्रम में हुई। स्वामी चिन्मयानंद गीता के विशेषज्ञ और चिन्मय मिशन के संस्थापक थे। यह बैठक आरएसएस प्रमुख गोलवलकर ने बुलाई थी। इसका उद्देश्य हिन्दुओं में महसूस की जाने वाली 'असुरक्षा, अधार्मिकता और उत्पीड़न' पर बात करते हुए 'हिन्दुओं के विदेश में रह रहे उनके करोड़ों सहधर्मियों के साथ उन्हें संगठित करने का प्रयास करना था।' ⁸⁷ 150 में से केवल 60 ने इस बैठक में भाग लिया ⁸⁸ और एकमत से विश्व हिन्दू परिषद के गठन पर अपनी सहमति दी। यह पूरी दुनिया के हिन्दुओं के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था बनी। समय के साथ इसी विश्व हिन्दू परिषद ने आरएसएस के विशेष लक्ष्य वाहक का रूप ले लिया जो 'हिन्दुओं का परिषद' था और 'धार्मिक-जातीय गतिविधियों के लिए हिन्दुओं को गोलबंद करने वाले अभियानों में शामिल रहा'। ⁸⁹

विश्व हिन्दू परिषद हिन्दू दक्षिणपंथियों का पहला बड़ा संगठित रूप था जिसे अलग-अलग व्यक्ति मिल कर शक्तिशाली और स्थायित्व प्रदान कर रहे थे। (इसमें शक्तिशाली साधु, राजनेता, व्यवसायी और पुराने राजा-महाराजा थे) और इन सभी का नेतृत्व आरएसएस ने संभाला हुआ था। इसके दो मुख्य लक्ष्य थे, हिन्दू धर्म को भारतीय

प्रवासियों के बीच प्रचारित करना और 'भारत के आदिवासी इलाकों में ईसाइयों के धर्मांतरण के समकक्ष अपनी पहल करना ।'

आमंत्रित होने के बाद भी पोद्दार संदीपनी आश्रम की बैठक में शामिल नहीं हो पाए । लेकिन उनका क्रद विहिप के न्यासी बनाए जाने जितना बड़ा था । ⁹⁰ उनके अलावा न्यासियों की सूची में जयचामराज वदयार (मैसूर के पूर्व शासक और खतरे में हिन्दुवाद सिद्धांत के प्रस्तोता), सद्गुरु जगजीत सिंह (नामधारी सिखों के आध्यात्मिक गुरु), सिख नेता मास्टर तारा सिंह, स्वामी चिन्मयानंद, सर सी पी रामास्वामी अय्यर (त्रावणकोर राज्य के पूर्व दीवान, जो एनी बेसेंट के होम रूल लीग आंदोलन में सहयोगी रहे थे । वे कांग्रेस नेता और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति तथा हिन्दू मंदिरों की सुधार समिति के अध्यक्ष भी थे) ⁹¹ रमाप्रसाद मुखर्जी, भारतीय विद्या भवन के के एम मुंशी, एम एस गोलवलकर और केशवराम काशीराम शास्त्री (गुजराती, संस्कृत के एक लेखक व अध्यापक) जैसे बड़े नाम शामिल थे । शिवराम शंकर आपटे एक कनिष्ठ वकील थे जो वकालत के दिनों में के एम मुंशी के सहायक रहे और बाद में एक पत्रकार हुए तथा आरएसएस प्रचारक रहे, वे विहिप के पहले महासचिव बने ।

पोद्दार के लिए विहिप का अस्तित्व में आना उत्सव का पल था । वे लम्बे समय एक मज़बूत हिन्दू संगठन की वकालत कर रहे थे, और विहिप सभी मानदंडों पर खरा था । खुशी के आधिक्य का एक कारण इसमें उनके प्रिय मित्र जयदयाल डालमिया के बेटे विष्णु हरि डालमिया की सहभागिता भी बनी ।

वे प्रयाग कुंभ मेले के समय इस नए संगठन द्वारा 22 से 24 जनवरी 1966 को आयोजित होने जा रहे तीन दिवसीय महासम्मलेन के लिए अत्यधिक उत्साहित थे जिसमें विश्व भर से हिन्दू प्रतिनिधि भाग लेने वाले थे । पोद्दार ने विश्व भर के हिन्दू प्रतिनिधियों को बेहतर समझदारी, प्रेम व आपसी साझेदारी, और भविष्य में विहिप की शाखाओं को पूरी दुनिया में फैलाने के उद्देश्य के लिए सम्मलेन में भाग लेने को कहा । कन्नौज में हर्षवर्धन द्वारा सातवीं सदी में बौद्ध तीर्थ यात्री जुआन जेंग के सम्मान में आयोजित हुई सभा की यादों को ताज़ा करते हुए सन् 1966 की विहिप बैठक में 20,000-30,000 हिन्दुओं ने भाग लिया । ⁹² द्वारका के शंकराचार्य सहित 2,500 हिन्दू समूहों से प्रतिनिधि वहाँ उपस्थित थे । तीन राज्यों के गवर्नर वहाँ शरीक हुए—उत्तर प्रदेश के विश्वनाथ प्रसाद दास, पश्चिम बंगाल के के एन काटजू, और बिहार के अनंतशयनम अय्यंगर । इसके अलावा नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री तुलसी गिरी ने नेपाल के राजा का प्रतिनिधित्व किया और उनका संदेश पढ़ा । रमाप्रसाद मुखर्जी ने सभा की अध्यक्षता की । एक बार फिर पोद्दार अचानक बीमार पड़ने की वजह से विश्व हिन्दू परिषद के सम्मलेन में भाग नहीं ले पाए । उनकी अनुपस्थिति पर खेद व्यक्त करते हुए नेपाल में भारतीय राजदूत श्रीमन नारायण ने उनके लिए नेपाल के महाराजा महेन्द्र वीर विक्रम शाहदेव के संदेश की एक प्रति भिजवा दी ।

विहिप ने अकसर पोद्दार के सम्पर्क कौशल का लाभ उठाया, जैसे आपटे उन्हें हिन्दू विश्व पत्रिका के लिए लिखने की याद दिलाते रहे। आपटे ने कहा, 'आपके प्रभावी एवं अधिकारी लेख द्वारा यदि हमारे धर्म पुरुष और धर्म तीर्थ क्षेत्रों के संत महंतों का आह्वान किया जाये कि आज की अति कठिन जैसी धर्मगति की अवस्था में हमारे धर्मपुरुषों ने अपना कर्तव्य और उत्तरदायित्व समझकर समाज का नेतृत्व करना कितना आवश्यक है तो हम लोग जो प्रयत्न कर रहे हैं उसको अच्छा समर्थन मिलेगा।' और उनकी नियमित सहायता का आश्वासन लेते हुए उन्हें पूरी आज़ादी दी, 'आपको ऊपर का विषय छोड़कर भी जो कुछ भी उचित लगे वह भेजने की कृपा करें।' ⁹³

राम जन्मभूमि आंदोलन

अयोध्या में जो हुआ उसके बीज बहुत पहले 1940 के दशक में ही रोप दिए गए थे। हिन्दुओं के अनुसार राम की जन्मभूमि की जगह पर पहले एक मंदिर था जिसे मुगल शासक बाबर ने सन् 1528 में ध्वस्त करके बाबरी मस्जिद का निर्माण किया था। बिना किसी पुरातात्विक प्रमाण के हिन्दुओं द्वारा किए गए इस दावे से मुसलमानों से विवाद बढ़ा जिन्होंने बाबरी मस्जिद में नमाज़ अदा करना जारी रखा। सन् 1948-49 के बीच अयोध्या में प्रतिक्रियाओं की बाढ़ आ गई और यही बाढ़ भारतीय राजनीति में चार दशक बाद दिखाई दी।

जीवनपर्यंत पोद्दार के मित्र रहे बाबा राघवदास ने कांग्रेस की टिकट पर फैज़ाबाद विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र से जून 1948 का उप-चुनाव जीत लिया। उनके विपक्षी कांग्रेस समाजवादी पार्टी के आचार्य नरेंद्र देव फैज़ाबाद के ही रहने वाले थे और हिन्दू धार्मिक विचारों के साथ-साथ मार्क्सवादी विचारधारा में गहरे डूबे हुए थे। नरेंद्र देव इस उप-चुनाव में कम अंतर से यानी 1,312 वोटों से हार गए। (राघवदास: 5,392; नरेंद्र देव: 4,080) बाबा की जीत ने 'कांग्रेस के बाहर और भीतर हिन्दू सम्प्रदायवादियों' की पकड़ दिखा दी। ⁹⁴ अयोध्या के मुसलमानों ने नरेंद्र देव को भारी मात्रा में वोट दिए थे। इसकी वजह मुख्यमंत्री गोविंद वल्लभ पंत का रूढ़िवादी हिन्दू समूहों और बाबा राघवदास के साम्प्रदायिक प्रचार का खुलेआम समर्थन करना था। उप-चुनावों के एक दिन पहले भी स्थानीय साधु मुसलमानों को धमका रहे थे और हिन्दू महासभा भी उन्हें बाबरी मस्जिद में जाकर नमाज़ अदा करने से रोक रही थी। पंत यूपी कांग्रेस की न केवल बाबा राघवदास द्वारा संचालित साम्प्रदायिक प्रचार में शामिल थे बल्कि मुसलमानों के डर को भी नकार रहे थे। बाबा की जीत ने आगे के कामों की शुरुआत के लिए मौक़े दिए।

22-23 दिसंबर 1949 की रात बाबरी मस्जिद में भगवान राम की एक मूर्ति प्रकट हो गई। इस घटना को तत्काल दैवीय हस्तक्षेप बना कर पेश किया गया और इसे राम के प्रकाट्य के रूप में देखा जाने लगा। अयोध्या पुलिस स्टेशन में दंगा फैलाने, अतिक्रमण और धार्मिक स्थल को दूषित करने की पहली एफआईआर अभिराम दास,

राम सकल दास, सुदर्शन दास सहित पचास से साठ गुमनाम लोगों पर दर्ज की गई। ⁹⁵ हुआ यह कि पुलिस जांच ने मिथक से हटकर सच्चाई की पड़ताल करने में कोई मेहनत नहीं की। षड्यंत्रकारी जिला व राज्य प्रशासन (पंत तब भी मुख्यमंत्री थे) ने यह डर फैला दिया कि अगर मूर्ति को उस स्थान से हटाया गया तो हिन्दुओं द्वारा प्रतिघात किए जाने का खतरा बना रहेगा। परिणामस्वरूप हिन्दुओं को मूर्ति की जगह पर बैठ कर पूजा करने का अधिकार मिल गया। और यहीं सब क़ानूनी विवाद पैदा हुआ। बाद में बिना किसी संदेह यह भी सिद्ध हो गया कि मूर्ति प्रकटीकरण की उस घटना को हिन्दू साम्प्रदायवादियों ने बड़ी साज़िश के एक हिस्से के रूप में निर्वाणी अखाड़ा के अभिराम दास और उनके सहयोगियों के माध्यम से अंजाम दिया था। ⁹⁶

जाने-माने हिन्दी पत्रकार और आरएसएस के अंतरंग राम बहादुर राय ने हाल में ही अयोध्या में अचानक प्रकट हुई मूर्ति से जुड़ी नई और चौंकाने वाली सूचनाओं को उजागर किया। राय ने लिखा कि आरएसएस नेता नानाजी देशमुख ने उन्हें कहा कि अयोध्या परिसर में मूर्ति पोद्दार के नेतृत्व में सरयू नदी में पवित्र डुबकी के बाद स्थापित की गई। ⁹⁷ जब राय ने इस तथ्य को दर्ज करने की इच्छा ज़ाहिर की तब देशमुख ने मना कर दिया। लेकिन वे मानते रहे कि यह सच था। अयोध्या पर प्रकाशित हुए काम में कहीं भी देशमुख का दावा दिखाई नहीं देता है। लेकिन यह षड्यंत्र के उन धागों को खोलने में मददगार है जो अभी भी उलझे हुए हैं।

1940 के दशक में हिन्दू राष्ट्रवादियों के अभियान से पूरी तरह जुड़े पोद्दार ने मूर्ति के प्रकटीकरण की खबर को खुशी से स्वीकार किया। (अपने शामिल होने या नहीं होने से परे) उनके लिए यह समाचार बहुत मायने रखता था क्योंकि वे खुद हिन्दू स्थलों अयोध्या (राम), मथुरा (कृष्ण) और सालासर (हनुमान) को पुनःप्राप्त करने के लिए प्रयासरत थे।

मूर्ति, जिसे भक्तों और संघ परिवार ने रामलला कहा, के दिखने के कुछ दिनों के भीतर ही पोद्दार अयोध्या पहुँचे ताकि आगे की रणनीति पर विचार-विमर्श किया जा सके। ⁹⁸ एक ऐसा व्यक्ति जिसका अपना पूरा जीवन भगवान से बातचीत के दावों से भरा हो उसके लिए राम की मूर्ति का प्रकट होना सवालों से परे था। यहाँ तक कि वे उस मूर्ति के भविष्य की योजना बनाने लगे। उनके अनुसार मूर्ति को स्थापित करने के लिए भव्य मंदिर निर्माण की आवश्यकता थी।

जब उन्हें पता चला कि सरकार मूर्ति को हटवा सकती है तो पोद्दार ने कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों को लिखा, 'अयोध्या में श्री राम जन्मभूमि का प्राचीन स्थान है, बीच में मुस्लिम राज्य के समय उस पर मुसलमानों ने अधिकार करके मस्जिद बना ली थी। हाल में कहा जाता है कि यहाँ भगवान श्री राम की मूर्ति प्रकट हुई है, इस समय वहाँ अखंड कीर्तन और रामायण पाठ हो रहा है। सुना गया है कि सरकार मूर्ति हटवा देने के पक्ष में है और नाना प्रकार से मूर्ति हटवाने का प्रयत्न कर रही है। भगवान श्री राम की जन्मभूमि का संबंध देशभर के तमाम हिन्दुओं से है। राम जन्मभूमि से भगवान श्रीराम

की मूर्ति हट गई तो हिन्दुओं के लिए अपने पूजा स्थल को पुनः प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होगी ।’ [99](#)

अयोध्या प्रवास के समय पोद्दार ने पाया कि स्थानीय हिन्दू समूहों के पास विवादित स्थल पर रोज़ाना पूजा-पाठ कर सकने लायक आर्थिक क्षमता नहीं है । इसके अलावा एक बड़ी राशि इसकी क़ानूनी लड़ाई में व्यय होने वाली थी । पोद्दार ने अखंड कीर्तन और (मूर्ति की) रोज़ाना की पूजा-पाठ के लिए हर महीने पन्द्रह सौ रुपए देने का वायदा किया और कोर्ट-कचहरी के खर्चों को वहन करने के साथ-साथ समय-समय पर पड़ने वाले छोटे-बड़े खर्चों से निपटने का भी बीड़ा उठाया । [100](#)

कोर्ट की कार्रवाई जैसे-जैसे बढ़ती गई अयोध्या में हिन्दू-मुसलमान के बीच साम्प्रदायिक तनाव उतना ही गहरा होता गया । पोद्दार इस विवाद का स्थायी हल ढूँढ़ने में जुट गए । बहरहाल, यह हल अपने स्वभाव में बहुसंख्यक प्रकृति का था । वे अयोध्या और उसके बाहर के शीर्षस्थ मुसलमानों को राज़ी करना चाहते थे कि मंदिर परिसर में एक मस्जिद का होना अप्राकृतिक और ग़ैर-इस्लामिक है । पोद्दार ने अपने संदेश के साथ कुछ उदारवादी मुसलमानों को अयोध्या भेजा । इसका सीधा मतलब यह था कि ख़ुद मुसलमान भी बाबरी मस्जिद पर अपना अधिकार नहीं चाहते हैं । पोद्दार ने दावा किया कि उदारवादी मुसलमानों में से कुछ विवादित स्थान को फिर से प्राप्त करने के लिए प्रदर्शन कर रहे मुसलमानों के खिलाफ़ दिल्ली में जाकर अनशन पर बैठना चाहते हैं । बहरहाल, वे उस विवाद की त्रासद परिणति नहीं देख सके ।

कृष्ण जन्मभूमि आंदोलन

मथुरा स्थित श्री कृष्ण जन्मभूमि मंदिर को पुनर्स्थापित करने की लड़ाई इतनी तीखी तो नहीं थी लेकिन इस लिहाज़ से ज़्यादा रोचक थी कि इसने गीता प्रेस और कांग्रेस को एक ही मंच पर ला खड़ा किया । जुगल किशोर बिड़ला की मदद से मदनमोहन मालवीय द्वारा शुरुआती पहल कर छोड़ी गई इस लड़ाई के दो नाटकीय पात्र हनुमानप्रसाद पोद्दार और कांग्रेस पार्टी की सर्वोच्च निर्णायक संस्था कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य सेठ गोविंद दास थे ।

सन् 1950 की तीर्थयात्रा के दौरान पोद्दार में कृष्ण जन्मभूमि का विचार अंकुरित हुआ । इसके तुरंत बाद वे हिन्दू पूजा स्थलों की पुनः प्राप्ति अभियान के मुख्य संचालक बन बैठे । मथुरा में अपने सम्मान में आयोजित एक सभा को संबोधित करते हुए पोद्दार ने कहा कि मथुरा में हर साल लाखों श्रद्धालु आते हैं लेकिन कृष्ण जन्मभूमि अब भी उपेक्षित स्थिति में है । उन्होंने कहा कि कृष्ण जन्मभूमि की यह दशा देख कर कौन चिंतित नहीं होगा भला! और अपनी ओर से इसके पुनर्निर्माण के लिए दस हज़ार रुपए देने की घोषणा की । [101](#) यह तय हुआ कि इसकी शुरुआत श्री कृष्ण जन्मभूमि के स्थान पर एक बड़े यज्ञ से की जाएगी ।

पोद्दार यह बात जानते थे कि मथुरा के इस प्रोजेक्ट में अत्यधिक धन लगने वाला है इसलिए उन्होंने लेखक और रूढ़िवादी कांग्रेसी नेता सेठ गोविंद दास को अपने साथ ले लिया। बहुत से मुद्दों पर इन दोनों के विचार मिलते थे। भगवान श्री कृष्ण की जन्मभूमि के मुद्दे पर भी इनके विचार एक से थे। कांग्रेसी होने के नाते दास यह भी जानते थे कि उन्हें अपनी पार्टी की धर्मनिरपेक्ष विचारधारा की सीमा के भीतर रह कर ही इस अभियान में सहभागी होना होगा।

सन् 1955 की जुलाई तक सेठ गोविंद दास के पास नेहरू सरकार को अपने साथ मिलाने की एक योजना थी। दास ने पोद्दार को लिखा, 'इस पत्र के साथ आपको श्रीकृष्ण धाम की संपूर्ण योजना हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में भेजी जा रही है। अंग्रेज़ी में इस योजना का नाम गोवर्धन रखा गया है। यह इसलिए कि हमारा राज्य धर्मनिरपेक्ष राज्य है और यदि हमको सरकार से कोई सहायता प्राप्त करनी है तो संस्था का नामकरण इत्यादि इस प्रकार का हो जिससे वह संस्था धर्मनिरपेक्ष समझी जा सके। इस योजना के बनाने में अधिक विचार-विनिमय करना पड़ा और श्रम भी उठाना पड़ा।' ¹⁰²

सेठ गोविंद दास पोद्दार से आग्रह किया कि योजना को सावधानी से पढ़ें क्योंकि यह 'अद्वितीय' प्रयास है। उन्होंने कहा, 'यदि भारत को भारत रहना है तो उसके सांस्कृतिक पुनरुद्धार के लिए साथ ही संसार को जो भारतीय सन्देश देना है उस दृष्टि से भी इस योजना को मूर्त रूप देना प्रत्येक भारतीय संस्कृति के उपासक का कर्तव्य हो जाता है।' दास ने कहा कि वे खुद मदद के लिए केंद्र व राज्य सरकारों को लिखेंगे। इससे पहले वे राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद को लिख चुके हैं और प्रसाद ने सहायता करने की सहमति भी दी है। उन्होंने कहा कि पांच से दस लाख इकट्ठा होने के बाद ही सरकार सहायता करेगी। कृष्ण जन्मभूमि के पास थोड़ी ज़मीन खरीद ली जाएगी और राष्ट्रपति की उपस्थिति में नई इमारत की नींव डाली जाएगी। उन्होंने पोद्दार से कहा कि इसके लिए जो बन पड़े करो। दास ने पोद्दार को सलाह दी, 'कल्याण के ग्राहक ही लगभग सवा लाख हैं, कल्याण द्वारा यदि आप अपील करें और सवा लाख ग्राहकों में से एक लाख ग्राहक भी 5-10 रुपए इस कार्य के लिए दे सकें तो यह रुपया सहज ही इकट्ठा हो सकता है।' दास ने पोद्दार और जयदयाल गोयन्दका से यह भी कहा कि अपने परिचित समूहों में भक्ति भावना वाले लोगों से मिला जाये, विशेषकर बॉम्बे और अहमदाबाद के वैष्णवों से संसाधनों के लिए मिलना सही रहेगा। जो पैसा इकट्ठा होगा वो गीता प्रेस के पास जमा किया जाएगा और तब तक गोवर्धन के दस्तावेज़ तैयार हो जाएँगे।

सन् 1958 तक परिसर में केशवदेव मंदिर बन कर तैयार हो चुका था। मंदिर के उद्घाटन के समय दिए गए पोद्दार के भाषण से हिन्दू स्थलों को कथित तौर पर अतीत में हथियाए गए मुसलमान शासकों से मुक्त करवाने के राष्ट्रव्यापी अभियान में उनके क्रोध का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। कृष्ण जन्मभूमि अभियान से जुड़ने के लिए मदनमोहन मालवीय और जुगल किशोर बिड़ला का आभार व्यक्त करते हुए पोद्दार ने

कहा, 'किसी एक पद्धति से होने वाली पूजा स्थली को तथा किसी अवतार अथवा महापुरुष के जन्म या लीला स्थल को बलात्कार से हस्तगत करके उस पर अपना अधिकार जमाना पाप है और ऐसा अधिकार जब तक रहता है तब तक वह कलंक, वह पाप और उस पाप की स्मृति तथा तज्जन्य रागद्वेष बना रहता है। कुछ दिनों पहले तक हमारे देश में 'पर राज्य' था अब स्वराज है। इस समय तो ऐसा एक भी कलंक नहीं रहना चाहिए। सोमनाथ मंदिर का पुनरुद्धार स्वर्गीय सरदार पटेल महोदय के पावन प्रयत्न से हुआ। ऐसे ही श्री काशी के पवित्र मंदिर, अयोध्या पुरी के पावन स्थान, सिद्धपुर का मंदिर तथा अन्यान्य सभी पवित्र स्थानों का उद्धार होना चाहिए।' ¹⁰³

पोद्दार के अनुसार एक राष्ट्र की भव्यता और सम्मान तभी कायम हो सकते हैं जब सभी धार्मिक आस्थाओं के लोग—हिन्दू, मुसलमान, सिख अपने-अपने पूजास्थलों में अपने ईश्वर की आराधना करें। पोद्दार ने कहा कि कई सालों के बाद मिली मुक्ति के कारण राष्ट्र ने अपने यश को पुनः प्राप्त किया है। लेकिन उन्होंने ईसाई मिशनरियों के प्रति घृणा व्यक्त की जो लाचार भारतीयों को प्रलोभन दे कर धर्मांतरण करवाते हैं। इस भाषण में श्री कृष्ण के जीवन से जुड़ी लम्बी कहानी थी। इसके अलावा इस भाषण में रसखान, हज़रत नफीस खलीली जैसे मुसलमान कवियों, बिहारी और भारतेन्दु हरिश्चंद्र जैसे हिन्दू कवियों, लेखकों, जयदेव और चैतन्य महाप्रभु जैसे संत कवियों, तिलक, गांधी और अरविंद जैसे राजनेताओं के बीच कृष्ण की लोकप्रियता के किस्से थे।

सेठ गोविंद दास भी आराम की परवाह में नहीं थे। बतौर कांग्रेस कार्यकारी समिति सदस्य अपने उत्तर प्रदेश दौरे पर दास ने पोद्दार से प्रमुख धार्मिक बुद्धिजीवियों को बुला कर श्री कृष्णधाम और ब्रज पर एक बैठक आयोजित करने को कहा। दास ने कहा कि बैठक गोरखपुर के पोद्दार के घर होगी। यह प्रादेशिक कांग्रेस कार्यालय की देख-रेख में आयोजित किया गया ताकि किसी प्रकार का कोई व्यवधान न हो। ¹⁰⁴

अगले कुछ सालों में श्री कृष्ण परिसर में धीरे-धीरे किन्तु नियमित रूप से कई निर्माण कार्य हुए। सन् 1962 में श्री कृष्ण चबूतरे की नींव रखी गई। यह निर्माण कार्य सन् 1965 में पूरा हुआ। कार्य के अंतिम अवस्था में पहुँचने पर उद्घाटन में बोलते हुए पोद्दार ने कहा कि आज से साढ़े तीन सौ साल पहले औरंगज़ेब ने मथुरा के मंदिर को ढहाया था। नए भवन का उद्घाटन और गीता पाठ इस पवित्र शहर के इतिहास में दो सबसे महत्वपूर्ण घटनाएं हैं। ¹⁰⁵ कलकत्ता के दिनों में पोद्दार के मित्र और *कलकत्ता समाचार* के पूर्व संपादक रहे झावरमल शर्मा भी उद्घाटन समारोह में उपस्थित थे। शर्मा ने कृष्ण जन्मभूमि को सुरक्षित करने के लिए किए गए प्रयासों का राग अलापते हुए पोद्दार के ऊपर कविता लिखी थी।

चुनावी राजनीति में धर्म

पोद्दार ने बहुत दावे किए कि उन्होंने राजनीति से एक सुरक्षित दूरी बनाए रखी है लेकिन वे धर्म पर राजनीति की पकड़ और ताक़त से वाकिफ़ थे। और साथ-ही-साथ राजनीति में धर्म की बढ़ती क्रियाशीलता को भी जानते थे। सन् 1951-1952 के भारत के पहले आम चुनावों में कल्याण के एक पाठक ने पोद्दार से पूछा कि वोट किसे दिया जाये। अपने सार्वजनिक क्रोध का ख़याल करते हुए और राजनीति के लिए तिरस्कार भाव को ज़ाहिर करते हुए पोद्दार ने शॉ डेस्मंड की *वर्ल्ड बर्थ* से उद्धरण दिया, 'घुड़दौड़ की तरह ही राजनीति में कुछ ऐसा है जो नीचे की ओर खींचता है। यह भले आदमी को बुरा बनाता है और बुरे को बहुत बुरा।' ¹⁰⁶ पोद्दार ने कहा कि दल से परे योग्य उम्मीदवार ही जीतना चाहिए। उन्होंने पाठकों से कहा कि किसी भी पार्टी या उम्मीदवार के लिए पूर्व-निर्धारित धारणाएं न रखें। चाहे वह कांग्रेस हो या हिन्दू महासभा हो। उन्होंने स्वतन्त्रता पूर्व के चुनाव याद दिलाए, 'मन करता था कि कांग्रेस पार्टी के कुत्ते के लिए भी वोट कर दें लेकिन कांग्रेस के बाहर किसी भगवान तक को वोट न दें' अब 'हमें यह नहीं कहना चाहिए कि केवल कांग्रेस का विरोध करने के लिए हम बाहर किसी कुत्ते को वोट दे देंगे लेकिन कांग्रेस के भगवानों तक को वोट नहीं देंगे।' एक मतदाता को अपना चयन निष्पक्ष हो कर, पूरी चेतना के साथ और अपनी न्यायिक समझ के साथ करना चाहिए।

भारतीय गणतंत्र में मतदाताओं के दायित्वों पर लिखते हुए पोद्दार ने दावे से कहा कि आध्यात्मिक व्यक्ति की हैसियत से वे राजनीतिक मसले पर परामर्श देने के लिए न्यूनतम योग्यता रखते हैं। ¹⁰⁷ तब भी वे अपनी राजनीतिक बुद्धिमत्ता को विभिन्न लोगों के लिए मुहैया कराने का प्रलोभन छोड़ नहीं सके क्योंकि वे भी एक समय में हिन्दू कोड बिल के विरोध से गहराई से जुड़े रहे थे। वे भारत को धर्मनिरपेक्ष गणराज्य बनाने के विचार के विरोधी थे। उनका मानना था कि ऐसा करना हिन्दू बहुसंख्यक आबादी की सर्वोच्चता को क्षीण करेगा। वे चुनावी प्रक्रिया के भी विरोध में थे जो किसी व्यक्ति की बुद्धिमत्ता, ज्ञान, अनुभव, दृष्टि, चरित्र और अन्य सकारात्मक गुणों पर कुछ संख्याओं को प्राथमिकता देता है: 'इस पद्धति के अनुसार अमुक उम्र के ऊपर प्रत्येक व्यक्ति मत देने का अधिकार रखता है और ऐसे मतों की संख्या पर ही सब कुछ निर्भर करता है। एक भी वोट बढ़ जाने पर चाहे वो कैसे ही दुराचारी, मूर्ख और सर्वथा अयोग्य व्यक्ति का ही क्यों ना हो, सौ-सौ बुद्धिमान, सदाचारी और अनुभवी पुरुष हार सकते हैं।'।

पोद्दार धन के वर्चस्व से भी चिढ़े-कुढ़े हुए थे, खासकर चुनावों में ग़ैर-क़ानूनी ढंग से इस्तेमाल होने वाले धन से। पोद्दार ने चुनावों में एक अरब तक काला धन लगने का मोटा-मोटा अनुमान बताया। उन्होंने कहा कि बड़े राजनैतिक दल लम्बे समय से अलग-अलग तरीकों से चुनाव के लिए फंड इकट्ठा करने में लगे हैं। वे ऐसा कभी छल से तो कभी बलपूर्वक करते हैं, कभी लालच और कभी जालसाजी के सभी पैतरे अपनाते हैं। 'देश के कई प्रांतों में भीषण दुर्भिक्ष पड़ गया है अन्न वस्त्र के बिना प्राणी त्राहि-त्राहि कर

रहे हैं और यहाँ चुनाव के लिए पेट्रोल, कागज छपाई और प्रचार में करोड़ों खर्च किए जा रहे हैं ।’ उम्मीदवारों द्वारा किए जाने वाले फ़र्जी दावों और अपने प्रतिद्वंद्वी को कमज़ोर दिखाने की प्रवृत्ति की भी पोद्दार ने आलोचना की । ‘पद्धति ही ऐसी है कि इसमें समझदार आदमी भी समझ खो बैठते हैं और सिद्धांत मानकर बुराई कर बैठते हैं ।’

महात्मा गांधी हत्या के षड्यंत्र में गिरफ़्तारी का सामना कर चुके पोद्दार ने महसूस किया कि नेहरू का इसे एक चुनावी मुद्दा बनाना ग़लत था । हिन्दू महासभा और आरएसएस का उल्लेख करते हुए पोद्दार ने लिखा, ‘बड़े-बड़े लोग अपने दल की उच्चता और दूसरे की नीचता घोषित करने के लिए ऐसी बातें कह देते हैं जो किसी ज़िम्मेवार पुरुष को नहीं करनी चाहिए । हमारे देश के अमूल्य निधि और आजन्म देश की सेवा करने वाले समझदार बड़े अनुभवी और राष्ट्रीय भारत सरकार के प्रधानमंत्री तथा कांग्रेस के अध्यक्ष महोदय स्वयं अपनी संस्था की उच्चता सिद्ध करते हुए दूसरी किसी संस्था की बुराई करने के लिए उसे महात्मा गांधी जी की हत्या में साथ रखने वाली तक बता देते हैं और कांग्रेस चुनाव प्रचार की सभाओं में प्रधानमंत्री के अधिकार के बल पर अमुक-अमुक संस्थाओं को कुचल डालने की धमकी देते हैं । समाचार पत्रों को पढ़ने वाले लोग पंडित नेहरू जी के पिछले व्याख्यानो को पढ़कर इस बात को जान सकते हैं और इस पद्धति की बुराई को अच्छी तरह समझ सकते हैं ।’

अंततः पोद्दार ने सुरक्षित रास्ता अपनाया । *कल्याण* के पाठकों से किसी पार्टी विशेष का समर्थन करने की जगह ऐसे उम्मीदवार को वोट करने को कहा जो चार शर्तों पर खरा उतर रहा हो । आदर्श उम्मीदवार वे हैं, जो ‘हिन्दू कोड बिल जैसे किसी भी धर्म विरोधी बिल का, चाहे वह किसी भी धर्म पर आघात करने वाला हो, का विरोधी हो’; गो-वध बंद करवाने का क़ानून बनाने के लिए सच्चे मन से प्रयत्नशील हों; अन्न, वस्त्र, शिक्षा और चिकित्सा को सदा सुलभ और सस्ती बनाने का प्रयत्न करे; अपने व्यक्तिगत अथवा दलगत स्वार्थ की सिद्धि या किसी प्रकार आर्थिक लाभ के लिए कभी कोई अनुचित प्रयत्न नहीं करेंगे । यह समझना कठिन नहीं था कि इन चारों शर्तों पर केवल हिन्दू महासभा और उस समय अस्तित्व में आए भारतीय जनसंघ के सदस्य ही पोद्दार की इन शर्तों पर खरे उतर रहे थे ।

कल्याण के उसी अंक के एक दूसरे लेख में पोद्दार ने दो शर्तें और जोड़ दीं, ऐसा उम्मीदवार जो प्राचीन भारतीय संस्कृति और शिक्षा व्यवस्था को कायम रखे । जो यह सार्वजनिक रूप से कहे कि विभाजन एक ग़लती थी और भारत के पुनः एकीकरण का भरोसा दिलाए । [108](#)

अपने इस लेख में पोद्दार ने नेहरू और कांग्रेस के खिलाफ़ सीधे बयान दिए । मतदाताओं को गो-हत्या प्रतिबंध क़ानून की याद दिलाई, हिन्दू कोड बिल के विरोध का उल्लेख किया, अखंड भारत के समर्थकों को स्वामी करपात्री महाराज के रामराज्य परिषद के उम्मीदवारों को वोट देने के लिए कहा । आगे ‘जहाँ रामराज्य परिषद के

उम्मीदवार न हों वहाँ हिन्दू महासभा और जनसंघ के उम्मीदवारों को वोट देना चाहिए... परंतु इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि कांग्रेस उम्मीदवारों का यह विरोध सिद्धांत को लेकर है, व्यक्ति को लेकर नहीं, संस्था को लेकर भी नहीं।'

रामराज्य परिषद को पोद्दार का समर्थन केवल *कल्याण* के पृष्ठों तक सीमित नहीं था। पोद्दार और गोयन्दका ने पार्टी का सक्रिय प्रचार भी किया। कलकत्ता में इन दोनों ने परिषद के समर्थन में जन सभाओं में भाग लिया। पोद्दार अपने भाषण में काफ़ी कठोर रुख अपनाए हुए थे: 'गो-हत्या जैसे पाप के बाद कांग्रेस और नेहरू के समर्थकों के लिए उन्हें आम चुनावों से फिर सत्ता में भेजना पाप है, स्वराज से ज़्यादा गो का आदर करने वाले महात्मा गांधी के अनुयायी ही आज गो-हत्या को बढ़ावा दे रहे हैं, यह बड़े अफ़सोस की बात है।' ¹⁰⁹

कल्याण के अपने लेख में पोद्दार ने इलाहाबाद का दृश्य चित्रित किया जहाँ जवाहरलाल नेहरू और प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के बीच जंग की पताका लहरा चुकी थी। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने आरएसएस के गोलवलकर और राजेन्द्र सिंह के आदेश से इस जंग में शामिल होने की सहमति दे दी थी। ¹¹⁰ गाय की रक्षा और हिन्दू कोड बिल के विरोध में चुनाव में उतरने वाले प्रभुदत्त ब्रह्मचारी पहले साधु नहीं थे। माधव आचार्य करनाल से स्वतंत्र प्रत्याशी की तरह कांग्रेस की सुभद्रा जोशी के खिलाफ़ खड़े हो चुके थे।

पोद्दार ने समझाया कि प्रभुदत्त ब्रह्मचारी हिन्दू कोड बिल के मुद्दे पर चुनाव लड़ रहे हैं और इसलिए बिल का विरोध करने वालों के लिए ज़रूरी है कि वे उनका समर्थन करें। पोद्दार ने कहा कि अगर नेहरू हिन्दू कोड बिल को वापस लेने का वायदा करें तो ब्रह्मचारी चुनाव की उम्मीदवारी छोड़ देंगे। पोद्दार ने अम्बेडकर को भी नहीं बख़्शा। पोद्दार ने मतदाताओं से कहा कि अनुसूचित जाति फेडरेशन (बाद में रिपब्लिक पार्टी) से बॉम्बे सिटी नार्थ (यह दो सदस्यीय सीट थी जिसमें एक सीट आरक्षित थी) की दो सीटों में से एक पर उम्मीदवारी कर रहे दलित नेता का पूरे दिल से विरोध करें जो हिन्दू कोड बिल के पक्ष में सक्रिय रूप से अभियान चला रहे हैं। ¹¹¹

राजनीति पर थोक के भाव अपनी संलिप्तता दिखा चुकने और रामराज्य परिषद, हिन्दू महासभा और जनसंघ के पक्ष में पूरा माहौल बनाने के बाद भी पोद्दार ने यह दोहराया कि वे किसी विशेष व्यक्ति या पार्टी के खिलाफ़ नहीं हैं। बहरहाल, नतीजे उन्हें निराश करने वाले थे। कांग्रेस को भारी जीत मिली थी। लेकिन पोद्दार को थोड़ी राहत अम्बेडकर की हार से ज़रूर मिली। कांग्रेस के नारायण सदोबा कजरोलकर से मात्र पन्द्रह हज़ार वोटों से अम्बेडकर को शिकस्त मिली। कुल मिला कर रामराज्य परिषद, हिन्दू महासभा और जनसंघ ने तीन-तीन सीटों पर कब्ज़ा किया।

सन् 1967 के आम चुनावों तक आते-आते कांग्रेस का प्रभुत्व खतरे में पड़ चुका था। भारत की सबसे अनुभवी पार्टी ने इस बार अब तक का सबसे ख़राब प्रदर्शन किया था और 516 में से सिर्फ़ 283 सीट हासिल कर पाई थी। राज्य के चुनावों में तीन बड़े हिन्दी प्रदेशों उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश में संयुक्त विधायक दल की

सरकार बनी । यह जनसंघ, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, साम्यवादियों और कांग्रेस विद्रोहियों का एक गैर-संभावनाशील गठबंधन था जो इस बात का संकेत था कि कांग्रेस अब पहले की तरह अजेय नहीं रह गई थी ।

एक बार फिर चुनावी समीक्षा करते हुए उन्होंने चुनावी प्रक्रिया में पैसों के प्रभुत्व को कारण बताया । उनके अनुसार इस चलन की शुरुआत कांग्रेस ने ही की । ¹¹²पोद्दार ने इस चलन को लोकतंत्र की बुनियाद के सामने बड़ी चुनौती के रूप में देखा । व्यवसायियों द्वारा राजनेताओं की फंडिंग दरअसल भविष्य के लिए निवेश होता है । पोद्दार ने सन् 1967 में भुवनेश्वर प्रचार के समय इंदिरा गांधी और मधु लिमये पर हुए हमले के अलावा चुनाव के समय पोलिंग बूथ पर हुई पत्थरबाजी और आगजनी जैसी हिंसक घटनाओं का भी जिक्र किया । और कहा कि भारत अहिंसा के पथ से भटक गया है और गांधी की अहिंसा को भुला दिया गया है ।

कांग्रेस के गिरते क़द से प्रसन्न होने के बाद भी पोद्दार ने सन् 1967 के संसदीय चुनाव की निष्पक्षता पर सवाल उठाया । ¹¹³बिहार, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में गठित संयुक्त विधायक दल का अप्रत्यक्ष संदर्भ लेते हुए कहा कि यह सरकार दल-बदल और असंतोष के प्रयासों से ही गठित हो सकी है । पोद्दार ने इस बात को रेखांकित किया कि कैसे धन-बल की अपसंस्कृति को विधायकों की दल-बदली में इस्तेमाल किया जा रहा है । उन्होंने इस बात पर शंका जताई कि ऐसे दुलमुल आधार वाली सरकार में जनता के हित में काम करने की कोई योग्यता होगी! महात्मा गांधी का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा कि अगर परस्पर विरोधी सरकारों और दलों ने एक-दूसरे की खिंचाई करने में अपनी ऊर्जा और संसाधन खर्च करने के बजाय गांधी के आदर्शों को सामने रखा होता तो इससे ज़्यादा लाभ होता । ‘अंग्रेज़ों के जाने के बाद से घूसखोरी, विलासिता, चरित्रहीनता, बैर-विरोध, हिंसा-प्रतिहिंसा आदि दोष हमारे अंदर बढ़े हैं ।’

सन् 1967 का चुनाव वह आखिरी चुनाव था जिस पर पोद्दार ने विस्तार से लिखा, हालाँकि इस बार सन् 1951-52 की तरह उन्होंने इस चुनाव में प्रतिभाग नहीं किया जबकि गीता प्रेस और बाकी सभी हिन्दू राष्ट्रवादी समूहों ने गो-रक्षा, हिन्दू कोड बिल और विभाजन को वापस लेने के पक्ष में एक उत्साहपूर्ण अभियान चलाया था । सन् 1971 के आम चुनाव में बीमार पड़ चुके पोद्दार की भूमिका मीडिया मठाधीश रामनाथ गोयनका के स्थान पर मीडिया अपील जारी करने तक ही सीमित रह गई थी । जैसा कि हम जानते हैं, गोयनका इस चुनाव में जीत गए थे ।

जुड़वां शत्रु: साम्यवाद और धर्मनिपेक्षता

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में अपनी नियत चाल से चल कर फैल रही साम्यवादी विचारधारा को गीता प्रेस ने गंभीर चुनौती के रूप में लिया । न केवल हिन्दू-हिन्दी के वर्चस्व के विचार के सामने बल्कि निजी उपक्रमों और मारवाड़ी संरक्षकों के लाभ कमाने के सामने भी चुनौती थी । लिहाज़ा कोई भी देख सकता था कि *कल्याण* अपनी बड़ी

ताक़त केवल साम्यवाद और समानता के नाम पर धर्म विहीन समाज बनाने के विचार की जड़ खोदने में व्यय कर रहा था ।

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना 17 अक्टूबर 1920 को ताशकंद में हुई । (तब के सोवियत रूस और अब उज्बेकिस्तान की राजधानी) । यही वह समय था जब गीता प्रेस भी आकार ले रहा था । इस दौरान छिटपुट क्रिस्म के संगठित मजदूरों और कृषकों के आंदोलन औद्योगिक उत्पादन के नए केंद्र बन कर उभरे बॉम्बे, मद्रास और कलकत्ता के इर्द-गिर्द चलते रहे । साम्यवादी विचारधारा के प्रति गीता प्रेस का डर औपनिवेशिक सरकार जैसा ही था । दोनों ही 'इसे बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते' ¹¹⁴ थे और गीता प्रेस तथा औपनिवेशिक सरकार, दोनों ही मामलों में यह डर सन् 1917 की बोल्शेविक क्रांति के विश्वव्यापी प्रभाव के चलते था । गीता प्रेस जैसे धार्मिक प्रकाशन समूह के लिए धर्म मुक्त समाज की वकालत करने वाली यह विचारधारा एक गंभीर खतरा थी ।

सन् 1928 में सोवियत रूस और जर्मनी में तीव्र हुए गैर-धार्मिक प्रोपेगेंडा ने रूढ़िवादी हिन्दू वर्ग में खलबली मचा दी । *कल्याण* उन शुरुआती पत्रिकाओं में से थी जिसने अपने पाठकों को साम्यवाद के खतरे और भारत जैसे देश में उसके अमांगलिक परिणामों के प्रति आगाह किया जहाँ धर्म 'जीवन जीने की शैली है और अस्तित्व का केंद्र है ।' ¹¹⁵ *कल्याण* के लेखक सदानंद ने अपने लेख में कहा कि राष्ट्र के जीवन से धर्म को उखाड़ फेंकने की कोशिश का मतलब राष्ट्रवाद के दो प्रमुख अवयव एकता और बंधुत्व को उखाड़ फेंकना है । उन्होंने कहा जलन, घमंड, अंध-आस्था और स्वार्थ भाव जैसे दुर्गुणों ने पहले ही भारतीय समाज में पर्याप्त विभेद पैदा कर दिए हैं ।

सन् 1928 के अंत में मास्को में सात सौ प्रतिनिधियों के ईश्वर-विरोधी विशाल बैठक में भाग लेने की खबर आने पर *कल्याण* ने फिर मोर्चा संभाल लिया । बैठक में पास होने वाले प्रस्तावों की जानकारी न होने पर भी एक अनाम लेख में कहा गया कि इसका नाम, *ईश्वर-विरोधी* खुद ही इसके मक़सद को बताने में काफ़ी है कि 'इससे बढ़कर बुरा आंदोलन और महापातक दूसरा नहीं हो सकता है । जो भाई सुख-शान्ति की भ्रमपूर्ण दुरासा से इस प्रकार के घृणित आंदोलन से प्रेम या सहानुभूति रखते हैं वे बड़ी भारी भूल कर रहे हैं । धर्म का बाह्य रूप कुछ भी क्यों न रहे उसमें यथावश्यक कितने ही सुधारों की गुंजाइश क्यों ना समझी जाये परंतु ईश्वर की सत्ता का विरोध कर धर्म के मूल तत्व पर कुठाराघात करना पिशाचावेशित प्रमथ पुरुषों की पातकमयी क्रिया के सिवा और कुछ भी नहीं है । जिस साम्य और विश्वसुख के परिणाम पर पहुँचने के लिए ईश्वर का विरोध किया जा रहा है वह साम्य और विश्वसुख मायामरीचिका की भांति एक भ्रमपूर्ण अध्यास मात्र होगा और परिणाम में भीषण दुख और उपद्रव के दारुणार्ण में डूब जाना पड़ेगा ।' ¹¹⁶

गीता प्रेस की चिंता का विषय भारत में इन 'दूषित विचारों' का प्रादुर्भाव था जहाँ लोगों का ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रहा है । अफ़सोस की बात यह थी कि पढ़े-लिखे और

सभ्य लोग लेख लिखकर और सभाएँ आयोजित करके ईश्वर के अस्तित्व पर ही सवाल कर रहे थे। *कल्याण* के लेख ने लोगों से आग्रह किया कि 'भगवान के खिलाफ़ बोलने से परहेज़ करें या आलोचना सुनना बंद कर दें।'

इस नई विचारधारा के समकक्ष एक विकल्प पेश करने की ज़रूरत को गीता प्रेस ने महसूस कर लिया जो सनातन हिन्दू धर्म के नियमों और सिद्धांतों के लिए खतरा न पैदा करे और समानता की अवधारणा को भी अपनाती हो। इस विकल्प को भगवद्गीता में तलाशा गया—दैवीय आज्ञा प्राप्त भारतीय किस्म का अपना साम्यवाद।

भारतीय और रूसी साम्यवाद में समानताओं और असमानताओं को बताने वाला एक गणक तैयार किया गया। ¹¹⁷ जहाँ भारतीय साम्यवाद परमेश्वर द्वारा परिभाषित समानता के सिद्धांत पर आधारित था, वहीं रूसी सिद्धांत आर्थिक समानता को मूल आधार मानता था। भारतीय साम्यवाद को मानने के लिए मन की शुद्धता ज़रूरी थी वहीं दूसरी ओर अधिकारी शक्तियों द्वारा रूसियों को जबरन साम्यवादी बनाया जा रहा था।

इस तुलना ने विचित्र मोड़ तब ले लिया जब प्राचीन ईश्वरीय भारतीय साम्यवाद और आधुनिक ईश्वरविहीन रूसी साम्यवाद को आमने-सामने रखा गया। भारतीय पक्ष में भारी संख्या में शक्तियाँ थीं, जैसे अर्जुन, युधिष्ठिर, विदुर, व्यास, नारद, तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई, गुरु नानक, संत तुकाराम, रैदास, संत ज्ञानेश्वर, तिरुवल्लुवर, नरसी मेहता आदि। यह नहीं मालूम कि इन मिथकीय व वास्तविक चरित्रों—महाकाव्य नायकों, कवियों, ऋषियों और धर्म गुरुओं—को क्यों और किन मानदंडों पर भारतीय साम्यवाद का जनक चुना गया लेकिन यह सूची निःसंदेह रूसी साम्यवाद के लेनिन, ट्रॉट्स्की और स्टालिन तीनों से ज़्यादा वज़नदार ज़रूर थी।

भारतीय साम्यवाद को आत्मसात करने की अनिवार्य शर्त भक्ति को बताया गया। जबकि रूसी साम्यवाद धर्म और ईश्वर का विरोध करने के बावजूद कार्ल मार्क्स और लेनिन की मूर्तियाँ बनाने का पक्षधर था। जब दोनों तरह के साम्यवाद के सापेक्ष प्रभाव की बात की जाती थी तो भारतीय साम्यवाद को सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया की भावना रखने वाला समझा जाता था, जबकि रूसी साम्यवाद को सभी मानवों बल्कि कामकाजी वर्ग के बीच समानता निर्मित करने की बात कहने वाला समझा जाता था। इसके अलावा, पारिवारिक जीवन और माता-पिता के प्रति सम्मान भारतीय साम्यवाद का अभिन्न अंग था वहीं *कल्याण* के अनुसार, हज़ारों बच्चे अनाथ हैं और उन्हें अपने माता-पिता के बारे में नहीं पता है।

भारतीय और रूसी साम्यवाद में दो समानताएँ देखी गईं। पहली समानता अत्यंत गंभीर राजनीतिक सिद्धांतकारों के लिए भी हास्यास्पद है। इसके अनुसार भगवान कृष्ण गोपियों और मेहनती ग्वालिनों के साथ क्रीड़ा करते थे। यह और कुछ नहीं रूसी साम्यवाद के जनकों की तरह मजदूरों और किसानों के साथ घुलने-मिलने जैसा है।

दूसरी समानता मुख्य बिंदु के ज़्यादा करीब थी और दोनों का ही लक्ष्य दबे-कुचले का उद्धार करना था ।

सन् 1932 के *कल्याण* के ईश्वर अंक आने की योजना तक यूरोप में साम्यवाद की दखलअंदाज़ी बढ़ चुकी थी । वहीं भारत में कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी ज़मीन को मज़बूती दी । *कल्याण* में पोद्दार के सहयोगी लक्ष्मण नारायण गर्दे को अनीश्वरवाद के आधुनिक सिद्धांत को स्वरूप देने का काम दिया गया । ¹¹⁸ गर्दे ने ऐतिहासिक भौतिकवाद के विस्तृत विश्लेषण के बाद यह तर्क दिया कि साम्यवाद के आकार लेने के संदर्भों में नास्तिकता अनिवार्य थी । उन्होंने कहा, भौतिकवाद के दर्शन का आधारभूत नियम यह है कि परिवर्तन अवश्यम्भावी है । इस सिद्धांत के अनुसार साम्यवादियों की नास्तिकता वाली भी स्थिति बदलेगी और समाज की ज़रूरतें भी । और इस तरह नास्तिकता भी खत्म हो जाएगी ।

नियमित अंतराल में *कल्याण* ने साम्यवाद पर चोट करना जारी रखा । कांग्रेस के एक धड़े में भी साम्यवाद की लहरों की पहुँच को सन् 1940 के राजनैतिक प्रवाह में सहायक की तरह देखा गया जिसने मुसलमानों के दिमाग में असमानता के बीज रोप दिए । ¹¹⁹ लिंग समानता पर ज़ोर और व्यक्ति की महत्ता को सबसे ऊपर रखने वाला साम्यवाद पिता, पति और पुत्र के घर की चारदीवारी में सिमटी भारतीय नारी के शास्त्रीय सिद्धांत के लिए खतरा था ।

दो हिस्सों में लिखे गए चारू चंद्र मित्र के लेख में साम्यवाद के बुनियादी मंत्र पर सवाल उठाते हुए कहा गया कि भारतीय संयुक्त परिवार की व्यवस्था तो पहले से ही ‘अपनी क्षमता के अनुसार और अपनी ज़रूरत के अनुसार’ आधार पर चल रही है । ¹²⁰ एक तरफ जहाँ सोवियत रूस समुदायों में बंट गया वहीं भारत में हर संयुक्त परिवार ही अपने आप में एक समुदाय है । बहरहाल, उन्होंने कहा कि भारतीय व्यवस्था में सोवियत व्यवस्था की तरह व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बंधन नहीं है ।

साम्यवाद के जवाब में गीता को आगे रखने को हिन्दू राष्ट्रवादियों ने हाथों-हाथ लिया । कैलाशनाथ काटजू ने *हिन्दू संस्कृति अंक* में आधुनिक सिद्धांतों के प्रति भारतीयों की मानसिक गुलामी का राग अलापते हुए लिखा कि वे अपनी प्राचीन भारतीय परंपराओं को नकारते हुए नए के पीछे चल देते हैं । ¹²¹ काटजू ने कहा कि समानता के सिद्धांत को आधुनिक मानना अज्ञानता है और कुछ नहीं । ऐसी मान्यता गीता में थी और हमारे पूर्वजों ने भी इसे गंभीरता से बरता था । काटजू ने आगे तर्क दिया, ‘आजकल लोगों की ऐसी धारणा हो रही है कि राष्ट्र की सर्वविद् उन्नति तभी हो सकती है जब नफाखोरी की धुन या व्यापारिक लाभ की दृष्टि ही ना रह जाये और अर्थमूलक प्रतिष्ठा का ही अंत कर दिया जाये । संपत्ति या साम्पत्तिक लाभ की दृष्टि से मुक्ति मिल जाये तो तुरंत ही उस वर्गहीन समाज की स्थापना हो लेगी जिसमें अमीर-गरीब के विभिन्न वर्ग न रहेंगे और यही नवीन मत है पर यही हमारे देश की प्राचीन शिक्षा है और उसका ढंग भी अधिक आकर्षक है । हमारे यहाँ की शिक्षा स्वेच्छापूर्वक

त्याग करने की है, कर्म या मानवीय प्रयत्न का त्याग नहीं, प्रत्युत कर्म के फल का त्याग ।’

काटजू ने कहा कि गीता ने हमें सिखाया कि त्याग से कोई फल नहीं मिलता बल्कि इसने जीवन की गरिमा बनाए रखने के लिए कर्म करने पर बल दिया । काटजू के अनुसार, ‘आध्यात्मिक और भौतिक भावनाओं का ऐसा पूर्ण सामंजस्य अन्य किसी धार्मिक या धर्मनिरपेक्ष ग्रंथ में न मिलेगा ।’ पूरे विश्लेषण में काटजू का यह तर्क था कि अगर हम वर्गसंघर्ष और विद्वेष के तत्त्वों को हटा कर देखें तो गीता के लिए दूसरा नाम साम्यवाद ही होगा ।

साम्यवाद के वर्गविहीन समाज के आदर्श को खारिज करते हुए नरदेव शास्त्री का एक लेख छपा । यह हिन्दुओं की वर्ण व्यवस्था में चार वर्णों की व्यवस्था और उनके पूर्व निर्धारित दायित्वों के पक्ष में था । उन्होंने माना कि सन् 1848 के कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगल्स के कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में ‘दुनिया के मजदूरों एक हो जाओ’ का नारा बाक़ी वर्गों को नुक़सान पहुँचाने की शर्त पर दिया गया है । जबकि भारतीय सामाजिक संरचना का आध्यात्मिकता के साथ इतना गहरा संबंध है कि इसने गुलामी, औपनिवेशिकता और अन्याय के लम्बे दौर में हमें संभाले रखा । ‘अब तो अंग्रेज़ी शासन चक्र का दबाव जाता रहा इसलिए स्वतंत्र रहकर भारत अपनी संस्कृति को संभालेगा तो फिर जगद्गुरु होकर संसार का मार्गदर्शक बन सकेगा ।’ ¹²²

कभी-कभी कल्याण अपने पाठकों को भरोसा भी दिलाता था कि इस नई विचारधारा से डरने की ज़रूरत नहीं है । कल्याण के अनुसार कार्ल मार्क्स एक मेधावी व्यक्ति थे जिन्होंने विश्व में असमानता को देखते हुए साम्यवाद की अवधारणा का प्रतिपादन किया था । कल्याण का तर्क था कि सैद्धांतिक रूप से साम्यवाद एक ऐसी चीज़ की स्थापना करना चाहता है जो आदर्श रूप में समाज में होनी ही चाहिए, इसलिए इससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है: ‘अगर भारत इन मूल्यों को आत्मसात कर भी लेता है तो सनातन धर्म वाले भारत को चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि जिस आदर्श की साम्यवाद स्थापना करना चाहता है वह पहले ही हमारी धार्मिक और पुण्यशील परंपराओं में पवित्र रूप में मौजूद है ।’ ¹²³

इस तरह गीता प्रेस का साम्यवाद के प्रति रुख नैतिक श्रेष्ठता पर आधारित था जो यह दावा करता था कि गीता में कहीं ज़्यादा परिष्कृत समाज का मैनिफेस्टो मौजूद है । हालाँकि गीता प्रेस उस नए क़दम के लिए तैयार नहीं थी जो सरकार उठाने वाली थी । सन् 1955 में आवडि (मद्रास के निकट) में हुए अधिवेशन में ‘कांग्रेस ने समाज का समाजवादी ढांचा बनाने का संकल्प लिया ।’ ¹²⁴ आवडि अधिवेशन की सबसे मुख्य बात ‘सरकार द्वारा बहुत तेज़ गति से इस संकल्प को लागू करना नहीं’ थी, बल्कि ‘माहौल में आया बदलाव’ सबसे अहम था । कांग्रेस अधिवेशनों में बहुत लम्बे समय से मौजूद नहीं रहने वाले विनोबा भावे की आवडि अधिवेशन में मौजूदगी ने पार्टी द्वारा

समाजवाद के सिद्धांतों को लागू करने की योजना और 'वाम की ओर इसके प्रगतिशील झुकाव' को नैतिक समर्थन प्रदान किया। ¹²⁵

सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण पर लगातार दिए जा रहे ज़ोर ने मारवाड़ी लोकोपकार के फलस्वरूप अस्तित्व में आए गीता प्रेस की मुश्किलें बढ़ा दीं। संसाधनों और व्यापार पर राज्य नियंत्रण की ओर उठाया गया यह क़दम प्रतिवादी कांग्रेस सरकार द्वारा मुनाफ़े के उस विचार पर एक तरह का हमला था जिसका नैतिक समर्थन *कल्याण* अपने पृष्ठों में करता रहता था। नरदेव शास्त्री ने कांग्रेस के समाजवाद के विचार पर सवाल उठाए। ¹²⁶ उन्होंने इस बात पर चिंता जताई कि राष्ट्रीयकरण के माध्यम से राज्य और ताक़तवर हो जाएगा: 'सरकार के पास बल संपदा तो रहती ही है और उसके पास अर्थ संपदा तो क्या अनर्थ नहीं कर सकती?' शास्त्री का तरीक़ा बहुत आसान था: 'भारत की पवित्र भूमि पर यदि कोई समाजवाद पनप सकता है तो वह हमारे ऋषि मुनि महर्षियों द्वारा वैदिक काल में प्रचलित समाजवाद ही हो सकता है।'

समाजवादी अर्थव्यवस्था की नाकामी दिखाने के अति उत्साह में *कल्याण* ने ऐसे बहुत से अनाम लेखों को प्रकाशित किया जो पहले मराठी में लिखे गए थे। ¹²⁷ इस लेख में कहा गया था कि नागरिकों में बराबर धन के वितरण का साम्यवादी विचार सभी को कंगाल बना देगा। जो इस बात से भी साबित होता है कि अन्य देशों की तुलना में सोवियत संघ में कामगारों की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय और मजदूरी सबसे कम है। इस लेख में दावा किया गया था कि सोवियत संघ की नियंत्रित अर्थव्यवस्था एकाधिकारवादी पूंजीवाद का ही एक अन्य रूप है क्योंकि भूमि और उत्पादन के अन्य साधनों पर शासक वर्ग का नियंत्रण होगा। इसके साथ-साथ, साम्यवाद से युद्ध को बढ़ावा मिलता है और वह रक्षा उद्योग को भी प्रोत्साहित करता है—जहाँ अमेरिका रक्षा पर अपने उत्पादन का 6 प्रतिशत खर्च करता है, वहीं सोवियत यूनियन 18 प्रतिशत खर्च करता है। यह भी दिखाया गया कि सोवियत यूनियन की तुलना में अमेरिका शिक्षा पर प्रति व्यक्ति 19 रुपए अधिक, सामाजिक सुरक्षा और बीमा पर 140 रुपए अधिक और सामाजिक कल्याण पर 370 रुपए अधिक खर्च करता है। *कल्याण* में कहा गया कि 'इन सारी विवेचनाओं से दिखलाया गया कि उद्देश्य बिलकुल उल्टा होने पर भी केवल नियंत्रित अर्थव्यवस्था के द्वारा रूस में पूंजीवाद को ही लज्जित करने वाली आर्थिक रचना निर्माण हुई।' इस प्रकार उनका कहना था कि यह व्यवस्था पूंजीवाद से एक क़दम आगे जा कर हानिकारक है। वॉशिंगटन और मॉस्को के बीच के आवश्यक सामानों का एक तुलनात्मक विश्लेषण करके एक बार फिर यह साबित करने की कोशिश की गई कि सोवियत की राजधानी रहने के लिए ज़्यादा महंगा स्थान है। इस आलेख में अन्य आलेखों के उलट एक विकल्प के तौर पर साम्यवाद की वकालत की गई, लेकिन इसका आर्थिक मॉडल उस आर्थिक मॉडल से भिन्न बताया गया जिसे सोवियत यूनियन ने अपनाया था।

सन् 1959 में जब *कल्याण* ने अपना वार्षिक *मानवता अंक* निकाला, तब इसमें वास्तव में साम्यवाद के पक्ष में एक आलेख छापा गया। दर्शनशास्त्र के एक रूसी लेखक सी नेस्तेरेन्को ने साम्यवाद के नैतिक सिद्धांतों का खाका यह कहते हुए खींचा कि एक समाजवादी समाज सार्वजनिक हित और निजी हित का आदर्श मिश्रण होता है। सोवियत संघ के किसी नागरिक के लिए उसके देश की सफलता को उसकी व्यक्तिगत सफलता समझा जाता है। ¹²⁸ उन्होंने कहा कि प्रत्येक नागरिक को समाज का सहयोग और समर्थन मिला है। नेस्तेरेन्को के लिए, साम्यवाद की नैतिकता का सबसे अच्छा उदाहरण कुछ लोगों द्वारा मिलकर 355,000 हेक्टेयर बंजर धरती को उपजाऊ बनाना और 10,000 से अधिक सार्वजनिक संस्थानों की स्थापना करके दिखाना था। आने वाले वर्षों में सोवियत यूनियन में उनके नैतिकता के इस मिथक की सच्चाई उजागर हो गई जो भय की नाजुक आधारशिला पर आधारित थी। लेकिन *कल्याण* में उन्होंने साम्यवाद की सर्वोच्चता और सामूहिक हित के आधार पर समाज निर्माण को घोषित करने का अवसर नहीं छोड़ा।

नेस्तेरेन्को का साम्यवाद का जयगान गीता प्रेस के लिए अपवाद की तरह था। 1960 के दशक के अंत में, जैसे ही सरकार गो-रक्षा आंदोलन के प्रति सख्त हुई, गीता प्रेस ने इसे राज्य के वामपंथी झुकाव की अभिव्यक्ति के तौर पर देखा। ¹²⁹ *कल्याण* ने कहा कि वामपंथी विचारधारा में मदिरा, मांस, मछली, मुद्रा और मैथुन को मुक्तिकारक बताया गया है। हालाँकि कांग्रेस साम्यवादियों पर हमला कर रही है, लेकिन वह स्वयं ही वामपंथी हो गई है। 'जो काम कम्युनिस्ट करना चाहते हैं या करते हैं उन्हें वह सरकार स्वयं करती है, देश में आज जो कम्युनिस्ट दल प्रगति पर है वह भी प्रशासक नीति की ही देन है। साम्यवाद में समता का मापदंड नहीं, नैतिकता की भी कोई परिभाषा नहीं।'।

1960 का दशक वामपंथी विचारधारा में गहरे मंथन का दौर था जिसके चलते भारत की कम्युनिस्ट पार्टी विभाजित हुई थी और सन् 1964 में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) का गठन हुआ था। पश्चिम बंगाल में खाद्य की किल्लत के मुद्दे पर वामपंथी समूहों द्वारा शुरू हुई व्यापक हिंसा की ज़द में ज़ल्द ही बहुत से मुद्दे आ गए जिसकी परिणति सन् 1967 के नक्सलबाड़ी आंदोलन के रूप में हुई। यह अशान्ति आंध्र प्रदेश, केरल और अन्य स्थानों में भी फैल गई।

बंगाल में 1960 के दशक की वाम हिंसा मुख्य रूप से मारवाड़ी व्यापारियों और उद्योगपतियों के विरुद्ध थी। औद्योगिक विवाद और श्रम समस्याएं रोजमर्रा की बात हो गईं और राज्य में वाम की पैठ मज़बूत हो गई। 'मार्च और अगस्त 1967 के बीच 915 घेराव आयोजित किए गए और अक्टूबर के पूजा सत्र तक बोनस विवादों में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई। हालाँकि उद्योगपतियों को राज्य द्वारा मिली विभिन्न रियायतों के बावजूद वे निवेश और विस्तार की राह पर जाने में एहतियात बरतते रहे। साथ ही बेहतर शर्तों और उनसे सहानुभूति रखने वाली सरकारों को भी तलाशते रहे।' ¹³⁰

जैसे ही कलकत्ता के मारवाड़ियों में गोलबंदी हुई, उन्हें सबसे पहले गोरखपुर में पोद्दार की याद आई। वामपंथी विचारधारा की विभिन्न बारीकियों को जानते हुए भी मारवाड़ियों ने इनमें कोई विभेद नहीं किया। साम्यवादियों की व्यापार-विरोधी वाकपटुता और अभियान तथा विशेष तौर पर नक्सलवादियों का विरोध करने के लिए विभिन्न प्रकार के तरीकों पर चर्चा की गई। कलकत्ता मारवाड़ी जगत के कार्यकर्ता पुरुषोत्तमदास हलवासिया इस विरोध अभियान का संचालन कर रहे थे।

पोद्दार को लिखते हुए हलवासिया ने साम्यवादी विचार की गलतियां दिखाने के लिए सामाजिक और आर्थिक मुद्दों पर सस्ते साहित्य का बड़े पैमाने पर प्रकाशन करने का सुझाव दिया। 'साम्यवादियों से वैचारिक संघर्ष का यह एक मार्ग है। उन्होंने साम्यवादी विचारधारा के साहित्य का अत्यधिक प्रचार किया है, न्यूनतम मूल्य पर यह साहित्य वितरित हो सविचार है।' ¹³¹ पोद्दार को अपनी योजना बताते हुए हलवासिया ने कहा, 'उन्होंने आरएसएस के विभिन्न अनुशासित विभागों की मदद लेना तय किया है जो साम्यवादी और अराजक तत्वों का सामना कर सकते हैं।' उन्होंने अपने आपको सिर्फ आरएसएस के संगठनों जैसे भारतीय मजदूर संघ, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद और स्वास्तिक प्रकाशनों तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने भारतीय जनसंघ और कलकत्ता सिटीजन फोरम, सेकंडरी टीचर्स एसोसिएशन और श्यामाप्रसाद स्टडी सर्किल जैसे संगठनों से भी मदद माँगी। उन्होंने पोद्दार को बताया कि अगर आवश्यकता पड़ी तो एक नए संगठन, राष्ट्रीय सुरक्षा समिति का भी गठन किया जाएगा। हलवासिया ने अनुमान लगाया, 'इन कार्यों के सर्वतोमुखी प्रगति के लिए एक वर्ष का अनुमानित व्यय तीन-चार लाख के करीब होगा' लेकिन कलकत्ता में विद्यमान परिस्थितियों में धन की व्यवस्था करने में आने वाली समस्याओं के तहत कहा गया कि यह, 'आज की परिस्थिति में असंभव नहीं होना चाहिए।'

ज़ल्द ही सांस्कृतिक तरीकों के माध्यम से हिंसक और अराजक प्रवृत्तियों का प्रतिरोध करने के बुनियादी लक्ष्य के साथ भारतीय सांस्कृतिक सुरक्षा परिषद (बीएसएसपी) की स्थापना की गई। बीएसएसपी का पूरक मिशन उन राज्यों में राष्ट्रवादी तत्वों और सामान्य नागरिकों को प्रोत्साहित करना था जहाँ क़ानून-व्यवस्था राष्ट्र-विरोधी हिंसा की वजह से बिखरी हुई थी। साथ ही पार्टी राजनीति में शामिल हुए बिना राष्ट्रवादी संगठनों को सहयोग करना तथा सांस्कृतिक शुद्धता, त्याग और सार्वजनिक सेवा के सिद्धांतों को लोकप्रिय बनाना था। ¹³²

बीएसएसपी ने अपने प्रोपेगैंडा साहित्य में पश्चिम बंगाल की स्थिति पर *कल्याण* में पोद्दार द्वारा लिखे गए लेख को शामिल किया था। इस लेख में पोद्दार ने देश में दैवीय परंपरा में तेज़ी से आ रही गिरावट पर खेद जताया था। ¹³³ पोद्दार ने कहा कि कलकत्ता से लेकर सिलीगुड़ी तक फैली व्यापक और भयानक हिंसा यह याद दिलाती है कि कैसे राष्ट्रवाद के प्रति हमारी सोच इतनी संकीर्ण और सीमित हो गई है कि भाषा और सीमाओं के आधार पर अन्य राज्यों के लोगों पर हमले हो रहे हैं। उन्होंने पश्चिम

बंगाल में नक्सल घेराबंदी के भीतर समाज की भयानक स्थिति और असम तथा महाराष्ट्र में विभाजनकारी प्रवृत्तियों का ज़िक्र किया। 'सारा सामाजिक स्तर ही अस्त-व्यस्त हो रहा है, लूटमार आगजनी होती है कोई बचाने वाला, सुनने वाला नहीं, महिलाओं का अपमान होता है, कोई कुछ बोलता नहीं; रेलगाड़ियां, बसें रोकी जाती हैं, बसों तथा मोटरों में आग लगाई जाती है, दुकानें जलाई जाती हैं, गैर-क्रान्ती भीड़ चाहे जिसको चाहे जहाँ चाहे जब घेर लेती है, कोई पूछने वाला तथा बचाने वाला नहीं रेलयात्रियों को पत्थर फेंके जाते हैं; विद्यालयों पर आक्रमण होते हैं, शिक्षक तथा छात्र मारे जाते हैं कोई रोकने टोकने वाला नहीं; परिणाम यह हो रहा है कि औद्योगिक संस्थान कल-कारखाने बंद होते जा रहे हैं, आर्थिक कठिनाइयां बढ़ रही हैं, जीवनयापन की वस्तुओं का मिलना कठिन हुआ जा रहा है, गरीब जनता के कल्याण के नाम पर गरीबों का जीवन कष्टमय बनाया जा रहा है...दीर्घकाल से बसे शान्तिप्रिय लोग प्राण रक्षार्थ दूसरे स्थानों पर जाने की सोच रहे हैं। असम के लोगों की अन्य प्रान्तियों के प्रति दुर्भावना महाराष्ट्र की शिवसेना आदि भी यही भाव उभार रही है।'

यह दिलचस्प है कि पोद्दार ने अपनी आलोचना में दक्षिणपंथी शिवसेना को भी शामिल किया है।

यह बात बेहद आसानी से मानी जा सकती है कि बीसवीं सदी की बहुत-सी नई विचारधाराओं में गीता प्रेस ने साम्यवाद को हिन्दू जीवन पद्धति के लिए सबसे बड़ा खतरा बताया। यह मान्यता गीता प्रेस द्वारा स्वामी करपात्री महाराज की *माक्सवाद और रामराज्य* पुस्तक के लगातार प्रकाशित किए जाने से भी उपजती है। सन् 1957 में पहला संस्करण प्रकाशित होने के बाद, पुस्तक की कुल बिक्री मात्र 23,500 प्रतियों तक ही पहुँची। गीता, रामायण और महाभारत की लाखों प्रतियां बेचने वाले प्रकाशन समूह के लिए यह संख्या बहुत कम थी। हालाँकि इसके अब तक सात संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, जिसमें अंतिम संस्करण सन् 2009 में प्रकाशित हुआ था। इन सभी में यह बताया गया है कि साम्यवाद वह विकल्प तो नहीं बन सका है जिसका दावा इसने किया था, लेकिन फिर भी हिन्दू अधिकार को सबसे बड़ा खतरा इसी से है।

करपात्री महाराज ने यह पुस्तक सन् 1953 में जेल में लिखी थी जब उन्हें रामराज्य परिषद, हिन्दू महासभा और जनसंघ की संयुक्त पहल पर जम्मू-कश्मीर आंदोलन में शामिल होने के चलते गिरफ्तार कर लिया गया था। यह पुस्तक जेल में थोड़ी बहुत मात्रा में मिले माक्सवादी साहित्य के आधार पर संस्कृत में एक लेख के तौर पर आरंभ हुई। यह लेख पूरा करने से पहले ही करपात्री महाराज जेल से रिहा हो गए। काशी विश्वनाथ को मुक्त कराने के लिए आंदोलन में भाग लेने के चलते करपात्री महाराज बनारस जेल में एक के बाद एक दो बार रखे गए। यहाँ रहते हुए उन्हें माक्सवाद पर बेहतर पुस्तकें मिलीं और उन्होंने अपनी टिप्पणी का दायरा विस्तृत बनाया जिसने ज़ल्द ही एक पुस्तक का रूप ले लिया। जेल से रिहा होने के बाद भी वह समय-समय पर लिखते रहे और सन् 1956 में उनकी हस्तलिखित किन्तु बेहद बिखरी हुई पांडुलिपि गीता प्रेस में पहुँच गई। *कल्याण* के संपादकीय कर्मचारियों और

जेल में करपात्री महाराज के साथ समय बिता चुके जानकीनाथ शर्मा को इस पुस्तक का संपादन और प्रूफरीडिंग करने का कार्य सौंपा गया । [134](#)

अंततः, *मार्क्सवाद और रामराज्य* 800 से ज़्यादा पृष्ठों का आलेख बना । प्रत्येक मार्क्सवादी सिद्धांत के बरक्स करपात्री महाराज ने रामराज्य की वैकल्पिक अवधारणा सामने रखी । करपात्री महाराज ने लिखने के लिए बहुत आसान तरीके को चुना । पहले उन्होंने मार्क्स को भारी मात्रा में उद्धृत किया और फिर हिन्दू धार्मिक ग्रंथों की मदद से निर्मित अपने तर्कों से उन्हें ध्वस्त किया । निस्संदेह, वह कभी यह दावा करना नहीं भूले कि हिन्दू धर्म में न सिर्फ़ समानता का सिद्धांत पहले से अस्तित्व में है बल्कि यह साम्यवाद की तुलना में नैतिक रूप से अधिक श्रेष्ठ भी है ।

करपात्री महाराज ने वर्गसंघर्ष के मार्क्स के सिद्धांत और वंचित तथा शोषित तबके की विजय का मज़ाक़ उड़ाया । उन्होंने ज़मीन, उद्योग और अन्य संपत्तियों पर राज्य स्वामित्व के मार्क्सवादी सिद्धांत को भी खारिज किया । उनका तर्क था कि यह सिद्धांत धर्म के विरुद्ध है तथा किसी व्यक्ति की मुक्ति और प्रगति में बाधक है । [135](#) स्वामी करपात्री का तर्क था कि धर्मशासित रामराज्य में एक व्यक्ति ने अपनी योग्यता और शक्ति का उपयोग अपने परिवार के लिए कमाने तथा त्याग, तपस्या और दान के माध्यम से अपना वर्तमान और भविष्य सुरक्षित करने के लिए किया । वह कामकाजी वर्ग की दुर्दशा के मार्क्सवाद के विवरण से भी सहमत नहीं थे । करपात्री महाराज का विचार था कि कामकाजी वर्ग बहुत ज़्यादा शोषित नहीं है और निश्चित तौर पर वह इतना निष्कपट भी नहीं है । आपात स्थितियों में एक मोटर मैकेनिक या रिक्शेवाले मजबूर ग्राहकों से ज़रूरत से ज़्यादा पैसे लेते हैं । करपात्री महाराज ने संपत्ति के एक समान वितरण के सिद्धांत का भी खंडन किया और मुनाफ़ा कमाने को जायज़ ठहराते हुए मार्क्स के वर्गसंघर्ष के अनुमान पर भी सवाल उठाए ।

करपात्री महाराज के प्रतिगामी विचारों के अनेक उदाहरणों के बीच उनकी महिलाओं के प्रति कही गई बातें सबसे अधिक अपमानजनक थीं । इसके अनुसार महिला कामगारों की नई अवधारणा जिसने उन्हें मुक्ति प्रदान की तथा जो औद्योगिक क्रान्ति की उपज के तौर पर पूंजीवादी और साम्यवादी, दोनों विचारधाराओं में एक जैसी थी को, हिन्दू समाज व्यवस्था के लिए खतरा समझा गया जहाँ एक महिला एक पुत्री, पत्नी या माँ के रूप में घरेलू दायरों तक ही सीमित रहती थी । करपात्री महाराज के अनुसार, लेनिन ने पतिव्रता नारी की अवधारणा को चुनौती दी क्योंकि मार्क्सवाद में प्रत्येक चीज़ राज्य-स्वामित्व के अधीन होने के चलते एक महिला के एक पुरुष से संबंध की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती है । [136](#) करपात्री महाराज ने कहा कि चूंकि मार्क्सवादी व्यवस्था में संपत्ति के निजी स्वामित्व और उत्तराधिकार के लिए कोई नियम ही नहीं होते, इसलिए महिला पानी से भरे एक बर्तन की तरह होती है जो बहुत से पुरुषों की प्यास बुझा सकती है । उन्होंने यहाँ तक कहा कि अनेक संबंधों की सहूलियत देने के लिए सोवियत यूनियन ने गर्भपात को वैधानिक रूप प्रदान किया है । करपात्री

महाराज ने कहा कि वे इन अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक प्रवृत्तियों का विस्तार भारत में पहले ही देख रहे हैं, जहाँ सरकार महिलाओं को अधिक आज़ादी देने लिए, तलाक़ के लिए क़ानून बना रही है। महिलाओं को कामकाजी वर्ग का हिस्सा बनाने की पूंजीवादी और साम्यवादी समाजों की नीति के प्रति तिरस्कार का भाव रखते हुए उन्होंने अपने 'आदर्श' रामराज्य में इसके उलट तस्वीर प्रस्तुत की जहाँ लैंगिक दायरों का कोई उल्लंघन नहीं होता था: पुरुष बाहर काम करता था और घरेलू मामलों में महिलाओं का शासन होता था। रामराज्य परिषद ने जिस रामराज्य को प्रदान करने का वायदा किया उसमें लड़कियों की शादी बचपन में हो जाएगी ताकि वे अपने परिवार पर राज कर सकें तथा घरेलू दायरों की महारानी बन सकें।

गीता प्रेस ने साम्यवादी सिद्धांतों का विरोध करने के साथ-साथ नए भारतीय गणतंत्र के धर्मनिरपेक्ष आदर्शों पर भी हमला किया। भारत के रूढ़िवादी राजनीतिक वर्ग के लिए धर्मनिरपेक्षता हमेशा एक अभिशाप ही रही जिसने हमेशा से भारत को एक हिन्दू-राष्ट्र घोषित करने की आवाज़ बुलन्द की थी। गीता प्रेस की नजरों में, मंदिरों के दरवाज़े अछूतों के लिए खोलने, हिन्दू कोड बिल लागू करने तथा गो-वध पर दुविधाजनक रुख रखने जैसे सरकार के क़दम धर्मनिरपेक्षता की बुराइयों की कुछ निशानियाँ हैं।

1960 के दशक तक पोद्दार जैसे लोगों को यह स्पष्ट हो गया था, भारत वह राष्ट्र नहीं है जिसकी कल्पना उन्होंने कभी की थी। जैसे कि दक्षिण में भाषा, उत्तर प्रदेश में धर्म और असम में जातीयता जैसे अनेक भावनात्मक मुद्दों पर हिंसा फैली, पोद्दार ने इसे देश में सनातन हिन्दू धर्म के मूल्यों में हुई क्षति और धर्मनिरपेक्षता पर ज़रूरत से अधिक निर्भरता के रूप में देखा। ¹³⁷ पोद्दार ने कहा कि 'देश मनुष्य को जानवर बनाने के काम में लगा हुआ है।' ¹³⁸ उन्होंने सनातन धर्म के अभाव में भारत की मृत्यु होने की भविष्यवाणी कर दी: 'सनातन धर्म में गिरावट आ रही है। यह भावी संसार के लिए बहुत खतरनाक है। सनातन धर्म को समझना सभी का अपरिहार्य और अत्यावश्यक कर्तव्य है। साथ ही सनातन धर्म के निर्देशों को व्यवस्थित कर सभी शैक्षणिक संस्थाओं के पाठ्यक्रम में शामिल करना भी अपरिहार्य हो चला है।'

पोद्दार ने धर्मनिरपेक्षता के उदय के पीछे भारतीय नेताओं के उदार नज़रिए और विदेशी षड्यंत्र के हाथ होने का आरोप लगाया। उन्होंने कहा कि इसी के चलते बहुसंख्यक हिन्दुओं के मन में ऐसी असहायता की भावना निर्मित कर दी गई है कि उन्हें डर है कि अपनी धार्मिक भावनाएं अभिव्यक्त करने के बदले उन्हें साम्प्रदायिक कहा जाएगा। ¹³⁹

कल्याण में सन् 1968 में धर्मनिरपेक्षता को 'अभिशाप' कहा गया। ¹⁴⁰ इस पर न केवल भारत का हिन्दू अतीत मिटाने का आरोप लगा बल्कि इसे 'भारतीय और हिन्दू' नाम की दो भिन्न श्रेणियों के निर्माण के लिए भी ज़िम्मेदार माना गया। गीता प्रेस ने राष्ट्र और धर्म की पृथक्ता के सिद्धांत पर हमला किया। नए समावेशी भारत ने विशिष्ट

हिन्दू राष्ट्र के सपने को चूर कर दिया जिसमें जाति, सम्प्रदाय और विचारधारा से जुड़ाव के आधार पर कई तरह के प्रतिस्पर्धात्मक हित कार्यरत हैं। इसे हिन्दू एकता पर हमले के रूप में देखा गया। धर्मनिरपेक्षता के चलते ही मुसलमानों का तुष्टिकरण हुआ है, 'साम्प्रदायिक सौहार्द बनाए रखने का सारा उत्तरदायित्व हिन्दुओं का है।'।

इस लेख के लेखक राजेन्द्र प्रसाद जैन ने धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध धर्मयुद्ध छेड़ने का आह्वान किया जिसे उन्होंने देश में धार्मिक, सामाजिक और नैतिक दिवालियेपन का कारण माना। पूर्व मुख्य न्यायाधीश के सुब्बा राव की एक बात को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा कि 'संविधान में कहीं धर्मनिरपेक्ष या सेक्युलर शब्द नहीं आया है।' ¹⁴¹ सन् 1966 में जैन ने यह सिद्धांत दिया कि स्वतंत्रता के दो दशकों के अनुभव के आधार पर यह आवश्यक हो चला है कि भारत को हिन्दू राष्ट्र घोषित किया जाये। ¹⁴² दो साल बाद उन्होंने कहा, 'यदि धर्मनिरपेक्षता कोई आदर्श है तो वह मुस्लिम बहुल, कम्युनिस्ट बहुल और ईसाई बहुल राष्ट्रों पर भी लागू होना चाहिए। उसके लिए केवल एकमात्र हिन्दू बहुल राष्ट्र को ही बलि का बकरा क्यों बनाया जाये?' ¹⁴³

जैसा कि 1940 के दशक में हिन्दू महासभा के मामले में था, 1960 के दशक में भी गीता प्रेस और जनसंघ अपने उद्देश्य में एकमेक थे। अस्तित्व में आते ही जनसंघ ने कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता को अंगीकार करने से मना कर दिया था। सन् 1951-52 के आम चुनाव के दौरान, धर्मनिरपेक्षता के विरोध को जनसंघ ने अपने घोषणा पत्र में शामिल किया था। धर्मनिरपेक्षता की आलोचना करने की गीता प्रेस की भाषा का अनुसरण करते हुए पार्टी ने धर्मराज्य को केवल सैद्धांतिक रूप में नहीं बल्कि कानून के शासन के तौर पर लागू करने का वायदा किया। पार्टी ने कहा, 'धर्मनिरपेक्षता की वर्तमान व्याख्या वास्तव में मुस्लिम तुष्टिकरण की परोक्ष अभिव्यक्ति है। तथाकथित धर्मनिरपेक्ष समेकित राष्ट्रवाद न तो पूरी तरह राष्ट्रवाद है और न ही पूरी तरह धर्मनिरपेक्षता, बल्कि यह तो उनकी साम्प्रदायिकता के साथ समझौता है जो इस देश के प्रति अपनी छोटी-मोटी वफ़ादारी की भी कीमत मांगते हैं।' ¹⁴⁴

जनसंघ के धर्मराज्य के आधार भारतीय संस्कृति और मर्यादा थे। भारतीय संस्कृति की मुख्यधारा विभिन्न लोगों, धर्मों और संस्कृतियों द्वारा दिए गए योगदानों का समन्वय है जिससे यह संस्कृति अविभाज्य बन जाती है। इसलिए समेकित संस्कृति की कोई भी बात अवास्तविक, अतार्किक और खतरनाक है क्योंकि यह राष्ट्रीय एकता को कमज़ोर करती है तथा विभाजनकारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देती है। जनसंघ के लिए भारत अपने-आप में एक प्राचीन राष्ट्र है जिसको हाल में मिली स्वतंत्रता उसके सुदीर्घ और वैविध्यपूर्ण इतिहास का एक नया अध्याय मात्र है और किसी नए राष्ट्र का जन्म नहीं।

गीता प्रेस के मन में यह बात बैठी हुई थी कि धर्मनिरपेक्षता ने हिन्दुवाद के विरुद्ध कार्य किया है और अन्य धर्मों को इसकी कीमत पर फैलने का मौका दिया है। हिन्दुओं ने बहुत नर्म, दयालु और कानून का पालन करने वाला समुदाय होने की कीमत चुकाई

है। अक्सर अपुष्ट तथ्यों और आंकड़ों जैसे ईसाई आबादी का बढ़कर एक करोड़ होना, देश में 7,000 मिशनरियों का होना और 30,000 हिन्दुओं का कथित रूप से प्रति महीने में ईसाई धर्म में परिवर्तित होना आदि को नियमित रूप से यह साबित करने के लिए परोसा गया कि धर्मनिरपेक्षता ने हिन्दुओं के विरुद्ध काम किया है जबकि अन्य धर्म समृद्ध हुए हैं। [145](#)

हिन्दुवाद और ईसाई और इस्लाम धर्म के बीच एक बारीक अंतर करते हुए *कल्याण* ने कहा कि सब धर्मांतरण के लिए तलवार निकाले रहते हैं जबकि हिन्दूवाद का मार्ग अहिंसक है। हिन्दुओं से अपील की गई कि आज जब आपका धर्म संकट के सबसे कठिन समय से गुज़र रहा है तब आप हाथ-पर-हाथ धर कर मत बैठे रहिए। *कल्याण* ने कहा कि धर्मनिरपेक्षता से निपटने का मार्ग हिन्दू एकता, युवाओं में धार्मिक शिक्षा और बड़े स्तर पर गोलबंदी है। न केवल विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों के बीच बल्कि हिन्दू धर्म से निकले अन्य धर्मों जैसे बौद्ध और जैन धर्म को भी एकता दिखानी होगी। 'आज हमारा धर्म खतरे में है, गाय का क़त्लेआम हो रहा है, हमारी मां-बेटियों का शील खतरे में है, हिन्दुओं जागो और हिन्दुओं एक हो।'

गीता प्रेस और इसके अन्य प्रकाशन ने भारत की धर्मनिरपेक्ष प्रकृति पर लगातार हमले किए। स्वामी करपात्री जैसे अति रूढ़िवादियों के लेख *कल्याण* में लगातार छपते रहे और *कल्याण* बार-बार यह दोहराता रहा कि धर्मनिरपेक्षता समाज में धार्मिक मूल्यों का क्षय कर देगा। [146](#)

संकट का दौर

सन् 1962 की चीनी घुसपैठ नेहरू की विदेश नीति की पहली बड़ी असफलता थी। इसने पोद्दार और पूरे हिन्दू अधिकार के समक्ष एक चुनौती खड़ी कर दी। वे हर बार राष्ट्र को अपने सर्वस्व से ऊपर रखने का दावा करते थे। अब उनके सामने अपनी बात को सिद्ध करने की ज़रूरत आन पड़ी थी। पोद्दार ने चीनी घुसपैठ को विश्वासघात की संज्ञा दी और तत्काल ठोस पलटवार करने की ज़रूरत पर बात की। 'चीन को इस अधम आचरण का फल उसे ऐसा मिलना चाहिए जिससे भविष्य में इस तरह की कुचेष्टा करने के लिए उसमें साहस, वृत्ति और शक्ति ही न रह जाये।' [147](#) उन्होंने चीनी घुसपैठ का मुंहतोड़ और वाज़िब जवाब देने में प्रयासरत भारतीय सरकार और जनता की सराहना की। इस बात ने पोद्दार को थोड़ी खुशी पहुँचाई, 'यह अमंगल में महामंगल का उदय हो रहा है कि आज देशभर में सभी क्षेत्रों के, सभी सम्प्रदायों के, सभी मतवादों के नर-नारी सारी भेद-भावना को भूलकर इस महान कार्य में एकसाथ जुट गए हैं।' घुसपैठ का सामना करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है, *कल्याण* के पाठकों को यह याद दिलाते हुए अपील जारी की गई कि देश के लिए यथासंभव योगदान दें।

यहाँ भी पोद्दार ने एक विदेश रणनीति को आध्यात्मिक और धार्मिक मोड़ दे दिया । उन्होंने कहा कि पवित्र हिमालय पर बुरी नज़र डालने वाले चीन को बर्बाद करने के लिए भारत को 'आध्यात्मिक रास्ते' तलाशने होंगे । इसी प्रकार वे अनीश्वरवादी और अधार्मिक चीन के चंगुल से तिब्बत को भी आज़ाद करवा पाएगा ।

चीन से नेपाल की भौगोलिक नज़दीकी को मानते हुए पोद्दार ने हिन्दू साम्राज्य के भारत के अधिकार क्षेत्र में आ जाने की उम्मीद जताई । आज जिसे विशाल आबादी और क्षेत्र वाले पड़ोसी नागरिकों का आक्रामक वर्चस्व समझा जाएगा, उस पर पोद्दार ने बहुत शांतचित्त होकर दावा किया, 'नेपाल और भारत तो सर्वथा एकात्मक है, भारत नेपाल है और नेपाल भारत है । नेपाल वस्तुतः भारतवर्ष तथा हिन्दू धर्म के लिए एक बड़े गौरव की वस्तु है क्योंकि विश्वभर में वही एकमात्र सनातनी हिन्दू राज्य है । भारत और नेपाल का एक ईश्वर है, एक धर्म है, एक शास्त्र है...अतएव हमें पूर्ण आशा करनी चाहिए कि इस संकट काल में जबकि सनातन धर्मप्रधान भारत पर धर्म तथा ईश्वर का विरोधी चीन आक्रमण कर रहा है तब धर्मरक्षक नेपाल अवश्य ही भारत की यथोचित यथाशक्ति सहायता करेगा ।'

इस लेख के छपने से कुछ दिन पहले ही पोद्दार नेपाल के राजा महेन्द्र को पत्र लिख चुके थे । उन्होंने लिखा कि उनका राजनीति से कोई लेना-देना नहीं है इसलिए वे धार्मिक अपील कर रहे हैं । उन्होंने राजा महेन्द्र से निवेदन किया कि वे अनीश्वरवादी चीन के अनुचित और बर्बर आक्रमण में साथ न दें । [148](#)

तीन साल बाद सन् 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय पोद्दार ने फिर भारतीय सेना की कार्रवाई को न्यायोचित ठहराया । उन्होंने कहा कि पाकिस्तान दुःखदायी ज़ख्म बन चुका है । 'जैसे अपने ही शरीर में कोई रोग होने पर उसके नाश के लिए कड़वी दवा दी जाती है अथवा अपने शरीर में किसी अंग में दूषित ज़हरीला फोड़ा होने पर उसका ऑपरेशन किया जाता है वैसे ही विराट शरीर के जो पाकिस्तानी रूपी एक ज़हरीला फोड़ा हो गया है, उसका ऑपरेशन किया जा रहा है— *कल्याण* के लिए, किसी द्वेष भावना से नहीं, यद्यपि इसका स्वरूप भीषण है । इस सेवा में प्रत्येक सत्य तथा न्याय के प्रेमी तथा विश्व कल्याणकामी को पूर्ण रूप से सहायता देनी चाहिए । पाकिस्तानियों को दंड देना-दिलवाना चाहिए किसी भी प्रकार से अन्याय परायण असुर का पक्ष नहीं लेना चाहिए ।' [149](#)

एक महीने बाद पोद्दार ने चीन और पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध के लिए दोनों ही राष्ट्रों पर भारत को उकसाने का आरोप लगाते हुए युद्ध का एक ठोस विश्लेषण सामने रखा । उन्होंने कहा, 'यही सबसे बड़ी भूल हुई, पाकिस्तान का पृथक अस्तित्व ही आज इस विपत्ति का कारण है । भारत अखंड रहता तो ना तो भारत पर उसके किसी खंड के द्वारा आक्रमण ही होता और ना चीन को धमकी देने तथा ब्रिटेन एवं अमेरिका को कूट राजनीतिक चाल चलने का अवसर मिलता...' ।' [150](#)

उन्होंने बार-बार आरएसएस, हिन्दू महासभा और गीता प्रेस की मांग को दोहराया। पोद्दार का कहना था कि पाकिस्तान से निपटने का सबसे अच्छा तरीका इसे पुनः भारत में मिला लेना है। यही दोनों देशों के नागरिकों के लिए बेहतर रास्ता है। पोद्दार ने चीन से निपटने के लिए भी सीधा रास्ता सुझाया; उन्होंने कहा कि बौद्धों के तिब्बत से चीन को निकाल कर फेंक देना चाहिए और यही 'भारत और विश्व के लिए हितकारी होगा।'।

एक के बाद एक युद्धों, विशेषकर पाकिस्तान के साथ, ने पोद्दार को हिन्दू-मुस्लिम अस्मिता के सवाल को फिर से खड़ा करने का मुफ़ीद मौक़ा दे दिया। उन्होंने वही दोहराया जो गीता प्रेस और हिन्दू महासभा आज़ादी से पहले लगातार कहती रही थी कि राष्ट्र की सुरक्षा अब हिन्दुओं के हाथों में है। 'भारत की सुरक्षा का ज़िम्मा हिन्दुओं पर है और केवल हिन्दू ही इस कार्य को भली-भांति कर सकते हैं। इस सिद्धांत को पूरी तरह आत्मसात कर लेना चाहिए। हिन्दुओं का विश्वास किया जाना चाहिए और उन्हें मौक़े दिए जाने चाहिए। भारत की सुरक्षा व्यवस्था को स्थापित करने का ज़िम्मा दिया जाना चाहिए। सुरक्षित रहने का यही एकमात्र उपाय है।'।

पोद्दार ने कहा कि इन दोनों युद्धों के बाद यह छिपा नहीं रहा है कि 'बहुत से प्रांतों, शहरों और गाँवों में पर्याप्त गद्दार भरे पड़े हैं जिन्हें पाकिस्तान और चीन से सहानुभूति है।'। मुसलमानों का नाम लिए बिना पोद्दार ने कहा कि बहुत से लोग हैं जिनकी पाकिस्तान और चीन के साथ सांठ-गांठ है, बहुत से लोगों ने पाकिस्तान को अपना देश मान कर पाकिस्तानियों को ग़ैर-क्रानूनी मदद पहुँचाई है। उन्होंने ऐसे लोगों को चेतावनी दी और उनके लिए कठोर सजा की मांग की।

पाकिस्तान के साथ सन् 1971 के युद्ध, जिसके चलते बांग्लादेश का जन्म हुआ, से कुछ महीने पहले पूर्वी पाकिस्तान में आई बाढ़ के लिए पोद्दार ने इंदिरा गांधी को गीता प्रेस की ओर से 'सहानुभूति' प्रेषित करते हुए राहत कोष के लिए पांच हज़ार रुपए का योगदान भेजा। उन्होंने इंदिरा गांधी को यह सुनिश्चित करने के लिए कहा कि यह राशि 'पाकिस्तान सरकार तक पहुँचाई जाये या आपके या आपकी सरकार द्वारा शुरू किए गए किसी राहत कोष में जाये'। [151](#)

पाकिस्तान के प्रति कड़वाहट को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह सहायता पूर्वी पाकिस्तान को सहायता पहुँचाने का ही एक तरीका था, जहाँ आवामी लीग पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी के खिलाफ़ चुनाव में खड़ी हो रही थी। बहुत सम्भव है कि पाकिस्तान के विघटन का पहलू एक ऐसा पक्ष हो जिससे उन्हें खुशी मिल रही हो। यही नहीं, पोद्दार की ओर से प्राकृतिक आपदा के लिए किया गया परोपकारी हस्तक्षेप मार्च 1971 में उनके निधन से पहले किए गए कुछ अंतिम सार्वजनिक कार्यों में से एक था।

अध्याय 6

गीता प्रेस का नैतिक संसार

सन् 1939 की सर्दियों में हनुमानप्रसाद पोद्दार रामकृष्ण डालमिया की वर्तमान में हरियाणा स्थित डालमिया दादरी सीमेंट फैक्टरी में प्रवास पर थे । वे इन दिनों गहरे अवसाद से जूझ रहे थे और ये वो दिन थे जब वे गीता प्रेस को छोड़ने की धमकियाँ देते थे । ऐसे समय में पोद्दार गोरखपुर छोड़कर कभी रतनगढ़ तो कभी अपने प्रिय मित्र डालमिया की फैक्टरी पर आ जाया करते थे ।

गीता प्रेस में पोद्दार के नाम बड़ी संख्या में आने वाले पत्रों को वहीं भिजवा दिया जाता था, जहाँ वे उन दिनों होते थे । उनका अधिकांश समय इन पत्रों के उत्तर देने में गुज़रता था । इन पत्रों में अधिकतर *कल्याण* पाठकों की जिज्ञासाएँ होती थीं । बहुत-से पत्र निजी क्रिस्म के होते थे जिसमें पोद्दार से आध्यात्मिक मार्गदर्शन की आकांक्षाएँ होती थीं ।

डालमिया दादरी में एक ऐसा ही पत्र पोद्दार को गीता प्रेस के वरिष्ठ कर्मचारी बजरंग लाल की ओर से मिला । बजरंग लाल को लिखे पोद्दार के प्रत्युत्तर से पता चलता है कि उनसे यह पूछा गया था कि क्या भगवान पर ज़रूरत से ज़्यादा निर्भरता ठीक है? पोद्दार ने जवाब में लिखा कि दुःख की घड़ी में भी भगवान के प्रति किसी उपासक का समर्पण उस 'पतिव्रता नारी' की भावना जैसा होना चाहिए, जिसका 'पति कितना ही कष्ट दे भरी सभा में, कितना ही अपमान या तिरस्कार करे, पतिव्रता स्त्री का आदर्श है कि वह किसी भी हालत में पति का त्याग नहीं करती, वैसे ही किसी के भी द्वारा कितना भी महान लालच दिए जाने पर वह पति से विमुख होकर उसकी ओर नहीं ताकती ।' ¹

एक सामान्य-सी आध्यात्मिक जिज्ञासा के जवाब में आदर्श हिन्दू पत्नी की हतप्रभ कर देने वाली प्रतिगामी छवि का ऐसा इस्तेमाल पोद्दार द्वारा न तो नासमझी में किया गया था और न ही लापरवाही में । ²गीता प्रेस के नैतिक संसार के केंद्र में 'समर्पित और 'आत्मत्यागी' स्त्री का विचार था । गीता प्रेस ने सनातन हिन्दू धर्म के पालक और उसकी प्रचारक संस्था के रूप में इस विचार को हमेशा अपनाए रखा । पितृसत्तात्मक व्यवस्था में महिलाओं को जो केंद्रीय भूमिका सौंपी गई, उसने उन्हें घर-

गृहस्थी की चारदीवारी तक सीमित कर दिया और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के नैतिक चक्रों में उलझा कर उन पर बेहिसाब बोझ लाद दिया ।

यहाँ यह समझना ज़रूरी है कि स्त्री के निजी व सार्वजनिक जीवन पर पितृसत्ता के नियंत्रण की वकालत करते हुए गीता प्रेस अपने समय से कोई बहुत अलग बात नहीं कह रहा था । उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में उठे पुनरुत्थान का उत्साह बीसवीं सदी के आरंभिक काल की दूसरी पीढ़ी तक आते-आते उतना बढ़ा नहीं, जितना इसे बढ़ना चाहिए था । बल्कि इस दौरान सब कुछ उल्टा हुआ और जब तक गीता प्रेस अस्तित्व में आया, तब तक स्थितियाँ फिर से रूढ़िवादी एजेंडे को मज़बूत बनाने के अनुकूल हो चुकी थीं । कहने की आवश्यकता नहीं कि इस एजेंडे के केंद्र में अबला हिन्दू नारी थी ।

इसकी क्या वजहें रहीं, इस पर इतिहासकारों के मत भिन्न हैं । इतिहासकार गुलाम मुर्शिद ने सामाजिक सुधार की गति में कमी की वजह उस राष्ट्रवाद के उदय को बताया है जो ‘भारत के इतिहास का महिमामंडन कर प्रत्येक पारंपरिक मूल्य को सर्वश्रेष्ठ’ ठहराता था, हालाँकि पार्था चटर्जी मुर्शिद के तर्कों से असहमत होते हुए उनके दावों को ‘सरल और सपाट धारणा’ करार देते हैं । ³ चटर्जी इस विषय पर सुमित सरकार के मतों से सहमत दिखते हैं, जिन्होंने ‘उन्नीसवीं सदी के पुनर्जागरण की सीमा’ पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि इस काल में स्त्री सुधार की पहल ‘स्वायत्त नारीवादी दबाव समूहों के बजाय’ ‘मुख्य रूप से पुरुषों द्वारा की गई थी ।’ ⁴

सरकार आगे तर्क देते हैं कि सामाजिक सुधार की पहल उस समय एक पूर्ण आंदोलन का रूप इसलिए नहीं ले पाई क्योंकि इस दिशा में उन्नीसवीं सदी में किए गए प्रयासों का एक ‘मज़बूत व्यक्तिगत आयाम’ था । हिन्दू समाज का ध्यान ‘उच्च जातियों में फैली सती, विधवा-विवाह जैसी वर्जना और कुलीन बहु-विवाह’ जैसे ‘सामाजिक विकारों’ पर था । पर हिन्दू समाज में ‘शुद्धतावादी नियम और संयम पर दिए जाने वाले ज़ोर’ जैसे विकार अक्षुण्ण ही रहे जिनके पीछे ‘मज़बूत पितृसत्तात्मक सोच’ थी ।

सरकार के तर्कों को आगे बढ़ाते हुए पार्था चटर्जी कहते हैं कि इस प्रक्रिया में ‘भौतिक और आध्यात्मिक विभेद को एक साथ समाहित कर दिया गया लेकिन वैचारिक स्तर पर ये कहीं ज़्यादा शक्तिशाली विरोधाभास था: जैसा बाह्य और आंतरिक संसार में होता है ।’ ⁵ इसके परिणामस्वरूप अप्रत्याशित प्रकृति और निर्बलताओं वाली बाहरी दुनिया ‘पुरुषों का क्षेत्र’ थी, जबकि ‘भौतिक दुनिया की दूषित गतिविधियों से मुक्त’ घर-गृहस्थी यानी आंतरिक दुनिया ही महिलाओं के हिस्से में होनी थी । आंतरिक/बाह्य दुनिया की यह विरोधाभासी निर्मिती राष्ट्रवादी विचार से भी उत्पन्न हुई थी जो मानती थी कि भले ही यूरोपीय ताकतों ने अपनी शक्ति और ‘श्रेष्ठ मानी जाने वाली भौतिक संस्कृति’ के दम पर भारत में राज किया हो, लेकिन ये ताकतें ‘पूर्व की विशिष्ट, श्रेष्ठतम और आध्यात्मिक संस्कृति में निहित आंतरिक, अपरिहार्य, अस्मिता को औपनिवेशीकृत करने में असफल रहीं ।’ चटर्जी कहते हैं कि उस समय के राष्ट्रवादियों ने महिलाओं से जुड़े प्रश्नों को, ‘घर और बाहर के विरोधाभास’ को स्त्री और पुरुष की

‘लैंगिक भूमिकाओं’ से जोड़ कर देखा । उनके अनुसार ‘यह आधुनिकता को खारिज करना नहीं था बल्कि राष्ट्रवादी अभियान के साथ आधुनिकता का तारतम्य बनाने का प्रयास था ।’

घर और बाहर की अवधारणा पर विस्तार से लिखते हुए पोद्दार कहते हैं कि ये दोनों अलग नहीं हैं । ‘पुरुष और स्त्री दोनों से मिलकर ही एक सच्चा ‘घर’ बनता है । पति बाहर जाता है उसी ‘घर’ के लिए और स्त्री घर में रहती है उसी ‘घर’ के लिए । इसी प्रकार आवश्यक होने पर धार्मिक या सामाजिक कार्य के निमित्त स्त्री घर की मर्यादा के अनुसार पति-पुत्रादि के साथ बाहर जाती है उसी ‘घर’ के लिए, ‘घर’ को भूलकर स्वतंत्र शौक से नहीं । पति घर में आता है ‘घर’ के लिए, ‘घर’ को भूलकर बाहर की सफलता में फूलकर, अभिमान में डूबकर हुकूमत करने के लिए नहीं । घर-बाहर की यह व्यवस्था जाना-आना, मिलना-जुलना, कमाना-खाना, दान-पुण्य, आचार-व्यवहार सब इस एक ही घर को सुरक्षित और सम्मनित बनाने के लिए है ।’ ⁶

स्त्री शुचिता को सहेजना

सन् 1926 की शुरुआत में जिस समय *कल्याण* पत्रिका अस्तित्व में आई, तभी गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित विभिन्न पुस्तकों में एक 46 पृष्ठों की *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी* भी प्रकाशित की गई । हनुमानप्रसाद पोद्दार द्वारा लिखित इस पुस्तक में महिलाओं के कर्तव्य सारांश में वर्णित थे । इस पुस्तक की लोकप्रियता का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि यह आज तक प्रकाशन में है । अभी भी पाँच रुपए की कीमत वाली इस पुस्तक की दस लाख प्रतियाँ पिछले कई दशकों में बिक चुकी हैं ।

स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी महज़ एक शुरुआत थी । अपनी स्थापना के बाद के वर्षों में गीता प्रेस ने स्त्री और उनकी शिक्षा, स्त्री-कर्तव्यों, यौनिकता, साफ़-सफ़ाई और समाज में उनकी भूमिका आधारित कई रचनाओं का प्रकाशन किया । इनमें प्रमुख रचनाएँ थीं, जयदयाल गोयन्दका द्वारा लिखित *नारी धर्म और स्त्रियों के लिए कर्तव्य शिक्षा*, पोद्दार द्वारा रचित *भक्त नारी*, *नारी शिक्षा* और *दाम्पत्य जीवन का आदर्श* और स्वामी रामसुखदास द्वारा लिखित *गृहस्थ में कैसे रहें और प्रश्नोत्तर मणिमाला* । ⁷ सन् 1948 में *कल्याण* ने *नारी अंक* प्रकाशित किया । इसके अलावा स्त्री से जुड़े विषयों पर *कल्याण* के मासिक अंकों में लगातार लिखा गया । *मानवता* (1959), *सदाचार* (1978), *शिक्षा* (1988) और *चरित्र निर्माण* (1983) जैसे विषयों पर निकाले गए विशेष अंकों में भी महिलाओं से जुड़े मुद्दों पर लेख प्रकाशित किए गए ।

स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी गीता प्रेस द्वारा महिलाओं पर की गई रचनाओं का एक नमूना प्रस्तुत करती है । दो महिलाओं के बीच वार्तालाप शैली में लिखी गई यह पुस्तक गीता प्रेस के स्त्री-द्वेष को दिखाती है । इस पुस्तक में प्रयोग के रूप में प्रस्तुत स्त्रियों के नाम रोचक हैं, सरला और सावित्री । जो ज्ञान की इच्छा रखती है वह सरला है । ‘सरला’ का अर्थ है साधारण और भोली । जबकि महिलाओं के कर्तव्यों के बारे में शिक्षा देने वाली

स्त्री का नाम सावित्री है । भारतीय पौराणिक कथाओं में सावित्री एक समर्पित पत्नी और आदर्श हिन्दू नारी है । सरला के हर प्रश्न का जवाब सावित्री शास्त्रों को संदर्भ बनाकर एक निर्देश की तरह देती है ।

महिलाओं से जुड़ी गीता प्रेस की सभी रचनाओं की भाषा और प्रकृति सुधारवादी किस्म की थी । पोद्दार और अन्य ने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि स्थापित नियमों को महिलाओं द्वारा नहीं मानना व्यापक हिन्दू समाज को प्रभावित कर सकता है । इसलिए यह महिलाओं की ज़िम्मेदारी बनती थी कि वे समाज में नैतिकता और शुचिता की ध्वजवाहक बनें । तभी एक आदर्श परिवार बन सकता है और वह आदर्श राष्ट्र के रूप में विस्तारित हो सकता है ।

गीता प्रेस का महिलाओं और उनकी शुचिता पर ज़्यादा ज़ोर देने का एक कारण संभवतः मारवाड़ी समुदाय का राजस्थान के 'छोटे शहरों और मामूली गांवों' से पलायन कर उस समय की औपनिवेशिक राजधानी कलकत्ता और अन्य बड़े शहरों में आ जाना था । पलायन करने वालों की पहली पीढ़ी में एक आम चलन यह था कि परिवार के बूढ़ों, महिलाओं और बच्चों को घर पर ही छोड़ दिया जाता था, जहाँ उनके सगे-सम्बन्धी एक-दूसरे का ख्याल रखते थे । हालाँकि इस परिपाटी की मारवाड़ी समुदाय को एक बड़ी सामाजिक क्रीमत चुकानी पड़ी । नवंबर 1929 में बेहद प्रसिद्ध पत्रिका *चाँद* ने मारवाड़ी समाज पर एक विशेषांक निकाला जिसने इस समुदाय को हिला कर रख दिया । उस पत्रिका के लेख मुख्यतः अकेलेपन और अधूरेपन में रहने वाली मारवाड़ी महिलाओं की अनियंत्रित यौन इच्छाओं पर केंद्रित थे । इसमें जयपुर से निकलने वाले लुगदी साहित्य जैसे *ख्याल छोटे कांत को*, *काकी जेठुत का ख्याल*, (दोनों जयपुर त्रिपोलिया बाजार के कन्हैयालाल बुकसेलर द्वारा प्रकाशित) और *दो गोरी का बालम* (ईश्वरी लाल बुकसेलर द्वारा प्रकाशित) आदि का जिक्र था । इस तरह की सारी सामग्री मारवाड़ी भाषा में थी । साथ ही यह दावा किया गया था कि मारवाड़ी भाषा में लिखे गए ये विवरण महिलाओं के अन्तरंग संबंधों व यौन संबंध की सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं ।

इस विवादास्पद *मारवाड़ी अंक* के आठ साल बाद *चाँद* पत्रिका ने पोद्दार के मित्र और मारवाड़ी समाज में अपनी पहचान रखने वाले तथा आर्य समाज आंदोलन के प्रकाश स्तंभ चांदकरण शारदा की स्वर्गीय पत्नी सुखदा देवी के एक लेख को प्रकाशित किया । शारदा *कल्याण* के अंकों में हिन्दू धर्म की विशेषताओं पर लिखते थे वहीं सुखदा देवी के इस लेख ने मारवाड़ी महिलाओं की दयनीय स्थिति को सबके सामने ला दिया । ⁸ एक तरह से यह समृद्ध मारवाड़ी समाज के भीतर महिलाओं की आपबीती बयान करने वाला पहला सार्वजनिक विवरण था । जिसमें उन्होंने कहा कि धन से सुख की प्राप्ति नहीं होती । सुखदा देवी ने मारवाड़ी समाज के कपट की यह कहते हुए निंदा की कि यह समुदाय हिन्दी के प्रचार के लिए गांधी को पचास हजार का चंदा देने में नहीं हिचकता लेकिन अपने ही समाज की मारवाड़ी लड़कियों के लिए स्कूल खोलने को

लेकर इसमें कोई उत्साह नहीं है! इसी लेख में सुखदा देवी ने आगे कहा कि शिक्षा के अभाव में मारवाड़ी महिलाओं का जीवन कपड़ों, गहनों, गपशप और बेटों के सोलह साल पूरे होने पर उसका विवाह करवा देने तक ही सीमित रह गया है।

सुखदा देवी ने मारवाड़ी समुदाय की अंदरूनी बुराइयों, जैसे जवान लड़की को अधेड़ पुरुष से ब्याहना और घरेलू हिंसा जैसी घटनाओं को सबके सामने ला दिया। उन्होंने कहा कि ऐसा कोई मारवाड़ी घर नहीं है जहाँ पुरुषों ने दो या तीन विवाह न किए हों। वहीं दूसरी ओर युवावस्था में ही विधवा हो गई मारवाड़ी महिलाओं को दूसरे विवाह की अनुमति नहीं है! 'विधवाओं का भ्रष्ट होना स्वीकार है' लेकिन उनके लिए कुछ नहीं किया गया।

सुखदा देवी ने मारवाड़ी महिलाओं से स्कूल खोलने के लिए प्रयास करने की अपील की जहाँ लड़कियों को गृह विज्ञान, अर्थशास्त्र, पाककला, चिकित्सा सहित सामान्य शिक्षा दी जा सके। सुखदा देवी कहती हैं, 'हम ज़माने के साथ पैर बढ़ाएं, मारवाड़ी बालाएं किसी भी देश की बालाओं से कम न रहें।' महिलाओं को दबाकर रखने वाले सामाजिक चलन के लिए प्रतिरोध का आह्वान करते हुए सुखदा देवी ने कहा कि 'ईश्वर उनकी सहायता करते हैं जो अपने पैरों खड़े होते हैं।'

मारवाड़ी महिलाओं के अकेलेपन और घर की चारदीवारी वाली उनकी दुनिया के विषय पर आज भी लेखन जारी है। इसी समाज से ताल्लुक रखने वाली प्रभा खेतान ने सन् 2002 में *पीली आंधी* नामक उपन्यास लिखा। यह उपन्यास पिछले 100-150 सालों की अवधि में मारवाड़ी महिलाओं की तीन पीढ़ियों, उनके संघर्षों और बंगाल के व्यापक प्रगतिशील सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अपनी पहचान गढ़ने से जुड़ी उनकी सफलताओं का चित्रण है।⁹

मारवाड़ी समाज के दो सजग प्रहरियों पोद्दार और गोयन्दका ने स्वयं भी दोहरा जीवन जिया—कलकत्ता पलायन के समय अविवाहित कुंवारों का जीवन और राजस्थान में रहते हुए विवाहित पुरुषों का! उनकी नज़र में सामाजिक बुराइयों की जड़ महिलाएँ थीं और उन्हें सावित्री और शकुन्तला जैसे पूर्वजों की भांति पवित्र होने के लिए प्रेरित करने की ज़रूरत है। एक व्यापक अवधारणा के तौर पर महिलाओं के जीवन में यह शुचिता शिक्षा, विवाह, घरेलू मामलों, यौन जीवन और स्वास्थ्य आदि सभी आयामों में दिखाई देनी चाहिए। उनके लिए पुरुष की संकीर्ण सोच कभी चर्चा का विषय नहीं रही और न ही उन्होंने इसे किसी समस्या के रूप में देखा। केवल स्त्रियों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे हर हाल में पवित्र रहें, अपने पतियों के कपटपूर्ण व्यवहार को चुपचाप सहें और किसी अन्य पुरुष के झांसे में आने से बचें।

स्त्री शिक्षा

स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी ¹⁰ में बातचीत जब आगे बढ़ती है तो सरला पूछती है कि क्या महिलाओं की शिक्षा ग़लत चीज़ है, क्या यह उन्हें विधवा बना सकती है? जैसा आम

तौर पर माना जाता है? सावित्री इसे यह कहते हुए खारिज कर देती है कि यदि, 'विद्या से विधवा होतीं तो जिन जातियों में स्त्री शिक्षा का प्रचार है उन जातियों की सभी स्त्री विधवा होतीं।' सरला फिर पूछती है कि क्या शिक्षा स्त्री के लिए अनैतिक है? सावित्री इसे भी पुरजोर तरीके से खारिज करती है और कहती है कि शिक्षा महिलाओं में धर्म का संचार करती है और घरेलू कार्यों में कुशल बनाती है। इस तरह की शिक्षा धार्मिक ग्रंथों से आती है जो न केवल ज्ञान में वृद्धि करते हुए संकट से लड़ने की शक्ति देती है, बल्कि लोगों को बुरी आदतों से बचा कर उनमें सद्गुणों का विकास करती है, जबकि: 'व्यभिचार होता है अविद्या से, कुल्टा स्त्रियों के संग से घर-घर भटकने से, विषयादि की बातें अधिक सुनने से, अधर्म होने वाले दुखों को न जानने से, पति के साथ कलह करने से और पर-पुरुषों के साथ प्रीत करने से।'।

अब सरला सीधे पूछती है कि महिलाओं को किस तरह की शिक्षा देनी चाहिए? क्या यह आम तौर पर चलने वाली स्कूल की शिक्षा की तरह होनी चाहिए? सावित्री के अनुसार स्त्री की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जहाँ उसे एक तरफ रामायण, गीता, मनुस्मृति, महाभारत और अन्य धर्मिक ग्रंथों का पाठ पढ़ाया जाये और वहीं दूसरी ओर उसे खाना बनाना, सिलाई-कढ़ाई, और पुत्रों की देखभाल और पति की आज्ञा का पालन करने की सीख दी जाये। वह वर्तमान में स्कूलों में लड़कियों को दी जा रही शिक्षा को यह कहते हुए नकारती है कि, 'उनमें तो प्रायः अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी सभ्यता का समावेश हो गया है जिनसे हमारा हिन्दू आदर्श नष्ट हो रहा है। फैशन बढ़ रहा है, विलासिता की तरफ झुकाव हो रहा है, घर के काम-काज से अरुचि और घृणा होने लगी है, फ़िज़ूलखर्ची बढ़ रही और केवल अपने शरीर के सुख और आराम के लिए शरीर को धोने-पोछने और सजाने आदि में ही प्रायः समय जाने लगा है। धर्म का भाव धीरे-धीरे परन्तु प्रबलता के साथ घट रहा है। हिन्दू जातियों की स्त्रियों के लिए ऐसी शिक्षा कभी वांछनीय नहीं।'।

सावित्री शैक्षणिक सुधार की पुरजोर वकालत करती है ताकि हिन्दू लड़कियाँ एक आदर्श हिन्दू महिला बन सकें, ऐसी हिन्दू महिला जिसमें धर्म के लिए प्रेम, पति और बुजुर्ग के प्रति समर्पण, गरीबों के लिए दया, मानवता के लिए सेवा-भाव, घरेलू कार्यों में रुचि, खर्च पर नियंत्रण और काम-सुख के प्रति घृणाभाव हो।

स्कूली शिक्षा के लिए मना किए जाने के बाद सरला जानना चाहती है कि क्या लड़कियों को हमेशा अपने माता-पिता के नियंत्रण में रहना चाहिए? सावित्री कहती है कि यह न केवल आवश्यक है, बल्कि नारी के लिए धर्म भी है क्योंकि, 'हमारे शास्त्रों के अनुसार तो किसी भी अवस्था में स्वतंत्र नहीं होना चाहिए, बाल्यावस्था में पिता के वश में, यौवन अवस्था में पति के वश में और पति की मृत्यु के बाद पुत्रों के वश में रहे पर स्वतंत्र न रहे।'।

पोद्दार देश में 'ग़लत' तरह की शिक्षा के प्रसार को रोकने के प्रयास में केवल सरला-सावित्री बहस तक ही सीमित नहीं थे। उन्होंने महिलाओं को पाश्चात्य शिक्षा दिए जाने के खिलाफ़ अपने विचार प्रसारित करने की हर संभव कोशिश की। यहाँ तक कि

पूना में एक ब्राह्मण लड़की और मुस्लिम लड़के के विवाह जैसी छिट-पुट घटना का संदर्भ लेकर आधुनिक शिक्षा से स्त्रियों को पहुँच रही क्षति को चिह्नित किया गया। इस संदर्भ में अपनी बात रखने के लिए उन्होंने अन्य लेखकों के विचारों का भी इस्तेमाल किया। ऐसा ही एक लेख स्त्री विषयक साहित्यिक पत्रिका *माधुरी* में परशुराम मेहरोत्रा द्वारा एक बहन के रूप में अपने बड़े भाई को लिखे गए पत्र के रूप में प्रकाशित हुआ था। इस पत्र में स्त्रियों की शिक्षा की पक्षधर होने के बावजूद नाराज़ बहन तीन समस्याओं की ओर ध्यान दिलाती है: लड़कियों के लिए अच्छे स्कूलों की कमी, अत्यधिक पाश्चात्य शैली वाले पाठ्यक्रम और अच्छी महिला शिक्षकों की कमी। उसने कहा कि ऐसी शिक्षा से सामान्य तौर पर समाज और विशेषकर परिवार पर कहर बरपेगा। ¹¹

सन् 1938 में जब तक गोयन्दका का *नारी धर्म* प्रकाशित हुआ, तक तक *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी* के कई संस्करण सामने आ चुके थे। *नारी धर्म* में महिलाओं के सार्वजनिक और निजी अस्तित्व की जिस स्पष्ट अंदाज़ में पड़ताल की गई थी, उसने पोद्दार को इन विषयों पर थोड़े नरम और अपेक्षाकृत प्रगतिशील व्यक्तित्व के रूप में स्थापित कर दिया। कम-से-कम गीता प्रेस के संदर्भ में तो उन्हें प्रगतिशील ही कहा जा सकता था। इस विषय पर गोयन्दका के तेवर तीखे और स्पष्ट रूप से पूर्वग्रह से ग्रसित थे। उनकी बात सीधी और कभी-कभार अशिष्टता भरी होती थी।

यूरोप में महिला स्वतंत्रता पर अपने तिरस्कारपूर्ण लहजे में पोद्दार को लिखते हुए गोयन्दका ने कहा कि ऐसी आज़ादी भारत में क्या कर सकती है भला जब ‘अपनी स्त्रियों में इतनी मूर्खता है कि बहुत-सी स्त्रियों को सौ तक गिनना भी नहीं आवे।’ ¹² अपनी पुस्तक की शुरुआत में ही उन्होंने कहा कि ‘जो स्त्रियाँ स्वतंत्र होकर रहती हैं वे प्रायः नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं।’ ¹³ उनका मानना था कि इस देश में अच्छे चरित्र वाले शिक्षकों की कमी है जिससे शिक्षण संस्थानों में अनैतिक संबंध बनाना आम होता जा रहा है। जो शायद ही कभी उजागर हो पाते हैं। उन्होंने कहा कि इस प्रकार के संबंध मंदिर, तीर्थस्थलों और धार्मिक आयोजनों में भी आम हो गए हैं। और इससे बचने का उपाय यह है कि पुरुष और स्त्री के बीच कम-से-कम संपर्क हो।

महिला अध्यापक रखने के समाधान को खारिज करते हुए गोयन्दका कहते हैं कि एक चरित्रवान शिक्षक ढूँढ़ना कठिन कार्य है जिसके कारण, ‘आज भारतवर्ष में सैंकड़ों कन्या पाठशालाएं हैं परंतु यह कहना बहुत ही कठिन है कि उनमें से कोई भी पूर्णतया हमारे सनातन आदर्श के अनुसार संचालित हो रही है।’ गोयन्दका इस बात से इंकार करते हैं कि आरंभिक समय के शास्त्रों में महिला शिक्षा या सह-शिक्षा के लिए गुरुकुल या विद्यापीठ का वर्णन था। उनका मानना था कि पारंपरिक रूप से महिलाओं की शिक्षा घर में होती रही है।

लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा व चरित्र निर्माण और मानसिक शुद्धि के लिए गोयन्दका ने कठोर शारीरिक श्रम पर ज़ोर दिया। उनके अनुसार महिलाओं के लिए

बड़ों के कटु शब्द भी शिक्षा का एक प्रकार हैं । ¹⁴

गोयन्दका से अलग, पोद्दार देश भर में हो रहे बड़े परिवर्तनों से परिचित थे । वे इस बात को समझ चुके थे कि गीता प्रेस के प्रबल प्रयासों और ऐसे ही पुनरुत्थानवादी संगठनों द्वारा महिलाओं को घरेलू शास्त्रीय शिक्षा देने के पक्ष में की जा रही पूरी कोशिशों के बावजूद भी औपनिवेशिक तंत्र और भारत के बदलते मानस को दबाया नहीं जा सकता था । पोद्दार औपनिवेशिक शिक्षा की आलोचना करते थे क्योंकि वह घर/बाहर की परिपाटी से जुड़े लैंगिक आधार को नष्ट करने की पृष्ठभूमि तैयार कर रही थी ।

सन् 1936 में *वर्तमान शिक्षा* शीर्षक से लिखे अपने एक विस्तृत लेख में पोद्दार ने इस बात पर खेद जताया कि आधुनिकता की नई लहर में स्त्री और पुरुष को समान शिक्षा देने की बात है । यहाँ तक कि, 'वे भी पढ़ लिखकर अध्यापक, मास्टर, क्लर्क, वकील, बैरिस्टर, लेखिका, नेता, म्यून्सिपालिटी या कॉउंसिलों की मेंबर बन रही हैं ।' ¹⁵ पोद्दार के अनुसार इस तरह के प्रगतिशील विचार स्त्रियों को ईश्वर और धर्म विमुख बना रहे थे । हालाँकि उनके अनुसार दयालुता, समर्पण, शुचिता और संकोच जैसे अंतर्निहित गुणों के कारण महिलाओं ने अब तक पुरुषों की तरह धार्मिक सिद्धांतों की उपेक्षा शुरू नहीं की, लेकिन इसकी शुरुआत हो चुकी है । पोद्दार के अनुसार स्त्रियों में आ रही धैर्यहीनता उसका पहला लक्षण है ।

पोद्दार कहते हैं कि आधुनिक शिक्षा एक समानांतर अनैतिक दुनिया बना रही है, जहाँ महिलाएँ पर-पुरुषों को पत्र लिखती हैं, मज़ाक़ करती हैं, शतरंज खेलती हैं और उनके साथ नाचती हैं । पोद्दार के अनुसार, सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि महिलाएँ अपनी सद्प्रवृत्तियों को खो रही हैं । उनके पास अपने तर्कों को सिद्ध करने के लिए उदाहरणों की कमी नहीं थी । इस संदर्भ में भी उन्होंने लाहौर के एक सुधारवादी समाचार-पत्र में सह-शिक्षा के खिलाफ़ लिखे एक पाठक के पत्र का ज़िक्र किया जिसमें एक स्कूल की महिला स्वास्थ्य अधिकारी की रिपोर्ट के संदर्भ से बताया गया कि कैसे सह-शिक्षा वाले स्कूल की बारह साल से ऊपर की नब्बे प्रतिशत लड़कियाँ किसी-न-किसी समय में गर्भवती हुईं । पोद्दार का कहना था कि यह प्रिंट की ग़लती भी हो सकती है, लेकिन अगर यह आंकड़ा दस प्रतिशत भी है तो भी इस स्थिति में हमें सचेत हो जाना चाहिए । उनके अनुसार लाहौर जैसी घटनाएँ बढ़ रही हैं क्योंकि सह-शिक्षा के कारण स्कूली छात्राओं के 'चरित्रों के बिगड़ने की संभावना बहुत अधिक है ।'

शिक्षा का मूल उद्देश्य पोद्दार की नज़र में मनुष्य की आंतरिक शक्ति को जागृत करना है, लेकिन सह-शिक्षा इसी मूल उद्देश्य में बाधक है । उनके अनुसार, चूंकि लड़कों और लड़कियों में शक्ति का विभाजन समान नहीं है इसलिए उन्हें एक ही स्कूल में सह-शिक्षा देना ग़लत है । इसके अतिरिक्त पोद्दार ने कहा कि लैंगिक दृष्टि से लड़कों और लड़कियों की शारीरिक बनावट भिन्न होने से सह-शिक्षा दोनों के बीच बड़े स्तर पर

परस्पर आकर्षण पैदा करेगी। उनके अनुसार, निकट संपर्क में रहने के कारण दोनों में 'संयम का अभाव ही बढ़ रहा है।'

कल्याण के *नारी अंक* (1948) में आधुनिक स्त्री पर लिखे गए एक लेख में संस्कृत विद्वान और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति गंगानाथ झा की सराहना की गई क्योंकि उन्होंने विश्वविद्यालय में सह-शिक्षा का विरोध किया था। झा ने स्थानीय अखबार *लीडर* द्वारा उनके खिलाफ लगातार चलाए जा रहे अभियान के बावजूद एक संकाय सदस्य की पुत्री की नृत्य प्रस्तुति की अनुमति नहीं दी। *कल्याण* के लेख में यह भी दावा किया गया कि मदनमोहन मालवीय को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में महिला खंड बनाए जाने का पछतावा था।¹⁶

घर और बाहर के विरोधाभास को आगे बढ़ाते हुए लेख में कार्यालयों, बाज़ार, सभाओं, अदालतों और काउंसिल जैसी जगहों को पुरुषों के लिए और घर को महिलाओं के लिए निर्धारित किया गया। लेखक महिलाओं से सवाल करता है कि वे घर में मातृत्व और आज़ादी का आनंद उठाने की जगह अपनी ऊर्जा और समय दफ़्तर में क्यों गंवाना चाहती हैं? उनके अनुसार महिलाओं के लिए शिक्षा का उद्देश्य उनके अंतर्निहित गुणों को विकसित करना होना चाहिए ताकि वे एक अच्छी माँ बन सकें। गोयन्दका की तरह इन्होंने भी इस तर्क को खारिज किया कि प्राचीन भारत के गुरुकुल में सह-शिक्षा हुआ करती थी। पोद्दार ने भी लिखा कि इस तरह के दावों के कोई प्रमाणिक साक्ष्य नहीं हैं। केवल गुरुओं की पुत्रियाँ लड़कों के साथ पढ़ती थीं, लेकिन उनके बीच भाई-बहन का संबंध होता था और उन पर कड़ी नज़र रखी जाती थी।

नारी अंक के समय तक अपने प्रगति विरोधी स्वर में तो नहीं, लेकिन महिलाओं की शिक्षा के प्रसार के विरोध के मुद्दे पर गीता प्रेस के विचार बदलने लगे थे। गीता प्रेस को लगने लगा था कि पाश्चात्य शिक्षा को लेकर उसका भय सही साबित हो रहा है। पोद्दार के '*वर्तमान शिक्षा*' नामक लेख में कुछ नए बिंदु जोड़कर *नारी अंक* में पुनर्प्रकाशित किया गया और इनमें लड़कियों को दी जा रही संस्थानिक शिक्षा के खिलाफ कुछ और व्यवहारिक कारण गिनवाए गए।¹⁷ एक तरह से 882 पृष्ठों का यह विशेषांक महिलाओं से जुड़े विषयों पर गीता प्रेस की सोच का एक सारांश था। साथ ही, यह इन मुद्दों पर व्यापक सनातनी सोच के संदर्भ को रखने का एक मज़बूत प्रयास था। *कल्याण* के वर्तमान संपादक राधेश्याम खेमका के अनुसार *नारी अंक* के लेखों में आधुनिक और प्राचीन भारत की महिलाओं के बीच तुलना की गई थी।¹⁸

सनातन धर्म के पक्षधर लेखक, कवि, शिक्षक, पत्रकार और कार्यकर्ता किशोरीदास वाजपेयी एक आलेख में कहते हैं कि लड़कियाँ लड़कों की तुलना में मानसिक स्तर पर ज़्यादा तेज़ होती हैं पर शारीरिक और मानसिक स्तर पर सुकोमल होती हैं। 'यही कारण है कि गणित जैसे शुष्क और बुद्धिग्राह्य विषयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाएँ प्रायः निस्तेज और निर्बल हो जाती हैं, ऐसी स्त्रियाँ स्वभावतः गृहस्थी में दयनीय स्थिति उत्पन्न कर देती हैं। सदा बीमार रहने से वह स्वयं तो दुखी

रहती हैं, कुटुंब भी सुखी नहीं रहता । विद्या सुख के लिए होती है पर यहाँ दुखदायी हो जाती है ।’ ¹⁹

वास्तव में यह स्त्री शिक्षा के खिलाफ़ उनकी नायब दलील थी । वाजपेयी आगे बीए और एमए करने वाली लड़कियों को लेकर यह कहते हुए व्यावहारिक शंका जताते हैं कि ऐसी लड़कियों के लिए योग्य वर मिलना लगभग असंभव हो जाता है, ‘तब इच्छा या अनिच्छा से उन्हें अविवाहित जीवन ही बिताना पड़ता है ।’ वाजपेयी के अनुसार ऐसी स्थिति में लड़कियों को विद्यापीठ द्वारा चलाई जा रही विद्या विनोदिनी और विदुषी जैसी डिग्रियाँ लेनी चाहिए । ये डिग्रियाँ विद्यापीठ नाम की लोकप्रिय संस्थाएँ प्रदान करती थीं । ये संस्थाएँ भारतीय ज्ञान पद्धति, धर्म, प्राचीन विज्ञान, इतिहास, संस्कृति और नैतिकता की भारी खुराक पर आधारित शिक्षा देती थीं । ये सनातनी संस्थाएँ पाश्चात्य पद्धति पर चल रहे स्कूल और कॉलेज के प्रत्युत्तर में खोली गई थीं । महिलाएँ परिवार और घर के भीतर ज्ञान और शुचिता की अग्रदूत हैं और विद्यापीठ की शिक्षा को इस लिहाज़ से संपूर्ण कहा गया क्योंकि यह परिवार और महिलाओं के लिए किसी प्रकार की चुनौती खड़े किए बिना उन्हें सफलता से घरेलू कार्य करने और बच्चों को शिक्षित करने में मददगार है ।

गीता प्रेस ने शिक्षित महिलाओं का उपहास करने और पुरुषों के समकक्ष खड़े होने के उनके प्रयासों की खिल्ली उड़ाने के लिए उन्नीसवीं सदी के मध्य बंगाल में हुए कार्यों का भी सहारा लिया । ²⁰ महिलाओं की स्कूली शिक्षा का विरोध करने के लिए शिक्षित स्त्रियों से बेहतर और कौन हो सकता था! खुद हिन्दी से स्नातक सरला गुप्ता ने पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त महिलाओं का उपहास किया और कहा कि पहले केवल पुरुष बेरोज़गार हुआ करते थे और अब इस श्रेणी में महिलाएँ भी शामिल हो गई हैं । ²¹ उन्होंने ज़्यादा गंभीर स्वर में, शिक्षित स्त्रियों द्वारा वर्तमान सामाजिक और नैतिक मानदंडों को मिल रही चुनौती के बारे में भी लिखा । सरला गुप्ता ने शिक्षित स्त्री के अनैतिक कार्यों की सूची बनाई, जिसमें लगातार क्लब और सिनेमा घर जाना, ताश खेलना, शराब और सिगरेट का सेवन, मांसाहार, पुरुषों के साथ देर रात समय बिताने जैसी चीज़ें शामिल थीं । उन्होंने कहा कि महिलाओं को बुरी आदतों से बचाने के लिए ज़रूरी है कि उनसे जुड़े पाठ्यक्रमों को पूरी तरह से बदल दिया जाये, ऐसा कहते उन्होंने भारतीय भाषाओं, गृह विज्ञान और लालन-पालन की शिक्षा पर ज़ोर दिया ।

लेकिन एक बार फिर दुविधाजनक स्थिति पैदा हो गई । *नारी अंक* में भारत की पश्चिमी शिक्षा ग्रहण करने वाली पहली डॉक्टर और प्रसिद्ध महिला शिक्षा कार्यकर्ता तथा पंडिता रमाबाई की रिश्ते में बहन आनंदीबाई जोशी, जो कि ‘भारतीय महिला शिक्षा की प्रतिष्ठित नाम’ हैं की सराहना में एक लेख प्रकाशित किया गया । ²² गीता प्रेस ने अमेरिका में छात्रा के रूप में जोशी द्वारा धार्मिक हिन्दू पत्नी का जीवन बिताने के लिए उनकी सराहना की, हालाँकि जोशी और उनकी मित्र तथा मराठी उपन्यासकार काशीबाई कानितकर भारत में रूढ़िवादियों के निशाने पर रही थीं । दोनों पर जूते

पहनने और छाता लेकर घूमने के कारण पत्थर फेंके गए थे क्योंकि ये दोनों चीजें पुरुष वर्चस्व का प्रतीक थीं। ²³ पर इस तथ्य का गीता प्रेस के लेख में ज़िक्र नहीं किया गया था। ²⁴ इस लेख में उन कारणों को जानबूझ कर नज़रअंदाज़ किया गया, जिन कारणों से जोशी को मेडिकल शिक्षा के लिए देश छोड़कर बाहर जाने की ज़रूरत पड़ी।

आनंदीबाई जोशी पर *कल्याण* में प्रकाशित हुआ यह लेख केरोलीन हेली डाल ²⁵ द्वारा लिखित उनकी जीवनी का एक हिस्सा था जिसे अनूदित कर प्रकाशित किया गया। जीवनी के बड़े हिस्से को लेख में शामिल नहीं किया गया लेकिन इस बात का ज़िक्र ज़रूर था कि कैसे आनंदीबाई जोशी अमेरिका जाते समय अपने साथ साड़ी, चूड़ियाँ और देवी-देवताओं की तस्वीरें भी लेकर गईं, जिससे हिन्दू महिला और पत्नी के रूप में उनकी पहचान विदेशी धरती पर भी कायम रही। *कल्याण* ने इस जीवनी के उस भाग को नज़रअंदाज़ करना बेहतर समझा जिसमें जोशी ने हिन्दू पुजारियों की आलोचना की थी और उन्हें ‘पक्षपाती और भ्रष्ट’ बताया था—‘मैं हिन्दू पुजारियों को नापसंद करती हूँ।’ इस प्रकार इस लेख में एकतरफा तस्वीर प्रस्तुत की गई थी, जिसके अनुसार आनंदीबाई जोशी महिला के रूप में एक स्वतंत्र सोच में रुचि रखते हुए भी अपने सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ी रहीं।

कल्याण का *नारी अंक* केवल आनंदीबाई जोशी जैसी भारतीय स्त्रियों पर ही नहीं निकाला गया था, बल्कि इसमें ऐसी मशहूर विदेशी महिलाओं का भी उल्लेख किया गया था जिन्होंने अपना जीवन मानव सेवा में समर्पित कर दिया था। इसलिए *नारी अंक* में फ्लोरेस नाइटिंगेल, जोन ऑफ़ आर्क, एलिज़ाबेथ फ्राई और हेलेन केलर जैसे नाम भी शामिल थे। इससे पहले पोद्दार ने भारतीय स्त्रियों में विक्टोरियन काल के मूल्यों की स्थापना के लिए यूरोपीय महिलाओं पर आधारित एक बुकलेट प्रकाशित की थी। ²⁶

विवाह और पारिवारिक जीवन

सन् 1929 में एक अपरिचित महिला ने पोद्दार से सलाह मांगी। महिला का वैवाहिक जीवन सुखद नहीं था और वह अपना दर्द छिपा रही थी। उसे लिखे गए पत्र के उत्तर में पोद्दार के सनातनी हिन्दू मूल्यों और सुधारवादी बनावटी चेहरे के पीछे का अंतर्द्वंद्व दिखता है। ²⁷ संभव है कि महिला ने पति से शारीरिक प्रताड़ना सही हो जिस कारण पोद्दार उसे भारतीय स्त्री में अपेक्षित सहनशीलता के सुझाव देने में हिचके। महिला को बहन के रूप में संबोधित करते हुए पोद्दार ने अप्रत्याशित पक्ष लेते हुए कहा कि उस महिला द्वारा विवाह के बंधन से अलग हो जाने और पति को छोड़ देने को वे ग़लत नहीं मानते।

लेकिन इसके बाद पोद्दार की सनातनी सोच सामने आती है, जब वे भारतीय स्त्रियों के गौरवशाली सती धर्म का ज़िक्र करते हैं। उन्होंने कहा कि इस सती धर्म के

चलते ही उनके मन में उस स्त्री को अपने पति से अलग होने की सलाह देने में हिचकिचाहट हुई। सांत्वना देने के प्रयास में पहले तो पोद्दार ने उसके पति के सर्वनाश की कामना की, लेकिन यह एक तरह से उस महिला में सती के प्रति आस्था पैदा करने की चाल थी। पोद्दार ने लिखा, 'ऐसे पतियों की क्या दुर्दशा होगी भगवान ही जाने परंतु यह बात लिखते भी मैं डरता हूँ क्योंकि भारतीय सती स्त्री अपने नीचाति-नीच स्वामी का भी अनिष्ट सुनना, देखना नहीं चाहती।'।

विचारों को लेकर विभ्रम पैदा करने के बाद पोद्दार ने अपने परंपरागत सनातनी सुझाव में उस महिला से पति के अनिष्ट के लिए नहीं बल्कि उसकी पाशविक वृत्ति के शमन के लिए भगवान पर भरोसा रखने और प्रार्थना करने को कहा। हालाँकि पोद्दार ने पहले महिला द्वारा ससुराल छोड़ने के क़दम का समर्थन किया लेकिन साथ ही उन्होंने बाहरी दुनिया की एक अनैतिक तस्वीर प्रस्तुत की, ताकि महिला दहलीज़ न लांघे। इस प्रकार अंत में वे उस महिला को गाली-गलौज वाले वैवाहिक संबंध के दलदल में ही छोड़ देते हैं।

पोद्दार का वैचारिक पक्ष बहुत चौकाने वाला नहीं था। उनके लिए हिन्दू धर्म में विवाह एक धार्मिक प्रक्रिया है, और एक आध्यात्मिक ज़रूरत जहाँ अन्य धर्मों की तरह पंजीकरण की ज़रूरत नहीं होती क्योंकि इसके टूटने का सवाल ही नहीं उठता। पति-पत्नी का संबंध मृत्यु के साथ ख़त्म नहीं होता क्योंकि यह दो आत्माओं का मिलन है: 'यह एकात्म भाव ही हिन्दू विवाह की विशेषता है।' ²⁸ विवाह को लेकर ऐसी पवित्रता और निरंतरता की सोच ही गीता प्रेस द्वारा विधवा पुनर्विवाह के विरोध की बड़ी वजह थी।

पोद्दार का मानना था कि पुरुष और स्त्री के बीच विवाह का आधार आपसी प्रेम नहीं है। उनके अनुसार विवाह कामुक इच्छाओं को शांत करने और आत्म-नियंत्रण का माध्यम है ताकि मनुष्य त्याग की ओर बढ़ सके। उन्होंने लड़के और लड़कियों को अपने बड़े-बुजुर्ग की पसंद से विवाह करने और विवाह को धार्मिक अनुष्ठान समझ कर अपनी जाति और धर्म से बाहर विवाह न करने की सलाह दी। उनके अनुसार पंजीकृत विवाह नहीं होने चाहिए, और विवाह समारोहों में कम-से-कम खर्च होने चाहिए। उन्होंने नवविवाहित जोड़ों के हनीमून पर जाने का भी विरोध किया। ²⁹

पोद्दार की नज़र में लड़कियों के लिए वयः संधि में पहुँचने से पहले का समय विवाह के लिए उपयुक्त होता है। स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी में सावित्री कहती है कि लड़कियों के विवाह के लिए निर्धारित आयु बारह साल है लेकिन उपयुक्त वर नहीं मिलने की स्थिति में माता-पिता एक दो साल और रुक सकते हैं। सावित्री कहती है कि बारह साल से पहले किसी लड़की का विवाह करने से उसके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है जिससे उसकी मृत्यु तक हो सकती है। हालाँकि वह कहती है कि एक स्त्री को अपना जीवनसाथी चुनने का कुछ अधिकार होना चाहिए। 'सावित्री, रुक्मिणी और दमयंती आदि ने अपने-अपने पतियों को स्वयं चुना था यदि वे नितांत बालिका होतीं तो

ऐसा नहीं कर सकतीं।' ³⁰ यह राय गोयन्दका के उस विचार के विपरीत है जहाँ वे कहते हैं कि स्त्री को जीवनसाथी चयन का अधिकार नहीं होना चाहिए। पिता और भाई के चयन को स्वीकार करना चाहिए, जीवन भर पति के साथ वफ़ादार रहना चाहिए।

फिर भी पोद्दार ने उस समय सन् 1929 के बाल विवाह विरोधी क़ानून, जिसे शारदा एक्ट के रूप में जाना जाता है, का जमकर विरोध किया। इस क़ानून ने लड़कियों की शादी की उम्र 14 और लड़कों के लिए 18 निर्धारित की थी। उन्होंने कहा कि यह प्रस्तावित क़ानून हिन्दुओं से एक बड़े अधिकार को छीन लेगा और यह धर्मशास्त्रों में आस्था रखने वालों के लिए बड़ा झटका साबित होगा। पोद्दार ने सरकार की समझ पर सवाल खड़ा किया और कहा कि सामाजिक और धार्मिक सुधार के नाम पर इसने देश को बहुत नुकसान पहुंचाया है। ³¹

महिला यौनिकता की अपनी 'विकृत' और पक्षपातपूर्ण समझ को दर्शाते हुए वे कहते हैं कि मासिक धर्म की अवधि में स्त्री को यौन संबंध बनाने की अनियंत्रित इच्छा होती है और 'इसी स्वाभाविक वासना को केंद्रीभूत करने के लिए रजस्वला होने से पूर्व विवाह का विधान किया गया है, स्वामी के आश्रय से स्त्री की काम वासना इधर-उधर फैलकर दूषित नहीं हो पाती लेकिन विवाह न होने की स्थिति में वही वासना अवसर पाकर व्यभिचार के रूप में परिणत हो जाती है, जैसा कि आजकल यूरोप में हो रहा है।' ³²

'नारी बहुक्षेत्रव्यापी कुशल पुरुष का उत्पादन और निर्माण करने के लिए अपने एक विशिष्ट क्षेत्र में रहकर ही प्रकारांतर से सारे जगत की सेवा करती रहती है।' ³³

स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी में सावित्री का पहला कथन ह, 'स्त्री के लिए मुख्य धर्म केवल पति-परायणता ही है और सारे धर्म तो गौण हैं और उसका आचरण ही केवल पति की प्रसन्नता के लिए किया जाता है।' ³⁴ महिलाओं के लिए पति को परमेश्वर की संज्ञा देते हुए वह मनु के संदर्भ से कहती है कि यदि पति चरित्रहीन और निकम्मा भी हो, तब भी यह महिलाओं का दायित्व है कि वे उनकी पूजा करें क्योंकि पति के प्रति पूर्ण समर्पण ही स्वर्ग पहुँचने का निश्चित और तय मार्ग है।

पोद्दार का मानना था कि पति के प्रति निष्ठा महिलाओं को ऐसी शक्ति प्रदान करती है जिससे भगवान भी डरते हैं और जब कोई पुरुष पतिव्रता नारी का बलात्कार करता है तो उसका मरना तय है क्योंकि पतिव्रता नारी आग के समान होती है जो बलात्कारी को भूसे के समान जला कर राख कर देती है। ³⁵

पोद्दार की सरला उतनी अनुभवहीन स्त्री नहीं है, जितनी लगती है क्योंकि वह सवाल करती है कि क्या पति का कोई धर्म नहीं होता? महिला अत्याचार से जुड़े प्रसंगों का जिक्र करते हुए भोलेपन से पूछती है कि क्या शास्त्र अत्याचार की इजाज़त देता है। वह मनु की बातों को वहाँ रखते हुए कहती है कि जहाँ स्त्री का आदर होता है, वहीं भगवान बसते हैं। वह यहाँ कहती है कि जो पुरुष अपनी स्त्री से ठीक से पेश नहीं आता और उसे पर्याप्त भोजन नहीं देता वह अपने धर्मपालन से भाग रहा है। लेकिन

इसके बाद सावित्री सरला को उपदेश देती है कि वह बातचीत के मुख्य मुद्दे से भटक रही है क्योंकि यहाँ बात स्त्री धर्म की हो रही है: 'पुरुषों का धर्म भिन्न है यदि पुरुष अपने धर्म का आचरण नहीं करते तो स्त्रियाँ भी अपना धर्म छोड़ दें यह कोई अच्छी और न्यायसंगत दलील नहीं। हमारे लिए तो अपने धर्म का पालन करना आवश्यक है, हमारे पति का व्यवहार कैसा है या उसके आचरण किस प्रकार के हैं इस बात को देखना साध्वी स्त्री का कार्य नहीं। मेरा तो यह भी विश्वास है कि यदि स्त्री वास्तव में पति-परायणा हो तो वह अपने शुद्ध आचरण के बल से कुमार्ग में पड़े हुए पति को पुनः सन्मार्ग पर ला सकती है।' ³⁶

चर्चा में मुस्लिम पुरुषों के कामातुर चरित्र ³⁷ और हिन्दू महिलाओं पर इसके खतरे का भी जिक्र होता है। सरला पूछती है कि महिलाओं के लिए पीर और पैगम्बरों के पास जाना क्या सुझाव योग्य है! सावित्री का जवाब बिल्कुल स्पष्ट है: 'मुसलमानों के पीर पैगम्बरों को मानना तो महान अधर्म और पाप कार्य है। हिन्दुओं के इतने देवी-देवताओं के रहते हिन्दू धर्म का नाश करने वाले मुसलमानों के पीर पैगम्बरों को मानना और उनकी पूजा करना, उनकी क़ब्रों पर फूल, पैसे और बताशे चढ़ाना और फिर उनका जूठन प्रसाद मानकर लेना एक प्रकार से हिन्दू धर्म पर आघात ही करना है।' ³⁸

पोद्दार हिन्दू स्त्री और मुस्लिम पुरुष के बीच किसी भी प्रकार की बातचीत की निंदा करते हैं। यहाँ तक कि कुछ राज्यों में हिन्दू महिलाओं में काफ़ी लोकप्रिय लाख की बनी चूड़ियों का भी उन्होंने विरोध किया। लाख की चूड़ियों को मुस्लिम प्रतीक बना दिया गया क्योंकि यह मुख्य रूप से मुसलमान कलाकारों द्वारा बनाई जाती है। गीता प्रेस जैसे हिन्दू राष्ट्रीय संगठनों ने हिन्दू महिलाओं से लाख की चूड़ियाँ न पहनने की अपील की। मुसलमानों द्वारा चलाई जाने वाली घोड़ागाड़ी पर भी चढ़ने से मना किया। इसके अलावा भी मुस्लिम नौकर न रखने, मुसलमान वेश्यायों को नाचने के लिए न बुलाने और मुसलमानों से कोई घरेलू सामान नहीं खरीदने का भी आह्वान किया। ³⁹ ज़ाहिर तौर पर ऐसा इसलिए किया गया ताकि 'कामातुर मुसलमान पुरुषों' और हिन्दू महिलाओं के बीच किसी भी तरह के संपर्क को रोका जा सके। लेकिन यह संभव है कि ऐसा इसलिए किया गया हो ताकि मुसलमानों को आर्थिक रूप से क्षति पहुँचाई जाये।

पोद्दार ने लाख की चूड़ियों के प्रयोग को मना करते हुए इसे 'शुद्धता' से जोड़ कर भी प्रस्तुत किया। उनके अनुसार चूंकि लाख जानवरों से बनता है, इसलिए इसे पहनकर खाना बनाने से भोजन भी अशुद्ध हो जाता है। वे आगे कहते हैं कि लाख की चूड़ियों के बदले मुसलमानों को मिले पैसे कभी-कभी हिन्दू धर्म के खिलाफ़ भी प्रयोग में लाए जाते हैं। इसे पहनाने में महिलाओं को मुस्लिम पुरुषों को छूना पड़ता है। इसलिए हिन्दू स्त्रियों को स्वेदशी कांच की चूड़ियाँ ही पहननी चाहिए। ⁴⁰ यहाँ स्वदेशी शब्द का प्रयोग सोच-समझ कर किया गया ताकि मुसलमानों को 'अन्य' का ठप्पा लगा कर विदेशी करार दिया जा सके, जो हिन्दू महिलाओं की पवित्रता को दूषित करेंगे।

हिन्दू महिलाओं को अकेले किसी तीर्थ यात्रा के लिए जाने से मना किया गया और यदि वे जाती हैं तो उन्हें केवल अपने पति के साथ जाना चाहिए। *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी* में सावित्री कहती है—‘मंदिरों में भगवान की मूर्ति का दर्शन कर और भक्ति विह्वल पुजारियों के उपदेश पाकर लोग पापों से छूटते थे परंतु आज प्रायः इससे विपरीत दशा है। तीर्थों में चोर, लंपट, व्यभिचारी और लालचियों के सिवा ज्ञानी महात्मा बहुत कम देखने में आते हैं।’ ⁴¹ मंदिरों की सैर में समय नष्ट करने से बेहतर है कि स्त्री पति की पूजा करे क्योंकि पति से श्रेष्ठ कोई ईश्वर नहीं है। उसे हर दिन पति के चरण धोकर पीना चाहिए। यह पानी स्त्री के लिए पवित्र जल के समान है।

महिलाओं के लिए घरेलू संसार की उत्कृष्टता पर इतना अधिक ज़ोर देने के बाद, सरला महिलाओं के घरेलू उत्तरदायित्व के बारे में पूछती है। सावित्री महिलाओं की दिनचर्या और कामकाज की सूची बताती है। ⁴²

- ‘घर को बुहारना झाड़ना, लीपना पोतना उनको यथोचित स्थानों में रखना।
- आमदनी से कम खर्च करना, खर्च का हिसाब रखना।
- स्वास्थ्य रक्षा के नियमों को जानना।
- बच्चों का पालन करना और उन्हें अपने आचरण और विद्या से शिक्षा देना।
- घर का सारा काम अपने हाथों से करना।
- सारे सगे संबंधियों को जानना, उनसे यथायोग्य बर्ताव करना।
- आलस्य ना करना।
- धर्म को जानना, धर्म कार्यों में उत्साही रहना।
- दानशील होना।
- स्वयं वस्त्राभूषणों से भूषित होकर विनय से इंद्रिय दमन से, मधुर वाणी और प्रेम से पति की सेवा करना, पति को संतुष्ट रखना।
- जो कुछ प्राप्त हो उसी में संतोष करना, भोग की वस्तुओं के लिए लाओ-लाओ ना करना।
- मधुर वचन बोलना।

सावधान और शुद्ध रहना, पति के सारे कुटुंबियों से, उसके मित्रों और बांधवों से यथायोग्य प्रीति का व्यवहार करना और इन सारे कार्यों में केवल एक उद्देश्य रखना कि इनसे मेरे पति को प्रसन्नता हो, पति का यश, कीर्ति, वैभव, सुख और धर्म बढ़े, पति को भगवद् प्राप्त हो और अंत में भगवत् प्राप्ति हो।’ ⁴³

गोयन्दका ने अपनी सभी बातों का आधार *मनुस्मृति* को बनाया और ससुराल में महिलाओं के कर्तव्यों में कमोबेश उन्हीं बातों को दोहराया जिन्हें पोद्दार पहले ही बोल चुके थे, लेकिन उन्होंने महिलाओं के लिए पाबंदियों का स्तर और अधिक बढ़ा दिया। मनु ने जिन छह चीजों को महिलाओं के लिए निषिद्ध बताया था, गोयन्दका ने भी

महिलाओं को उनसे बचने की सलाह दी । तम्बाकू, भांग, बिना पति के कहीं रहना, खुले घूमना, दूसरों के साथ रहना और असमय सोना । होली पर्व के दौरान या पुरुषों के सामने महिलाओं को अश्लील गाने नहीं गाने चाहिए, हालाँकि भगवान की आराधना में उसे भजन गाने का पूरा अधिकार है । इसी तरह उसे अश्लील साहित्य का त्याग करना और रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों को पढ़ना चाहिए ।

एक विवाहित स्त्री को पति आज्ञा के बिना उपवास नहीं रखना चाहिए क्योंकि इसका पति के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । महिलाओं को दान देने और पति आज्ञा के बिना तीर्थाटन से रोका गया क्योंकि, ‘स्त्री के लिए पति ही तीर्थ है, पति ही व्रत, पति ही देवता एवं परमपूज्यनीय गुरु भी पति ही है ।’ ⁴⁴

गीता प्रेस के अश्लील गानों के प्रति आलोचनात्मक रुख का संबंध इस प्रकाशन समूह की मारवाड़ी पृष्ठभूमि से था । विवाह और अन्य उत्सवों पर मारवाड़ी महिलाओं द्वारा भेदे गायन की परंपरा की बड़े स्तर पर आलोचना की गई थी । चाँद के मारवाड़ी अंक में भी इसकी आलोचना थी । गीता प्रेस के आगमन से पहले भी इस तरह की परंपरा को खत्म करने की कई कोशिशें हुई थीं । ⁴⁵ कल्याण के पहले ही अंक में इस बात पर बल दिया गया था कि कैसे बिना अश्लीलता फैलाए होली पर्व मनाना चाहिए ।

गोयन्दका की नज़र में यदि स्त्रियाँ घरेलू कामकाज खुद से नहीं करती हैं तो वे बेशर्म और निक्कमी बन जाती हैं ।

पाक कला के बिना स्त्री निरादर का शिकार होती है, ऐसी स्त्री जो अच्छा खाना बनाती है परिवार से और खास कर पति से सम्मान पाती है । रसोई में काम करने वाली महिलाओं के लिए ये गुण ज़रूरी हैं कि वे स्वस्थ हों, उनमें कोई संक्रमण का रोग न हो, खाना बनाने का ज्ञान हो और खाने वाले के प्रति प्रेम हो । बड़े घरों की महिलाओं से कहा गया कि वे खाना बनाने के लिए किसी बाहरी को न रखें और खाना मौसम के अनुकूल बनाएँ । यह कहा गया कि महिलाओं को खाना बनाते समय घर के विवादास्पद मुद्दे नहीं उठाने चाहिए । ⁴⁶

पोद्दार की सावित्री चेतावनी देती है कि महिलाओं को ऐसी महिलाओं से दूर रहना चाहिए जिनका उन पर बुरा प्रभाव हो सकता है: जैसे ‘वेश्या, व्यभिचारिणी, पति की निंदा करने वाली, पति से बैर रखने वाली, दुष्ट स्वभाव वाली, कुटनी, चोर और जुआरन, टोना गंडा करने वाली, आखा देखने वाली, कर्कशा, निर्लज्जा, घमंडनीय, कटुवादिनी, बकवाद करने वाली, कामोन्मादिनी ।’ ⁴⁷

अपनी पहली सूची के अलावा सावित्री ने महिलाओं के लिए अतिरिक्त अन्य 64 कर्तव्य गिनवाए । इनमें ससुराल और सगे-संबंधियों के साथ बर्ताव से लेकर बच्चों के चरित्र निर्माण में स्त्री की भूमिका जैसे कर्तव्य शामिल हैं ⁴⁸। स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी बेटी को ससुराल वालों की सेवा खासकर पति सेवा का पाठ पढ़ाए और उसे पति की कभी आलोचना न करने का सबक दे: ‘यदि तुम्हारी लड़की तुम्हारे सामने अपने ससुराल वालों के दोष बताएगी तो तुम्हें दुख होगा और संभव है कि उनसे तुम्हारा

मनोमालिन्य भी हो जाये । अतएव यदि लड़की ससुराल वालों की निंदा करती हो तो वो तुम मत सुनो । वरन अपनी लड़की को समझा दो कि बेटी तुम्हारा कल्याण उनकी सेवा में ही है । यदि लड़की की शिकायत वास्तव में सुनने योग्य हो तो सुन लो परंतु उसका प्रतिकार ऐसे उपायों से करो जिससे दोनों तरफ़ का प्रेम बना रहे और लड़की का दुख भी दूर हो जाये ।’

लड़कों की पढ़ाई में भी स्त्री की बड़ी भूमिका है । स्त्रियों को सीधे संबोधित करते हुए उन्होंने लिखा, ‘तुम्हारी चेष्टा से बालक गुणवान और विद्वान होकर धर्म और देश की सेवा कर अपने कुल का नाम उज्ज्वल कर सकेगा और तुम्हारे बिगाड़ने से वह कुल का नाम डुबाकर जीवनभर स्वयं दुख भोगेगा और तुम्हें भी देगा ।’ आगे यहाँ सावित्री सरला से एक दिलचस्प बात कहती है, ‘यदि तुम्हारे बालक न हो या होकर मर जाये तो प्रारब्ध का दोष समझकर संतोष करो, आवश्यक मालूम हो तो वैद्य से चिकित्सा कराओ परंतु परमात्मा पर मन मैला मत करो और न गोद लेने की चेष्टा करो, यह मत समझो कि पुत्र हुए बिना अच्छी गति नहीं मिलती, मोक्ष भी बिना पुत्र मिल सकता है ।’

नारी अंक में आदर्श माता और इतिहास में ‘यशस्वी पुत्रों’ को जन्म देने वाली माताओं पर खूब लिखा गया, इनमें जीसस की माँ मेरी से लेकर नेपोलियन, जार्ज वाशिंगटन, लेनिन, मुसोलिनी, हिटलर, चियांग काई-शेक और भारत में जवाहरलाल नेहरू तथा श्यामाप्रसाद मुखर्जी तक की माताओं का जिक्र था ।

पोद्दार और गोयन्दका ने पत्नी द्वारा पति का अनुसरण करने की बात पर कड़ाई से ज़ोर दिया लेकिन एक मौके पर गोयन्दका ने सावधान भी किया कि स्त्री अपने पति कि ऐसी बात न माने जो उसे नरक के रास्ते पर ले जाये, ‘जैसे पति काम, क्रोध, लोभ, मोहवश चोरी या किसी के साथ व्यभिचार करने, किसी को विष पिलाने, जान से मारने, भ्रूण हत्या, गोहत्या आदि घोर पाप करने के लिए कहे तो नहीं करे ।’ ⁴⁹

कल्याण के नारी अंक में उन महिलाओं की सूची दी गई जिन्होंने नारी धर्म का पालन जीवन भर किया और उससे लाभान्वित हुई । इस सूची में आदर्श पत्नियों जैसे रमाबाई रानाडे, कुंदनदेवी मालवीय, कस्तूरबा गांधी, मैसूर राजघराने की महारानी लक्ष्मी, रामकृष्ण परमहंस की पत्नी शारदा देवी शामिल थीं । इन स्त्रियों को कल्याण ने ऐसी स्त्रियों के रूप में दर्शाया जिन्होंने धर्म का रास्ता अपनाया, अपने पति के प्रति समर्पित रहीं और भगवान के रास्ते से कभी अलग नहीं हुई । ⁵⁰

नारी अंक में आर्य समाज के नेता स्वामी श्रद्धानंद की कहानी के उदाहरण से बताया कि कैसे पत्नी की भक्ति एक पथभ्रष्ट पति को बदलने में मदद करती है । एक कोतवाल का बेटा मुंशीराम शराब, जुआ, मांसाहार जैसी आदतों का शिकार था । पश्चाताप के बावजूद और शिवदेवी से विवाह के बाद भी उसका जीवन पटरी पर नहीं आ सका । एक रात वह शराब के नशे में धुत्त एक वेश्या के पास से घर लौटा । शिवदेवी ने माँ की तरह उसकी देखभाल की और उसके होश में आने तक उसकी प्रतीक्षा की और उसके खाना खाने तक भूखी रही । जब मुंशीराम ने अपनी ग़लती स्वीकार की

और क्षमा मांगी तो शिवदेवी ने जवाब दिया कि एक पत्नी के रूप में यह उसका कर्तव्य था कि वह उनकी सेवा करे। इस घटना ने मुंशीराम को बदलकर रख दिया और वे स्वामी श्रद्धानंद बन गए। [51](#)

स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी के प्रकाशन के अस्सी साल बाद आज भी गीता प्रेस देश में सामाजिक और शैक्षणिक स्तर हुए बदलावों को नकराते हुए अच्छे व्यवहार की बिन मांगी सलाह दे रहा है। गीता प्रेस अब भी यह अपेक्षा करता है कि इन नुस्खों का प्रयोग महिलाओं को अपने पतियों को वश में रखने के लिए करना चाहिए। [52](#) इस कार्य के लिए महाभारत के सत्यभामा और द्रौपदी के वार्तालाप का संदर्भ दिया गया। वनवास के समय जब सत्यभामा जंगल में पांडवों से मिलने जाती हैं तो यह देख कर आश्चर्यचकित होती हैं कि कैसे पाँचों भाई द्रौपदी के पूरी तरह वश में हैं। द्रौपदी बताती है कि एक पत्नी खुद को भूल कर और कर्तव्यपरायण होकर अपने पति का दिल जीत सकती है और उसे नियंत्रण में रख सकती है। वह अपने द्वारा पाँच पतियों और सास के लिए किए जा रहे विशेष कार्यों का जिक्र करती है और बताती है कि कैसे वह अपनी सारी इच्छाओं और ज़रूरतों को दबा कर उनके प्रति समर्पित है।

गीता प्रेस के लिए स्त्रियों के कर्तव्यों के निर्वहन के लिए बनाए गए मानदंड अपरिवर्तनीय रहे हैं, हालाँकि स्त्रियों के अपने बच्चों के प्रति कर्तव्यों में कुछ बातें अवश्य जोड़ी गई हैं। भारतीय संस्कृति, सहिष्णुता, संतोष और स्वदेशी भाषा बोलने जैसे मूल्यों को बच्चों में समाहित करने की कर्तव्य शिक्षा तो वैसी ही रही है, लेकिन एक दिलचस्प ज़िम्मेदारी उसमें और जोड़ दी गई है। महिलाओं को कहा गया कि वे टीवी पर बच्चों द्वारा देखे जा रहे कार्यक्रमों पर नज़र रखें। गीता प्रेस की नज़र में टीवी लोगों में विवाद पैदा करता है और उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देता है। इसलिए पहले माँ को अपनी टीवी देखने की आदत पर नियंत्रण रखना चाहिए और उसके बाद बच्चों को ऐसे ही कार्यक्रमों को देखने की स्वीकृति देनी चाहिए जिनसे उनका चरित्र निर्माण हो सके। [53](#)

महिला सशक्तिकरण—नैतिक पतन का एक कारण

रामनाथ 'सुमन' एक प्रमुख हिन्दी लेखक थे। ये पोद्दार और गोयन्दका दोनों के मित्र थे जो इस बात को लेकर चिंतित थे कि भारत में गृहलक्ष्मियों की संख्या घट रही है। [54](#) महिला और गृहस्थ जीवन पर कई पुस्तक लिखने वाले रामनाथ 'सुमन' को इस बात पर कड़ी आपत्ति थी कि शिक्षा महिलाओं के लिए आज़ादी लाई है। [55](#) उनके अनुसार क्लब और सोसाइटियों की सदस्यता और नागरिक अधिकारों तथा आज़ादी से जुड़ी चर्चाओं में प्रतिभाग लेने के बावजूद शिक्षित स्त्रियाँ 'आज वह पहले से कहीं अधिक पुरुष के मनोरंजन की सामग्री बन गई हैं।' [56](#) वे कहते हैं कि 'आधुनिक सभ्यता के तीर्थस्थान' जहाँ महिलाओं की केंद्रीय भूमिका होती है इस बात का प्रमाण है कि उन्हें

वस्तु के रूप में देखा जाता है। उनकी नज़र में ये स्थान क्लब, सिनेमा, कॉलेज, ब्यूटी पार्लर, क्राफ्ट मेला और पार्टी आदि हैं। 'ऐसे स्थानों पर' सजी-संवरी महिलाएँ या तो पुरुषों पर निगाह रखती हैं या पुरुष उन पर निगाह रखते हैं। रामनाथ 'सुमन' ने कला प्रदर्शनियों को, जहाँ तीन आना प्रवेश शुल्क होता है, पुरुषों द्वारा महिलाओं को गंदी निगाह से देखने वाले स्थल से अधिक कुछ नहीं माना, भले ही पुरुष ऐसा दूर से करते हों। उनकी राय में ऐसी जगहों पर आंतरिक सौंदर्य और मज़बूत चरित्र वाली स्त्री बार-बार नहीं जाती।

शारीरिक सौंदर्य को ज़्यादा बढ़ावा देना और फिल्मों में फैशन जैसे पहलुओं के होने से समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। सुमन के अनुसार इससे विवाह के लिए पुरुष केवल सुंदर और फैशन वाली लड़कियों की चाह रखते हैं। उन्होंने समाचार-पत्रों में छपे वैवाहिक विज्ञापनों को इसका सबूत बताया। 'स्पष्ट है कि स्वतंत्र और सभ्य आधुनिकाओं ने पुरुष में रूप-लिप्सा की ज़बरदस्त प्यास पैदा कर दी है। आज एक कर्कशा, अवगुणों से पूर्ण, आलसी पर रूपवती कन्या के सरलतापूर्वक विवाहित हो जाने की उस कन्या की अपेक्षा कहीं अधिक संभावना है जो स्वस्थ है, परिश्रमी है, सुशीला है पर रूपवती नहीं।' सुमन इस बात पर दुःख जताते हैं कि आज अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाली शिक्षित महिलाओं के कारण ही 'गृहलक्ष्मियों का लोप होता जा रहा है इसलिए गृहों का भी लोप होता जा रहा है।'

सुमन द्वारा दिए गए 'आधुनिक सभ्यता के तीर्थस्थान' में से पोद्दार सबसे ज़्यादा नापसंद सिनेमा को करते थे। उनका गुस्सा सिनेमा की आंतरिक प्रवृत्ति से था। भले ही सिनेमा की पटकथा अच्छी और शिक्षा देने वाली हो फिर भी फिल्मों में शारीरिक सुंदरता की बात और स्त्री-पुरुष के निकट आने की संभावना होती है। उनके अनुसार जब तक पुरुष स्त्री की भूमिका में होता है तब तक यह सही है लेकिन जब स्त्री ही अभिनय शुरू कर देती है तब समस्या शुरू होती है। 'पुरुषपात्र कितने ही सचरित्र हों नित्य के संग से उनके द्वारा प्रमाद होने की संभावना है ही। नर और नारी के शरीरों की प्रकृति ने रचना ही ऐसी की है कि उनमें परस्पर शारीरिक मिलन की इच्छा उत्पन्न हो ही जाती है।' ⁵⁷ उनके मत में आधुनिक फ़िल्मों में हर स्तर पर अश्लील गाने, अश्लील चुटकले, अर्धनग्न नाच, अनैतिक क्रिस्से और अभिनेत्री के आवरण और हाव-भाव को दिखाया जाता है। पोद्दार को इस बात की चिंता थी कि सिनेमा अपने शुरुआती मिशन वाले भाव से आगे बढ़कर पैसा बनाने का ज़रिया बन गया है जहाँ बड़े कारोबारी करोड़ों रुपए लगाते हैं। स्त्रियाँ फ़िल्मों में आ रही हैं, यहाँ तक कि पढ़ी-लिखी महिलाएँ भी सिनेमा में काम करने के लिए आकर्षित हो रही हैं। और अपनी पारिवारिक मर्यादा त्यागने को तैयार हैं।

पोद्दार की नज़र में पतन का बीज यूरोप में बोया गया था जहाँ 'स्त्री किसी के साथ हंसे खेले घूमने जाये, सिनेमा में जाये, शराब पिए, कुछ भी करे, पति, पिता-माता उससे कुछ कह ही नहीं सकते क्योंकि यही तो सभ्यता का चिह्न है। हा! भारत की सती

शिरोमणि देवी! तू आज अपने पवित्र लक्ष्य से भ्रष्ट होकर किस नरक कुंड की ओर अग्रसर हो रही है!’ ⁵⁸

स्त्रियों की शारीरिक दुर्बलता को लेकर अपने घिसे-पिटे तर्क देते हुए पोद्दार कहते हैं कि यहाँ तक कि पश्चिमी देशों जहाँ स्त्री ज़्यादा स्वतंत्र हैं लेकिन वे भी पुरुषों की तरह उद्यम नहीं कर सकतीं। ऐसा इसलिए है क्योंकि उनके पास मातृत्व होता है और उसे बच्चों का ख्याल रखना पड़ता है। पोद्दार स्त्रियों को उनकी दुर्बलता पर सांत्वना देते हैं कहते हैं, ‘इस दैहिक परतंत्रता में भी वह हृदय से स्वतंत्र है; क्योंकि तपस्या, त्याग, धैर्य, सहिष्णुता, सेवा आदि सद्गुण सत-स्त्री की सेवा में सदा लगे ही रहे हैं। पुरुष में इन गुणों को लाना पड़ता है सो भी पूरे नहीं आते।’ ⁵⁹

कल्याण के नारी अंक में विभिन्न लोगों के लेखों से लघु अंशों को लेकर प्रकाशित किया गया। इनमें प्रसिद्ध प्रगतिशील लेखक प्रेमचंद का एक लेख था। इसमें उन्होंने लिखा था, ‘बहनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं, जहाँ नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से गिरकर विलास की वस्तु बन गई हैं।’ ⁶⁰ इस धिक्कार के साथ जर्मनी की स्त्रियों से हिटलर की अपील भी दोहराई। उन्होंने लिखा ‘स्त्रियों के बाहर के कार्यों में लगे रहने से काम नहीं चलेगा। हमारे देश की प्रत्येक महिला को गृहणी और जननी बनना पड़ेगा।’ ⁶¹ कर्नल जेम्स टॉड और विलियम क्रुक की *एनल्स एंड एंटीक्विटीज ऑफ़ राजस्थान* के एक अंश को भी शामिल किया गया था जिसमें अपनी इच्छा से घरों में रुकने वाली राजपूत महिलाओं की स्वतंत्रता और प्रसन्नता की तारीफ़ की गई थी। ⁶²

पोद्दार ने ब्रिटिश संसद में लेबर पार्टी के एक सांसद द्वारा दिए गए भाषण का जिक्र करते हुए कहा कि बीस साल से कम उम्र की 40 प्रतिशत से ज़्यादा लड़कियाँ गर्भवती हो जाती हैं और विवाहित महिलाओं में 25 प्रतिशत का पहला बच्चा अवैध होता है। ⁶³ यदि पोद्दार की मानें तो ब्रिटिश समाज ने इतना बड़ा नैतिक पतन पहले कभी नहीं देखा था। ब्रिटेन को पूरे पश्चिम का प्रतिनिधि मानते हुए पोद्दार कहते हैं कि पूरा पाश्चात्य पारिवारिक जीवन बर्बाद हो चुका है: ‘वहाँ स्त्री अब घर की रानी नहीं है, घर में उसका शासन नहीं चलता, गृहस्थ जीवन का परम-शोभनीय आदर्श उसकी कल्पना से बाहर की वस्तु हो गया है...व्यक्तिगत स्वातंत्र्य और स्वतंत्र प्रेम के मोह में वहाँ की नारी आज इतनी अधिक पराधीन हो गई है कि उसे दर-दर भटककर विभिन्न पुरुषों की ठोकरें खानी पड़ती हैं, जगह-जगह प्रेम बेचना पड़ता है, नौकरी के लिए नए-नए मालिकों के दरवाज़े खटखटाने पड़ते हैं और ‘नो वैकेंसी’ की सूचना पढ़कर निराश लौटना पड़ता है। कैसी स्वतंत्रता है और कैसा सुख है? और खेद तथा आश्चर्य है कि आज भारतीय महिलाएँ भी इसी स्वतंत्रता और सुख की ओर मोहवश अग्रसर हो रही हैं।’

पहले की तरह पोद्दार ने इसके लिए भी शिक्षा व्यवस्था को ज़िम्मेदार ठहराया जिसने महिलाओं को शिक्षित तो किया पर उन्हें पूर्ण शिक्षा देने और उनके मानसिक स्तर को ऊँचा उठाने में विफल रहा। उनकी नज़र में वास्तविक शिक्षा एक मनुष्य तैयार

करती है जो अपने कर्तव्यों का पालन धर्म के आधार पर करे। यहाँ पोद्दार का आशय नारी धर्म से था। उनके अनुसार, 'यूरोप की स्त्री शिक्षा ने यह काम नहीं किया। स्त्रियों को उनके नैसर्गिक धर्म के अनुकूल शिक्षा मिलती तो बड़ा लाभ होता, प्रकृति के विरुद्ध शिक्षा से इस प्रकार बड़ी हानि हुई है!'

एक अज्ञात स्रोत से चौंकाने वाले तथ्यों का हवाला देते हुए पोद्दार कहते हैं कि अमेरिका में 70 प्रतिशत महिलाएँ घरेलू कार्य करने में अक्षम पाई गई हैं, साथ ही 60 प्रतिशत अविवाहित हैं, और विवाह की उम्र पार कर चुकी हैं। विवाह न होने के कारण महिलाएँ अपनी मनमर्जी की करती हैं और गैर-सैद्धांतिक जीवन जीते हुए अय्याशी में संलिप्त हैं। 'अविवाहित माताओं की संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है, घर का सुख किसी को नहीं। वहाँ (यूरोप) की शिक्षिता स्त्रियों में लगभग 50% को कुमारी रहना पड़ता है। यही क्या बहुमुखी विकास है?'

पोद्दार के अनुसार एक और चिंतनीय बात यह थी कि स्त्री और पुरुष के बीच का विभेद खत्म होता जा रहा है। महिलाएँ बड़े स्तर पर शारीरिक व्यायाम कर रही हैं, जिससे उनके मातृत्व का लोप हो रहा है। वहीं दूसरी ओर पुरुषों में महिलाओं की तरह सजने-संवरने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। महिलाओं का शरीर बच्चों को जन्म देने और हिन्दू समाज और राष्ट्र के लिए यशस्वी पुत्रों के पालन पोषण ⁶⁴ हेतु निर्धारित नियमों के अनुकूल अनुशासित होना चाहिए। उनसे यह उम्मीद नहीं की जाती कि वे पुरुषोचित स्वभाव को अंगीकार कर अपनी प्राकृतिक ज़िम्मेदारियों से बचें। हालाँकि पोद्दार और आरएसएस इस विचार का समर्थन करते हैं कि स्त्री को सार्वजनिक जीवन में शान्तिवादी नहीं होना चाहिए। ⁶⁵ पोद्दार कहते हैं कि पति और पुत्र को कष्ट पहुँचाने वाले को सज़ा देने के लिए स्त्री को दुर्गा बनना चाहिए। हिन्दू देवियों—काली और दुर्गा को माता के रूप में पूजा जाता है। ⁶⁶

गीता प्रेस के अनुसार हिन्दू विवाह पद्धति की धार्मिक पवित्रता को सबसे ज़्यादा खतरा तलाक़ से था। हालाँकि 'धर्मशास्त्रों ने पहली पत्नी के जीवनकाल में पति को पूरी उदारता से दूसरे विवाह की छूट दी है', वहीं स्त्री को 'तलाक़ की सुविधा' देने से मना किया है, 'भले ही उसके पति ने उसे पूरी तरह से छोड़ दिया हो।' ⁶⁷ लिविया होल्डेन तर्क करती हैं कि 'दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसा लगता है कि विवाह की संबंध-विच्छेदता को इसीलिए नहीं बनाए रखा गया ताकि उत्तरोत्तर में विवाह न हो बल्कि ऐसा इसलिए किया गया ताकि अवधारणात्मक तौर पर स्त्रियों की ओर से हिन्दू तलाक़ की पहल ⁶⁸ को रोका जा सके।

गीता प्रेस को अस्तित्व में आए बमुश्किल चार साल ही हुए होंगे जब सन् 1927 में पूना में ऑल इंडिया वुमन्स कांग्रेस (एआईडब्ल्यूसी) की शुरुआत हुई। अगले कुछ सालों में एआईडब्ल्यूसी महिला अधिकारों की ध्वजवाहक बन गई। सन् 1930 के मध्य एआईडब्ल्यूसी ने सरकार को 'महिलाओं की क़ानूनी अक्षमता को दूर करने के उद्देश्य से 'अखिल भारतीय कमीशन' की याचिका दी। ⁶⁹ एआईडब्ल्यूसी की विधि सचिव

रेणुका रे द्वारा लिखित 'भारतीय महिलाओं की क़ानूनी अक्षमता: जांच समिति के लिए अनुनय' के नाम से लिखे एक पर्चे का लक्ष्य महिलाओं से जुड़े विस्तृत क़ानूनी सुधारों, विशेष रूप से निजी और पारिवारिक क़ानूनों में सुधार लाना था। इसके बाद हिन्दू महिला को तलाक़ के अधिकार का अधिनियम और मुस्लिम महिलाओं को तलाक़ के अधिकार का नियम समेत कई क़ानून पास हुए।

आधे-अधूरे ढंग से पास होने और शायद ही कभी लागू होने वाले सुधारों की यह लहर गीता प्रेस को व्याकुल करने के लिए पर्याप्त थी। कल्याण ने एक स्नातक महिला रूपरानी 'श्यामा' का लेख छापा जिसने तलाक़ का उपहास करते हुए उसे सभ्य समाज पर एक कलंक बताया। ⁷⁰ श्यामा ने तलाक़ के संबंध में भारतीय पक्ष को सामने रखा। उन्होंने सती और जौहर की इस धरती पर तलाक़ को महिलाओं के लिए अपमान कह कर संबोधित किया। भारत में विवाह कोई अनुबंध नहीं था बल्कि दो शरीरों व आत्माओं का मिलन था जिसमें महिला पूरी तरह से पति के साथ एकाकार हो जाती है, और अपनी परवाह किए बिना उसके साथ हो जाती है। जो स्त्री अपने पति से तलाक़ लेती है वह या तो शैतान की पैदाइश है या पशु की। श्यामा ने कहा कि हिन्दू विवाह में स्त्री पति की कामवासना को शांत करने वाली वस्तु मात्र नहीं है बल्कि उसकी निःस्वार्थ सेवा करने हेतु है। ऐसा सभ्यता के आरंभिक काल से चलता आ रहा है। दर्द, अपमान और दमन से गुज़रने वाली अबला स्त्री के लिए माँ बनने की खुशी उसके सभी दर्दों को कम करने वाला सबसे बड़ा उपहार था। यह कहना नहीं पड़ेगा कि श्यामा ने माँ बनने की इस स्वर्गिक आनंद को केवल (बालक) पुत्र के जन्म से जोड़ कर देखा। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि समाज में स्त्री की भूमिका धन और पहचान से रहित निःस्वार्थ सेवा करने वाली स्वयंसेविका की थी।

श्यामा ने मारपीट, गाली-गलौज करने तथा अपने पति के पथभ्रष्ट होने के आधार पर तलाक़ मांगने वाली और पवित्र महिलाओं में अंतर किया। श्यामा ने कहा कि यूरोप और अमेरिका के अख़बार तलाक़ की ख़बरों से भरे पड़े हैं, क्योंकि उन लोगों की दुनिया में विवाह एक अनुबंध है। 'जब तक हमें ठीक खाने-पीने, पहनने और ओढ़ने को मिलेगा तथा स्वेच्छाविहार करने को मिलेगा तब तक हम तुम्हारी हैं, जिस दिन स्वच्छंदता में बाधा पड़ेगी उसी दिन हमारा तुम्हारा कोई संबंध नहीं। ऐसे विचार वाली चंचला, बहुमना, स्वेच्छाचारिणी स्त्रियाँ अपने देश और समाज के लिए कलंक हैं। तलाक़प्रेमी स्त्रियाँ इधर बिना पेंदी के लोटे की तरह ढुलकती फिरती हैं और इनका अंत यही होता है कि ऐसी स्त्रियाँ या तो आत्मघात कर लेती हैं या फिर पश्चाताप करती हैं।' उन्होंने लिखा तलाक़, 'एक निंदनीय और घृणित कार्य है जो उन महिलाओं को पसंद है जो एक पुरुष से दूसरे पुरुष के पास जाना चाहती हैं और अपने ज़रा-से सुख के लिए अपने सतीत्व को कामी पशुओं की भोग सामग्री बनाकर बाज़ार में दर-दर ग्राहक ढूँढ़ती फिरती रहती हैं।'

उन्होंने 'पत्नी झगड़ालू है', 'असंवेदनशील है और जीवन को नरक बनाए हुए है' जैसे तर्क देकर अपनी पत्नी से तलाक़ चाहने वाले पुरुषों की भी भर्त्सना की। उन्होंने पुरुषों से कहा कि अगर वे जीवनसाथी के रूप में सीता को चाहते हैं तो खुद भी श्रीराम जैसे बनें। श्यामा ने कहा कि अपनी पत्नियों से संवेदनशीलता के साथ पेश आएँ और सही राह दिखाएँ। लेकिन पुरुषों को यह सलाह संक्षेप में दी गई, जबकि तलाक़ के मामले में खलनायक की भूमिका में स्त्री को बताया गया।

यह 1940 के दशक के बाद के वर्षों में नेहरू द्वारा हिन्दू कोड बिल पर आगे क़दम बढ़ाने वाला समय था, जब पोद्दार ने तलाक़ की सबसे ज़्यादा आलोचना की। इस दौर में अंग्रेज़ों के शासनकाल की तरह राष्ट्रवाद के नाम पर भीड़ जुटा कर विरोध करते हुए सरकार पर दबाव बनाना आसान नहीं था। अतः शुरुआती चरण में मोटे तौर पर धर्म ग्रंथों की बुनियाद पर खड़ा पोद्दार का तलाक़ विरोधी तर्क अब विस्तार लेकर पाश्चात्य नज़रिए से तलाक़ को शैतानी मानने तक जा पहुँचा। उन्होंने यूरोप में बढ़ते तलाक़ पर पोप की चिंता का उल्लेख किया। किसी एम मैकिन्टॉश नामक महिला ने लिखा कि स्त्री-पुरुष का जीवन विवाह और घर पर निर्भर है और तलाक़ नाम का शैतान दोनों को ही समाप्त कर देगा। किसी डॉक्टर डेनेवल ने कहा कि विवाह मतलब है ज़िम्मेदारी और तलाक़ नाम की कोई छोटी खिड़की खुली छोड़ देने का अर्थ हुआ इस ज़िम्मेदारी से पलायन या बच निकलने की कोशिशों को आम कर देना। ⁷¹

पोद्दार ने माना कि पुरुष दमन के निशाने पर स्त्रियाँ थीं, चाहे वे पत्नियाँ हों या विधवा बहनें। लेकिन उन्होंने यह कहने में भी देरी नहीं की कि ऐसे मामले बहुत कम होते हैं। यह सिर्फ़ इसलिए है क्योंकि कुछ व्यक्तियों या परिवारों ने अपने आदर्श खो दिए और महिलाओं का सम्मान करना बंद कर दिया है। लेकिन इसके लिए राज्य को नए क़ानून लाने की आवश्यकता नहीं है।

अप्रत्यक्ष धमकी देते हुए पोद्दार ने तर्क दिया कि तलाक़ क़ानून को लाने पर पुरुषों से ज़्यादा क्षति महिलाओं की ही होने वाली है। अधिक-से-अधिक पुरुष तलाक़ चाहेंगे क्योंकि महिलाओं की तुलना में पुरुषों के नैतिक पतन के आसार ज़्यादा हैं। उन्होंने महिलाओं से ही इस विधेयक का विरोध करने को कहा और शिक्षित महिलाओं द्वारा इसे प्रगतिशील संकेत मानने पर अफ़सोस ज़ाहिर किया।

वैधव्य

दिसंबर 1949 के *कल्याण* अंक में पोद्दार के स्तंभ 'काम के पत्र' में धनी परिवार की एक विधवा का पत्र छपा। ⁷² बीस वर्ष की आयु में एक संतान की माँ बन चुकी इस विधवा पर इसके घरवालों की ओर से पुनर्विवाह का दबाव बनाया जा रहा था, जिसका वह विरोध कर रही थी। उन्होंने पोद्दार को पत्र लिख कर सहायता मांगी। उसने यह जानना चाहा कि विधवा पुनर्विवाह पर शास्त्रों में क्या कहा गया है?

पत्र के जवाब में पोद्दार ने महिला के ‘उच्च विचारों’ की सराहना करते हुए कहा कि उसका विरोध यह बताता है कि वह सीता-सावित्री की परंपरा में जन्मी है। पोद्दार ने उसे परिवार की ज़िद के सामने हार नहीं मानने को कहा। पोद्दार ने कहा कि इस जन्म में उसका वैधव्य वास्तव में उसके पिछले जन्म के पापों का फल है, और सद्कर्म व ईश्वर आराधना ही इससे बाहर आने का एकमात्र साधन है।

उसका पुनर्विवाह चाहने वालों की पोद्दार ने आलोचना की। और कहा कि अपने स्वार्थ हेतु वे बड़े पाप को अंजाम देने की ओर बढ़ रहे हैं। *मनुस्मृति* के हवाले से उन्होंने कहा कि विधवा पुनर्विवाह का मतलब उसे नर्क में झोंक देना है। पोद्दार ने पुनर्विवाह की स्थिति में विधवा का ध्यान उसके बेटे के भविष्य की ओर खींचा, ‘जब वो बड़ा होगा समाज में आदरणीय व्यक्ति बनेगा तब उसकी माता का कलंक उसे सब प्रकार के सम्मान से वंचित कर देगा।’ पोद्दार का उत्तर हिन्दू विवाह से जुड़े उस व्यापक तर्क के आधार पर था जहाँ कहा जाता है कि हिन्दू विवाह पति की मृत्यु के साथ खत्म नहीं होता, और स्त्री को विधवा होने के बाद भी पतिव्रता नारी बने रहना होता है।

सन् 1949 में इस विधवा को दी गई सलाह का अधिकांश हिस्सा उनकी शुरुआती स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी जैसा था। वहाँ सावित्री विधवाओं की सराहना करते हुए कहती है कि इनका त्याग ही हिन्दू धर्म के लिए बहादुरी का प्रमाण है। वह पूछती है कि अगर ये पूजनीय नहीं हैं तो और कौन हैं? सावित्री ने विधवा धर्म पालन की असफलता के तीन कारण बताए—धार्मिक शिक्षा में कमी, विधवाओं के साथ होने वाला बुरा व्यवहार और कामी पुरुषों की नीयत। सावित्री ने सलाह दी कि लड़कियों का विवाह 18 साल से नीचे के लड़कों से और 35 साल से ज़्यादा की अवस्था वाले पुरुषों से नहीं किया जाना चाहिए। इससे विधवा दर में कमी आएगी। और उसके बाद सावित्री ने विधवा धर्म के बारह नियम बताए। ⁷³

- 1) सती हो जाये। आजकल राज्य के क़ानून के अनुसार सती होना जाना नियम विरुद्ध है और वास्तव में जबरदस्ती पति की लाश के साथ जल मरने का नाम ही सती होना नहीं है। अपने मन को मारकर और पति के चरणों में चित्त लगा कर पति के भी पति परमात्मा का भजन करना ही यथार्थ में सती होना है। इसीलिए विधवाओं को चाहिए कि मन को जीतकर एकमात्र परमात्मा को ही अपना पति मानकर प्रेमपूर्वक उसी का भजन करें—यही सती होना है।
- 2) अपना समय परमात्मा की आराधना में लगावे, संसार के सुखभोगों से मन हटा ले, गीता और रामायणादि ज्ञान, वैराग्य, भक्ति को उत्पन्न करने वाले ग्रन्थों का विचार करे, सदा साधु स्वभाव रहे।
- 3) उत्सव और मंगलादि कार्यों में शामिल न हो। सधवा और युवती स्त्रियों की बातें न देखे और न सुने; आभूषण और श्रृंगार त्याग दे; बाल संवारना, पान खाना और सुगन्धित पदार्थों का सेवन करना छोड़ दे।

- 4) जहाँ तक हो सके, धरती पर सोवे, कोमल बिछौना न बिछावे, एक समय भोजन करे, उत्तेजक पदार्थ न खाये, महीन, रेशमी और फैशनवाले वस्त्रों को त्याग दे; जहाँ तक हो सके पवित्र, मोटे हाथ से बुने हुए देशी वस्त्र काम में लावे; यथासंभव रंगीन वस्त्र न बरते ।
- 5) आठ प्रकार के मैथुनों का सर्वथा त्याग कर दे । (जिसमें पुरुष दर्शन, पुरुष या स्त्री को छूना, अकेले स्थान पर किसी के साहचर्य का आनंद लेना, दूसरों से बातें करना, किसी पुरुष या स्त्री के बारे में पढ़ना या बातें करना, सह-क्रीड़ा, किसी पुरुष या स्त्री के बारे में सोचना और अंततः संभोग करना शामिल हैं ।)
- 6) निर्जल और निराहारव्रत करे, स्वादिष्ट और बलकारक भोजन जान बूझकर कभी न करे ।
- 7) निकम्मी कभी न रहे, चक्की पीसना और चरखा कातना आदि शरीर को न बढ़ाने वाले कार्य करती रहे, घर के और सारे कार्य भी यथासाध्य अपने हाथों से ही करे ।
- 8) धर्म और नीति के उपदेश सुने और सुनावे; कुसंग सर्वथा त्याग दे ।
- 9) सास, श्वसुर, जेठ, देवर, पिता, माता, भाई या अन्य अपने रक्षक (जो कि दूषित आचरणों वाला न हो) के अधीन रहे; रक्षक की आज्ञा बिना कुछ भी न करे ।
- 10) बकवाद और हठ न करे, क्रोध न करे, दीन होकर संतोष से रहे, धर्म में निष्ठा रखे और चित्त को कभी चंचल न होने दे ।
- 11) युवती स्त्रियों में न बैठे; सदा बड़ी-बूढ़ियों के तथा धर्म का आचरण करने वाली स्त्रियों के पास बैठे; बुरे आचरण वाली स्त्रियों के पास बैठना तो दूर रहा, वरन जहाँ तक हो सके उनके दर्शन भी न करे ।
- 12) यदि अपने पास पैसे हों तो उन्हें गरीब और अनाथ बच्चे तथा विधवाओं की सहायता में लगावे, पैसे न हों तो शारीरिक परिश्रम से जो कुछ आमदनी हो उसी में अपना निर्वाह करे, जहाँ तक हो सके किसी से कुछ भी न मांगे ।

आगे गोयन्दका ने विधवाओं को सलाह दी कि उन्हें दिन में एक बार सादा शाकाहारी भोजन करना चाहिए । दूध, दही, चीनी, मिर्च, घी नहीं खाने चाहिए । ये यौन इच्छाओं को तीव्र करते हैं । विधवाओं के विवाह को लेकर उनका तर्क मनु के निर्देश अनुसार था । उन्होंने तर्क दिया कि एक स्त्री का कन्यादान एक ही बार किया जा सकता है, यानी उसके पिता एक ही विवाह का खर्च उठा सकते हैं । ⁷⁴ यह काफ़ी दिलचस्प है कि धर्मशास्त्रों को उद्धृत करते हुए भी गोयन्दका विधवा पुनर्विवाह पर होने वाले खर्च के असर को पुरुष विरासत पर पड़ता हुआ देखते हैं । यह बात 1950 के दशक के आरंभ में नेहरू के हिन्दू कोड बिल के विरोध प्रदर्शन के समय साफ़-साफ़ देखी जा सकती थी ।

समय बीतने के साथ विधवाओं पर भांति-भांति के नए पहरे भी लगाए गए । जैसे फ़िल्म नाटक न देखने के निर्देश दिए गए और कहा गया कि, वे ‘गंदे चित्रों और पुस्तकों का अवलोकन ना करें ।’ ⁷⁵ विधवाओं पर लगी पुरानी पाबंदियाँ और उभर कर सामने आने लगीं, जैसे उन्हें अलग-थलग करना । विधवाओं को अकेले सोने या किसी दूसरी स्त्री या बच्चे के साथ सोने को कहा गया । चूंकि विधवाएँ लड़कियों और विवाहित महिलाओं से अधिक कमज़ोर होती थीं इसलिए उन्हें बाक़ी सबके मुकाबले पुरुषों से ज़्यादा सुरक्षित दूरी बनाने के लिए कहा गया । इनमें विशेष रूप से भिक्षुकों और साधुओं से घृणा जताई गई थी, हालाँकि पोद्दार ‘शराबी मुसलमानों का ज़िक्र करना नहीं भूले जो अक्सर वेश्या-गमन किया करते थे ।’ ⁷⁶

स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी में पोद्दार ने सती प्रथा के विषय में सापेक्षिक चुप्पी बरती । हालाँकि उन्होंने इसके क़ानूनन प्रतिबंधित होने का ज़िक्र किया । लेकिन सन् 1948 के नारी अंक में उन्होंने सती की शक्ति का गुणगान किया । ⁷⁷ पोद्दार का ‘वैज्ञानिक’ वर्णन यह था कि अग्नि, विक्षिप्त विधवा के बाजुओं और हृदय से पैदा होती है । पोद्दार ने समझाया कि अग्नि, मानव शरीर सहित हर जगह होती है, और यह घर्षण से पैदा होती है । जैसे कि लकड़ी या पत्थर का घर्षण । उन्होंने एक उदाहरण देकर समझाया कि किस तरह उच्च ताप का ज्वर जान ले लेता है । कभी पढ़ी गई एक पारसी पत्रिका के हवाले से पोद्दार ने कहा कि शरीर की नलिकाविहीन ग्रंथियाँ मनुष्य की शारीरिक संरचना और चरित्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं । उन्होंने तर्क दिया कि जैसे मानव चरित्र पर इन ग्रंथियों का महत्वपूर्ण असर होता है वैसे ही चरित्र भी इन पर असर डालता है । इसे ‘विज्ञान’ के रास्ते लाते हुए पोद्दार ने बताया कि इसी तरह सच्चे शरीर, मन और मस्तिष्क वाली, केवल अपने पति के प्रेम पर जीवित रहने वाली, अपने हृदय में पति के सिवा किसी दूसरे पुरुष को स्थान न देने वाली, निःस्वार्थ भाव से जीवन जीने वाली सच्ची सती के शरीर पर इन ग्रंथियों का अनुमान लगाना मुश्किल है । ‘यदि किसी सती के पति वियोग के समय उसके मन की स्थिति ऐसी असाधारण हो जाये जिससे उसके थायरॉयड ग्रंथि पर सीधा प्रभाव पड़े और वह उसकी गर्मी को एकदम बढ़ाकर शरीर से अग्नि पैदा कर दे, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।’

अपनी इस वैज्ञानिक बात को आगे बढ़ाते हुए पोद्दार ने थायरॉयड ग्रंथि पर ध्यान केंद्रित किया । उन्होंने कहा कि इस ग्रंथि का काम मनुष्य के शरीर में प्रेम व शारीरिक इच्छाओं को मज़बूत करना है । उन्होंने डॉ लुईस बर्मन के काम को उद्धृत करते हुए कहा, ‘मानव शरीर में मांसपेशियों के जलते रहने (गर्मी प्राप्त करने) का आधार शरीर की थायरॉयड नामक गांठ से बहने वाले रस के परिणाम पर-अवलंबित है । यह निश्चित है कि यदि इस रस की क्रिया को रोकने के लिए और आवश्यकता होने पर विशेष कम करने के लिए कोई साधन ना हों तो मांसपेशियां बिल्कुल जलकर भस्म हो जाये ।’ पोद्दार ने इस पर आधारित बात को आगे पल्लवित कर कहा, ऐसी स्थिति में जहाँ पति के लिए शोकाकुल महिला तीव्रता की अधिकता को पार करते हुए थायरॉयड ग्रंथि को

प्रभावित करने की स्थिति तक पहुँच गई हो तो यह बहुत संभव है कि उसका शरीर आग पकड़ ले। इस तरह, 'सती होना सर्वथा स्वाभाविक बात है, किसी बाहरी प्रेरणा, चेष्टा या बलात्कार से ऐसा नहीं हुआ जाता।'।

इस बात को ख्याल में रखते हुए कि सभी महिलाएँ सती नहीं होतीं, पोद्दार ने दुःख और तकलीफ़ झेलने वाली महिलाओं की भी सराहना की। उन्होंने कहा कि महिलाओं के लिए ब्रह्मचर्य धारण करना, बच्चों का ख्याल रखना और 'परलोक में' अपने पति को सुख पहुँचाना आसान काम नहीं है।

सती प्रथा और सती हो चुकी स्त्रियों का गुणगान करते हुए *नारी अंक* ने रामरखी पर लेखन किया। रामरखी 23 दिसंबर 1912 को चांदनी चौक स्थित वायसराय लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने वाले तीन व्यक्तियों में से एक बालमुकुंद की पत्नी थीं। बाद में तीनों को ही फाँसी दी गई। *नारी अंक* में कहा गया कि बम फेंकने की घटना से एक साल पहले ही उनका विवाह हुआ था और उनके बीच अभी तक विवाह शारीरिक स्तर पर कायम भी नहीं हुआ था। यह कहा गया कि जब रामरखी को पता चला कि बालमुकुंद को जेल की सज़ा हुई है तो उन्होंने भी अपने लिए घर पर ही जेल जैसी स्थिति बना ली। जिस दिन बालमुकुंद को फाँसी हुई, उस दिन से रामरखी ने अन्न-जल त्याग दिया और ऐसा करने के परिणामस्वरूप अठारहवें दिन उनकी मृत्यु हो गई। ⁷⁸ *नारी अंक* में मिथकों, लोककथाओं, इतिहास, सती-पार्वती, अनुसूया, संयोगिता, पद्मिनी और लक्ष्मीबाई जैसों का उदाहरण देते हुए सौ से ज़्यादा सतियों को अंक में स्थान दिया गया।

महिला स्वच्छता, स्वास्थ्य और यौनिकता

महिला स्वच्छता और स्वास्थ्य पर गीता प्रेस का अत्यधिक बल हिन्दू व्यवस्था की 'शुचिता' से जुड़ा है। स्त्री को मूलतः 'अशुद्ध' ही माना गया है, इसका सीधा कारण उसका मासिक धर्म है। लेकिन इसके अर्थ गहरे थे, यहाँ इस बात पर ज़ोर देना था कि महिलाएँ शारीरिक क्षमताओं में पुरुषों के बराबर नहीं हैं। और ऐसा करते हुए लैंगिक समानता के बढ़ते दबावों के लिए ठोस जवाब तैयार किए गए। पितृसत्तात्मक सोच वाले वाले स्वर में स्त्रियों को बताया गया कि चूंकि वे राष्ट्र की अवधारणा का मानवीकृत रूप हैं और उन पर महान पुत्र पैदा करने का दायित्व है इसलिए उन्हें अपनी स्वच्छता और स्वास्थ्य का ख्याल रखना होगा।

यह बात चौंकाती है कि स्त्रियों की स्वच्छता और स्वास्थ्य का लेना-देना केवल स्त्री रोग से ही संबंधित था। और इस तरह गीता प्रेस ने न केवल लैंगिक भिन्नता पर ज़ोर दिया बल्कि स्त्रियों की कोमलता की लकीर भी खींच दी। यह स्त्रियों की यौनिकता को नियंत्रण में रखने की अपेक्षा से अधिक कुछ नहीं था। जैसा कि हमने देखा है, पितृसत्तात्मक संरचना के तहत यह माना जा चुका था कि महिलाएँ अपनी शारीरिक या यौन इच्छाओं पर क़ाबू पाने में अक्षम हैं। गोयन्दका ने महिलाओं को यह

सलाह दी कि उन्हें, 'अकेले पुरुष के साथ एकांत में कभी वार्तालाप या वास नहीं करना चाहिए चाहे पिता, भाई, पुत्र ही क्यों ना हो क्योंकि इन्द्रियों का समुदाय बलवान है और बुद्धिमानों को भी मोहित कर देता है।' ⁷⁹ यह प्रमाणित करता था कि महिलाओं के मुद्दे पर गीता प्रेस कहाँ खड़ा था!

जैसा कि तनिका सरकार कहती हैं, 'हिन्दू महिला को सामुदायिक अनुशासन का विषय बना देना' हिन्दू पुनरुत्थानवादियों की कोशिश थी। इसके तहत 'वे अनुष्ठानों के दायरों को विशुद्ध अर्थों व मूल्यों के स्रोत के रूप में बचा लेना चाहते थे।' हिन्दू स्त्री का शरीर, उनकी यौनिकता 'एक गहरे राजनैतिक रंग में डूबा मुद्दा बन गया, यह अकेले ही अतीत की आज़ादी और भविष्य की स्वायतता का परिचायक बन गया।' ⁸⁰ इसकी झलक उस पितृसत्तात्मक संस्कृति और सामाजिक व्यवहारों में दिख रही थी जिसकी पैरवी गीता प्रेस कर रहा था।

गोयन्दका ने *नारी धर्म* में दावा किया कि स्त्रियों में शारीरिक व चारित्रिक अवगुण होने के कारण वे स्वतंत्रता से जीवन जीने के लिए अयोग्य हैं। इन 'विशेष अवगुणों' में से उन्होंने कुछ अवगुण गिनवाए। उनके अनुसार, 'स्त्रियों में काम, क्रोध, दुस्साहस, हठ, बुद्धि की कमी, झूठ, कपट, कठोरता, द्रोह, ओछापन, चपलता, अशौच, दयाहीनता आदि अवगुण होने के कारण वे स्वतंत्रता के योग्य नहीं हैं।' ऐसा लगता है कि गोयन्दका स्त्री को आज़ादी से वंचित रखने के लिए किसी भी हद तक जा सकते थे। उन्होंने यहाँ तक कहा कि इस आज़ादी से 'देश, जाति और समाज को बहुत ही हानि पहुंच सकती है।' ⁸¹

पोद्दार के *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी* के परिशिष्ट में सरला सावित्री से बच्चों का पालन करते हुए अपने स्वास्थ्य की रक्षा के तरीकों के बारे में पूछती है। सावित्री कहती है कि शरीर रक्षा स्त्री धर्म का अंग है, जैसे वे अपने बेटे का पालन-पोषण कर रही हैं, हो सकता है एक दिन वह महान व्यक्ति बने। सावित्री कहती है कि स्त्री में अधिकांश रोगों की जड़ उनका मासिक धर्म और उससे जुड़ी समस्याएँ होती हैं। जो सामान्यतः बारह से तेरह की उम्र में शुरू होते हैं। यहाँ एक बार फिर सहमति की उम्र का प्रश्न खड़ा होता है।

गीता प्रेस ने 1940 के दशक के अंत तक विवाह के लिए लड़कियों की सही उम्र पर बहस ठाने रखी। *कल्याण* में किसी चारु चंद्र मित्र के लेख में हेवलोक इलियस के *साइकॉलजी ऑफ़ सेक्स* और एन्टोन विटिलविच के *बायोलॉजिकल ट्रेजेडी ऑफ़ वीमेन* जैसे विविध लेखों को उद्धृत करते हुए सोलह वर्ष या बाईस अथवा चौबीस साल से पहले लड़कियों से विवाह नहीं करने की प्रथा को छोड़ने और सामाजिक सुधारकों और 'सिद्धांती सुधारकों की शिक्षा के लिए' बात कही गई थी। ⁸² मित्र ने इलियस के लेख से अपने-आप में सब कुछ बयान कर देने वाले एक अनुच्छेद का उदाहरण दिया: 'पहला अण्डोत्सर्ग यौनिक परिपक्वता को दिखाता है और यह शैशवावस्था में आरम्भ

हुई महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं की श्रृंखला का आखिरी हिस्सा होता है । अब यौनिक उपकरण अपने कौम की सेवा के लिए पूरी तरह तैयार हो जाता है ।’ ⁸³

स्त्री द्वारा बच्चे के पालन-पोषण की क्षमता को यौनिक उपकरण की मशीनी क्रिया में तब्दील कर उसके परिपक्व होते ही उसे वंश की सेवा में लगा देने की वकालत करते हुए गीता प्रेस अब रजोदर्शन (पहली बार मासिक धर्म होने को रजोदर्शन कहा गया है) बनाम मासिक धर्म की बहस खड़ी करने की तैयारी कर रहा था । *कल्याण* के दो अंकों में सिलसिलेवार ढंग से प्रकाशित मित्र के इस लम्बे निबंध ने इस तथ्य को नज़रअंदाज़ किया कि रजोदर्शन के समय बच्चे को जन्म देना एक लड़की के लिए खतरनाक हो सकता है । बल्कि उन्होंने मासिक धर्म की शुरुआत के समय ही आर्य जाति की सेवा हेतु ‘मातृत्व के अंग’ का ‘उपयोग’ किए जाने को न्यायोचित ठहराया ।

पश्चिमी शिक्षा प्राप्त मित्र पेशे से वकील थे, लेकिन मासिक धर्म के समय स्त्रियों से अलगाव के रूढ़िवादी व्यवहार का समर्थन करते थे । उन्होंने नेमिलोव के तर्क को उद्धृत किया, ‘हार्मोन के अधीन पुरुष साहस के मामले में ऊर्जावान हो जाता है, जबकि महिलाएँ हार्मोन के वशीभूत हो कामुक बनने की वजह से क्षीण हो जाती हैं और आत्मत्याग की स्थिति तक पहुँच जाती हैं’ और ‘यौन इच्छाएं उन स्त्रियों पर हावी होती हैं जो नखरेबाज और शोखियों से बाज नहीं आती ।’ ⁸⁴ इस तरह एक पुरुष के लिए उसकी यौन इच्छाओं की पूर्ति लगभग एक अधिकार की तरह है जबकि एक स्त्री के लिए अपनी यौन इच्छाओं के लिए प्रयासरत होना पितृसत्तात्मक सीमाओं को लांघने जैसा है । ‘स्त्री और पुरुष के बीच के शारीरिक और यौन इच्छाओं के इस फर्क ने पति को पत्नी पर अधिकार दिया, जहाँ आदमी बहुत-सी गलतियों के बाद भी बच निकल सकता है लेकिन स्त्री नहीं बच सकती ।’ ⁸⁵

मित्र जैसे लेखकों और *कल्याण* जैसी पत्रिकाओं ने लैंगिक समीकरणों की बदलती प्रकृति की उपेक्षा की । पश्चिम में चल रहे कामों से सावधानीपूर्वक उदाहरण चुनने के साथ मित्र ने स्त्री यौनिकता को शासित करने के लिए शास्त्रों और *मनुस्मृति* का ही सहारा लिया ।

पुनः हम स्त्री स्वास्थ्य के संबंध में सावित्री की धारणा पर लौटते हैं । मासिक धर्म के दौरान महिलाओं को छह तरह की बुनियादी बातों का ख्याल रखना चाहिए: ‘स्वामी के पास कभी नहीं सोना चाहिए, किसी प्रकार का ज़्यादा परिश्रम नहीं करना चाहिए, ठंडी जगह में धरती पर नहीं सोना चाहिए, जब तक साव रहे, नहाना बिल्कुल भी नहीं चाहिए, पेट को सर्दी नहीं लगानी चाहिए । गाड़ियों पर चढ़ना-उतरना, सीढ़ी चढ़ना, ऊंची जगह पर चढ़ना-उतरना और किसी भारी चीज को उठाना भी हानिकारक है ।’ ⁸⁶

सावित्री के अनुसार, ‘ऋतुसाव के समय पुरुष संग से स्त्रियों को बड़ी कठिन बीमारियाँ हो जाती हैं, कमर में पीड़ा होने लगती है, ऋतुसाव बढ़कर कई दिनों तक जारी रहता है । शरीर कमज़ोर हो जाता है और उन्माद रोग (हिस्टीरिया) हो जाता है । अनियमित ऋतु से संतान पैदा होने में रुकावट बढ़ जाती है, प्रदर आदि के बुरे रोग भी

प्रायः इसी से होते हैं । इसके सिवा पुरुषों को भी बड़ा नुकसान पहुंचता है, उसके प्रज्ञा, तेज, बल, नेत्र शक्ति और आयु का नाश होता है, अनेक प्रकार की बीमारियां घेर लेती हैं ।’

मासिक धर्म के समय सर्दी-जुकाम पकड़ लेने के बारे में सावित्री ने कहा कि इससे मासिक धर्म अचानक रुक सकता है और कई कष्टों की वजह बन सकता है । अतः दूरदर्शी शास्त्रकार रजस्वला स्त्री को एकांत में रखने के पक्षधर थे । ‘हमारे त्रिकालदर्शी शास्त्रकारों ने रजस्वला स्त्री के अलग रहने, किसी को ना छूने, अलग सोने, किसी को अपना मुंह न दिखाने आदि की जो व्यवस्था कर दी है उससे धर्म और स्वास्थ्य रक्षा में बड़ी भारी मदद मिलती है ।’

सरला ने उसके बाद गर्भावस्था में बरती जाने वाली सावधानियों के बारे में पूछा । सावित्री ने कहा कि एक स्त्री को इस दौरान संसर्ग से परहेज़ करना चाहिए । सामान्य हालात में भी आदमी औरत को बिस्तर साझा नहीं करना चाहिए, और गर्भावस्था के समय तो इसे सख्ती से बरता जाना चाहिए । इसके अलावा बाक़ी नियम-कायदे सामान्य समझ वाले थे, भारी वस्तुओं को नहीं उठाना चाहिए, ज़्यादा चाय, कॉफ़ी या भांग नहीं पीनी चाहिए, वैद्य की सलाह के बिना कोई दवा नहीं लेनी चाहिए, हल्के और स्वच्छ वस्त्र पहनने चाहिए, चिल्लाने, रोने व झगड़ों से बचना चाहिए । गर्भवती स्त्री को थोड़े-थोड़े समय पर पौष्टिक भोजन करना चाहिए, साफ़ पानी पीना चाहिए, घर की साफ़-सफ़ाई रखनी चाहिए और दिन में कम-से-कम एक बार नहाना चाहिए । अपने इर्द-गिर्द सकारात्मक ऊर्जा बनाए रखने के लिए साधुओं और साहसी पुरुषों की तस्वीरें रखनी चाहिए, क्रोध, लोभ और दंभ से बचना चाहिए, अनैतिक क्रिस्से नहीं सुनने चाहिए बल्कि महाभारत के शान्तिपर्व जैसे हिस्सों को सुनना चाहिए, भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय का श्रवण करना चाहिए, तुलसीदास के *रामचरितमानस* और अन्य धर्म ग्रंथों से महत्वपूर्ण कहानियाँ सुननी चाहिए ।

सावित्री सरला को आश्चस्त करती है कि अगर गर्भावस्था के नियमों का ठीक से पालन किया गया तो प्रह्लाद, ध्रुव, हरिश्चंद्र, बुद्ध, सीता और सावित्री जैसी संतान होगी जो उसके और पूरे जगत के हित में होगा । ⁸⁷

यहाँ लड़का पैदा करना गुणसूत्रों का काम नहीं बल्कि माँ की ज़िम्मेदारी थी । माँ धर्मनिष्ठा और आत्मसंयम के कुछ अन्य नियमों का भी पालन करे तभी ‘तेजस्वी, मेधावी, शूर तथा धार्मिक पुत्र का जन्म होता है ।’ ⁸⁸ इसमें नाक व शरीर के अन्य हिस्सों में छेद न करवाना, अशुद्ध चीज़ों को छूने से बचना, चालाक लोगों से बात नहीं करना, बाल बांधे बिना घर से बाहर नहीं निकलना, शरीर को ढक कर रखना, शूद्र सम्पर्क में नहीं आना, या उसके द्वारा परोसा हुआ नहीं खाना, उत्तर या पश्चिम में सिर करके नहीं सोना, शाम को नहीं सोना, किसी के पास नहीं सोना आदि शामिल था । गर्भवती स्त्री के लिए ज़रूरी है कि वह प्रातः काल उठ कर धुले हुए साफ़ कपड़े पहने,

और गाय, ब्राह्मण, नारायण और लक्ष्मी की पूजा करे । चंदन के लेप, माला और खाद्यान्न से पति की पूजा करे ।

पुत्र प्राप्ति की कामना के लिए महिलाओं के आचार-व्यवहार लगातार जटिल, अजीब और हास्यास्पद होते गए । चरक का संदर्भ देते हुए पोद्दार ने कहा कि स्वस्थ व यशस्वी पुत्र की आकांक्षा रखने वाली स्त्री को नहाने के बाद सफ़ेद सांड का दर्शन करना चाहिए । ⁸⁹ क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि जिस भी हिन्दू औरत ने सुबह दर्शन किए, उसके मष्तिष्क पर प्रभाव पड़ा और वैसा ही बच्चा पैदा हुआ । उन्होंने दावा किया कि अपने घर में अफ़्रीकी बच्चे की तस्वीर टांग कर रखने वाली एक श्वेत गर्भवती महिला को अफ़्रीकी दिखने वाला बेटा पैदा हुआ । एक अन्य उदाहरण से उन्होंने बताया कि एक ब्राह्मण स्त्री ने सुबह-सुबह पठान को देख लिया था जिसकी वजह से उसे एक ऐसी माँ बन कर जीना पड़ा जिसका बेटा अपने जीवन में एक ‘दुश्चरित्र पठान’ बना । स्त्री को गर्भावस्था के दौरान संसर्ग से रोकने के लिए पोद्दार ने संभवना गढ़ी कि ऐसा करने से गर्भ में अंगहीन बच्चा विकसित होने लगेगा ।

बच्चे को जन्म देने के समय भी हज़ार तरह के नियम मानने होते थे । जहाँ बच्चे का जन्म होना हो वहाँ की साफ़-सफ़ाई के साथ-साथ सावित्री ने दाई की साफ़-सफ़ाई पर भी ज़ोर दिया । इसके आगे इसमें कहा गया कि चूंकि अधिकांश दाइयाँ या तो मुसलमान थीं या नीची जाति की थीं और ये दोनों ही द्विज समुदाय से बाहर की थीं । अतः स्वच्छता का प्रश्न अहम माना गया । गीता प्रेस इस दुविधा में पड़ गया कि पुराने समय की दाई व्यवस्था बेहतर थी या धीरे-धीरे शहरों और क़स्बों में प्रचलित हो रही डॉक्टरों और प्रशिक्षित परिचारिकाओं की अस्पताल वाली नई व्यवस्था ।

उल्लेखनीय ढंग से सावित्री ने यह स्पष्ट कर दिया कि पालन-पोषण की प्रक्रिया में लड़के और लड़की में कोई भेद नहीं किया जाएगा । माँ के दूध, इसकी पौष्टिकता और चिकित्सकीय मूल्यों पर ज़ोर दिया गया । अपने यौवन की चिंता का ख़याल कर बच्चों को स्तनपान नहीं करवाने वाली पढ़ी-लिखी फैशनेबल महिलाओं की आलोचना की गई । एक डॉक्टर की तरह सावित्री ने बच्चे को दूध पिलाने के समय और उसकी मात्रा के बारे में एक पूरा चार्ट बना कर दिया । उसने ज़रूरत से ज़्यादा या कम दोनों से ही बचने को कहा । यह भी कहा कि माँ को गुस्से में, खुशी या उदासी महसूस करते हुए दूध पिलाने से बचना चाहिए ।

अभी तक माँ के दूध पर सकारात्मक बहस चल रही थी लेकिन इसमें प्रतिगामी और पितृसत्तात्मक मोड़ तब आया जब इस दौरान हाल में माँ बनी स्त्री और उसके पति के बीच संसर्ग को रोकने के निर्देश जारी किए गए । सावित्री ने कहा जल्दी से शारीरिक संबंध की शुरुआत करने से माँ के दूध पर बुरा प्रभाव पड़ता है जो शिशु के लिए ठीक नहीं है । आगे उसमें यह भी कहा गया कि, ‘जल्दी-जल्दी गर्भधारण से स्त्री का स्वास्थ्य सदा के लिए बिगड़ जाता है ।’ ⁹⁰

माँ और शिशु की सेहत के बारे में सावित्री सरला को बताती है कि घर की बूढ़ी औरतों को किसी भी डॉक्टर या वैद्य से ज़्यादा ज्ञान व समझ होती है। अच्छी सेहत दरअसल स्वस्थ व स्वच्छ मप्तिस्क की देन होती है इसलिए सख्ती से आत्मसंयम बरतना, भक्ति और भगवान की उपासना में मन लगाना चाहिए।

1940 के दशक में जब आधुनिक दवाओं ने भारत में जड़ें तलाश ली थीं तब भी *नारी अंक* ने महिलाओं के बीमार पड़ने की चार वजहें खोज लीं, जिनमें से एक था फैशन के लोभ में पड़ना जैसे ऊँची सैंडल पहनना, क्रीम पाउडर लिपस्टिक लगाना, ⁹¹ हालाँकि बेहतर और मुमकिन वजहें भी इनमें शामिल थीं जैसे कि कसरत न करना, खान-पान की आदतों में गड़बड़ी, असंयत जीवनशैली। महिलाओं से कहा गया कि वे स्वस्थ जीवन शैली अपनाएँ और मेहनत करें। केवल तभी यह संभव है कि ‘यदि स्त्रियाँ स्वस्थ रहें तो क्या मजाल कि कोई भी उनकी ओर आंख उठाकर देख सके।’ मक्के की घरेलू चक्की से पिसाई को एक कसरत की तरह बताया गया जो बीमारियों से रक्षा करती है। *नारी अंक* में बताए गए अधिकांश स्वास्थ्य की परेशानियों का संबंध मासिक धर्म, प्रसूति, पेट से जुड़ा था। महिलाओं को कहा गया कि वे घरेलू नुस्खों को आजमायें, और वैद्य के पास तभी जाएँ जब वे कारगर न हों। किसी भी अंग्रेज़ी डॉक्टर के पास नहीं जाएँ।

गोयन्दका ने महिलाओं को खासतौर पर विदेशी दवाओं से दूर रहने को कहा क्योंकि उनका दावा था कि ये दवाइयाँ लहसुन, प्याज, शराब, मीट, पशु चिकनाई, रक्त व अंडों के मिश्रण से बनाई जाती हैं ‘इससे धर्म, धन और स्वास्थ्य की भी हानि होती है।’ ⁹² विदेशी दवाइयाँ उसी सूची में शामिल थीं जिनमें बिस्कुट, बर्फ, सोडा, नींबू पानी, और विदेशी पेय पदार्थ थे। ये सभी चीज़ें महिलाओं के लिए वर्जित थीं। चटपटे एवं स्वादिष्ट भोजन से भी दूरी बनाने की सलाह दी गई थी।

आगे यह भी कहा कि वही बच्चे ज़्यादा बीमार पड़ते हैं जिनकी माताएँ लापरवाह होती हैं और खुद अनुशासनहीन जीवन जीती हैं। *नारी अंक* में बच्चों में होने वाली इक्कीस आम बीमारियों के लिए नुस्खे दिए गए थे। इनमें खांसी-जुकाम से लेकर पेट दर्द तक सभी तकलीफ़ों के लिए नुस्खे थे। महिलाओं के लिए यह सुझाव था कि इनके अलावा कोई और दवाइयाँ न दें...और यदि दें तो बहुत कम मात्रा में... ⁹³ आज भी गीता प्रेस बच्चों की बीमारियों के लिए घरेलू नुस्खों की ही वकालत करता है, हालाँकि डॉक्टरों को लेकर इसका प्रतिरोध कुछ हद तक कम हो गया है। ⁹⁴

बहरहाल, एड्स की बात आने पर गीता प्रेस ने नैतिकता का स्वर अलापा और भारत में इस रोग के फैलने के लिए पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से उपजे ‘संयम, इंद्रियनिग्रह तथा सदाचार की मर्यादा के उल्लंघन’ और गिरावट आदि को ज़िम्मेदार ठहराया। *कल्याण* ने एड्स के होने के संदर्भ में कहा कि यह ‘शास्त्र निंदित पर-स्त्रीगमन से गर्भस्थ शिशु को संक्रमित माता से संक्रमित रक्त या रक्तघटक चढ़ाने से अथवा निडिल के प्रयोग से होता है।’ *कल्याण* ने इसकी वजह ‘अत्यधिक अवैध यौन

संबंधों' में खोजी । ऐसी इच्छाओं पर क़ाबू पाने के लिए रामायण और गीता जैसे धार्मिक ग्रंथों का पाठ करने के लिए कहा । ⁹⁵

स्त्री की यौनिकता पर गीता प्रेस का पितृसत्तात्मक शिकंजा केवल उसके शारीरिक पहलू से नहीं जुड़ा था बल्कि इसके तहत यह भी तय किया गया कि उसे क्या पहनना चाहिए! ⁹⁶ स्त्रियों के शील की रक्षा के लिए खास तरह के पहनावे निश्चित किए गए । ऐसा करते हुए उनके निशाने पर वे स्त्रियाँ थीं जो उचित परिधान पहनने की परंपरागत धारणा को चुनौती दे रही थीं । गीता प्रेस ने कपड़ों के 'जादुई या प्रभावकारी प्रयोग' को रेखांकित किया जिसमें 'वास्तव में कपड़े पहनने वाले का नैतिक और भौतिक स्वरूप कपड़े के आंतरिक गुणों और इसमें प्रयुक्त तत्त्वों (पवित्र, मज़बूत या दूषित करने वाला) से बदल जाता है ।' ⁹⁷

गीता प्रेस के लिए कई प्रबंध लिखने वाले रामचरण महेंद्र ने हिन्दू और मुसलमान के परिधान में अंतर किया । ⁹⁸ महेंद्र के शोध-प्रबंध में यह था कि संस्कृति और धर्म के साथ परिधान का एक रिश्ता होता है । यह कोई नई बात नहीं थी । महेंद्र ने हिन्दू धर्म के परिधानों साड़ी, धोती और कुर्ते को सापेक्ष रखते हुए इसे उल्लेखित किया जिसे 'लाल बहादुर शास्त्री, इंदिरा गांधी और विजयलक्ष्मी पंडित विदेशों में भी पहनती थीं ।' स्वच्छता, सौन्दर्य और गरिमा के लिए हिन्दू परिधान सर्वोत्तम थे ।

दूसरी तरफ़ उन्होंने ईसाईयों और मुसलमानों की संस्कृति को रखा, 'अंग्रेज़ी और मुस्लिम संस्कृति और धर्म खाओ, पीयो और मौज उड़ाओ के भोगवाद और इंद्रियलोलुपता पर खड़ी है । ये भोगलिप्सा और क्षुद्र सांसारिकता को ही महत्व देते हैं, वहाँ कुत्सित नग्नता, अश्लीलता और लंपटता फैली हुई है । मांस-मदिरा का पाशविक स्वाद चखते-चखते ये लोग उच्च जीवन मूल्यों को ही भूल गए हैं ।' उन्होंने लोगों को अंग्रेज़ी और मुस्लिम कपड़े पहन कर उनके दिलों-दिमाग़ पर पड़ने वाले असर को महसूस करने को कहा, 'आप फ़ौजी पोशाक पहनते हैं तो आपके मन में पशुता, आतंक, दुष्टता और दूसरों पर अत्याचार तथा दंभ के भाव भर जाते हैं । मुसलमानी पोशाक में वासना और स्वार्थपरता, प्रदर्शन तथा ओछापन मन में पैदा हो जाते हैं ।'

परिधानों को ऐसा मज़बूत और नैतिक मोड़ देने पर भी कुछ ठोस फ़ायदा होता हुआ नहीं दिखा क्योंकि इन तर्कों के बावजूद बाज़ार के मामले में भारतीय वस्त्र उद्योग सस्ते ब्रिटिश आयातों से नहीं लड़ पाए । एमा टार्लो ने बताया कि गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन ने एक साथ 'राजनीति, अर्थशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, और नैतिक तर्कों को मिला दिया था जिसके तहत ही गांधी ने देशवासियों से भारतीय परिधानों की ओर लौटने का आग्रह किया ।' ⁹⁹

महिलाओं के पहनावे के संदर्भ में गीता प्रेस की धारणा को उसकी सर्वाधिक बिकी 46 पृष्ठ की *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी* में देखा जा सकता है जिस पर बाद के *नारी अंक* में और बल दिया गया । ये सभी तर्क नैतिकता, धर्म, राजनीति और आर्थिकी आधारित थे जिनका लक्ष्य महिलाओं को पश्चिमी परिधानों और गहनों के प्रति ज़्यादा आकर्षण से

बचाए रखना था। किसी भी महिला द्वारा इस नियम का उल्लंघन सादगी की बुनियादी धारणा को चुनौती माना जाता था। यह समर्पित हिन्दू पत्नी की कसौटी थी। महिलाओं के 'सुविधा प्रेमी' होने के रवैये को 'नारी की दूषित' चारित्रिक प्रवृत्ति की तरह देखा गया। ¹⁰⁰

सरला-सावित्री संवाद में सावित्री कहती है कि स्त्री को सिर्फ अपने पति की खुशी के लिए वस्त्राभूषण धारण करने चाहिए, सार्वजनिक प्रचार के लिए नहीं। उसने कहा, एक औरत जो घर में फटेहाल घूमती रहती है और बाहर निकलने से पहले तैयार होती है वह बड़ी ग़लती करती है। एक तो उसके लूटपाट का डर बना रहता है। दूसरा, 'इसी गहने कपड़े के कारण झगड़े का सूत्रपात होता है और बढ़ते-बढ़ते अंत में वह ऐसा भीषण रूप धारण कर लेता है जिससे सारे घर में कलह की अग्नि भड़क उठती है, घर भर में परस्पर मनोमालिन्य हो जाता है, भाई-भाई और पिता-पुत्र में अलग-अलग होने की नौबत आ जाती है और इसी प्रकार होते-होते अंत में घर बर्बाद हो जाता है।' ¹⁰¹

जब सरला पूछती है कि घर पर रहने वाली एक स्त्री अगर सजे-संवरे और अपने पति से कपड़ों और गहनों की मांग करे तो क्या इसे ग़लत माना जाएगा। इसके जवाब में सावित्री कहती है कि ज़रूरत से ज़्यादा मेकअप, कपड़ों और गहनों का शौक स्त्री को विलासी बना देता है और वह घरेलू कामों से पल्ला झाड़ने लगती है। 'बार-बार पति से मांगने में प्रेम घटता है, स्त्री को तो पति की अनुरागी ही रहना चाहिए। पति का कर्तव्य है कि वह अपनी स्थिति के अनुसार स्त्री को गहने कपड़े अवश्य बनवा दे; यदि केवल कंजूसी से वह गहने-कपड़े नहीं बनवाता है तो यह उसकी भूल है परंतु यह कर्तव्य पति का है और पति ही सोचे। स्त्री को तो प्रसन्न मन से वही बात स्वीकार कर लेनी चाहिए जिस बात में पति प्रसन्न हो। यदि पति की आर्थिक अवस्था अधिक गहने कपड़े बनवाने की ना हो और स्त्री रोज़-रोज़ तकाज़ा करती रहे तो इसका पति के मन पर बहुत बुरा असर हो सकता है।'

राष्ट्रवादी परिप्रेक्ष्य को अपनाते हुए आगे सावित्री ने कहा कि स्त्रियाँ विदेशी सिल्क साड़ियों का त्याग करें। साथ ही यह भी कहा कि यह देश की आर्थिकी को प्रभावित करता है। सावित्री ने शुद्धता-अशुद्धता वाली पुरानी मान्यता सामने रख दी और पशु चर्बी की बात कही। 'लाखों मन जानवरों की चर्बी इसी काम में लगती है और रेशमी वस्त्रों में तो जीते हुए असंख्य कीड़ों की हत्या होती है, इसलिए इन्हें छोड़कर जहाँ तक हो सके चरखे से कते हुए सूत के हाथ से बुने हुए कपड़े पहनो। इनमें चर्बी नहीं लगती। गरीब भाई-बहनों का पैसा बना रहता है। मज़दूरों को पैसे मिल जाने से गरीबों का पेट भर जाता है और उन्हें पेट के लिए दुराचार नहीं करना पड़ता है। जीव हिंसा नहीं होती, पवित्रता बनी रहती है, लज्जा नहीं जाती और धर्म बचता है।' ¹⁰²

विदेशी कपड़ों के परित्याग में गीता प्रेस द्वारा दिए गए तर्क गांधी के तर्कों से कोसों दूर थे। उदाहरण के तौर पर, गांधी का कोई क़रीबी गुजरात में लोगों से कह रहा था कि विदेशी कपड़ों में गाय की चर्बी मिलाई जाती है या किसी पर्व में यह कहा गया

था कि हज़ारों पाउंड रंगीन मैनचेस्टर कपड़ों में 300 पाउंड गाय और सूअर का रक्त मिला होता है। ¹⁰³

अपनी ओर से पोद्दार ने तर्क दिया कि खादी को स्वराज की चाह और धर्म के सम्मान दोनों ही दृष्टियों से पहनना चाहिए। 'मैं अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में खादी को सहायक समझता हूँ।' ¹⁰⁴ स्वराज प्राप्ति के बाद भी उन्होंने लोगों से खादी को अपनाने की अपील की, 'खादी पहनते ही सादगी आ जाती है। शौक्रीनी छूटते ही हर एक दोष अपने-आप ही चले जाते हैं।' ¹⁰⁵

गर्भनिरोध और गर्भपात

1930 के दशक के मध्य तक आते-आते गांधी के साथ पोद्दार के संबंध कई मुद्दों पर क्षीण पड़ने लगे थे। गांधी के कई विचार और सिद्धांतों को गीता प्रेस ने स्त्री यौनिकता के उसके अपने विचारों के प्रति खतरा माना। एक ऐसा ही खतरा था 'गर्भनिरोध' (बर्थ कंट्रोल) के लिए महिलाओं द्वारा गर्भ निरोधक दवाओं का प्रयोग। यह शब्द अमेरिकी नारीवादी और 'हर बच्चा इच्छित बच्चा होना चाहिए' के नारे को प्रचारित करने वाली मारग्रेट सैंगर ने दिया। महिलाओं द्वारा गर्भ निरोधक दवाओं का प्रयोग अब भी काल्पनिक दुनिया का हिस्सा था और पुरातनपंथी तत्वों द्वारा इसका विरोध किया गया। और सैंगर अथक प्रयास कर रही थी कि महिलाओं को यह अधिकार मिले कि वे यह तय कर सकें कि बच्चे को कब जन्म देना है?

सन् 1935 के अंत में सैंगर को दिए एक लम्बे साक्षात्कार में बहस करते हुए गांधी ने कहा कि उपाय गर्भ निरोधक लेने, या किसी अन्य कृत्रिम गर्भ निरोधक तरीके में नहीं है बल्कि महिलाओं द्वारा 'शारीरिक संबंध बनाने के लिए निकट आने या प्रस्ताव रखने पर पति को मना करने में' है। ¹⁰⁶ उन्हें विश्वास था कि कुछ पाशविक प्रवृत्ति वालों को छोड़ कर पति अपनी पत्नियों के इस प्रतिरोध को समझेंगे। उन्होंने दावा किया कि उन्होंने यह तरीका बहुत-सी महिलाओं को सिखाया है। गांधी ने एक दूसरा सिद्धांत भी बताया, कि शारीरिक संबंध सिर्फ संतानोत्पत्ति की ज़रूरत को ध्यान में रखते हुए कायम किए जाएँ। उन्होंने सैंगर को कहा, 'वरना जब दोनों ही बिना परिणाम जाने पाशविक चाह को पूरा करने के लिए ऐसा करेंगे तो वहाँ प्रेम नहीं, वासना होगी। अगर पति कहे कि 'हमें बच्चे नहीं चाहिए, लेकिन संबंध चाहिए', तो यह पाशविक कामना नहीं तो क्या है?'

सैंगर ने इस पर जवाब दिया कि गांधी के इस आत्मसंयम का नतीजा 'चिड़चिड़ेपन, झगड़े, कुंठित आकांक्षाओं' के रूप में निकलेगा। सैंगर ने कुछ 'कड़े उदाहरण' देते हुए बताया कि यौन इच्छा को संयमित करने के प्रयासों में कई लोगों का नर्वस ब्रेकडाउन तक हो गया। तब गांधी ने जवाब दिया कि यह ज़रूर 'जड़बुद्धियों पर किए गए परीक्षण का नतीजा' होगा। मार्च 1936 में *हरिजन* में गांधी ने सैंगर के

‘उत्साह’ के प्रति प्रशंसा तो ज़ाहिर की लेकिन ज़ोर देकर यही दोहराया कि संसर्ग केवल प्रजनन के लिए होना चाहिए । ¹⁰⁷

पोद्दार के अनुसार, गांधी-सैंगर बहस ईश्वरीय वरदान सिद्ध हुआ । अप्रैल 1936 के *वर्तमान शिक्षा* लेख में पोद्दार ने यह माना कि माता-पिता के लिए दुखों की वजह ढेर सारे बच्चों का होना है, लेकिन उन्होंने उसे ईश्वरीय इच्छा कहा । ‘जन्म तो विधि का विधान है परंतु यदि इसे कोई ना माने तो भी संतति निरोध का सबसे बढ़िया तरीका इंद्रिय संयम है ।’ ¹⁰⁸ गांधी की बात को दोहराते हुए पोद्दार ने कहा कि वे सैंगर के प्रति असम्मान की भावना नहीं रखना चाहते क्योंकि उनका उद्देश्य सही था लेकिन भारतीय संदर्भों में गर्भ निरोधक हानिकारक और पापमय है । उन्होंने तर्क दिया कि गर्भ निरोधक साधन संसर्ग की चाह को संतुष्ट करने के लिए होते हैं और अंततः ये व्यभिचार में वृद्धि करेंगे ।

स्वभावतः बिना कोई संदर्भ दिए पोद्दार ने गांधी के एक लेख का संदर्भ देकर चेतावनी दी कि कृत्रिम गर्भ निरोधों के परिणाम नकारात्मक होते हैं जिनमें से कई तो अभी पहचाने भी नहीं गए हैं । एक परिणाम तो यह होगा कि उसके बाद स्कूल-कॉलेज जाने वाली लड़कियों में शारीरिक संबंध की स्वच्छंदता का चलन बढ़ जाएगा क्योंकि विवाहित महिलाओं द्वारा गर्भ निरोधकों के प्रयोग पर नियंत्रण तो असंभव हैं । इसके अलावा गर्भ निरोधकों की उपलब्धता से वैवाहिक जीवन की पवित्रता नष्ट होगी और वह मात्र कामेच्छा को संतुष्ट करने का एक माध्यम बन जाएगा ।

सन् 1969 तक भी *कल्याण* ने गर्भ निरोधकों के विरोध में अपनी बात को रखने के लिए गांधी के *नवजीवन* वाले सन् 1925 के लेख का संदर्भ लिया । गांधी ने डॉक्टरों से अनुरोध करते हुए कहा था कि अगर वे गर्भ निरोध के कृत्रिम तरीके सुझाना बंद करें तो यह मानव जाति पर उपकार होगा । उन्होंने कहा, ‘कृत्रिम साधनों की सलाह देना मानो बुराई का हौसला बढ़ाना है, उससे पुरुष और स्त्री दोनों उच्छृंखल हो जाते हैं और इन कृत्रिम साधनों को जो प्रतिष्ठा दी जा रही है उससे संयम के हास की गति बढ़े बिना ना रहेगी । कृत्रिम साधनों के अवलंबन का कुफल होगा—नपुंसकता और क्षीण वीर्यता । यह दवा रोग से भी ज़्यादा बदतर साबित हुए बिना ना रहेगी ।’ ¹⁰⁹

आत्मसंयम के ज़रिए गर्भ निरोध पर गांधी का रुख विवाह रूपी संस्था पर उनके विचारों से अभिन्न रूप से जुड़ा था । जैसा कि उन्होंने सी एफ एंड्रयूज को बताया था कि ‘वैवाहिक जीवन का स्थान ब्रह्मचर्य से नीचे है ।’ ¹¹⁰ सन् 1920 में एंड्रयूज को लिखते हुए गांधी ने कहा, ‘तुम मुझसे जान लो विवाह में कोई खुशी नहीं रखी है’ ¹¹¹ उनके अनुसार पति-पत्नी के बीच कामभावना से ज़्यादा घृणित कुछ और नहीं था । ‘स्त्री और पुरुष के बीच यौन संबंध से ज़्यादा घृणित किसी दूसरी चीज़ की मैं कल्पना नहीं कर सकता । इसके ज़रिए बच्चों का जन्म होता है, वह ईश्वर के गूढ़ रहस्यों में से एक है ।’ ¹¹² और ‘...विवाह का अवसर हमें आत्मसंयम बरतने की याद दिलाता है । अगर

इच्छाओं पर क़ाबू नहीं पाया जा सकता तो उन्हें नियंत्रित तो किया ही जा सकता है ।

[113](#)

गांधी के क़रीबी अनुयायी विनोबा भावे ने गीता प्रेस के परिवार नियोजन के विरोध में चलाए गए अभियान को अपना समर्थन दिया, जो उनके अनुसार ‘आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की हार है ।’ [114](#) जनसंख्या को बोझ की तरह देखने वाले सिद्धांत पर प्रतिवाद करते हुए भावे ने चेताया कि गर्भ निरोधक न केवल बच्चों के जन्म पर असर डालेंगे बल्कि उनकी बुद्धिमत्ता को भी प्रभावित करेंगे: ‘यह जो क़िएटिव एनर्जी (सर्जक शक्ति) है जिसे हम वीर्य कहते हैं उसी से वाल्मीकि जैसे महाकवि पैदा हुए, महावीर हनुमान जैसे उसी से निकले । प्रतिभावान पुरुष और तत्वज्ञानी उसी से निकले, उस निर्माण शक्ति का मनुष्य दुरुपयोग करता है अर्थात् संख्या-नियमन करके संतान को रोक लिया और उस शक्ति का दूसरी तरफ़ जो उपयोग हो सकता था उसे विषय उपभोग में लगा दिया । ऐसी व्यवस्था करके विषयवासना में व्यस्त रहेंगे तो उनके दिमाग़ का कोई संतुलन नहीं रहेगा, ऐसी हालत में देश तेजोहीन होगा ।’ भावे ने इसका एकमात्र हल आश्रम व्यवस्था में देखा यानी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, जिसमें ‘गृहस्थ’ वह दौर है जो पचीस से पैंतालिस तक चलने वाला है और वही बच्चे को जन्म देने के लिए सही उम्र है ।

सन् 1948 में ‘नारी’ शीर्षक से क्रमवार ढंग से लिखे गए चारू चंद्र मित्र के लेख में गर्भ निरोधक के प्रयोग, महिला स्वतंत्रता और इसके प्रभाव पर तीखा वार किया गया था । उनके अनुसार गर्भ निरोधक जिस स्वतंत्रता का दावा करते हैं वह महिलाओं और देश दोनों के लिए ही अहितकारी हैं । और इसका सीधा प्रभाव विवाह की परखी हुई उस व्यवस्था पर पड़ेगा जहाँ विवाह ही कामोत्तेजना पर नियंत्रण के एकमात्र उपाय की तरह देखा जाता है । विवाह और पारिवारिक जीवन जिसमें बच्चों के पालन-पोषण का आनंद था, वह इस आज़ादी की भेंट चढ़ जाएगा । उन्होंने भविष्य बताते हुए कहा कि जो स्त्री-पुरुष गर्भ निरोधों का प्रयोग करेंगे उनकी वृद्धावस्था का समय अकेलेपन में बीतेगा । [115](#)

गीता प्रेस द्वारा कृत्रिम गर्भ निरोध के उपायों का विरोध 1960 के दशक के अंत तक चलता रहा । *कल्याण* ने अब के सी मिश्र की ओर रुख किया । पेशे से चिकित्सक के सी मिश्र ने चिकित्सकीय-धार्मिक सिद्धांत गढ़ा था । तीन दशकों से अधिक अभ्यास के बाद उन्होंने पाश्चात्य प्रक्रियाओं को अपनाए जाने पर अफ़सोस व्यक्त किया । यह कुछ वैसी ही बात है जैसे मैदानी इलाकों के लोग ‘जिस प्रकार कश्मीर की वर्ष भर ठंडी जलवायु में पहना जाने वाला ऊनी वस्त्र’ पहनने लगे । [116](#) मिश्र ने कहा कि गर्भ निरोध के ये उपाय यूरोप जैसे ठंडे देशों में प्रयोग में लाए जाते हैं । भारत जैसे गर्म देश में इनका इस्तेमाल नहीं किया जा सकता, उसके दुष्प्रभावों को गिनवाते हुए मिश्र ने कहा कि यहाँ तक कि चीन में चौबीस सालों से परिवार नियोजन पर काम कर रहे डॉ रॉबर्ट बी एम सी ल्योर का भी मानना है अरब प्रदेश में चार साल और भारत में बारह साल में

गर्भ निरोधकों से होने वाली समस्याएँ दिखने लगती हैं। ल्योर ने कहा कि 'जब तक जन स्वास्थ्य शिक्षा नसबंदी को स्वीकार्य न बना दे तब तक ग्रामीण इलाकों में अच्छे गर्भ निरोधकों का मिल पाना मुश्किल है।' और 'इन सब अप्राकृतिक तरीकों के गंभीर दुष्प्रभाव नर्वस सिस्टम पर पड़ते हैं जो पाचन व्यवस्था को बाधित करती है, आदि।' मिश्र ने भारतीय युवाओं को नसबंदी से दूर रहने की सलाह दी क्योंकि उनके अनुसार इससे देश कमज़ोर होगा। 'अगर युवा प्रजनन की अपनी शक्ति खो देंगे तो देश को सैनिकों की कमी पड़ जाएगी।'

प्रायः धार्मिक और नैतिक आह्वान के स्वरूप वाले गीता प्रेस द्वारा किए जा रहे इस विरोध ने अपनी जगह बना ली हालाँकि इसका मूल ध्येय कुछ और था। यह तीखा अभियान गर्भ निरोध की आधुनिक तकनीकों के प्रति विरोध कम जबकि इस्लाम धर्मजनित भय की अभिव्यक्ति अधिक जान पड़ता था ¹¹⁷ जनसंख्या साम्प्रदायिक प्रतिस्पर्धा का महत्वपूर्ण घटक थी, और मुस्लिम जनसंख्या का हिन्दुओं की तुलना में अकल्पनीय गति से वृद्धि करना एक ऐसा मुद्दा था जिसका इस्तेमाल हिन्दू राष्ट्रवादी समूहों ने किया। ¹¹⁸

अपनी शुरुआत से लेकर 1940 और 1960 के दशक के दौरान तीव्र साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के समय गीता प्रेस ने 'हिन्दुओं के प्रति मुस्लिम हिंसा', 'मुसलमानों द्वारा हिन्दू महिला का बलात्कार', 'हिन्दू संपत्ति पर मुसलमान की लूटमार', 'मुसलमान पुरुषता' और 'बढ़ती मुसलमान आबादी' जैसे जुमलों का बार-बार इस्तेमाल किया ताकि आक्रान्ता मुसलमानों के हाथों हिन्दू उत्पीड़न की कहानी को आकार दिया जा सके।

गीता प्रेस पहले ही जर्मन महिलाओं को हिटलर द्वारा दिए गए संदेश को प्रकाशित कर चुका था कि जर्मन महिलाओं को पत्नियों और माताओं की भूमिका तक सीमित रहना चाहिए। हिटलर द्वारा जर्मनी में दिए गए संदेश से उदाहरण लेना भोलेपन की बात नहीं है बल्कि यह गीता प्रेस द्वारा फासीवादी शासक के प्रति जताया गया समर्थन था। यहाँ तक कि जब भी बात 'स्त्री प्रश्नों' पर आन पड़ती तो नाज़ी जर्मनी, गीता प्रेस और आरएसएस, हिन्दू महासभा व अन्य हिन्दू राष्ट्रवादी संगठनों की राय में आश्चर्यजनक समानता दिखाई देती। खासकर, गीता प्रेस और अन्य हिन्दू दक्षिणपंथियों द्वारा मुसलमानों की बढ़ती संख्या के प्रति दिखाया जाने वाला उन्माद हिटलर से बहुत हद तक प्रभावित थी। ¹¹⁹

हिन्दुओं की कम होती जनसंख्या से जुड़ी गीता प्रेस की चिंता उत्तरोत्तर सामने आ रही जनगणना की रिपोर्ट को देख कर पैदा हो रही थी जहाँ मुसलमानों का हिन्दुओं से आगे निकल जाने का डर था। यह डर राजनैतिक व सामाजिक रूप से अस्थिर संयुक्त प्रांतों में ज़्यादा था। सन् 1911 की जनगणना रिपोर्ट में 'मुसलमान हिन्दुओं से ज़्यादा बच्चे पैदा करते हैं' ¹²⁰ और सन् 1921 में 'विधवा पुनर्विवाह पर पाबंदी का मुसलमानों पर असर नहीं पड़ेगा' तथा जनसंख्या के मामले में 'सापेक्ष और नितान्त रूप से हिन्दू

पिछड़ चुके हैं' ¹²¹ जैसे कथनों ने हिन्दू राष्ट्रवादियों के वर्णनों को आधिकारिक मज़बूती दी। आगे का यह कथन कि, सन् 1911 और 1921 के मध्य 'हिन्दुओं की संख्या में प्रति 1000 व्यक्तियों पर 347 की कमी हुई', इस तरह की रिपोर्ट ने उनकी मान्यता के इस भय को बढ़ा दिया कि 'जनसंख्या का सामाजिक व राजनैतिक प्रभाव उसके आकार के समानुपात से सीधे जुड़ा होता है।' ¹²²

पैट्रीसिया और रॉजर जेफ़री द्वारा आविष्कृत शब्द 'भगवा जनसांख्यिकी' के उन्माद की गूँज पोद्दार में सुनाई देने लगी। परिवार नियोजन पर पोद्दार के विचार जानने के लिए उत्सुक *कल्याण* के एक पाठक के पत्र का जवाब देते हुए पोद्दार ने सरकार की परिवार नियोजन की नीतियों की कड़ी आलोचना की। सरकार के इस क़दम से पैदा होने वाली नैतिक व शारीरिक समस्याओं को दोहराते हुए उन्होंने कहा कि यह 'हिन्दू जाति के भविष्य' के लिए बड़ा ख़तरा है। ¹²³

पोद्दार इस बात से क्रोधित थे कि सरकार की परिवार नियोजन की योजना अब हिन्दुओं के बीच पैर जमाने लगी है जबकि मुसलमानों ने इसे धर्म-विरोधी कह कर अपने से दूर रखा है। उन्होंने कहा कि मुसलमान एक से अधिक पत्नी रख सकते हैं और इस तरह उनकी जनसंख्या हिन्दुओं के मुक़ाबले तेज़ गति से बढ़ती जा रही है जबकि हिन्दू डूबने की हद तक कम होते जा रहे हैं। 'यही स्थिति रही तो मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं के बराबर या उनसे अधिक हो सकती है और उसका क्या दुष्परिणाम हो सकता है, इसका अनुमान वर्तमान एक पाकिस्तान से ही लगाया जा सकता है। ईसाईयों की संख्या भी क्रमशः बढ़ रही है, इस ओर सभी न्यायप्रिय लोगों को ध्यान देना चाहिए खासकर हिन्दुओं को।' ¹²⁴

पोद्दार ने गर्भ निरोध का सबसे बेहतर उपाय आत्मसंयम को ही माना। ऐसा जान पड़ता है कि पाठक बढ़ती जनसंख्या के कारण होने वाली खाद्यान्न की कमी पर अपनी चिंता व्यक्त कर रहा था, लेकिन पोद्दार ने इस तरह के डर को ख़ारिज करते हुए उसे बताया कि सबका पेट भरने की ज़िम्मेदारी भगवान पर छोड़ दो।

महिलाओं के लिए प्रसंग्युत स्थान

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में संयुक्त प्रांत ने महिलाओं के लिए हिन्दी पत्रिकाओं का प्रादुर्भाव देखा। अल्पायु रही *बाला बोधिनी* इनमें प्रथम थी। बनारस के भारतेन्दु हरिश्चंद्र द्वारा सन् 1874 में निकाली गई *बाला बोधिनी* संभवतः देश की पहली स्त्री विषयक पत्रिका थी। लेकिन अपना ध्यान 'लोकतान्त्रिक विचारों और राष्ट्रवाद के उत्थान के प्रति चेतना जागृत' करने पर केंद्रित करने वाली यह पत्रिका भारतेन्दु की युवावस्था में हुई असमय मृत्यु के साथ ही बंद हो गई।

गीता प्रेस अभी अस्तित्व में आने से भी कोसों दूर था जब इलाहाबाद के नेहरू कुल की दो महिलाएँ रामेश्वरी नेहरू और रूपकुमारी नेहरू सन् 1909 में एक उग्र

सुधारवादी पत्रिका *स्त्री दर्पण* के साथ सामने आई । ‘गंभीरता और गहराई’ ¹²⁵ में अतुलनीय *स्त्री दर्पण* ने अपनी ओर से महिला अधिकारों की वकालत और परंपरागत दायित्वों व धर्म पालन को समान महत्व देकर नायाब सह-क्रिया के उदाहरण पेश किए । *स्त्री दर्पण* को सबसे अलग पहचान उसके लक्ष्यों की स्पष्टता और इस मज़बूत विश्वास ने दिलवाई कि महिलाओं का भाग्य उनके अपने हाथ में है ‘क्योंकि पति, भाई और पिता महिलाओं से जानवरों जैसा व्यवहार करते हुए देश का भला नहीं कर सकते ।’ ¹²⁶ इस पत्रिका के लिए लिखने वालों में स्त्री और पुरुष दोनों ही शामिल थे जिन्होंने पारिवारिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर लिखा । पर्दा प्रथा से लेकर स्वास्थ्य व स्वच्छता, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों, स्त्री शिक्षा व भारत के अन्य शहरों में चल रहे महिला आंदोलनों और राष्ट्रीय आंदोलनों तक सभी विषयों पर *स्त्री दर्पण* की पहुँच ईर्ष्या योग्य थी ।

इसी साल इलाहाबाद में ही *स्त्री दर्पण* कार्यालय से कुछ किलोमीटर की दूरी पर एक और पत्रिका अस्तित्व में आई । गोपालदेवी और सुदर्शनाचार्य दंपति ने *गृहलक्ष्मी* निकाला (अर्थात्, घर की देवी लक्ष्मी) । 4000 की शानदार प्रसार संख्या से इस पत्रिका ने अच्छी शुरुआत की और जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसने उन सभी विचारों का प्रतिनिधित्व किया जिसका *स्त्री दर्पण* में खुलेआम विरोध किया जा रहा था । *गृहलक्ष्मी* का रूढ़िवादी और ‘व्यवहारिक, निम्नमध्यवर्गीय आधार’ संभ्रांतवादी *स्त्री दर्पण* का प्रत्युत्तर था । इसमें ‘लड़कियों के लिए नैतिक शिक्षा और पत्नी व माँ की भूमिका’ पर ज़ोर दिया गया, और किस तरह उन्हें परिवार की वेदी पर अपनी आकांक्षाओं और इच्छाओं का बलिदान करना चाहिए’ जैसी बातों पर ज़ोर था । ¹²⁷

अपनी पत्नी को सहधर्मिणी समझने के बजाय उन्हें प्रणयिनी के रूप में देखने वाले पुरुषों के प्रति आलोचनात्मक रुख रखते हुए, *गृहलक्ष्मी* ने कहा कि विवाह में साहचर्य केवल समानता का प्रतीक नहीं है बल्कि कुछ ऐसा है जिसे शास्त्रों में भी स्वीकार किया गया है । एक-दूसरे से एकदम अलग स्वर वाली *गृहलक्ष्मी* और *स्त्री दर्पण* ने कई बार एक-दूसरे का खंडन किया और विचारों पर प्रत्युत्तर की मांग की । ¹²⁸

हिन्दी की अति प्रतिष्ठित स्त्री विषयक पत्रिका *चाँद* का जन्म भी इलाहाबाद में हुआ । *स्त्री दर्पण* और *गृहलक्ष्मी* जैसी पत्रिकाओं के निकलने के एक दशक से भी ज़्यादा समय बाद सन् 1922 में संयुक्त प्रांत के प्रसंगच्युत दायरे में गहरा रूपांतरण हुआ । जैसा कि फ्रांसेस्का ओर्सिनी ने चिह्नित किया, ‘स्त्री विषयक पत्रिकाओं और सामान्य पत्रिकाओं में ‘खास तरह का मेल-मिलाप घर कर रहा था ।’ जिसके परिणामस्वरूप महिला मुद्दों से जुड़े विषय ‘मुख्यधारा की पत्रिकाओं’ में जगह बनाने लगे । ¹²⁹ जहाँ एक ओर यह पाठकों के नए वर्ग के रूप में महिलाओं की पहचान से जुड़ा था, वहीं विशेष तौर पर नियत स्तंभों के प्रकाशन ने यह संकेत दिया कि वे एक नए समूह हैं । ओर्सिनी के तर्क के अनुसार *चाँद* ने स्त्री विषयक पत्रिकाओं में केवल ‘*स्त्री उपयोगी*’ लेखों को शामिल करने के स्त्री विषयक पत्रिकाओं के विशेष चलन को ध्वस्त कर दिया

। वे आगे कहती हैं कि यही नहीं चाँद महिलाओं और उनके मुद्दों को राष्ट्रीय आंदोलन के केंद्र तक ले आया ।

चाँद की शुरुआत रामरख सिंह सहगल ने की । वे मूल रूप से लाहौर के रहने वाले थे । रामकृष्ण मुकुंद लगहटे इसके उपसंपादक थे और रामरख की बेटी विद्यावती सहगल कार्यालय प्रबंधक थीं । अपनी विषयवस्तु में उद्धारक और विविधता वाली पत्रिका चाँद 15,000 की प्रसार संख्या के साथ अपने समय की अग्रणी पत्रिका बन गई । *अछूत अंक*, *कायस्थ अंक*, *मारवाड़ी अंक*, *विदुषी अंक* जैसे विशेषांक निकालने की मौलिक संपादकीय नीति ने चाँद को नए आयाम तक पहुँचाया । कुछ ही वर्षों के भीतर इस पत्रिका ने कई राज्यों के स्कूलों व जन पुस्तकालयों में अपनी जगह बना ली ।

सेवा धर्म की अवधारणा का सहारा लेते हुए जन दायरों में महिलाओं की पहुँच होने का समर्थन और वकालत करना चाँद की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी गई । इसने सामाजिक दायरों में महिला की उपस्थिति को 'पुनःपरिभाषित' किया और उसे 'न्यायसंगत' ठहराया और इस तरह पत्रिका ने शिक्षित और अशिक्षित महिलाओं की कल्पना तक अपनी पहुँच बनाई । इसने आह्वान किया कि 'अगर वे चाहें तो हज़ारों महिलाओं को अनभिज्ञता के सागर में डूबने से बचा सकती हैं', 'अगर साढ़े तीन करोड़ भारतीय विधवाओं की कारुणिक स्थिति से उनका दिल पसीजता है', 'वे बाल विवाह और दहेज जैसे कुरीतियों को खत्म करना चाहती हैं' तो पत्रिका से अवश्य जुड़ें ।

चाँद के संपादक मंडल में बदलाव (राज्य की कड़ी कार्रवाई और अनिश्चित वित्तीय स्थिति के चलते रामरख सहगल ने इस्तीफ़ा दे दिया) होने के साथ ही पत्रिका ने अपनी आक्रामकता और दिशा खो दी । चाँद के लिए कुछ शुरुआती लेख लिखने वाली महादेवी वर्मा के संपादन में यह पत्रिका स्त्री विषयक पत्रिका बन गई । महादेवी वर्मा ने उन दिनों के लिहाज़ से विवाह तोड़कर एक असंभव-सा क़दम उठाया था । यह पत्रिका अपनी संपादकीय नीति में 'वर्ग और जातिगत भेदभाव और लैंगिक सीमाओं' को स्वीकार करने की बात कहते हुए अधिक मध्यवर्गीय भी हो गई ।

ये और अन्य स्त्री विषयक पत्रिकाएँ शिक्षित व अशिक्षित महिलाओं के लिए बाहरी दुनिया की खिड़की थीं । ¹³⁰ उन्होंने न केवल परिवारिक दायरों में महिलाओं की भूमिका को पुनः परिभाषित किया बल्कि 'ज़िम्मेदार महिला नागरिकों' के रूप में 'बनने वाले नए राष्ट्र में महिलाओं की नई भूमिका को भी देखने की कोशिश की ।' ¹³¹ इस बात के बावजूद कि अधिकांश पत्रिकाओं का खर्च पुरुषों द्वारा ही वहन किया जा रहा था, उन्होंने 'पुरुष सुधारकों द्वारा लम्बे समय से महिलाओं के लिए उचित बताये गए विचार' के विरुद्ध लड़ाई लड़ी । ¹³²

इन पत्रिकाओं द्वारा महिलाओं के लिए औपनिवेशिक शिक्षा का गुणगान करना गीता प्रेस द्वारा महिलाओं को आंतरिक दायरे तक सीमित करने वाली, घरेलू और नैतिकता में उलझाने वाली कोशिशों के सामने बड़ी चुनौती था जहाँ पुरुष बाहरी दुनिया के सर्वेसर्वा बने बैठे थे ।

गीता प्रेस के लिए महिलाओं से जुड़े धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मामले महत्वपूर्ण थे। जिन्हें वह पुरुषों द्वारा संपादित अपनी पत्रिका *कल्याण* के माध्यम संबोधित किया करता था। इसके अधिकांश लेख पुरुषों द्वारा लिखे जाते थे जिनमें वे महिलाओं को परिवार और देश के प्रति उनकी ज़िम्मेदारी याद दिलाया करते थे। इन ज़िम्मेदारियों को शास्त्रों व नियमों के कठोर पालन से प्राप्त किया जा सकता था। चूंकि *कल्याण* को स्त्री-पुरुष दोनों ही पढ़ सकते थे, इसलिए हिन्दू परिवारों में इसकी पहुँच आसानी से संभव हो सकी। *कल्याण* ने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के अपने वादे को लिंग निरपेक्ष होकर सभी पाठकों हेतु पूरा किया।

गीता प्रेस का अराजनीतिक बने रहना भी *कल्याण* के लिए फ़ायदेमंद साबित हुआ। कम-से-कम आरम्भिक एक दशक के बारे में तो यह कहा ही जा सकता है। सरकार या कांग्रेस की आलोचना करता हुआ कोई लेख कभी-कभार ही दिखाई देता था, लेकिन पत्रिका ने पूरी तरह सुनिश्चित किया कि वह औपनिवेशिक सरकार से न उलझे क्योंकि चाँद और हिन्दू पंच ऐसा कर चुके थे। यह 1940 का दशक था जब *कल्याण* की ओर से किया जा रहा हिंसा का खुलेआम समर्थन पकड़ में आया और उस पर सरकार की ओर से कार्रवाई की गई। शुरुआती वर्षों के गैर-टकराव तथा बड़े मारवाड़ी नेटवर्क द्वारा *कल्याण* को पूरे भारत में निःशुल्क वितरित करने के उद्यम ने इसे वह फ़ायदा पहुँचाया जो इससे पहले किसी भी स्त्री विषयक पत्रिका को नहीं मिला था। कुछ ही सालों में *कल्याण* की प्रसार संख्या बढ़ कर कई लाख हो गई, जिसने इसे ईर्ष्या योग्य बना दिया।

यह गीता प्रेस की समझदारी का नतीजा था कि उसने महिलाओं के मुद्दों पर सिर्फ़ पुरुषों को लिखने की अनुमति नहीं दी। *कल्याण* के पृष्ठों में महिलाओं का भी स्वागत हुआ। यहाँ तक कि पाश्चात्य स्कूलों और विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त महिलाओं को भी इसने लेखकीय योगदान के योग्य समझा। लेकिन ये स्त्रियाँ आदर्श नारी थीं, जो हिन्दू संस्कारों से इतनी गहराई से जुड़ी थीं कि औपनिवेशिक शिक्षा का 'दूषित' प्रभाव उनकी आत्मा को छू भी नहीं पाया था। ये वो महिलाएँ थीं जो आधुनिक शिक्षा के बावजूद महिलाओं को निजी दायरों में रखे जाने की पक्षधर थीं। *कल्याण* के लिए किया गया उनका लेखन न तो 'महिलाओं की वास्तविक दुनिया की छवि उकेरता है और न ही उनके वास्तविक अनुभव ही।' [133](#)

कल्याण में असहमति के स्वरों का स्वागत नहीं किया गया। उस समय की दो महान लेखिकाओं सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा को पत्रिका में कहीं जगह नहीं मिली, न तो आदर्श नारी के रूप में और न ही लेखकीय योगदान में। सुभद्रा कुमारी चौहान उम्र में महादेवी से बड़ी थीं। दोनों इलाहाबाद के कन्या विद्यालय में पढ़ती थीं और दोनों में मित्रता थी। चौहान सार्वजनिक दायरों की एक महिला थीं जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में सत्याग्रही बनने की राह में अपनी रूढ़िवादी पृष्ठभूमि को रोड़ा नहीं बनने दिया और महिला समानता पर लिखने वाली लेखिका बनीं। [134](#)

महादेवी वर्मा निजी व सार्वजनिक दोनों स्तरों पर क्रांतिकारी थीं। अपने दादा के दबाव में आकर नौ साल की उम्र में विवाहिता बनी महादेवी ने कॉलेज पूरा करने के बाद अपने पति के साथ जा बसने से इंकार कर दिया। घर में रहते हुए उनका समय पढ़ने-लिखने और साहित्यिक रुचियों में गुज़रा। महादेवी ने चाँद में कवयित्री व लेखिका की अपनी पहचान बनाई और आगे चलकर हिन्दी कविता के छायावादी आंदोलन के चार स्तंभ कवियों में से एक के रूप में स्थापित हुईं। विवाह को तोड़कर ताउम्र अकेले रहने के निर्णय ने उन्हें गीता प्रेस के लिए परित्यक्त बना दिया। प्रयाग महिला विद्यापीठ के माध्यम से महिला शिक्षा के लिए किया गया उनका काम सब दिन याद किया जाएगा जहाँ उन्होंने 'औपचारिक प्रामाणिकता के बाद निजी अध्ययन' जैसे प्रयोग किए।' ¹³⁵ उनके इस कार्य ने उस नैतिक व्यवस्था को ही चुनौती दे दी जिसे गीता प्रेस स्थापित करना चाह रहा था।

गीता प्रेस द्वारा थोपी गई सीमाओं के भीतर रह कर *कल्याण* के लिए लिखने वाले हज़ारों लेखकों में से मात्र तीन ऐसे लेखक हुए जो घर से बाहर अपनी उपलब्धियों के कारण जाने गए। लिहाज़ा *कल्याण* के लिए लेखन करते हुए भी उन्होंने खुद को विषय तक सीमित रखा और महिलाओं के बारे में पत्रिका की निर्धारित राय को भी चुनौती नहीं दी।

मद्रास के एक शिक्षित परिवार से आने वाली आर एस सुब्बालक्ष्मी को बहन सुब्बालक्ष्मी कहा जाता था। इंजीनियर पिता और गृहिणी माँ के घर सन् 1886 में जन्मी सुब्बालक्ष्मी का विवाह चार साल की पढ़ाई के बाद ही ग्यारह की उम्र में हो गया था। वैधव्य ने उन्हें वापस उनके पिता के घर तंजौर जिले पहुँचा दिया। पिता सुब्रमणिया अय्यर ने वैधव्य के नियमों को मानने के बजाय अपनी बेटी को पढ़ाना शुरू किया। ब्राह्मणवादी रूढ़ियों के गढ़ तंजौर के हिंसात्मक विरोधों से बचने के लिए परिवार ने वापस मद्रास शहर की राह ली। घर और कान्वेंट स्कूली शिक्षा के मिले-जुले माहौल में सुब्बालक्ष्मी ने दसवीं पास की और प्रेसीडेंसी कॉलेज से जुड़ीं जिससे उन्हें एक बार फिर परंपरावादियों के प्रकोप का सामना करना पड़ा। 'उन्हें धर्म से बहिष्कृत करने की धमकी मिली, गलियों में उनपर छींटाकसी हुई और उन्हें कक्षाओं में उपेक्षा का सामना करना पड़ा।' ¹³⁶

ग्रेजुएट होने के बाद सुब्बालक्ष्मी ने पिता के घर विधवाओं के लिए एक स्कूल खोला। कोयम्बटूर में महिला शिक्षा की इंस्पेक्टर मिस क्रिस्टीना लिंग के समर्थन से सुब्बालक्ष्मी ने मद्रास के ट्रिप्लिकेन स्कूल को स्थानान्तरित किया। यह जगह पहले बर्फ़ घर हुआ करती थी और इन कारणों से उन्होंने स्थानीय रूढ़िवादियों की घृणा झेली। उसके बाद उन्होंने शारदा विद्यालय खोला। यह वयस्क विधवाओं के लिए बोर्डिंग स्कूल था। बहरहाल, यह स्कूल उस दकियानूसी ढर्रे पर चलाया गया जो खुद उनके अपने विधवा जीवन के विपरीत था।

सन् 1958 में पद्मश्री से सम्मानित सुब्बालक्ष्मी ने *कल्याण* के लिए 1930 के दशक में लेखन कार्य किया था। लेकिन हमें स्त्री शिक्षा की दिशा में किए गए बड़े काम पर आधारित उनका लिखा एक भी लेख नहीं मिला। उन्होंने *कल्याण* के लिए चार लेख लिखे जो ईश्वर की एकात्मता, शिव, कृष्ण और आध्यात्मिक शक्तियों पर थे। गीता प्रेस द्वारा विषयों का यह चुनाव बतौर एक शिक्षाविद उनकी पहचान को नज़रअंदाज़ करने की सोची-समझी रणनीति थी।

विजयलक्ष्मी पंडित में वह सब कुछ था जिसे गीता प्रेस हिन्दू स्त्री में नहीं देखना चाहता था। जवाहरलाल नेहरू की बहन, पहले घर पर अंग्रेज़ शिक्षक द्वारा पढ़ी और फिर विदेश में शिक्षा प्राप्त विजयलक्ष्मी ने सन् 1930 के आस-पास सार्वजनिक जीवन में क़दम रखा। सन् 1937 में वे संयुक्त प्रांत की प्रांतीय सभा में निर्वाचित हुईं और मंत्री बनीं। उन्होंने एक बैरिस्टर और राष्ट्रवादी रणजीत सीताराम पंडित से अपनी पसंद से विवाह किया। एक सफल कूटनीतिज्ञ विजयलक्ष्मी ने विभिन्न देशों में भारतीय राजदूत के तौर पर सेवा दी। सन् 1953 में यूएन जनरल असेम्बली में पहली महिला अध्यक्ष के रूप में उनका चुनाव एक बड़ी उपलब्धि थी।

पोद्दार शायद विजयलक्ष्मी पंडित को बतौर लेखिका कभी शामिल नहीं करते लेकिन 1960 के दशक के मध्य उनका लेख '*आज का भारत*' हिन्दी के दैनिक *नवभारत टाइम्स* में हिन्दी में छपा और पोद्दार की नज़र में आया। *कल्याण* ने इसे संपादकीय टिप्पणी के साथ पुनः प्रकाशित करते हुए विजयलक्ष्मी द्वारा दी गई आधुनिकता की परिभाषा के लिए उनकी तारीफ़ की।¹³⁷ पोद्दार ने अपने पाठकों से विजयलक्ष्मी के लेख से सीखने और अपने आस-पास हो रहे सभी परिवर्तनों को आधुनिक मानने की भूल करने से बचने को कहा।

विजयलक्ष्मी पंडित ने विदेश के अपने कई अनुभव लिखे थे। उन्होंने यह भी लिखा कि किस तरह उन्होंने पाश्चात्य जीवनशैली के सामने झुकने से इंकार किया। सन् 1954 में जब वे जापान में महिलाओं के एक समूह को व्याख्यान देने गई थीं तब एक युवा महिला ने उनसे यहाँ तक पूछ लिया कि 'आप भारत का परंपरागत परिधान पहनी हुई हैं अतः आपके विचार आधुनिक कैसे हो सकते हैं?'

जब यह सवाल खड़ा हुआ कि इंग्लैंड की रानी एलिजाबेथ और राजघराने के अन्य सदस्यों का अभिवादन किस तरह किया जाये तो विजयलक्ष्मी पंडित ने कहा कि जहाँ एक ओर बहुत-सी 'आधुनिक' भारतीय महिलाएँ पश्चिमी तौर-तरीकों के लपेटे में आ गई हैं, वहीं उन्होंने नमस्कार की हिन्दू व्यवस्था को ही तरजीह दी। और उन्होंने पाया कि वहाँ मौजूद बहुत-से लोगों ने इसे ही अपनाया। आगे, जब एक राजनयिक की पत्नी को पोप से मिलने का अवसर मिला तब भी यह सवाल उठा कि उनका अभिवादन कैसे किया जाये! वैटिकन के अधिकारियों ने उन्हें तब भी नमस्कार करने को कहा।

विजयलक्ष्मी पंडित ने बताया कि वे जहाँ भी रहीं, वहाँ उन्होंने भारतीय भोजन को ही अपनाए रखा। यहाँ तक कि विदेशी मेहमानों तक के लिए भी भारतीय थाली ही परोसी जाती थी। वे कांटे-चम्मच से खाने की बजाय हाथ से खाना पसंद करती थीं। उन्होंने भारत में आपाधापी में आधुनिक होते हुए लोगों के बारे में बात की। खासकर महिलाओं के पहनावे के बारे में चिंता व्यक्त की कि कहीं इस वजह से साड़ी, सलवार, कमीज पूरी तरह खत्म ही न हो जाएँ।

भारतीयों को लेकर पंडित की नाराज़गी इस बात के लिए थी कि वे अंग्रेजों की नक़ल तो करते हैं लेकिन वे नहीं समझ पाते कि अंग्रेज़ भारत पर राज करने में सफल क्योंकर हो पाए! उन्होंने कहा, इस मानसिकता का सबसे खराब उदाहरण है, भारतीयों द्वारा अपनी मातृभाषा को छोड़ते हुए लगातार अंग्रेज़ी की राह चलते जाना। उन्होंने बचपन की बात को याद करते हुए कहा कि उनके घर के माहौल में अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य को ज़्यादा महत्ता दी गई थी लेकिन तब भी घर के बच्चों के लिए हिन्दू या उर्दू में आपस में बात करने को प्रोत्साहित किया जाता था। उन्होंने लिखा ‘हमने अपने संस्कार एवं ठोस जीवन मूल्यों को मिटा दिया और इस प्रकार हम घाटे में ही रहे। हमारे यहाँ जीवन के उदात्त और महान गुण थे, व्यवहार में न लाने के कारण, हम उन्हें खो बैठे हैं। उनके स्थान पर जो नए तौर-तरीक़े अपनाए गए थे वे नए संसार के प्रतीक हो सकते हैं परंतु यह निश्चित है कि वो हमारे लिए उपयुक्त नहीं हैं।’

रेहाना तैयबजी की दुनिया सुब्बालक्ष्मी और विजयलक्ष्मी पंडित की दुनिया से अलग थी। इनका पोद्दार के साथ राधा-कृष्ण वाला संबंध था। उनके जीवन पर एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी जा सकती है लेकिन यहाँ मैं अपनी बात को *कल्याण* के लिए लिखे गए उनके लेखन तक ही सीमित रखूँगा। रेहाना सन् 1936 में *द हार्ट ऑफ़ ए गोपी* लिख कर प्रसिद्ध हो चुकी थीं। यह एक कालजयी रचना बन गई जिसका अनुवाद कई यूरोपीय भाषाओं में किया गया और इसके उदाहरण हिन्दुवाद पर किए गए अकादमिक काम से लेकर आध्यात्मिक वेबसाइट और यहाँ तक कि बीटल्स के जॉर्ज हेरिसन के मैसेजबोर्ड पर भी जगह पा चुका है। [138](#)

कल्याण में रेहाना तैयबजी ने नौ लेख लिखे थे, जिसमें वार्तालाप शैली में चार सीधे कृष्ण पर थे। पोद्दार को रेहाना द्वारा लिखे गए अंतरंग भावनाओं से भरे पत्रों के विपरीत उनके लेख उनकी निजी अनुभवों की ‘रूपात्मक अभिव्यक्ति’ होने के बावजूद उनके जीवन के ‘यथार्थ विवरण’ थे।

वे एक ऐसे परिवार से थीं जहाँ महिलाओं ने आगे बढ़ कर पितृसत्ता से लोहा लिया था। रेहाना ने न केवल राष्ट्रीय संघर्ष में भाग लिया बल्कि सन् 1929 के शारदा एक्ट का भी समर्थन किया। उनकी सुधारवादी छवि और साथ ही अविवाहित होना भी एक वजह रही हो जिसके कारण पोद्दार ने उन्हें *नारी अंक* या *कल्याण* में स्त्री-केन्द्रित विषय पर लिखने के लिए नहीं कहा।

कल्याण ने लेखन के लिए केवल उन्हीं महिलाओं को चुना जो पुरुष दावेदारी के लिए चुनौती नहीं थीं, लेखिकाओं के इस चयन ने उसे पाठकों की नज़र में भला-भला बनाए रखा । खासकर उन लोगों के बीच जो पोद्दार के जीते-जी नैतिक और आध्यात्मिक चाह के लिए इस पर आश्रित थे । उसकी यह रूढ़िवादिता भी कल्याण की उन महिला पाठकों को आकर्षित करती रही जो समाज में हो रहे बदलावों के साथ तालमेल बैठाने के लिए संघर्ष कर रही थीं और कभी निजी पत्राचार के ज़रिए या कभी कल्याण के पृष्ठों के माध्यम से पोद्दार के साथ अपनी उलझनों को साझा करती थीं । पोद्दार ने अपने प्रति उनके भरोसे को हमेशा गंभीरता से लिया ।

अनुसूया देवी का ही प्रसंग अगर देखा जाये तो उन्होंने पोद्दार से अपने भयावह अनुभव साझा किए थे । उन्होंने बताया कि कई शहरों में मासूम और साधारण महिलाओं को उठा लिया जा रहा है और महिला एजेंटों के माध्यम से उन्हें आर्मी कैम्प भेजा जा रहा है । उन्होंने लिखा कि महिलाओं को जवानों के साथ सोने के लिए मज़बूर किया जा रहा था । हर महिला को चौबीस जवानों के साथ पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के लिए जबरन संभोग करना था । अनुसूया के अनुसार प्रति जवान मिलने वाली क्रीमत दस रुपए थी । और सुबह होते ही उन्हें वापस भेज दिया जाता । इन असहाय महिलाओं की महिला एजेंट को 100 रुपए मिलते थे । उन्होंने लिखा कि वे यकीन नहीं कर पा रही थीं कि भारतीय सरकार इस हद तक गिर सकती है । और जवानों के स्तर पर भी यह दुखदायी था । वे एक तरफ़ देशहित के लिए काम कर रहे थे और साथ ही ऐसे काम में लिप्त भी थे । इस तरह तो भारत का पाकिस्तान बनना तय है, ऐसा लिखते हुए अनुसूया ने पोद्दार को इस मामले में हस्तक्षेप करने को कहा । [139](#)

अनुसूया की ओर से आत्महत्या की धमकी ने ही शायद पोद्दार को तत्कालीन रक्षा मंत्री स्वर्ण सिंह को मदद हेतु लिखने को मज़बूर कर दिया: ‘उनकी अश्रुपूर्ण अपील है कि उनकी बहनों को इस घृणित कार्य से बचाया जाये, इसलिए मैं आप जैसे चरित्रवान और अनुशासित व्यक्ति से मदद की गुहार लगा रहा हूँ, इन हालात में जो बेहतर समझें वैसे उचित व आवश्यक क़दम उठाएं ।’ [140](#)

पोद्दार ने रक्षा मंत्री को ‘भारतीय सेना की गौरवपूर्ण छवि की याद दिलाई जो कभी विजित भू-भाग पर भी महिलाओं के शोषण में संलिप्त नहीं हुई ।’ उन्होंने अनुसूया की मांग को आगे बढ़ाते हुए इसकी जांच किए जाने को कहा । और सही साबित होने पर तत्काल ‘कड़ी’ कार्रवाई करने को कहा । स्वर्ण सिंह ने क्या जवाब दिया, इसका पोद्दार के कागज़ात में कहीं ज़िक्र नहीं मिलता है । लेकिन इससे गीता प्रेस की हिन्दू महिला की पवित्रता की रक्षा करने वाली सार्वजनिक धारणा को मज़बूती मिलती है ।

लड़कों के लिए शिक्षा

गीता प्रेस का नैतिक संसार महिला केंद्रित ही था जबकि पुरुष और बच्चे, खासकर लड़के उसी केंद्र बिंदु की परिक्रमा कर रहे थे। धार्मिक ग्रंथों की जानकारी रखने वाली महिलाओं से यह उम्मीद होती थी कि वे घर का माहौल बेहतर बनाए रखेंगी और घर के पुरुषों को पाश्चात्य प्रभावों से सुरक्षित रखकर हिन्दू मूल्यों व नीतियों के प्रति निष्ठावान बनाए रखेंगी। औपनिवेशिक शिक्षा की वजह से अपने धर्म से विमुख होते हिन्दू पुरुष और इसके परिणामस्वरूप समुदाय की शक्ति में निरंतर आती गिरावट गीता प्रेस की स्थायी चिंताओं में से एक थी।

गीता प्रेस ने पूरे देश को एक कक्षा की तरह देखा और इसकी पत्रिका *कल्याण* व सैकड़ों अन्य पुस्तकें शिक्षण के ही रूप थे। ¹⁴¹ प्रशिक्षण कार्य और हिन्दू लड़कों की शिक्षा की देख-रेख का काम औपनिवेशिक शिक्षा के समानांतर ही किया जा रहा था क्योंकि उस शिक्षा में 'देशज ज्ञान और सांस्कृतिक रूपों वाली शिक्षा की संभावना ही नहीं थी।' ¹⁴²

गीता प्रेस के लिए औपनिवेशिक शिक्षा से कहीं ज़्यादा खतरनाक पश्चिमी आदर्शों से ओत-प्रोत सामाजिक सुधारकों का लोगों पर बढ़ता प्रभाव था। जहाँ सुधारकों का मंसूबा यह था कि 'पश्चिम के उदारवादी दर्शन को राष्ट्रवादी अभियान में मिलाया' जाये वहीं पुनरुत्थानवादी भारत के प्राचीन इतिहास, इसकी विरासत, इसके धार्मिक ग्रंथ और महानायकों के बारे में 'जनता को उसकी अपनी परंपराओं का सांस्कृतिक प्रशिक्षण' देकर इसका इस्तेमाल औपनिवेशिक शासकों पर धावा बोलने के लिए करने का था। ¹⁴³

जनसाधारण को शिक्षित करने का कार्यभार अपने कंधों पर लेने के बाद उसका प्राथमिक केंद्र बिंदु लड़के बने। इस शिक्षा को बच्चे के बाहरी जगत में पहले क़दम यानी स्कूल जाने से पहले ही शुरू होना होता था। अगर महिलाएँ देश के 'वर्तमान' में योगदान दे रही थीं तो बच्चे, खास कर लड़के देश के 'भविष्य' के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थे। हो सकता है कि यह शैशव भारत के भविष्य के प्रति चिंता थी जिसके कारण भारत के गणराज्य बनने के तीन साल के भीतर ही *कल्याण* ने विशेषांक के रूप में *बालक अंक* निकालने का फैसला लिया, जबकि *नारी अंक* आज़ादी के एक साल के भीतर ही आ गया था।

बालक अंक के सन् 1953 तक हिन्दू राष्ट्रवादियों के बीच यह भावना बढ़ती जा रही थी कि नेहरूवादी भारत और उनके नए मंदिरों यानी बाँध और भारी उद्योग दरअसल हिन्दू राष्ट्र के उनके सपने से मेल नहीं खाते। *कल्याण* के इस विशेषांक में एक लड़के को आदर्श हिन्दू नागरिक बनाने हेतु सब कुछ शामिल था; नैतिकता के पाठ, राजनीति, धर्म, शारीरिक शिक्षा पर ज़ोर, धर्म ग्रंथ, पारिवारिक मूल्य, महापुरुषों की जीवनियाँ जैसे तिलक, गांधी, मालवीय, श्री अरविंद, चितरंजन दास, सुभाषचंद्र बोस, नेपोलियन, जॉर्ज वाशिंगटन, हेनरी डेविड थोरो, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बीरबल, ईश्वरचंद्र विद्यासागर आदि।

हिन्दू महासभा के नेता एन सी चटर्जी ने धर्मनिरपेक्षता की नीति को अपनाए जाने की सूरत में हिन्दुओं के अनिश्चित व अंधकारमय भविष्य के बारे में लिखा। ¹⁴⁴ चटर्जी के लेख ने हिन्दुत्व से लिपटे युवाओं को भड़काने का काम किया। उन्होंने कहा, हिन्दुत्व धर्मनिरपेक्षता और अन्य दुनियादारी की चीज़ों के महत्व को नकारता नहीं है लेकिन अगर देश सही दिशा में प्रगति करना चाहता है तो हिन्दू धर्म ही उसे आवश्यक ऊर्जा दे सकता है।

चटर्जी का गुस्सा पाकिस्तानी जेलों में बंद हिन्दुओं को रिहा करवा पाने में असमर्थ नेहरू सरकार से उपजा था। चटर्जी ने कहा कि जब उन्होंने मामले को लोकसभा में उठाया तो अल्पसंख्यक मामलों के प्रभारी मंत्री ने केवल इतना कहा कि उन्होंने पाकिस्तान सरकार को लिख भेजा है। ग्वालियर निर्वाचन क्षेत्र से संसद के सदस्य चुन लिए गए 'हिन्दू महासभा के सभापति डॉक्टर नारायण भास्कर खरे ने जब अपना उग्र विरोध प्रदर्शित किया तब भारतवर्ष के प्रधानमंत्री महोदय एवं ट्रेज़री बेंचों को सुशोभित करने वाले उनके अनुगत सहकारी लोग बगलें झांकने लगे।' उन्होंने कहा कि 'कायरता को छिपाने के लिए धर्मनिरपेक्षता की आड़ लेने वाले हमारे धर्मनिरपेक्ष शासन के नेताओं को कश्मीर और पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दू अल्पसंख्यकों की रक्षा करनी चाहिए।'।

चटर्जी ने कहा कि भारत का भविष्य साम्यवाद, मार्क्सवाद या गांधीवाद में नहीं है, बल्कि गीता में व्याख्यायित निःस्वार्थ सेवा के सिद्धांतों को मानने में है। उन्होंने हिन्दुओं से कहा कि अब बदलाव का बिगुल बज चुका है और अपवित्र शक्तियों से लड़ने का समय आ गया है, ऐसी हालत में ये अपने कदम पीछे न लें।

आरएसएस नेता माधवराव सदाशिव गोलवलकर ने एक बेहद जटिल लेख में समझाया कि पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति प्राप्त करने के लिए क्या ज़रूरी है! अभिभावकों से अनुरोध करते हुए गोलवलकर ने कहा कि बच्चे के पालन-पोषण को गंभीरता से लें। उन्होंने कहा कि सूचना और रटंत विद्या को महत्व देने वाली शिक्षा व्यवस्था बच्चे के मष्तिस्क में नैतिक मूल्यों को नहीं बैठा सकती। उन्होंने कहा कि शैक्षणिक संस्थान अपने आप को ऐसी फैक्टरी समझते हैं जिनका उद्देश्य नैतिक मूल्यों से विहीन निम्न दर्जे का नौकर पैदा करना है। ¹⁴⁵

उत्कृष्ट नैतिकतावादी युवाओं का निर्माण कई तत्वों पर निर्भर करता है जिसमें अभिभावकों से ग्रहण किए मूल्यों से लेकर सामाजिक संदर्भों से सीखे गए मूल्य सभी शामिल होते हैं। गोलवलकर ने उदाहरण देते हुए बताया कि किस तरह विरासती मूल्य सामाजिक प्रभावों में पड़ कर सम्मिलित भी रह सकते हैं और भ्रष्ट भी हो सकते हैं। गोलवलकर ने कहा कि सरदार पटेल की शोभायात्रा में शामिल होने के दौरान उन्होंने पाया कि यहाँ तक कि जवाहरलाल नेहरू और अन्य शोकग्रस्त थे व धीमी चाल से चल रहे थे, लेकिन भीड़ का एक हिस्सा उत्सव की तरह शोर कर रहा था। पूछने पर पता चला कि एक फ़िल्म अभिनेता की उपस्थिति से लोगों में उत्साह फैल गया जिससे वे

मौक्रे की गंभीरता भी भूल गए हैं। गोलवलकर ने कहा कि शिक्षा को सच्चे अर्थों में महान व्यक्तियों के प्रति सम्मान पैदा करने का माध्यम बनना चाहिए।

एन बी खरे ने एक संक्षिप्त संदेश के ज़रिए कहा कि बतौर भविष्य के नागरिक युवा देश के असली धन हैं। बच्चों को अनुशासनहीनता और उद्दंडता के परिणामों से परिचित करवाना चाहिए जो स्वयं में हमेशा धर्मनिरपेक्षता का राग अलापने, सिनेमा घरों की मौजूदगी और स्कूलों में धार्मिक शिक्षा की कमी के चलते उपजता है। ¹⁴⁶

हिन्दू युवाओं से चटर्जी, गोलवलकर और खरे की उम्मीदों के साथ उनके भीतर हिन्दू नैतिकता पैदा करने के कार्य में कई बाधाएं थीं। गीता प्रेस ने महसूस किया कि अश्लील साहित्य, पत्रिकाएँ और सिनेमा इन बाधाओं में सबसे ज़्यादा हानिकारक थे।

इन तीन अलग-अलग लेखों के ज़रिए *बालक अंक* ने मुद्रित शब्दों और गतिशील चित्रों के माध्यम से नैतिक संकट को उभार कर चित्रित किया। कहानियाँ, उपन्यास, ड्रामा सब अश्लीलता से भरे हुए हैं और ऐसा जान पड़ता है कि साहित्य में वासना व अनैतिकता का प्रकाश डालना ही कला रूप बन गए हैं। इस लेख में 'कला, कला के लिए' कथन की विशेष आलोचना यह कहते हुए की गई कि 'कला कला के लिए होती हो तो हुआ करे' लेकिन इस तरह की कला समाज के लिए अभिशाप है। ¹⁴⁷ अश्लील साहित्य जवान लड़कों पर और वयस्कों पर अलग असर डालती है। युवावस्था में सीखने और नक़ल करने की प्रवृत्ति होती है और इस समय 'उसे जो साहित्य मिलता है उसमें उसकी वासनाओं को उत्तेजित करने के साधन मिलते हैं।' इस तरह की नक़ल के खतरे हम देख ही चुके हैं, जहाँ पति के प्रति निष्ठा को दासता कहा जा रहा है। और लड़के-लड़कियाँ जिस तरह अपने शिक्षकों के प्रति शुष्क व्यवहार करने लगे हैं। इस लेख में सवाल खड़ा किया गया कि अश्लील साहित्य द्वारा युवा मष्तिष्कों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के बावजूद किस तरह उच्च गुणवत्ता की नैतिक शिक्षाओं को बनाए रखा जाये।

साहित्य से भी अधिक सस्ते व आसानी से उपलब्ध अखबार और पत्रिकाएँ जवान लड़कों के बीच अश्लीलता, उत्तेजक यौन इच्छाओं की वाहक बन बैठी हैं। *कल्याण* ने उन पर अश्लील कविताएँ और कहानियों के साथ औरतों की अर्धनग्न तस्वीरें छापने का आरोप लगाते हुए देश और समाज को अँधेरे कुएँ में धकलने के पीछे का मकसद पूछा। ¹⁴⁸ इसमें कहा गया कि एक बार लड़के को इस तरह के लेखों की आदत पड़ जाये तो वह उसे बार-बार पढ़ना चाहेगा और यहाँ तक कि छिप कर पढ़ने को अंजाम देगा। 'इसके साथ उसमें झूठ और छल आता है और आगे चलकर वह धृष्ट हो जाता है। उसमें आवारापन आ जाता है, गुरुजनों का अपमान करना, गंदे परिहास, महिलाओं को छेड़ना आदि उसके स्वभाव का हिस्सा बन जाते हैं। केवल वासना को उद्दीप्त करने वाले लेखों को बार-बार पढ़ने से ही उसे वीर्य संबंधी रोग हो जाएंगे। बार-बार इंद्रिय में उत्तेजना आने से बार-बार के मानसिक पाप से वह नपुंसकता के निकट अवश्य पहुंच जाएगा।' इस तरह होने वाले नैतिक पतन उसे भारत की प्राचीन विरासत, इतिहास,

रीति, संतों व महानायकों के प्रति अनादर से भर देंगे । इस लेख में बच्चों द्वारा पढ़ी जा रही व उपलब्ध सामग्री पर अभिभावकीय नियंत्रण की अपील थी ।

सिनेमा और फ़िल्म पत्रिकाओं से पहले गीता प्रेस ने साहित्य व पत्रिकाओं की आलोचना कर दी जिसे युवाओं के बीच नैतिक मूल्यों के क्षय का सबसे घटिया संवाहक समझा गया । *बालक अंक* ने सी राजगोपालाचारी, के एम मुंशी और अन्य विद्वानों व राजनेताओं के हवाले से कहा कि इस बात पर सबका एकमत है कि सिनेमा युवा पीढ़ी के दिमाग व शरीर पर बुरा असर डाल रहा है । ¹⁴⁹

सिनेमा पर यह आरोप लगा कि वह लड़के-लड़कियों में फैशन को लेकर एक पागलपन पैदा कर रहा है । *आवारा* और *बरसात* बुशर्ट से लेकर साड़ी तक सबके नाम मधुबाला, नर्गिस और सुरैया आदि अभिनेत्रियों के नाम पर रख दिए गए । इसके अलावा भी नई पीढ़ी पर सिनेमा कई अलग तरह से प्रभाव डाल रहा था । उपभोग की वस्तुओं के लिए मॉडल की ज़रूरत थी, साबुन के लिफ़ाफ़े से लेकर सिर में लगाने वाले तेल की बोतल और यहाँ तक की दवाइयों तक, रोज़मर्रा की ज़िंदगी में अभिनेता सर्व विद्यमान थे । उनका प्रभाव महाविद्यालयी चुनावों पर असर डालने लगा जहाँ जीत सुनिश्चित करने के लिए बस कुछ अभिनेताओं के समर्थन की ज़रूरत थी ।

हिन्दू देवी-देवताओं की छवि को लोकप्रिय बनाने के लिए काम कर रहे गीता प्रेस को यह कतई मंज़ूर नहीं था कि युवाओं के बीच भगवान की जगह फ़िल्मी कलाकार ले लें । सरकार से सिनेमा पर नियंत्रण की मांग करते हुए गीता प्रेस ने फ़िल्म पत्रिकाओं को प्रतिबंधित करने को भी कहा क्योंकि वे बच्चों को चमक-धमक और विलासिता की ओर खींचते हैं । *बालक अंक* ने यह भी कहा कि लड़के-लड़कियों के बीच बॉम्बे जाकर फ़िल्मों में किस्मत आजमाने के नाम पर घर से भागने का चलन भी बढ़ गया है । इसकी बदौलत, काम की कमी से लड़कियाँ अक्सर वेश्या बन जाती हैं । जबकि लड़के अपना सारा पैसा रुपया फूँक कर वापस घर लौट आते हैं । पाठकों से अनुरोध किया गया कि वे प्रकाशनों पर ऐसी विषयवस्तु को ठीक करने का दबाव बनाने के लिए फ़िल्म पत्रिकाओं की सदस्यता बंद कर दें जिन्होंने लोगों की उदारता, नैतिकता और शिष्टाचार को नष्ट कर दिया है ।

एक अन्य लेख में यह सलाह थी कि मनोरंजन के बजाय फ़िल्मों को बच्चों की शिक्षा का एक साधन बनना चाहिए । क्योंकि दृश्यों व ध्वनियों का संयोजन जटिल मुद्दों को भी आसानी से ग्राह्य बना देता है । बाल शिक्षा एक व्यापक प्रयोग है । इसके अंतर्गत कई शिक्षाएं आ जाती हैं । साहित्यिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, भौगोलिक शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा, ऐतिहासिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा आदि थोड़े से शिक्षा के प्रधान अंग हैं जिन पर ज़ोर देना मनुष्य का कर्तव्य हो जाता है...हमारे देश की ऐसी आर्थिक परिस्थिति नहीं है कि हम बड़े-बड़े चलचित्रों का निर्माण कर उसके द्वारा यह समस्त शिक्षा प्रदान कर सकें । हमें तो ऐसे अल्प मूल्य वाले तथा छोटे चलचित्रों का निर्माण करना होगा जिनके द्वारा हम गांव-गांव में शिक्षा का प्रचार कर सकें ।' ¹⁵⁰

अपनी संपादकीय टिप्पणी में पोद्दार ने माना कि सिनेमा पर पूर्ण प्रतिबंध असंभव है। लिहाज़ा, उन्होंने सिनेमा को सामाजिक प्रासंगिकता के अनुसार ढालने के लिए सुधार किए जाने की सलाह दी। 'प्रथम तो इसमें से स्त्री अभिनेत्री को सर्वथा निकाल देना चाहिए, सारी बुराई की जड़ यही है और दूसरे मन में विकार पैदा करने वाली कोई भी बात नहीं आनी चाहिए। एक बार हो हल्ला मचेगा और फिर अभ्यास हो जाएगा क्योंकि मनोरंजन की चीज़ तो रहेगी ही सिर्फ़ बुराई निकल जाएगी।' ¹⁵¹ सेंसर बोर्ड भी अपनी तरफ़ से बदलावों को आगे ले जा सकता है।

पोद्दार और उनके करीबी लोग बन रही फ़िल्मों और उनके विषयों पर यथासंभव नज़र बनाए रखते। सन् 1957 में जयदयाल डालमिया की ज्येष्ठ संतान विष्णु हरि डालमिया ने सूचना व प्रसारण मंत्री को लिख कर 'मिथकीय कहानियों/पौराणिक कहानियों को लगातार तोड़-मरोड़ कर दिखाए जाने (जिस पर उनके कई प्रोडक्शन निर्भर हैं)' फ़िल्म निर्माताओं के खिलाफ़ शिकायत दर्ज करवाई। इस शिकायत में यह भी कहा गया कि हमारे मिथक जनसाधारण को जो सिखाना चाहते थे वह सिखाने के बजाय ये आम आदमी के मन में हमारे धर्म और हमारे आराध्यों के प्रति असम्मान पैदा कर रहे हैं। ¹⁵² ये विष्णु हरि के विहिप से जुड़ने के पहले की बात है लेकिन उनके साम्प्रदायिक सुर और अभिप्राय ज्यों-के-त्यों थे। उन्होंने सूचना व प्रसारण मंत्री को बताया कि 'यह हमारे हिन्दू समाज के लिए त्रासद है कि उन्हें फ़िल्म निर्माताओं द्वारा इस तरह की बुनियादी बातों के उल्लंघन को बर्दाश्त करना पड़ रहा है।' उन्होंने मंत्री को याद दिलाया कि 'कोई अन्य समुदाय इसकी स्वीकृति नहीं देगा।' और उदाहरण (किसी विशेष घटना का ज़िक्र किए बिना) देकर कहा कि मुसलमानों और ईसाईयों ने उनके धर्म से जुड़े पहलुओं के ग़लत दिखाए जाने के कारण फ़िल्मों पर रोक लगवाई है। उन्होंने कहा कि मिथकीय फ़िल्मों पर ध्यान देने के लिए फ़िल्म सेंसर बोर्ड की कार्यप्रणाली को संचालित करने वाले नियमों में आरंभिक और उचित प्रावधानों की आवश्यकता है।

कुछ ही महीनों के भीतर डालमिया को विशेष तौर पर एक फ़िल्म में हिन्दू पौराणिकता से हुई छेड़छाड़ की शिकायत मिली। फ़िल्म का नाम *राम-हनुमान युद्ध* था जिसमें राम और हनुमान को आपस में युद्ध करते हुए दिखाया गया था, जबकि रामायण में हनुमान राम के अनुचर हैं। क्रोध से भरे डालमिया ने सेंसर बोर्ड से शिकायत की, तो बोर्ड ने प्रतिक्रिया देते हुए लिखा कि उन दोनों के बीच ऐसे एक युद्ध का संदर्भ *सुदर्शन संहिता* में मिलता है। डालमिया ने तब मामला चिम्मनलाल गोस्वामी के पास बढ़ा दिया। ¹⁵³ तीन दिन के भीतर डालमिया को सूचित किया गया कि वाल्मीकि के *उत्तर रामायण* में भी ऐसे एक युद्ध का वर्णन है। लेकिन तब भी डालमिया आश्वस्त होना चाहते थे और उन्होंने गोस्वामी से इस पर आगे जांच करने के लिए कहा। ¹⁵⁴

पोद्दार सन् 1965 के लगभग ही राज्य अधिकृत दूरदर्शन से खिन्न नज़र आए । वे इसलिए परेशान थे कि फ़िल्म *बाल रामायण* दिखाए जाने के तुरंत बाद विदेशी फ़िल्म *बुल फ़ाइटिंग* दिखाई गई । इस फ़िल्म में तलवार व अन्य हथियारों के दम पर एक सांड को विवश करते हुए... घसीटते हुए और मारते हुए दिखाया गया । पोद्दार ने सूचना एवं प्रसारण मंत्री सत्यनारायण सिन्हा को बताया कि इस फ़िल्म में सांड के मांस को चीरते हुए, काटते हुए और खाते हुए दिखाए गया । पोद्दार ने दावा किया कि *बुल फ़ाइटिंग* ने हिन्दू भावनाओं को आहत किया है और इस सिलसिले में उन्होंने सिन्हा से निवेदन किया कि वे आश्वस्त करें कि ‘राम-कृष्ण, महात्मा गांधी के देश में’ ऐसी फ़िल्मों का प्रसारण कभी न हो ।’ [155](#)

साहित्य, पत्रिकाएँ और सिनेमा की इस त्रयी में गीता प्रेस ने सौंदर्य प्रसाधनों व खूबसूरत दिखने के प्रति सनक को भी एक अन्य कारक की तरह देखा जो भारतीय युवा, लड़के-लड़कियों दोनों को ही बिगाड़ रहे हैं । *बालक अंक* का एक लेख पंजाब से आए शरणार्थियों के खिलाफ़ गहरे बसी हुई पूर्वग्रह का प्रमाण बना, खास कर लड़कियों और औरतों को लेकर, जिनका अपने आंतरिक सौंदर्य पर कम और बाहरी सौंदर्य पर अधिक ध्यान देने के कारण उपहास किया गया । [156](#) अपनी बात मनवाने के लिए एक कहानी कही, जिसमें कहा गया कि स्वतंत्रता पश्चात् शरणार्थी कैम्पों में रह रही कुछ लड़कियों ने सरकारी अधिकारियों से कम सौंदर्य प्रसाधनों की आपूर्ति के सिलसिले में शिकायत की । इस लेख में आगे लिखा गया, ‘आज भी इसके (पाउडर, स्नो, सेंट, क्रीम, लिपस्टिक) बहुत अधिक उदहारण पाए जाते हैं विशेषतया पंजाब से आए उत्पीड़ितों में, आर्थिक दृष्टि से जीवन उनका बहुत ही कष्टप्रद है । भोजन एवं वस्त्र की चिंता उन्हें नित तंग करती रहती है; किंतु इतने पर भी विलासिता की ये सामग्रियां उनका पर्याप्त धन चूसे लेती हैं ।’

इस लेख में आगे कहा गया कि सौंदर्य प्रसाधन न केवल एक परिवार की आय का हिस्सा निचोड़ लेते हैं बल्कि चरित्र और स्वास्थ्य भी नष्ट करते हैं । बहरहाल, इसकी आलोचना का आधार महिलाओं के पितृसत्तात्मक नियंत्रण की दहलीज़ लांघने को लेकर असुरक्षा का भाव था, और वहीं से नैतिकता की रक्षा के सिलसिले में इस तरह के तर्क चल निकले जो स्त्री व पुरुष दोनों ही आज भी प्रयोग करते हैं, ‘ये लड़कियाँ तितलियों की भांति सजकर नंगे सिर, खुली भुजाएं, अपने अर्द्धनग्न शरीर का प्रदर्शन करती बाज़ारों में निकलती हैं और फिर शिकायत करती हैं कि लोग इन्हें घूरते हैं, छेड़ते हैं । अपने को इस प्रकार प्रदर्शन की वस्तु बनाने का तात्पर्य दूसरा क्या हो सकता है?’

‘महिलाओं को अपने पति के लिए ही सजना चाहिए’, वाला पुराना तर्क दोहराते हुए इस लेख में एक और आपत्तिजनक कथन शामिल था, ‘मुझे स्मरण है कि बचपन में हमारे यहाँ यह धारणा थी कि मुख को सजाकर, भड़कीले वस्त्र पहनकर, जूते खटकाती, पुरुषों के मध्य निर्लज्जतापूर्वक चलने वाली स्त्री वेश्या ही हो सकती है किंतु आज तो भले घर की लड़कियाँ इस प्रकार बाज़ारों में निकलती हैं कि कदाचित वेश्याएं

भी उतनी निर्लज्जतापूर्वक, उतनी सज-धज के आज से 25-30 वर्ष पूर्व बाज़ारों में नहीं निकलती होंगी ।’

बालक अंक ने यह दावा किया कि देश में अच्छे बाल साहित्य की कमी का ही नतीजा है कि अश्लील साहित्य और फ़िल्मी पत्रिकाएँ फल-फूल रही हैं । हिन्दी जगत के बड़े लेखक व उसकी आंतरिक राजनीति में भागीदार बनारसीदास चतुर्वेदी ने पूछा कि क्यों भारत जैसे एक देश में, जहाँ हर दिन नौ हज़ार बच्चे जन्म लेते हैं वहाँ दस-बीस लेखक विश्व के बाल साहित्य का अध्ययन कर उसमें से बेहतरीन रचनाएँ चुन कर भारतीय बच्चों के लिए प्रस्तुत नहीं कर पा रहे? [157](#) हालाँकि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के समर्थक चतुर्वेदी पूरे विश्व से अच्छा बाल साहित्य उधार लेने के पक्षधर नहीं थे । उन्होंने देश के प्राथमिक स्कूलों की ज़रूरतों का अध्ययन करने वाली किसी समिति का गठन नहीं किए जाने को लेकर सरकार की आलोचना की । ‘अंग्रेज़ी लेखक और कवि जी के चेस्टरटन को उद्धृत करते हुए चतुर्वेदी ने कहा कि बाल साहित्य की महत्वपूर्ण ज़रूरतों में से एक है कि कहानियों के साथ चित्रों को भी प्रकाशित किया जाये । उन्होंने सुझाव दिया कि बच्चों के लिए हिन्दू तीर्थ स्थलों को आसानी से चित्रांकित किया जा सकता है ।’

शिक्षण और पाठ्य-पुस्तकों की गुणवत्ता से असंतुष्ट गीता प्रेस ने स्कूली विद्यार्थियों के लिए *बालक अंक* को ही अतिरिक्त पठनीय सामग्री में शामिल करने के विचार को प्रस्तुत किया । कांग्रेस के पुरातनपंथी नेता रविशंकर शुक्ल के कार्यकाल में मध्य प्रदेश उन शुरुआती राज्यों में से पहला था जहाँ प्रतियोगिताओं में दिए जाने वाले पुरस्कार के लिए *बालक अंक* की खरीद को मंजूरी दी गई और राज्य के स्कूल पुस्तकालयों में भी रखवाया । [158](#)

पोद्दार ने दावा किया कि सन् 1948 और 1956 के दौरान अस्तित्व में रहे पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य संघ (पेप्सू) में भी सरकार ने स्कूल पुस्तकालयों के लिए *बालक अंक* की खरीद की मंजूरी दी थी । [159](#) सन् 1948 में गठित सौराष्ट्र और विंध्य प्रदेश की सरकारों ने भी *बालक अंक* की खरीद की । [160](#)

1930 के दशक के मध्य जब गीता प्रेस ने गीता सोसाइटी को शुरू किया तब पोद्दार ने स्कूलों में गीता को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल किए जाने और स्कूल की पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित करने का प्रस्ताव आगे बढ़ाया था । इसे तत्काल प्रतिक्रिया मिली । सुदूर स्थित कुंज (वर्तमान में पाकिस्तान के पंजाब प्रांत, गुजरात का एक जिला) से श्री कृष्ण हाई एंड मिडिल स्कूल फॉर बॉयज़ एंड गर्ल्स के प्रधानाचार्य ने पोद्दार से ऑर्डर करने के लिए पुस्तकों की सूची मंगवाई । वे एक साल पहले ऋषिकेश में पोद्दार से मिले थे जहाँ इस प्रस्ताव पर चर्चा हुई थी । प्रधानाचार्य ने पोद्दार से ‘पंजाब के उच्चतर, माध्यमिक व प्राथमिक स्कूलों के लड़के-लड़कियों के लिए पुस्तकों का सही चुनाव करने में सहायता मांगी थी, क्योंकि उनकी हिन्दी कमज़ोर थी’ [161](#) इसके अलावा

असम से असम संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष ने पोद्दार को सूचित किया कि गीता या इसके कम-से-कम कुछ अध्याय पहले से ही विभिन्न स्तरों पर पढ़ाए जा रहे थे । [162](#)

बहुत जल्द ही और संस्थान भी बच्चों के पाठ्यक्रमों पर विशेषज्ञता के कारण गीता प्रेस के दरवाजों पर दस्तक देते नज़र आए । सन् 1929 में गठित, पिलानी स्थित बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट का संचालन लेफ्टिनेंट कमांडर सुखदेव पांडेय के हाथों में था । यह ट्रस्ट जी डी बिड़ला की निगरानी में राजस्थान में बहुत-से स्कूल संचालित करता था । सन् 1957 में पांडेय ने पोद्दार को बच्चों के लिए धार्मिक व नैतिक शिक्षा केंद्रित पुस्तकें छापने के लिए गीता प्रेस की प्रशंसा करते हुए पत्र लिखा । पांडेय ने कहा कि हिन्दू घरों में धार्मिक और नैतिक शिक्षा तकरीबन न के बराबर थी जबकि रीति-रिवाज अब भी बरते जाते हैं, लेकिन कम लोगों को ही इनकी सच्ची समझ है । उन्होंने कहा कि मंदिर जाना घट कर पुष्प समर्पण तक आ गया, बिना यह समझे कि इस विधि के पीछे क्या उद्देश्य रहा है । उन्होंने पोद्दार को बताया: ‘मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप बच्चों के धार्मिक तथा नैतिक जीवन से संबंध रखने वाली कुछ अच्छी पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं परंतु ऐसी पुस्तकों का अभाव है जिसके द्वारा छोटे विद्यार्थी स्वयं पढ़ सकें और ज्ञान प्राप्त कर सकें ।’ [163](#)

पांडेय ने कहा कि अपने इस प्रयोजन को वे बीइटी संचालित स्कूल के शिक्षकों के समक्ष रख चुके हैं । उन्होंने धर्म आधारित पुस्तकों और कक्षा दस की नैतिक शिक्षा के लिए पांडुलिपियाँ तैयार की हैं । पांडेय ने जानना चाहा कि क्या पोद्दार इन पुस्तकों को चित्रों के संयोजन के साथ छापना चाहेंगे, और क्या लेखकों को उनका मेहनताना देना संभव हो पाएगा ।

पोद्दार इस समय अपने गाँव रतनगढ़ में थे । उन्होंने स्वीकार किया और पांडेय को बताया कि वे यह प्रस्ताव गीता प्रेस प्रकाशन समिति के समक्ष रखेंगे । उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि चूंकि गीता प्रेस सस्ते दामों पर प्रकाशन करता है तो लेखकों को रॉयलटी का वायदा नहीं किया जा सकता लेकिन उन्हें एक बार मानदेय दिया जाएगा । [164](#) पांडेय ने एकबारगी मेहनताना दिए जाने वाले इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और पोद्दार को कक्षा तीन से दसवीं तक के पाठ्यक्रमों की पांडुलिपियाँ भेज दीं । [165](#) फ़रवरी 1958 तक पोद्दार पांडुलिपियाँ देख चुके थे और पांडेय को बताया कि उन्हें पूरी उम्मीद है गीता प्रेस प्रकाशन समिति इसे आगे बढ़ाएगी । [166](#)

उसी माह प्रकाशन समिति ने पांडुलिपियों को देख परख लिया और उन्हें सैद्धांतिक अनुमोदन दे दिया । पोद्दार ने पांडेय को कुछ शर्तें भेजीं; गीता प्रेस के पास भाषा में बदलाव करने और पांडुलिपि में कुछ उदाहरण और यथासंभव अनुपस्थित घटनाओं को जोड़ने की आज़ादी हो । बदलाव की गुंजाइश के सिलसिले में पांडेय लेखकों से स्वीकृति ले लें । और तीसरा, गीता प्रेस को पुस्तकों के और संस्करण प्रकाशित करने की आज़ादी हो । [167](#) पांडेय ने सभी शर्तों पर मंजूरी दे दी । [168](#) लेकिन

ये पुस्तकें सन् 1959 के अंत तक ही छप सकीं। गीता प्रेस ने स्कूल के बच्चों के लिए धर्म और नीति पर पाठ्यपुस्तकें छापना जारी रखा।

गीता प्रेस की पॉकेट साइज़ रामायण और इसके प्रत्येक अध्याय के अलग-अलग प्रकाशन आसानी से लोकप्रिय शिक्षण के साधन बन गए। सन् 1970 में तुलसी जयंती उत्सव में इलाहाबाद जिला शिक्षण प्राधिकरण ने रामायण के *सुंदरकांड* की पॉकेट साइज़ प्रतियाँ पूरे जिले के साढ़े तीन लाख स्कूली बच्चों में वितरित करने का निर्णय किया। तब जिला शिक्षण अधिकारी केदारनाथ सिंह ने पोद्दार को यथाशीघ्र साढ़े तीन लाख प्रतियों को उपलब्ध करने के लिए पत्र लिखा। ¹⁶⁹

अगर *बालक अंक* ने देश के भविष्य को लेकर गीता प्रेस के सपने को प्रस्तुत किया तो पैंतीस साल बाद प्रकाशित *कल्याण* के *शिक्षा अंक* में एक के बाद एक आई सरकारों के दौरान पाश्चात्य शिक्षण के साथ नैतिक शिक्षा के सम्मिश्रण को मिली नाकामी का ब्योरेवार खुलासा था। सन् 1835 के मैकाले द्वारा लाई गई शिक्षा के ढांचे को विघटित कर पाने में मिली असफलता को विशेष तौर पर चिह्नित किया गया। ¹⁷⁰

शिक्षा अंक ने प्राचीन से समकालीन समय के सभी मुद्दों का विस्तारपूर्वक निरीक्षण किया। इसके पीछे का उद्देश्य आधुनिक राज्य नीतियों की गहरी आलोचना को प्रस्तुत करते हुए प्राचीन शिक्षण व्यवस्था की सर्वोच्चता को स्थापित करना था। शिक्षा शब्द मूलतः वैदिक आवधारणा के अनुसार 'देना' से उद्भूत है जबकि अंग्रेज़ी के शब्द 'एजुकेट' का अर्थ है विशेष प्रयोजन हेतु नियम आधारित शिक्षण। ¹⁷¹ सन् 1835 में मैकाले की शिक्षा नीति को अनभिज्ञता का परिणाम कह कर खारिज कर दिया गया क्योंकि वे शिक्षा के भारतीय विमर्श से अपरिचित थे, चाहे वह नचिकेता और यमराज के बीच का संवाद हो या *छान्दोग्य उपनिषद्* के शिक्षक और शिष्य के बीच संबंध से जुड़े कथन हों।

रामचंद्र शास्त्री विद्यालंकार ने अपनी कविता के माध्यम से शिक्षा के उद्देश्य की सटीक रूपरेखा खींची थी जहाँ शिक्षा के उद्देश्य का अर्थ था आदर्श हिन्दू बालक तैयार करना। ¹⁷² कविता का सार यह था कि अपने माता-पिता, शिक्षकों व राष्ट्र की सेवा करना प्रत्येक बच्चे के लिए सर्वोपरि धर्म है। बच्चों में धूर्तता या लोमड़ी जैसी चालाकी नहीं होनी चाहिए, धर्म, भगवान और सत्य में उसकी आस्था होनी चाहिए, और अपने समय व सह नागरिकों का सम्मान करना चाहिए। उसे मेहनती होना चाहिए, साहसी व निडर होना चाहिए, सौम्य, ज्ञानी, कुशल, संस्कारवान होना चाहिए। ज्ञान के मूलतत्त्व को आत्मसात करने के लिए कला, विज्ञान, दर्शन और नीति सीखनी चाहिए। फैशन, नाच गाना, और खर्चीलेपन से उसे दूरी रखनी चाहिए। और आगे चलकर ताश, चौपड़, शतरंज से भी दूरी बनानी चाहिए। शिक्षित बच्चों से कहा जाये कि वे आगे औरों को पढ़ाएं। पददलितों को शिक्षित करें और समाज की सेवा के नए रास्ते तलाशें।

शिक्षा पर निकले विशेषांक में सन् 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विरोध में तैयार की गई हिन्दू राष्ट्रवादी नेता महंत दिग्विजयनाथ की असहमति पूर्ण टिप्पणी

प्रकाशित की गई। हिन्दू महासभा के एक महत्त्वपूर्ण नेता दिग्विजयनाथ गोरखपुर से लोकसभा के स्वतंत्र सदस्य भी थे। उन्होंने सन् 1967 में आकार ले रही इस शिक्षा नीति का विरोध भी किया था। उन्होंने कहा कि इस नीति के साथ बुनियादी समस्या यह है कि इसे मूलतः 2 फ़रवरी 1835 ¹⁷³ की मैकाले की शिक्षा नीति को ही आधार मान कर बनाया जा रहा है। मैकाले का लक्ष्य था कि क्लर्कों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया जाये जो ब्रिटिश शासकों और गुलामों के बीच की कड़ी बने। मैकाले ने कहा कि ये रंग-रूप से भारतीय होंगे किंतु सोच-विचार, मूल्य और नैतिकताओं में ब्रिटिश हों।

महंत दिग्विजयनाथ ने यह बात दोहराई कि एक सदी से ज़्यादा गुज़रने पर भी मैकाले मानसिकता आज भी नीति-निर्माण पर अपना वर्चस्व बनाए हुए है। उन्हें विशेषकर इस बात ने परेशान किया हुआ था कि राष्ट्रीय अस्मिता के निर्माण की जगह भारत की विविधता की इस नई नीति को बढ़ावा मिल रहा है जो कि हिन्दू राष्ट्रवादियों की बहुसंख्यक राजनीति के बहिष्करण से ज़्यादा कुछ नहीं है। 'संसार में कोई भी बड़ा देश ऐसा नहीं जिसमें अल्पसंख्यक ना रहते हों किंतु इन अल्पसंख्यकों के कारण इन राष्ट्रों का स्वरूप नहीं बदल जाता। इसलिए आज का यह बहुचर्चित मत मूलतः असत्य है कि भारत एक बहुधर्मी और बहुभाषी देश है।'

अंग्रेज़ी को सह-राजभाषा का दर्जा दिए जाने के विचार का विरोध करने वाले दिग्विजयनाथ इस सम्मान का हक़दार संस्कृत को मानते थे और स्कूलों और कॉलेजों के पाठ्य-पुस्तकों को भारतीय भाषाओं में अनूदित करने के लिए एक बड़ा अनुवाद कार्यक्रम चाह रहे थे। अंतिम नीति में संस्कृत के प्रचार पर बात तो की गई लेकिन यह उत्तर प्रदेश के इस साधु राजनीतिज्ञ की आकांक्षाओं पर खरा नहीं उतर सका।

शिक्षा अंक में सन् 1986 में राष्ट्रीय विकास परिषद में प्रधानमंत्री राजीव गांधी द्वारा नई शिक्षा नीति पर दिए भाषण को प्रकाशित किया गया, इसके साथ ही इसमें उनके भाषण की आलोचना करते हुए एक लेख को छापा गया। ¹⁷⁴ नई शिक्षा नीति पर विचार करते हुए लेखक वेदराम शर्मा ने इसे 10+2+3 कहा और साथ ही इसे पुरानी और अधूरी योजना बताया जिसे सन् 1919 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में पहली बार प्रस्तावित किया गया था। उन्होंने तर्क दिया कि दस साल के लिए एक जैसी स्कूली शिक्षा व्यवस्था शहरी व ग्रामीण तथा लड़के और लड़की में कोई भेद नहीं करती। उन्होंने कहा कि यह एक समान पाठ्यक्रम 'विविधता में एकता' की कसौटी पर असफल है क्योंकि यह लैंगिक व सांस्कृतिक असमानताओं को दरकिनार करता है और शिक्षा व संस्कृति के बीच के संबंध को भी नज़रअंदाज़ करता है।

ग्रामीण बच्चों के लिए भिन्न शिक्षा व्यवस्था की मांग करते हुए शर्मा ने कहा कि देश असल में गाँवों में बसा है और ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह सिद्ध हो गया है कि ग्रामीण भारत के लोगों और संस्कृति पर आश्रित रहने वाला शहरी भारत दरअसल बदले में उन्हें कुछ नहीं देता, और इसका खामियाज़ा देश को उठाना पड़ता है। इस तरह उन्होंने एक समानांतर शिक्षा व्यवस्था का पक्ष लिया जो विशेष तौर पर गाँवों में रह

रहे लोगों की ज़रूरतों और उनकी आकांक्षाओं के अनुरूप हो। एक त्रि-स्तरीय योजना हो जिसमें प्राथमिक विद्यालय, ग्रामीण माध्यमिक विद्यालय और ग्रामीण विश्वविद्यालय हों।

शर्मा के तर्कों को उदारवादी शिक्षाविदों से पर्याप्त समर्थन मिलता लेकिन जैसे-जैसे उनकी मंशा सामने आने लगी वैसे-वैसे उनके तर्क लड़खड़ाने लगे। लैंगिक भेदभाव से परे की शिक्षा नीति से उनकी समस्या का लेना-देना लड़कियों के लिए अलग पाठ्यक्रम की ज़रूरत से था, ताकि लड़कियों को ऐसे जीवन के लिए तैयार किया जाये जो स्पष्ट तौर पर लड़कों से भिन्न था। उन्होंने सन् 1950 की राधाकृष्णन रिपोर्ट को उद्धृत करते हुए कहा कि स्त्री-पुरुष दोनों के लिए शिक्षा में समानता की वकालत करते हुए भी इसमें लड़कियों के लिए 'घर और परिवार का ख्याल रखने वाले अनुभव हेतु व्यवहारिक प्रयोगशाला' की ज़रूरत पर बल दिया गया।

शिक्षा और लड़कों पर केंद्रित *कल्याण* के विशेषांक में अनुशासित जीवन में नैतिक चरित्र निर्माण कैसे करें, ईश्वर भक्ति और बड़ों का आज्ञापालन जैसे विषयों पर निबंध भी थे। मिथकीय व ऐतिहासिक व्यक्तित्वों की महागाथाओं का वर्णन करते हुए गीता प्रेस ने जोर दिया कि एक आदर्श 'हिन्दू राष्ट्र' का निर्माण मूल्यों को अपनाकर ही किया जा सकता है। एक ओर हिन्दू लड़कों पर भविष्य को लेकर निवेश किया जा रहा था वहीं व्यस्क पुरुषों से अपेक्षित था कि वे समुदाय पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए संहिता का पालन करेंगे और यह सुनिश्चित करेंगे कि पुनरुत्थान का यह आंदोलन न थमने पाए।

हर बार की तरह औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था को दरकिनार करने के लिए पोद्दार के पास कोई ठोस वजह नहीं थी। सन् 1928 के एक लेख में उन्होंने लिखा, 'एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था जो क्लर्कों की संख्या में इज़ाफ़ा करती हो, ऐसी शिक्षा व्यवस्था जो दूसरों पर आश्रित बनाती हो, ऐसी शिक्षा व्यवस्था जो किसानों, दुकानदारी, मज़दूरी को हेय दृष्टि से देखती हो और उन्हें अशिक्षितों का काम मानती हो, ऐसी शिक्षा व्यवस्था जो केवल कलम चलाना सिखाती हो और व्यक्ति को घमंडी व आलसी बनाती हो, वह कभी सुख समृद्धि या खुशियों का स्रोत नहीं बन सकती।' ¹⁷⁵

सन् 1936 के अपने प्रसिद्ध निबंध '*वर्तमान शिक्षा*' में पोद्दार ने हिन्दू लड़कों के लिए आदर्श शिक्षा पर बात की थी। इसी निबंध के कुछ अंश *नारी अंक* में शामिल थे और कुछ उनके निधन के पश्चात् *शिक्षा अंक* में शामिल किए गए। इस लेख के अनुसार पोद्दार शिक्षा व्यवस्था को तभी सफल मानते हैं जब वह आर्य व्यवस्था के अनुसार जीवन के चार चरणों पर आधारित हो। शिक्षा से विश्व में शारीरिक, मानसिक, भौतिक व नैतिक वृद्धि होनी चाहिए और मृत्यु पश्चात् मोक्ष प्राप्ति। उन्होंने किसी मनीषी का नाम लिए बिना उद्धृत किया, 'ऋषियों की दृष्टि में विद्या वही है जो हमें अज्ञान के बंधन से विमुख कर दे।' ¹⁷⁶

आगे इस निबंध में औपनिवेशिक शिक्षा से उपजी सामाजिक बुराइयों को सामने रखते हुए कहा गया कि इसी के परिणामस्वरूप कॉलेज जाने वाली युवाओं की पूरी पीढ़ी नास्तिक व अनीश्वरवादी हो गई है। उन्होंने कहा, 'ईश्वर मनुष्य की कल्पना है।' 'ईश्वर की चर्चा करना समय नष्ट करना है।' 'ईश्वर को किसने देखा है?' 'धर्म ढोंग है।' 'स्वार्थी मनुष्यों ने भोले लोगों को ठगने के लिए ईश्वर और धर्म का वहम रचकर डरा रखा है।' 'धर्म एक कुसंस्कार है।' जैसे सवाल और टिप्पणियाँ आज के युवाओं के लिए सामान्य हो चली हैं। ईश्वर के प्रति यह घटती आस्था युवाओं को स्वच्छंद आचरण करने और डांवाडोल व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित करेगी।

पोद्दार ने औपनिवेशिक शिक्षा पर सामाजिक व धार्मिक कायदों और पारिवारिक मूल्यों के प्रति युवाओं को अधीर, अभद्र और असंवेदनशील बनाने का भी आरोप लगाया। अपने अनुभवों से उदाहरण देने वाली अपनी अद्वितीय शैली में *कल्याण* संपादक ने बड़ों और महिलाओं की उपस्थिति में जवान लड़कों (युवाओं) द्वारा दिखाए गए रूखे और अनुचित व्यवहार के कई उदाहरण दिए। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि अलग-अलग जातियों, वर्गों और धार्मिक पृष्ठभूमियों के युवाओं के एक साथ घुलने-मिलने ने एक प्लेट में साथ खाने-पीने, यहाँ तक कि भोजन साझा करने ने इस नई जीवनशैली को जन्म दिया है। उन्होंने सोडा वाटर की बढ़ती लोकप्रियता को विशेषरूप से सामने रखते हुए एक ही बोतल से बारी-बारी से सबके पीने को एक ही माँ की छाती से सभी बच्चों के दूध पीने के समान बताया। इन सबके बीच पोद्दार अपनी वह भावना छिपा नहीं सके कि मुसलमान भी हिन्दू दोस्तों के साथ भोजन-पानी साझा करते हैं।

पोद्दार ने छात्रावासों की जीवनशैली की आलोचना की। उनके घरवाले पैसे भेजने के लिए संघर्ष करते हैं वहीं छात्र बेहिसाब खर्च करते हैं। पोद्दार ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा कि 'वे कई जोड़ी जूते रखते हैं, गाने-नाचने पर खर्चा करते हैं, लड़कियों के साथ घूमने जाते हैं, उनके साथ अंतरंग संबंध बनाते हैं, जुआ खेलते हैं, नहाने से पहले चाय पीते हैं, इत्र-सुगंध का इस्तेमाल करते हैं, फ़िल्में देखते हैं और अश्लील पुस्तकें पढ़ते हैं।' उन्होंने इन आदतों को वर्गीकृत करते हुए इन्हें ही युवाओं में धैर्य, विनम्रता और संवेदनशीलता में आने वाली गिरावट के लिए ज़िम्मेदार माना।

छात्रों में घटते संयम के लिए अयोग्य पाठ्य-पुस्तकों, फैशन, अभद्र नाटकों व उपन्यासों, अश्लील साहित्य की लोकप्रियता, विलासी और पतित जीवनशैली, सह-शिक्षा, अनुभवहीन युवा शिक्षकों के साथ समय बिताना, पश्चिमी निर्देशों पर बने स्कूल व छात्रावास और एक-दूसरे को अश्लील पत्र लिखने की आदतों को ज़िम्मेदार ठहराया। पोद्दार ने बिना किसी प्रमाण या सबूत के दावा किया कि यौन संक्रमण से फैलने वाले रोग लगभग पचास प्रतिशत छात्रों में फैल चुके हैं।

पोद्दार ने वही राग अलापा कि छात्र अभिभावकों व शिक्षकों के प्रति लगातार अभद्र व्यवहार कर रहे हैं: 'घर में जहाँ नित्य बड़े-बूढ़ों के चरणों में प्रणाम करने की आर्य प्रथा थी, वहाँ आज उनकी संतान कहलाने में भी किसी-किसी को लज्जा का

अनुभव होता है। माता-पिता आदि के विचारों में तो श्रद्धा बहुत ही कम रह गई है बल्कि उसके अवज्ञा करने में ही कहीं-कहीं उन्नति मानी और बतलाई जाती है।'

पोद्दार ने पाश्चात्य शिक्षा पर प्रहार करते हुए विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त नौजवानों की गुणवत्ता पर ही सवाल खड़े कर दिए। उन्होंने यह बात रखी कि यह शिक्षा व्यवस्था छात्रों को झूठी सर्वोच्चता के अहम से भर दे रही है जिसके कारण वे कोई भी घरेलू काम नहीं कर रहे हैं क्योंकि वह उन्हें अपनी शान के खिलाफ़ लगता है। पोद्दार ने इस पर भी संदेह व्यक्त किया कि हर साल पास हो कर निकल रहे ग्रेजुएटों को नौकरी देने में बाज़ार समर्थ है या नहीं, और शिक्षित युवाओं की बेरोज़गारी दर में वृद्धि के प्रश्न को भी उन्होंने उठाया।

पोद्दार ने एक रास्ता सुझाया, स्कूलों में इस्तेमाल में लाई जा रही पाश्चात्य मूल की पुस्तकों के समकक्ष देशज पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण। रणनीतिक रूप से यह एक चालाक कोशिश थी लेकिन यह कोशिश भी उसी तंत्र से प्रेरित थी जिसकी वे आलोचना किया करते थे। यह भी उसी पक्षपात की समस्या से गुज़रा जो औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था में थी। औपनिवेशिक शिक्षाविदों की तरह पोद्दार ने जनता के मन मस्तिष्क पर हुकूमत चाही। इसके बाद प्रचुर मात्रा में गीता प्रेस से सस्ती पुस्तकें छपीं जिनमें नीति, समाज और धर्म के अध्याय भरे हुए थे। इनमें से बहुत-से सफल भी हुए जिनके बाद में कई संस्करण निकले।

बालक अंक के एक लेख में केंद्रीकृत परीक्षण व्यवस्था की प्रमाणिकता पर भी गंभीर सवाल उठाए और ग्रेजुएटों और डिप्लोमा धारकों की बढ़ती बेरोज़गारी का हवाला देते हुए कहा गया कि यह इसकी असफलता का प्रमाण है। ¹⁷⁷ इसमें फिर शिक्षा की परंपरागत गुरुकुल स्कूल व्यवस्था के बारे में तर्क दिया गया कि जहाँ शिक्षण को अधिगम की देवी सरस्वती की उपासना माना जाता था, और छात्र को निरंतर मूल्यांकित किया जाता था।

प्राचीन व्यवस्था को त्यागने का रोना रोने वाले इस लेख में शिक्षकों के लिए ऊँचे वेतन और शिक्षा समाज के प्रति चेतना की बात की। परीक्षा बिना किसी पूर्व सूचना के होनी चाहिए, और कक्षा में विद्यार्थियों के बीच वाद-विवाद और चर्चा को भी मूल्यांकन में महत्व दिया जाना चाहिए जहाँ उन्हें उनकी तर्क करने की, सोचने-विचारने की क्षमता और प्रत्युत्पन्नमति के आधार पर मूल्यांकित किया जाये। लिखित परीक्षा के मामले में गीता प्रेस का सारा ज़ोर सामान्य ज्ञान परीक्षण के लिए वस्तुनिष्ठ सवालों पर था।

गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित पाठ्य-पुस्तकों और निबंधों के बारे में पोद्दार का स्पष्ट विचार था कि उनमें क्या विषयवस्तु होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि आदर्श पाठ्य-पुस्तक में भारत की प्राचीन आर्य संस्कृति की सच्ची झलक और उस युग के महापुरुषों के जीवन के उदाहरणों से ओत-प्रोत होने चाहिए ताकि मूल्य आधारित शिक्षा के लिए उनका इस्तेमाल किया जा सके। ¹⁷⁸ पोद्दार चाहते थे कि पाठ्य-पुस्तकों में हिन्दू धर्म ग्रंथों से उद्धरण शामिल हों, विशेषकर गीता से। उन्होंने तर्क दिया कि धार्मिक शिक्षा

को अलग से एक विषय के तौर पर पढ़ाना चाहिए लेकिन यह धार्मिक ग्रंथों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए । ‘हिन्दू नैतिकता की उन्नति’ करना ही इस विषय को पढ़ाने के पीछे का उद्देश्य था और पाठ्य-पुस्तकों से अपेक्षित था कि उनमें ईश्वर में विश्वास, माता-पिता के प्रति समर्पण, सच्चाई, प्रेम, निर्भीकता जैसे विभिन्न मुद्दों की भरमार हो । उन्होंने कहा कि पाठ्य-पुस्तक ऐसी नहीं होनी चाहिए जो बच्चों को दूसरों के प्रति वैर भाव रखना सिखाए । पाठ्य-पुस्तकों से अपेक्षित है कि वह स्त्री से माँ या बहन जैसा व्यवहार करना सिखाए, दूसरों की आलोचना करने से परहेज़ करे, दूसरे धर्म को हेय दृष्टि से न देखे, कार्यस्थलों पर गैर-क्रानूनी तरीकों के इस्तेमाल की वकालत न करे । पोद्दार चाहते थे कि स्कूल विद्यार्थियों को शिल्प कौशल में दक्ष करे ताकि वे पास होकर बाहर निकलने के बाद हाथ से किए जाने वाले कामों को कमतर न आंके और उसे रोज़गार की तरह अपनाने में गुरेज़ न करें । अजीब बात यह थी कि उन्होंने आग्रह किया कि पाठ्य-पुस्तकों में साम्प्रदायिक तनाव को बढ़ाने वाली सामग्री से परहेज़ किया जाये —एक ऐसा सिद्धांत जिसे 1940 के दशक तक आते-आते *कल्याण* के पृष्ठों में उन्होंने खुद ही दरकिनार कर दिया ।

बहुत पहले सन् 1935 में पोद्दार ने किसी ‘चतुर्वेदी महाराज’ को पत्र लिखा जो कि संभवतः हिन्दी आंदोलन के प्रभावशाली व्यक्ति बनारसीदास चतुर्वेदी रहे होंगे । इस पत्र में उन्होंने पाँच भागों में हिन्दी पाठमाला प्रकाशित करने की गीता प्रेस की योजना के बारे में लिखा । ¹⁷⁹पोद्दार ने कहा कि प्रेस प्रबंधन उन्हें लम्बे समय से पुस्तकें लिखने के लिए कह रहा है लेकिन अधिक व्यस्तता के कारण वे ऐसा नहीं कर सके । उन्होंने उम्मीद जताई कि चतुर्वेदी इस काम को हाथ में लेंगे और हिन्दी पाठमाला निजी स्कूलों व भारतीय राज्य अधिकृत स्कूलों में स्वीकृत होगी । वे औपनिवेशिक सरकार द्वारा चलाए जा रहे स्कूलों में उन्हें सम्मिलित किए जाने को लेकर नाउम्मीद थे, क्योंकि उन्हें डर था कि अन्य प्रकाशनों से उन्हें कड़ी टक्कर मिलेगी क्योंकि वे भ्रष्ट रास्ते अपना लेंगे ।

पोद्दार चाहते थे कि हिन्दी पाठमाला धर्म, ईश्वर भक्ति और सदाचार की बात करे । उन्होंने चतुर्वेदी को बताया कि यह ऐसा होना चाहिए जिनसे लड़के आसानी से गैर-धार्मिक, अनीश्वरवादी न बनें । ‘आज ग माने गधा, ख माने खरगोश बच्चे रटते हैं उसके बदले ग माने गणेश आदि रटने लगें । हिन्दू आचार-विचार के प्रति श्रद्धा हो । ऐसे चित्र हों, जिसमें बच्चा सवेरे उठकर परमात्मा को याद करता है, माता-पिता को प्रणाम करता है आदि आदि ।’

हालाँकि चतुर्वेदी पुस्तक लिखने के लिए मान गए । पोद्दार कुछ अध्याय लिखना चाहते थे और चाहते थे कि चतुर्वेदी के बाद उनका नाम सह-लेखक की तरह उस पुस्तक में शामिल हो क्योंकि उनका नाम होने से राजपुताना, पंजाब और सिंध के स्कूलों में पुस्तक की बिक्री में मदद मिलेगी, ‘वहाँ के लोग मुझसे पुस्तकें लिखवाना चाहते थे और मैं उन्हें एक प्रकार से वचन दे चुका था ।’

हिन्दी पाठमाला के मूल्य की बात आने पर पोद्दार ने चतुर्वेदी से कहा कि पुस्तक को निःशुल्क वितरण के लिए प्रकाशित किया जाएगा। अतः वे विवेकपूर्वक उपरोक्त बात का ध्यान रखते हुए मानदेय तय करें। पोद्दार ने कहा कि लेखक को एक बार मानदेय दिया जाना मुमकिन है। और शिक्षा विभाग द्वारा पुस्तक के स्वीकृत होने की सूरत में उस एकबारगी वाले पारिश्रमिक में कुछ अतिरिक्त जोड़ दिया जाएगा।

पाँच भागों वाली हिन्दी पाठमाला का नाम *हिन्दी बाल पोथी* होगा और इसे चतुर्वेदी या पोद्दार किसी भी नाम के बिना ही प्रकाशित किया जाएगा। किसी भी भाग पर प्रकाशन का पहला साल नहीं अंकित किया जाएगा। हालाँकि सन् 2011 के संस्करण के अनुसार भाग एक की 3 करोड़ 21 लाख प्रतियाँ अभी तक छप चुकी हैं जिसमें से 50,000 प्रतियाँ उसी साल (2011) छपीं। अन्य सभी भागों की 2 करोड़ प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। ¹⁸⁰

गीता प्रेस साहित्य बालकों को शिक्षित करने वाले साहित्य में *बालक के आचरण* सबसे ज़्यादा दोहराई जाने वाली एक कालजयी कृति की तरह सामने आई। ¹⁸¹ बत्तीस पृष्ठों वाली इस पतली पुस्तक की कीमत चार रुपए थी। यह सन् 2010 तक सैंतीस बार प्रिंट में जा चुकी थी, जिसकी 700,000 से ज़्यादा प्रतियाँ अब तक बिक चुकी हैं। चरित्र निर्माण पर ज़ोर देने के साथ इसमें युवाओं के लिए देश को बचाने के पाठ भी शामिल हैं। इसके अलावा धर्म, जाति, धन की उपयोगिता, शारीरिक मज़बूती, बुद्धिमानी और स्मृति क्षमता को सुधारने आदि के बारे में छोटे-छोटे उपदेश शामिल थे। ये सभी गीतात्मक थे।

बालक के आचरण पोद्दार द्वारा बच्चों में राष्ट्रीय गौरव व सम्मान को प्रचारित करने की कोशिश थी। लेकिन इस प्रोजेक्ट की विषयवस्तु पूरी तरह ग़ैर-समावेशी है। जैसा वेरोनिक बेने कहते हैं: ‘यहाँ एक ग़ैर-समावेशी क्रिस्म के हिन्दू राज निर्माण की बात हो रही है, जहाँ मुसलमानों और ग़ैर-हिन्दुओं के साथ ‘अनुचित हिन्दुओं’ को भी निकाल दिया जाएगा। ¹⁸² बेनी के तर्कों को यहाँ देखा जा सकता कि *बालक के आचरण* और गीता प्रेस के अन्य प्रकाशन ‘घिसे-पिटे राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने में योगदान दे रहे थे। लोगों की ज़िंदगी में राष्ट्रवाद का अनुभव इतना अविभाज्य होता है कि बहुत बार उस पर ध्यान भी नहीं जाता।’

बालक के आचरण की पहली ही कविता ‘देश की लाज’ लड़कों को यह बताती है कि जिस देश में उसका जन्म हुआ है, वहाँ राम और कृष्ण ने भगवान के रूप में अवतार लिया है, जहाँ वाल्मीकि और व्यास ने रामायण और महाभारत की रचना की। ¹⁸³ इस कविता में सदियों का विस्तार है, पौराणिक कथाओं से युधिष्ठिर और हरिश्चंद्र, और ऐतिहासिक न्यायसंगत हिन्दुओं जैसे महाराणा प्रताप और शिवाजी सब शामिल हैं। गुरु गोविंद सिंह की उपस्थिति और गुरु नानक की अनुपस्थिति सोची-समझी रणनीति जान पड़ती है जो गीता प्रेस द्वारा सिख धर्म को हिन्दू धर्म की ही शाखा समझने और

भारत के वीर मर्दाना चरित्र को रेखांकित करने से उपजती थी। राष्ट्रवादियों में कर्मवीर तिलक और निष्ठावान मालवीय को अहिंसा के पुजारी गांधी के ऊपर तरजीह दी गई।

बालक के आचरण में हिन्दू स्त्री को सावित्री और अनुसूया के समकक्ष स्थान दिया गया। ये दोनों आदर्श हिन्दू पत्नियां महिलाओं की नैतिकता की प्रतिमान थीं। तुलसीदास और भक्त कवि सूरदास को इस सूची में शायद ही कहीं स्थान दिया गया। सदियों के मुस्लिम प्रभाव की तो बात ही रहने दी जाये, इस कविता में बौद्धों/जैनों की विरासत को भी पूरी तरह नज़रअंदाज़ किया गया।

राष्ट्र का सम्मान दो ही चीज़ों पर टिका था, धर्म के मार्ग का अनुसरण करने और जाति की शुचिता बनाए रखने पर। *बालक के आचरण* ने यह स्पष्ट किया कि जो पूरे विधि-विधान से धर्म के पथ पर चलते हैं, केवल वे ही अमरता और सम्मान के हक़दार हैं। *बालक के आचरण* लड़कों को बताता है कि जो धर्म के सुनिर्धारित मार्ग का अनुसरण करता है, वही अमरता और सम्मान प्राप्त कर सकता है। *बालक के आचरण* लड़कों को यह भी बताता है कि धर्म केवल धर्म मात्र नहीं है, बल्कि यह बेहतर नैतिक व्यवहार और सही जीवन जीने के लिए भी आवश्यक है। वास्तव में यही आनंद, शान्ति, ख्याति और उपकारिता का रहस्य है। 'जहाँ धर्म है, वहाँ दया है।' 'जहाँ धर्म है वहाँ सत्य है।' 'जहाँ धर्म है वहाँ क्षमा है।' 'जहाँ धर्म है वहाँ उदारता है।' 'जहाँ धर्म है वहाँ त्याग है।' 'जहाँ धर्म है वहाँ आनंद है।' [184](#)

हिन्दू जाति की रक्षा में बालक को प्रेरित करते हुए पोद्दार ने इस बात पर ज़ोर दिया कि जाति के नियमों को ख़त्म नहीं किया जाना चाहिए, न ही उनकी अवमानना ही करनी चाहिए। किसी भी क़ीमत पर इन नियमों को तोड़ना नहीं चाहिए। जाति की पवित्रता को अनुशासित और नियंत्रित जीवन से और बिना किसी को छोटा समझे या नफ़रत फैलाए जीते हुए बरक़रार रखना चाहिए। [185](#)

बालक के आचरण का शेष भाग बालक के चरित्र के विभिन्न पहलुओं के बारे में है। जिसमें किसी की बिना आज्ञा सामान न उठाने की, अपनी ग़लती को मानने की, क्षमा मांगने की, और सांसारिक सुखों को त्यागने की (जिसमें ऐन्द्रिय सुख भी शामिल हैं), क्षमा भाव और ज़रूरतमंदों की मदद करने वाली एक सरल जीवन शैली को अपनाने की वकालत थी।

एक मारवाड़ी उद्यम के नाते गीता प्रेस ने लोगों को कहा कि ईश्वर, धर्म, शास्त्रों और सरल जीवन शैली को अपनाने से जीवन में लाभ होगा। गीता प्रेस द्वारा बनाए इस भक्ति के बनिया मॉडल ने दावा किया कि यदि एक व्यक्ति भक्ति भावना, सादगी और विनम्रता का व्यवहार करे तो उसे अविलम्ब एवं सुनिश्चित परिणाम मिलेगा। *बालक के आचरण* में एक उपदेशात्मक कविता के माध्यम से बालकों को धन के सदुपयोगों पर ज्ञान देने के आरंभिक प्रयास किए गए। 'धन का उपयोग' धनी परिवारों में जन्मे बालकों को संबोधित था। उन्हें कहा गया कि धनी परिवारों में उनका जन्म उनके पूर्व जन्मों के अच्छे कर्मों का फल है लेकिन यह भी कहा गया, 'धन पाकर तुम क्या करोगे?'

‘बड़ी भारी कोठी बनवाओगे’ ‘बहुत अच्छी मोटर लोगे?’ ‘खूब तड़क-भड़क से रहोगे, यह तो धन का ठीक उपयोग नहीं।’ ‘*धन का उपयोग*’ ने बालकों को शिक्षा दी कि धन होने से अभिभूत हो कर सादगी, आत्म-संयम और अच्छे व्यवहार को नहीं त्यागना चाहिए। यह कहा गया कि यदि व्यक्ति आलसी, घमंडी और कंजूस हो जाये तो धन भी ज़्यादा दिन नहीं टिक सकता।

कई मायनों में *बालक के आचरण* ने गीता प्रेस के आदर्श बालक की छवि को व्याख्यायित करने का काम किया। लेकिन यह पाठ्य-पुस्तक नहीं था और अधिक-से-अधिक अनुपूरक पाठ की कमी पूरी कर सकता था। पाठ्यक्रम के विचार पर गौर करते ही गीता प्रेस पाँच भागों में बाल-पोथी नाम के एक संग्रह के साथ सामने आया, जिसमें नैतिक शिक्षाओं से भरा हुआ पाठ्यक्रम था। हिन्दी बाल-पोथी के भाग 2 के आरंभ में ही एक वक्तव्य प्रकाशित था जिसमें बताया गया था कि ये पाठ्यक्रम आधुनिक शिक्षा के विशेषज्ञों के साथ मिल कर तैयार किए गए हैं। इसमें एक अपील भी प्रकाशित की गई जिसमें प्रांतों के शिक्षा विभाग से इन पुस्तकों को पाठ्यक्रम में शामिल करने के लिए कहा गया था। ¹⁸⁶ सन् 2011 तक इस भाग की 1,943,000 प्रतियाँ बिक चुकी थीं और ये 63 बार पुनर्मुद्रित हुआ।

पाँच भागों में प्रकाशित इस बाल-पोथी को मुख्यतः बालकों को केंद्र में रख कर तैयार किया गया था। जिसमें स्कूल और घर पर उसके व्यवहार से लेकर अध्यापकों, बड़ों और अतिथियों से किए जाने वाले व्यवहार के संदर्भ में नैतिक शिक्षा दी गई थी। चरित्र निर्माण की कहानियों के साथ-साथ मोटर गाड़ी के चलने और खाना बनाने के समय वाष्प के बनने की प्रक्रिया को भी इसमें समझाया गया था। इस बात को स्वीकारते हुए भी कि भारत कई धर्मों की भूमि रहा है, इतिहास और नैतिकता से जुड़े सभी पाठों को हिन्दू अतीत के संदर्भ में ही विस्तार दिया गया।

शिक्षा व्यवस्था में आए बदलाव और सन् 2010 में लागू हुए शिक्षा के अधिकार क़ानून की घोषणा के बावजूद, सन् 1988 से 2012 तक गीता प्रेस के शिक्षा संबंधी विमर्श में कुछ बदलाव नहीं आया। अक्टूबर 2012 में *कल्याण-कल्पतरु* ने एक *शिक्षा अंक* निकाला, जिसका लक्ष्य ‘मानव विकास के कुछ विस्मृत क्षेत्रों को पुनः प्राप्त करना था जो शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त अंधकार को कम करने में सहायक हो सकते थे।’ ¹⁸⁷ जिस अंधकार की *बात कल्याण-कल्पतरु* में की जा रही थी वह ‘आधुनिक शिक्षा’ की वजह से फैला था। ‘हमारी अंग्रेज़ी शिक्षा ने सब कुछ नष्ट कर दिया और कोई भी चीज़ अपनी जगह पर नहीं छोड़ी। हमारे लड़के अपनी शिष्टता और विनम्रता खो चुके हैं। भली प्रकार बात करना अब अपयशकारी हो गया है। अपने से बड़ों के प्रति सम्मान का भाव रखना भी तुच्छ हो गया है। अनादर अब आज़ादी की निशानी बन गया है। हिंसा इतनी अनियंत्रित हो चली है कि एक सहपाठी दूसरे की हत्या करने तक क़दम उठा ले रहा है। *कल्याण-कल्पतरु* के अनुसार इसका समाधान ‘प्राचीन भारत में प्रयोग में लायी जाने वाला शैक्षणिक मिथकशास्त्र है जो युवा ब्रह्मचारी तैयार करता है, जिससे

जीवन के विभिन्न पक्षों में आने वाली समस्याओं का समाधान करने में सहायता मिलती है ।’

शिक्षा नंबर ने पोद्दार के सर्वाधिक प्रकाशित निबंध ‘वर्तमान शिक्षा’ (1936) के कुछ अंश प्रकाशित किए । सन् 2012 में लड़कियों को शिक्षित करने को लेकर उनका प्राथमिक लक्ष्य था, ‘उनमें सतीत्व और मातृत्व के गुणों को विकसित करना, और घर की आदर्श गृह स्वामिनी बनने की क्षमता का विकास करना ।’ ¹⁸⁸

कल्याण-कल्पतरु के संपादक केशोराम अग्रवाल ने जब ‘भारत की वर्तमान शिक्षा पद्धति के मार्गदर्शन के लिए इस महान धरती के निर्माता रहे संतों और मुनियों’ की ओर रुख करने की बात कही तो उन्होंने इस मामले में पोद्दार के सांसारिक नज़रिए को ही दोहराया । ¹⁸⁹

शिक्षा की अपनी दृष्टि को साकार रूप देने के लिए गीता प्रेस चुरू, राजस्थान में अपना वैदिक स्कूल चलाता है । यह स्कूल शिक्षण की गुरुकुल व्यवस्था पर आधारित है और यह केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को ही दाखिला देता है । ¹⁹⁰ यह स्कूल केवल लड़कों के लिए है, यहाँ वेद, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी और आधुनिक धर्मनिरपेक्ष विषय पढ़ाए जाते हैं तथा इसके बदले छात्रों से वाजिब फीस ली जाती है । ¹⁹¹

अपनी प्रकाशित पुस्तकों के माध्यम से गीता प्रेस ने औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था की कमियों को इस आशा में चिह्नित किया कि स्वतंत्र भारत हिन्दू राष्ट्रवादियों की राजनीति, समाज और शिक्षा के लिए बनाए खांचों के मुताबिक ही चलेगा । पंथनिरपेक्ष संविधान को अपनाने के साथ ही हिन्दू भारत का उनका सपना साकार नहीं हो सका, और गीता प्रेस ने सरकारी नीतियों की कटु आलोचना जारी रखी । गीता प्रेस के मुताबिक, यह सरकार बहुसंख्यकों की आकांक्षाओं के प्रति आंखें बंद कर चुकी थी और ऐसी शिक्षा व्यवस्था थोप रही थी जिसकी वजह से स्त्री-पुरुष की (कई) पीढ़ियां गैर-धार्मिक बन गईं और जिनके लिए हिन्दू पहचान का कोई महत्व नहीं है । प्राचीन व्यवस्था को लोकप्रिय बनाने के गीता प्रेस के अनवरत प्रयास वांछित असर पैदा करने में असफल हुए । हालाँकि बच्चों के लिए लिखे गए मोनोग्राफ और *बालक अंक* के बहुत-से संस्करण प्रकाशित होकर बेस्टसेलर हो चुके हैं । बहरहाल, गीता प्रेस के कुछ लेखकों (पोद्दार सहित) ने बहुत-से जायज़ सवाल भी खड़े किए, जैसे रोजमर्रा के जीवन में बढ़ता भौतिकवाद और पाश्चात्य प्रभाव, लेकिन ऐसे सवाल उन ढेरों अतार्किक और प्रतिगामी विचारों से धुंधले पड़ गए जो गीता प्रेस की पुस्तकों में हावी रहते थे । फिर भी, गीता प्रेस ने हार नहीं मानी । इसके अनगिनत नैतिक ग्रंथ आज भी स्कूलों और घरों में पाठकों को आकर्षित करते हैं और इसकी विचारधारा को संभालने वाली पत्रिका व पुस्तकें भारत व बाहर उस सपने को प्रचारित करने के लिए कार्यरत हैं जब हिन्दू और भारत में कोई अंतर नहीं रहेगा ।

उपसंहार

आज भले ही गीता प्रेस और *कल्याण* के पास पोद्दार की कद्दावर मौजूदगी नहीं है लेकिन चुनावों के समय पाठकों को प्रभावित करने की कोशिशें आज भी जारी हैं । किसी दल विशेष का नाम लिए बिना लगभग दो लाख सदस्यों और उनके परिजनो तक परोक्ष रूप से अपील करने की इसकी प्रवृत्ति भी नहीं बदली है ।

अप्रैल 2014 में सोलहवीं लोकसभा चुनाव प्रक्रिया के आरंभ होते ही *कल्याण* के सम्पादक राधेश्याम खेमका ने 'वोट किसको दें' ¹शीर्षक से एक लेख लिखा । धार्मिक ग्रंथों के उद्धरणों से अलंकृत अपने वक्तव्य की शुरुआत करते हुए खेमका ने लिखा कि एक अयोग्य शासक अपने पूर्वजों से विरासत में मिले साम्राज्य को भी गंवा सकता है ठीक वैसे ही जैसे हवा बादलों को उड़ा देती है । इस तरह खेमका ने कहा कि प्रत्येक जागरूक नागरिक को एक ऐसे नेता को वोट देना चाहिए जो धर्म की सेवा में रत हो और भ्रष्टाचारी व्यवस्था का सफ़ाया करने में समर्थ हो । उन्होंने अपने पाठकों को एक सूची देते हुए कहा कि अपने नेता चुनते समय निम्नलिखित वायदे देखें कि वह: गो-हत्या प्रतिबंध पर केंद्रीय क़ानून पारित करे, आसानी से खाद्यान्न, वस्त्र, शिक्षा और चिकित्सकीय सुविधाओं को सस्ती दर पर उपलब्ध करवाए, समाज में तेज़ी से बढ़ रही असुरक्षा और पैशाचिक शक्तियों को ख़त्म करने के लिए प्रतिबद्ध हो । उन्होंने *कल्याण* के पाठकों से यह भी कहा कि वे नेताओं से इस आशय का आश्वासन लें कि वे अपने निजी या पार्टी को फ़ायदा पहुँचाने के लिए किसी भी तरह के आर्थिक भ्रष्टाचार में लिप्त नहीं होंगे ।

पोद्दार की प्रतिष्ठा और उनका जनसम्पर्क कौशल न मिलने के कारण अब *कल्याण* के प्रति वे लेखक आकर्षित नहीं होते जिन्होंने इसकी सफलता, वितरण और स्थिरता में पहले कभी योगदान दिया था । हालाँकि इसका प्रारूप बदल गया है लेकिन फिर भी पोद्दार और जयदयाल गोयन्दका के पूर्व प्रकाशित लेखों पर पत्रिका की निर्भरता बनी हुई है । इसके तहत उनके लेखन को पुनर्प्रकाशित किया जाता रहा है । लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि *कल्याण* ने अब हिन्दुओं के पुरातनपंथी धड़े के प्रवक्ता पद को खो दिया है । वे नियमित स्तंभ जो कभी समाज और राजनीति के धार्मिक मुद्दों के प्रमुख स्वर हुआ करते थे, वे अब कभी-कभी होने वाले प्रतिक्रियात्मक विरोधों में बदल गए हैं । बहरहाल, जो अब तक नहीं बदला, वह है गीता प्रेस का मिशनरी उत्साह

और सनातन हिन्दू धर्म की सर्वोच्चता पर उसका विश्वास और उस लक्ष्य को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प । इसका ढांचा अब भी वही है । इसी तरह *कल्याण* और इसके अन्य प्रकाशनों में इसकी अत्यधिक जटिल संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भी ज्यों-की-त्यों बनी है । हालाँकि खेमका के अनुसार भाषा को सरल करने का प्रयास हो रहा है ।

राधेश्याम खेमका गीता प्रेस की लगातार चली आ रही रूढ़िवादी परंपरा की प्रतिमूर्ति हैं । पहले पाठक और बाद के दिनों में एक महत्वपूर्ण कर्मचारी के रूप में खेमका अपने बचपन से ही इस प्रेस के साथ जुड़े रहे । उनके पिता सीताराम खेमका आज़ादी के बाद गो-रक्षा आंदोलन के बड़े नेता थे जिन्होंने पोद्दार, स्वामी करपात्री महाराज और एम एस गोलवलकर के साथ काफ़ी निकटता से काम किया । अपनी परम्परागत आभा के बावजूद खेमका ने माना कि देशोद्धार का मार्ग और लगातार हो रहे नैतिक पतन का कारण सनातन हिन्दू धर्म के मूल्यों के ह्रास में ही निहित है । ये कुछ और नहीं बल्कि ठीक वही बात है जिसका प्रचार उनका संगठन आठ दशकों से भी अधिक समय से कर रहा है ।²

दो अन्य संदर्भों में इसकी निरंतरता उल्लेखनीय रही । जैसा कि पोद्दार के समय भी रहा, गीता प्रेस ने *कल्याण* की नियमित टिप्पणियों के माध्यम से समकालीन राजनैतिक मामलों और धार्मिक संघर्षों के मुद्दों पर अपना मज़बूत हस्तक्षेप जारी रखा । गीता प्रेस ने गाय की पवित्रता, स्त्रियों के लिए चारदीवारी, और भारत में हिन्दुओं से ज़्यादा मुसलमानों के हो जाने की चिंता पर अपना दृढ़ रुख कायम रखा है । इसका नैतिक संसार हिन्दू समाज में बड़े बदलावों के लिए अगम्य बना हुआ है ।

पोद्दार के बाद के वर्षों में *कल्याण* द्वारा उठाए गए दो मुद्दों पर विचार करना दिलचस्प है । दोनों भगवान राम से संबंधित हैं । पहला, राम जन्मभूमि का मुद्दा जो पोद्दार के दिवंगत होने के वर्षों बाद भी अनसुलझा बना रहा । सन् 1989-90 में विश्व हिन्दू परिषद ने विवादास्पद भूमि के करीब की ज़मीन पर राम मंदिर की नींव रखी । 6 दिसंबर 1992 को विहिप और उसके सहयोगियों, बीजेपी ने कारसेवकों (स्वयंसेवकों) की एक विशाल रैली उस स्थल पर आयोजित की । जिसके परिणाम दुखद रहे । कारसेवकों की भीड़ ने विवादित जगह पर तोड़फोड़ की । बाबरी मस्जिद कुछ ही घंटों के भीतर ध्वस्त कर दी गई । यह सब कुछ बीजेपी के निष्ठावान नेता लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, उमा भारती और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद तथा बजरंग दल के शीर्ष पदाधिकारियों की एक विशिष्ट मंडली की चौकस आँखों के सामने हुआ । इसके बाद खतरनाक पैमाने पर श्रृंखलाबद्ध ढंग से दंगों और साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाएं हुई ।

कल्याण ने इस घटना पर विचित्र मुद्रा अपनाई । पोद्दार को दिवंगत हुए अब दो दशक से ज़्यादा बीत चुके थे किन्तु संशय की जिस संस्कृति का पोषण उन्होंने किया, वह अब पूरी तरह प्रकट था । (एक दिलचस्प पहलू यह भी था कि उस समय के प्रधानमंत्री पी वी नरसिम्हा राव ने सन् 1992 के आरंभ में पोद्दार की स्मृति में डाक

टिकट जारी करने का निर्णय लिया था ।) बाबरी विध्वंस के दो महीने बाद सम्पादक राधेश्याम खेमका ने अयोध्या मामले को एक 'ग़लती' बताना शुरू किया और पूरे देश में चल रही साम्प्रदायिक हिंसा को कमतर करके देखा । 'जो राजनीतिक उन्माद उत्पन्न किया जा रहा है उसका कोई औचित्य नहीं दिखलाई पड़ता । अयोध्या में जो घटना घटी उस भूल का यह अर्थ नहीं कि हम अपने देश में अशान्ति उत्पन्न कर दें । हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को जब इस देश में एक साथ रहना है तो उन्हें एक-दूसरे का सम्मान करना होगा और इस देश की जो मुख्य राष्ट्रीय और सांस्कृतिक धारा है उसके प्रति दोनों को नमन करना होगा । स्थिति सामान्य बनाने के लिए इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है ।' ³

सामान्य-सी प्रकृति की एक लम्बी शान्ति अपील के बाद खेमका विध्वंस के मुद्दे पर आए । 'सच्ची बात तो यह है कि मंदिर को गिराकर उसके खंडहर पर मस्जिद नहीं बनाई जा सकती और मस्जिद को गिराकर उस खंडहर पर मंदिर नहीं बनाया जा सकता क्योंकि दोनों ही भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल है । श्री राम जन्मभूमि कोई मंदिर-मस्जिद का विवाद नहीं है, कारण, मंदिर तो कहीं भी बनाया जा सकता है परंतु जन्मभूमि का स्थान बदला नहीं जा सकता । वह भी ऐसी जन्मभूमि जो साक्षात परमब्रह्म परमात्मा के अवतार की भूमि हो, यह जन्मभूमि करोड़ों-करोड़ों देशवासियों का दिव्य स्थल है जो कि अति पवित्र है ।'

इसके आगे खेमका ने हिन्दुओं के पीड़ित होने वाला वही पुराना तर्क फिर से दोहरा दिया । उन्होंने कहा कि पिछले कुछ वर्षों के भीतर कश्मीर में कई मंदिर ध्वस्त कर दिए गए । इनमें से कई मंदिर अति प्राचीन थे । और बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद हिन्दू मंदिरों का यही हाल पाकिस्तान, बांग्लादेश और ब्रिटेन में हुआ । इन मंदिरों के विध्वंस पर वैसी संवेदनशीलता नहीं दिखाई गई 'जैसी संवेदनशीलता इस ढांचे को लेकर दिखाई जा रही है जिसे बाबर ने बनवाया था । कुछ लोगों के अनुसार जो शायद कभी मस्जिद भी नहीं थी, कारण वहाँ चार सौ वर्षों में नमाज़ नहीं पढ़ी गई । मस्जिद में मीनार होती है जो उसमें नहीं थी । वुजू करने के लिए कुआं होता है जो उसमें नहीं था, वह तो केवल एक ढांचा मात्र था । जो इधर के पचास वर्षों से एक मंदिर के रूप में प्रतिस्थापित था ।'

खेमका ने अपना सबसे मज़बूत दांव अंत के लिए बचा रखा था जिसमें उन्होंने निष्कर्ष दिया कि अयोध्या में जो ध्वस्त किया गया वो मस्जिद नहीं, बल्कि मंदिर था: 'जब तक स्पष्टता राजनीतिक स्तर पर अब नहीं होती तब तक देश भटकता रहेगा । भारत में हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही रहना है क्योंकि दोनों इसी धरती की संतानें हैं । लेकिन इन दोनों में से कोई यह कहे कि भारत उसकी मातृभूमि नहीं है वह इसे नमन नहीं करेगा और यदि कहे कि वह इस देश के पूर्वजों से प्यार नहीं करेगा, उन्हें सम्मान नहीं देगा, उनसे प्रेरणा नहीं लेगा तो ऐसी मानसिकता में सुधार लाने के लिए

समुचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होगी, क्योंकि यह मानसिकता घोर असहिष्णुता और मातृभूमि के प्रति अश्रद्धा की द्योतक है।’

विध्वंस के कुछ महीनों पहले *कल् याण* ने अपने दावे को सामने रखा कि शास्त्रों और पुराणों से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि जहाँ बाबरी मस्जिद है, वहाँ भगवान राम का जन्मस्थान था। ⁴खेमका की चर्चा ने समस्या के साम्प्रदायिक तनाव पर ध्यान दिया जो कि एल के आडवाणी के नेतृत्व वाली बीजेपी, आरएसएस, विहिप और कई हिन्दू दक्षिणपंथी संगठनों के कारण और भी उभरता जा रहा था। *कल्याण* धर्मनिरपेक्षता के नाम पर भगवान राम की जन्मभूमि के महत्वपूर्ण मुद्दे को भुलाने या छोड़ने के पक्ष में नहीं था। इस पत्रिका में कहा गया था कि इस जगह को मस्जिद बताना एक विडंबना है क्योंकि इस प्रार्थना स्थल पर आधी सदी से कोई नमाज़ अदा नहीं की गई जबकि जिसे मस्जिद बताया जा रहा है, वहाँ केवल रामधुन गुंजायमान होती रही है। ‘कोई भी दीनदार-ईमानदार मुसलमान देशवासियों की भावनाओं का समादर करता हुआ कभी भी विवाद को बढ़ाने के पक्ष में नहीं हो सकता बल्कि इस विवाद को समाप्त करने का ही पक्षधर होगा।’ वह विवाद को सुलझाने को प्राथमिकता देगा। राजनेताओं से यह कहा गया कि इसका हल आसानी से हो सकता है बशर्ते वे अपने संकीर्ण राजनीतिक परिणाम के बजाय समस्या को एक वृहद परिप्रेक्ष्य में देखें।

दिल्ली के एक अखबार ने जब इस स्थान की शुद्धता और अशुद्धता के बारे में सवाल उठाते हुए कहा कि ‘जिस स्थान पर राम का जन्म हुआ वह स्थान तो प्रसूति स्थल होने के कारण अशुद्ध है, कारण उसी स्थान पर तो खून के छींटे और धब्बे भी पड़े होंगे जो अपवित्र होते हैं इसलिए वहाँ पूजा स्थल अथवा मंदिर आदि नहीं बनाया जाना चाहिए।’ इस पर *कल्याण* ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की और कहा कि मनुष्य का दिमाग सीमित है और ऐसी सीमाओं के कारण उसका व्यवहार अक्सर अतार्किक हो जाता है। ⁵खेमका ने उदारतापूर्वक गीता, रामायण और अन्य धार्मिक ग्रंथों से सन्दर्भ देते हुए कहा कि भगवान के जन्म (चाहे वह राम हों या कृष्ण) में सामान्य प्रसव पीड़ा या रक्त-स्राव शामिल नहीं था।

इससे पहले सन् 1990 में जब रामजन्मभूमि आंदोलन उग्र हो रहा था तब *कल्याण* ने भारत के पहले गृह मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल के प्रयासों की प्रशंसा की, जिन्होंने द्वारका (गुजरात) में सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण की घोषणा कर भारतीय संस्कृति के संरक्षण की परियोजना को आरम्भ किया। ⁶पटेल की मृत्यु के बाद खेमका ने कहा कि भारतीय राजनेताओं ने इन मुद्दों पर ध्यान नहीं दिया क्योंकि वे अपने राजनीतिक हितों में बहुत व्यस्त थे। खेमका का निष्कर्ष यह था कि रामजन्मभूमि के मुद्दे को राजनीतिक मुद्दे के रूप में नहीं बल्कि आध्यात्मिक मुद्दे और राष्ट्रीय गौरव की तरह देखा जाना चाहिए। अपने इस तर्क को दोहराते हुए खेमका ने कहा कि जन्मभूमि को दूसरी जगह स्थानांतरित नहीं किया जा सकता। हिन्दू और मुसलमान भाइयों की

तरह तभी रह सकते हैं जब परस्पर सम्मान और त्याग की भावना हो। उन्होंने सुझाव दिया कि बाबरी मस्जिद को सम्मानपूर्वक अपने वर्तमान स्थल से स्थानांतरित कर दिया जाये और अन्यत्र फिर बनाया जाये।

सन् 2007 में कल्याण ने संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार के सेतुसमुद्रम परियोजना के खिलाफ मोर्चा संभाला। आधिकारिक तौर पर सेतुसमुद्रम शिपिंग चैनल प्रोजेक्ट कही गई यह परियोजना 'भारत और श्रीलंका के बीच पाक जलडमरूमध्य में जहाज के मार्ग हेतु 'तलमार्जन' के प्रस्ताव' के साथ थी।⁷ यह जल मार्ग जहाजों के लिए भारत के पूर्वी और पश्चिमी तटों के बीच जलयान की सुविधा को सुलभ बनाता। यह श्रीलंका के चक्कर लगाने के बजाय भारत के क्षेत्रीय जल के माध्यम से एक छोटा मार्ग प्रदान करता। यह जल मार्ग 424 समुद्री मील (780 किमी) या नौकायन समय में तीस घंटे तक की बचत करता। हालाँकि इस परियोजना का बीज सन् 1999 से 2004 के बीच बीजेपी के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार के शासन के दौरान ही बोया गया था। फिर भी जब सेतुसमुद्रम परियोजना को सन् 2007 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) द्वारा पुनर्जीवित किया गया तो रूढ़िवादी हिन्दू समूह जैसे बीजेपी, आरएसएस, विहिप, बजरंग दल और एक संपूर्ण उग्रवादी हिन्दू संगठनों को एक भावनात्मक मुद्दे के रूप में मेज़बानी करने का मौका मिला।

पुरातात्विक और वैज्ञानिक प्रमाणों की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए इन पुरातनपंथियों ने दावा किया कि सेतुसमुद्रम परियोजना रामसेतु को खंडित करेगी। इस सेतु का वर्णन रामायण में मिलता है। इसे राम ने रामेश्वरम में सुग्रीव की विशाल वानर सेना की सहायता से बनाया था जिसमें हनुमान भी शामिल थे ताकि श्रीलंका पहुँचा जा सके और रावण से सीता को बचाया जा सके।

कल्याण ने हिन्दू विरोध का नेतृत्व संभालते हुए कहा कि रहस्यमयी रामसेतु हजारों सालों से छिपा हुआ है। लेकिन रामसेतु के होने की पुष्टि करते हुए उन्होंने सन् 1860 की एक घटना का संदर्भ दिया जिसमें एक अंग्रेज़ व्यापारी ने श्रीलंका और रामेश्वरम के बीच बड़े व्यवधान का सामना किया था।⁸ राधेश्याम खेमका ने लिखा कि पिछले लगभग 145 वर्षों में कई समितियाँ गठित की गईं ताकि समुद्री रास्ते की इस बाधा को दूर किया जा सके। अपने तर्क को वैज्ञानिक आधार देते हुए खेमका ने कहा कि नासा की सेटेलाइट ने एक तस्वीर ली है, जिसमें श्रीलंका और रामेश्वरम के बीच 48 किलोमीटर लम्बे और 2 किलोमीटर चौड़े सेतु को देखा गया है। सेतु के ऊपर पानी का स्तर 1 से 10 मीटर के बीच था। इसके आगे खेमका ने नासा की इसी रिपोर्ट को उद्धृत करते हुए कहा कि सेतु 1,750,000 वर्ष पुराना है जो कि हिन्दू मान्यता के अनुसार त्रेतायुग का समय है। यह चार युगों में से दूसरा युग है जो 12.96 लाख वर्ष चलता है। (सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग)

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने एक हलफ़नामा दायर किया कि राम और रामायण के ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं हैं। इसके जवाब में खेमका ने पोद्दार से मिलता-

जुलता जवाब दिया। उन्होंने पुरातत्व विभाग को एक बेकार संस्था कहा जिसपर फ़िज़ूल करोड़ों खर्च किए जा रहे हैं। उनके अनुसार पुरातत्व विभाग का काम प्राचीन विरासत को बचाना और उसकी रक्षा करना था जबकि वह ठीक इसके विपरीत काम कर रहा है। उन्होंने कहा कि सरकार का यह 25,000 करोड़ की कीमत वाला सेतुसमुद्रम शिपिंग चैनल प्रोजेक्ट भारत के सबसे पुराने सेतु को नष्ट कर देगा।

खेमका ने लिखा, 'यह कार्य प्रारंभ भी हो गया है विदेशी ड्रेजर समुद्र में उतर चुके हैं, सेतु को तोड़ने का प्रयास किया जा रहा है, इस योजना से भारत और श्रीलंका के मध्य समुद्री परिवहन में चार सौ नॉटिकल मील का अतिरिक्त परिवहन कम होने के साथ सोलह घंटे की बचत भी होगी परंतु विशेषज्ञों के अनुसार रामसेतु को तोड़े बिना समुद्री रास्ता बनाया जा सकता है।' खेमका ने सलाह दी कि रामेश्वरम और धनुषकोडी के पास के मंडपम् गाँव के बीच से रेत को हटा कर भी समुद्री मार्ग बनाया जा सकता है। जो न केवल यात्रा में समय की बचत करेगा बल्कि रामसेतु जैसी विरासत को भी बचाए रखेगा।

इसी बात के साथ खेमका ने धार्मिक संकट का दांव चल दिया। उन्होंने सूई इस ओर घुमा दी कि अगर रामसेतु को कोई भी क्षति पहुँची तो उसके परिणाम विध्वंसक होंगे। 'यह न केवल घोर अपराध है अपितु इसके लिए सबको पाप का भागी भी बनना पड़ेगा। शासन की अदूरदर्शिता तथा भारतीय सनातन आस्था की उपेक्षा का विरोध करने के लिए अनेक धर्माचार्यों और संतों ने आंदोलन भी चलाया है और चेतावनी दी है कि यदि सेतुबंध तोड़ने का कार्य न रोका गया तो इसके गंभीर परिणाम होंगे और इसका सारा उत्तरदायित्व सरकार का होगा।'

बीजेपी और इस जैसे अन्य संगठनों के लिए पुरातत्व विभाग के इस हलफ़नामे को पचाना आसान नहीं था। इन सभी ने मिल कर पुरातत्व विभाग को अपने निशाने पर ले लिया। इन दबावों के फलस्वरूप यूपीए ने आत्मसमर्पण कर दिया और हलफ़नामे को वापस लेते हुए इस परियोजना को ठंडे बस्ते में डाल दिया।

ऐसी परिस्थितियों पर *कल्याण* की प्रतिक्रिया हमेशा ही चयनित हुआ करती थी। कई बार महत्त्वपूर्ण घटनाओं की अनदेखी की गई। जून 1975 में इंदिरा गांधी सरकार द्वारा थोपे गए आपातकाल को *कल्याण* ने बहुत तरजीह नहीं दी। लगभग छह महीने बाद समाज में धर्म की भूमिका को केन्द्र में लेकर लिखे एक लेख में इसका अप्रत्यक्ष संदर्भ भर आया। यह संभव है कि सेंसर के खतरे की बदौलत ही *कल्याण* ने रक्षात्मक हो कर अपने लेख लिखे जैसे कि समाज में 'आए दिन उपद्रव होते रहते हैं लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अनुचित झगड़े करते हैं।' ² यह उसकी अप्रत्यक्ष भाषा का एक नमूना है जहाँ सामाजिक उपद्रवों के मूल में धार्मिक मूल्यों के पतन को देखा गया।

सन् 1980 में जब पंजाब में कट्टरपंथ अपने चरम पर था तब *कल्याण* ने इससे दूरी नहीं बनाई। सिखों के गौरवमय अतीत का एक संक्षिप्त ब्यौरा देते हुए खेमका ने अफ़सोस जताया कि 'कुछ ऐसे तत्व प्रवेश कर जाते हैं जो धर्म के नाम पर लोगों में

उन्माद फैलकर उन्हें भ्रमित करने का प्रयास करते हैं तथा भोली-भाली जनता को समुचित मार्ग से पथभ्रष्ट करना चाहते हैं, ऐसे तत्वों से सतर्क और सावधान रहना चाहिए। सिख सम्प्रदाय के गुरुजनों ने तो त्याग, तपस्या, संयम और सद्भाव का संदेश संसार को प्रदान किया है।¹⁰ सिख धर्म को हिन्दू धर्म से ही विकसित दिखाने की कोशिश का सिखों द्वारा पर्याप्त विरोध होने के बावजूद खेमका इन दोनों धर्मों के बीच एकता के आह्वान का स्वर अपनाने से नहीं हिचके। उन्होंने कहा कि अमृतसर का स्वर्ण मंदिर और बनारस का काशी विश्वनाथ मंदिर एकता के प्रतीक हैं। ऐसा कहते हुए उन्होंने चिह्नित किया कि महाराज रणजीत सिंह ने इन दोनों ही पूजा स्थलों के लिए स्वर्ण दान किया था।

पंजाब में छिटपुट हिंसा चलती रही और उधर *कल्याण* ने बसों से यात्रा कर रहे निर्दोष बच्चों, महिलाओं और पुरुषों की हो रही हत्याओं पर अफ़सोस व्यक्त किया। और सिख समुदाय से सुरक्षा और राष्ट्र की रक्षा हेतु एकजुट होने की अपील की ताकि पंजाब की पवित्र भूमि से कट्टरपंथियों का नाश किया जा सके। सिखों से अपील की गई, कट्टरपंथियों और पथभ्रष्ट युवाओं की न मदद करें और न ही उन्हें शरण दें।¹¹

1980 के दशक के अंत में जैसे-जैसे भारत में राजनैतिक अस्थिरता बढ़ी, बोफोर्स तोप आदि भ्रष्टाचार के मामले सामने आने लगे वैसे-वैसे *कल्याण* पोद्दार की तरह ही एक नैतिक दंभ में अपने आरंभिक वर्षों की तरह हावी होने लगा। आध्यात्मिक सर्वोच्चता के बावजूद भारत का लगातार हो रहा पतन *कल्याण* को स्वीकार नहीं था। एक धार्मिक पत्रिका के स्वभाव से परे जाकर बात को रखने के सनसनीखेज अंदाज़ में *कल्याण* ने कहा कि समाज में सिद्धांतों ने अपने मूल्य खो दिए हैं। इसके आगे उन्होंने स्पष्ट दिखते पतन के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत विवरण दिया। उन्होंने इसमें संसद, विधानसभाओं और सचिवालयों में हिंसा के एक नए चलन को सामने रखा; राजनैतिक दल-बदल के लिए धन-बल, बाहुबल के प्रयोग को उद्धरित किया; लोगों में व्याप्त असंतोष; और श्रम के ग़ैर-क़ानूनी अभ्यास में बढ़ोतरी पर ध्यान खींचा। *कल्याण* ने अपने पाठकों से कहा कि इस तरह की नकारात्मक गतिविधियों से दूरी बनाए रखें और राष्ट्र निर्माण के लिए काम करें।¹²

सन् 1999 के कारगिल युद्ध के समय गीता प्रेस ने हिन्दुओं के हितों के बाधक के रूप में पाकिस्तान पर निशाना साधते हुए तीखा हमला किया। अपने संपादकीय में खेमका ने आक्रामक पाकिस्तान के खिलाफ़ की गई भारतीय कार्रवाई को सही ठहराया। सन् 1965 के भारत-पाक युद्ध के समय की तरह पोद्दार के लहजे और इरादे का अनुकरण करते हुए खेमका ने कहा कि केवल प्रतिरोध और प्रतिशोध का होना ही पर्याप्त नहीं है। उन्होंने कहा कि पाकिस्तान की पैशाचिक वृत्तियों का नाश ही मानव जाति के लिए लाभदायक होगा। उन्होंने तर्क दिया कि केवल सच्चे इरादे, कार्रवाई और प्रतिबद्धता पर आधारित द्विपक्षीय रिश्ते ही सफल हो सकते थे। आगे खेमका ने पाकिस्तान के शान्ति वायदों और उनके बरक्स पाकिस्तानी सेना द्वारा नियंत्रण रेखा पर

की जा रही घुसपैठ के माध्यम से बीच की गहरी खाई पर ज़ोर दिया। उन्होंने इसे किसी बड़ी साजिश से कम नहीं माना जिसके लिए तीव्र प्रतिशोध की आवश्यकता थी। खेमका ने पाकिस्तान संबंधी पोद्दार के घाव वाली धारणा को ही पुनर्जीवित करते हुए कहा कि इस बार घुसपैठियों से बना यह घाव अधिक घातक है जिसकी शल्यक्रिया ज़रूरी है। ¹³

गोधरा और सन् 2002 के बाद के गुजरात में मुसलमानों के खिलाफ़ हुई हिंसा के बारे में *कल्याण* का वार्षिकांक *नीतिसार अंक* (सिद्धांतों पर जारी, जनवरी-फरवरी 2002) मौन रहा। यही नहीं इसमें खेमका ने राजनीति से धर्म को अलग रखने की नई प्रवृत्ति के विपरीत लेखन किया। उन्होंने तर्क दिया कि, एक समाज और उसकी राजनीति धर्म के बिना बेकाबू हो जाएगी और इसका परिणाम यहाँ तक हो सकता है कि राज्य अपनी शक्ति खो देगा। ¹⁴

दशकों से गीता प्रेस का ध्यान गो-सुरक्षा और उनके वध पर प्रतिबंध की मांगों पर जारी है। सन् 1995 में *गो अंक* के आने के पचास साल बाद और पोद्दार की मृत्यु के चौबीस साल बाद गीता प्रेस ने *गो सेवा अंक* प्रकाशित किया। यह *गो अंक* का ही दोहराव था जिसमें गायों से जुड़ी सामाजिक, धार्मिक चिंता थी और उनसे होने वाले आर्थिक लाभ पर चर्चा थी। यह अंक मुख्य रूप से गो-प्रचारकों (जिनमें से कई तब तक जीवित नहीं थे) द्वारा लिखित पुराने लेखों के अंश को मिलाकर ही तैयार किया गया था। *गो सेवा अंक* में नया यह था कि इसमें 1960 के दशक के उत्तरार्ध में चले गो-रक्षा आंदोलन की समीक्षा की गई थी। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के लेख में बताया गया है कि कैसे सरकार द्वारा प्रायोजित गो-रक्षा समिति में शामिल होने से गो-रक्षा आंदोलन को क्षति पहुँची और साथ ही इसका पछतावा भी किया कि कई वर्षों के स्वशासन के बाद भी भारत में आज तक गाय खतरे में हैं। ¹⁵ उन्होंने गो-हत्या पर प्रतिबंध के विरोधियों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न तर्कों को खारिज करते हुए उन्हें सूचीबद्ध किया। उन्हें इस तर्क ने क्रोधित कर दिया कि एक अल्पसंख्यक समुदाय यानी मुस्लिमों की संवेदनशीलता का ख्याल करते हुए गो-हत्या प्रतिबंध पर ज़ोर नहीं दिया जाना चाहिए।

सर्वोदय नेता और गो-सेवा संघ ¹⁶ के एक महत्वपूर्ण सदस्य राधाकृष्ण बजाज ने 1960 के दशक के आंदोलन ¹⁷ की असफलता के बाद गो-रक्षा आंदोलन के इतिहास को लिखा था। सन् 1975 में गो-सेवा सम्मेलन की बैठक के दौरान विनोबा भावे ने ऐलान किया कि अगर गो-हत्या उनके अगले जन्मदिन (11 सितंबर 1976) तक प्रतिबंधित नहीं की गई तो वे आमरण अनशन पर बैठ जाएंगे। आपातकाल के शासन के समय सेंसरशिप के कारण भावे की धमकी की खबर को मंजूरी नहीं दी गई। पत्रों और पत्रिकाओं को ज़ब्त कर लिया गया और सीआईडी ने एकता मार्च और उपवास को रोकने के लिए एक राष्ट्रव्यापी परिपत्र जारी किया।

राधाकृष्ण बजाज ने लिखा कि सन् 1977 में सत्ता परिवर्तन के बावजूद जनता सरकार गो-हत्या पर प्रतिबंध लगाने के लिए केंद्रीय क़ानून लेकर नहीं आई। उन्होंने

कहा कि भावे के आंदोलन के समानांतर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कोसी कलान और महाराष्ट्र में देवनार के कई गो-हत्या केंद्रों में 'रोको भाई रोको' नाम से एक राष्ट्रीय आंदोलन शुरू किया गया। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य बूचड़खानों में मवेशियों की उपलब्धता पर रोक लगाना था। बजाज के अनुसार स्थानीय स्तर पर ऐसे छिटपुट आंदोलन 1980 के पूरे दशक में चलते रहे। सन् 1987 में केंद्रीय क़ानून के माध्यम से गो-हत्या पर प्रतिबंध लगाने की मांग को लेकर देशभर से 1,000 प्रतिनिधियों ने दिल्ली के राजघाट में इस सम्मेलन में भाग लिया। इसके परिणामस्वरूप, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश की विधानसभाओं ने गो-हत्या पर प्रतिबंध लगाने वाले क़ानून को पास कर दिया। हालाँकि, उत्तर प्रदेश में इस क़ानून को राष्ट्रपति की स्वीकृति नहीं मिली। बजाज के अनुसार, इस मामले में सबसे बेहतर राज्य गुजरात था, जिसने न केवल क़ानून पास किया बल्कि उसने क़ानून को साहस के साथ लिखित रूप में भी लागू किया। वे महाराष्ट्र में क़ानून के लागू होने में हो रही देरी से दुखी थे। जहाँ देवनार में व्यापक तौर पर बूचड़खाने 12 साल के विरोध के बावजूद काम करते रहे। बजाज ने कहा कि महाराष्ट्र में अन्य जगहों पर भी गो-हत्याएं बेरोकटोक जारी रहीं।

गो-हत्या प्रतिबंध को लेकर केंद्रीय क़ानून की कमी *कल्याण* के लिए एक दुखती रग बनी रही जो इस विषय पर उनके नियमित लेखन में लक्षित होता रहा। सन् 2012 के संस्करण में फिर यह बात उठाई गई कि गायों के साथ व्यवहार को लेकर कुर'आन में क्या मत है! इस संदर्भ में उन्होंने सऊदी अरब की अत्याधुनिक दुग्धशाला का उदाहरण देते हुए मुसलमानों के गो-प्रेम को दिखाया। ¹⁸ आगे उन्होंने बताया कि सऊदी अरब के अल खिराज स्थान में अल शफ़ी डेरी में 36,000 गायों को वातानुकूलित वातावरण में रखा जाता है जिनकी देखभाल के लिए 1,400 कर्मचारियों की नियुक्ति की गई है। *कल्याण* ने यह भी दावा किया कि अल शफ़ी फार्म में 5,000 से ज़्यादा गाय हैं जिनका 400 लीटर दूध रोज़ाना रियाद स्थित शाही परिवार द्वारा इस्तेमाल किया जाता है। इस लेख में ज़ोर दिया गया कि 'गाय' भारतीय हिन्दू-मुसलमान एकता का मार्ग हो सकती है, जैसे गंगा और यमुना।

सन् 2015 में बीजेपी शासित राज्य महाराष्ट्र और हरियाणा ने गो-हत्या पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया और *कल्याण* ने इस ख़बर का अभिमान के साथ जश्न मनाया। सम्पादक खेमका ने इन दोनों राज्य सरकारों का शुक्रिया अदा किया, विशेषतः महाराष्ट्र का जिसने क़ानून 19 साल पहले पास कर दिया था लेकिन उसे राष्ट्रपति से स्वीकृति का इन्तज़ार था। उन्होंने इस बात पर खेद जताया कि मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, सिक्किम और केरल में गो-हत्या अब भी जारी है। खेमका ने कहा कि केन्द्र में मौजूदा सरकार के पास ऐसा केंद्रीय क़ानून पारित करने की क्षमता है और उम्मीद है कि भगवान उसे ऐसा करने की ताक़त देगा। ¹⁹

चूंकि गीता प्रेस का नैतिक संसार अपरिवर्तनशील प्रवृत्ति का रहा है इसीलिए उसे आधुनिक शिक्षा से खतरा रहा है क्योंकि वही महिलाओं में बदलाव की जड़ है। राधेश्याम खेमका ने पोद्दार का अंधानुकरण किया और उन्होंने कहा कि 'महिलाओं के बीच आधुनिक शिक्षा सामान्य हो गई है और वे शिक्षा के लिए अपने जुनून में इस कदर पागल हो जाती हैं कि उनकी महत्वाकांक्षा आकाश को छू जाती है।' उन्होंने आगे कहा कि महिलाएँ अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए वो सब करती हैं जो उन्हें करना होता है लेकिन इसका परिणाम अक्सर तनाव, चिंता, घबराहट और अंत में खुदकुशी होता है। खेमका ने महिलाओं को उनकी वर्तमान स्थिति के लिए उनमें धार्मिक शिक्षा की कमी को ज़िम्मेदार ठहराया है। ²⁰

इसी तरीके से नई सदी में सती-विरोधी क़ानून और महिलाओं के आंदोलन की तीव्रता के बावजूद सती प्रथा को लेकर गीता प्रेस के रुख में कोई बदलाव नहीं आया। बनारस के अपने बैठक कक्ष में बैठे हुए खेमका ने सन् 2011 में सती के गुणों की व्याख्या की और बताया कि कैसे प्राचीन समय में युवावस्था में जिन महिलाओं के पति मर जाते थे वे खुद अपनी इच्छानुसार त्याग कर दिया करती थीं। 'यह इस समय और इस अवस्था में संभव नहीं है। इसलिए एक विधवा को शास्त्रवर्णित तपस्वी जीवन व्यतीत करना चाहिए। इसका कारण यह है कि एक महिला अपने पूर्वजन्म के पापों के कारण विधवा बनती है। दुःख, कठिनाई और विपत्ति के पीछे का कारण पाप है। इसे खुशी से सहन करना ही एकमात्र तरीका है जिससे व्यक्ति पिछले जीवन के पापों को दूर कर सकता है। अगर शास्त्रों के विधि-विधानों के खिलाफ़ जाकर महिलाएँ पुनर्विवाह करती हैं तो इससे क्या होता है कि उनके पाप का एक चक्र पूरा होने से पहले ही दूसरे पाप का चक्र चालू हो जाता है जिसे उन्हें भविष्य में भुगतना पड़ता है।' ²¹

सन् 2013 में, विख्यात धर्मगुरु आसाराम बापू और उनके बेटे नारायण साईं के बलात्कार एवं यौन उत्पीड़न के आरोप में गिरफ़्तार होने के बाद *कल्याण* ने अपने पाठकों, विशेषकर महिलाओं को ऐसे धर्मगुरुओं से सचेत रहने के लिए कहा। 'पिछले कुछ समय से एक ऐसे व्यक्ति पर नाबालिग लड़की के साथ यौन शोषण का आरोप लगाया गया है जिसकी पिछले कितने ही वर्षों से आध्यात्मिक जगत में विशेष मान्यता रही है। हज़ारों लाखों की संख्या में उनके शिष्य भी हैं। यह आरोप सत्य है या असत्य, इसका निर्णय तो न्यायपालिका करेगी परंतु इस प्रकार की घटना संत-महात्माओं को अपमानित और कलंकित करती है। सर्वसाधारण का विश्वास डिगता है। सत्संग एवं संत-महात्माओं में आस्था स्वाभाविक रूप से सशंकित होती है।' ²²

खेमका ने साधुओं की आलोचना करने वाले और मासूम लड़कियों व महिलाओं का यौन शोषण करने वाले पुरुषों की कड़ी आलोचना की। उन्होंने आसाराम बापू के 'निराधार' तथाकथित दावों को खारिज कर दिया और कहा कि यौन शोषण के आरोप स्वामी रामतीर्थ, स्वामी रामसुख दास और स्वामी विवेकांनंद पर भी लगे थे। खेमका ने कहा कि गीता प्रेस से करीब से जुड़े स्वामी रामसुख दास कभी किसी महिला से अकेले

में नहीं मिले और यदि गलती से किसी महिला ने उनके पैर छू लिए तो वे पूरा दिन उपवास रखा करते थे ।

जब भी राज्य की कोई भी शाखा प्रगतिशील हस्तक्षेप करती है तो गीता प्रेस की स्थिर नैतिक दुनिया जाग उठती है । एक विकसित न्यायशास्त्र द्वारा बनाए गए परिवर्तनों को स्वीकारना कठिन हो जाता है । सन् 2013 की शुरुआत में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि लिव-इन रिलेशनशिप को अवैध नहीं ठहराया जा सकता । इससे पहले मद्रास हाईकोर्ट ने फ़ैसला सुनाया था कि एक पुरुष और एक महिला विवाह के बिना शारीरिक संबंध बनाते हैं तो उन्हें विवाहित जोड़े के तौर पर माना जाएगा और उनकी संतान को उत्तराधिकार की वैधता मिलेगी । इन दोनों फ़ैसलों ने हिन्दू विवाह के उस भवन की नींव को हिला दिया, जिसे गीता प्रेस ने नब्बे साल तक लगातार मज़बूत करने का काम किया था ।

खेमका उच्चतम न्यायालय के इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सके कि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत, एक नागरिक अपना जीवन अपनी इच्छा के अनुरूप जीने के लिए स्वतंत्र है । अपने संयमित लेकिन तल्ख़ संपादकीय में उन्होंने लिखा कि शीर्ष अदालत ने एक ही झटके में न केवल अग्नि की पवित्रता और ईश्वर को साक्षी मानकर किए विवाह को नष्ट कर दिया बल्कि सिविल विवाह की औपचारिकता को भी दरकिनार कर दिया । यह जानते हुए कि सुप्रीम कोर्ट पर अन्य संस्थानों की तरह हमला नहीं बोला जा सकता है, खेमका ने इन आदेशों को ‘देश का दुर्भाग्य’ बताकर खेद प्रकट करते हुए कहा, ‘भारतीय संस्कृति तथा अन्य धर्मों में भी युवक-युवतियों के स्वेच्छाचार और कामाचार को कदापि स्वीकृति नहीं दी गई है फिर भी उन्हें क़ानून के द्वारा वैध ठहराने का प्रयास किया जा रहा है ।’ ²³

खेमका ने उसी पुराने हिन्दू राष्ट्रवादी मुहावरे को आगे बढ़ाया कि ‘देश ख़तरे में है’ । उन्होंने यहाँ तक कहा कि ब्रिटिश सरकार तक धार्मिक मामलों में एक हाथ की दूरी बनाए रखती थी । हिन्दू कोड बिल और गो-रक्षा आंदोलन के समय भी इन्हीं तर्कों का इस्तेमाल किया गया था जिससे सफलता भी मिली थी और खेमका ने उन्हें ही दोहराया: ‘स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में धर्मशास्त्र विरोधी मनमाने क़ानून बनाए जाने लगे जिसका परिणाम भी आज सामने है । घर-घर में विवाह के बाद तलाक़ होने लगे, जो हिन्दुओं में पहले कभी नहीं होते थे । अपने शास्त्रों में नारी का पुनर्विवाह सर्वथा निषिद्ध है । भ्रूण-हत्या महापाप के अंतर्गत माना गया है जो पहले क़ानून के द्वारा दंडनीय अपराध था, लेकिन अब इसे परिवार नियोजन के अंतर्गत क़ानून के द्वारा वैध बना दिया गया ।’ खेमका ने कोर्ट और ‘ज़िम्मेदार न्यायाधीशों’ को चेताया कि सावधानी बरतें और शास्त्रों व धर्मशास्त्रों के विरुद्ध आदेश जारी करने से बचें, तभी राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल होगा ।

बहरहाल, *कल्याण* ने अभी तक उच्चतम न्यायालय के सन् 2013 में समलैंगिक संबंधों को आपराधिक श्रेणी से बाहर रखने पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी ।

खेमका के नेतृत्व में कल्याण की 'इस्लामोफोबिक ड्राइव' ने रफ्तार पकड़ी है, उन्होंने हिन्दू आबादी के लगातार कम होने और बढ़ती मुस्लिम आबादी के लिए सरकार के परिवार नियोजन कार्यक्रम को दोषी ठहराया। पोद्दार की तरह ही खेमका ने भी परिवार-नियोजन के क़ानून के दायरे में मुसलमानों को ला पाने में सरकार की विफलता (जो वह मानते हैं कि जानबूझकर है) का रोना रोया। पेट्रिसिया और रॉजर जेफ़री ने इसे ही सबसे ख़राब क्रिस्म का 'विद्रूप व्यापार' कहा है। ²⁴ 'हाल ही में समाचार पत्रों की दुनिया में इस्लामी आबादी पर एक रिपोर्ट थी। इसमें जानकारी थी कि भारत की 102.86 करोड़ आबादी में से 22.64 करोड़ मुस्लिम हैं, जिसका कुल मतलब लगभग 22 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त 2 प्रतिशत ईसाई और अन्य समुदाय हैं। सन् 1991 में हिन्दुओं की आबादी 85 फीसदी थी जिसकी संख्या घटकर सन् 2002 में 76 प्रतिशत पर आ गई।' ²⁵

खेमका ने कहा कि देश एक बड़े संकट की कगार पर है क्योंकि मुस्लिम आबादी हर साल एक करोड़ की दर से बढ़ रही है। उन्होंने डर ज़ाहिर किया कि हिन्दू संस्कृति के लिए परिवार नियोजन के परिणाम विनाशकारी होंगे। उन्होंने राजनीतिज्ञों द्वारा की जा रही वोट बैंक और मुस्लिम तुष्टीकरण की राजनीति वाले रवैये को भारतीय संस्कृति के खिलाफ़ माना। साथ ही गो-रक्षा आंदोलन की विफलता का कारण भी वोट-बैंक की राजनीति को बताया।

इसी तरह गर्भपात भी एक गंभीर चिंता का विषय रहा। जिस साल संसद ने गर्भपात को आंशिक रूप से क़ानूनी बनाने वाले मेडिकल टर्मिनेशन, गर्भावस्था अधिनियम, 1971 को पारित किया उसी साल पोद्दार चल बसे थे। अगर गर्भधारण एक महिला के शारीरिक और मानसिक जीवन को खतरे में डाले; अगर किसी महिला को बच्चा जन्म देने से खतरा हो; अगर एक अविवाहित अठारह से कम आयु की लड़की गर्भवती हो; यदि एक मानसिक रूप से बीमार महिला गर्भवती हो; या यदि कोई महिला गर्भ निरोधकों की विफलता के कारण गर्भवती हो तो इन स्थितियों में गर्भाधान को समाप्त किया जा सकता है।

गीता प्रेस ने प्रख्यात गांधीवादी सिद्धराज ढड्डा के विचारों को प्रकाशित किया। सिद्धराज ढड्डा आज़ादी के बाद की राजस्थान की पहली सरकार में वाणिज्य और उद्योग मंत्री थे जिन्होंने बाद में कांग्रेस छोड़ दी थी। उन्होंने गर्भपात को 'आसान' और क़ानून को 'ढीला' बनाने के लिए सरकार की आलोचना की। 'स्त्री गर्भपात की इच्छा ज़ाहिर करे और डॉक्टर उसमें सहमत हो तो दोनों के लिए मार्ग खुला है। डॉक्टर के लिए तो यह कमाई का साधन है इसलिए सहमत होना उसके तो हित में ही है। क़ानून में लगभग सारी ज़िम्मेदारी और अधिकार डॉक्टर के हाथों में दिए गए हैं। क़ानून में प्रामाणिकता पर जगह-जगह ज़ोर दिया गया है, लेकिन डॉक्टर ने प्रामाणिकता से काम नहीं किया, यह यों भी साबित करना लगभग असंभव है...प्रस्तावित क़ानून में इतने छिद्र हैं और इतनी बचतें रखी गई हैं कि इस बारे में डॉक्टर को कोई खतरा नहीं है।' ²⁶

ढड्डा ने कहा कि इस नए क़ानून के पीछे की असल मंशा महिलाओं के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा करना नहीं बल्कि 'उसका असली मकसद जनसंख्या रोकने के लिए गर्भपात का सहारा लेना है।' उन्होंने जन्म-नियंत्रण के लिए कृत्रिम उपायों का सहारा लेने के विचार का समर्थन किया लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि 'शिशु हत्या को सही ठहराना एक ख़तरनाक विचार है और इस पर एक गंभीर पुनर्विचार की आवश्यकता है।' उन्होंने गर्भपात के समर्थकों से यह जानना चाहा कि कितनी महिलाओं की मृत्यु गर्भपात के दौरान हुई। अहिंसा के गांधीवादी मुहावरे का उपयोग करते हुए उन्होंने एक आदर्श दलील दी कि जीवन की पवित्रता को तुच्छ स्वार्थ की वेदी पर बलिदान नहीं किया जाना चाहिए।

गीता प्रेस ने गर्भपात के खिलाफ़ अपना गंभीर विरोध आज भी जारी रखा है। पुस्तक *गर्भपात: उचित या अनुचित, फ़ैसला आपका* पहली बार सन् 1990 में जैन बुक एजेंसी द्वारा प्रकाशित की गई थी। जैन बुक एजेंसी सरकारी अधिनियमों, विधियों और भारतीय संविधान के एक प्रसिद्ध प्रकाशक के तौर पर जानी जाती है। सन् 2011 में गीता प्रेस ने फिर से गर्भपात वाली इस पुस्तक को कुछ संशोधनों के बाद पुनर्प्रकाशित किया। नैतिक लेखन के लिए प्रसिद्ध गोपीनाथ अग्रवाल द्वारा लिखित इस पुस्तक के 38 संस्करण आ चुके हैं और इसके सभी संस्करणों की अब तक 300,000 से अधिक प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

गोपीनाथ अग्रवाल ने अपनी बात के समर्थन में विभिन्न स्रोतों का सहारा लिया, जैसे महात्मा गांधी के 'भगवान अकेले ही जीवन दे सकता है और ले सकता है', उच्चतम न्यायालय के 'निषेचन के क्षण से भ्रूण को मानव जीवन माना जाता है' आदि कथनों के साथ इस पुस्तक में ख़राब चित्रों द्वारा माँ के गर्भ में भ्रूण के क्रमिक विकास को दिखाते हुए अपने पक्ष को मज़बूत किया गया। ²⁷ इस विवरण में महाकाव्यों से उदाहरण लिए गए। सबसे सामान्य उदाहरण अभिमन्यु का था। जिसने अपनी माँ के गर्भ में ही शत्रु सेना के चक्रव्यूह भेदन की कला सीखी। इस तरह के क्रिस्सों को चिकित्सा विशेषज्ञों की राय और गर्भपात के विभिन्न तरीक़ों में शामिल 'हिंसा' के वर्णन के साथ मिला कर पेश किया गया।

शैलेंद्र कुमार जैन का एक लेख बच्चे का गर्भपात करते समय माँ को होने वाले ख़तरों के बारे में बताता है। ये रक्तस्राव से लेकर संक्रमण, गर्भाशय ग्रीवा को नुकसान, गर्भाशय के छिद्र और वेध आंत्र से लेकर अति गंभीर दीर्घकालिक प्रभावों के बारे में है। उन्होंने कहा कि इनके दूरगामी परिणाम और भी ख़तरनाक हैं जिसमें गर्भधारण की क्षमता को क्षति पहुँचना, मृत अथवा विकलांग बच्चे को जन्म देना, बार-बार गर्भपात का हो जाना, बच्चे का अनुमानित समय से पहले जन्म लेना, कम वज़न के बच्चे का जन्म लेना और अस्थानिक गर्भधारण शामिल हैं। जैन आगे जापान के सन् 1968 में हुए नागोड सर्वेक्षण का हवाला देते हैं, जिसके अनुसार 30 प्रतिशत से अधिक महिलाएँ जिन्होंने गर्भपात करवाया वे मानसिक समस्याओं से पीड़ित पाई गईं। *हिन्दु स्तान*

टाइम्स की एक रिपोर्ट का हवाला देते हुए जैन ने कहा कि दुनियाभर में 5 करोड़ गर्भपातों में से लगभग आधे अवैध थे और इसके परिणामस्वरूप 200,000 महिलाओं की मौत हुई। जैन का अनुमान था कि साठ से अस्सी लाख महिलाएँ गर्भपात से गुजरने के परिणामस्वरूप जीवन भर के लिए बीमार हो गईं। ²⁸

पुस्तक में गर्भपात में वृद्धि के लिए बर्थ-क्लीनिक द्वारा चलाए जाने वाले लिंग-निर्धारण परीक्षणों को दोषी ठहराया गया है। अग्रवाल ने कहा कि जन्म से पूर्व परीक्षण भ्रूण या अन्य असामान्य विशेषताओं में पुरानी बीमारी का पता लगाने के इरादे से किया गया था। यह अभी तक पैदा होने वाले बच्चे में 72 तरह की पुरानी और वंशानुगत बीमारियों को समझ सकता था और इस प्रकार उनके जन्म के पूर्व उपचार में मददगार होता, लेकिन जल्द ही यह भ्रूण के लिंग परीक्षण में बदल गया जिसके कारण कन्या भ्रूणों का गर्भपात किया जाने लगा। अग्रवाल ने लिखा कि पूरे देश में न केवल लिंग-परीक्षण क्लीनिक आम हो गए हैं, बल्कि आधिकारिक आंकड़ों से पता चलता है कि वे कन्या भ्रूण हत्या के केन्द्र हैं और इन गर्भपातों में 97 फीसदी कन्या भ्रूण हैं।

पुस्तक में कहा गया है कि कई राज्यों में विशिष्ट कानूनों द्वारा जन्म पूर्व निदान तकनीकों पर प्रतिबंध लगाने के बाद भी इन पर क़ाबू नहीं पाया जा सका है। लोग होने वाले बच्चे के लिंग तय करने लगे हैं। अग्रवाल ने डॉक्टरों के साक्षात्कार के माध्यम से इस पर और प्रकाश डाला कि इस तरह के परीक्षण भी जोखिम मुक्त नहीं हैं क्योंकि भ्रूण और प्लेसेंटा को नुकसान होने का खतरा है; इसके अलावा वे हमेशा सटीक परिणाम भी नहीं देते हैं।

अग्रवाल लैंगिक समानता के लिए एक नैतिक आधारभूमि बनाते हैं और माताओं को बताते हैं कि एक लड़की एक लड़के के समान है। सीता, रानी लक्ष्मीबाई, मदर टेरेसा और अन्य सभी महान महिलाओं की एक लंबी सूची को देते हुए अग्रवाल ने यह याद दिलाया कि 'हर सफल आदमी के पीछे एक स्त्री होती है।' उन्होंने कहा कि यह मानना अतार्किक है कि एक लड़का अपने बुढ़ापे में अपने माता-पिता की देखभाल करेगा जबकि एक लड़की केवल शादी और दहेज में बड़े खर्च का कारण बनेगी। अग्रवाल ने वे मामले गिनवाए जहाँ बेटियों ने बेटों की तुलना में अपने बूढ़े माता-पिता की बेहतर देखभाल की। यह ध्यान देने योग्य है कि बेटों और बेटियों को समान दर्जा देने का तर्क और यह तर्क देना कि एक बेटी बुढ़ापे में अपने माता-पिता की देखभाल करेगी, पोद्दार के विचारों से मेल नहीं खाता। उन्होंने इसे शास्त्र विरुद्ध माना होता और इसकी निन्दा की होती।

गीता प्रेस की विचारधारा की निरंतरता इसके बिजनेस मॉडल में भी व्याप्त है। इसके अर्थशास्त्र में बहुत बदलाव नहीं आया है। वर्तमान में गीता प्रेस मुख्य रूप से गोबिंद भवन के कपड़ा व्यवसाय, *कल्याण* और *कल्याण - कल्पतरु* की सदस्यता से लेकर पुस्तकों की बिक्री, और संरक्षकों एवं न्यासियों के योगदान से चलता है। अखबारी कागज़ का कारोबार काफ़ी समय पहले बंद हो गया। *कल्याण* की सदस्यता

आधारित प्रसार संख्या 200,000 से अधिक है जबकि *कल्याण-कल्पतरु* की संख्या 100,000 से अधिक है। इसके अलावा इन पत्रिकाओं की कई हज़ार प्रतियाँ देश के विभिन्न भागों में स्टॉल पर बेची जाती हैं। आज धर्म और आध्यात्मवाद बाज़ार और पैकेजिंग की गिरफ़्त में आ गए हैं। ऐसे तेज़ी से बदलती दुनिया का सामना करते हुए भी गीता प्रेस ने अपने नियमों को बदलने से इंकार कर दिया है। विशेष तौर पर वह आज भी गांधी से किए गए वायदे पर टिका है कि वह विज्ञापनों को स्वीकार नहीं करेगा। हालाँकि खेमका स्वीकार करते हैं: ‘हम नए ग्राहक प्राप्त करने में सक्षम नहीं हैं। सीमित संसाधनों के साथ मुझे नहीं पता कि हम कब तक टिकेंगे।’ ²⁹

खेमका की निराशा गीता प्रेस की उस लड़ाई से उपजी है जो उसे एक उदार अर्थव्यवस्था के इस दौर में नए रुझानों के साथ तालमेल रखने के लिए छोटे क़दमों के माध्यम से लड़नी पड़ रही है। सन् 2012 में गोबिंद भवन कार्यालय ने क्रेडिट-रेटिंग एजेंसी इकरा (आईसीआरए) के माध्यम से अपने आर्थिक मूल्य का परीक्षण किया। इकरा ने गोबिंद भवन कार्यालय की 8.5 करोड़ रुपये की निधि आधारित सीमा को बीबी रेटिंग दी। जो ‘दीर्घकालीन दृष्टि के अनुसार स्थिर रेटिंग है।’ ³⁰ इकरा ने अपने मूल्यांकन में इस बात को रेखांकित किया कि गोबिंद भवन कार्यालय का कार्य मामूली स्तर का है, जो समाज के ग़ैर-लाभकारी लक्ष्य और दीर्घ भंडारण के कारण उच्च कार्यशील पूंजी की मांग करता है। पूंजीगत व्यय में अधिकांशतः नक़द धन राशि का इस्तेमाल किए जाने के कारण उपलब्ध नक़दी सीमित है। सन् 2013 में गोबिंद भवन कार्यालय ने अपनी परिचालन आय पर 85,98,00,000 (85 करोड़ 98 लाख) रुपये में 5 लाख का लाभ कमाया, सन् 2012 में 79,29,00,000 (79 करोड़ 29 लाख) रुपये की परिचालन आय पर 4 लाख के लाभ से मामूली सुधार था।

खेमका के लिए यही राहत की बात थी कि इकरा के अनुसार गोबिंद भवन कार्यालय का भविष्य स्थिर है। यह स्थिरता लगभग नौ दशकों तक श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण आदि धार्मिक पुस्तकों द्वारा अर्जित नाम के साथ बाज़ार में कायम की गई मज़बूत उपस्थिति से है। पूरे भारत में ऐसे सशक्त वितरण नेटवर्क और इतने कम मूल्य पर पुस्तकें बेचने वाले अन्य प्रकाशन न के बराबर हैं। हालाँकि पुस्तकें घाटे पर बेची जाती हैं लेकिन, अन्य व्यवसायों से आय का एक स्थिर प्रवाह है जैसे भोजन, कपड़ा और आयुर्वेदिक दवाएं बेचना आदि। ये मिलकर गीता प्रेस के लिए ठोस बुनियाद तैयार करते हैं।

इक्कीसवीं सदी में गीता प्रेस एक ऐसे स्थान पर है जहाँ मात्र एक संगठन बाइबल सोसाइटी उसकी सफलता के समानांतर ठहरती है। भारत के किसी अन्य प्रकाशन समूह ने धर्म का विपणन इतनी सफलता से नहीं किया है। राजनीति से एक सुरक्षित दूरी बनाए रखने का दावा करने के बावजूद गीता प्रेस ने नियमित रूप से राजनीतिक रुख भी अपनाया है। इसने न केवल हिन्दू संगठन के रूप में पहचान कायम की और सांस्कृतिक मूल्यों का उद्घोषक बना बल्कि सन् 1923 से लगातार हर महत्वपूर्ण मोड़

पर हिन्दू राष्ट्रवाद के रंगमंच पर आरएसएस, हिन्दू महासभा, जनसंघ और बीजेपी के साथ एक मज़बूत खिलाड़ी के तौर पर मैदान में भी उतरा। ³¹ तीव्र साम्प्रदायिकता के दौर में *कल्याण* ने धार्मिक पत्रिका की भूमिका से निकल कर धार्मिक अस्मिता की लड़ाई लड़ी और भड़काऊ लेख छापे। वास्तविकता में गीता प्रेस की विलक्षणता इस बात में निहित है कि इसकी पहुँच धर्मनिरपेक्ष हिन्दू घरों में भी है। भारतीय राजनीति के ध्रुवीकरण और उससे होने वाले दक्षिणपंथी रुझान से गीता प्रेस जैसे संगठन को नई शह मिल रही है। अगर पोद्दार और जयदयाल गोयन्दका अपने प्रकाशन समूह की इस सफलता को देख रहे हैं तो निःसंदेह सनातन हिन्दू धर्म के प्रचार और उसकी रक्षा करने वाले अपने इस उद्यम पर उन्हें नाज़ हो रहा होगा।

आभार

यह पुस्तक मेरे परिवार, दोस्तों, शिक्षकों, विद्वानों और सहकर्मियों के साथ की गई एक सुदीर्घ समृद्ध यात्रा का परिणाम है, जिन्होंने उत्साह के साथ इसमें हिस्सा लिया। इनमें से कुछ ने मेरे दर्द को साझा किया और कुछ ने मुझे अक्सर महसूस होने वाले अकेलेपन और शून्य से बाहर निकाला। मैंने महज़ विवरण इकट्ठे किए हैं। अगर यह पुस्तक अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतरती है तो इसकी पूरी जवाबदेही मुझ पर है।

गीता प्रेस पर काम करने का मन बना लेने के बाद दो विख्यात इतिहासकारों शाहिद अमीन और वेंडी डोनिगर ने इस विषय पर काम करने के लिए मुझे प्रोत्साहित किया। जहाँ अपने स्वभाव के अनुरूप शाहिद ने इस विचार का स्वागत किया, वहीं हिन्दू स्टडीज़ की विशेष जानकार डोनिगर ने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए न्यू इंडिया फाउंडेशन फेलोशिप के लिए आवेदन को तैयार करने में मेरी मदद की। उन्होंने शिकागो विश्वविद्यालय की अपनी एक सहकर्मी उलरिक स्टार्क से भी मेरा परिचय करवाया जिन्होंने नवल किशोर प्रेस पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। स्टार्क ने मुझे विस्तृत औपनिवेशिक राजनीति पर नज़र डालने को कहा और गीता प्रेस के ऐतिहासिक लेखन में हिन्दू राष्ट्रवादी परियोजना से मिलने वाले उसके संयोग पर गौर करने को कहा। इस पुस्तक में ये संदर्भ बारंबार आते हैं। इसके लिए उलरिक का आभार।

न्यू इंडिया फाउंडेशन ने पहली बार मेरे आवेदन को अस्वीकृत कर दिया था, लेकिन इसने मुझे ये सीख दी कि एक आवेदक से कैसी अपेक्षाएँ रहती हैं! मेरे प्रस्ताव को पढ़ने और उस पर पर्याप्त सुझाव देने के लिए सुनील खिलनानी को धन्यवाद। कृष्ण कुमार और तान्या माथन का धन्यवाद। मैं सुनील खिलनानी को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ। उन्होंने अपने सुझाव में इस बात पर ज़ोर दिया कि इस प्रस्ताव में गीता प्रेस के सन् 1947 के बाद के इतिहास को विशेष रूप से रेखांकित किया जाना चाहिए। विनम्र विदुषी तान्या ने इस प्रस्ताव को पढ़ कर कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ कीं। हालाँकि उनके अध्ययन का क्षेत्र धार्मिक राजनीति से असंबद्ध है, लेकिन तान्या ने ज्ञान और अध्ययन की अपनी विस्तृत रुचियों की वजह से इस पर कुछ दिलचस्प सुझाव दिए। शिक्षा क्षेत्र के महान सिद्धांतकार कृष्ण कुमार ने मुझे याद दिलाया कि हिन्दू राष्ट्रवाद को प्रतिस्पर्धी साम्प्रदायिकता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। गीता प्रेस

से जुड़े अभिलेखों की खोज का उल्लेख परिचय में पहले ही किया जा चुका है। लेकिन इससे संदर्भ निकालना प्रख्यात इतिहासकार चारू गुप्ता के बिना संभव नहीं था। उन्होंने मुझे इस अभिलेखागार की भूलभुलैया में राह तलाशने और लगातार काम पूरा करने के लिए प्रोत्साहित किया।

शोध के एक महत्वपूर्ण हिस्से में गोरखपुर, बनारस और लखनऊ शामिल रहे। मैंने इन शहरों में अपनी बार-बार हुई यात्रा के दौरान आतिथ्य का अनुभव किया और दोस्त बनाए। गोरखपुर में गीता प्रेस के लालमणि तिवारी ने खुले दिल से मेरा स्वागत किया और प्रेस पुस्तकालय मेरे लिए खोल दिया। लेकिन अगर हरिकृष्ण दुजारी नहीं होते, तो यह पुस्तक भी नहीं होती। उन्होंने न केवल मुझे विशाल अभिलेखागार तक पहुँचने की पूरी आज्ञा दी, बल्कि यह भी सुनिश्चित किया कि गीता वाटिका विश्रामगृह में मेरा विशेष ध्यान रखा जाये। हरिकृष्ण दुजारी एक ऐसे परिवार से हैं जिसकी कई पीढ़ियों ने गीता प्रेस और उसके संस्थापक-संपादक हनुमानप्रसाद पोद्दार के साथ काम किया था। अब दुजारी मेरे लिए उसी गुज़रे वक्त के झरोखे थे। पोद्दार के पोते रसायेन्दु फोगला और उनका परिवार, गीता प्रेस के पर्याय हो गए इस शहर की मेरी कई यात्राओं के दौरान समान रूप से मेज़बान और सहयोगी रहा। मुझे मालूम है कि यह पुस्तक पोद्दार और उनके गीता प्रेस संबंधी विचारों को दोहराती नहीं है। मुझे यकीन है कि वे इस बात की सराहना अवश्य करेंगे कि पुस्तक के पीछे का विचार गीता प्रेस का गौरवगान नहीं अपितु इसे औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक भारत में हिन्दू राष्ट्रवाद के वृहद कैनवास पर दिखाना है।

शोध के दायरों के बढ़ने के साथ ही प्रशासनिक सेवा की वृंदा सरूप ने गोरखपुर में कमिश्नर के रिकॉर्ड रूम तक पहुँचने में मेरी मदद की। वे स्वयं एक प्रथम पंक्ति के इतिहासकार हो सकती हैं। तत्कालीन आयुक्त के रवीन्द्र बाबू और उनके सभी कर्मचारियों को धन्यवाद कि उन्होंने मुझे कार्यालय समय से परे तक रिकॉर्ड रूम में रहने की अनुमति दी और चाय-नाश्ते जैसी ज़रूरतों का ख़याल किया। गीता वाटिका के गंगाप्रसाद पांडे ने बहुत कम समय की सूचना पर भी संदर्भ और सामग्री के साथ मेरी मदद की। गोरखपुर में दीप कम्युनिकेशंस और अमन फोटोकॉपियर नाम से दो फोटोकॉपी की दुकानें हैं, जिनके मालिकों ने लगभग अवास्तविक लगने वाली मेरी मांगों को पूरा करने के लिए भरसक प्रयास किए और मुझे कभी निराश नहीं किया।

मेरे विश्वविद्यालय के दोस्त अजीत ने मुझे बनारस में एक घर जैसा माहौल उपलब्ध कराया। अजीत एक उल्लेखनीय व्यक्ति हैं जिन्होंने यौनकर्मियों के बीच काम करने और उनके जीवन में बड़े बदलाव लाने के लिए अपने बने-बनाए कैरियर को छोड़ दिया। अजीत, उनकी पत्नी सांत्वना मंजू और उभरती शास्त्रीय गायिका उनकी छोटी बेटी बारिश बृष्टि ने भी मेरा साथ दिया। थियोसोफिकल सोसाइटी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालयों में लंबा समय बिताने के बाद इनके साथ से मुझे घर का खाना उपलब्ध हुआ। लखनऊ में कॉलेज के एक दोस्त और प्रशासनिक सेना के अमृत अभिजात ने मुझे सीआईडी रिकॉर्ड तक पहुँचने में मदद की

। मेरे अभी तक के अनुभव में सभी संस्थानों में से सीआईडी रिकॉर्ड्स ऑफिस सबसे अधिक कुशलता से चलाया जाना वाला संस्थान है । सीआईडी रिकॉर्ड्स ऑफिस जाने का काम मैंने टोरंटो विश्वविद्यालय की मालविका कस्तूरी की सलाह पर किया और यह प्रयास सार्थक रहा । उत्तर प्रदेश राज्य अभिलेखागार महीनों के लिए मेरा केन्द्र बन गया था । इसके कर्मचारियों ने नियमों से परे जाकर निहायत छोटी सूचना पर दस्तावेजों को प्राप्त करने में मेरी मदद की ।

चंडीगढ़ में वकील अनुपम गुप्ता और उनकी पत्नी डॉली एक खुले घर और विशाल पुस्तकालय के स्वामी हैं । अनुपम का आभार जिनकी बदौलत मैं ऐसे दस्तावेज और पुस्तकें हासिल कर सका, जिन्हें खोज पाना असंभव था ।

भारत और विदेशों में पढ़ाने वाले दिल्ली विश्वविद्यालय के कई मित्रों ने विभिन्न अध्यायों के प्रारूपों को पढ़ कर शोध में सहयोग किया । तकनीकी सुविधाओं का आभार जिसकी वजह से एक दिन या कुछ घंटों के भीतर ही संदर्भ और सामग्री की उपलब्धता मेरे लिए संभव हो सकी । मेरे पास एक लंबी सूची है और मैं उनमें से कुछ को धन्यवाद देने तक ही खुद को सीमित रखूंगा, वैसे ही जैसे हमने हमेशा एक-दूसरे को संबोधित किया है । ए, एच, टी, एन, के और आर आप सभी का धन्यवाद । रटलेज इंडिया के शशांक शेखर सिन्हा को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने मुझे अकादमिक पत्रिकाओं तक पहुँचने में मदद की ।

शोध का एक हिस्सा चेन्नई में थियोसोफिकल सोसाइटी और द हिन्दू अखबार के पुस्तकालयों और अभिलेखागार में पूरा किया गया । द हिन्दू के तत्कालीन संपादक सिद्धार्थ वरदराजन का आभार, जिन्होंने मुझे अखबार के विशाल अभिलेखागार तक पहुँचने की अनुमति दी । विनम्र और मेहमाननवाज़, हिन्दू के पुस्तकालयाध्यक्ष के राजेंद्र बाबू ने इस अभिलेखागार को बेहतर तरीके से संचालित करते हुए इसे देश के कई अन्य अखबारी अभिलेखागारों से कहीं बेहतर स्थिति में रखा है । और ये कई अन्य अखबारों के विपरीत अपने पिछले अंकों की बदौलत पैसा बनाने की आदत का शिकार नहीं हुआ है ।

दिल्ली में मैंने नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार और चांदनी चौक के मारवाड़ी पुस्तकालय का इस्तेमाल किया और उससे पर्याप्त लाभ उठाया । नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय तथा भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार में मैंने बेहतर और सबसे सहयोगी कर्मचारियों का साथ पाया । भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार के तब के महानिदेशक इतिहासकार मुशीरुल हसन और जया रवींद्रन ने मुझे स्रोतों का पता लगाने और कम समय में उन्हें प्राप्त करने में सुविधा प्रदान की । हसन के मशवरे से मैंने गो-राजनीति को विशेष तौर पर देखना शुरू किया । नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय की पांडुलिपि और माइक्रोफिल्म अनुभाग में पूरी तरह शान्ति में बिताया गया समय सर्वाधिक लाभदायक रहा । हमेशा मुस्कुराने वाली दीपा भटनागर, जो कभी किसी शोधकर्ता को मना नहीं करती हैं और नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय के वरिष्ठ एवं अनुभवी अधिकारी एन बालाकृष्णन

ने अंतर-पुस्तकालयी समन्वय के माध्यम से पुस्तकों को व्यवस्थित करने सहित हर जगह में मेरी मदद की है। नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय के पूर्व निदेशक महेश रंगराजन मुझे यह याद दिलाते हुए नियमित प्रोत्साहित करते रहे कि शोध को अनिश्चित काल तक ले जाना एक अच्छा विचार नहीं है। विश्वमॉय पति ने पहला अध्याय पढ़ा और धार्मिक अवधारणाओं पर कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

लेखन के आगे बढ़ने के साथ ही मूल विचार से विचलन होना भी शुरू हुआ। कई सालों से प्रिय मित्र और सहकर्मी रहे उपन्यासकार और लेखक एजाज़ अशरफ़ ऐसे समय में मेरे साथ रहते और मुझे लंबी शून्यता से बाहर खींच लाते। साथ-साथ यह भी आश्वस्त करते कि विचलन का समय भी कभी-कभी अधिक उत्पादक हो सकता है। वे मेरी यात्रा में उस इंसान की भूमिका में थे जिनसे मैं सलाह ले सकता था, तर्क कर सकता था और प्रोत्साहन के लिए भी उन्हें ही ढूंढ़ता था। हिन्दुत्व और एम एस गोलवलकर पर अत्यधिक प्रशंसित पुस्तकों के लेखक, हैदराबाद विश्वविद्यालय के ज्योतिर्मय शर्मा ने मुझे तब संभाला जब मैं कई दिनों तक अपने कई तर्कों को सुसंगत नहीं कर पा रहा था। ज्योतिर्मय ने सरल और व्यावहारिक भाषा में जटिलता को उजागर किया। एजाज़ और ज्योतिर्मय, इस सबके लिए आपका शुक्रिया। समाजशास्त्री नंदिनी सुंदर ने मुझे आदिवासियों के प्रति हिन्दू राष्ट्रवादियों के आकर्षण के पीछे की गहरी राजनीति को समझने में मदद की और यह भी कि गीता प्रेस के लिए इसका क्या अर्थ था! नंदिनी सुंदर की ओर से बड़ा सहयोग मिला।

जब मैं मोनिका फ़ेयर के संपर्क में आया तब तक मैं इस पुस्तक का लगभग आधा हिस्सा लिख चुका था। उन्होंने गीता प्रेस पर काम किया है। वे सहजता से अपने लेख और शोध प्रबंध को साझा करने के लिए मान गईं। मोनिका ने मुझे पॉल अर्ने से मिलवाया जो गीता प्रेस पर काम करने वाले संभवतः पहले विद्वान हैं। मोनिका ने मुझे पॉल के लेख भेजे और अपनी पुस्तक में उनका उपयोग करने की अनुमति भी दी। मोनिका और पॉल का बहुत धन्यवाद।

मेरे पूर्व सहयोगी और दोस्त रोनोजॉय सेन ने मुझे नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ सिंगापुर की अपनी सहयोगी मेधा एम कुदेसिया से मिलवाया। मेधा द्वारा जी डी बिड़ला पर किया गया महत्वपूर्ण काम एक बड़ी मदद की तरह रहा। उन्होंने नए स्रोतों का भी सुझाव दिया, विशेषकर कोलकाता के मारवाड़ियों की दुनिया को लेकर। टोरंटो विश्वविद्यालय से दृश्य संस्कृति और समकालीन कला की इतिहासकार कजरी जैन ने हिन्दू चित्रांकन और गीता प्रेस पर काम करने वाले कलाकारों पर मेरी शंकाओं को दूर किया। जितेंद्र कुमार और अपूर्वानंद जैसे मित्रों ने बहुत सहजता और शान्ति से जटिलतम हिन्दी शब्दों और वाक्यों के अनुवाद फोन या ईमेल पर किए। उस समय *इंडियन एक्सप्रेस* से जुड़े रवीश तिवारी ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के छोटे शहरों के गठन-संबंधी सरल इतिहास से परिचय करवाया। भारत के बेहतरीन टीवी पत्रकारों में शामिल *एनडीटीवी* के हृदयेश जोशी ने किसी और से ज़्यादा इस पुस्तक का इंतज़ार किया। उनके साथ होने वाली लंबी बातचीत हमेशा समृद्ध करती रही। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

द्वारा संचालित भारत नीति प्रतिष्ठान को चलाने वाले दिल्ली विश्वविद्यालय के राकेश सिन्हा एक पुराने मित्र हैं जिन्होंने कभी वैचारिक मतभेदों को मदद के रास्ते में नहीं आने दिया । राकेश सिन्हा ने गोलवलकर के भाषणों और संदर्भों का अनुवाद के साथ तालमेल बिठाया । गीता प्रेस पर काम करने वाली ऋतु सिन्हा ने भी निःस्वार्थ भाव से अपने विचार, लेख और संदर्भ साझा किए । पटना में श्रीकांत ने तारीखों और संदर्भों के मामले में मेरी मदद की । उसी तरह शम्सुल इस्लाम ने भी मदद की । रामबहादुर राय ने बाबरी मस्जिद के मुद्दे पर संघ परिवार के भीतर विविध अज्ञात तथ्यों में से एक की ओर संकेत किया ।

टाइम्स समूह के मेरे पंद्रह साल के कार्यकाल में दोस्तों और सहकर्मियों की एक बड़ी संख्या रही जिन्होंने नियमों से बाहर जाकर मेरी मदद की । मैं अपने संपादकों जयदीप बोस, अरिंदम सेनगुप्ता और दिवाकर का शुक्रगुज़ार हूँ कि जिन्होंने मुझे नौकरी में एक साल का अध्ययन-अवकाश दिया । बिना अवकाश यह पुस्तक संभव ही नहीं थी । शंकर रघुरामन ने मेरे लिए पुस्तकें जुटाई और कुछ समय केरल में बिताने वाले राजेश रामचंद्रन ने कोच्चि से महत्वपूर्ण जानकारी मुहैया करवाई । महुआ चटर्जी और अभीक बर्मन ने पुरानी बांग्ला के अनुवाद में मदद की । मैं अभीक का इसलिए भी आभारी हूँ कि एक सामान्य बातचीत के दौरान उन्होंने सुझाव दिया कि मुझे विवियन बोस कमीशन की इन्क्वायरी रिपोर्ट देखनी चाहिए । इसने पोद्दार केंद्रित मेरे अध्याय के ढांचे को पूरी तरह बदल दिया । मेरे विभाग के रजत पंडित ने मुझे लगातार स्मरण कराया कि मुझे इस परियोजना में देरी नहीं करनी चाहिए और दो उल्लेखनीय पुस्तकों के लेखक मनोज मिता ने मुझे अनवरत प्रोत्साहन के शब्द कहे ।

मैं रामचंद्र गुहा का कैसे धन्यवाद करूँ? मैं वही उद्धृत करूँगा जो सन् 1932 में गोरखपुर जेल से पुत्र देवदास के रिहा होने पर गांधी ने हनुमानप्रसाद पोद्दार को लिखा था । पोद्दार ने देवदास की देखभाल की थी: 'मैं अनुग्रह क्या मानूँ, ऐसी सेवा मूक रह कर लेना ही मुझे तो सभ्यता प्रतीत होती है । ऐसी निःस्वार्थ सेवा के लिए केवल ईश्वर ही पुरस्कृत कर सकता है, मनुष्य नहीं ।' लेकिन चूंकि मैं महात्मा नहीं हूँ, इसलिए यहाँ मौन विवेकपूर्ण नहीं है । राम सच्चे अर्थों में उदार हैं । वे शुरू से ही इस पुस्तक को लेकर उत्साहित थे । एक स्वतंत्र रूप से चलने वाले संगठन न्यू इंडिया फाउंडेशन के प्रबंध न्यासी के रूप में उन्होंने कोई सवाल नहीं उठाए, न ही अपने विचार थोपे और हमेशा मदद के लिए तैयार रहे । वे पूरी पांडुलिपि पढ़ने वाले पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने पाठकों को उपलब्ध होने वाले पाठ से लगभग 60,000 अधिक शब्द पढ़े । उनके सुझाव मेरी भविष्य की पुस्तकों में लाभदायक होंगे । मैंने उन्हें संभवतः किसी अन्य फेलो की तुलना में मामूली बातों के लिए भी कई बार तकलीफ़ दी । मैं हमेशा उनका मार्गदर्शन चाहूँगा । धन्यवाद, राम!

न्यू इंडिया फेलोशिप के सूत्रधार नंदन नीलेकणि ने गीता प्रेस के अर्थशास्त्र के मुद्दे पर मुझसे तर्क-वितर्क किए । इसे शामिल करना मेरी योजना में नहीं था । लेकिन मैं जिस व्यापक दृश्य को उकेरना चाहता था, उसके लिए यह महत्वपूर्ण साबित हुआ ।

संदर्भों में मेरी मदद करने के लिए गोपालकृष्ण गांधी का आभार, खासकर उनके पिता देवदास गांधी के संपादक रहते हुए *हिन्दुस्तान टाइम्स* में गीता पर प्रकाशित लेख के लिए। उनके स्नेह भरे बोल और पुस्तक में गहरी रुचि ने मेरे लेखन के अंतिम छोर पर मनोबल को बढ़ाने का काम किया।

एक सख्त किंतु सहृदय संपादक की तलाश ने मुझे बैचेन कर दिया। *द टाइम्स ऑफ़ इंडिया* के मेरे पूर्व सहकर्मी और प्रिय मित्र गोपाल टंडन ने भी काम को लेकर सहमति जताई। पहला अध्याय पढ़कर दी गई उनकी टिप्पणी ने मुझे हैरान किया, लेकिन मुझे पता था कि यह मेरे पास और बेहतर स्थिति में लौटेगा। उथल-पुथल वाले 1970 के दशक के हिस्सेदार रहे गोपाल ने प्रत्येक शब्द और तथ्य को जांचा-परखा, त्रुटियों, दोहराव, शब्दावलियों को चिह्नित किया और निर्ममतापूर्वक उन्हें ठीक किया। यह प्रक्रिया एक साल से अधिक समय तक चली। मैं उनकी पत्नी नीरू और बेटी सलोनी का भी शुक्रिया अदा करता हूँ कि उन्होंने मुझे घर पर घंटों तक बर्दाश्त किया, लगातार मेरी बहसों और नॉक-ड्रॉक को सुना और अच्छा खाना खिलाया। गोपाल जैसे आदमी से मिलना मुश्किल है।

फिर व्यापक अनुभव संपन्न एक पेशेवर संपादक रिवका इज़राइल से मिलना हुआ। उन्हें काट-छांट करने और पांडुलिपि को अनुक्रम में व्यवस्थित करने का काम सौंपा गया था। मैं उन्हें शब्दों की एक हंसमुख क्रांतिल कहता हूँ और उन्होंने क्या कमाल का काम किया! संपादकीय प्रक्रिया में उनके संपादन के बाद प्राप्त नए अध्यायों में भारी काट-छांट और कुछ हिस्सों में फेर-बदल देखना शुरुआत में कष्टकर था। लेकिन एक बार पूरा होने पर जब मैंने पूरी पांडुलिपि पढ़ी तब मैं उनके असाधारण संपादन-कौशल से परिचित हो पाया। एक प्रमुख अकादमिक प्रकाशक के साथ लंबे अनुभव के कारण रिवका स्रोतों से भली-भांति परिचित रहीं और कई बार उन्होंने नए तथ्य भी सुझाए, जिन्हें मैंने कृतज्ञता के साथ स्वीकार किया। अगर मैं फिर से एक पुस्तक लिखने का उद्यम करता हूँ, तो रिवका मेरी संपादक होंगी।

हार्पर कॉलिस में मुझे सौभाग्यवश अजिता जैसी संपादक मिली। युवा लेकिन पुराने सांचे में ढली अजिता की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वे एक बेहतरीन श्रोता हैं। उन्होंने मुझे हार्पर कॉलिस में विश्वास रखने के लिए राजी किया और काम को सुन्दर ढंग से पूरा किया। डिज़ाइनर बोनिता शिमरे ने पुस्तक की अवधारणा को समझा और ऐसा आवरण डिज़ाइन किया जो सबको झट से पसंद आ गया। अमृता तलवार ने अत्यंत उत्साह के साथ मार्केटिंग की ज़िम्मेदारी संभाली। प्रकाशक कार्तिका ने पृष्ठभूमि में रहते हुए अजिता के हाथ ज़िम्मेदारी सौंप दी। हालाँकि उसके बाद भी कार्तिका सूत्रधार की भूमिका अदा करती रहीं। उनकी सकारात्मक ऊर्जा और सदाबहार मुस्कान हार्पर कॉलिस को एक खुशनुमा जगह बनाती है।

अपने शुरुआती वर्षों में गीता प्रेस के प्रभाव का अनुभव करने वाले उपन्यासकार, लेखक और निबंधकार पंकज मिश्र ने इस पुस्तक का आगे बढ़ कर स्वागत किया और न केवल पांडुलिपि को पढ़ने के लिए वे सहमत हुए, बल्कि एक अग्रिम टिप्पणी भी

लिखी । पुस्तक पर भरोसा रखने के लिए शुक्रिया पंकज! मैं उपन्यासकार और निबंधकार अरुंधति रॉय का आभारी हूँ जिन्होंने बहुत कम समय में दी गई सूचना पर भी पांडुलिपि पढ़ी और उसके समर्थन हेतु सहमत हुई ।

दिल्ली की पुस्तकों की प्रतिष्ठित दुकानों में से एक बाहरी संस सालों से मेरे लिए एक दूसरे घर जैसा है, जो पुस्तक संबंधी मेरी हर मांग को समय से पूरा करता रहा है । अनुज और रजनी को किताबों की सबसे बेहतरीन दुकान चलाने के लिए आभार! मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि वरिष्ठ कमर्चारी मिथिलेश को कितनी किताबें याद रहती हैं और वे अपने कितने ग्राहकों के मन को जानते हैं । कभी-कभी आउट-ऑफ-प्रिंट संस्करणों की फोटोकॉपी उपलब्ध करवाने से लेकर उन्होंने मुझे वह सब उपलब्ध करवाया जो मैं चाहता था ।

प्रख्यात प्रभु बुक सर्विस, गुरुग्राम के सदर बाजार में बहुत छोटी-सी जगह पर स्थित है लेकिन इसकी प्रसिद्धि अंतर्राष्ट्रीय है । दशकों से इसने शोधकर्ताओं के लिए शोध को एक सुंदर काम बनाते हुए दुर्लभ पत्रिकाओं और उनके पहले संस्करणों को उपलब्ध करवाया है । मैं आज भी यह देख कर आश्चर्य में डूब जाता हूँ कि किस तरह इसके मालिक विजय ने जैन *हिन्दू पंच*, *चाँद*, *सरस्वती*, *उमा* और अन्य कई पत्रिकाओं की प्रतियों को मुझे उपलब्ध करवाया । उन्होंने मुझे प्रथम संस्करणों को खरीदने का आदी बना दिया । उनके साथ समय बिताना, लेखकों और नेताओं के किस्से सुनना एक शिक्षा ही है । धन्यवाद जैन साहब!

मैं भाग्यशाली हूँ कि मेरे पास एक बड़ा परिवार और एक बड़ी मित्र मंडली है । ये सभी बहुत पहले से पुस्तक की उम्मीद में थे । इनमें से कुछ ने समय बीतने के साथ पुस्तक के बारे में पूछताछ करनी बंद कर दी लेकिन मेरे भाई, भाभी, भतीजे और भतीजियों ने पुस्तक की आशा नहीं छोड़ी । मेरे श्वसुर ने इसका सबसे बेसब्री से इंतज़ार किया । मेरी पत्नी, मेरी सबसे अच्छी दोस्त, जीवन के उतार-चढ़ाव की सहयोगी ज्योति ने मुझे कई परियोजनाओं को बीच में छोड़ते हुए देखा है । इस बार उसने मुझे भटकने नहीं दिया और सारी ही ज़िम्मेदारियों को इसलिए संभाल लिया ताकि मैं एक निश्चित समय सीमा के भीतर अपने सपने पूरे कर सकूँ । ज्योति को मेरे लिखे अध्यायों को कई बार पढ़ना होता था और पढ़ने की इस प्रक्रिया में दिन-रात के अंतर बीच में नहीं आते थे । पांडुलिपि को पढ़ने और उस पर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ देने में ज्योति समान ढंग से क्रियाशील थीं । हमेशा मेरा साथ देने के लिए धन्यवाद! मेरे अध्ययन-अवकाश का सबसे सुंदर समय वह रहा जब मेरी बेटी जाह्नवी मेरे इस काम में साथ होती और कभी मेरे लिए टाइप करती तो कभी शोध सामग्री को छांटती । जब मैंने पुस्तक शुरू की तब जाह्नवी दस साल की थी और अब वह ज़्यादा सजगता के साथ अपने विचारों को व्यक्त करने वाली एक किशोरी है । आशा है कि वह इस पुस्तक को अपने पिता द्वारा किए गए प्रयासों पर खरा पाएगी । कृष्ण और मैरी को कुशलतापूर्वक घर चलाने और अपनी चंचल गतिविधियों के लिए छोटे रियान को भी धन्यवाद ।

गीता प्रेस पर पुस्तक लिखने का विचार मुझे सन् 2008 में हमेशा के लिए विदा लेने से पहले अपने पिता के साथ हुई एक बातचीत के दौरान आया था । गीता प्रेस की सफलता को लेकर पिता की जिज्ञासा मेरे साथ बनी रही । हमारी वैचारिक विश्वदृष्टि में भले ही अंतर था, लेकिन मैं इसके लिए उनका आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे अपनी नज़र से दुनिया को देखने लायक बनाया और एक ऐसा वातावरण उपलब्ध कराया जहाँ विचारों और पुस्तकों की दुनिया का महत्त्व था । यह सहज, सुंदर और खुली बातचीत का माहौल था जिसमें हमारे बीच कहीं कुछ ठहरता नहीं था । अनुशासन को पसंद करने वाली मेरी माँ खुश थी क्योंकि अंततः मैं कुछ मौलिक कर रहा था । लेकिन माँ ने भी पिता की राह ली और सन् 2012 में रात भर की बीमारी के बाद उस वक़्त चल बसीं जब मेरे अध्ययन-अवकाश का दूसरा ही महीना चल रहा था । मैं याद करूँ तो मैंने इस पुस्तक का पहला अध्याय रांची में मेरे घर की उसी कुर्सी पर पूरा किया जहाँ वे टहल कर आने के बाद या निचली मंजिल पर आने पर बैठती थीं । मेरे ज़ेहन में उन दोनों पाठकों की भीनी याद बसी है जो मेरे लिए सबसे अहम थे । यह पुस्तक उन्हें समर्पित है ।

टिप्पणियाँ

परिचय

1. गोयन्दका और गीता प्रेस प्रतिष्ठान पर जानकारी भगवती प्रसाद सिंह से ली गई, *कल्याण पथ: निर्माता और राही*, राधा माधव सेवा संस्थान, गोरखपुर, 1980, पृष्ठ 287-89
2. बजाज के भाषण की विस्तृत जानकारी बी आर नंदा से ली गई, *इन गांधीज़ फुटस्टेप्स: द लाइफ़ एंड टाइम्स ऑफ़ जमनालाल बजाज*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2011, पृष्ठ 145-47
3. सी ए बेली, *एम्पायर एंड इन्फ़ॉर्मेशन: इंटेलिजेंस गैदरिंग एंड सोशल कम्युनिकेशन इन इंडिया*, 1780-1870, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 1-9
4. सुमित सरकार, *मॉडर्न इंडिया*, 1885-1947, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ 235
5. वसुधा डालमिया, *द नेशनलाइज़ेशन ऑफ़ हिन्दू ट्रेडिशनस: भारतेंदु हरिश्चंद्र एंड नाइनटीन्थ सेंचुरी बनारस*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1997, पृष्ठ 197; शम्सुर्रहमान फ़ारुकी, 'ए लॉन्ग हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेरी कल्चर, भाग 1,' शेल्डन पोल्लोक (सं), *लिटरेरी कल्चर्स इन हिस्ट्री: रिकन्सट्रक्शन्स फ़्रॉम साउथ एशिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कले, 2003, पृष्ठ 815
6. हरीश त्रिवेदी, 'द प्रोग्रेस ऑफ़ हिन्दी, भाग 2,' पोल्लोक (सं) में, 2003, पृष्ठ 965-66
7. क्रिस्टोफ़र आर किंग, *वन लैंग्वेज, टू स्क्रिप्ट्स: द हिन्दी मूवमेंट इन नाइनटीन्थ सेंचुरी नार्थ इंडिया*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ 15
8. 'निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय लो सूल', भारतेंदु हरिश्चंद्र का दोहा, 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान', 1877, भारतेंदु समग्र में प्रकाशित, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन, बनारस, 2009
9. आलोक राय, *हिन्दी नेशनलिज्म*, ओरियंट लॉंगमैन, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ 17-49

- [10.](#) अविनाश कुमार, 'मेकिंग ऑफ़ द हिन्दू लिटरेरी फ़िल्ड: जर्नल्स, इंस्टिट्यूशन्स, पर्सनैलिटीज़ (1900-1940)', पीएचडी शोध-प्रबंध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001
- [11.](#) बाबू श्यामसुंदर दास द्वारा लिखित महावीरप्रसाद द्विवेदी के शोक समाचार से, *सरस्वती*, फ़रवरी 1939
- [12.](#) देखें, रामविलास शर्मा, *महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1977, पृष्ठ 183-84
- [13.](#) कुमार, 2001
- [14.](#) त्रिवेदी, 2003, पृष्ठ 961
- [15.](#) अभीक सामंता, 'द गीता प्रेस, गोरखपुर: ए डिसकर्सिव स्टडी', एम फिल लघु शोध प्रबंध, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2007
- [16.](#) गणेश दामोदर सावरकर, 'सनातन धर्म ही एकमात्र धर्म है', *हिन्दू पंच*, 29, नवंबर 1928
- [17.](#) 'पंच कार्यालय में आदर्श वीर', *हिन्दू पंच*, 4 अक्टूबर 1928
- [18.](#) बालमुकुन्द गुप्त, 'मारवाड़ी महाशयों के नाम', *भारतमित्र*, 27 फ़रवरी 1904, के सी यादव (सं) में पुनर्प्रकाशित, *चिट्टे और खत*, हरियाणा अकादेमी ऑफ़ हिस्ट्री एंड कल्चर, 2012, पृष्ठ 35-39
- [19.](#) ये तर्क फिलिप लुटगेनडोर्फ़ की *लाइफ़ ऑफ़ ए टेक्स्ट: परफॉर्मिंग द रामचरितमानस ऑफ़ तुलसीदास* पर आधारित हैं, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले, 1991, पृष्ठ 423
- [20.](#) थॉमस ए टिंबर्ग, *द मारवाड़ीज़: फ्रॉम ट्रेडर्स टू इंडस्ट्रीयलिस्ट्स*, विकास, नई दिल्ली, 1978, पृष्ठ 60
- [21.](#) लुटगेनडोर्फ़, 1991, पृष्ठ 423
- [22.](#) क्रिस्टोफ जैफ़रलॉट, *इंडियाज़ साइलेंट रिवोल्यूशन*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2003, पृष्ठ 189-99
- [23.](#) चन्द्रराज भंडारी 'विशारद', भ्रमरलाल सोनी और कृष्णलाल गुप्त, *अग्रवाल जाति का इतिहास*, अग्रवाल हिस्ट्री ऑफिस, इंदौर, 1937, पृष्ठ 106-18
- [24.](#) उदाहरण के लिए देखें, भालचंद मोदी, *देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान*, रघुनाथ प्रसाद सिंघानिया द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, 1939; ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ, *मैं अपने मारवाड़ी समाज को प्यार करता हूँ*, जैमिनी प्रकाशन, कलकत्ता, 1967
- [25.](#) सत्यकाम विद्यालंकार, 'पथ प्रवर्तक', *नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट*, नवंबर 1971, पृष्ठ 93-96

- [26.](#) कृष्णबिहारी मिश्र, *हिन्दी पत्रकारिता: राजस्थानी आयोजन की कृति भूमिका*, अखिल भारतीय मारवाड़ी युवा संघ, दिल्ली, 1999, पृष्ठ 21-22
- [27.](#) वही, पृष्ठ 17-18
- [28.](#) वही, पृष्ठ 27
- [29.](#) पॉल अर्ने, 'द "माउथ" ऑफ़ सनातन धर्म: द रोल ऑफ़ गीता प्रेस इन स्प्रेडिंग द वर्ड', अमेरिकन एकेडमी ऑफ़ रिलीजन एन्युअल मीटिंग में प्रस्तुत पर्चे के अनुसार, वाशिंगटन डीसी, नवंबर 20-23, 1993
- [30.](#) शिवपूजन सहाय, *मारवाड़ी सुधार की संपादकीय टिप्पणी*, भाग 7, मिश्र में उद्धृत, 1999, पृष्ठ 61
- [31.](#) सरकार, 1983, पृष्ठ 157
- [32.](#) पीटर रॉब, 'द चैलेंज ऑफ़ गऊ माता: ब्रिटिश पॉलिसी एंड रिलिजियस चेंज इन इंडिया, 1880-1916', *मॉडर्न एशियन स्टडीज़*, भाग 20, क्र. सं. 2, 1986, पृष्ठ 285-319
- [33.](#) ज्ञानेंद्र पांडे, *द असेन्डन्सी ऑफ़ द कांग्रेस इन उत्तर प्रदेश*, एंथम प्रेस, लंदन, 2002, पृष्ठ 97
- [34.](#) सांद्रिया बी राईटग, *कलेक्टिव एक्शन एंड कम्युनिटी: पब्लिक एरिनाज़ एंड द एमरजेंस ऑफ़ कम्युनलिज्म इन नार्थ इंडिया*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1990, पृष्ठ 208-09
- [35.](#) वही, पृष्ठ 225
- [36.](#) एम के गांधी, *यंग इंडिया* में, 9 अप्रैल 1931, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी* में पुनर्प्रकाशित, भाग 51, पृष्ठ 361
- [37.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, *कल्याण*, भाग 6, क्र. सं. 5, 1931, आवरण पृष्ठ
- [38.](#) राईटग, 1990, पृष्ठ 235
- [39.](#) इस तर्क के लिए मैं शिक्षाविद् कृष्ण कुमार का आभारी हूँ।
- [40.](#) *सनातन धर्म पताका* की समीक्षा, *माधुरी* में प्रकाशित, 1 जनवरी 1925, पृष्ठ 843
- [41.](#) डालमिया, 1997, पृष्ठ 7
- [42.](#) मोनिका होर्ट्समन, 'टुवर्ड्स ए यूनिवर्सल धर्म: कल्याण एंड द ट्रैक्ट्स ऑफ़ द गीता प्रेस', वसुधा डालमिया और हेनरिक वॉन स्टीटेनक्रोन (सं) में, *रिप्रेसेंटिंग हिन्दुइज़्म*, सेज़, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 303
- [43.](#) बेनडिक्ट एंडरसन, *इमैजिंड कम्युनिटीज़: रिफ्लेक्शन्स ऑन द ओरिजिन एंड स्प्रेड ऑफ़ नेशनलिज्म*, वर्सो, लंदन, 2003, पृष्ठ 38-39

- [44.](#) पॉल अर्ने, 'गीता प्रेस एंड द मैगज़ीन कल्याण : द हिन्दू इम्पेरिटिव ऑफ़ धर्म-प्रसार', साउथ एशिया के 24वें वार्षिक सम्मलेन में प्रस्तुत पर्चा, यूनिवर्सिटी ऑफ़ विसकॉनसिन, मैडिसन, अक्टूबर 1995
- [45.](#) जयदयाल गोयन्दका, 'धर्म और उसका प्रचार', कल्याण, भाग 2, क्र. सं. 3, 1927, पृष्ठ 186, अर्ने में उद्धृत, 1995
- [46.](#) अर्ने, 1995
- [47.](#) विलियम ए ग्राहम, *बियौंड द रिटन वर्ड: ओरल आस्पेक्ट्स ऑफ़ स्क्रिप्चर इन द हिस्ट्री ऑफ़ रिलिजन*, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1987, पृष्ठ 77
- [48.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 318
- [49.](#) कैथरीन हैन्सन, *स्टेजेज़ ऑफ़ लाइफ़: इंडियन थियेटर ऑटोबायोग्राफ़िज़*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2011, पृष्ठ 103
- [50.](#) लुटगेनडोर्फ़, 1991, पृष्ठ 66-67
- [51.](#) वही
- [52.](#) 1931 की जनसंख्या गणना के अनुसार, उत्तर प्रदेश में साक्षरों की संख्या 2,309,000 थी (20.91 लाख पुरुष, 2.18 लाख महिलाएँ) जो 1941 की गणना में बढ़कर 4,728,000 तक पहुँच गई (40.97 लाख पुरुष, 6.30 लाख महिलाएँ)। यह साक्षरता दर केंद्रीय प्रान्त और बिहार के कुल दर से अधिक थी।
- [53.](#) उलरिक स्टार्क में उद्धृत, *एन एम्पायर ऑफ़ बुक्स: द नवल किशोर प्रेस एंड द डिफ्यूजन ऑफ़ द प्रिंटेड वर्ड इन कॉलोनियल इंडिया*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2007, पृष्ठ 35
- [54.](#) स्टार्क, 2007, पृष्ठ 43-44, 51-52
- [55.](#) सामंता, 200 7
- [56.](#) मोनिका फ़ेयर द्वारा उद्धृत कल्याण में गोयन्दका द्वारा की गई कड़ी आलोचना, 'कल्टीवेटिंग इमोशंस: द गीता प्रेस एंड इट्स एजेंडा ऑफ़ सोशल एंड स्पिरिचुअल रिफॉर्म,' *साउथ एशियन हिस्ट्री एंड कल्चर*, भाग 3, क्र. सं. 3, जुलाई 2012, पृष्ठ 397-418
- [57.](#) वही
- [58.](#) हिन्दू कोड: हिन्दू संस्कृति के विनाश का आयोजन, कल्याण, जून 1948, पृष्ठ 1110-13
- [59.](#) वर्णाश्रम स्वराज्य संघ: *अन्त्यजन के लिए मंदिर प्रवेश का निषेध क्यों, हिन्दू संस्कृति अंक*, कल्याण, जनवरी 1950, पृष्ठ 214-17

60. अर्ने, 1993
61. वही
62. 'गीता प्रेस के कार्यों का संक्षिप्त विवरण', कल्याण, जून 1955, पृष्ठ 1118-20
63. <http://gitapress.org/Pub.htm> . 5 फ़रवरी 2014 को देखी गई ।
64. अर्ने, 1993, और 1995
65. चंद्रिमा चक्रवर्ती, मैसकुलिनिटी, असेटीसिज़्म, हिन्दुइज़्म: पास्ट एंड प्रेजेंट इमैजिनिंग्स ऑफ़ इंडिया, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2011, पृष्ठ 5
66. इस बिंदु का श्रेय मैं इतिहासकार उलरिक स्टार्क को देता हूँ ।
67. चारू गुप्ता, 'आर्टिकुलेटिंग हिन्दू मैसकुलिनिटी एंड फैमिनिटी: "शुद्धि" एंड "संगठन" मूवमेंट्स इन यूनाईटेड प्रोविन्सेस इन द 1920', इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, भाग 33, क्र. सं. 13, 26 मार्च-3 अप्रैल 1998, पृष्ठ 727-35

अध्याय 1

1. मोनिका होर्ट्समन, 'टुवर्ड्स ए यूनिवर्सल धर्म: कल्याण एंड द ट्रेक्ट्स ऑफ़ द गीता प्रेस', वसुधा डालमिया और हेनरिक वॉन स्टीटेनक्रोन (सं), रिप्रेसेंटिंग हिन्दुस्तान: द कंस्ट्रक्शन ऑफ़ रिलीजियस ट्रेडिशन एंड नेशनल आइडेंटिटी, सेज, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 294-305
2. ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ की 'मैं अपने मारवाड़ी समाज को प्यार करता हूँ' से प्राप्त विवरण, जैमिनी प्रकाशन, कलकत्ता, 1967, भाग 7, पृष्ठ 1296
3. श्री भाईजी: एक अलौकिक विभूति, रस-सिद्ध संत भाईजी श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार और संत प्रवर सेठजी श्री जयदयाल गोयन्दका का जीवन दर्शन नाम से प्रकाशित जीवनियों के लिए गंभीरचंद दुजारी को दिया गया हनुमानप्रसाद पोद्दार के साक्षात्कार का अंश, गीता वाटिका प्रकाशन, गोरखपुर, 2000 । पांडुलिपि हरिकृष्ण दुजारी के संग्रह में रखी हुई है । साथ ही देखें, भगवती प्रसाद सिंह, कल्याण पथ: निर्माता और राही, राधा माधव सेवा संस्थान, गोरखपुर, 1980 । यहाँ दी गई जानकारी इन्हीं स्रोतों से जुटाई गई है ।
4. भालचंद मोदी, देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान, रघुनाथ प्रसाद सिंघानिया द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, 1939, पृष्ठ 739-40
5. देखें जयीता शर्मा, एम्पायर्स गार्डन: असम एंड द मेकिंग ऑफ़ इंडिया, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2011

- [6.](#) अभीक सामंता, 'द गीता प्रेस गोरखपुर: ए डिसकर्सिव स्टडी', एम फिल लघु शोध प्रबंध, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2007
- [7.](#) सुहास चक्रवर्ती, *राज सिंड्रोम*, पेंगुइन, नई दिल्ली, 199 5
- [8.](#) सुमित सरकार, *मॉडर्न इंडिया : 1885-1947*, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ 75
- [9.](#) कर्मेन्दु शिशिर, *नवजागरणकालीन पत्रकारिता और मतवाला*, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ 330
- [10.](#) फ्रांसेस्का ओर्सिनी, *द हिन्दी पब्लिक स्फीयर 1920-1940: लैंग्वेज एंड लिटरेचर इन द एज ऑफ़ नेशनलिज़्म*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2002 पृष्ठ 442
- [11.](#) 'समसामयिक विचार प्रवाह', *सरस्वती*, नवंबर 1931, पृष्ठ 563
- [12.](#) सुमित सरकार, *द स्वदेशी मूवमेंट इन बंगाल*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2010, पृष्ठ 221
- [13.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 84-85
- [14.](#) पोद्दार से मदनमोहन मालवीय, 25 मई 1935 पोद्दार पेपर्स
- [15.](#) सरकार, 2010, पृष्ठ 226
- [16.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 90-91
- [17.](#) *कलकत्ता समाचार*, 22 जुलाई 1916, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, माइक्रोफ़िल्म सेक्शन
- [18.](#) *कलकत्ता समाचार*, 24 जुलाई 1916, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, माइक्रोफ़िल्म सेक्शन
- [19.](#) स्थानीय समाचार पत्रों की रिपोर्ट, बंगाल, 1916, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [20.](#) मेधा एम कुदेसिया, *द लाइफ़ एंड टाइम्स ऑफ़ जी. डी. बिड़ला*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 37
- [21.](#) राजद्रोह समिति की रिपोर्ट, 1918, पृष्ठ 66, पोद्दार पेपर्स
- [22.](#) कुदेसिया में उद्धृत बरुआ, 2003, पृष्ठ 36
- [23.](#) कुदेसिया, वही, पृष्ठ 35
- [24.](#) सरकार, 2010, पृष्ठ 83
- [25.](#) अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन, 1955 से लिया पोद्दार का साक्षात्कार, पोद्दार पेपर्स

- [26.](#) बी वी पराड़कर, 'सती भगवती', कल्याण, नवंबर 1938
- [27.](#) षड्यंत्र पर व्याख्या पोद्दार पेपर्स के आधार पर, पोद्दार की जीवन घटनाओं पर प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका द्वारा तैयार संस्मारक पुस्तक (1971) से तैयार परिणाम, जेम्स कैम्पबेल केर के कुछ उद्धरण, *पॉलिटिकल ट्रबल इन इंडिया*, 1907-1917, ओरिएंटल पब्लिशर्स, दिल्ली, 1917, और कुदेसिया में बरुआ का शामिल उद्धरण, 2003
- [28.](#) स्थानीय समाचारपत्रों की रिपोर्ट, बंगाल, 1916, 18 जुलाई के दैनिक *बासुमति* का उद्धरण, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [29.](#) स्वतंत्रता आंदोलन में मारवाड़ियों के योगदान को लेकर लिखी गई पुस्तक के लिए रघुनाथ प्रसाद सिंघानिया को दिया गया आशुतोष लाहिड़ी का साक्षात्कार, पोद्दार पेपर्स
- [30.](#) डी. पी. मंडेलिया, *जी. डी. बिड़ला: ए सुपर्व मास्टर स्कल्पटर*, कुदेसिया में उद्धृत, 2003
- [31.](#) राजनैतिक विभाग के रिकॉर्ड (स्पेशल इंटेलिजेंस ब्रांच), बंगाल सरकार, पोद्दार पेपर्स
- [32.](#) वही
- [33.](#) मारवाड़ी एसोसिएशन की बैठक पर लिखी गई रिपोर्ट, *द स्टेट्समैन*, मंगलवार, 8 अगस्त 1916, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, माइक्रोफ़िल्म सेक्शन न
- [34.](#) *द ऑक्सफोर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ द म्यूज़िक ऑफ़ इंडिया*, संगीत महाभारती और ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुंबई और नई दिल्ली 2011, भाग-3, पृष्ठ 788
- [35.](#) पोद्दार से बी के बिड़ला, 6 अक्टूबर 1955, पोद्दार पेपर्स
- [36.](#) जी एस घुर्ये और आर वी अथाड़े की प्रश्नावली, पोद्दार पेपर्स
- [37.](#) धनंजय कीर, *लोकमान्य तिलक: फादर ऑफ़ द इंडियन फ्रीडम स्ट्रगल*, एस वी कंगुटकर, बॉम्बे 1959, पृष्ठ 428-29
- [38.](#) पोद्दार से गांधी, 16 मई 1935, पोद्दार पेपर्स
- [39.](#) राजमोहन गांधी, *द गुड बोटमैन: ए पोर्ट्रेट ऑफ़ गांधी*, वाइकिंग 1995, पृष्ठ 362
- [40.](#) राजमोहन गांधी, *मोहनदास: ए टू स्टोरी ऑफ़ ए मैन, हिज पीपुल एंड एन एम्पायर*, पेंगुइन-वाइकिंग, नई दिल्ली 2006, पृष्ठ 366
- [41.](#) पोद्दार को गांधी का टेलीग्राम, 16 जून 1932, पोद्दार पेपर्स
- [42.](#) राजमोहन गांधी, 2006, पृष्ठ 310
- [43.](#) निवेदन की तिथि 18 जून 1932, पोद्दार पेपर्स
- [44.](#) पोद्दार द्वारा जारी प्रेस विज्ञप्ति, पोद्दार पेपर्स

- [45.](#) 21 जुलाई 1932 को यरवदा जेल से लिखा गया गांधी का पत्र, भाग 56, पृष्ठ 226
- [46.](#) पोद्दार से गांधी, 2 अगस्त 1932, पोद्दार पेपर्स
- [47.](#) पोद्दार से नारायणदास गांधी, 3 अगस्त 1932, सत्याग्रह आश्रम उद्योग मंदिर, साबरमती से, पोद्दार पेपर्स
- [48.](#) राजमोहन गांधी, 2006, पृष्ठ 370
- [49.](#) वही, पृष्ठ 373
- [50.](#) गांधी से पोद्दार, कार्तिक शुक्ल 1, संवत् 1989 (1932), पोद्दार पेपर्स
- [51.](#) *नवजीवन*, 9 अक्टूबर 1921
- [52.](#) *नवजीवन*, 12 दिसंबर 1920
- [53.](#) *नवजीवन*, 17 अप्रैल 1921
- [54.](#) रामायण में, राम की भक्त सबरी एक जनजातीय औरत थी और उन्होंने राम को फल खिलाने से पहले खुद खाए थे ताकि वह जान सके कि खिलाए जा रहे फल मीठे हैं या नहीं। हालाँकि, लक्ष्मण ने सबरी के जूठे फल खाने को लेकर राम को बुरा-भला कहा लेकिन राम ने सबरी की इस निष्ठा के लिए उन्हें आशीर्वाद दिया था।
- [55.](#) पोद्दार को गांधी के पत्र, 5 नवंबर 1932, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी*, भाग 57, पृष्ठ 339-40
- [56.](#) आनंदपुरी से पोद्दार, 8 जुलाई 1956, पोद्दार पेपर्स
- [57.](#) प्रभाशंकर गुप्त से पोद्दार, कार्तिक शुक्ल, 1988 (1931), पोद्दार पेपर्स
- [58.](#) गांधी से पोद्दार, दिनांक स्पष्ट नहीं, 1937, पोद्दार पेपर्स
- [59.](#) पोद्दार से गांधी, 18 फरवरी 1937, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी*, भाग 70, पृष्ठ 420
- [60.](#) पोद्दार से जमनालाल बजाज, 4 अक्टूबर 1940, जमनालाल बजाज पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [61.](#) जमनालाल बजाज से पोद्दार, जमनालाल बजाज पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [62.](#) हिन्दू महासभा पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [63.](#) कुदेसिया, 2003, पृष्ठ 270
- [64.](#) पोद्दार की जीवनी की पांडुलिपि, संभवतः श्यामसुंदर दुजारी द्वारा संकलित, पोद्दार पेपर्स

- [65.](#) राजनैतिक गतिविधियों पर साप्ताहिक रिपोर्ट, 15 जुलाई 1949 को समाप्त हुए सप्ताह के लिए, नंबर 28, सीआईडी अभिलेख, लखनऊ
- [66.](#) राजनैतिक गतिविधियों पर साप्ताहिक रिपोर्ट, 2 सितंबर 1949 को समाप्त हुए सप्ताह के लिए, नंबर 35, सीआईडी अभिलेख, लखनऊ
- [67.](#) प्रेस को दिया गया पोद्दार का बयान, 24 मार्च 1928, पोद्दार पेपर्स
- [68.](#) बॉम्बे में दसवीं मारवाड़ी अग्रवाल महासभा बैठक में पोद्दार के भाषण का मूल अंश, स्वागत समिति द्वारा प्रकाशित और गीता प्रेस द्वारा मुद्रित 1928, पोद्दार पेपर्स
- [69.](#) हरिशंकर द्विवेदी और विष्णु हरि डालमिया (सं), *संत श्री जयदयाल डालमिया स्मृति ग्रन्थ*, हरिशंकर द्विवेदी द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, पृष्ठ 13
- [70.](#) वही, पृष्ठ 126-29
- [71.](#) वही, पृष्ठ, 156-57
- [72.](#) वही, पृष्ठ 152-53, जयदयाल डालमिया को लिखे गए पोद्दार के पत्रों से उद्धृत, श्रावण शुक्ल 14, 1989 (1932) और 1 अक्टूबर, 1933
- [73.](#) रामकृष्ण डालमिया से पोद्दार, आश्विन शुक्ल 1988 (1931), श्यामसुन्दर दुजारी द्वारा संकलित *सरस पत्र* में पुनरुद्धृत, गीता वाटिका प्रकाशन, गोरखपुर, 2005, पृष्ठ 59-60
- [74.](#) द्विवेदी और डालमिया, पृष्ठ 16
- [75.](#) वही, पृष्ठ 14-15
- [76.](#) द्विजेंद्र त्रिपाठी, *द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन बिज़नेस*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2004 पृष्ठ 195
- [77.](#) बजाज से पोद्दार, 26 नवंबर 1939, जमनालाल बजाज पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [78.](#) बजाज से पोद्दार, 15 दिसंबर 1939, जमनालाल बजाज पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [79.](#) त्रिपाठी, 2004 पृष्ठ 195
- [80.](#) नीलिमा डालमिया आधार, *फादर डियरेस्ट: द लाइफ एंड टाइम्स ऑफ़ आर के डालमिया*, रोली बुक्स, नई दिल्ली, 2003
- [81.](#) पोद्दार से रामकृष्ण डालमिया, 11 नवंबर 1969, पोद्दार पेपर्स
- [82.](#) पोद्दार से रामकृष्ण डालमिया, 27 अप्रैल 1970, पोद्दार पेपर्स
- [83.](#) पोद्दार से जयदयाल डालमिया, 2 अगस्त 1970, पोद्दार पेपर्स

84. डालमिया जैन एयरवेज़ लिमिटेड की 9 कंपनियों से पूछताछ की गई जिनके नाम डालमिया जैन एविएशन लिमिटेड (बाद में एशिया उद्योग लिमिटेड के नाम से जानी गई), लाहौर इलेक्ट्रिक सप्लाय कंपनी लिमिटेड (बाद में साउथ एशिया इंडस्ट्रीज़ के नाम से जानी गई), शापूरजी ब्रोचा मिल्स लिमिटेड, माधोजी धरमसी मैनुफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, एलेनबेरी एंड एएमपी कॉर्पोरेशन लिमिटेड, भारत यूनियन एजेंसीज़ लिमिटेड, डालमिया सीमेंट एंड पेपर मार्केटिंग कॉर्पोरेशन लिमिटेड (बाद में डेल्ही ग्लास वर्क्स लिमिटेड के नाम से जानी गई), वस्त्र व्यवसाय लिमिटेड और डालमिया दादरी सीमेंट लिमिटेड (बाद में जोड़ी गई) हैं ।

85. इन्क्वायरी कमिशन की रिपोर्ट (डालमिया-जैन कम्पनीज़ की प्रशासनिक पड़ताल), वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, 1963 पृष्ठ 1

86. नासिर तैयबजी, 'ऑफ़ ट्रेडर्स, यूज़र्स एंड ब्रिटिश कैपिटल: मैनेजिंग एजेंसीज़ एंड द डालमिया जैन केस', एस आर हाशिम, के एस चलपति राव, के वी के रंगनाथन और एम आर मूर्ति (सं) में, *इंडियन इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट एंड ग्लोबलाइज़ेशन: एसेज़ इन ऑनर ऑफ़ प्रोफ़ेसर एस के गोयल*, एकेडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली, 2008 पृष्ठ 109-30

87. इन्क्वायरी कमिशन की रिपोर्ट, 1963, पृष्ठ 71

88. वही, पृष्ठ 73

89. वही, पृष्ठ 72

90. वही, पृष्ठ 75

91. वही, पृष्ठ 83

92. केन ऑलेता, 'सिटिज़न्स जैन: व्हाई इंडियाज़ न्यूज़पेपर इंडस्ट्री इज़ थ्राइविंग', *द न्यू यॉर्कर*, 8 अक्टूबर 2012 पृष्ठ 52-61

93. लालबहादुर शास्त्री से पोद्दार, 16 मार्च 1965, *सरस पत्र*, 2005 पृष्ठ 140-41

94. पोद्दार से सेठ गोविन्द दास, 14 दिसंबर 1935, पोद्दार पेपर्स

95. हनुमानप्रसाद पोद्दार को लिखे गए विमला ठक्कर के पत्र, 11 जनवरी 1959 और 17 जनवरी 1959, पोद्दार पेपर्स

96. http://natnagarsitamau.com/english/history_sitamau.html 5 नवंबर 2013 को देखी गई

97. पोद्दार से गोडबोले, 1 जनवरी 1935, पोद्दार पेपर्स

98. पोद्दार से गोडबोले, 3 नवंबर 1935, पोद्दार पेपर्स

99. पोद्दार से गोडबोले, 18 अगस्त 1936, पोद्दार पेपर्स

- [100.](#) स्वामी सहजानंद सरस्वती, *मेरा जीवन संघर्ष*, अवधेश प्रधान द्वारा संपादित, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ 248
- [101.](#) राधेश्याम बंका, *परिकर मालिका*, भाग-II, हनुमानप्रसाद स्मारक समिति, गीता वाटिका, गोरखपुर, 2013 पृष्ठ 20-21, बंका ने गोलवलकर के लेख के बारे में जानकारी नहीं दी लेकिन इसे अक्षरशः उद्धृत किया ।
- [102.](#) गोविन्दवल्लभ पंत को लिखे गए पोद्दार के पत्र की प्रति, 1950 का दशक (दिनांक स्पष्ट नहीं), पोद्दार पेपर्स
- [103.](#) संपूर्णानंद को लिखा गया पोद्दार का पत्र 1959, पोद्दार पेपर्स
- [104.](#) पॉल आर ब्रास, *एन इंडियन पॉलिटिकल लाइफ: चरण सिंह एंड कांग्रेस पॉलिटिक्स*, 1937-1961, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृष्ठ 254-68
- [105.](#) पोद्दार को लिखा गया संपूर्णानंद का पत्र, 28 अगस्त 1967, पोद्दार पेपर्स
- [106.](#) रामनाथ गोयनका से पोद्दार, 6 जुलाई 1969, *सरस पत्र*, 2005 पृष्ठ 65-66
- [107.](#) 1971 के चुनाव में गोयनका को वोट देने के लिए पोद्दार की अपील, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स
- [108.](#) गुमनाम व्यक्ति को लिखा गया पोद्दार का पत्र, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स
- [109.](#) सिंह, 1980 पृष्ठ 47 7
- [110.](#) ली सीगल, *सेक्रेड एंड प्रोफेन डाइमेंशन्स ऑफ़ लव इन इंडियन ट्रेडिशन एज़ एक्ज़ेमप्लीफाइड इन द गीतगोविंद ऑफ़ जयदेव*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 3
- [111.](#) पोद्दार से आइरिन वॉलफिंगटन, 21 दिसंबर 1965, पोद्दार पेपर्स
- [112.](#) पोद्दार से जी डी बिड़ला, 1 अगस्त 1941, पोद्दार पेपर्स
- [113.](#) पोद्दार से जी डी बिरला, 9 अगस्त 1941, पोद्दार पेपर्स
- [114.](#) गुलज़ारीलाल नंदा से पोद्दार, 9 मार्च 1965, पोद्दार पेपर्स
- [115.](#) स्वामी चक्रधर को आइरिन द्वारा लिखा गया पत्र, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स
- [116.](#) आइरिन को पोद्दार का लिखा गया पत्र (संभवतः जून 1965), पोद्दार पेपर्स
- [117.](#) संभवतः पोद्दार को जवाब में भेजा गया आइरिन का पत्र (दिनांक स्पष्ट नहीं), पोद्दार पेपर्स
- [118.](#) सुभोन लेंबर्ट-हर्ले, *द हार्ट ऑफ़ गोपी: रेहाना तैयबजीज़ भक्ति डिवोशनलिज़्म एज़ सेल्फ-रिप्रेज़ेंटेशन*, लोघबोरो यूनिवर्सिटी, लेस्टरशायर, 2013 पृष्ठ 1-9
- [119.](#) वही

[120.](#) रेहाना से गांधी, 3 जून 1927, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी*, भाग 38, पृष्ठ 491

[121.](#) रेहाना से गांधी, 4 जनवरी 1931, 25 जनवरी 1931 और 10 अक्टूबर 1932, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी*, भाग 57, पृष्ठ 462; भाग 51, पृष्ठ 64, भाग 57, पृष्ठ 207

[122.](#) रेहाना से गांधी, 3 जनवरी 1927, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी*, भाग 38, पृष्ठ 491-92

[123.](#) लैबर्ट-हर्ले, 2013, वेद मेहता भी, *महात्मा गांधी एंड हिज़ अपोसल्स*, पेंगुइन बुक्स, हार्मोन्डसवर्थ, मिडेलसेक्स, 1976 पृष्ठ 211, लैबर्ट-हर्ले में उद्धृत

[124.](#) वही

[125.](#) वही

[126.](#) वही

[127.](#) रेहाना तैयबजी से पोद्दार, 18 नवंबर 1939, पोद्दार पेपर्स

[128.](#) पोद्दार से रेहाना तैयबजी, 21 नवंबर 1939, पोद्दार पेपर्स

[129.](#) रेहाना तैयबजी से पोद्दार, 28 नवंबर 1939, पोद्दार पेपर्स

[130.](#) पोद्दार से रेहाना तैयबजी 7 दिसंबर 1939, पोद्दार पेपर्स

[131.](#) रेहाना तैयबजी से पोद्दार, 16 दिसंबर 1939, पोद्दार पेपर्स

[132.](#) लैबर्ट-हर्ले, 2013

[133.](#) <http://www.swarthmore.edu/library/friends/ead/5267nile.xml> 29 मई 2014 को देखी गई

[134.](#) *द टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, 19 मई 1975

[135.](#) जी डी बिड़ला से जयदयाल गोयन्दका, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स

[136.](#) सामंता, 2007

[137.](#) हिन्दुओं में एक रिवाज है जिसमें आटे या चावल की चीजें एक विशेष सप्ताह में पूर्वजों की आत्माओं को अर्पित की जाती हैं। गया में होने वाला यह रिवाज विशेष महत्त्व का माना जाता है।

[138.](#) पोद्दार के दृष्टिकोण के विवरण दुजारी से लिए गए हैं, 2000 और दुजारी द्वारा लिखित पोद्दार की संपूर्ण पांडुलिपि से लिए गए हैं और जो पोद्दार पेपर्स का अंश है।

[139.](#) दुजारी, 2000, पृष्ठ 85-87

[140.](#) रामजीवन से पोद्दार, 29 जून 1964, पोद्दार पेपर्स

- [141.](#) सिंह, 1980 पृष्ठ 85-86
- [142.](#) गोयन्दका से पोद्दार, आषाढ़ कृष्ण 4, संवत् 1991 (1934), *सरस पत्र*, 2005 पृष्ठ 10-11
- [143.](#) पोद्दार से गोयन्दका, आषाढ़ शुक्ल 6, संवत् 1991 (1934), *सरस पत्र*, 2005, पृष्ठ 11-15
- [144.](#) मदनलाल से पोद्दार, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स
- [145.](#) पीतांबर प्रसाद अग्रवाल से पोद्दार, 15 नवंबर 1939, पोद्दार पेपर्स
- [146.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 178-79
- [147.](#) किसी अज्ञात परिचित व्यक्ति से पोद्दार, 19 जुलाई 1964, पोद्दार पेपर्स
- [148.](#) योगी शिव नारायण से पोद्दार, 14 दिसंबर 1967, पोद्दार पेपर्स
- [149.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी से पोद्दार, 28 मार्च 1939, *सरस पत्र*, 2005 पृष्ठ 107-09
- [150.](#) ऑल इंडिया कल्चरल कॉन्फ्रेंस का निमंत्रण देने के लिए पोद्दार को लिखा गया शंकर राव देव का पत्र, 3 मार्च 1951, पोद्दार पेपर्स
- [151.](#) भारतीय चतुर्धर्म वेदभवन न्यास के नियम-धर्म, 24 मार्च 1965, पोद्दार पेपर्स
- [152.](#) वही
- [153.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, *देश में आसुरी संपदा का विस्तार और हमारा कर्तव्य*, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स
- [154.](#) विवरणिका सूची, 'हनुमानप्रसाद अभिनंदन ग्रन्थ' 1958. सहयोगकर्ताओं की इस सूची में उप राष्ट्रपति एस राधाकृष्णन और मद्रास के मुख्यमंत्री सी राजगोपालाचारी, पोद्दार के पुराने मित्र और साथी गोविन्दवल्लभ पंत, पुरुषोत्तमदास टंडन, के एम मुंशी, संपूर्णानंद, और कमलापति त्रिपाठी जैसे नाम शामिल हैं; दार्शनिक और लेखक जैसे वासुदेव शरण अग्रवाल, सुनीति कुमार चटर्जी, माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, नंददुलारे वाजपेयी, सुमित्रानंदन पंत, सेठ गोविंद दास, मैथिलीशरण गुप्त, बनारसीदास चतुर्वेदी, ओंकारनाथ ठाकुर और अन्य थे; पथ के साथी जैसे स्वामी करपात्री महाराज और प्रभुदत्त ब्रह्मचारी; उद्योगपति मित्र जैसे घनश्यामदास बिड़ला और घनिष्ठ साथी शान्तिप्रसाद जैन, जयदयाल गोयन्दका, जयदयाल डालमिया और चिम्मनलाल गोस्वामी इसी सहयोगकर्ता सूची में थे, पोद्दार पेपर्स
- [155.](#) नागेश्वर दीक्षित से पोद्दार, 13 दिसंबर 1953, पोद्दार पेपर्स
- [156.](#) पोद्दार से वर्मा, 21 दिसंबर 1953, पोद्दार पेपर्स
- [157.](#) वर्मा से पोद्दार, 27 दिसंबर 1953, पोद्दार पेपर्स
- [158.](#) जयदयाल डालमिया से एस एन मंगल, 7 अक्टूबर 1967, पोद्दार पेपर्स

- [159.](#) जयदयाल डालमिया से मंगल, 28 मार्च 1968, पोद्दार पेपर्स
- [160.](#) जयदयाल डालमिया से मंगल, 10 अप्रैल 1968, पोद्दार पेपर्स
- [161.](#) शान्तिप्रसाद जैन द्वारा जारी की गई अपील की प्रति, रामनाथ गोयनका और ओंकारमल सर्राफ़, अप्रैल 1968, पोद्दार पेपर्स
- [162.](#) जयदयाल डालमिया से मंगल, 20 अप्रैल 1968, पोद्दार पेपर्स
- [163.](#) मंगल से जयदयाल डालमिया, 22 अप्रैल 1968, पोद्दार पेपर्स
- [164.](#) जयदयाल डालमिया से मंगल, 6 मई 1968, पोद्दार पेपर्स
- [165.](#) मंगल से जयदयाल डालमिया, 9 मई 1968, पोद्दार पेपर्स
- [166.](#) पोद्दार से प्रभुपाद, 21 जुलाई 1970, www.prabhupadabooks.com 1 अक्टूबर 2013 को देखी गई
- [167.](#) ‘अजर अमर गुण निधि सुत होहु, करहु बहुत रघुनायक छोहू’, दोहा, सुंदर काण्ड, रामायण । पोद्दार को तेजी बच्चन का टेलीग्राम, 27 सितंबर 1970, पोद्दार पेपर्स
- [168.](#) पोद्दार को लिखा गया प्रभुदत्त ब्रह्मचारी का पत्र (दिनांक की जानकारी नहीं) और बाद में जवाब, 9 कार्तिक कृष्ण, संवत् 2027 (1970), पोद्दार पेपर्स
- [169.](#) अच्युतानंद और जय गोविंद से प्रभुपाद, 13 अक्टूबर 1968, www.prabhupadabooks.com 13 अक्टूबर 1968 को देखी गई
- [170.](#) पोद्दार से प्रभुपाद, 4 मार्च 1970, www.prabhupadabooks.com 1 अक्टूबर 2013 को देखी गई
- [171.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, ‘मेरी स्थिति का स्पष्टीकरण’, 1969, पोद्दार पेपर्स
- [172.](#) परमेश्वर प्रसाद फोगला से ईश्वरीप्रसाद गोयनका, 13 मई 1971, पोद्दार पेपर्स
- [173.](#) श्यामसुन्दर दुजारी से ईश्वरीप्रसाद गोयनका, 31 मार्च 1971, पोद्दार पेपर्स
- [174.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी का बयान, 15 अप्रैल 1972, पोद्दार पेपर्स
- [175.](#) सेठ गोविंद दास से राधेश्याम बंका, 4 अगस्त 1972, सेठ गोविंद दास पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [176.](#) देखें, दुजारी, 2000
- [177.](#) रानीगंज के शीर्ष खनन अधिकारी मोहनलाल गोयनका के परिवार में व्यापार व सम्पत्ति के बंटवारे में गोयनका द्वारा निभाई गई मध्यस्थ की भूमिका पर विस्तृत विवरण, ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ में, 1967, पृष्ठ 1296
- [178.](#) दुजारी 2000, पृष्ठ 528-29

179. क्रिस्टोफ जैफरलॉट, *रिलिजन, कास्ट एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया*, प्राइमस बुक्स, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 174
180. गंभीरचंद दुजारी से पोद्दार, 5 चैत्र शुक्ल, 1936, पोद्दार पेपर्स
181. लालबहादुर शास्त्री से पोद्दार, 15 मार्च 1965, *सरस पत्र*, 2005 पृष्ठ 140-41
182. *कल्याण*, मई 1965, पृष्ठ 1 और 1020

अध्याय 2

1. कृष्णबिहारी मिश्र, *हिन्दी पत्रकारिता: राजस्थानी आयोजन की कृति भूमिका*, अखिल भारतीय मारवाड़ी युवा मंच, दिल्ली, 1999
2. *कल्याण*, प्रवेशांक, अगस्त 1926, पृष्ठ 2-3
3. वही, पृष्ठ 30-33
4. *कल्याण*, भाग 1, क्र. सं. 2, सितंबर 1926, पृष्ठ 49
5. क्रिया योग के अगुआ कहे जाने वाले भूपेंद्रनाथ सान्याल (1877-1962) के बचपन से ही आध्यात्मिक शक्तियों से उनके जुड़ाव के बारे में मिथक चर्चित हैं। सान्याल का जन्म नादिया (पश्चिम बंगाल) में हुआ था और उन्होंने देशभर में योग के आश्रम स्थापित किए थे।
6. भगवती प्रसाद सिंह, *मनीषी की लोकयात्रा: गोपीनाथ कविराज का जीवन दर्शन*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, बनारस, 2010, पृष्ठ 188-89
7. पार्था चटर्जी, *‘हिस्ट्री एंड द नेशनलाइजेशन ऑफ़ हिन्दुइज़्म’*, वसुधा डालमिया और हेनरिक वॉन स्टीटेनक्रोन (सं) में, *द ऑक्सफोर्ड इंडिया हिन्दुइज़्म रीडर*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली 2009, पृष्ठ 231-61
8. भूपेंद्रनाथ सान्याल, *‘हमारा परम लक्ष्य’*, *कल्याण*, भाग 1, क्र. सं. 5, 1926, पृष्ठ 130-36
9. चटर्जी, 2009
10. *‘क्या भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन हो सकते हैं’*, *कल्याण* भाग 1, क्र. सं. 6, पृष्ठ 184-86
11. *‘श्री भगवान नाम: परम आवश्यक सूचना’*, *कल्याण* भाग 1, क्र. सं. 7, 1926, पृष्ठ 114-15
12. पी एस चौहान, *‘हिन्दी नोवेल बिफोर प्रेमचंद’*, शोधगंगा, inlibnet.ac.in/bitstream/10603/.../06_chapter%202.pdf, 2012, 1 सितंबर 2012 को देखी गई

13. 'पंडित लज्जारामजी मेहता का पत्र', कल्याण, भाग 1, क्र. सं. 7, 1926, पृष्ठ 222-23

14. 'होली पर हमारा कर्तव्य', कल्याण, भाग 1, क्र. सं. 8, 1926, पृष्ठ 249, पुराणों में प्रह्लाद भगवान के प्रति समर्पित एक भक्त के रूप में विख्यात है। प्रह्लाद की भगवान के प्रति भक्ति रोकने के कई प्रयासों में उसके असुर पिता हिरण्यकश्यपु सफल नहीं हो सके।

15. रजनीश कुमार चतुर्वेदी, 'पत्रकारिता के क्षेत्र में कल्याण धार्मिक पत्रिका का योगदान', अप्रकाशित पीएचडी शोधकार्य, महामना मदनमोहन मालवीय हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, बनारस 2006, पृष्ठ 367

16. हिन्दू पंच, भाग 2, क्र. सं. 10, 8 सितंबर 1927, पृष्ठ 36

17. 'आवश्यक सूचनाएं', कल्याण भाग 2, क्र. सं. 2, 1927, अंतिम पृष्ठ

18. शाहिद अमीन, 'गांधी एज़ महात्मा: गोरखपुर डिस्ट्रिक्ट, ईस्टर्न यूपी, 1921-2', रणजीत गुहा (सं) में, सबाल्टर्न स्टडीज़, भाग 3, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1984, पृष्ठ 7

19. इस अनुच्छेद में जानकारी अर्जुन तिवारी की पीएचडी शोध प्रबंध, 'पूर्वी उत्तर प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव और विकास' से ली गई है, गोरखपुर यूनिवर्सिटी, 1978, अमीन में उद्धृत, 1984

20. विलियम आर पिंच, पीजेंट्स एंड मोंक्स इन ब्रिटिश इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, 1996, पृष्ठ 121, <http://ark.cdlib.org/ark:/13030/ft22900465>, 1 सितंबर 2012 को देखी गई, भारत सरकार, गृह विभाग, जन सुनवाई, दिसंबर 1893, क्र. सं. 212, पिंच में उद्धृत, 1996

21. पिंच में उद्धृत, 1996, पृष्ठ 43

22. इस अनुच्छेद में जानकारी भगवती प्रसाद सिंह से ली गई है, कल्याण पथ: निर्माता और राही, राधा माधव सेवा संस्थान, गोरखपुर, 1980 पृष्ठ 289-90

23. नंदलाल जोशी को लिखा गया जयदयाल गोयन्दका का पत्र, दिनांक स्पष्ट नहीं, 1927, पोद्दार पेपर्स

24. क्रमशः इन दोनों अनुच्छेदों में जानकारी सिंह से ली गई है, 1980, पृष्ठ 259-61

25. कर्मेन्दु शिशिर (सं), शिवपूजन सहाय समग्र, भाग 8, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011 पृष्ठ 430-31

26. सिंह, 1980, पृष्ठ 260

27. पोद्दार से याज्ञिक, 30 दिसंबर 1936, 26 जनवरी और 25 फ़रवरी 1937, पोद्दार पेपर्स

- [28.](#) पोद्दार से याज्ञिक, 15 मार्च 1937, पोद्दार पेपर्स
- [29.](#) पोद्दार से याज्ञिक, 25 मार्च 1937, पोद्दार पेपर्स
- [30.](#) एक साथ भोजन के जातिगत नियमों को लेकर पिंच ने रामानंदी सम्प्रदाय में मौजूद बहसों का विस्तृत वर्णन किया है ।
- [31.](#) पिंच में उद्धृत, 1996, पृष्ठ 66
- [32.](#) फ्रांसेस्का ओर्सिनी, *द हिन्दी पब्लिक स्फीयर: लैंग्वेज एंड लिटरेचर इन द एज ऑफ़ नेशनलिज़्म, 1920-40* , ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली 2002, पृष्ठ 451-52
- [33.](#) पोद्दार से वियोगी हरि, 20 अक्टूबर 1970, पोद्दार पेपर्स
- [34.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार के साक्षात्कार की प्रतिलिपि, पोद्दार पेपर्स
- [35.](#) 'भूल सुधार' , *कल्याण* , जून 1936
- [36.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार को लिखा गया न्यासी बी जे ओझा का शिकायती पत्र, 7 अक्टूबर 1940, पोद्दार पेपर्स
- [37.](#) *कल्याण* , दिसंबर 1960
- [38.](#) वही
- [39.](#) 'सर्वज्ञ, गोबिंद भवन', *हिन्दू पंच* , भाग 2, क्र. सं. 41, 31 मई 1928, पृष्ठ 17-18
- [40.](#) पन्नालाल शर्मा, 'कलकत्ते का सामाजिक जीवन' , *चांद (मारवाड़ी अंक)* , नवंबर 1929, पृष्ठ 152-65, 221-23
- [41.](#) *हिन्दू पंच* , भाग 2, क्र. सं. 41, 31 मई 1928, पृष्ठ 17-18
- [42.](#) गोयन्दका का बयान, पोद्दार पेपर्स
- [43.](#) *हिन्दू पंच* , भाग 2, क्र. सं. 41, 31 मई 1928, पृष्ठ 17-18
- [44.](#) वही
- [45.](#) जी डी बिड़ला (सं), *बापू: ए यूनीक एसोसिएशन* , भाग 1, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1977, पृष्ठ 95-96
- [46.](#) *कल्याण* , भाग 2 क्र. सं. 11, 1927, पृष्ठ 508-09
- [47.](#) महात्मा गांधी, 'भक्ति के नाम पर भोग', *हिन्दू पंच* , भाग 2 क्र. सं. 40, 24 मई 1928, पृष्ठ 39 (*नवजीवन* से लेकर पुनर्प्रकाशित)
- [48.](#) सत्यदेव विद्यालंकर, 'गोबिंद भवन और स्थानीय समाचार पत्र', *हिन्दू पंच* , भाग 2 क्र. सं. 42, 7 जून 1928, पृष्ठ 39-42
- [49.](#) जीवनी के लिए किए गए हनुमानप्रसाद के साक्षात्कार की प्रतिलिपि, पोद्दार पेपर्स

- [50.](#) संयुक्त प्रांत का सरकारी गज़ट, इलाहाबाद, शनिवार, 1 मार्च, 1939, क्र. सं. 11, भाग 61, पृष्ठ 235, कमिश्नर का रिकॉर्ड रूम, गोरखपुर
- [51.](#) गंभीरचंद दुजारी से पोद्दार, आषाढ़ कृष्ण, संवत 1985 (1928), पोद्दार पेपर्स
- [52.](#) गंभीरचंद दुजारी से पोद्दार, वैशाख शुक्ल, संवत 1985 (1928), पोद्दार पेपर्स
- [53.](#) 'संपादकीय टिप्पणियां', कल्याण, भाग 2, क्र. सं. 2, 1927, पृष्ठ 190-91
- [54.](#) मोनिका फ्रेयर, 'कल्टिवेटिंग इमोशंस: द गीता प्रेस एंड इट्स एजेंडा ऑफ़ सोशल एंड स्प्रिचुअल रिफॉर्म', साउथ एशियन हिस्ट्री एंड कल्चर, भाग 3, क्र. सं. 3, 2012, पृष्ठ 397-413
- [55.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, समाज सुधार, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1928, पृष्ठ 34-36
- [56.](#) फिलिप लुटगेनडोर्फ, हनुमान्स टेल: द मेसेज ऑफ़ ए डिवाइन मंकी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 29 4
- [57.](#) हेरोल्ड ए गाउल्ड, ग्रास रूट्स पॉलिटिक्स इन इंडिया: ए सेंचुरी ऑफ़ पॉलिटिकल एवोल्यूशन इन फैज़ाबाद डिस्ट्रिक्ट, ऑक्सफोर्ड और आईबीएच, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ 180
- [58.](#) ओर्सिनी, 2002, पृष्ठ 398-99
- [59.](#) गीता परीक्षा की सारी जानकारी कल्याण से ली गई है, भाग 2, क्र. सं. 6 और 8, 1927
- [60.](#) रितु सिन्हा, शिक्षण कार्यशाला में प्रस्तुत 'एजुकेटिंग द हिन्दू चाइल्ड सिटिज़न: पैडागॉजी ऑफ़ द गीता प्रेस' नामक प्रस्तुति, जम्मू विश्वविद्यालय, नवंबर 2012
- [61.](#) कल्याण, भाग 2, क्र. सं. 8, 1927
- [62.](#) 'श्री गीता परीक्षा', कल्याण, अगस्त 1939, पृष्ठ 1072
- [63.](#) गीता सोसाइटी के लिए पोद्दार का आमंत्रण पत्र, 2 अप्रैल 1935, पोद्दार पेपर्स
- [64.](#) अक्षय मुकुल, 'हिस्ट्री जोशी वांट्स टू सेंसर', टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 24 फ़रवरी 2002, http://articles.timesofindia.indiatimes.com/2002-02-24/india/27124654_1_hindu-mahasabha-savarkar-muslims 5 सितंबर, 2012 को देखा गया।
- [65.](#) पार्था चटर्जी, ए प्रिंसली इंपोस्टर? द कुमार ऑफ़ भवल एंड द सीक्रेट हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन नेशनलिज़्म, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2002, पृष्ठ 342
- [66.](#) मारवाड़ी स्टोर्स लिमिटेड, वर्सेज़ गौरी शंकर गोयनका, एआईआर 1936 सीएएल (Cal) 327, 165 आईएनडी सीएएस (Ind Cas) 408

67. इस सूची में पारसी धर्म के शीर्ष लेखक और बॉम्बे के मुंचर्जी फ्रेमजी कामा एथोर्नन इंस्टीट्यूट के आई जे एस तारापूरेवाला, यूनाइटेड लॉज ऑफ थियोसोफिस्ट, मुंबई की सोफिया वाडिया और *कल्याण* पत्रिका के नियमित लेखक, पोद्दार-ज्वालाप्रसाद कनोडिया के मित्र व इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के मोहम्मद हाफिज़ सईद का भी नाम है। यह सूची गीता सोसाइटी की प्रचार पुस्तिका पर आधारित है। पोद्दार पेपर्स

68. पोद्दार से अर्नेस्ट पी होर्टविट्ज़, 5 मई 1935, पोद्दार पेपर्स

69. मैनेजर से डावर, गीता प्रेस, 2 दिसंबर 1934, पोद्दार पेपर्स

70. गीता प्रेस से पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के सचिव, 29 नवंबर 1934, पोद्दार पेपर्स

71. हनुमानप्रसाद पोद्दार से गंगानाथ झा, 27 नवंबर 1934, पोद्दार पेपर्स

72. पोद्दार से रेव एडविन ग्रीव्स, 23 अप्रैल 1935, पोद्दार पेपर्स

73. पोद्दार से रगबंस किशोर बलबीर, 14 सितंबर 1935, पोद्दार पेपर्स

74. *लंदन गज़ट*, भाग I, हिज़ मैजिस्ट्रीज़ स्टेशनरी ऑफिस, लंदन द्वारा मुद्रित व प्रकाशित, 1947, पृष्ठ 22,

<http://www.london.gazette.co.uk/issues/37842/pages/124/page.pdf> 5 सितंबर 2012 को देखी गई।

75. हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'श्री भगवान नाम जाप के लिए सादर प्रार्थना', 1948, पोद्दार पेपर्स

76. श्री गीता-रामायण प्रचार संघ की सदस्यता पर पर्चा

77. इस अनुच्छेद में उद्धरण फिलिप लुटगेनडोर्फ, *द लाइफ ऑफ अ टेक्स्ट: परफार्मिंग द रामचरितमानस ऑफ तुलसीदास*, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले, 1991, पृष्ठ 62

78. 1954 में अमेरिकी प्रीस्ट रेव ए जी अटकिंस द्वारा *रामचरितमानस* का अंग्रेज़ी अनुवाद लाने में बतौर *हिन्दुस्तान टाइम्स* संपादक देवदास गांधी ने मदद की। इसकी प्रस्तावना में अटकिंस ने लिखा कि उन्होंने चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा के *रामचरितमानस* संस्करण और डॉ माताप्रसाद गुप्त एवं डॉक्टर श्यामसुंदर दास के गीता प्रेस से प्रकाशित संस्करणों का गहरा अध्ययन किया है और इस सूचना के लिए मैं रामचंद्र गुहा और गोपालकृष्ण गांधी का आभारी हूं।

79. पोद्दार से एस एस सूर्यनारायण शास्त्री, 5 अगस्त 1938, पोद्दार पेपर्स

80. पोद्दार से गोपी किशन भारतीय, 12 अक्टूबर 1939, पोद्दार पेपर्स

81. राष्ट्रपति से पत्र, मंदिर समिति, 4 प्रशिक्षण के सैन्यदल, 1, ईएमई सेंटर, 26 अगस्त 1966, पोद्दार पेपर्स

82. गीता पीरामल, *बिज़नेस लेजेंड्स*, वाइकिंग (पेंगुइन), नई दिल्ली, 1998 पृष्ठ 24-25

83. पोद्दार से एस एन मंगल, 2 फ़रवरी 1967, पोद्दार पेपर्स

84. हैरॉल्ड ए गाउल्ड, *सिख्स, स्वामीज़, स्टूडेंट्स एंड स्पाइज़: द इंडियन लॉबी इन द यूनाइटेड स्टेट्स*, 1900-1946, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली 2006, पृष्ठ 70

85. विनेश वाई हुकुमसिंह, 'छोटा भारत: मॉरिशस: द मिथ एंड द रियलिटी', भीखू पारेख, गुरहरपाल सिंह एंड स्टीवन वर्ताविक (सं) में, *कल्चर एंड इकोनॉमी इन द इंडियन डायस्पोरा*, रॉटलेज़, लंदन, 2003, पृष्ठ 13-32

86. पोद्दार से ताराचंद रॉय, 30 अक्टूबर 1935, पोद्दार पेपर्स

87. पोद्दार से जी ए बर्नार्ड, 2 सितंबर 1935, पोद्दार पेपर्स

88. www.shantisadan.org 10 सितंबर 2012 को देखी गई

89. पोद्दार से उत्तमा देवी, 15 मार्च 1945, पोद्दार पेपर्स

90. पोद्दार से उत्तमा देवी, 24 फ़रवरी 1945, पोद्दार पेपर्स

91. संपादक से लुइस वाइल्लिंग, *कल्याण-कल्पतरु*, 11 जनवरी 1943, पोद्दार पेपर्स

92. संपादक से लुइस वाइल्लिंग, *कल्याण-कल्पतरु*, 22 फ़रवरी 1943, पोद्दार पेपर्स

93. एडिटर से पी आदरोस, *कल्याण-कल्पतरु*, 21 दिसंबर 1944, पोद्दार पेपर्स

94. <http://henrythomashamblin.wwwhubs.com> / 10 सितंबर, 2012 को देखी गई

95. पोद्दार से हंबलिन, 20 सितंबर 1944, पोद्दार पेपर्स

96. पोद्दार से हंबलिन, 23 फ़रवरी 1945, पोद्दार पेपर्स

97. पोद्दार से हर्बर्ट, 10 फ़रवरी 1945, पोद्दार पेपर्स

98. एडिटर से डब्ल्यू डी पैडफील्ड, *कल्याण-कल्पतरु*, 26 जून 1958, पोद्दार पेपर्स

99. पोद्दार से कृष्णदत्त भारद्वाज, 29 अक्टूबर 1958, पोद्दार पेपर्स

100. मैनेजर से संग्रहाध्यक्ष, श्री चित्र सेंट्रल हिन्दू रिलीजियस लाइब्रेरी, त्रिवेंद्रम, *कल्याण-कल्पतरु*, 18 दिसंबर 1945, पोद्दार पेपर्स

101. भंडारकर इंस्टीट्यूट्स महाभारत प्रोजेक्ट सन् 1919 से आरंभ हुआ । इसके 19वें भाग में आकर सन् 1966 में एक आलोचनात्मक संस्करण आने तक कई संस्करण छप चुके थे । यह संस्थान अभी तक इस प्रोजेक्ट में जुटा है । इस आलोचनात्मक संस्करण और व्याख्यात्मक उपसंहार लाने की योजना की गई । इसके लक्ष्यों में इन पाठों को डिजिटल रूप में लाना (ऑनलाइन उपलब्धता) भी शामिल है. देखें,

http://www.bori.ac.in/mahabharata_project.htm 5 जून 2014 को देखी गई ।

- [102.](#) पोद्दार, 'संपादक का निवेदन और क्षमा प्रार्थना', महाभारत, भाग-3, क्र. सं. 12, 1958, पृष्ठ 247-4 8
- [103.](#) एरिक हॉब्सबॉम, 'इंट्रोडक्शन: इन्वेंटिंग ट्रेडिशनस', एरिक हॉब्सबॉम और टेरेस रेंजर (सं) में, *द इन्वेंशन ऑफ़ ट्रेडिशनस*, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, यूके, 1983, पृष्ठ 1, 4
- [104.](#) डायटर कॉनराड, 'द पर्सनल लॉ क्वेश्चन एंड हिन्दूनेशनलिज़्म', वसुधा डालमिया और हेनरिक वॉन स्टीटेनक्रोन (सं) में, 'द ऑक्सफोर्ड इंडिया हिन्दूइज़्म रीडर', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 192
- [105.](#) सिंह 1980, पृष्ठ 262-63
- [106.](#) हिन्दू संस्कृति अंक में लेखन के लिए पोद्दार का पत्र, 10 जून 1949, पुरुत्तमदास ठाकुरदास पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, फाइल संख्या 661
- [107.](#) 1932 के ईश्वर अंक के लिए लेख लिखने को लेकर पोद्दार के हिन्दी पत्र, पोद्दार पेपर्स
- [108.](#) 1945 के गो अंक के लिए पोद्दार के आमंत्रण पत्र की प्रति, पोद्दार पेपर्स
- [109.](#) कार्यवाहक निदेशक, सांख्यिकी, वाणिज्यिक जानकारी एवं सांख्यिकी विभाग, भारत से *कल्याण* संपादक, 16 सितंबर 1945; संपादक, *कल्याण*, डायरेक्टर ऑफ़ फार्म्स, जनरल हेडक्वार्टर (से), शिमला, 24 अगस्त 1945, पोद्दार पेपर्स
- [110.](#) सर दातार सिंह से *कल्याण* संपादक, 15 सितंबर 1945, पोद्दार पेपर्स
- [111.](#) उदाहरण के लिए, बैंगलोर में डेयरी रिसर्च के निदेशक के सी सेन से *कल्याण* संपादक, 15 सितंबर 1945; द बॉम्बे ह्यूमैनिटेरियन लीग के बी एन बंकर से *कल्याण* संपादक, 25 अगस्त 1945, पोद्दार पेपर्स
- [112.](#) इम्पीरियल कॉउंसिल ऑफ़ एग्रीकल्चरल रिसर्च सचिव से *कल्याण* संपादक, 25 अगस्त 1945, पोद्दार पेपर्स
- [113.](#) प्रभात फ़िल्म कंपनी के मैनेजर से *कल्याण* संपादक, 5 जुलाई 1945, पोद्दार पेपर्स
- [114.](#) पोद्दार से स्वामी निरंजनानंद, 10 जुलाई 1945, पोद्दार पेपर्स
- [115.](#) पोद्दार से गांधी, 8 अप्रैल 1932, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी*, भाग 55, पृष्ठ 213
- [116.](#) पोद्दार से गांधी, 23 मई 1932, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी*, भाग 55, पृष्ठ 415
- [117.](#) पोद्दार से गांधी, 21 जून 1932, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी*, भाग 56, पृष्ठ 35

- [118.](#) पोद्दार से सी एफ एंड्रयूज़, दिनांक स्पष्ट नहीं (1935 से संबंधित एक फाइल में), पोद्दार पेपर्स
- [119.](#) 'कल्याण का मानस अंक', *आर्य महिला*, सितंबर 1938, पोद्दार पेपर्स
- [120.](#) भारत धर्म द्वारा मानस अंक की समीक्षा, पोद्दार पेपर्स से प्राप्त
- [121.](#) बॉम्बे क्रॉनिकल द्वारा योग अंक की समीक्षा, पोद्दार पेपर्स से प्राप्त
- [122.](#) चिराग द्वारा योग अंक की समीक्षा, पोद्दार पेपर्स से प्राप्त
- [123.](#) अंबिका प्रसाद वाजपेयी से पोद्दार, माघ कृष्ण 4, संवत् 1991 (1934), श्यामसुंदर दुजारी द्वारा संगृहीत सरस पत्र, गीता वाटिका प्रकाशन, गोरखपुर, 2005, पृष्ठ 111-12
- [124.](#) पार्था मित्र, 'मैकेनिकल रिप्रोडक्शन एंड द वर्ल्ड ऑफ़ द कोलोनीयल आर्टिस्ट', सुमति रामास्वामी (सं) में, *बियॉन्ड अप्रिएनसेज़*, सेज़, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 15
- [125.](#) पार्था मित्र, *आर्ट एंड नेशनलिज़्म इन कोलोनीयल इंडिया*, 1850-1922, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ 122
- [126.](#) मित्र, 2003, पृष्ठ 25
- [127.](#) क्रिस्टोफर पिनी, *फोटोज़ ऑफ़ द गॉड्स: द प्रिंटेड इमेज एंड पॉलिटिकल स्ट्रगल इन इंडिया*, रीक्शन बुक्स, लंदन, 2004 पृष्ठ 7 2
- [128.](#) कजरी जैन, 'द एफीकेशस इमेज: पिक्चर्स एंड पावर इन इंडियन मास कल्चर', रिचर्ड एच डेविस (सं) में, *पिक्चरिंग द नेशन: आइकोनोग्राफीज़ ऑफ़ मॉडर्न इंडिया*, ओरियंट लॉन्गमैन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 156
- [129.](#) कजरी जैन, 'मोर देन मीट्स द आई: द सर्कुलेशन ऑफ़ इमेजेस एंड द एम्बोडिमेंट ऑफ़ वैल्यू', रामास्वामी (सं) में, 2003 पृष्ठ 41
- [130.](#) जैन, 'द एफीकेशस इमेज' 2007, पृष्ठ 158-59
- [131.](#) वही, पृष्ठ 160
- [132.](#) कजरी जैन, *गॉड्स इन द बाज़ार: द इकोनॉमिक्स ऑफ़ इंडियन कैलेन्डर आर्ट*, ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, डरहम, 2007, पृष्ठ 148
- [133.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 283, जेम्स जी लॉकटेफेल्ड, *द इलस्ट्रेटेड एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ हिन्दुइज़्म*, भाग I, रोज़ेन पब्लिशिंग ग्रुप, न्यूयॉर्क, 2002, पृष्ठ 152
- [134.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 283, लॉकटेफेल्ड, 2002, भाग II, पृष्ठ 582
- [135.](#) सिंह, 1980 पृष्ठ 283
- [136.](#) वॉल्टर बेंजामिन, *एल्युमिनेशंस: एसेज़ एंड रेफ्लेक्शंस*, हैरी जॉन द्वारा अनूदित, हैना एरडेंट द्वारा संपादित, शॉकिन बुक्स, न्यूयॉर्क, 2007, पृष्ठ 224

- [137.](#) कल्याण , भक्त अंक , भाग 3, क्र. सं. 1, 1928, पृष्ठ 30 और 31 के बीच पृष्ठ
- [138.](#) पोद्दार को गांधी के टाइप किए गए पत्र की प्रति, 16 मई 1935, पोद्दार पेपर्स, यह पत्र कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी में शामिल नहीं है ।
- [139.](#) रामचरण महेंद्र, 'देवी देवताओं के चित्रों के दर्शन से तमोगुण और मानसिक रोग दूर हो जाते हैं' , कल्याण , मई 1960, पृष्ठ 951-54
- [140.](#) रामचरण महेंद्र, 'हिन्दू देवताओं में विभिन्न रंगों का छिपा हुआ गुप्त अभिप्राय' , कल्याण , अप्रैल 1967, पृष्ठ 849-54
- [141.](#) पोद्दार से शिवराम कृष्ण गोडबोले, 3 नवंबर 1935, पोद्दार पेपर्स
- [142.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 375-76
- [143.](#) पोद्दार से गोयन्दका, मेघ शुक्ल, संवत् 2011 (1954), पोद्दार पेपर्स
- [144.](#) पोद्दार से आर आर दिवाकर, 28 जुलाई 1952, पोद्दार पेपर्स
- [145.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 282-84
- [146.](#) वही
- [147.](#) जैन, 'द एफीकेशस इमेज', पृष्ठ 161, गॉड्स इन बाज़ार , पृष्ठ 86
- [148.](#) पिनी, 2004, पृष्ठ 82, जैन, 'मोर देन मीट्स द आई' 2003, पृष्ठ 54
- [149.](#) आर के वशिष्ठ, आर्ट एंड आर्टिस्ट्स ऑफ़ राजस्थान , अभिनव पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1995 पृष्ठ 87
- [150.](#) पिनी, 2004, पृष्ठ 89
- [151.](#) पोद्दार से प्रेम नरेंद्र घासीराम शर्मा, 6 दिसंबर 1931, पोद्दार पेपर्स
- [152.](#) पोद्दार से प्रेम नरेंद्र घासीराम शर्मा, 9 मार्च 1931, पोद्दार पेपर्स
- [153.](#) पोद्दार से प्रेम नरेंद्र घासीराम शर्मा, 14 जून 1932, पोद्दार पेपर्स
- [154.](#) मैनेजर से सत्येंद्रनाथ बनर्जी, गीता प्रेस, 18 मार्च 1932, पोद्दार पेपर्स
- [155.](#) बनर्जी के लिए गवाही: नंदलाल बोस द्वारा, 21 जुलाई 1923; सी एफ एंड्रयूज़, 18 जुलाई 1923, पोद्दार पेपर्स
- [156.](#) कल्याण संपादक से बनर्जी, 29 मार्च 1932, पोद्दार पेपर्स
- [157.](#) मित्र, 1994, पृष्ठ 297
- [158.](#) पोद्दार से धनपतराय (प्रेमचंद), दिनांक स्पष्ट नहीं है लेकिन पोस्टकार्ड पर पोस्टमार्क 1932 का है, पोद्दार पेपर्स
- [159.](#) पोद्दार से मोहम्मद हकीम खान, 16 मार्च 1932, पोद्दार पेपर्स

- [160.](#) पोद्दार से मोहम्मद हकीम खान, दिनांक स्पष्ट नहीं है लेकिन उन्होंने 14 जून, 1932 वाले पोद्दार के पत्र मिलने का उल्लेख किया है, पोद्दार पेपर्स
- [161.](#) पोद्दार से मोहम्मद हकीम खान, 1 जुलाई 1932, पोद्दार पेपर्स
- [162.](#) यशोधरा डालमिया, *अमृता शेरगिल: ए लाइफ*, पेंगुइन-वाइकिंग, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 62
- [163.](#) ताप्ती गुहा-ठाकुरता, *द मेकिंग ऑफ़ ए न्यू आर्ट: आर्टिस्ट्स, एसथेटिक्स एंड नेशनलिज़्म इन बंगाल*, सी 1850-1920, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, यूके, 1922, पृष्ठ 323
- [164.](#) विवान सुंदरम, *अमृता शेरगिल: ए सेल्फ-पोर्ट्रेट इन लेटर्स एंड राइटिंग्स*, भाग I, तुलिका बुक्स, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 332
- [165.](#) पोद्दार से शारदा उकिल, 17 दिसंबर 1935, पोद्दार पेपर्स
- [166.](#) पोद्दार से शारदा उकिल, 20 फ़रवरी 1936, पोद्दार पेपर्स
- [167.](#) पोद्दार से शारदा उकिल, 18 मई 1939, पोद्दार पेपर्स
- [168.](#) शारदा उकिल से पोद्दार, 27 जून 1939, पोद्दार पेपर्स
- [169.](#) पोद्दार से शारदा उकिल, 14 जुलाई 1939, पोद्दार पेपर्स
- [170.](#) पोद्दार से शारदा उकिल, 19 जुलाई 1939, पोद्दार पेपर्स
- [171.](#) शारदा उकिल से पोद्दार, 26 मार्च 1940, पोद्दार पेपर्स
- [172.](#) पोद्दार से शारदा उकिल, 3 अप्रैल 1940, पोद्दार पेपर्स
- [173.](#) शारदा उकिल से पोद्दार, 6 अप्रैल 1940, पोद्दार पेपर्स
- [174.](#) पोद्दार से शारदा उकिल, 24 अप्रैल 1940, पोद्दार पेपर्स
- [175.](#) पोद्दार से शारदा उकिल, 1 जून 1940 और 3 जून 1940, पोद्दार पेपर्स
- [176.](#) पोद्दार से शारदा उकिल, 10 जून 1940, पोद्दार पेपर्स
- [177.](#) पार्था मित्र, *द ट्रायंग ऑफ़ मॉडर्निज़्म: इंडियाज़ आर्टिस्ट्स एंड द अवॉन्त-गार्ड* 1922-1947, रीक्शन बुक्स, लंदन 2007, पृष्ठ 16
- [178.](#) गुहा-ठाकुरता, 1992, पृष्ठ 217
- [179.](#) वही देखें, और कला और सौंदर्य की विस्तृत बहस जानने के लिए देखें मित्र, 1994
- [180.](#) पोद्दार से ओ सी गांगुली, 10 जनवरी 1937, पोद्दार पेपर्स
- [181.](#) गांगुली से पोद्दार, 7 फ़रवरी 1950, पोद्दार पेपर्स
- [182.](#) मुख्य सचिव, त्रावणकोर राज्य को पोद्दार का पत्र, 9 नवंबर 1949, पोद्दार पेपर्स

- [183.](#) दयानेश्वर नादकर्णी, *हुसैन: राइडिंग द लाइटिंग*, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1996, पृष्ठ 31-33
- [184.](#) पोद्दार से देवलालिकर के टेलीग्राम, 13 अगस्त 1930 और 16 अगस्त 1930, पोद्दार पेपर्स
- [185.](#) देवलालिकर से पोद्दार, 1930 (दिनांक स्पष्ट नहीं) पोद्दार पेपर्स
- [186.](#) पोद्दार से देवलालिकर, 12 अक्टूबर 1931, पोद्दार पेपर्स
- [187.](#) पोद्दार से देवलालिकर, 29 नवंबर 1931, पोद्दार पेपर्स
- [188.](#) पोद्दार से देवलालिकर, 30 मार्च 1932, पोद्दार पेपर्स
- [189.](#) मित्र, 1994, पृष्ठ 331-32
- [190.](#) गुलाम मोहम्मद शेख, 'द बैकड्रॉप', शेख (सं) में, *कंटेम्परेरी आर्ट इन बड़ौदा*, तुलिका, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 42-43
- [191.](#) पोद्दार से कानू देसाई, 5 नवंबर 1938, पोद्दार पेपर्स
- [192.](#) पोद्दार से कानू देसाई, 16 मई 1939, पोद्दार पेपर्स
- [193.](#) पोद्दार से सावित्री खानोलकर, 31 अक्टूबर 1939, पोद्दार पेपर्स
- [194.](#) पोद्दार से सावित्री खानोलकर, 17 फ़रवरी 1940, पोद्दार पेपर्स
- [195.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार और चिम्नलाल गोस्वामी, 'क्षमा प्रार्थना', *उपासना अंक*, *कल्याण*, जनवरी 1968, पृष्ठ 699-700
- [196.](#) गीता द्वार और लीला चित्र मंदिर के उद्घाटन के पर्चे, 29 अप्रैल 1955, पोद्दार पेपर्स
- [197.](#) वही
- [198.](#) 29 अप्रैल 1955 को गीता द्वार और गीता प्रेस के लीला चित्र मंदिर के उद्घाटन समारोह पर डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद का भाषण, गोरखपुर, *कल्याण* में प्रकाशित, जून 1955 पृष्ठ 1113-15
- [199.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'लालाजी का परलोकवास', *कल्याण* मार्च 1928, पृष्ठ 566
- [200.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'पंडित मोतीलालजी का देहावसान', *कल्याण*, अप्रैल 1931, पृष्ठ 1931, पृष्ठ 1152
- [201.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'एम्परर जॉर्ज पंचम', *कल्याण*, अप्रैल 1936, पृष्ठ 1359
- [202.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'विनाशी जगत', *कल्याण*, दिसंबर 1936, पृष्ठ 984

- [203.](#) शिवनाथ दूबे, 'परम आदरणीय डॉक्टर हेडगेवार', कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, जनवरी 1950, अंतिम पृष्ठ
- [204.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'नेहरूजी के प्रति श्रद्धांजलि', कल्याण, जून 1964, पृष्ठ संख्या नहीं दी गई
- [205.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'श्री लालबहादुर शास्त्री', कल्याण, जनवरी 1966, पृष्ठ संख्या नहीं दी गई
- [206.](#) क्रमशः इसमें और अगले अनुच्छेद में सूचनाएँ और उद्धरण भीमसेन से लिए गए हैं, 'श्री गुरुजी: एक आध्यात्मिक विभूति', कल्याण, जुलाई 1973, पृष्ठ 852-58
- [207.](#) 'श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रति श्रद्धांजलि', कल्याण, नवंबर 1984, पृष्ठ 901
- [208.](#) क्लाउस के कलास्टरमायर, ए सर्वे ऑफ हिन्दूइज़्म, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ़ न्यूयॉर्क प्रेस, न्यूयॉर्क 2007, पृष्ठ 109
- [209.](#) राधेश्याम खेमका, 'हिंसा का नंगा तांडव', कल्याण, मई 1991, पृष्ठ 568
- [210.](#) गंभीरचंद दुजारी से पोद्दार, श्रावण शुक्ल 5, संवत् 1983 (1926), पोद्दार पेपर्स
- [211.](#) ज्वाला प्रसाद कनोडिया से पोद्दार, कार्तिक कृष्ण 8, संवत् 1989 (1932), सरस पत्र, 2005, पृष्ठ 112-13
- [212.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 157
- [213.](#) ज्ञानेंद्र पांडे, द असेनडेंसी ऑफ़ द कांग्रेस इन उत्तर प्रदेश, एंथम प्रेस, लंदन 2002, पृष्ठ 40
- [214.](#) सिंह 1980, पृष्ठ 158-59
- [215.](#) वह ी
- [216.](#) उद्योग विभाग की अधिसूचना, 3 अप्रैल 1939, नंबर 1127/XVIII-625-D, कमिश्नर रिकॉर्ड रूम, गोरखपुर
- [217.](#) सीआईडी, संयुक्त प्रांत, राजनीतिक गतिविधियों पर साप्ताहिक रिपोर्टें, 5 मार्च, 2 अप्रैल और 30 अप्रैल 1948 के सप्ताहांत, सीआईडी अभिलेख, लखनऊ
- [218.](#) 'दुष्काल के संबंध में', सरस्वती, सितंबर 1943, पृष्ठ 464
- [219.](#) जे ई पैडली की गवाही, 25 मार्च 1940, पोद्दार पेपर्स
- [220.](#) एच एस रॉस की गवाही, 11 जुलाई 1942, पोद्दार पेपर्स
- [221.](#) चीफ प्राइस कंट्रोलर, बिहार सरकार से एच एस रॉस, 8 जुलाई 1942, पोद्दार पेपर्स
- [222.](#) गीता प्रेस द्वारा जापन; बी एल चांदगोठिया द्वारा नोट, 14 मई 1953; सेठ गोविंद दास से चांदगोठिया, 16 जुलाई 1953, सेठ गोविंद दास पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय

और पुस्तकालय

- [223.](#) श्रम आयुक्त से बी एल चांदगोठिया, उत्तर प्रदेश, 16 जुलाई 1956, पोद्दार पेपर्स
- [224.](#) जयदयाल डालमिया द्वारा तलाशी गई कानूनी मत की प्रति, पोद्दार पेपर्स
- [225.](#) कृष्णचंद्र से जयदयाल डालमिया, गीता प्रेस, 30 मार्च 1968, पोद्दार पेपर्स
- [226.](#) ईश्वरीप्रसाद गोयनका से पोद्दार, 11 फ़रवरी 1967, *सरस पत्र*, 2005, पृष्ठ 113-16
- [227.](#) पोद्दार को गोबिंद भवन से लिखे गए पत्र, 5 और 12 दिसंबर 1969, पोद्दार पेपर्स
- [228.](#) गोबिंद भवन कार्यालय का श्रम आयुक्त कार्यालय से हुआ पत्र व्यवहार, पश्चिम बंगाल 1 जुलाई 1970, पोद्दार पेपर्स
- [229.](#) खातों का वार्षिक लेखा-जोखा, 1968-69, पोद्दार पेपर्स
- [230.](#) गोबिंद भवन कार्यालय के सदस्यों की बैठक का कार्यवृत्त, 7 मार्च 1970, पोद्दार पेपर्स
- [231.](#) सिंह 1980, पृष्ठ 162-63
- [232.](#) यह और आगे के उद्धरण पंडित हरि प्रसाद को लिखे गए पोद्दार के पत्र से लिए गए हैं, 24 फ़रवरी, 1966, पोद्दार पेपर्स
- [233.](#) *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* और *द इंडियन एक्सप्रेस* से जयदयाल डालमिया, 10 मार्च 1968, पोद्दार पेपर्स
- [234.](#) डालमिया को *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* द्वारा भेजी गई अनुमानित दाम की प्रति, 18 मार्च 1968, पोद्दार पेपर्स
- [235.](#) डालमिया से रामनाथ गोयनका, 27 मार्च 1968, पोद्दार पेपर्स
- [236.](#) पोद्दार से जी पी बिड़ला, 19 मार्च 1970, पोद्दार पेपर्स
- [237.](#) पोद्दार से एस एस गोयनका, 9 अप्रैल 1970, पोद्दार पेपर्स
- [238.](#) जी पी बिड़ला से पोद्दार, 27 जुलाई 1970; पोद्दार से गोबिंद भवन पदाधिकारी, 18 जुलाई 1970, पोद्दार पेपर्स
- [239.](#) हरिकृष्ण दुजारी से जयदयाल डालमिया, 17 अप्रैल 1970, पोद्दार पेपर्स
- [240.](#) बिहारी लाल से पोद्दार, 15 जून 1970, पोद्दार पेपर्स
- [241.](#) ईश्वरीप्रसाद गोयनका से पोद्दार, 27 जुलाई 1970, *सरस पत्र*, 2005, पृष्ठ 116-17
- [242.](#) बिहारीलाल से पोद्दार, 15 मई 1970; कृष्ण चंद्र से जयदयाल डालमिया, दिनांक नहीं है (विषय सूची से पता चलता है कि यह उसी समय का रहा होगा), पोद्दार पेपर्स

[243.](#) भारतीय रिज़र्व बैंक (कानपुर) के विनियम नियंत्रण विभाग के सहायक नियंत्रक को दी गई गीता प्रेस के प्रार्थना पत्र का मसौदा, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स । हालाँकि, यह प्रार्थनापत्र की योजना जयदयाल डालमिया ने 15 सितंबर 1970 को प्रस्तुत की थी । पोद्दार पेपर्स में शामिल ।

[244.](#) भारतीय रिज़र्व बैंक को लिखा गया गीता प्रेस के प्रार्थनापत्र का मसौदा, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स

अध्याय 3

[1.](#) भगवती प्रसाद सिंह, *कल्याण पथ: निर्माता और राही*, राधा माधव सेवा संस्थान, गोरखपुर, 1980, पृष्ठ 269

[2.](#) पोद्दार पेपर्स

[3.](#) क्लाउस के क्लास्टरमायर, *ए कंसाइज़ एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ हिन्दुइज़्म*, वनवर्ल्ड प्रकाशक, लंदन 1998, पृष्ठ 176-77

[4.](#) ए एल बाशम, *द वंडर दैट वाज़ इंडिया*, रूपा पेपरबैक, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ 113

[5.](#) क्लास्टरमायर, 1998, पृष्ठ 174

[6.](#) बाशम 1981, पृष्ठ 113

[7.](#) रितु सिन्हा, 'एजूकेटिंग द हिन्दू चाइल्ड सिटिज़न: पेडागॉजी ऑफ़ द गीता प्रेस', जम्मू विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्यशाला पर प्रस्तुत पर्चे का अंश, नवंबर 2012

[8.](#) पोद्दार पेपर्स

[9.](#) सिंह, 1980 पृष्ठ 268

[10.](#) देखें, पॉल ब्रॉन्टन, *ए सर्च इन सीक्रेट इंडिया*, सैमुअल वाइज़र इंक, मैने (यूएसए), 1934

[11.](#) पोद्दार से सी डी देशमुख, 31 मई 1941, पोद्दार पेपर्स

[12.](#) पोद्दार से माधव आशीष, दिनांक स्पष्ट नहीं लेकिन 1959 के *मानवता अंक* से संबंधित है, पोद्दार पेपर्स

[13.](#) पोद्दार को भारत धर्म महामंडल का पत्र, 22 अक्टूबर 1934, पोद्दार पेपर्स

[14.](#) घनश्यामदास जालान से श्यामस्वरूप शर्मा, प्रकाशक, गीता प्रेस, 2 नवंबर 1968, पोद्दार पेपर्स

[15.](#) विश्वनाथ मल्होत्रा से पोद्दार, 22 नवंबर 1968, पोद्दार पेपर्स

[16.](#) *कल्याण*, दिसंबर 1968, पृष्ठ 1374-75

- [17.](#) सतस्वरूपा से प्रभुपाद, 31 अक्टूबर 1968, www.prabhupadabooks.com 1 अक्टूबर 2013 को देखी गई
- [18.](#) सतस्वरूपा से प्रभुपाद, 23 जनवरी 1968, www.prabhupadabooks.com 1 अक्टूबर 2013 को देखी गई
- [19.](#) ब्रह्मानंद से प्रभुपाद, 5 फ़रवरी 1969, www.prabhupadabooks.com 1 अक्टूबर 2013 को देखी गई
- [20.](#) राधेश्याम बंका से प्रभुपाद, 13 मार्च 1970; शिष्य गर्गमुनि से प्रभुपाद, 16 फ़रवरी 1971, www.prabhupadabooks.com 1 अक्टूबर 2013 को देखी गई
- [21.](#) पोद्दार से प्रभुपाद, 4 और 5 फ़रवरी 1970, www.prabhupadabooks.com 1 अक्टूबर 2013 को देखी गई
- [22.](#) पोद्दार से प्रभुपाद, 4 मार्च 1970, www.prabhupadabooks.com 1 अक्टूबर 2013 को देखी गई
- [23.](#) पोद्दार से प्रभुपाद, 23 मई 1970, www.prabhupadabooks.com 1 अक्टूबर 2013 को देखी गई
- [24.](#) एन सी चटर्जी से प्रभुपाद, 9 जुलाई 1970, www.prabhupadabooks.com 1 अक्टूबर 2013 को देखी गई
- [25.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 117, पोद्दार पेपर्स का भी अंश
- [26.](#) वही, पृष्ठ 134-35
- [27.](#) 'श्री कृष्ण और महात्माजी का अनाशक्ति योग', सरस्वती, नवंबर 1931, पृष्ठ 569-70
- [28.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार को प्यारेलाल का पत्र, 8 जनवरी 1945, पोद्दार पेपर्स
- [29.](#) पोद्दार से जी डी बिड़ला, 31 मई 1958, पोद्दार पेपर्स
- [30.](#) जुगल किशोर बिड़ला से पोद्दार, 9 श्रवण कृष्ण, संवत् 2006 (1949), पोद्दार पेपर्स
- [31.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार का साक्षात्कार, पोद्दार पेपर्स
- [32.](#) सिंह 1980, पृष्ठ 117, पोद्दार पेपर्स का भी अंश
- [33.](#) थियोसोफिस्ट मैगज़ीन में भारत धर्म के विज्ञापन में किया गया दावा, अक्टूबर-दिसंबर 1927
- [34.](#) पोद्दार को सी राजगोपालाचारी द्वारा भेजे गए वेरियर एल्विन की बाइबिल के प्रारंभिक नोट, पोद्दार पेपर्स
- [35.](#) पोद्दार से सी राजगोपालाचारी, 14 अगस्त 1935, पोद्दार पेपर्स
- [36.](#) पोद्दार से सी राजगोपालाचारी, 28 जून 1952, पोद्दार पेपर्स

- [37.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी से राधाकृष्णन, 17 जून 1958, पोद्दार पेपर्स
- [38.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार से के एम मुंशी, 17 अप्रैल 1959, पोद्दार पेपर्स
- [39.](#) पोद्दार से मुंशी, 10 जुलाई 1957, पोद्दार पेपर्स
- [40.](#) संपूर्णानंद से पोद्दार, 13 श्रवण शुक्ल, संवत् 2006 (1949), पोद्दार पेपर्स
- [41.](#) संपूर्णानंद से पोद्दार, भद्र अमावस्या, संवत् 2006 (1949), पोद्दार पेपर्स
- [42.](#) पोद्दार से संपूर्णानंद, भद्र शुक्ल, संवत् 1994 (1937), पोद्दार पेपर्स
- [43.](#) पोद्दार से संपूर्णानंद, 22 अक्टूबर 1937, पोद्दार पेपर्स
- [44.](#) संपूर्णानंद से पोद्दार, 21 अक्टूबर 1957, पोद्दार पेपर्स
- [45.](#) पोद्दार के संपादकीय टिप्पणी की प्रतिलिपि, पोद्दार पेपर्स
- [46.](#) पोद्दार से काटजू, 4 अगस्त 1949, पोद्दार पेपर्स
- [47.](#) पोद्दार से काटजू, 6 अक्टूबर 1952, पोद्दार पेपर्स
- [48.](#) पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, फाइल क्रमांक 107(I)/1931 और 81/III-IV/1929
- [49.](#) पोद्दार से ठाकुरदास, 4 मई 1942, पोद्दार पेपर्स
- [50.](#) सचिव के माध्यम से ठाकुरदास का पत्र, 7 अगस्त 1945, पोद्दार पेपर्स
- [51.](#) पोद्दार से ठाकुरदास, 27 दिसंबर 1948, ठाकुरदास पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, फाइल क्र. सं. 358
- [52.](#) भालचंद मोदी, *देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान*, रघुनाथ प्रसाद सिंघानिया द्वारा प्रकाशित, कोलकाता, 1939, पृष्ठ 504; फिलिप लुटगेनडोर्फ, *द लाइफ ऑफ़ ए टेक्स्ट: परफॉर्मिंग द रामचरितमानस ऑफ़ तुलसीदास*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले 1991, <http://ark.cdlib.org/ark:/13030/ft796nb4pk/> 14 फ़रवरी 2012 को देखी गई
- [53.](#) पोद्दार से दास, 2 दिसंबर 1959, पोद्दार पेपर्स
- [54.](#) सेठ गोविंद दास से बी एल चांदगोठिया, महाप्रबंधक गीता प्रेस, 16 जुलाई 1953, गोविंद दास पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [55.](#) जवाहरलाल नेहरू से पोद्दार, 10 जून 1949; *कल्याण* संपादक से प्रधानमंत्री के सचिवालय, जून 1949, पोद्दार पेपर्स
- [56.](#) पोद्दार को पंत का पत्र, 19 जनवरी 1959, पोद्दार पेपर्स
- [57.](#) जी बी पंत को लिखे पोद्दार के पत्र की प्रतिलिपि, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स, सिंह में भी उद्धृत, 1980, पृष्ठ 479-80

- [58.](#) पोद्दार से वाल्मीकि चौधरी, 7 जुलाई 1952, पोद्दार पेपर्स
- [59.](#) राजेंद्र प्रसाद के निजी सचिव ज्ञानवती दरबार के साथ डॉ हरि देव शर्मा के मौखिक साक्षात्कार की प्रति से, 14 मार्च 1969, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [60.](#) संपादक से ज्ञानवती दरबार, *महाभारत*, 27 जुलाई 1956, पोद्दार पेपर्स
- [61.](#) *कल्याण* संपादक से पुस्तकालयाध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय, 17 अक्टूबर 1956 पोद्दार पेपर्स
- [62.](#) पोद्दार से एन कृष्णास्वामी, 19 जनवरी 1949, पोद्दार पेपर्स
- [63.](#) पोद्दार से श्री प्रकाश, 12 मई 1957; पोद्दार से श्रीमन नारायण, 7 जून 1958, पोद्दार पेपर्स
- [64.](#) श्रीकृष्ण सरल, *इंडियन रिवोल्यूशनरीज़: ए कॉम्प्रिहेंसिव स्टडी, 1757-1961*, भाग 2, ओशियन बुक्स, नई दिल्ली, 1999
- [65.](#) चारू गुप्ता में उद्धृत, *सेक्सुएलिटी, ऑबसेनिटी एंड कम्युनिटी*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत 2001, पृष्ठ 230
- [66.](#) चांदकरण शारदा, 'हिन्दू संस्कृति क्या है', *कल्याण*, हिन्दू संस्कृति अंक, जनवरी 1950 पृष्ठ 201-03
- [67.](#) पोद्दार से गोलवलकर, 25 दिसंबर 1949, *श्री गुरुजी समग्र*, भाग 7 (पत्राचार), सुरुचि प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 192-93
- [68.](#) पोद्दार से गोलवलकर, 5 जुलाई 1955, वही, पृष्ठ 310-11
- [69.](#) पोद्दार से थाटे, फ़रवरी 1956, पोद्दार पेपर्स
- [70.](#) पोद्दार से गोलवलकर, 25 फ़रवरी 1956, *श्री गुरुजी समग्र*, भाग 7, पृष्ठ 211-12
- [71.](#) क्रेग बैक्सटर, *जनसंघ: ए बायोग्राफी ऑफ़ एन इंडियन पॉलिटिकल पार्टी*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली 1971, पृष्ठ 62-63
- [72.](#) पोद्दार से मुखर्जी, 25 जून 1952, पोद्दार पेपर्स
- [73.](#) पोद्दार से एन सी चटर्जी, 29 जून 1952, पोद्दार पेपर्स
- [74.](#) क्रिस्टोफ जैफरलॉट, *द हिन्दू नेशनलिस्ट मूवमेंट इन इंडिया*, वाइकिंग, नई दिल्ली, 1996 पृष्ठ 94
- [75.](#) एन बी खरे, ओरल हिस्ट्री ट्रांसक्रिप्ट, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, नंबर 301
- [76.](#) जैफरलॉट 1996, पृष्ठ 94
- [77.](#) पोद्दार से रघुवीर, 1 मई 1958, पोद्दार पेपर्स

- [78.](#) पोद्दार से रघुवीर, 8 जनवरी 1958, पोद्दार पेपर्स
- [79.](#) जैफरलॉट 1996, पृष्ठ 10 3
- [80.](#) <http://www.swamisridindayaluji.in/karpatri.php> 5 सितंबर 2012 को देखी गई
- [81.](#) एच एल अर्दमैन, *द स्वतंत्र पार्टी एंड इंडियन कंज़र्वेटिविज़्म*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज यूके, 2008, पृष्ठ 52
- [82.](#) बी डी ग्राहम, *हिन्दू नेशनलिज़्म एंड इंडियन पॉलिटिक्स: द ऑरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ़ द भारतीय जनसंघ*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क 2008, पृष्ठ 95
- [83.](#) वही, पृष्ठ 149
- [84.](#) जैफरलॉट 1996, पृष्ठ 199
- [85.](#) वही
- [86.](#) काका कालेलकर का पत्र और पोद्दार का जवाब, *कल्याण* जनवरी 1969, पृष्ठ 691
- [87.](#) काका कालेलकर *ग्रंथावली*, भाग 11, गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा, नई दिल्ली 2002, पृष्ठ 258-59
- [88.](#) सुमित सरकार, *स्वदेशी मूवमेंट इन बंगाल*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत 2010, पृष्ठ 143
- [89.](#) वही, पृष्ठ 423
- [90.](#) राधाकुमुद मुखर्जी में पढ़ें सब्यसाची भट्टाचार्य की प्रस्तावना, *द फंडामेंटल यूनिटी ऑफ़ इंडिया*, भारतीय विद्या भवन, क्रॉनिकल बुक्स, नई दिल्ली, 2008
- [91.](#) रामलाल वाधवा, *हिन्दू महसभा (1928-1947)*, राधा प्रकाशक, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ 179
- [92.](#) पोद्दार से मुखर्जी, 14 अक्टूबर 1949, पोद्दार पेपर्स
- [93.](#) पोद्दार से मुखर्जी, 3 जुलाई 1954, पोद्दार पेपर्स
- [94.](#) राममूर्ति लूम्बा जी आर मदन (सं) में, *राधाकमल मुखर्जी: एन एमिनेंट स्कॉलर, सेंट एंड सोशल वर्कर*, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली 2008, पृष्ठ 3
- [95.](#) रामचन्द्र गुहा, 'द वंस हू स्टेड बिहाइंड', *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, 22 मार्च 2003
- [96.](#) मदन (सं) में लूम्बा, 2008, पृष्ठ 3
- [97.](#) पोद्दार से राधाकमल मुखर्जी, 15 दिसंबर (वर्ष के बारे में जानकारी नहीं), पोद्दार पेपर्स

- [98.](#) पोद्दार से एस एन सेन, 4 नवंबर 1938, पोद्दार पेपर्स
- [99.](#) शेखर बंदोपाध्याय, *कास्ट, कल्चर एंड हेजिमनी: सोशल डोमिनेंस इन कोलोनियल बंगाल*, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली 2004
- [100.](#) पोद्दार से सेन, 18 जुलाई 1945, पोद्दार पेपर्स
- [101.](#) अमर्त्य सेन, क्षितिमोहन सेन *हिन्दुइज़्म* में लिखी प्रस्तावना, पेंगुइन इंडिया, नई दिल्ली, 2005
- [102.](#) वही
- [103.](#) पोद्दार से टैगोर के सचिव अनिल के चंदा, 29 अक्टूबर 1936, पोद्दार पेपर्स
- [104.](#) पोद्दार से अल्टेकर, 8 फ़रवरी 1934, पोद्दार पेपर्स
- [105.](#) सुनीति कुमार चटर्जी से पोद्दार, 1 अगस्त 1949, पोद्दार पेपर्स
- [106.](#) पोद्दार से गंगानाथ झा, 1 अक्टूबर 1938, पोद्दार पेपर्स
- [107.](#) देखें ह्यूग टिंकर, *द ऑर्डील ऑफ़ लव: सी एफ, एंड्रयूज़ एंड इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1979
- [108.](#) पोद्दार को एंड्रयूज़ के पत्र की प्रतिलिपि, 18 जुलाई 1923, पोद्दार पेपर्स
- [109.](#) पोद्दार से एंड्रयूज़, 29 नवंबर 1935, पोद्दार पेपर्स
- [110.](#) गांधी लिखित प्रस्तावना, सोफिआ वाडिया की *ब्रदरहुड ऑफ़ रिलीजंस* में, इंटरनेशनल बुक हाउस, बॉम्बे 1939
- [111.](#) बाबा राघवदास से वाडिया, 30 नवंबर 1934, पोद्दार पेपर्स
- [112.](#) http://roerich.org/nr.html?mid=bio_rus , 5 अक्टूबर 2012 को देखी गई
- [113.](#) पोद्दार से रोयरिश के सचिव, 29 मार्च 1932, पोद्दार पेपर्स
- [114.](#) पोद्दार से रोयरिश, 11 मार्च 1932, पोद्दार पेपर्स
- [115.](#) जीवन संबंधी परिचय के लिए देखें सुनील रमण, *सी वाई चिंतामणि: द लिबरल एडिटर पॉलिटिशियन*, रूपा चरितावली सीरीज़, नई दिल्ली, 2002; ज्ञानेश कुदेसिया, *रीजन, नेशन, 'हार्टलैंड': उत्तर प्रदेश इन इंडियाज़ बॉडी पॉलिटिक*, सेज नई दिल्ली, 2006
- [116.](#) निको स्लेट, *कलर्ड कॉस्मोपॉलिटेनिज़्म*, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज मास, 2012, पृष्ठ 75
- [117.](#) पोद्दार से टिकेकर, 16 फ़रवरी 1935, पोद्दार पेपर्स
- [118.](#) पोद्दार से टिकेकर, 21 मार्च 1935, पोद्दार पेपर्स
- [119.](#) पोद्दार से टिकेकर, 8 अप्रैल 1935, पोद्दार पेपर्स

[120.](#) सिंह, 1980 पृष्ठ 144-45

[121.](#) हरीश त्रिवेदी, 'प्रोग्रेस ऑफ़ हिन्दी, भाग 2, शेल्डॉन पोल्लोक (सं) में, *लिटरेरी कल्चर्स इन हिस्ट्री: रिकंस्ट्रक्शन फ्रॉम साउथ एशिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलिफोर्निया प्रेस, बर्कले, 2003, पृष्ठ 976

[122.](#) एलिसन बुश, 'एन अर्ली मूमेंट इन द डेवलपमेंट ऑफ़ हिन्दी लिटरेरी थ्योरी बाय मिश्रबंधु', शोबना निझावन (सं) में, *नेशनलिज़्म इन द वर्नाकुलर*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2010 पृष्ठ 343

[123.](#) मिश्रबंधुविनोद, भाग 1, चौथा संस्करण, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, 1934 पृष्ठ 77

[124.](#) मिश्रबंधुविनोद के द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना 1934 में चौथे संस्करण में पुनः प्रकाशित

[125.](#) मिश्रबंधुविनोद, भाग 4 1934, पृष्ठ 393

[126.](#) देखें, फ्रांसेस्का ओर्सिनी, *द हिन्दी पब्लिक स्फीयर, 1920-40: लैंग्वेज एंड लिटरेचर इन द एज ऑफ़ नेशनलिज़्म*, 2002, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ 401-02

[127.](#) अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', *हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास*, पटना यूनिवर्सिटी, 1934, बाबू माणिकलाल द्वारा मुद्रित, यूनाइटेड प्रेस लिमिटेड, भागलपुर, पृष्ठ 544-45, 703, 719

[128.](#) सिंह 1980, पृष्ठ 273

[129.](#) गंभीरचंद दुजारी, *श्री भाईजी: एक अलौकिक विभूति*, गीता वाटिका प्रकाशन, गोरखपुर 2000, पृष्ठ 307-08

[130.](#) रुथ वनिता, *लव्स राईट: सेम सेक्स मैरिज इन इंडिया एंड द वेस्ट*, पालग्रेव, न्यूयॉर्क 2005, पृष्ठ 162

[131.](#) कर्मेन्दु शिशिर (सं), *नवजागरणकालीन पत्रकारिता और मतवाला*, भाग 1, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली 2012, पृष्ठ 38

[132.](#) उग्र से चतुर्वेदी, दिनांक स्पष्ट नहीं, नारायण दत्त (सं) में निजी पत्र के नाम से चिह्नित, *बनारसीदास चतुर्वेदी के चुनिंदा पत्र*, भाग 1, आईजीएनसीए और राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2006, पृष्ठ 23 7

[133.](#) उग्र को लिखा गया एक और पत्र, दिनांक स्पष्ट नहीं, वही

[134.](#) चतुर्वेदी को पोद्दार के पत्र की लिखी गई प्रतिलिपि, 1931, पोद्दार पेपर्स

[135.](#) पोद्दार से चतुर्वेदी, 11 अगस्त 1941, पोद्दार पेपर्स

- [136.](#) पोद्दार से चतुर्वेदी, मई 1958, पोद्दार पेपर्स
- [137.](#) शम्सुर्रहमान फ़ारुकी, 'ए लॉन्ग हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेरी कल्चर, भाग 1', पोल्लोक (सं) में, 2003 पृष्ठ 819
- [138.](#) दुजारी 2000, पृष्ठ 307
- [139.](#) त्रिवेदी 2003, पृष्ठ 990
- [140.](#) यह और आगे के उद्धरण करीन स्कॉमर से लिए गए हैं, *महादेवी वर्मा एंड द छायावाद एज ऑफ़ मॉडर्न हिन्दी पोयट्री*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1998 पृष्ठ 26, 95-96, 101
- [141.](#) त्रिवेदी 2003, पृष्ठ 995
- [142.](#) वही, पृष्ठ 994
- [143.](#) यह और आगे की जानकारी शिशिर (सं) से ली गई है, 2012, पृष्ठ 24, 31, 39 और स्कॉमर, 1998, पृष्ठ 103
- [144.](#) दुजारी 2000, पृष्ठ 307
- [145.](#) पंत से पोद्दार, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स
- [146.](#) स्कॉमर, 1998 पृष्ठ 21
- [147.](#) वही, पृष्ठ 95-96
- [148.](#) त्रिवेदी, 2003, पृष्ठ 988
- [149.](#) सुधीर चंद्र, *हिन्दू हिन्दुत्व, हिन्दुस्तान*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 134-35
- [150.](#) शिशिर (सं) 2012, भाग 2, पृष्ठ 116
- [151.](#) गुप्त से पोद्दार, 1949, पोद्दार पेपर्स
- [152.](#) पोद्दार से गुप्त, 1945, पोद्दार पेपर्स
- [153.](#) ओर्सिनी, 2002, पृष्ठ 424-25
- [154.](#) शिशिर में निराला को वाक्यांश का श्रेय दिया गया, 2012, भाग 1, पृष्ठ 32
- [155.](#) वही, पृष्ठ 31
- [156.](#) सहाय से पोद्दार, 23 मई 1932, शिवपूजन सहाय पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [157.](#) सहाय से पोद्दार, 6 सितंबर 1931, शिवपूजन सहाय पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

- [158.](#) प्रवासी लाल वर्मा से पोद्दार, दिनांक स्पष्ट नहीं, शिवपूजन सहाय पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [159.](#) लुटगेनडोर्फ, 1991, पृष्ठ 59-60
- [160.](#) ओर्सिनी 2002, पृष्ठ 415-16
- [161.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 35, 37, 50, 275
- [162.](#) मंगल मूर्ति (सं), *शिवपूजन सहाय समग्र*, भाग 2, अनामिका प्रकाशन नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 397-98
- [163.](#) देखें सिंह, 1980 पृष्ठ 471-7 4
- [164.](#) पोद्दार से गर्दे, 12 जुलाई 1957, पोद्दार पेपर्स
- [165.](#) गोस्वामी से गर्दे, 2 दिसंबर 1957, पोद्दार पेपर्स
- [166.](#) हरिवंश राय बच्चन, 'गीत', *कल्याण*, जून 1960, पृष्ठ 1008
- [167.](#) हरिवंश राय बच्चन, *द आफ्टरनून ऑफ़ टाइम: एन ऑटोबायोग्राफी* में, रूपेर्ट स्नेल द्वारा हिन्दी से अनूदित और संपादित, वाइकिंग, नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 402-03
- [168.](#) राधेश्याम बंका, *परिकर मालिका*, भाग 4, हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति, गोरखपुर, 2013, पृष्ठ 274-75
- [169.](#) शिशिर (सं) से जीवन संबंधी जानकारीयां, 2012, भाग 1, पृष्ठ 329, 331; ओर्सिनी, 2002, पृष्ठ 400-01
- [170.](#) पोद्दार से त्रिपाठी, 7 जुलाई 1952, पोद्दार पेपर्स
- [171.](#) ओर्सिनी, 2002, पृष्ठ 404-05
- [172.](#) पोद्दार से जैनेंद्र कुमार, 6 दिसंबर 1958, पोद्दार पेपर्स
- [173.](#) शिशिर (सं) से लेखकों के जीवनसंबंधी जानकारीयां, 2012, भाग 1; ओर्सिनी 2002, पृष्ठ 384-452; मूर्ति (सं), 2012, पृष्ठ 398
- [174.](#) पोद्दार से सैयद, 11 नवंबर 1934, पोद्दार पेपर्स
- [175.](#) पोद्दार से सैयद, 27 नवंबर 1936, पोद्दार पेपर्स
- [176.](#) पोद्दार से सैयद, 15 दिसंबर 1936, पोद्दार पेपर्स
- [177.](#) पोद्दार से सैयद, 25 नवंबर 1938, पोद्दार पेपर्स
- [178.](#) पोद्दार से सैयद, 11 जनवरी 1943, पोद्दार पेपर्स
- [179.](#) पोद्दार से सैयद, 12 जून 1944, पोद्दार पेपर्स
- [180.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 273
- [181.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी से सैयद, 17 जून 1958, पोद्दार पेपर्स

- [182.](#) पोद्दार से कासिम अली, 10 अक्टूबर 1952, पोद्दार पेपर्स
- [183.](#) पोद्दार से कासिम अली, 11 नवंबर 1952, पोद्दार पेपर्स
- [184.](#) पोद्दार से हुसैन, 19 फ़रवरी 1932, पोद्दार पेपर्स
- [185.](#) फ़िरोज़ सी डावर, *पर्सिस एंड रेशियल सुसाइड, दीनार प्रिंटिंग*, बॉम्बे, वर्ष के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं, पृष्ठ 8, 5
- [186.](#) पोद्दार से डावर, 11 दिसंबर 1935, पोद्दार पेपर्स
- [187.](#) पोद्दार से डावर, 28 नवंबर 1936, पोद्दार पेपर्स
- [188.](#) पोद्दार से डावर, 18 जून 1958, पोद्दार पेपर्स
- [189.](#) <http://archives.gcah.org/publicdata/gcah2723.htm> से जीवन संबंधी जानकारीयां ली गईं, 5 नवंबर 2012 को देखी गईं
- [190.](#) जीवन संबंधी जानकारीयां <http://christianlarson.wwwhubs.com/> से, 5 नवंबर 2012 को देखी गईं
- [191.](#) एडविन ग्रीव्स, *हिन्दी ग्रामर*, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1921, पृष्ठ III, 6
- [192.](#) पोद्दार से ग्रीव्स, फ़रवरी 1935, पोद्दार पेपर्स
- [193.](#) *इंट्रोडक्शन टू द पांचरात्र और अहीरबुधया संहिता*, श्रेडर के लिए जोहन वन मनेन की प्रस्तावना, अड्यार पुस्तकालय, मद्रास 191 6
- [194.](#) पोद्दार से श्रेडर, 14 मार्च 1935, पोद्दार पेपर्स
- [195.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी से श्रेडर, 6 सितंबर 1937
- [196.](#) जॉन जॉर्ज वुडरॉफ़, *इज़ इंडिया सिविलाइज़्ड?: एसेज़ ऑन इंडियन कल्चर*, गणेश एंड को पब्लिशर्स, 1919, मद्रास, पृष्ठ 1, XII, XVI
- [197.](#) कॉन्सटेन्स ए जॉस और जेम्स डी रयान, *एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ हिन्दुइज़्म*, फैक्ट्स ऑन फाइल (एन इंप्रिंट ऑफ़ इन्फोबेस पब्लिशिंग), न्यूयॉर्क 2007, पृष्ठ 502
- [198.](#) वुडरॉफ़ से पोद्दार, 13 जनवरी 1934, पोद्दार पेपर्स
- [199.](#) रिजवे एफ़ शिन, *आर्थर बर्देल् कैथ (1879-1944): द चीफ़ ओनरमिंट ऑफ़ स्कॉटिश लर्निंग*, आबरडीन, स्कॉटलैंड, यूके 1990
- [200.](#) संपादक से कैथ, *कल्याण-कल्पतरु*, 31 अक्टूबर 1936, पोद्दार पेपर्स
- [201.](#) संपादक से स्ट्रॉस, *कल्याण-कल्पतरु*, 6 नवंबर 1936, पोद्दार पेपर्स
- [202.](#) संपादक से श्रेडर, *कल्याण-कल्पतरु*, 8 जनवरी 1937, पोद्दार पेपर्स
- [203.](#) संपादक से व्हिटवेल, *कल्याण-कल्पतरु*, 20 अगस्त 1958, पोद्दार पेपर्स

- [204.](#) नई दिल्ली स्थित इटली के दूतावास के सांस्कृतिक केन्द्र में जी टुकी पर आयोजित सेमिनार में फैबियो सायल्बी का स्मरणीय भाषण, 19 अक्टूबर 2004, साइटिंग आर नोली, 'एल' इंडिया नेल' ओपेरा दी जुजेप्पे टुकी', इन जुजेप्पे टुकी, *नेल सेंटेनरियो डेला नासीटा , ए क्यूरडी मेलासेच्ची*, रोम जून 1994
- [205.](#) *मॉडर्न रिव्यू*, जनवरी 1926, पृष्ठ 130-31
- [206.](#) गोस्वामी से गरगानो, 12 अगस्त 1958, पोद्दार पेपर्स
- [207.](#) संपादक से लेसिंग, *कल्याण*, 27 जून 1958, पोद्दार पेपर्स
- [208.](#) पोद्दार से शिवशरण, 8 सितंबर 1949, पोद्दार पेपर्स
- [209.](#) संपादक से ससाकी, *कल्याण*, 1 जुलाई 1958, पोद्दार पेपर्स
- [210.](#) चिम्नलाल गोस्वामी से के दे विरीस, 12 जुलाई 1958, पोद्दार पेपर्स
- [211.](#) पोद्दार को प्राप्त पत्र (भेजने वाले का नाम अपठित), 3 सितंबर 1941, पोद्दार पेपर्स
- [212.](#) पोद्दार को प्राप्त पत्र (भेजने वाले का नाम अपठित), 11 और 14 मार्च 1945, पोद्दार पेपर्स
- [213.](#) पोद्दार से वी एन शर्मा, 25 अप्रैल 1958; गीता प्रेस से होमर एल ब्रेडशॉ, 12 जनवरी 1958, पोद्दार पेपर्स
- [214.](#) पोद्दार से टरबियानी, 24 अगस्त 1949, पोद्दार पेपर्स
- [215.](#) पोद्दार से टरबियानी, 13 नवंबर 1957, पोद्दार पेपर्स
- [216.](#) पोद्दार से टरबियानी, 9 जनवरी 1958, पोद्दार पेपर्स
- [217.](#) पोद्दार से टरबियानी, 31 मार्च 1958, पोद्दार पेपर्स
- [218.](#) पोद्दार से टरबियानी, 30 जून 1958 और 30 नवंबर 1958, पोद्दार पेपर्स
- [219.](#) पोद्दार से टरबियानी, 2 फ़रवरी 1959, पोद्दार पेपर्स
- [220.](#) पोद्दार से टरबियानी, जनवरी 1961, पोद्दार पेपर्स
- [221.](#) आर एस मैकग्रेगर (सं), *डिवोशनल लिटरेचर इन साउथ एशिया: करेंट रिसर्च (1985-1988)*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज यूके 1992 पृष्ठ 49-55
- [222.](#) पोद्दार से मिल्टनर, 16 मार्च और 8 जून 1961, पोद्दार पेपर्स
- [223.](#) 1956 और 1960 के बीच पोद्दार को कार्ल जी गेश के पत्र श्रृंखला, पोद्दार पेप्स
- [224.](#) निर्देशक से रेमंड एफ पाइपर, गीता प्रेस, 20 अगस्त 1960, पोद्दार पेपर्स
- [225.](#) पोद्दार से बी के गोयल, 5 जनवरी 1970, पोद्दार पेपर्स

- [226.](#) बी के गोयल से मैनेजर गीता प्रेस, 15 जनवरी 1970, पोद्दार पेपर्स
- [227.](#) पोद्दार से जी पी मिश्र, 13 जनवरी 1961, पोद्दार पेपर्स
- [228.](#) पोद्दार से आर के श्रीवास्तव, 27 जनवरी 1961, पोद्दार पेपर्स
- [229.](#) पोद्दार से रमेश कुमार प्रसाद, 20 मई 1960, पोद्दार पेपर्स
- [230.](#) संपादक को स्वामी स्वयंप्रभानंद का पत्र, *कल्याण*, 28 जून 1956, पोद्दार पेपर्स

अध्याय 4

- [1.](#) रोमिला थापर, 'इमेजिन्ड रिलिजियस कम्युनिटीज़' और 'सिंडिकेटेड हिन्दुइज़्म' *कल्चरल पास्ट्स: एसेज़ इन अलर्ी इंडियन हिस्ट्री* में, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ 966, 972, 1046-47
- [2.](#) सुमित सरकार, 'इंडियन नेशनलिज़्म एंड द पॉलिटिक्स ऑफ हिन्दुत्व' डेविड लडेन (सं.) में, *मेकिंग इंडिया हिन्दू*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1966, पृष्ठ 273
- [3.](#) वी डी सावरकर, *हिन्दुत्व: हू इज़ ए हिन्दू?*, सेंट्रल हिन्दू युवक सभा, नई दिल्ली, 1938, पृष्ठ 5
- [4.](#) एंटनी कॉपले, *हिन्दुइज़्म इन पब्लिक एंड प्राइवेट: रिफार्म, हिन्दुत्व, जेंडर एंड सम्प्रदाय*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 6-7, 9
- [5.](#) के बी हेडगेवार, 'हिन्दुस्थान बिलॉन्गस टू हिन्दूज़ ओनली', के एम तलरेजा (सं.) में पुनर्प्रकाशित, *अवेक एंड अराइज़*, सितंबर-अक्टूबर, 1974 (हेडगेवार की मृत्यु जून 1940 में हुई थी)
- [6.](#) क्रिस्टोफ जैफरलॉट, *रिलिजन, कास्ट एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया*, प्राइमस बुक्स, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 31
- [7.](#) द कम्युनल प्रॉब्लम, *रिपोर्ट्स ऑफ़ द कानपुर रायट्स इन्क्वायरी कमिटी*, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2007, पृष्ठ 150-51
- [8.](#) 'संपादकीय टिप्पणियाँ', *कल्याण* भाग 1, क्र. सं. 1, 1926, पृष्ठ 33-34
- [9.](#) 'जयदयाल गोयन्दका के पत्र', *कल्याण*, भाग 2, क्र. सं. 11, 1927, पृष्ठ 489
- [10.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'महामना मालवीय जी और भगवान नाम महिमा', *कल्याण*, भगवान नाम महिमा और प्रार्थना अंक, जनवरी 1965, पृष्ठ 160-65
- [11.](#) 'पुराने संस्मरण', *कल्याण*, भगवान नाम महिमा और प्रार्थना अंक, जनवरी 1965, पृष्ठ 158-60
- [12.](#) 'सफलता प्राप्ति, दुर्घटना से रक्षा आदि', *कल्याण*, भगवान नाम महिमा और प्रार्थना अंक, जनवरी 1965, पृष्ठ 616

- [13.](#) *कल्याण*, नवंबर 1951, पृष्ठ 1459
- [14.](#) 'कम्युनल क्लैश इन गोरखपुर: ट्वंटी-सेवन इंजर्ड', *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, बॉम्बे, 23 दिसंबर 1939
- [15.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी से पोद्दार, 14 मार्गशीर्ष शुक्ल, संवत्, 1996 (1939), पोद्दार पेपर्स
- [16.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी से पोद्दार, 26 दिसंबर 1939, पोद्दार पेपर्स
- [17.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी से पोद्दार, 29 दिसंबर 1939, पोद्दार पेपर्स
- [18.](#) शुक्ल से पोद्दार, दिनांक स्पष्ट नहीं है लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि यह 1 से 3 जनवरी 1940 के बीच लिखा गया है, पोद्दार पेपर्स
- [19.](#) वही
- [20.](#) बजरंग दल से पोद्दार, 3 जनवरी 1940, पोद्दार पेपर्स
- [21.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी से पोद्दार, 4 जनवरी 1940, पोद्दार पेपर्स
- [22.](#) रामनरेश त्रिपाठी, 'उर-प्रेरक', *कल्याण*, दिसंबर 1939, पृष्ठ 1361-63
- [23.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'विश्व हिन्दू परिषद', *कल्याण*, दिसंबर 1965, पृष्ठ 4
- [24.](#) गीता प्रेस से एसजीपीसी, 14 मार्च 1934, पोद्दार पेपर्स
- [25.](#) गीता प्रेस से खालसा दीवान प्रमुख कार्यालय, 14 मार्च 1954, पोद्दार पेपर्स
- [26.](#) गीता प्रेस से एसजीपीसी, 3 अप्रैल 1934, पोद्दार पेपर्स
- [27.](#) स्टैनले वॉलपर्ट, *शेमफुल फ्लाइट: द लास्ट डेयर्स ऑफ़ द ब्रिटिश एम्पायर इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2006, पृष्ठ 120
- [28.](#) सुमित सरकार, *मॉडर्न इंडिया*, 1885-1947, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ 432-33
- [29.](#) कलकत्ता हत्याकांड और नोआखली हिंसा के दौरान हिन्दू महासभा द्वारा की गई राहत गतिविधियां, बंगाल प्रांतीय हिन्दू महासभा द्वारा प्रकाशित, 162, बो बाज़ार गली, कलकत्ता, 1946, पृष्ठ 6
- [30.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'वर्तमान विकट परिस्थिति और हमारा कर्तव्य', *कल्याण*, नवंबर 1946, पृष्ठ 1312-18
- [31.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'वर्तमान परिस्थिति के संबंध में विचार', *कल्याण*, दिसंबर 1946, पृष्ठ 1377-79
- [32.](#) 'छपने का सबको अधिकार है', *कल्याण*, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1441
- [33.](#) 'यह अंक क्यों और किसलिए', *कल्याण*, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1440

- [34.](#) 'पूज्यपाद महामना श्री मालवीय जी महाराज', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1387
- [35.](#) 'महामना मालवीय जी का अंतिम पूरा वक्तव्य', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1389-91
- [36.](#) एच एल अर्दमैन, द स्वतंत्र पार्टी एंड इंडियन कंज़र्वेटिविज़्म, केंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1967, पृष्ठ 52
- [37.](#) स्वामी करपात्री महाराज, 'उठो-जागो', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1393
- [38.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'हिन्दुओं की कमज़ोरी का कारण और उसके मिटाने का उपाय', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1400-03
- [39.](#) रामनारायण एस रावत, रिकन्सडीरिंग अनटचेबिलिटी: चमार्स एंड दलित हिस्ट्री इन नॉर्थ इंडिया, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2012, पृष्ठ 148
- [40.](#) वावेल से बिहार गवर्नर डोव, 9 नवंबर 1946, 'ट्रांसफर्स ऑफ पॉवर, 9, द फिक्सिंग ऑफ ए टाइम लिमिट' पृष्ठ 38-39, वॉलपर्ट में उद्धृत, 2006, पृष्ठ 125
- [41.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'मानवता का पतन: बंगाल और बिहार', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1409-18
- [42.](#) 'डॉ श्यामाप्रसाद मुखर्जी का वक्तव्य', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1404
- [43.](#) 'खतरे की घंटी', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1418
- [44.](#) 'बंगाल की अपहरण की हुई महिलाएँ', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1420
- [45.](#) 'हिन्दू देवियों के पत्र', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1424-27
- [46.](#) राजनीतिक गतिविधियों पर साप्ताहिक रिपोर्ट, नंबर 49, 29 दिसंबर 1946 को समाप्त होते सप्ताह के लिए, सीआईडी अभिलेखागार, लखनऊ
- [47.](#) राजेश्वर दयाल से एफ आर स्टॉकवेल, 20 दिसंबर 1946, गृह विभाग (पुलिस) फाइल सं 1116/1947, उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ
- [48.](#) राजेश्वर दयाल का आदेश, 21 दिसंबर 1946, गृह विभाग (पुलिस), फाइल सं 1116/1947, उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ
- [49.](#) जिला मजिस्ट्रेट से राजेश्वर दयाल, गोरखपुर, 2 जनवरी 1947, गृह विभाग (पुलिस), फाइल सं 1116/1947, उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ
- [50.](#) गृह विभाग (पुलिस), फाइल सं 1116/1947, उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ

- [51.](#) राजेश्वर दयाल से एफ आर स्टॉकवेल, 11 जनवरी 1947, गृह विभाग (पुलिस), फाइल सं 1116/1947, उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ
- [52.](#) संयुक्त प्रांत की सरकार से जी सी डू के सचिव, गृह विभाग, 4 जनवरी 1947, गृह विभाग (पुलिस), फाइल सं 1116/1947, उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ
- [53.](#) राजेश्वर दयाल का आदेश, 15 जनवरी 1947, गृह विभाग (पुलिस), फाइल सं 1116/1947, उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ
- [54.](#) राजेश्वर दयाल से टी.बी. क्रॉस्ले, गृह सचिव, संयुक्त प्रांत, 24 जनवरी 1947, गृह विभाग (पुलिस), फाइल सं 1116/1947, उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ
- [55.](#) संयुक्त प्रांत के गृह सचिव राजेश्वर दयाल से अपराधी जांच विभाग लखनऊ के एन सी मिश्र, 1 मई 1947, गृह विभाग (पुलिस), फाइल सं 1116/1947, उत्तर प्रदेश अभिलेखागार, लखनऊ
- [56.](#) 'धर्मातरित भाई-बहनों की शुद्धि', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1430-32
- [57.](#) 'हिन्दू धर्म पर क़ानूनी प्रहार', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1432-33
- [58.](#) 'संगठन और संरक्षण को प्राप्त करने के द्वादश साधन', कल्याण, मालवीय अंक, 1946, पृष्ठ 1435-36
- [59.](#) संयुक्त प्रांत के प्रशासन की रिपोर्ट, 1947, इलाहाबाद, अधीक्षक, प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, संयुक्त प्रांत, पी एन भार्गव द्वारा मुद्रित, भार्गव भूषण प्रेस, बनारस
- [60.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'कल्याण पर कांग्रेस सरकारों की कृपा', कल्याण, मार्च 1947, पृष्ठ 851-53
- [61.](#) एम एस गोलवरकर, 'सच्चा राष्ट्रवाद', कल्याण, जनवरी 1947, पृष्ठ 656-66
- [62.](#) 'भगवान को आर्त भाव से पुकारते ही रक्षा हो गई', कल्याण, जनवरी 1947, पृष्ठ 666-68
- [63.](#) 'मानवता के आदर्श', कल्याण, जनवरी 1947, पृष्ठ 675-80
- [64.](#) 'देश की वर्तमान परिस्थिति और हिन्दुओं का कर्तव्य', कल्याण, जनवरी 1947, पृष्ठ 686-96
- [65.](#) कल्याण, फ़रवरी 1947, पृष्ठ 785-86
- [66.](#) 'हिन्दू जाति पर विपत्ति', कल्याण, फ़रवरी 1947, पृष्ठ 787
- [67.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'भगवत् प्रीत्यर्थ द्वेषरहित कर्तव्य पालन', कल्याण, फ़रवरी 1947, पृष्ठ 839-49

- [68.](#) 'हिन्दुओं का कर्तव्य', प्रबुद्ध भारत से, कल्याण में पुनर्प्रकाशित, अप्रैल 1947, पृष्ठ 718
- [69.](#) चित्रा सिन्हा, डिबेटिंग पैट्रिआर्की: द हिन्दू कोड बिल कंट्रोवर्सी इन इंडिया (1941-1956), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस और न्यू इंडिया फाउंडेशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 18 5
- [70.](#) 'हिन्दू धर्म और संस्कृति पर प्रहार', कल्याण, मई 1947, पृष्ठ 969
- [71.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'भयानक खतरा और तुरंत कर्तव्य पालन की ज़रूरत', कल्याण, मई 1947, पृष्ठ 970-81
- [72.](#) एम एस गोलवलकर, 'हमारी संस्कृति की अखंड धारा', कल्याण, जून 1947, पृष्ठ 1035-41
- [73.](#) 'धर्म युद्ध के लिए आह्वान', कल्याण, जून 1947, पृष्ठ 1042-43
- [74.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'भारत विभाजन के बाद क्या होगा', कल्याण, जुलाई 1947, पृष्ठ 1099-1106
- [75.](#) हनुमान शर्मा, 'तब और अब', कल्याण, अगस्त 1947, पृष्ठ 1165-70
- [76.](#) 'वर्ताव के नमूने', कल्याण, अगस्त 1947, आन्तरिक पृष्ठ आवरण
- [77.](#) 'पंजाब के अत्याचार और हमारी सरकार, प्रधानमंत्री का वक्तव्य', कल्याण, सितंबर 1947, पृष्ठ 1232-33
- [78.](#) प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, 'शर्णार्थियों की सेवा सर्वश्रेष्ठ धर्म है', कल्याण, अक्टूबर 1947, पृष्ठ 1289-91
- [79.](#) आर शुक्ल, 'हिन्दुओं का दुर्भाग्य', कल्याण, नवंबर 1947, पृष्ठ 1361-62
- [80.](#) गंभीरचंद दुजारी, श्री भाईजी: एक अलौकिक विभूति, गीता वाटिका प्रकाशन, गोरखपुर, 2000, पृष्ठ 230-31
- [81.](#) इस अनुच्छेद में जानकारी रामलाल वाधवा से ली गई है, हिन्दू महासभा, 1928-1947, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 पृष्ठ 208-09
- [82.](#) बी डी ग्राहम, हिन्दू नेशनलिज़्म एंड इंडियन पॉलिटिक्स: द ओरिजिन्स एंड डेवलपमेंट ऑफ़ द भारतीय जनसंघ, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1990, पृष्ठ 19
- [83.](#) गोयन्दका से पोद्दार, 8 कार्तिक कृष्ण, संवत् 1986 (1929), पोद्दार पेपर्स
- [84.](#) जयदयाल गोयन्दका, 'हिन्दू विवाह की पवित्रता एवं तत्संबंधी क़ानून', कल्याण, अगस्त 1946, पृष्ठ 1124-27
- [85.](#) सिन्हा, 2012, पृष्ठ 51, 63

- [86.](#) डोनाल्ड यूजीन स्मिथ, *इंडिया एज़ ए सेक्युलर स्टेट*, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी, 1963, पृष्ठ 279
- [87.](#) क्रमशः इन दोनों अनुच्छेदों में जानकारी सिन्हा से ली गई है, 2012, पृष्ठ 64-65
- [88.](#) जेराल्डिन फोर्ब्स, *वीमेन इन मॉडर्न इंडिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1996, पृष्ठ 118-19
- [89.](#) 'हिन्दू कोड: हिन्दू संस्कृति के विनाश का आयोजन', *कल्याण*, जून 1948, पृष्ठ 1110-13
- [90.](#) 'हिन्दू धर्म और हिन्दुओं के आराध्य देव भगवान श्री राम और श्री कृष्ण पर आक्षेप', *कल्याण*, मई 1950, पृष्ठ 1158
- [91.](#) सिन्हा, 2012, पृष्ठ 88
- [92.](#) वही, पृष्ठ 93
- [93.](#) 'हिन्दू कोड: हिन्दू संस्कृति के विनाश का आयोजन', *कल्याण*, जून 1948
- [94.](#) 'हिन्दू कोड के संबंध में महात्मा जी का मत', *कल्याण*, जून 1948, पृष्ठ 1113-14
- [95.](#) 'हिन्दू कोड: विरोध में सभा कीजिए, तार पत्र भेजिए', *कल्याण*, जुलाई 1948, आन्तरिक पृष्ठ आवरण, सन्मार्ग से लिखी गई।
- [96.](#) भगवानदास हालना, 'हिन्दू कोड बिल का विरोध', *कल्याण*, अगस्त 1948, पृष्ठ 1242-45
- [97.](#) 'हिन्दू कोड बिल और मंदिरों का जमींदारी', *कल्याण*, अक्टूबर 1948, पृष्ठ 1375-76
- [98.](#) मौखिक इतिहास की प्रतिलिपि, ज्ञानवती दरबार, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, एसीसी नंबर, 547
- [99.](#) 'हिन्दू कोड बिल और मंदिरों की जमींदारी', अक्टूबर 1948, पृष्ठ 1375-76
- [100.](#) 'संस्कृति और धर्म का घातक हिन्दू कोड बिल', *कल्याण*, मार्च 1949, पृष्ठ 900-04
- [101.](#) वही
- [102.](#) 'हिन्दू कोड बिल', *कल्याण*, अप्रैल 1949, आन्तरिक पृष्ठ आवरण
- [103.](#) ज्ञानेंद्र पांडे, *द एसेंडेंसी ऑफ द कांग्रेस इन उत्तर प्रदेश: क्लास, कम्युनिटी एंड नेशन इन नॉर्दर्न इंडिया*, 1920-1940, एंथम प्रेस, लंदन 2002, पृष्ठ 41
- [104.](#) 'हिन्दू कोड बिल पर विचार', *कल्याण*, जुलाई 1949, आन्तरिक पृष्ठ आवरण

- [105.](#) स्वामी पारसनाथ सरस्वती, 'हिन्दू कोड बिल', *कल्याण*, अगस्त 1949, पृष्ठ 1200-03
- [106.](#) सिन्हा, 2012, पृष्ठ 72-73
- [107.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'हिन्दू कोड बिल', *कल्याण*, सितंबर 1951, पृष्ठ 4
- [108.](#) स्मिथ, 1963, पृष्ठ 281
- [109.](#) 'नए रूप में हिन्दू कोड बिल', *कल्याण*, जुलाई 1954, पृष्ठ 1182
- [110.](#) गोबिंद भवन कार्यालय के नियम-धर्म, पोद्दार पेपर्स
- [111.](#) *कल्याण*, फ़रवरी 1946, पृष्ठ 933, 935
- [112.](#) मदनगोपाल सिंघल, 'हरिजन मंदिर प्रवेश', *कल्याण*, जनवरी 1947, पृष्ठ 715-22
- [113.](#) निकोलस बी ड्रिक्स, *कास्ट्स ऑफ माइंड: कोलोनिज़्म एंड द मेकिंग ऑफ मॉडर्न इंडिया*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2002, पृष्ठ 269
- [114.](#) 'हरिजन मंदिर प्रवेश', *कल्याण*, जनवरी 1947
- [115.](#) वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, 'अन्त्यजनों के लिए मंदिर प्रवेश का निषेध क्यों', *कल्याण*, *हिन्दू संस्कृति अंक*, जनवरी 1950, पृष्ठ 214-17
- [116.](#) *बिहार*, 1912-2012, बिहार राज्य अभिलेखागार, 2012, पृष्ठ 60
- [117.](#) क्रमशः इन दोनों अनुच्छेदों के बिंदु हेतुकर झा, 'प्रॉमिसेज़ एंड लैप्सेस: अंडरस्टैंडिंग द एक्सपीरियंस ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट्स इन बिहार इन हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव' पर आधारित हैं, *जर्नल ऑफ इंडियन स्कूल ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी*, भाग 12, जुलाई-दिसंबर 2000, पृष्ठ 431-32
- [118.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'बलपूर्वक देव मंदिर प्रवेश और भक्ति', गीता प्रेस, गोरखपुर, 1953
- [119.](#) *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी*, भाग 57, पृष्ठ 339-40
- [120.](#) परम पूज्यपाद श्री जगतगुरु शंकराचार्य श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ महाराज के महत्वपूर्ण सदुपदेश, *कल्याण*, अक्टूबर 1967, पृष्ठ 1219-26
- [121.](#) लोकसभा की बहसें, भाग 22, नंबर 10-20, 2-6 दिसंबर 1968, लोकसभा सचिवालय, पृष्ठ 14-18
- [122.](#) 'सनातन धर्म पर अनुचित आक्षेप', *कल्याण*, दिसंबर 1968, आन्तरिक पृष्ठ आवरण
- [123.](#) देखें ग्राहम, 1990; क्रेग बैक्सटर, *द जनसंघ: ए बायोग्राफी ऑफ एन इंडियन पॉलिटिकल पार्टी*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1971 और क्रिस्टोफ

- जैफरलॉट, द हिन्दू नेशनलिस्ट मूवमेंट इन इंडिया, वाइकिंग, नई दिल्ली, 1996
- [124.](#) जैफरलॉट, 1996, पृष्ठ 164
- [125.](#) भारतीय जनसंघ (1952-1980), जनसंघ पार्टी के दस्तावेज़, आंतरिक मामले, भाग 4, पृष्ठ 112, बीजेपी, 2005
- [126.](#) वही, पृष्ठ 101-02
- [127.](#) जैफरलॉट, 1996, पृष्ठ 164
- [128.](#) प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, 'वनवासी बंधुओं के बीच में', कल्याण, मई 1963, पृष्ठ 917-25
- [129.](#) बैक्सटर, 1971, पृष्ठ 133
- [130.](#) वही, पृष्ठ 143-45
- [131.](#) 'वनवासी बंधुओं के बीच में', कल्याण, मई 1963
- [132.](#) स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती, 'हिन्दू संस्कृति', हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण, जनवरी 1950, पृष्ठ 23-32
- [133.](#) स्वामी करपात्री महाराज, 'संस्कृति विमर्श', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 35-39
- [134.](#) श्री भारत धर्म महामंडल, द वर्ल्ड्स इटरनल रिलिजन, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, 1920, पृष्ठ 3
- [135.](#) श्री भारत धर्म महामंडल, 'हिन्दू संस्कृति', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 41-50
- [136.](#) महंत दिग्विजयनाथ, 'क्या हिन्दुत्व सम्प्रदायिकता है?', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 61-62
- [137.](#) पार्था चटर्जी, 'हिस्ट्री एंड द नेशनलाइज़ेशन ऑफ हिन्दुइज़्म', वसुधा डालमिया और हेनरिक वॉन स्टाइटनकॉर्न (सं) में, द ऑक्सफ़ोर्ड इंडिया हिन्दुइज़्म रीडर, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 258
- [138.](#) महंत दिग्विजयनाथ, 'क्या हिन्दुत्व सम्प्रदायिकता है', हिन्दू संस्कृति अंक
- [139.](#) कुंवर चांदकरण शारदा, 'हिन्दू संस्कृति क्या है', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 201-03
- [140.](#) माधवराव सदाशिव गोलवरकर, 'हिन्दू संस्कृति', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 57-61
- [141.](#) जस्टिस जीवजी, 'हिन्दू संस्कृति और स्वाधीनता', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 136-44
- [142.](#) किशोरीदास वाजपेयी, 'हिन्दू संस्कृति और राष्ट्रीयता', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 152-53

- [143.](#) जुगल किशोर बिड़ला, 'आर्य हिन्दू धर्म', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 200
- [144.](#) संपूर्णानंद, 'हिन्दू संस्कृति', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 69-73
- [145.](#) सी राजगोपालाचारी, 'हिन्दू संस्कृति ही विश्व संस्कृति है', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 63
- [146.](#) विनोबा भावे, 'हिन्दू कौन', हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 63
- [147.](#) पोद्दार से जीतमल लुनिया, 8 मार्च 1941, पोद्दार पेपर्स
- [148.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'हिन्दी और हिन्दुस्तानी', 'काम के पत्र', कल्याण, जून 1947, पृष्ठ 1030-31
- [149.](#) रविशंकर शुक्ल, 'हिन्दुस्तानी का रहस्य', दो भागों में, कल्याण, जुलाई और अगस्त 1947, पृष्ठ 1090-97, 1156-61
- [150.](#) जैफरलॉट, 1996, पृष्ठ 162
- [151.](#) रघुवीर, 'हिन्दी भाषा की रक्षा करो, यही समय है', कल्याण, सितंबर 1947, पृष्ठ 1229-31
- [152.](#) रघुवीर के लेख के अंत में संपादकीय टिप्पणी, कल्याण, सितंबर 1947, पृष्ठ 1231
- [153.](#) घनश्याम सिंह गुप्त, 'स्वतंत्र भारत की भाषा', कल्याण, मार्च 1948, पृष्ठ 890-92
- [154.](#) रॉबर्ट डी किंग, 'लैंग्वेज पॉलिटिक्स एंड कॉन्फ्लिक्ट्स इन साउथ एशिया', ब्रज बी कचरू, यमुना कचरू एंड एस एन श्रीधर (सं), लैंग्वेज इन साउथ एशिया, केंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2008, पृष्ठ 316-19
- [155.](#) रामचरण महेंद्र, 'हिन्दू वेशभूषा और हिन्दी भाषा को अपनाने में गर्व का अनुभव करें', कल्याण, नवंबर, 1966, पृष्ठ 1312-16

अध्याय 5

1. मैं इस तर्क के लिए हैदराबाद यूनिवर्सिटी के ज्योतिर्मय शर्मा का आभारी हूँ।
2. क्रिस्टोफ जैफरलॉट, द हिन्दू नेशनलिस्ट मूवमेंट इन इंडिया, वाइकिंग, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 112
3. चारू गुप्ता, 'द आइकन ऑफ़ मदर इन लेट कोलोनियल नार्थ इंडिया: भारत माता, मातृभाषा एंड गो माता', इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, भाग 36, नंबर 45, 10-16 नवंबर 2001, पृष्ठ 4291-99; पीटर वान देर वीर, रिलिजियस नेशनलिज़्म:

हिन्दूज़ एंड मुस्लिम्स इन इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले, 1994, पृष्ठ 86

[4.](#) वही

[5.](#) वही, पृष्ठ 86-88

[6.](#) थेरेस ओ'टूल, 'सेक्यूलराइज़िंग द काऊ: द रिलेशनशिप बिटवीन रिलिजियस रिफार्म एंड हिन्दू नेशनलिज़्म', एंटोनी कॉप्ले (सं) में, *हिन्दूइज़्म इन पब्लिक एंड प्राइवेट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 95-98

[7.](#) डी एन झा, *द मिथ ऑफ़ द होली काऊ*, वर्सो, लंदन, 2004

[8.](#) कल्याण के वार्षिकांक *गो अंक* के माननीय योगदानकर्ताओं को पोद्दार का पत्र, (1945), पोद्दार पेपर्स

[9.](#) महात्मा गांधी, 'भारत की सुख समृद्धि', *कल्याण*, *गो अंक*, अक्टूबर 1945, पृष्ठ 17

[10.](#) मैथिलीशरण गुप्त, 'गो-गीत', *गो अंक*, पृष्ठ 5

[11.](#) शान्ति कुमार नानूराम व्यास, 'गो और नारी', *गो अंक*, पृष्ठ 280-84

[12.](#) कांची के शंकराचार्य, 'गो रक्षा ही प्रपंच रक्षा है', *गो अंक*, पृष्ठ 4

[13.](#) प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, 'गोमाता और हिन्दुत्व', *गो अंक*, पृष्ठ 14-16

[14.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार और चिम्नलाल गोस्वामी, 'क्षमा प्रार्थना', *गो अंक* पृष्ठ 662-63

[15.](#) ओ'टूल, 2003 पृष्ठ 102

[16.](#) गुप्ता, 2001, पृष्ठ 4291-99

[17.](#) स्वामी दयानंद सरस्वती, 'गो से अनंत लाभ', *गो अंक*, पृष्ठ 248

[18.](#) सर दातार सिंह, 'भारतवर्ष में गोशालाओं और पिंजरापोलों का सुधार', *गो अंक*, पृष्ठ 20-23

[19.](#) राधाकमल मुखर्जी, 'जंगलों और गोचरभूमियों का प्रबंध', *गो अंक*, पृष्ठ 315-16

[20.](#) मदनमोहन मालवीय, 'गो रक्षा के साधन', *गो अंक*, पृष्ठ 100-06

[21.](#) सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, 'वर्तमान भारत में गो की दशा', *गो अंक*, पृष्ठ 25-26

[22.](#) डॉ राजेंद्र प्रसाद, 'गो पालन सनातन धर्म है', *गो अंक*, पृष्ठ 2 4

[23.](#) धर्मलाल सिंह, 'मुसलमान और गो रक्षा', *गो अंक*, पृष्ठ 219-29

[24.](#) 'हुमायूँ की गो मांस से घृणा', *गो अंक*, पृष्ठ 215

- [25.](#) मौलाना काबिल साहब, 'गो रक्षा क्यों आवश्यक है', गो अंक, पृष्ठ 626-27
- [26.](#) 'भारत में गो-वध सर्वथा बंद हो', कल्याण, जुलाई 1947, पार्श्व पृष्ठ
- [27.](#) श्रीनिवास पोद्दार, 'गो को बचाइए', कल्याण, अगस्त 1947, पृष्ठ 1138-40
- [28.](#) कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी, भाग 90, पृष्ठ 203-05
- [29.](#) किशोरीलाल मश्रुवाला, 'वनस्पति प्रतिबंधक कानून', कल्याण, जुलाई 1950, पृष्ठ 1287-88
- [30.](#) बाबा राघवदास, 'गो-हत्या बंद होनी ही चाहिए', कल्याण, सितंबर 1947, पृष्ठ 1224
- [31.](#) डोनाल्ड यूजीन स्मिथ, इंडिया एज़ ए सेक्युलर स्टेट, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, न्यू जर्सी, 1963, पृष्ठ 484
- [32.](#) 'गो बध निषेध शीघ्र हो', कल्याण, अक्टूबर 1947, पृष्ठ 1298-1301
- [33.](#) स्मिथ, 1963, पृष्ठ 484-85
- [34.](#) वही
- [35.](#) 'गो बध सर्वथा बंद हो', कल्याण, अगस्त 1949, पृष्ठ 1217-18
- [36.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'गो बध को प्रोत्साहन', कल्याण, नवंबर 1949, आन्तरिक पृष्ठ आवरण
- [37.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'गो बध को दूसरा एक और प्रोत्साहन', कल्याण, दिसंबर 1949, आन्तरिक पृष्ठ आवरण
- [38.](#) स्मिथ, 1963, पृष्ठ 486
- [39.](#) वही
- [40.](#) वही
- [41.](#) भारत गो सेवक समाज: बीते 6 महीने के काम की रिपोर्ट, पोद्दार पेपर्स
- [42.](#) जैफरलॉट, 1996, पृष्ठ 73
- [43.](#) भारत गो सेवक समाज: बीते 6 महीने के काम की रिपोर्ट, पोद्दार पेपर्स
- [44.](#) जैफरलॉट, 1996, पृष्ठ 205
- [45.](#) बी डी ग्राहम, हिन्दू नेशनलिज़्म एंड इंडियन पॉलिटिक्स, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1980, पृष्ठ 148-49
- [46.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'गोहत्या निवारण तथा दिल्ली जेल में अनशन करने वाले साधुओं को तुरंत छोड़ने की अपील', कल्याण, जून, 1966, आन्तरिक पृष्ठ आवरण

- [47.](#) भगवती प्रसाद सिंह, *कल्याण पथ: निर्माता और राही*, राधा माधव सेवा संस्थान, गोरखपुर, 1980, पृष्ठ 341-42
- [48.](#) राजेंद्र सिंह, पोद्दार से 'रज्जू भईया', 9 मई 1967, पोद्दार पेपर्स
- [49.](#) क्रेग बैक्सटर, *बायोग्राफी ऑफ़ पॉलिटिकल पार्टी: जनसंघ*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बॉम्बे, 1971, पृष्ठ 259
- [50.](#) प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, 'गो की रक्षा बलिदान के बिना नहीं', *कल्याण*, जुलाई 1966, पृष्ठ 1045-54
- [51.](#) 'गोहत्या बंद कराने के लिए भगवद् आराधना', *कल्याण*, जुलाई 1966, आन्तरिक पृष्ठ आवरण
- [52.](#) प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, 'गो सेवा और गो हत्या निषेध के निमित्त आमरण अनशन', *कल्याण*, सितंबर 1966, पृष्ठ 1185-91
- [53.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'गो रक्षा महा-अभियान', *कल्याण*, सितंबर 1966, पृष्ठ 1210-1 2
- [54.](#) 'गोरक्षा महा-अभियान संबंधी कुछ सूचनाएं', *कल्याण*, सितंबर 1966, आन्तरिक पृष्ठ आवरण
- [55.](#) 'गो रक्षा महा-अभियान', *कल्याण*, अक्टूबर 1966, आन्तरिक पृष्ठ आवरण
- [56.](#) स्वामी निरंजनदेव तीर्थ, 'गो-हत्या को पूर्ण रूप से बंद कराने के लिए बलिदान', *कल्याण*, नवंबर 1966, पृष्ठ 1279-83
- [57.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'गो वंश की हत्या शीघ्र से शीघ्र बंद हो', *कल्याण*, नवंबर 1966, पृष्ठ 1331
- [58.](#) गोलवलकर से पोद्दार, 20 अक्टूबर 1966, *सरस पत्र* में, श्यामसुंदर दुजारी द्वारा संकलित, गीता वाटिका प्रकाशन, गोरखपुर, 2005, पृष्ठ 136-37
- [59.](#) अतिकुर रहमान किदवई, 'गो हत्या समस्या: सरकार और मुसलमान', *कल्याण*, नवंबर 1966, पृष्ठ 1335-36
- [60.](#) इन उद्धरण में सूचनाएं जैफरलॉट से ली गई हैं, 1996, पृष्ठ 206-07 और बैक्सटर, 1971, पृष्ठ 260
- [61.](#) भारतीय जनसंघ (1952-1980), पार्टी के दस्तावेज़ और घोषणा पत्र, भाग 1, पृष्ठ 212-13, 266, 288, बीजेपी, 2005
- [62.](#) 'गो रक्षार्थ नंदा भी जगद्गुरु के साथ सत्याग्रह करेंगे', *वीर अर्जुन*, 30 मई 1968, पोद्दार पेपर्स

- [63.](#) भारतीय जनसंघ, (1952-1980), पार्टी के दस्तावेज़ और घोषणा पत्र, भाग 1, पृष्ठ 291, बीजेपी, 2005
- [64.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'मैं भगवत इच्छा से ही गो रक्षा महाभियान समिति में सम्मिलित हुआ', कल्याण, दिसंबर, 1966, पृष्ठ 1392
- [65.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'भारत सरकार की मांस उत्पादन की पंचवर्षीय योजना', कल्याण, नवंबर 1966, पृष्ठ 1394
- [66.](#) इंदिरा गांधी से हनुमानप्रसाद पोद्दार, कार्तिक शुक्ल 11, संवत् 2023 (1966), सरसपत्र में, 1999, पृष्ठ 137-40
- [67.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'गो हत्या निरोध का प्रयास', कल्याण, जनवरी 1967, पृष्ठ 699-703
- [68.](#) 'सर्वदलीय गो-रक्षा महाभियान समिति का चुनाव से संबंध नहीं', कल्याण, फ़रवरी 1967, पृष्ठ 765
- [69.](#) इस अनुच्छेद में जानकारी जैफ़रलॉट से ली गई है, 1996, पृष्ठ 211; बैक्सटर, 1971, पृष्ठ 260-61
- [70.](#) बृजलाल बियानी, 'गो हत्या निरोध', कल्याण, मार्च, 1967, पृष्ठ 813-17
- [71.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, बियानी के पत्र पर टिप्पणी, कल्याण, मार्च, 1967, पृष्ठ 817 (निष्कर्ष अनुच्छेद)
- [72.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'दिल्ली तिहार जेल में गोरक्षा के सत्याग्रही साधुओं पर अमानुषिक प्रहार', कल्याण, अगस्त 1967, पृष्ठ 1146-47
- [73.](#) पोद्दार से धर्मलाल सिंह, 14 जुलाई 1967 और 30 मई 1968, पोद्दार पेपर्स
- [74.](#) 31 अगस्त 1967 से सर्वदलीय गोरक्षा महाअभियान समिति के खातों के विवरण, पोद्दार पेपर्स
- [75.](#) पोद्दार से हितशरण शर्मा, 19 अगस्त 1967, पोद्दार पेपर्स
- [76.](#) 'पढ़ो, समझो और करो', कल्याण, अगस्त 1967, पृष्ठ 114 9
- [77.](#) स्वामी केशवपुरी वेदांताचार्य, 'गोरक्षा क्यों और कैसे करें', कल्याण, सितंबर 1967, पृष्ठ 1197-1200
- [78.](#) 'साबुन में गाय की चर्बी: सरकारी स्वीकृति', कल्याण, फ़रवरी 1968, आन्तरिक पृष्ठ आवरण
- [79.](#) 'चर्बीरहित साबुन बनानेवालों के नाम पते', कल्याण, जून 1968, पृष्ठ 1009-12
- [80.](#) 'गोरक्षा आंदोलन', कल्याण, अगस्त 1968, पृष्ठ 1227-29

- [81.](#) जयदयाल डालमिया, 'गांधी जी और गोरक्षा', *कल्याण*, अगस्त 1968, पृष्ठ 1130-34. इस लेख की दूसरा और तीसरा भाग *कल्याण* में प्रकाशित हुआ, सितंबर 1968, पृष्ठ 1190-95 और अक्टूबर 1968, पृष्ठ 1242-45
- [82.](#) लोकसभा की बहसें, पार्ट 2, भाग 3, नौवां संस्करण (2-21 अप्रैल 1955), लोकसभा सचिवालय
- [83.](#) कृष्णचंद्र से जयदयाल डालमिया, 16 मई 1968, पोद्दार पेपर्स
- [84.](#) हरिकृष्ण दुजारी से जयदयाल डालमिया, 7 अक्टूबर 1969, पोद्दार पेपर्स
- [85.](#) हरिकृष्ण दुजारी से जयदयाल डालमिया, 26 दिसंबर 1969, पोद्दार पेपर्स
- [86.](#) डालमिया से पोद्दार, 15 अक्टूबर 1969, पोद्दार पेपर्स
- [87.](#) रघुनंदन प्रसाद शर्मा (सं), *सतत साधना यात्रा के तीस वर्ष (1964-1994)*, विश्व हिन्दू परिषद प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 4-5
- [88.](#) मंजरी काटजू, *विश्व हिन्दू परिषद एंड इंडियन पॉलिटिक्स*, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 5
- [89.](#) जैफरलॉट, 1996, पृष्ठ 193, 196
- [90.](#) शर्मा (सं), 1995, पृष्ठ 7
- [91.](#) काटजू, 2010, पृष्ठ 23
- [92.](#) शर्मा (सं), 1995, पृष्ठ 6
- [93.](#) पोद्दार से आप्टे, 23 जुलाई 1970, पोद्दार पेपर्स
- [94.](#) कृष्ण झा और धीरेन्द्र कुमार झा, 'अयोध्या द डार्क नाइट: द सीक्रेट हिस्ट्री ऑफ़ रामाज़ अपीरियंस इन बाबरी मस्जिद', हार्पर कॉलिन्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 44
- [95.](#) वही, प्रस्तावना, पृष्ठ 1
- [96.](#) वही
- [97.](#) राम बहादुर राय, 'बाबरी मस्जिद: ध्वंस की राजनीति', *यथावत* 1-15 दिसंबर 2013, पृष्ठ 6-11
- [98.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 326-27
- [99.](#) राधेश्याम बंका (सं) में गोपाल सिंह विशारद द्वारा उद्धृत पोद्दार के पत्र का निचोड़, *संत हृदय पोद्दारजी*, हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति, गोरखपुर, 1991, पृष्ठ 86-88
- [100.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 326-27
- [101.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 328-29

- [102.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार से सेठ गोविंद दास, 5 जुलाई 1955, सेठ गोविंद दास पेपर्स, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय
- [103.](#) मथुरा में श्री कृष्ण के मंदिर के उद्घाटन में हनुमानप्रसाद पोद्दार का भाषण, 6 सितंबर 1958, गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित पर्चा
- [104.](#) पोद्दार से सेठ गोविंद दास, 18 नवंबर 1958, पोद्दार पेपर्स
- [105.](#) सिंह, 1980, पृष्ठ 329
- [106.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, जुलाई 1951, पृष्ठ 1199
- [107.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'वर्तमान गणतंत्र तथा मतदाताओं का कर्तव्य', कल्याण, दिसंबर 1951, पृष्ठ 1516
- [108.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'वोट किसको दें', कल्याण, दिसंबर 1951, पृष्ठ 1519
- [109.](#) 'अशरिंग इन रामराज्य इन इंडिया: कॉल एट बंगाल परिषद', द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 6 अप्रैल 1951, पृष्ठ 5
- [110.](#) जैफरलॉट, 1996, पृष्ठ 199
- [111.](#) पोद्दार, 'वोट किसको दें', दिसंबर 1951
- [112.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'जनतंत्र या असुर तंत्र', कल्याण, मार्च 1967, पृष्ठ 818-20
- [113.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'जनतंत्र की रक्षा कैसे हो', कल्याण, जून 1967, पृष्ठ 1011
- [114.](#) सुमित सरकार, मॉडर्न इंडिया, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ 177
- [115.](#) सदानंद, 'राजनीति से धर्म का संबंध विच्छेद', कल्याण, भाग 3, नंबर 7, 1928, पृष्ठ 652-53
- [116.](#) 'ईश्वर विरोधी सम्मेलन', कल्याण, भाग 3, नंबर 12, 1928, पृष्ठ 1048-49
- [117.](#) राजेंद्र, 'श्री गीता का समत्व और आज का साम्यवाद', कल्याण, भाग 4, नंबर 1, 1929, पृष्ठ 349-50
- [118.](#) लक्ष्मण नारायण गर्दे, 'आधुनिक अनीश्वरवाद', कल्याण, अगस्त 1932, पृष्ठ 212-19
- [119.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार और चिम्मनलाल गोस्वामी, 'क्षमा प्रार्थना', कल्याण, जनवरी 1947, पृष्ठ 722-25
- [120.](#) चारु चंद्र मित्र, 'नारी', कल्याण (दो क्रिस्तों), मई और जून 1948, पृष्ठ 1049-54 और 1115-18

- [121.](#) कैलाशनाथ काटजू, 'श्रीमद्भगवद्गीता और कम्युनिस्टवाद', कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, जनवरी 1950, पृष्ठ 64-67
- [122.](#) आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, 'हिन्दू संस्कृति और पाश्चात्यवाद', कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, जनवरी 1950, पृष्ठ 171-74
- [123.](#) रामवल्लभ चतुर्वेदी, 'कम्युनिज़्म से हम क्यों डरें?', कल्याण, मार्च 1950, पृष्ठ 1023-25
- [124.](#) 'द ग्रेट एंडीवर', इकोनॉमिक वीकली, 14 मई 1955, पृष्ठ 561
- [125.](#) 'फर्दर लेफ्ट', इकोनॉमिक वीकली, 13 जून 1955, पृष्ठ 698
- [126.](#) नरदेव शास्त्री, 'ये कैसा समाजवाद है', कल्याण, मई 1955, पृष्ठ 1017-19
- [127.](#) 'रूस की अनर्थपूर्ण अर्थव्यवस्था', कल्याण, मई 1955, पृष्ठ 1050-56
- [128.](#) सी नेस्तेरेंको, 'साम्यवादी नैतिकता का औदार्य', कल्याण, जनवरी 1959, पृष्ठ 571-72
- [129.](#) इन्द्रलाल शास्त्री जैन, 'अशान्ति और हिंसात्मक प्रवृत्तियों का उत्तरदायित्व प्रशासन नीति पर', कल्याण, फ़रवरी 1967, पृष्ठ 750-51
- [130.](#) रबीन्द्र रे, द नक्सलाइट्स एंड देयर आइडियोलॉजी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ 88-89
- [131.](#) पोद्दार से पुरुषोत्तमदास हलवासिया, 4 सितंबर 1967, पोद्दार पेपर्स
- [132.](#) भारतीय सांस्कृतिक सुरक्षा परिषद के पर्चे से, पोद्दार पेपर्स
- [133.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'देश में आसुरी संपदा का विस्तार और हमारा कर्तव्य', कल्याण, सितंबर 1967, पृष्ठ 1196-97
- [134.](#) गंगाशंकर मिश्र, प्रस्तावना, स्वामी करपात्री महाराज, मार्क्सवाद और रामराज्य, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2009, पृष्ठ 3-5
- [135.](#) स्वामी करपात्री महाराज, 2009, पृष्ठ 256, 262-63, 306-07, 313-14
- [136.](#) वही, पृष्ठ 574, 576, 577
- [137.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'सनातन धर्म के ह्रास होने वाले देशव्यापी अनर्थ', कल्याण, मार्च 1968, पृष्ठ 817-19
- [138.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'नेसेसिटी ऑफ़ द नॉलेज, ग्रेस्पिंग एंड स्प्रेडिंग ऑफ़ द सनातन धर्म', लेख में दिनांक की जानकारी नहीं है, पोद्दार पेपर्स
- [139.](#) 'काम के पत्र', कल्याण, अगस्त 1968, पृष्ठ 1137-39
- [140.](#) राजेंद्र प्रसाद जैन, 'धर्मनिरपेक्षता का अभिशाप', कल्याण, नवंबर 1968, पृष्ठ 1300-02

- [141.](#) 1976 में संविधान के 42वें संशोधन की मदद से संविधान की मूल प्रस्तावना में पंथ निरपेक्ष और समाजवादी शब्द जोड़े गए
- [142.](#) राजेंद्र प्रसाद जैन, 'धर्मनिरपेक्ष', *कल्याण*, अक्टूबर 1966, पृष्ठ 1255-57
- [143.](#) जैन, 'धर्मनिरपेक्षता का अभिशाप', नवंबर 1968
- [144.](#) भारतीय जनसंघ (1952-1980), पार्टी दस्तावेज़, भाग 1, नीतियाँ और घोषणा पत्र, बीजेपी 2005, पृष्ठ 284-85
- [145.](#) सुंदरलाल वोहरा, 'हिन्दू धर्म की अग्नि परीक्षा', *कल्याण*, जून 1966, पृष्ठ 1003-06
- [146.](#) स्वर्गीय स्वामी करपात्री महाराज, 'धर्म और राजनीति', *कल्याण*, जनवरी 2002, पृष्ठ 106-11
- [147.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'चीन पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक साधन भी किए जाये', *कल्याण*, दिसंबर 1962, पृष्ठ 1347
- [148.](#) राजा महेंद्र से पोद्दार, 19 नवंबर 1962, पोद्दार पेपर्स
- [149.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'पाकिस्तान युद्ध और हमारा कर्तव्य', *कल्याण*, अक्टूबर 1965, पृष्ठ 3
- [150.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'पाकिस्तान- चीन संघर्ष में हमारा कर्तव्य तथा विजय और विश्व शान्ति के साधन', *कल्याण*, नवंबर 1965, पृष्ठ 1317-19
- [151.](#) इंदिरा गांधी से पोद्दार, 23 नवंबर 1970, पोद्दार पेपर्स

अध्याय 6

- [1.](#) बजरंग लाल से पोद्दार, 16 नवंबर 1939, पोद्दार पेपर्स
- [2.](#) जेराल्डिन फ़ोर्ब्स, *वुमन इन मॉडर्न इंडिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 1
- [3.](#) गुलाम मुर्शिद, *रिलक्टेंट डेब्यूटान्ट: रिस्पॉन्स ऑफ़ बंगाली वुमन टू मॉडर्नाइजेशन, 1849-1905*, राजशाही यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983, पार्था चटर्जी में उद्धृत, 'द नेशनलिस्ट रेजॉल्यूशन ऑफ़ द वुमेन्स क्वेश्चन,' कुमकुम सांगरी और सुदेश वैद (सं) में, *रिकास्टिंग वुमेन: एसेज़ इन कोलोनियल हिस्ट्री*, जुबान, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 234
- [4.](#) सुमित सरकार, 'द वुमेन्स क्वेश्चन इन नाइनटीन्थ सेंचुरी बंगाल', *ए क्रिटिक ऑफ़ कोलोनियल इंडिया* में, पपायरस, कलकत्ता, 2000, पृष्ठ 8 9
- [5.](#) पार्था चटर्जी, 'कोलोनिज़्म, नेशनलिज़्म एंड कोलोनाइज़्ड वुमेन: द कॉन्टेस्ट इन इंडिया', *अमेरिकन एथनॉलिजिस्ट*, भाग 16, क्र. सं. 4, नवंबर 1989, पृष्ठ 622-33

- [6.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'वर्तमान शिक्षा', कल्याण, अप्रैल 1936, पृष्ठ 1297
- [7.](#) नारी धर्म, सर्वप्रथम 1938 में प्रकाशित; सन् 2000 तक इसका मूल्य 3 रुपए था और इसकी 1,395,000 प्रतियाँ बिकी थीं। इसके 74 संस्करण आ आ चुके हैं।
स्त्रियों के लिए कर्तव्य शिक्षा, सर्वप्रथम 1954 में प्रकाशित, सन् 2000 तक इसकी 1,025,000 प्रतियाँ बिकी थीं, 45 संस्करण छप चुके थे और मूल्य 5 रुपए है।
भक्त नारी, सर्वप्रथम 1931 में प्रकाशित, मूल्य 5 रुपए और सन् 2002 तक इसकी 462,000 प्रतियाँ 39 संस्करण में बिकी थीं।
नारी शिक्षा, सर्वप्रथम 1952 में प्रकाशित, सन् 2010 तक इसकी 1,027,000 प्रतियाँ 57 संस्करण में बिकी थीं और मूल्य 8 रुपए था जो गीता प्रेस के मानक के अनुसार महंगा माना जा सकता है।
दाम्पत्य जीवन का आदर्श पोद्दार के लेखों का बाद में तैयार किया गया संकलन है। पहली बार 1991 में प्रकाशित हुआ। सन् 2002 तक इसकी 181,000 प्रतियाँ 17 संस्करण में बिकी थीं। मूल्य 7 रुपए।
गृहस्थ में कैसे रहें, 1990 में पहली बार प्रकाशित। सन् 2004 तक इसकी 930,000 प्रतियाँ 37 संस्करण में बिकी थीं और मूल्य 6 रुपए।
प्रश्नोत्तर मणिमाला, पहली बार 2001 में प्रकाशित और पहले ही साल में इसके पाँच संस्करण निकले थे। सन् 2002 तक 10,000 प्रतियों के साथ इसके छह संस्करण निकले। मूल्य 7 रुपए।
- [8.](#) सुखदा देवी, 'मारवाड़ी समाज में स्त्रियों की हीन दशा', चाँद, जुलाई 1937, पृष्ठ 278-79
- [9.](#) प्रभा खेतान, पीली आंधी, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2001
- [10.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1926 पृष्ठ 12-15
- [11.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, समाज सुधार, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1928, पृष्ठ 21, 23
- [12.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार से जयदयाल गोयन्दका, 1925 (दिनांक और महीने के बारे में जानकारी नहीं), पोद्दार पेपर्स
- [13.](#) जयदयाल गोयन्दका, नारी धर्म, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1938, पृष्ठ 2-3
- [14.](#) वही, पृष्ठ 25
- [15.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'वर्तमान शिक्षा', कल्याण, अप्रैल 1936, पृष्ठ 1293
- [16.](#) द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी, 'आधुनिक नारी', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 155-56
- [17.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'शिक्षा और सह-शिक्षा' कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 230-32

- [18.](#) बनारस में राधेश्याम खेमका का साक्षात्कार, संपादक, *कल्याण*, फ़रवरी 2011
- [19.](#) किशोरीदास वाजपेयी, 'लड़कियों की शिक्षा', *कल्याण*, नारी अंक, 1948, पृष्ठ 227
- [20.](#) चटर्जी, 'कोलोनिज़्म, नेशनलिज़्म एंड कोलोनाइज़्ड वुमेन', 1989
- [21.](#) शकुंतला गुप्ता, 'वर्तमान शिक्षा में परिवर्तन की आवश्यकता', *कल्याण*, नारी अंक, जनवरी, 1948, पृष्ठ 232-34
- [22.](#) मीरा कोसांबी, *पंडिता रमाबाईज़ अमेरिकन एनकाउंटर: द पीपुल ऑफ़ द यूनाइटेड स्टेट्स* (1889) की भूमिका में, इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस, ब्लूमिंगटन, यूएसए, 2003, पृष्ठ 3
- [23.](#) राधा कुमार में उद्धृत मीरा कोसांबी, *द हिस्ट्री ऑफ़ डूइंग*, जुबान, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 32
- [24.](#) सुदर्शन सिंह, 'डॉक्टर आनंदीबाई जोशी', *कल्याण*, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 816-18
- [25.](#) केरोलीन हेली डाल, *द लाइफ़ ऑफ़ डॉक्टर आनंदीबाई जोशी*, रॉबर्ट्स ब्रदर्स, बॉस्टन, 1888, पृष्ठ 50
- [26.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, *यूरोप की भक्त स्त्रियाँ*, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1934
- [27.](#) एक अपरिचित महिला से पोद्दार, 1929 (दिन, महीना स्पष्ट नहीं), पोद्दार पेपर्स
- [28.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'हिन्दू विवाह की विशेषता', नारी शिक्षा में, गीता प्रेस, गोरखपुर 1952, पृष्ठ 100
- [29.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, *दाम्पत्य जीवन का आदर्श*, 38वां संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर पृष्ठ 14
- [30.](#) पोद्दार, *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी*, 1926, पृष्ठ 16-18
- [31.](#) पोद्दार, *समाज सुधार*, 1928, पृष्ठ 15
- [32.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'विवाह का महान उद्देश्य और विवाह काल', नारी शिक्षा में, 1952, पृष्ठ 27-28
- [33.](#) पोद्दार, *नारी शिक्षा*, 1952, पृष्ठ 21
- [34.](#) पोद्दार, *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी*, 1926, पृष्ठ 1
- [35.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, *दाम्पत्य जीवन का आदर्श*, 38वां संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2013, पृष्ठ 82-83
- [36.](#) पोद्दार, *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी*, 1926, पृष्ठ 4

- [37.](#) चारू गुप्ता, 'आर्टिकुलेटिंग हिन्दू मैस्कुलिनिटी एंड फेमिनिटी: "शुद्धि" एंड "संगठन" मूवमेंट्स इन यूनाइटेड प्रोविनेंसेज़ इन द 1920', *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, भाग 33, क्र. सं. 13, 26 मार्च-3 अप्रैल 1998, पृष्ठ 727-35
- [38.](#) पोद्दार, *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी*, 1926, पृष्ठ 11-12
- [39.](#) गुप्ता, 1998, पृष्ठ 730-31
- [40.](#) पोद्दार, *समाज सुधार*, 1928, पृष्ठ 26
- [41.](#) पोद्दार, *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी*, 1926, पृष्ठ 16
- [42.](#) दीपेश चक्रवर्ती, 'द डिफ्रेंस-डेफेरल ऑफ़ ए कोलोनियल मॉडर्निटी: पब्लिक डिबेट्स ऑन डोमेस्टीसिटी इन ब्रिटिश बंगाल', डेविड आर्नोल्ड और डेविड हार्डिमन (सं) में, *सबाल्टर्न स्टडीज़*, भाग 8, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 55
- [43.](#) पोद्दार, *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी*, 1926, पृष्ठ 23-24
- [44.](#) गोयन्दका, *नारी धर्म*, 1938, पृष्ठ 13-14, 26-27
- [45.](#) चारू गुप्ता, *सेक्सुअलिटी, ऑबसीनिटी, कम्युनिटी*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2001, पृष्ठ 90-108
- [46.](#) 'नारी और भोजन निर्माण कला', *कल्याण*, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 346-49
- [47.](#) पोद्दार, *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी*, 1926, पृष्ठ 35, 36, 37
- [48.](#) वही, पृष्ठ 27-28-29,30
- [49.](#) गोयन्दका, *नारी धर्म*, 1938, पृष्ठ 33
- [50.](#) *कल्याण*, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 819-20, 821-23, 831-35, 836-38
- [51.](#) 'पतिव्रता क्या कर सकती है', *कल्याण*, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 333-3 4
- [52.](#) 'कैसे आचरण से नारी पति को वश में कर सकती है', *कल्याण*, संस्कार अंक, जनवरी 2006, पृष्ठ 194-95
- [53.](#) रामनिवास लखोटिया, 'बच्चों के प्रति माँ का उत्तरदायित्व', *संस्कार अंक*, जनवरी 2006, पृष्ठ 258-60
- [54.](#) चक्रवर्ती, 1996, पृष्ठ 60
- [55.](#) नारी: गृहलक्ष्मी और कल्याणी (1946), *आनंद निकेतन*, घर की रानी, भाई के पत्र, कन्या और नारी जीवन, कुछ समस्याएं / सभी साधना सदन द्वारा प्रकाशित, प्रयाग (इलाहाबाद)

- [56.](#) रामनाथ 'सुमन', 'भारतीय गृहों से लुप्त होती हुई गृहलक्ष्मियाँ', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 133-36
- [57.](#) पोद्दार, वर्तमान शिक्षा, 1936, पृष्ठ 30-32
- [58.](#) पोद्दार, 'वर्तमान शिक्षा', कल्याण, अप्रैल 1936, पृष्ठ 1294
- [59.](#) पोद्दार, नारी शिक्षा, 1952, पृष्ठ 21-22
- [60.](#) प्रेमचंद, 'नारी का वास्तविक स्वरूप', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 351
- [61.](#) एडॉल्फ हिटलर, 'स्त्रियों का कर्तव्य', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 724
- [62.](#) कर्नल जेम्स टॉड, 'ऐतिहासिक तथ्य', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 200
- [63.](#) पोद्दार, नारी शिक्षा 1952, पृष्ठ 21-22
- [64.](#) चंद्रिमा चक्रवर्ती, मैसकुलिनिटी, एसेटेसिज़्म, हिन्दुइज़्म, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2011, पृष्ठ 193
- [65.](#) अमृता बासु, 'फेमिनिज़्म इन्वर्टेड', तनिका सरकार और उर्वशी बुटालिया (सं) में, वुमेन एंड द हिन्दू राइट, काली फॉर वुमेन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 159
- [66.](#) पोद्दार, नारी शिक्षा, 1952, पृष्ठ 24-25
- [67.](#) ए एस अल्टेकर, 'द पोज़िशन ऑफ़ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइज़ेशन', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1938, पृष्ठ 83
- [68.](#) लिविया होल्डेन, हिन्दू डाइवोर्स: ए लीगल एंथ्रोपोलॉजी, एशगेट, इंग्लैंड, 2008, पृष्ठ 15-16
- [69.](#) फोर्ब्स, 1996, पृष्ठ 112-13
- [70.](#) रूपरानी 'श्यामा', 'तलाक सभ्यता का चिन्ह है?', कल्याण, मार्च 1936, पृष्ठ 1280-83
- [71.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'विवाह-विच्छेद', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 192-95
- [72.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'काम के पत्र', कल्याण, दिसंबर 1949, पृष्ठ 1467-75
- [73.](#) पोद्दार, स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी, 1926, पृष्ठ 20-23
- [74.](#) गोयन्दका, नारी धर्म, 1938, पृष्ठ 36
- [75.](#) 'विधवा जीवन को पवित्र रखने के साधन', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 241-43

- [76.](#) पोद्दार, समाज सुधार, 1928, पृष्ठ 6
- [77.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'सहमरण या सतीचमत्कार', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 257-59
- [78.](#) आचार्य चंद्रशेखर शास्त्री, 'भारतीय आतंकवाद में एक सती महिला', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 867-68
- [79.](#) गोयन्दका, नारी धर्म, 1938, पृष्ठ 14
- [80.](#) तनिका सरकार, हिन्दू वाइफ, हिन्दू नेशन, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2001, पृष्ठ 22 8
- [81.](#) गोयन्दका, नारी धर्म, 1938, पृष्ठ 2
- [82.](#) चारु चंद्र मित्र, 'नारी: पाश्चात्य और हिन्दू समाज में', कल्याण, मई, 1948, पृष्ठ 1049-54
- [83.](#) हेवेलॉक एलिस, साइक्लॉजी ऑफ़ सेक्स, भाग 6, पृष्ठ 524 मित्र में उद्धृत
- [84.](#) ऐंटो वाइटेलाविच नेमिलॉव, बायोलॉजिकल ट्रेजडी ऑफ़ वुमेन, अध्याय 7, पृष्ठ 128-33, मित्र में उद्धृत, कल्याण, मई 1948
- [85.](#) गुप्ता, 2001, पृष्ठ 126
- [86.](#) पोद्दार, स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी, 1926, पृष्ठ 37
- [87.](#) वही, पृष्ठ 40-41
- [88.](#) 'सर्वश्रेष्ठ संतान प्राप्ति के लिए नियम', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 294
- [89.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'गर्भाधान के श्रेष्ठ नियम', नारी शिक्षा में, 1952, पृष्ठ 33-38
- [90.](#) पोद्दार, स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी, 1926, पृष्ठ 41-42
- [91.](#) गंगाधर त्रिवेदी, 'स्त्रियों के रोग और उनकी घरेलू चिकित्सा', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 300-03
- [92.](#) गोयन्दका, नारी धर्म, 1938, पृष्ठ 24
- [93.](#) 'शिशु रोग और उनकी घरेलू चिकित्सा', कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 304-12
- [94.](#) वैद्य बदरुद्दीन रणपुरी, 'बाल रोगों की कुछ अद्भुत दवाइयां', कल्याण, जून 2001, पृष्ठ 730-31
- [95.](#) सिद्धगोपाल, 'एड्स एवं अध्यात्म', कल्याण, नवंबर, कल्याण, नवंबर 2005, पृष्ठ 961

- [96.](#) एमा टार्लो, *क्लोथिंग मैटर्स: ड्रेस एंड आइडेंटिटी इन इंडिया*, पेंगुइन-वाइकिंग, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 1
- [97.](#) सी ए बेली, 'द ऑरिजिन्स ऑफ़ स्वदेशी: क्लॉथ एंड इंडियन सोसाइटी, 1700-1930', अर्जुन अप्पादुरई (सं.) में, *द सोशल लाइफ ऑफ़ थिंग्स: कॉमोडिटीज़ इन कल्चरल पर्सपेक्टिव*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, यूएसए, पृष्ठ 286-87
- [98.](#) रामचरण महेंद्र, 'हिन्दू वेशभूषा और हिन्दी भाषा को अपनाने में गर्व का अनुभव करें', *कल्याण*, नवंबर, 1966, पृष्ठ 1312-13
- [99.](#) टार्लो, 1996, पृष्ठ 11
- [100.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'नारी के दूषण', *कल्याण*, नारी अंक, जनवरी 1948, पृष्ठ 324-28
- [101.](#) पोद्दार, *स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी*, 1926, पृष्ठ 17-18, 19, 20
- [102.](#) वही, पृष्ठ 35
- [103.](#) टार्लो, 1996, पृष्ठ 95
- [104.](#) पोद्दार, *समाज सुधार*, 1928, पृष्ठ 30-31
- [105.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, *पूर्ण समर्पण*, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1953, पृष्ठ 250-64
- [106.](#) मारग्रेट सैंगर से एम के गांधी का साक्षात्कार, 3-4 दिसंबर 1935, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी*, भाग 68, पृष्ठ 190-91
- [107.](#) महात्मा गांधी, 'बर्थ कंट्रोल', *हरिजन*, 14 मार्च 1936, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी*, भाग 68, पृष्ठ 296-98
- [108.](#) पोद्दार, 'वर्तमान शिक्षा', *कल्याण*, अप्रैल 1936, पृष्ठ 1289-1300 और इसका विस्तृत वर्णन एक अलग लेख के रूप में गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा 1936 में प्रकाशित हुआ था, पृष्ठ 21-22
- [109.](#) महात्मा गांधी, 'संतति या परिवार नियोजन पर महात्मा गांधी के विचार', *नवजीवन*, 12 मार्च 1925, *कल्याण* में उद्धृत, अगस्त 1969, पृष्ठ 1107
- [110.](#) *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी*, भाग 17, पृष्ठ 54, जे.टी.एफ. जॉर्डन्स में उद्धृत, *गांधीज़ रिलिजन: ए होमस्पन श्वाल*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 209
- [111.](#) वही, भाग 23, पब्लिकेशंस डिवीज़न, पृष्ठ 102, जॉर्डन्स में उद्धृत, 2012
- [112.](#) वही, भाग 29, पृष्ठ 415
- [113.](#) वही, भाग 30, पृष्ठ 235-36

- [114.](#) विनोबा भावे, 'परिवार नियोजन और भारतीय संस्कृति', कल्याण, जून 1997, पृष्ठ 516-17 (प्रकाशन के वास्तविक वर्ष के बारे में जानकारी नहीं)
- [115.](#) मित्र, 'नारी: पाश्चात्य और हिन्दू समाज में', कल्याण, अगस्त, 1948, पृष्ठ 1235-41
- [116.](#) डॉक्टर के सी मिश्र, 'परिवार नियोजन पर आध्यात्मिक दृष्टिकोण', कल्याण, दिसंबर 1967, पृष्ठ 1389-91
- [117.](#) पैट्रीसिया जेफ़री और रॉजर जेफ़री, *कॉन्फ्रंटिंग सेफ़ोन डेमोग्राफी*, श्री एसेज़ कलेक्टिव, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 1
- [118.](#) चंद्रिमा चक्रवर्ती, *मेसकुलिनिटी, एसेटेसिज़्म, हिन्दुइज़्म*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2011, पृष्ठ 181
- [119.](#) चारू गुप्ता, 'पॉलिटिक्स ऑफ़ जेंडर: वुमेन इन नाज़ी जर्मनी, *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, भाग 26, क्र 17, 27 अप्रैल 1991, पृष्ठ WS40-48
- [120.](#) भारत की जनगणना, 1911, भाग 15, पार्ट I, इलाहाबाद, 1912, पृष्ठ 109-10, गुप्ता में उद्धृत, *सेक्सुएलिटी, ऑबसिनिटी, कम्युनिटी*, 2001, पृष्ठ 307-08
- [121.](#) भारत की जनगणना, 1921, यूपी, पृष्ठ 53 गुप्ता में उद्धृत, 2001, पृष्ठ 308
- [122.](#) जेफ़री और जेफ़री, 2006, पृष्ठ 2
- [123.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'परिवार नियोजन हानिकारक है', 'काम के पत्र' में, कल्याण, अगस्त 1968, पृष्ठ 1140-41
- [124.](#) वीर भारत तलवार, 'फेमिनिस्ट कॉन्सियसनेस इन वुमेन्स जर्नल्स इन हिन्दी, 1910-20', कुमकुम सांगरी और सुदेश वैद (सं) में, 2010, पृष्ठ 205
- [125.](#) वही, पृष्ठ 207
- [126.](#) फ्रांसेस्का ओर्सिनी, *द हिन्दी पब्लिक स्फ़ेयर, 1920-1940: लैंग्वेज एंड लिटरेचर इन द एज ऑफ़ नेशनलिज़्म*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2002, पृष्ठ 264-65
- [127.](#) वही, पृष्ठ 262
- [128.](#) तलवार, 2010, पृष्ठ 208
- [129.](#) चाँद के बारे में यहाँ दी गई जानकारियाँ ओर्सिनी से ली गई हैं, 2002, वही, पृष्ठ 266-74
- [130.](#) वही, पृष्ठ 245, 260, 269
- [131.](#) शोबना निझावन, *वुमेन एंड गर्ल्स इन द हिन्दी पब्लिक स्फ़ेयर*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 13, 18

[132.](#) वही, पृष्ठ 4

[133.](#) सूज़ी थारू और के ललिता (सं), *वुमेन राइटिंग इन इंडिया*, भाग 1, ऑक्सफोर्स यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 14

[134.](#) वही, पृष्ठ 419-20

[135.](#) वही, पृष्ठ 459

[136.](#) सुब्बालक्ष्मी के बारे में जानकारी फोर्ब्स से ली गई है, 1996, पृष्ठ 57-60

[137.](#) विजयलक्ष्मी पंडित, 'आधुनिकता: सार और आसार', *कल्याण* दिसंबर 1955, पृष्ठ 1367-70, सर्वप्रथम *नवभारत टाइम्स* में प्रकाशित, बॉम्बे, 23 अप्रैल 1965

[138.](#) क्रमशः दोनों अनुच्छेदों में उद्धरण सुभोन लेंबर्ट-हर्ले, 'हार्ट ऑफ़ गोपी: रेहाना तैयबजीज़ भक्ति डिवोशनिज़्म एज़ सेल्फ-रिप्रेज़ेंटेशन,' लोघबोरो यूनिवर्सिटी, 2011 (*मॉडर्न एशियन स्टडीज़* में प्रकाशित, भाग 48, क्र. सं. 3, पृष्ठ 569-95)

[139.](#) पोद्दार से अनसुया देवी, पता और दिनांक नहीं दिया गया है लेकिन संभवतः जनवरी-फ़रवरी 1970, पोद्दार पेपर्स

[140.](#) स्वर्ण सिंह से पोद्दार, 20 फ़रवरी 1970, पोद्दार पेपर्स

[141.](#) रितु सिन्हा, 'हिन्दी और हिन्दू नेशनलिज़्म: ए सोशियोलॉजिकल स्टडी ऑफ़ कॉन्टेम्पोरेरी ट्रेन्ड्स इन हिन्दी लिटरेरी स्फ़ेयर', डॉक्टरेट की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध, जवाहरलाल नेहरू विश्विद्यालय, दिल्ली

[142.](#) कृष्ण कुमार, *पॉलिटिकल एजेंडा ऑफ़ एजुकेशन*, सेज, दिल्ली 2005, पृष्ठ 16

[143.](#) सिन्हा, 'हिन्दी एंड हिन्दू नेशनलिज़्म'

[144.](#) एन सी चटर्जी, 'हिन्दू जाति और भारत का भविष्य', *कल्याण*, बालक अंक, जनवरी, 1953, पृष्ठ 37-38

[145.](#) माधवराव सदाशिव गोलवलकर, 'अभ्युदय और निःश्रेयस तथा उनकी प्राप्ति के उपाय', *कल्याण*, बालक अंक, जनवरी, 1953, पृष्ठ 285-90

[146.](#) एन बी खरे, 'धार्मिक सिद्धांतों को जगाने की आवश्यकता', *कल्याण*, बालक अंक, जनवरी, 1953, पृष्ठ 36

[147.](#) 'गंदे साहित्य से बालकों के जीवन पर कुप्रभाव', *कल्याण*, बालक अंक, जनवरी, 1953, पृष्ठ 331-33

[148.](#) 'वर्तमान कुछ पत्र-पत्रिकाओं की अनैतिक प्रवृत्ति और बालकों को उससे बचाने की आवश्यकता', *कल्याण*, बालक अंक, जनवरी, 1953, पृष्ठ 333-36

[149.](#) 'सिनेमा साहित्य एवं सिनेमा अभिनेत्रियों के चित्रों के प्रचार से बालकों का पतन', *कल्याण*, बालक अंक, जनवरी, 1953, पृष्ठ 337-39

- [150.](#) गुर्ति सुब्रमण्यम, 'चलचित्र के सदुपयोग से बाल शिक्षा', कल्याण, बालक अंक, जनवरी, 1953, पृष्ठ 339-41
- [151.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, कल्याण, बालक अंक, जनवरी 1953, पृष्ठ 341
- [152.](#) सूचना एवं प्रसारण मंत्री से विष्णु हरि डालमिया, 10 जून 1957, पोद्दार पेपर्स
- [153.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी से विष्णु हरि डालमिया, 15 अक्टूबर 1957, पोद्दार पेपर्स
- [154.](#) चिम्मनलाल गोस्वामी से विष्णु हरि डालमिया, 18 अक्टूबर 1957, पोद्दार पेपर्स
- [155.](#) सत्यनारायण सिन्हा से पोद्दार, दिनांक स्पष्ट नहीं, पोद्दार पेपर्स
- [156.](#) 'विलासिता की सामग्रियों के प्रचार से युवक युवतियों के धन, स्वास्थ्य तथा चरित्र का नाश', कल्याण, बालक अंक, जनवरी 1953, पृष्ठ 344-46
- [157.](#) बनारसीदास चतुर्वेदी, 'भारतीय बाल साहित्य', कल्याण, बालक अंक, जनवरी 1953, पृष्ठ 388-92
- [158.](#) परिपत्र, डायरेक्टर ऑफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन ऑफिस, मध्य प्रदेश, 26 मार्च 1953, पोद्दार पेपर्स
- [159.](#) परिपत्र, शिक्षा निदेशालय, पीईपीएसयू, नाभा, 26 मार्च 1953, पोद्दार पेपर्स
- [160.](#) परिपत्र, शिक्षा निदेशालय, सौराष्ट्र सरकार, 27 जनवरी 1953 और विकास एवं समाज कल्याण विभाग के एजुकेशन सेक्शन का आदेश, विंध्य प्रदेश सरकार, 9 मार्च 1953, पोद्दार पेपर्स
- [161.](#) पोद्दार से श्री कृष्ण विद्यालय के प्रधानाचार्य, 13 फ़रवरी 1935, पोद्दार पेपर्स
- [162.](#) पोद्दार से असम संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष, 29 अक्टूबर 1935, पोद्दार पेपर्स
- [163.](#) पोद्दार से सुखदेव पांडेय, 30 दिसंबर 1957, पोद्दार पेपर्स
- [164.](#) पांडेय से पोद्दार, 20 जनवरी 1958, पोद्दार पेपर्स
- [165.](#) पांडेय से पोद्दार, 24 जनवरी 1958, पोद्दार पेपर्स
- [166.](#) पांडेय से पोद्दार, 7 फ़रवरी 1958, पोद्दार पेपर्स
- [167.](#) पांडेय से पोद्दार, 20 फ़रवरी 1958, पोद्दार पेपर्स
- [168.](#) पांडेय से पोद्दार, 21 फ़रवरी 1958, पोद्दार पेपर्स
- [169.](#) पोद्दार से केदारनाथ सिंह, 25 जुलाई 1970, पोद्दार पेपर्स
- [170.](#) महंत दिग्विजयनाथ, 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति', कल्याण, शिक्षा अंक, जनवरी 1988, पृष्ठ 97-98
- [171.](#) परिपूर्णानंद वर्मा, 'भारत में प्राचीन शिक्षा तथा आधुनिक शिक्षा', कल्याण, शिक्षा अंक, जनवरी 1988, पृष्ठ 225-30

- [172.](#) रामचंद्र शास्त्री विद्यालंकर, 'बालकों को शिक्षा', कल्याण, शिक्षा अंक, जनवरी 1988, पृष्ठ 401
- [173.](#) दिग्विजयनाथ, 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति', शिक्षा अंक, जनवरी 1988
- [174.](#) राजीव गांधी, 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' और वेदराम शर्मा, '10+2+3 शिक्षा प्रणाली: पुरानी और अपूर्ण योजना', कल्याण, शिक्षा अंक, जनवरी 1988, पृष्ठ 347-53 और 375-78
- [175.](#) पोद्दार, समाज सुधार, 1928, पृष्ठ 5
- [176.](#) पोद्दार, 'वर्तमान शिक्षा', कल्याण, अप्रैल 1936, पृष्ठ 1290-92, 1295, मई 1433-34
- [177.](#) जसवंतराय जयशंकर हाथी, 'परीक्षक और परीक्षा', कल्याण, बालक अंक, जनवरी 1953, पृष्ठ 792-93
- [178.](#) पोद्दार, 'वर्तमान शिक्षा', कल्याण, मई 1936, पृष्ठ 1434
- [179.](#) चतुर्वेदी जी महाराज से पोद्दार, 28 सितंबर 1935, पोद्दार पेपर्स
- [180.](#) हिन्दी बाल पोथी, शिशु पथ, भाग 1; हिन्दी बाल पोथी, भाग 4, गीता प्रेस, गोरखपुर 2011
- [181.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, बालक के आचरण, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2010
- [182.](#) वेरोनीक बेनी, स्कूलिंग इंडिया: हिन्दूज़, मुस्लिम्स एंड द फोर्जिंग ऑफ़ सिटिज़न्स, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2009, पृष्ठ 1-2
- [183.](#) पोद्दार, 'देश की लाज', बालक के आचरण में, 2010, पृष्ठ 5-8
- [184.](#) पोद्दार, 'धर्म का पालन', बालक के आचरण में पृष्ठ 9-10
- [185.](#) पोद्दार, 'जाति की मर्यादा', बालक के आचरण में पृष्ठ 11-12
- [186.](#) हिन्दी बाल पोथी, शिशु पथ, भाग 2, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2011, भूमिका
- [187.](#) संपादकीय, कल्याण-कल्पतरु, अक्टूबर 2012, पृष्ठ 10
- [188.](#) हनुमानप्रसाद पोद्दार, 'द प्रेजेंट डे एजुकेशन', कल्याण-कल्पतरु, शिक्षा नंबर, अक्टूबर 2012, पृष्ठ 51-58
- [189.](#) संपादकीय, कल्याण-कल्पतरु, शिक्षा नंबर, अक्टूबर 2012, पृष्ठ 9-12
- [190.](#) श्री ऋषिकुलब्रह्मचर्य आश्रम के नियम एवं कानून, चुरू, कल्याण, जून 1969, बैक कवर
- [191.](#) http://gitapress.org/Vedic_school.htm 27 नवंबर 2013 को देखी गई

उपसंहार

- [1.](#) राधेश्याम खेमका, 'वोट किसको दें', कल्याण, अप्रैल 2014, पृष्ठ 29
- [2.](#) बनारस में राधेश्याम खेमका के साथ साक्षात्कार, संपादक, कल्याण, फरवरी 2011
- [3.](#) राधेश्याम खेमका, 'अयोध्या की घटना: समस्या और समाधान', कल्याण, फरवरी, 1993, पृष्ठ 447-48
- [4.](#) संपादक, 'श्री राम जन्मभूमि का विवाद', कल्याण, जुलाई 1992, पृष्ठ 647-48
- [5.](#) संपादकीय टिप्पणी, 'अयोध्या में भगवान श्री राम का प्राकट्य हुआ था', कल्याण, सितंबर 1992, पृष्ठ 768
- [6.](#) राधेश्याम खेमका, 'श्री रामजन्मभूमि', कल्याण, जून 1990, पृष्ठ 602-04
- [7.](#) <http://sethusamudram.gov.in/What/What.htm>, 5 जनवरी 2013 को देखी गई
- [8.](#) राधेश्याम खेमका, 'सेतुबंध रामेश्वरम की रक्षा करें', कल्याण, मार्च 2007, पृष्ठ 595-96
- [9.](#) रामचंद्र महेन्द्र, 'समाज के लिए धर्म का महत्वपूर्ण योगदान', कल्याण, सितंबर 1977, पृष्ठ 346-47
- [10.](#) राधेश्याम खेमका, 'सिख धर्म भारतीय दर्शन एवं हिन्दू संस्कृति का अभिन्न अंग', कल्याण, जून 1984, पृष्ठ 658-60
- [11.](#) 'आतंकवाद और नर-हत्या', कल्याण, जुलाई 1987, पृष्ठ 880
- [12.](#) कल्याण, जुलाई 1988, पृष्ठ 3
- [13.](#) राधेश्याम खेमका, 'देश की सीमाओं को सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य', कल्याण, मार्च 1999, पृष्ठ 4
- [14.](#) राधेश्याम खेमका, 'धर्म, राज्य और नीति', कल्याण, नीतिसार अंक, जनवरी-फरवरी 2002, पृष्ठ 542-46
- [15.](#) प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, 'स्वराज्य एवं गो-रक्षा', कल्याण, गो सेवा अंक, जनवरी 1995, पृष्ठ 78-82
- [16.](#) एम वी कामथ, गांधीज़ कुली: लाइफ एंड टाइम्स ऑफ़ रामकृष्ण बजाज, अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1988. पृष्ठ 253
- [17.](#) राधाकृष्ण बजाज, 'गोरक्षा एवं गोसंवर्धन', गो सेवा अंक, जनवरी 1995, पृष्ठ 341-46
- [18.](#) मुज़फ़्फ़र हुसैन, 'गाय और कुरान', कल्याण, मार्च 2012, पृष्ठ 514-16

- [19.](#) राधेश्याम खेमका, 'पूर्ण गो-हत्या बंदी की दिशा में महाराष्ट्र का एक कदम', *कल्याण*, अप्रैल 2015, पृष्ठ 50
- [20.](#) खेमका के साथ साक्षात्कार, फरवरी 2011
- [21.](#) खेमका के साथ साक्षात्कार, फरवरी 2011
- [22.](#) राधेश्याम खेमका, 'सावधान रहने की आवश्यकता', *कल्याण*, नवंबर 2013, पृष्ठ 49-50
- [23.](#) राधेश्याम खेमका, 'देश का दुर्भाग्य', *कल्याण* सितंबर 2013, पृष्ठ 50
- [24.](#) पेट्रीसिया जेफ़री और रॉजर जेफ़री, *कॉन्फ्रंटिंग सैफरॉन डेमोग्राफी*, श्री एसेज़ कलेक्टिव, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 2
- [25.](#) राधेश्याम खेमका, 'भारतीय संस्कृति और परिवार नियोजन', *कल्याण*, अगस्त 2002, पृष्ठ 743-44
- [26.](#) सिद्धराज ढड्डा, 'एक दृष्टिकोण: गर्भपात कानून या हत्या को मान्यता', *कल्याण*, जुलाई 1971, पृष्ठ 1063-65
- [27.](#) गोपीनाथ अग्रवाल, 'गर्भपात: उचित या अनुचित, फैसला आपका', गीता प्रेस, गोरखपुर, 2011, पृष्ठ 3
- [28.](#) अग्रवाल में शैलेंद्र कुमार जैन, 2011, पृष्ठ 13-15
- [29.](#) खेमका के साथ साक्षात्कार, फरवरी 2011
- [30.](#) इकरा रेटिंग, अगस्त 2013
- [31.](#) मरियम-वेब्सटर्ज़ एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ वर्ड रिलीजंस, मैसाचुसेट्स 1999, पृष्ठ 379-80